सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

खण्ड आठ



प्रकाशन विभाग

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

८

(जनवरी-अगस्त १९०८)



गांधीजी (देखिए पृष्ठ ९२)

पादरी जे० जे० डोक द्वारा लिया हुआ चित्र; अपने ऊपर हमला होनेके बाद जब गांधीजी उनके घरमें स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे।

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

८

(जनवरी-अगस्त, १९०८)

सत्यमेव जयते

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

मार्च १९६३ (फाल्गुन १८८४ शक)

साढ़े सात रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली – ६, द्वारा प्रकाशित
और जीवणजी डाह्याभाई देसाई, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद – १४, द्वारा मुद्रित

भूमिका

इस खण्डमें सन् १९०८ के पहले आठ महीनोंका समावेश हुआ है। दक्षिण आफ्रिकी सरकारकी ज्यादतियोंके खिलाफ प्रवासी भारतीय जनताके विरोधका स्वर इसके प्रारम्भिक पृष्ठोंमें ही मुखर हो उठा है और इसका अन्त भी इसी स्वरमें होता है। ट्रान्सवालको स्वशासनका अधिकार मिलने और डच पार्टीके सत्तारूढ़ होनेसे काफी पहले ही भारतीयोंने सितम्बर, १९०६ की एक आम सभामें शानदार सर्वसम्मतिसे यह घोषणा कर दी थी कि वे दक्षिण आफ्रिकाकी गोरी प्रजाके बीच सदा पास लेकर चलनेवाले लोगोंकी तिरस्कृत जिन्दगी — जिसकी तुलना प्राचीन स्पार्टा-निवासियोंके बीच रहनेवाले भूमि-दासोंकी जिन्दगीसे की जा सकती है — बिताना कभी मंजूर न करेंगे। इस तरह, यह खण्ड गांधीजीके प्रथम सत्याग्रह-युद्धका चित्र पेश करता है और उसे पढ़ते हुए पाठकके मनमें सबसे पहला सवाल यह उठता है कि सरकार और दक्षिण आफ्रिकाके एशियाइयोंके बीच इतने आग्रह और उत्साहसे जो समझौता हुआ था वह आखिर विफल क्यों हो गया? उस समझौतेने जिन आशाओंको जन्म दिया था उन्हें पूरा नहीं किया और नतीजा हुआ — एशियाई पासोंकी होलीकी नाटकीय घटना जिसकी चर्चासे यह खण्ड समाप्त होता है। यह घटना मताधिकारसे वंचित समाज द्वारा सरकारी नीतिके शान्तिमय विरोधका करुण प्रतीक है। लॉर्ड ऐम्टहिलने भारतीयोंके लिए "साम्राज्यके साझेदारों" की स्थितिकी कल्पना की थी। भारतीय अभी उससे बहुत दूर थे। गांधीजीकी दृष्टिमें जनरल स्मट्सने समझौतेको भंग किया था और इसके कारण उनके दिलको बहुत धक्का पहुँचा था। फिर भी इस खण्डमें हम उन्हें सत्य और न्याय तथा समझौतेकी इच्छासे प्रेरित ऐसी आवाजमें बोलते हुए सुनते हैं जिसमें आशाका स्पन्दन कायम है। इस खण्डके अन्ततक हम उन्हें एलगिन और मॉर्ले आदि "नये उदारपंथियों" के खिलाफ ऐम्टहिल, चैम्बरलेन और रोड्स आदि "पुराने उदारपंथियों" से अपील करते हुए पाते हैं। नये उदारपंथी, उदार विचारधाराको सिद्धान्तके बजाय पद्धति अधिक मानते थे और इसलिए स्वशासी उपनिवेशोंकी आजादीके प्रति अपने मिथ्या आग्रहके कारण उपनिवेशोंके घटना-प्रवाहमें हस्तक्षेप करनेके लिए तैयार नहीं थे। लेकिन पुराने उदारपंथियोंके लिए साम्राज्यवाद अभीतक शासित जातियोंको शासकोंके स्तर तक ऊँचा उठानेका उदात्त ध्येय और कर्तव्य था। इस विचारधारामें गांधीजीको अब भी मनुष्य-जातिके विकास और प्रगतिकी आशा दिखाई पड़ती थी। बैंथमके आशयके सम्बन्धमें लोगोंकी नासमझीके कारण और उसकी 'अधिकतम लोगोंकी अधिकतम भलाई' के सिद्धान्तके कारण — जो कि प्रजातीय अल्पसंख्यकोंके हितके खिलाफ जाता था — उदारपंथी विचारधारा विकृत हो गई थी। दक्षिण आफ्रिकामें उसका परिणाम सामान्य जनताके दुराग्रहोंकी मान्यता और जनतन्त्रकी ऐसी शासन-प्रणालीमें आया था जिसमें बहु-संख्यकोंकी रायका पालन आँख मूँदकर किया जाता है। इसलिए श्री पोलकके हृदयस्पर्शी शब्दोंमें कहा जाये तो 'सच्चा साम्राज्यवाद क्या है' (पृष्ठ १४४) यह बताने और उदार-पंथी विचारधाराका तेज नष्ट हो गया है, यह सिद्ध करनेका काम इस विचारधारामें विश्वास रखनेवाले एक व्यक्तिको करना पड़ा।

२८ दिसम्बर, १९०७ को गांधीजीको ४८ घंटोंके अन्दर उपनिवेश छोड़कर चले जानेकी सजा दी गई। कारण, उन्होंने 'खूनी' एशियाई पंजीयनके अधीन अपना पंजीयन करानेसे इनकार कर दिया था। इस खण्डकी अन्य घटनाओंकी ही तरह भारतीयोंके इस "सरगना" को दी गई इस सजामें भी कोई आकस्मिकता नहीं थी। प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम (इमिग्रैंट्स रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट) के अन्तर्गत, जिसके लिए बड़ी होशियारीसे कामचलाऊ शाही स्वीकृति प्राप्त कर ली गई थी, स्मट्स पहलेसे ही देश-निकालेका दण्ड देनेके अधिकारसे सुसज्जित हो गये थे। यह अधिकार ट्रान्सवालमें अंग्रेजोंकी किसी सरकारको कभी प्राप्त नहीं रहा था। इसके सिवा, एशियाई अधिनियमसे जुड़ जानेपर इस अधिनियमका उपयोग शिक्षित भारतीयोंको उपनिवेशके अन्दर न आने देनेके लिए किया जा सकता था। जनरल स्मट्स शिक्षित भारतीयोंको सरकार-विरोधी आन्दोलनकी जड़ मानते थे। उनके शब्दों और कार्योंमें बाहरी तौरपर कई जगह जो विरोध पाया जाता है उसका निराकरण यह मान लेनेपर हो जाता है कि वे निरपवाद रूपसे इस मान्यतापर चल रहे थे कि सत्याग्रहकी हलचल विरोधकी एक कृत्रिम हलचल है, जिसके पीछे जनसमाजकी सच्ची परेशानियोंका ठोस आधार नहीं है। उनका खयाल था कि विरोध-आन्दोलनके नेताओंको निष्कासित कर देना ही भारतीय समस्याका अन्तिम हल है। और यदि भारतीयोंको यह इलाज स्वीकार करनेके लिए तैयार किया जा सकता, तो जनरल स्मट्स उनका मन समझानेके लिए कुछ टुकड़े उन्हें खुशीसे दे देते। रिचमंडमें उन्होंने यह कहा ही था कि समझौता उपनिवेशकी एशियाई आबादीको घटानेकी दृष्टिसे ही किया गया है। (परिशिष्ट – ८)। घटनाचक्रको इस दृष्टिसे देखा जाये तो समझमें आ जाता है कि जनरल स्मट्सका मंशा हमेशा एक ही था। लेकिन शिक्षित भारतीयोंका सवाल उग्र रूपसे २२ जून, १९०८ तक नहीं उठा। इन पृष्ठोंको पढ़नेपर उपनिवेश-सचिव जनरल स्मट्सकी जो तसवीर उभर कर सामने आती है वह ऐसे आदमीकी है जो बहुत सजग और सावधान था, जिसका अपने उद्देश्यके बारेमें दृढ़ आग्रह था और जो ऐसा चुप रहता था कि लोगोंको उसके असल इरादेके बारेमें धोखा हो जाता था। सजग और सावधान — क्योंकि वह हाल ही में सत्तारूढ़ हुआ था और निश्चयके साथ यह नहीं जानता था कि वह शाही सरकार, जिसने कमसे-कम प्रत्यक्षतः तो भारतीयोंके हितोंकी रक्षाके लिए लड़ाई लड़ी थी, कब क्या रुख अख्त्यार करेगी। विविध समुदायोंसे बने हुए समाजमें राजनीतिके क्षेत्रमें कैसे खतरोंका सामना करना पड़ता है, इस बातको वह जानता था और इसलिए उसे अनेक प्रतिस्पर्धी दावों और हितोंके बीचमें अपना रास्ता बड़ी सावधानीसे खोजना था। उसकी चुप्पी एक ऐसे आदमीकी चुप्पी थी जो दृढ़ निश्चयपर पहुँच गया है और जिसका वह निश्चय कार्यके द्वारा ही प्रकट होता है। अपने स्वीकृत उद्देश्यके विषयमें उसकी दृढ़ताका प्रमाण तो इस खण्डमें जगह-जगह मिलता है।

१० जनवरीको गांधीजी, थम्बी नायडू और लिअंग क्विनको अदालतके एक पूर्ववर्ती आदेशका उल्लंघन करनेके अपराधमें दो माहकी सजा हुई और उनके पीछे अनेक बहादुर व्यक्ति जेलमें जा पहुँचे। जेलमें गांधीजीने जेल-जीवनकी असुविधाओं और राजनीतिक चिन्ताओंके बीच कार्लाइल और रस्किनकी पुस्तकें पढ़ीं; उन्होंने अपने व्यक्तित्वके एक अंशको सुकरातमें देखा। सुकरातका जीवन, जैसा कि हम जानते हैं, भ्रांतियों और पूर्वग्रहोंसे जकड़े हुए उसके नगरके तत्कालीन समाजके खिलाफ एक लम्बा सत्याग्रह था। २१ जनवरीको

"शान्तिके देवदूत" श्री कार्टराइट, जो अपनी धर्म-बुद्धिके सन्तोषके लिए खुद भी जेल हो आये थे, गांधीजीसे जेलमें मिलने और समझौतेके प्रस्तावोंपर चर्चा करनेके लिए आये। कार्टराइट प्रोग्रेसिव पार्टीकी उस शाखाके अनुयायी थे जो साम्राज्यवादकी जिम्मेदारियोंको तब भी गम्भीरता पूर्वक निभानेकी इच्छा रखती थी। श्री कार्टराइट अपने साथ एक पत्रका मसविदा लाये थे जिसे यदि जनरल स्मट्सने खुद तैयार नहीं किया था, तो अपनी स्वीकृति अवश्य दी थी।

इस मसविदेमें गांधीजीने जो परिवर्तन किये (पृष्ठ ३९–४१) वे उनकी विचक्षण दूरदृष्टि और समझौतेकी इच्छाका परिचय देते हैं। समझौतेके इस पत्रकी शब्दरचना ऐसी रखी गई थी कि उससे "गोरोंके जीको अकस्मात् चोट न पहुँचे" और जनरल स्मट्स द्वारा दिये गये मौखिक वचनको –– उदाहरणके लिए, एशियाई पंजीयन अधिनियम रद करनेके वचनको –– लिपिबद्ध नहीं किया गया था। उसमें उन्होंने मुख्य रूपसे उन भारतीयोंके अधिवास-सम्बन्धी (डोमीसिलियरी) अधिकारोंको सुरक्षित करनेका प्रयत्न किया था जो उस समय ट्रान्सवालके बाहर थे। ये लोग अधिकांशमें एक तो शरणार्थी थे जो बोअर युद्धके दरम्यान उपनिवेशको छोड़कर चले गये थे; और दूसरे वे जिनके पास अपने अधिवास-सम्बन्धी हकके प्रमाणके रूपमें डच प्रमाणपत्र थे –– ये उपनिवेशके भीतर भी थे और बाहर भी। उन्होंने स्वेच्छया पंजीयनसे बालकोंको मुक्त करनेके लिए भी कहा था और सबसे ज्यादा तो इस बातका आग्रह किया था कि स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंको न केवल अधिनियममें उल्लिखित सजाओंसे बल्कि अधिनियमसे ही मुक्त रखा जाये। यदि ये परिवर्तन स्वीकार न किये जायें तो गांधीजी और उनके साथी सत्याग्रही जेलमें ही बने रहना चाहते थे। कारण, "आत्मसम्मान मनकी ऐसी स्थिति है जो अधिकारोंकी क्षतिको गवारा नहीं करती।" और सत्याग्रहका भी यही लक्षण है।

गांधीजी स्मट्ससे ३० जनवरीको, और फिर ३ फरवरीको मिले और उन्होंने इस बातका इत्मीनान कर लिया कि (१) स्वेच्छया पंजीयन, एशियाई पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत नहीं, बल्कि प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियममें उचित संशोधनके द्वारा या दोनों पक्षोंको स्वीकार्य अन्य उपायों द्वारा वैध किया जायेगा और (२) एशियाई पंजीयन अधिनियम "संसदकी अगली बैठकमें" रद कर दिया जायेगा। स्मट्सने रिचमंडमें अपने ६ फरवरीके भाषणमें (परिशिष्ट–८) अपने इस वैयक्तिक वचनकी सार्वजनिक रूपसे पुष्टि कर दी। यहाँतक कि चैमनेके कहनेपर गांधीजीने भारतीय और चीनी भाषाओंमें एक विज्ञप्ति तैयार की, जिसमें यह आशा दिलाई गई थी कि "अगर एशियाई समझौतेका अपना हिस्सा पूरा कर दें," तो अधिनियम रद कर दिया जायेगा। (पृष्ठ ४३१)। उन्होंने यह विज्ञप्ति डोकके घरमें, जहाँ वे अपने ऊपर हुए हमलेके बाद आराम कर रहे थे, रोग-शय्यापर पड़े-पड़े तैयार की थी।

भारतीयोंने सामुदायिक रूपमें पहली बार ११ सितम्बर, १९०६ को और फिर २९ मार्च १९०७ को स्वेच्छया पंजीयन करानेकी तैयारी बताई, इससे सरकारके सारे जायज उद्देश्य पूरे हो जाते थे –– खासकर उपनिवेशमें वैध रूपसे रहनेवाले एशियाइयोंकी शिनाख्तका उद्देश्य तो पूरा हो ही जाता था। भारतीयों द्वारा यह प्रस्ताव एशियाई पंजीयन अधिनियमको रद करनेके पर्यायके रूपमें किया गया था। यह अधिनियम इस अप्रमाणित आरोपपर आधारित था कि ट्रान्सवालमें रहनेवाले अधिकांश भारतीय उपनिवेशमें छल-कपटका आश्रय लेकर आये हैं। इस प्रकार इस कानूनमें आरोपका गूढ़ संकेत था और वह सारे समाजपर कलंकका टीका

लगाता था। ट्रान्सवाल सरकार एक सालसे भी ज्यादा समय तक अपनी बातपर अड़ी रही और उसने भारतीयोंका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। फिर भी अन्तमें वह स्वीकार हुआ — इससे प्रकट होता है कि भारतीयोंकी यह सफलता कितनी बड़ी थी। लेकिन भारतीयोंको इसका अभिमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह विजय उनकी नहीं, सत्यकी थी। इसलिए भारतीयोंके विजय-सुखकी इस सर्वोत्तम घड़ीमें गांधीजी निरन्तर अपने देशवासियोंको विनम्रताकी सीख देते रहे और खुद उसका पालन करते रहे, ताकि जनरल स्मट्सको उनके गोरे मत-दाताओंकी आँखोंमें नीचा न देखना पड़े।

अलबत्ता, ९ मईको इसी विषयपर लिखते हुए यह खुश चिकित्सक अपने संयमके अंकुशको थोड़ा ढीला करके थोड़ी देरके लिए आनन्द मनाता है क्योंकि उसे विश्वास है कि उसने बहुत सावधानीके साथ जो नश्तर लगाया है उसका घाव शीघ्र ही भर जायेगा : "मोटे तौरपर प्रायः प्रत्येक एशियाईने स्वेच्छया पंजीयनकी अर्जी दे दी है। . . . लगभग आठ हजार अर्जियाँ दी गई हैं। उनमेंसे छः हजार ठीक मानी जाकर मंजूर हो चुकी हैं। यह दोनों पक्षोंके लिए श्रेयकी बात है . . .। अब सरकारको अपना कर्तव्य पूरा करना है; अर्थात् उसे एशियाई अधिनियमको रद करना और स्वेच्छया पंजीयनको ऐसे ढंगसे वैध ठहराना है कि वह एशियाइयोंको भी स्वीकार हो . . .। भारतीय समाजने [नवागन्तुकोंकी बाढ़को रोकनेके] औपनिवेशिक सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है। अतः अब संघर्षका कोई और कारण नहीं रहना चाहिए।" (पृष्ठ २१४)। लेकिन जनरल स्मट्स कुछ और भी चाहते थे।

हफ्तेपर-हफ्ते बीतते रहे और इस बीचमें यह समझौता कार्यान्वित नहीं हुआ; सरकारने अपना वचन पूरा नहीं किया। भारतीयों और चीनियोंने अपना वादा प्रतिपक्षीकी राह देखे बिना पूरा कर दिया, लेकिन उनमें सरकारसे वैसा ही करा सकनेकी न तो शक्ति थी और न उनके पास इसके साधन ही थे। स्मट्सने अपना वादा जान-बूझकर और इरादतन तोड़ा या नहीं, इस प्रश्नकी गांधीजीने 'दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास' में काफी छानबीन की है। वे लिखते हैं, "उन्होंने (जनरल स्मट्सने) . . . २,००० एशियाइयोंका सम्भाव्य प्रवेश रोकनेके लिए सारा समझौता तोड़ दिया है . . .।" सच तो यह है कि स्मट्स इससे भी आगे बढ़ गये थे। अगर वे अधिवासी भारतीयोंको इस बातके लिए राजी कर सकते कि वे मुट्ठी-भर शिक्षित भारतीयोंका आना रोकनेमें सरकारका साथ दें और इस प्रकार जिनका प्रतिनिधित्व वे नहीं करते थे उनके अधिकारोंको सरकारके हाथ बेच दें तो वे (जनरल स्मट्स) उपनिवेशके बाहरके २,००० एशियाइयोंको भी आने देनेके लिए तैयार थे। उनका कहना तो यह था कि वे उपनिवेशमें एशियाइयोंकी आबादीको सिर्फ सीमित करना और घटाना चाहते हैं, परन्तु गांधीजीके कथनानुसार सच बात यह थी कि वे उसे उस नेतृत्वसे भी वंचित करना चाहते थे जो, "स्वस्थ और स्वाभाविक विकास" के लिए जरूरी था। दूसरी ओर, गांधीजी उपनिवेश-सचिवसे आग्रहपूर्वक अनुनय-विनय कर रहे थे और अपने देश-वासियोंको लगातार समुचित सलाह-सूचना दे रहे थे। दोनोंसे ही वे अपनी बात जिन शब्दोंमें कह रहे थे उनके स्वरमें उनके मनकी निश्छलता और उत्कटताकी छाप है; यहाँतक कि कुछ लोगोंको उनकी सलाह-सूचना, जिसमें कि अपने आग्रहोंको त्यागकर प्रतिपक्षीके दृष्टिकोणको समझनेकी क्षमता व्यक्त होती है, काफी कठोर जान पड़ेगी। "समझौतेके बारेमें प्रश्नोत्तरी" (पृष्ठ ७५–८३) राजनीतिमें अपेक्षित समझाने-बुझानेकी कलाका आदर्श नमूना है और

इस "विनम्र व्याख्याकार" को लोगोंको उकसाने और उभाड़नेवाला 'उपद्रवी व्यक्ति' बताना हास्यास्पद था। स्मट्सका अप्रकट मनोगत क्रमशः तब प्रकट हुआ जब उस मिताक्षर समझौता-पत्रकी शर्तोंको कार्यान्वित करनेका वक्त आया। उपनिवेशको युद्धसे पहले छोड़कर चले जानेवाले शरणार्थी वापस आ सकते थे; जिनके पास डच प्रमाणपत्र थे वे पाँच-सौ आदमी भी बने रह सकते थे; बाहरके अन्य हजार भी आ सकते थे। स्वेच्छया पंजीयन करानेवाले व्यक्तियोंके अधिवास सम्बन्धी दावोंपर चैमनेके फैसलोंके खिलाफ एशियाइयोंके अदालतोंमें जानेकी बात भी मान ली गई। लेकिन शिक्षित भारतीयोंके सवालपर जनरल स्मट्स अटल रहे। जबतक भारतीय प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमकी उनकी (स्मट्सकी) व्याख्याको स्वीकार करके भविष्यमें शिक्षित भारतीयोंके उपनिवेश-प्रवेशका दरवाजा बन्द करनेके उनके इरादेको अपना समर्थन न दे दें तबतक वे एशियाई पंजीयन अधिनियमको रद करनेके लिए राजी नहीं थे। २२ जूनको समझौतेके टूट जानेकी घोषणा कर दी गई। और एशियाइयोंकी हालत, स्वेच्छया पंजीयनके पहले जैसी थी, उससे भी बुरी हो गई।

इस बीचमें खूनी कानूनके हौआको फिर जीवन दे दिया गया। १२ मईको चैमने महाशयने ऐलान किया कि उपनिवेशमें ९ मईके बाद दाखिल होनेवाले एशियाइयोंको उक्त कानूनके अन्तर्गत अपना पंजीयन कराना पड़ेगा। २२ मईको स्मट्सने इस बातकी पुष्टि कर दी कि यह कानून विधि-पुस्तिकामें कायम रहेगा और ७ जुलाईको चैमनेने चेतावनी दी कि एशियाई व्यापारियोंको इस अधिनियमकी शर्तोंका पालन करना होगा और परवाना (लाइ-सेन्स) पानेकी अपनी अर्जियोंपर अँगूठोंकी छाप लगानी होगी। ऐसी हालतमें सत्याग्रह पुनः आरम्भ हो गया। जेल जानेका ऐसा उपाय नियोजित किया गया जिससे समाजका प्रत्येक सदस्य, जो इसके लिए राजी हो, स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहनकी कसौटीपर चढ़े, ताकि इस कष्ट-सहनके द्वारा समाजकी सच्ची आवश्यकताओंकी परीक्षा हो जाये और उनका माप भी मिल जाये। "कलमुँहों" (ब्लैकलेग्स) तकसे अपना योगदान देनेके लिए कहा गया, ताकि उन्हें लगे कि समाज द्वारा आयोजित इस बलिदान-यज्ञमें वे भी शामिल हैं और वे भी उसका पावन प्रभाव अनुभव कर सकें। स्वेच्छया पंजीयन करानेवाले उन व्यापारियोंने, जिन्हें ३१ दिसम्बर, १९०८ तक के परवाने मिले हुए थे, अधिकारियोंको अपने परवाने दिखानेसे इनकार कर दिया और वे गिरफ्तार हो गये। जिन व्यापारियोंके परवाने ३० जूनको खत्म हो गये थे उन्होंने परवाना फिरसे पानेकी अपनी अर्जियोंपर अँगूठेकी छाप लगानेसे इनकार कर दिया। ईसप मियाँ और दूसरे प्रतिष्ठित भारतीयोंने गिरफ्तार होनेके लिए बिना परवानेके फेरी लगाना शुरू करके इस मामलेमें पहल की। दूसरे कुछ लोगोंने उपनिवेशकी सीमाके बाहर जाकर दुबारा प्रवेश करते समय, कानूनकी अवज्ञा करनेके लिए शिनाख्त पेश करनेसे इनकार कर दिया। और अन्तमें जब यूरोपीय मध्यस्थोंकी कोशिश विफल सिद्ध हुई और समझौतेकी वार्ता टूट गई तो एशियाइयोंने १६ और २३ अगस्तकी विशाल सभाओंमें अपने स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्रोंको जला दिया और उन्हें अमान्य करार दिया। पंजीयनके बन्धनसे सामुदायिक मुक्तिके इस कार्यमें व्यक्त प्रभावशाली एकताने प्रत्यक्ष प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया कि एशियाई पंजीयन अधिनियमके खिलाफ चलाया गया विरोध-आन्दोलन "बनावटी" नहीं था।

सत्याग्रहके प्रयोगमें गांधीजी कभी आवेश और तर्कका अतिरेक नहीं होने देते। परिस्थितियोंपर और आन्दोलनके प्रयोजनपर उनका ध्यान हमेशा बना रहता है। उदाहरणके

लिए, जेल जानेका कार्यक्रम नियोजित करनेमें उनकी दृष्टि जितनी "खूनी कानून" का विरोध करनेकी थी उतनी ही उसकी असंगतियाँ दिखानेकी भी थी : जैसे, आनेवाले एशियाइयोंके लिए एक कानून था और स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंके लिए दूसरा। फिर, सरकार व्यापारियोंसे, उनकी पूरी शिनाख्त करा चुकनेके बाद भी, उनके अँगूठोंकी छाप माँगती थी। गरज यह कि आन्दोलनके दरम्यान गांधीजी विरोधपर नहीं, हमेशा दलीलपर ही जोर दे रहे थे। वे न्यायकी दृष्टिसे अपने पक्षकी प्रबलता और प्रतिपक्षकी निर्बलता सिद्ध कर रहे थे।

सत्याग्रह एक ओर तो ऐसी चमकीली तलवार है जिसे "हृदयके सानपर चढ़ाकर" तेज किया जाता है, दूसरी ओर वह ऐसा उज्ज्वल प्रकाश भी है जिससे शत्रु चौंधिया जाता है और सत्यके आगे झुक जाता है — उस सत्यके आगे जो "जनरल स्मट्स . . . या गांधीसे बड़ा है"। वह शत्रुको हारकी लज्जाका अनुभव नहीं होने देता और फिर भी उसे सुधार देता है। वह करुणाकी ऐसी मनःस्थिति है जिसमें व्यक्ति दूसरोंके साथ अपना मानसिक योग साधता है और जिसमें वह दूसरेके लिए कष्ट सहकर ज्यादा शुद्ध और निर्मल बनता है। अपने ऊपर हमला होनेके बाद गांधीजीने जो किया वह सत्याग्रहका बहुत सुन्दर उदाहरण है। उस समय अपनी रोग-शय्यासे गांधीजीने जो सन्देश भेजा था उसमें उनके मनकी अकृत्रिम निश्छलता, और पारदर्शी शुद्धता बहुत अच्छी तरहसे प्रतिबिम्बित हुई है। इस सन्देशमें उन्होंने हमलेकी घटनाके बाद तुरन्त ही आक्रमणकारियोंके प्रति अपनी क्षमाका ऐलान किया था। आखिर उन्होंने अपने "मेरा सम्मान" लेखमें (पृष्ठ ९०–९४) जैसा कहा है, उसकी मानो उन्हें पूर्व-अपेक्षा ही रही हो। ("अगर मारना ही हो तो सबसे पहले मुझे मारें।" पृष्ठ ५५)। इसके सिवा, सत्याग्रह भयकी वृत्तिका, जो मनुष्यके अधिकांश चारित्रिक पतनका कारण है, अतिक्रमण करनेको कहता है। सत्याग्रही अपने अन्तरमें जिस सत्यका अनुभव करता है, उसके प्रति उसे अपने आचरणमें पूरी वफादारीका पालन करना चाहिए। समानताके लिए प्रयत्न करना मनुष्यका कर्तव्य है और अधिकार है, क्योंकि प्रेम और मैत्री समानोंमें ही हो सकती है। जहाँ सत्याग्रहके लिए आवश्यक उत्कृष्ट वीरता पर्याप्त मात्रामें न हो या उसका नितान्त अभाव हो और बल या अन्यायकी अनिवार्य चुनौतीका मुकाबला करना हो वहाँ मनुष्यको कायरताके बजाय हिंसाको तरजीह देनी चाहिए। (पृष्ठ २७१)। "जीवित रहनेके लिए मरना आवश्यक है। अधिकार प्राप्त करनेके लिए कर्तव्य पूरा करना होता है।" (पृष्ठ २९३)। इस तरह देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि सत्य, वीरता और सत्याग्रह मनकी एक ही स्थितिके पहलू हैं। इसीलिए एशियाई पंजीयन अधिनियम "मेरे ईमान और मेरी आजादीके खिलाफ" था। गांधीजीकी मानवोचित नैतिकता जिन सौम्य संयमोंका विधान करती है उनका मर्म समझनेके लिए हमें उनकी कर्तव्यकी कल्पनाका — जिसपर उनका जबरदस्त आग्रह है — खयाल अवश्य रखना चाहिए। यही कारण है कि आवश्यक सैनिक सफलताओंको वे अपना समर्थन देनेसे एकदम इनकार नहीं करते। "जबसे जापानी वीरोंने मंचूरियाके मैदानमें रूसियोंको धूल चटाई है, तबसे पूर्वमें सूर्योदय हो चुका है। यह प्रकाश आज समस्त एशियाई लोगोंपर पड़ने लगा है। अब पूर्वके लोग घमण्डी गोरों द्वारा किये गये अपमानको अधिक समय तक हरगिज सहन न करेंगे।" (पृष्ठ ३१६)। लेकिन सत्यकी आवाज उन्हें अविलम्ब संयत विचारकी भूमिकापर लौटा लाती है। "पूर्व हो चाहे पश्चिम, फेर केवल नामोंका है, . . . सदाचारके पालनका पट्टा कोई विशिष्ट जाति लिखा कर नहीं लाई है।" (पृष्ठ २०४)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिज़र्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, नई दिल्ली; भारत सेवक समिति (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी), पूना; कलोनियल ऑफिस पुस्तकालय तथा इंडिया ऑफिस पुस्तकालय, लन्दन; फीनिक्स सेटिलमेंट, डर्बन; प्रिटोरिया आर्काइव्ज़, प्रिटोरिया; श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद; श्री अरुण गांधी, बम्बई; और इन समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'इंडिया', 'इंडियन ओपिनियन', 'नेटाल मर्क्युरी', 'प्रिटोरिया न्यूज़', 'रैंड डेली मेल', 'स्टार' और 'ट्रान्सवाल लीडर'।

अनुसंधान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, तथा सूचना और प्रसारण मन्त्रालय (मिनिस्ट्री ऑफ इन्फर्मेशन ऐंड ब्रॉडकास्टिंग) के अनुसंधान तथा सन्दर्भ विभाग (रिसर्च ऐंड रेफरेंस डिविजन), नई दिल्ली; साबरमती संग्रहालय तथा गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; श्री प्यारेलाल नय्यर, नई दिल्ली; सार्वजनिक पुस्तकालय (पब्लिक लाइब्रेरी), जोहानिसबर्ग, और ब्रिटिश म्यूज़ियम, लन्दन, हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

पाठकोंको सूचना

विभिन्न अधिकारियोंको लिखे गये प्रार्थनापत्र और निवेदन, अखबारोंको भेजे गये पत्र और सभाओंमें स्वीकृत प्रस्ताव, जो इस खण्डमें सम्मिलित किये गये हैं, उनको गांधीजीका लिखा माननेके कारण वे ही हैं जिनका हवाला खण्ड १ की भूमिकामें दिया जा चुका है। जहाँ किसी लेखको सम्मिलित करनेके विशेष कारण हैं वहाँ वे पाद टिप्पणीमें बता दिये गये हैं। 'इंडियन ओपिनियन' में प्रकाशित गांधीजीके वे लेख, जो लेखकका नाम दिये बिना छापे गये हैं, गांधीजीके आत्मकथा सम्बन्धी लेखोंके सामान्य साक्षी, उनके सहयोगी श्री छगनलाल गांधी और हेनरी एस० एल० पोलककी सम्मति और अन्य उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर पहचाने गये हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करनेमें अनुवादको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है। किन्तु साथ ही अनुवादकी भाषा सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। अनुवाद छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद किया गया है और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नामोंको सामान्यतः जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाये। जिन नामोंके उच्चारण संदिग्ध हैं उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीचमें चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण, वक्तव्य आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है, तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर, साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्टें, न्यायालयोंकी कार्यवाहियाँ तथा वे शब्द, जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; किन्तु जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और जहाँ आवश्यक हुआ है, उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' और 'दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास' के अनेक संस्करण होनेसे उनकी पृष्ठ संख्याएँ विभिन्न हैं, इसलिए हवाला देनेमें केवल भाग और अध्यायका ही उल्लेख किया गया है।

साधन-सूत्रोंमें एस० एन० संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका और सी० डब्ल्यू०, कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय) द्वारा संगृहीत कागजपत्रोंका सूचक है।

पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ सामग्री परिशिष्टोंमें दे दी गई है। साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ अन्तमें दी गई हैं।

पाठकोंको सुविधाके लिए "शीर्षक-सांकेतिका" के पूर्व इस खण्डसे सम्बन्धित "पारिभाषिक शब्दावली" भी दी जा रही है। भविष्यमें ऐसी शब्दावली हर खण्डमें दी जायेगी।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१. भूतपूर्व सैनिकोंका मुकदमा[1]

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ३, १९०८]

...दो भारतीय, जिनके मुकदमे उस समय स्थगित हो गये थे जब श्री गांधी और अन्य लोगोंके मुकदमोंपर पहले विचार शुरू हुआ था, पेश किये गये और पंजीयनका प्रमाणपत्र पासमें न होनेके कारण, उनपर एशियाई पंजीयन अध्यादेशके उल्लंघनका अभियोग लगाया गया ...श्री गांधीके साथी देशवासी लगभग एक हजार या १५०० की संख्यामें अदालतमें और उसके गिर्द जमा हुए थे और बहुत-सी आवाजोंकी एक दबी हुई फुसफुसाहट, जो अदालतमें पूर्णतया सुनाई पड़ रही थी, प्रमाणित कर रही थी कि इस कार्यवाहीमें उन्हें कितनी दिलचस्पी है।

...भारतीय सेनाके एक भूतपूर्व सैनिक, नवाबखाँ[2], पर जुर्म लगाया गया।

...श्री गांधीने कोई प्रश्न नहीं पूछे, और अभियुक्तको गवाहोंके कठघरेमें खड़ा कर दिया। उन्होंने उनसे नीचे लिखे अनुसार पूछताछ की:

[गांधीजी:] आप जमादार हैं?

[अभियुक्त:] हाँ।

आप ट्रान्सवालमें युद्धके समय आये?

हाँ, युद्धके समय।

आप वाहन सैन्य-दलमें थे?

हाँ।

आपने किन-किन अभियानोंमें सेवा की है?

बर्मा, चितराल, ब्लैकहिल, तीरा अभियान (१८९७) और ट्रान्सवाल युद्ध।

और आप तीन बार आहत हुए?

मुझे दो बार गोली लगी और एक बार आँखके ऊपर घाव लगा।

जब लॉर्ड रॉबर्ट्स[3] कन्दहार गये थे तब क्या आपके पिता उनके कर्मचारी-मण्डलमें थे?

हाँ, वे सूबेदार मेजर थे।

१. ये मुकदमे २८ दिसम्बर १९०७ को, जब कि गांधीजी और कुछ अन्य भारतीयोंके मुकदमोंकी सुनवाई हुई थी, स्थगित कर दिये गये थे। देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४५८–६४

२. उच्चायुक्तके नाम भेजे गये उनके प्रार्थनापत्रके लिए देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ३८४–५

३. कन्दहार, प्रिटोरिया तथा वाटरफोर्डके फ्रेड्रिक स्ले रॉबर्ट्स (१८३२–१९१४); फील्डमार्शल तथा भारतके प्रधान सेनापति १८८५ से लेकर १८९३ तक; १८९९ से लेकर १९०० तक दक्षिण आफ्रिकाके प्रधान सेनापति; प्रथम विश्व युद्धके समय १९१४ में यूरोपमें समुद्रपारीय तथा भारतीय सेनाओंके प्रधान कर्नल; **भारतमें ४१ वर्ष (फॉर्टीवन इयर्स इन इंडिया)** के लेखक। बोअर युद्धके समय गांधीजीका नेटाल डोली वाहक दल उनके लड़केका शव युद्ध-भूमिसे उठाकर लाया था; देखिए **आत्मकथा**, अध्याय १०। बोअर युद्धके अनन्तर रॉबर्ट्स ट्रान्सवालमें आधिपत्य सेनाके मुखिया रहे। इस अवधिमें गांधीजीने उनकी भारतीयोंके प्रति सहानुभूतिकी चर्चा की है; देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३२६। किम्बर्लेकी मुक्तिपर उनको भेजे गये बधाईके सन्देशोंके लिए, देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १५३।

साक्षीने कहा कि वह म० द० आ० रेलवेमें[1] वतनी पुलिसका अधिकारी है।

मजिस्ट्रेटने कहा कि इस गवाहीसे स्थितिमें फर्क नहीं पड़ता।

श्री गांधी : नये अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयनका प्रमाणपत्र लेनेसे आपने इनकार किया है?

नये अधिनियमके अन्तर्गत मैं वह नहीं लूँगा।

क्या आप अपने कारण बतायेंगे?

[अभियुक्त :] **क्योंकि यदि मैंने ऐसा किया तो इससे मेरा सर्वथा विनाश हो जायेगा।**

श्री जॉर्डनने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा कि अभियुक्त पंजीकृत नहीं है और उसे अवश्य ही पंजीयन कराना चाहिए। २८ तारीखको आखिरी मुकदमोंको सुननेके बाद, भारतीय और चीनी दोनों ही उससे मिले हैं और उन्होंने उसे सूचित किया है कि अँगुलियोंके निशान देनेके इस प्रश्नका उनके धर्मसे सम्बन्ध नहीं है। बिलकुल नहीं है। . . . श्री जॉर्डनने आगे कहा कि अभियुक्त टोकरी उठानेवाले साधारण कुलियोंसे भिन्न वर्गका आदमी है और उसे मालूम होना चाहिए कि पंजीयनसे इनकार करनेसे उसका काम नहीं चल सकता। उसे पंजीयन करा लेना चाहिए। अभियुक्तको १४ दिनके अन्दर यह देश छोड़ देना होगा।

मजिस्ट्रेटने अभियुक्तके बारेमें जो यह कहा था कि वह अपने कुछ देशवासियोंके मुकाबलेमें भिन्न वर्गका व्यक्ति है, उसका उत्तर देते हुए अभियुक्तने कहा कि इस मामलेमें हम सब एक हैं। हम यह देश छोड़ेंगे और एक-साथ जेल जायेंगे।

लॉर्ड रॉबर्ट्सके साथ आया

इसके बाद समन्दरखाँ नामक एक पठान और भारतीय सेनाके भूतपूर्व सैनिकपर यही अभियोग लगाया गया। वह भी कमसे-कम अपना एक घाव तो दिखला ही सकता था।

. . . श्री गांधीके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए समन्दरखाँने कहा कि मैं इस उपनिवेशमें लॉर्ड रॉबर्ट्सके साथ आया था। उससे पहले मैं भारतीय सेनामें ३० वर्ष सेवा कर चुका हूँ; मैं पारडीकॉपकी लड़ाईमें मौजूद था और मेरी दाहिनी जाँघमें गोली लगी थी। मैं प्रिटोरियाके एशियाई दफ्तरमें अर्दली हूँ।

[गांधीजी :] आप इस अधिनियमको नहीं मानना चाहते?

[अभियुक्त :] **नहीं।**

क्या किसीने आपको डराया है?

नहीं, कौन मुझको डरायेगा? यदि मैं फाँसीपर चढ़ाया जाऊँ तब भी पंजीयन नहीं कराऊँगा।

१. मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवे।

आपने हाल ही में भारतकी यात्रा की है?

हाँ।

और अभी-अभी लौटे हैं?

हाँ, कोई दो सप्ताह हुए।

श्री जॉर्डन: क्या तुम लिख सकते हो?

[अभियुक्त:] नहीं।

भारतमें तुम अपना वेतन कैसे पाते थे?

मैं निशान लगा दिया करता था।

क्या तुम अपनी अँगुलीकी छाप नहीं लगाते थे?

नहीं।

यहाँ गवाही समाप्त हो गई।

श्री गांधीने कहा कि अदालतने जो बात कही है उससे मुझे कुछ आश्चर्य हुआ है। महानुभावने कहा है कि कुछ भारतीय और चीनी आपसे मिले हैं और उन्होंने कहा है कि वे पंजीयन करानेसे डरते हैं। सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे अदालतके सामने दो सैनिक खड़े हैं, जिनके किसीसे जरा भी भयभीत होनेकी सम्भावना नहीं हैं। और वास्तवमें आखिरी गवाहने तो कहा भी है कि उसके भयभीत होनेकी सम्भावना नहीं है।

मजिस्ट्रेट: आप भली-भाँति जानते हैं, श्री गांधी, कि मैदानी जातियों और पहाड़ी जातियोंमें बहुत बड़ा अन्तर है। यह आदमी पहाड़ी जातिका है।

श्री गांधीने कहा कि बहुत बड़ा अन्तर जरूर है; परन्तु भयका तो यहाँ कोई प्रश्न ही नहीं है। और यदि भयका कहीं कोई प्रश्न हो तो कानूनकी बाँह देशके छोटेसे-छोटे प्रजाजनकी रक्षा करनेके लिए यथेष्ट लम्बी और शक्तिशाली है।

श्री जॉर्डन: मुझे सन्देह नहीं, वह ऐसी होगी।

श्री गांधीने कहा कि मेरा निश्चित खयाल है कि किसीको पंजीयनका प्रमाणपत्र न लेनेके लिए डराया गया है, यह कहना व्यर्थ है; और, जैसा कि गवाहोंमें से एकने कहा है, अँगूठे या अँगुलियोंके निशानका कोई प्रश्न ही नहीं है। प्रश्न तो ऐसा है जो समाजके मर्मस्थलपर आघात करता है; प्रश्न तो अनिवार्यतः या स्वेच्छया कार्य करनेका है।

श्री जॉर्डनने कहा कि यदि श्री गांधी अदालतके बाहर सभा करना चाहें तो वे कर सकते हैं।

श्री गांधी: अदालतने रास्ता दिखा दिया है; अन्यथा मैं शान्त ही रहता।

श्री जॉर्डन: मैं और कोई बात नहीं होने दूँगा। इसका मुकदमेसे कोई वास्ता नहीं।

श्री गांधी: मैं नहीं चाहता कि जनता अदालतके मनपर यह छाप छोड़े कि यह सारी लड़ाई अँगूठे या अँगुलियोंके निशानोंके बारेमें है। यह सारी लड़ाई स्वाधीनताकी लड़ाई है।

श्री जॉर्डनने कहा कि भारतीय और चीनी दोनों ही मेरे पास आये थे और उन्होंने शिकायत की है कि कुछ लोगोंने उन्हें धमकाया और डराया है कि वे पंजीयन कराने न जायें, और यही कारण है कि उन्होंने पंजीयन नहीं कराया।

आज्ञा जारी की गई कि अभियुक्त १४ दिनके अन्दर देश छोड़ दे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-१-१९०८

२. रामसुन्दर "पण्डित"

रामसुन्दर अब "पण्डित" नहीं रहा; इसलिए उसके नामका वह हिस्सा हमने छोटे अक्षरोंमें न्यारा छापा है। उसने "पण्डित" आस्पद ग्रहण कर लिया था। लेकिन अब पण्डिताई चली जानेपर उसे "पण्डित" नहीं कह सकते।

हमने रामसुन्दरको इस पत्रमें बड़ा सम्मान दिया। उसके लिए हमने आदरभरे शब्दोंका प्रयोग किया, और कानूनके प्रति उसके व्यवहारको अनुकरणीय बताया[1], इसके लिए हम अपने पाठकोंसे क्षमा चाहते हैं। वह हमारी गलतफहमी थी। सही बातकी हमें खबर नहीं थी। इसलिए हम निर्दोष हैं। हमारे यहाँ लोकोक्ति है कि मनुष्यके पेटकी बात और ढोलकी पोलका किसीको पता नहीं चलता। उसी प्रकार हम भी रामसुन्दरके पेटकी बात नहीं जान पाये। ऊपरसे उसने जो जाहिर किया उसे सही मानकर हमने उसे बहादुर समझा। हम औरोंके सम्बन्धमें आगे भी ऐसा ही करेंगे। संसार इसी प्रकार चल सकता है। यदि हम प्रत्येक सच्चे जान पड़नेवाले मनुष्यपर सन्देह करके उसका बहिष्कार कर दें तो यह ईश्वरीय ज्ञानका दावा करने जैसा होगा। मनुष्यके हृदयको जाननेवाला तो केवल ईश्वर ही है। हम तो मनुष्यको उसके कामसे ही पहचान सकते हैं। रामसुन्दरका जो काम अच्छा लगा उसे लोगोंके सामने रखना हमारा कर्त्तव्य था। इसी प्रकार अब जब कि उस ठगका भण्डा फूट गया है तब हमें उसकी ठगीको भी पाठकोंके सामने रखते हुए संकोच नहीं होता। हमसे भ्रमवश जो दोष हुआ उसका हम इस तरह निराकरण कर रहे हैं। कौमके लेखे आज रामसुन्दर मर चुका है। उसका जीवन मिथ्या हो गया है। उसने स्वयं अपने हाथसे विषका प्याला पिया है। हम कौमी मौतसे शारीरिक मौतको बेहतर समझते हैं। वह ऐन मौकेपर जर्मिस्टनसे नेटालकी ट्रेनमें सवार होकर चल दिया। यदि इससे पहले वह किसी दुर्घटनामें मर गया होता तो अमर हो जाता। लेकिन उसका भाग्य खराब था। वह जेलके डरसे हीन और कायर बनकर जर्मिस्टनकी अपनी जमातको, कौमको, स्वयं अपनेको और अपने कुटुम्बको धोखा देकर भाग गया है। हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि अब भी वह उसे सन्मति दे।

हमने कटु शब्दोंका प्रयोग किया है, किन्तु हमारी भावना दयापूर्ण है। हमारी समझमें उसका दोष छिपाना निर्दयता होगी। यदि उसके गुण न गाये होते तो उसके दोषका ऐलान करनेकी आवश्यकता न पड़ती।

हमें अब भी रामसुन्दरके चित्रका चिन्तन करना है। उस चित्रको ध्यानमें रखकर सदैव प्रार्थना करना है कि "हे खुदा (ईश्वर), रामसुन्दरकी जैसी दुर्दशासे हमें बचाना। हमें झूठी हिम्मत न देना और अन्ततक सम्हालना।" किसीके मनमें जब-कभी क्षुद्र विचार आयें तब उसे रामसुन्दरका नाम लेकर चौंकना चाहिए और अपने-आपको धिक्कारकर ईश्वरका स्मरण करना चाहिए। बच्चोंको जैसे हम "भूत" कहकर डराते हैं वैसे रामसुन्दर-रूपी भूतका खयाल करके हमें सावधान रहना है कि वह भूत हमसे न चिपटे।

१. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ३६३, ३७७ और ४१२।

भारतीयोंको अभी बहुत लड़ना है। लड़ाई अभी आरम्भ ही हुई है। इसी अरसेमें रामसुन्दरका नाटक हम देख सके। इसके लिए हम उसका उपकार मानें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–१–१९०८

३. अब रंग जमा

ट्रान्सवालमें लड़ाई अब छिड़ चुकी है। अबतक तो दोनों पक्ष शस्त्रास्त्रोंका संग्रह करनेमें जुटे हुए थे। अब रणभेरी बज उठी है और भारतीयोंका आवाहन करती है कि "उठो, उठकर फिर झपकी मत लेना।" यह संग्राम ऐसा है कि देवता इसे देखने आयें। हम मानते हैं कि भारतीयोंकी लड़ाई खुदाई है और सरकारकी राक्षसी। रामचन्द्रजीके पक्षमें सत्य था, इसलिए वे वानर-सेनाके सहारे दशशीश रावणको परास्त कर आये थे। भारतीय सच्चे हैं। इसलिए वे अनगिनत सिरोंवाली सरकारको हरायेंगे, ऐसा हमारा पण है। वह इस शर्तपर कि भारतीय सच्चे, शूरवीर और एक बने रहें।

"हाय, अब क्या होगा, बड़ी सरकारने तो प्रवासी कानून पास कर दिया!" ऐसा केवल कायर लोग ही कहेंगे। हम लोग बड़ी सरकारसे आशा रखते थे। अब भी रखते हैं। परन्तु हमारी याचना तो केवल ईश्वरसे है। जब वह हमें तज देगा तब देखा जायेगा। लेकिन ईश्वरने किसीको तज दिया हो ऐसा उदाहरण इतिहासमें नहीं है; इसलिए इस प्रकारका विचार करनेका अवसर हमारे सामने नहीं आयेगा।

प्रवासी विधेयक पास हो गया, इससे क्या हुआ? जेलके साथ-साथ देश-निकाला जुड़ गया। यह तो सगे चचेरे भाइयोंकी-सी बात हो गई। जो लगातार जेलमें रहनेको तैयार हैं वे क्या देश-निकाला नहीं झेलेंगे? जेलमें तो चार-दीवारीके बीच पिसते रहना पड़ता है, मानो पिंजड़ेमें सिंह आ पड़ा हो। देश-निकाला होनेपर तो वह वनके सिंहकी तरह अपनी दहाड़से सारे अरण्यको गुंजा देगा। खुदा कोई ट्रान्सवालके कैदखानेमें ही बसा हुआ नहीं है। वह तो हमारे साथ है। फिर डरकी क्या बात है? हम जेल [जाने] की बातके अभ्यस्त हो चुके हैं, इसलिए हमने उसका डर कुछ-कुछ छोड़ दिया है। देश-निकालेकी बातके अभ्यस्त हो जानेपर वह तो और भी प्रिय लगेगा।

कोई-कोई कहते हैं कि सरकार देश-निकाला पानेवाले आसामीसे ही देश-निकालेका खर्च भी वसूल करेगी। यह नासमझीका तर्क है। जेल जानेपर पैसोंकी बरबादी भुगतनी पड़ेगी, तो देश-निकाला होनेपर क्यों न भुगतें? इस प्रकारके नुकसानके बीच तो हम बैठे ही हैं। हम ऐसा नहीं कर सकते कि एक पैर दहीमें और दूसरा दूधमें[१] रखें। मान और धन, धर्म और शरीर, सुख और दुःख, ये परस्पर विरोधी हैं। आज भारतीय कौमने महान पुरुषार्थ करने पर कमर कस ली है। तब वह पैसोंकी गिनती करने नहीं बैठेगी, ऐसी हमारी धारणा है।

प्रवासी विधेयकके पास होनेका समाचार मिलते ही जोहानिसबर्ग, प्रिटोरिया और पीटर्स-बर्गके भारतीय गिरफ्तार कर लिये गये। यह काम शुभ हुआ। गिरफ्तार किये गये लोगोंको चुनचुनकर पकड़ा गया है और उनमें अधिकतर निडर हैं तथा उन्हें कानूनके विरुद्ध लड़ाईका

१. दोनों हाथ लड्डू।

काफी अनुभव है। उन सबको हमारी बधाई है। वे अन्ततक जूझते रहें ऐसी उनसे हमारी विनय है। उनके समक्ष हम रामसुन्दरका चित्र रखते हैं।[1] अच्छा है, वे जेल जायें, उन्हें 'देश-निकाला' दिया जाये और इन पंक्तियोंके छपने तक वे कारावासमें विराजमान भी हो चुकें।

पीछे रह जानेवाले क्या करते हैं, इसके सन्तोषप्रद उत्तरपर सब समाया हुआ है। जनरल स्मट्सने जो यह कदम उठाया है, इसके लिए उन्हें धन्यवाद देना चाहिए। अब हमारी सच्ची कसौटी होनेवाली है। अगर लोगोंको अपनी शपथ और प्रतिष्ठा प्यारी है तो एक भी भारतीय खूनी कानून नहीं मानेगा; यदि माना तो इसके बराबर दूसरा दुःख नहीं है। इसलिए दूसरा चाहे जो दुःख सहन करना पड़े, किन्तु खूनी कानून हमसे "बर्दाश्त न होगा"।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–१–१९०८

४. पत्र :[2] राजस्व-आदाताको

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ४, १९०८][3]

[श्री एफ० सी० बिगर
राजस्व-आदाता (रिसीवर ऑफ़ रेवेन्यूज़)
जोहानिसबर्ग]

महोदय,

मेरे संघने 'गज़ट' में इस आशयका नोटिस देखा है कि यदि ब्रिटिश भारतीय १९०७ के एशियाई पंजीयन कानून संशोधन अधिनियम २ के अन्तर्गत पंजीयन-प्रमाणपत्र प्रस्तुत न कर सकेंगे और कुछ अन्य विधि-विधानोंको पूरा न करेंगे तो उनको व्यापारिक परवाने नहीं दिये जायेंगे।

मेरे संघको यह भी मालूम हुआ है कि कई ब्रिटिश भारतीयोंने परवानोंके लिए प्रार्थना-पत्र दिये हैं और विधिवत् परवाना शुल्क भी दे दिया है; किन्तु उनको उक्त नोटिसके कारण परवाने नहीं दिये गये हैं।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. अनुमानतः इसका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था।

३. इस पत्रकी तारीखका उल्लेख राजस्व-आदाताने अपने उत्तरमें किया था। उसने लिखा था: "मैं उत्तरमें आपको यह बताना चाहता हूँ कि वे भारतीय व्यापारी, जो बताये गये तरीकेसे कानूनको तोड़ना चाहते हैं, १९०५ के राजस्व-परवाना अध्यादेशकी धाराओंके अन्तर्गत दण्डनीय होंगे। इसके अनुसार जो लोग परवानेके बिना कोई व्यापार या व्यवसाय करते हैं उनपर भारी जुर्माने किये जाते हैं, फिर वे किसी दूसरे कानूनके विधानोंको भंग करते हों या न करते हों।

"१९०८ के परवानोंको नया करनेके सम्बन्धमें पत्रोंमें प्रकाशित नोटिस क़ानूनी किस्मका नहीं है; बल्कि वह केवल ऐसी सूचना है जो व्यापारी-वर्गकी जानकारी और रहनुमाईके लिए पत्रोंमें परामर्शके रूपमें दी गई है। इस सम्बन्धित प्रश्नपर उसको प्रकाशित करनेका या इसको वापस लेनेका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

"मुझे यह दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है, और यह बात भली-भाँति समझ ली गई है, कि मैंने एशियाई व्यापारियोंको पंजीयन-प्रमाण पत्र प्रस्तुत किये बिना परवाने न देनेकी कार्रवाई एशियाई कानून संशोधन अधिनियम, १९०७ की धारा १३ के अन्तगत की है।"

इसलिए मैं अपने संघकी ओरसे आपकी सेवामें औपचारिक रूपसे निवेदन करता हूँ कि चूँकि ब्रिटिश भारतीयोंके बहुत बड़े अंशने एशियाई कानून संशोधन अधिनियमको आन्तरिक प्रेरणाके कारण माननेसे इनकार किया है और चूँकि उनके लिए अपना व्यापार करने अथवा फेरी लगानेके अतिरिक्त अपने जीविकोपार्जनका कोई दूसरा साधन सम्भव नहीं है, उन्हें बिना सही परवानोंके अनिच्छापूर्वक अपना धंधा करते रहनेपर विवश होना पड़ा है। मैं यह भी कह दूँ कि यदि परवानोंसे सम्बन्धित नोटिस वापस ले लिया जाये और आप परवाने जारी करनेकी कृपा करें तो आपकी ओरसे सूचना प्रकाशित होनेपर परवाना-शुल्क तत्काल जमा कर दिया जायेगा। और ब्रिटिश भारतीय व्यापारी तथा फेरीवाले परवाने निकलवा लेंगे।

आपका, आदि,
[ईसप मियाँ
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ]

[अंग्रेजीसे]
स्टार, ६-१-१९०८
इंडियन ओपिनियन, ११-१-१९०८

५. 'स्टार' को उत्तर

[जोहानिसबर्ग]

[सम्पादक
'स्टार'
जोहानिसबर्ग]

महोदय,

आपने एशियाई प्रश्नका विवेचन करते हुए कहा है:

> **आज जब कि मामला इतना बढ़ चुका है, हमारे विचारमें सरकारके लिए अपनी प्रतिष्ठा खोये बिना इस आन्दोलनके आगे झुकना सम्भव नहीं है, क्योंकि इसका प्रभाव उन वतनी जातियोंपर पड़नेकी आशंका है जो स्वयं भेद-मूलक कानूनके अधीन अपना जीवन बिता रही हैं।**

उपर्युक्त बातसे क्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि बात इस हद तक न पहुँच गई होती जितनी पहुँच चुकी है, तो आपकी सम्मतिमें एशियाई मामला इतना मजबूत था कि उसपर पुनर्विचार करना ही पड़ता। फिर भी यह निष्कर्ष औचित्यपूर्ण हो या न हो, मैं आपकी अनुमतिसे इस प्रश्नके धार्मिक पहलूपर ही विचार करूँगा।

मैं आपको इस बातकी याद दिलाना चाहता हूँ कि प्रथम सार्वजनिक सभाके[1] अवसरपर जो पुराने एम्पायर नाटक घरमें सितम्बर १९०६ में हुई थी, ब्रिटिश भारतीयोंने बहुत सोच-

१. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४३०-३४।

विचारके पश्चात् यह गम्भीर संकल्प किया था कि वे एशियाई कानूनके आगे सिर न झुकायेंगे। आज वह संकल्प काफी विख्यात हो चुका है। इस समस्याका स्वरूप धार्मिक था। मजहबकी बिनापर तुर्की मुसलमानोंके विरुद्ध निर्योग्यता तब भी विधेयकमें मौजूद थी और वह हमेशा शिकायतका आधार बतलाई जाती रही है।[१] मेरी विनम्र सम्मतिमें गम्भीरताके साथ किया गया संकल्प स्वयं ही उस कानूनके विरुद्ध पर्याप्त धार्मिक आपत्ति है। और जो राज्य प्रजाके द्वारा उठाई गई इस प्रकारकी आपत्तिकी अवहेलना करता है, वह अन्तरात्मासे प्रकट की गई आपत्तिकी कद्र नहीं कर पाता है और इसलिए अपने साधारण कर्त्तव्यका पालन करनेमें असफल होता है।

अब मैं जनताके सामने सामान्य धार्मिक आपत्तिकी व्याख्या करनेका प्रयत्न करूँगा। 'क' और 'ख' एक ही राज्यके निवासी हैं। 'ख' के विरुद्ध जालसाजीका आरोप है। यद्यपि 'क' और 'ख' दोनोंने आरोपके सम्बन्धमें सार्वजनिक जाँचकी माँग की है और जालसाजी कभी सिद्ध नहीं हुई है, तिसपर भी 'क' और उसके ८ वर्षसे ऊपरकी उम्रके बच्चों तथा 'ख'को आदेश दिया जाता है कि वे 'ख' की कथित धोखेबाजीके परिणाम-स्वरूप दण्ड भोगें। यदि 'क' उसको स्वीकार किये लेता है और उसी तरह 'ख' भी, तो 'क' और 'ख' दोनों अपने-अपने मजहबके प्रति हिंसा करते हैं, क्योंकि व्यक्तिगत असुविधा अथवा हानिके भयसे दोनोंमें से प्रत्येक अपने पौरुष एवं अन्तरात्माको त्याग देनेके कारण अपने धर्मके प्रति अनाचार करता है। यहाँ 'क' और 'ख' की जो स्थिति है वही इस उपनिवेशमें प्रत्येक एशियाईकी है। चाहे अमुक मजहबके विरुद्ध कोई भेदभाव, पक्षपात अथवा बन्धनकारी शपथ न भी हो तो भी प्रधान धार्मिक आपत्ति यही होगी।

यदि यह सच हो कि एशियाई भावना बहुत ज्यादा उत्तेजित हो गई है तो उनकी भावनाकी कद्र करनेसे वतनियोंके दिमागपर घातक प्रभाव पड़नेके बजाय उनमें विश्वास उत्पन्न होगा, क्योंकि उनसे कहा जायेगा कि यदि एक प्रतिनिधित्व-विहीन वर्गकी भावनाओंका आदर किया जाता है तो उसी स्थितिवाले दूसरे वर्गकी भावनाका भी आदर किया जानेकी सम्भावना है। रुतबा एक ऊँचा घोड़ा है जो कुछ सम्भावित परिस्थितियोंमें अपने सवारको, यदि वह सावधानीसे सवारी न कर रहा हो तो, नीचे गिरा सकता है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

स्टार, ४–१–१९०८

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ १९५, २२४।

६. भेंट : 'स्टार' को[1]

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ६, १९०८]

आज प्रातः सामान्यतः वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें और मुख्यतः प्रिटोरियामें उपनिवेश-सचिव द्वारा दिये गये वक्तव्यके[2] सम्बन्धमें 'स्टार' के प्रतिनिधिके भेंट करनेपर श्री गांधीने कहा :

जनरल स्मट्स जब सब एशियाइयोंको कुली कहते हैं तब कदाचित् उनको इस बातका कोई खयाल नहीं होता कि वे स्थानीय सरकार और भारतीय समाज दोनोंकी सेवा करनेके इच्छुक मेरे सरीखे भारतीयोंकी स्थिति कितनी विषम बना देते हैं। वे ऐसी भाषाका प्रयोग करके खाईको पाटनेकी अपेक्षा केवल अधिक चौड़ी ही करते हैं।

१८८५ का कानून ३ और शान्ति-रक्षा अध्यादेश

जनरल स्मट्सने प्रत्यक्षतः १८८५ के कानून ३ और शान्ति-रक्षा अध्यादेशको मिला दिया है। १८८५ के कानून ३ से एशियाइयोंका आव्रजन कभी नहीं रुका; उससे भारतीय व्यापारियोंको केवल ३ पौंडका दण्ड देना पड़ा। यदि मैं थोड़ा इतिहास बताऊँ तो आरम्भमें भारतीय व्यापारियों-पर यह कर प्रतिबन्धक रूपमें अर्थात् २५ पौंडके हिसाबसे लगाया जानेवाला था। लॉर्ड डर्बीने इसपर आपत्ति की और संशोधक कानूनमें यह ३ पौंड कर दिया गया। इससे प्रकट होता है कि स्वर्गीय श्री क्रूगरकी सरकारका उद्देश्य एशियाइयोंके प्रवासको रोकना कदापि नहीं था। वस्तुतः, मुझे अच्छी तरह याद है, स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरने भारतीय व्यापारियोंके एक शिष्टमण्डलसे कहा था कि जबतक भारतीय उनके किसानोंको अपनी उपज बेचनेमें सहायता देते हैं तबतक उन्हें देशमें भारतीयोंके आनेपर कोई आपत्ति नहीं है; और वे भारतीयोंको देशमें समानताके आधारपर नहीं रहने देना चाहते।

प्रतिबन्ध लगानेका पहला प्रयत्न

प्रवासपर प्रतिबन्धकी बात केवल तभी सोची गई जब यहाँ ब्रिटिश राज्य स्थापित हो गया और शान्ति-रक्षा अध्यादेश, जो केवल राजद्रोहियों और अपराधियोंका मुकाबला करनेके लिए बनाया गया था, भारतीयोंका प्रवास रोकनेके लिए चतुरतापूर्वक और प्रभावकारी रूपसे काममें लाया गया। इस अन्तरको ध्यानमें रखना आवश्यक है, क्योंकि एशियाई पंजीयन अधिनियमको १८८५ के कानून ३ का संशोधक अनुचित रूपसे कहा जाता है। जहाँतक ब्रिटिश उपनिवेशोंका और मुख्यतः ट्रान्सवालका सम्बन्ध है, उससे एक बिलकुल नई नीतिका आरम्भ होता है। पंजीयन अधिनियमके लागू होनेसे पहले शिनाख्तका कोई प्रश्न ही नहीं था; उसका विधान केवल शान्ति-रक्षा अध्यादेशमें था। यदि शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अन्तर्गत शिनाख्त अपूर्ण थी तो कतई कोई नया कानून बनाये बिना एक अधिक पूर्ण प्रणाली खोजी जा सकती थी, जैसा कप्तान हैमिल्टन फाउलने[3] किया था; किन्तु जब अधिक विधिवत् शिनाख्तकी

१. यह और इसके बादका लेख दोनों एक ही भेंटकी रिपोर्ट हैं।
२. देखिए "जनरल स्मट्सका भाषण", पृष्ठ २०–२१।
३. परवाना अधिकारी।

बातचीत चली तब यह सुझाव दिया गया कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशमें संशोधन किया जाये और वास्तवमें श्री डंकनने[1] लॉर्ड एलगिनको एक विधेयकका मसविदा भेजा भी था। यह विधेयक पिछली एशियाई नीली पुस्तिकामें छपा है। उसपर किसीने बिलकुल आपत्ति नहीं की थी।

पंजीयन अधिनियमका आरम्भ

उसके बाद ऐसा प्रतीत होता है कि श्री लॉयनेल कर्टिस[2] सामने आ गये। उन्होंने शान्तिरक्षा अध्यादेशमें संशोधन नामंजूर कर दिया और वर्तमान पंजीयन विधेयक बनाया। यह एशियाइयोंके सम्बन्धमें है और उनको एक विशेष वर्ग मानकर चलता है। भारतीयोंको इतनी अधिक चिढ़ इसीसे हुई है। यह पूर्णतः सत्य है कि पहले कुछ वर्गीय कानून बने हैं; किन्तु ऐसे कड़े कभी नहीं बने।

एशियाइयोंकी कथित बाढ़

उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीयोंकी बाढ़के सम्बन्धमें जहाँतक संगठित गैर कानूनी प्रवेशकी बात है, हमने उसका सदा ही खण्डन किया है। एशियाई दफ्तरोंके काम-काजकी थोड़ी-सी जानकारीसे यह प्रकट हो जाना चाहिए कि कप्तान फाउल द्वारा मंजूर किये गये परवाने जारी होनेके बाद जाली परवाने बनाना प्रायः असम्भव था। वास्तवमें जो बात होती थी वह केवल इतनी थी कि कभी-कभी परवाने गलत लोगोंको मिल जाते थे, क्योंकि वे जोहानिसबर्गमें एशियाई अधिकारियोंको रिश्वत देनेमें सफल हो जाते थे। जब ब्रिटिश भारतीय संघने इस भ्रष्टाचारकी ओर सर आर्थर लॉलीका[3] ध्यान बारबार आकर्षित किया तब वे अधिकारी हटाये गये। जब मैं गलत लोगोंकी बात कहता हूँ तो मेरा आशय यह नहीं होता कि वे इन परवानोंके अधिकारी न थे; बल्कि यह होता है कि इन लोगोंको परवाने पहले लेनेका अधिकार न था। मैं कई पुराने शरणार्थियोंको जानता हूँ, जिनको अपने परवाने रुपये देनेपर ही मिल सके थे। फिर भी ये सब कागज वैध थे और उन लोगोंके पास थे जिनका उनमें उल्लेख था। इन अधिकारियोंके गुमाश्ते बहुत बड़ी-बड़ी रकमोंका वारान्यारा करते थे।

खण्डन

मैं इस बातका खण्डन जोर देकर करता हूँ कि 'हजारों भारतीय' जिन्हें इस देशमें आनेका कोई अधिकार न था, यहाँ अनधिकृत रूपसे आ गये हैं।

प्रतिनिधिने श्री गांधीका ध्यान श्री स्मट्सके इस वक्तव्यकी ओर आकर्षित किया कि ५,००० भारतीय पंजीयन करानेके बजाय देशसे चले गये। श्री गांधीने उत्तर दिया कि उनमें से बहुतसे लोगोंको इस देशमें रहनेका पूरा अधिकार था –– उनके उस अधिकारपर कोई सन्देह नहीं किया जा सकता था –– किन्तु उनमें इस मुसीबतका सामना करनेकी शक्ति न थी।

१. पैट्रिक डंकन, ट्रान्सवाल सरकारके भूतपूर्व उपनिवेश सचिव; विधान परिषदके सदस्य।

२. जोहनिसबर्गके टाउन क्लार्क, १९०२–३। ट्रान्सवालमें नागरिक मामलोंके सहायक उपनिवेश-सचिव, १९०३–६। बादमें नई ट्रान्सवाल विधान परिषद्के मनोनीत सदस्य। घनिष्ठतर ऐक्य संघ सम्बन्धी आन्दोलनके एक पेशवा। "वैज्ञानिक तरीका" अपनानेके प्रति उन्हें बहुत उत्साह था और "भारतमें द्वैध शासनके प्रवर्तकके रूपमें उन्होंने नाम कमाया था" देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास**, अध्याय १०। वे एशियाई कानून संशोधन अध्यादेशके एकमात्र निर्माता थे। यह अध्यादेश इसलिए निकाला गया था कि उनकी दृष्टिमें गोरों और भारतीयोंके बीच समानताका होना असम्भव था, देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ४८२। **प्रोग्रेसिव वीकलीने** उन्हें "कठोर और दृढ़ प्रगतिवादियोंकी एक उदीयमान आशा" कहा था।

३. एक समय ट्रान्सवालके लेफ्टिनेंट गवर्नर।

पाँच वर्षमें १,५०० लोगोंपर मुकदमे चलाये गये हैं; इससे प्रकट होता है कि भारतीयोंका तर्क ठीक है; अर्थात् जब कभी प्रयत्न किया गया है, शान्ति-रक्षा अध्यादेश उसका सामना करनेके लिए पर्याप्त सिद्ध हुआ है। यह भी स्मरण रखा जाना चाहिए कि इन मुकदमोंमें से ज्यादातर सीमान्तपर उन लोगोंसे सम्बन्धित थे जो प्रवेश करनेका प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु असफल हुए थे। यह चर्चा करना शायद अच्छा हो कि १५ नवम्बर १९०२ और २८ फरवरी १९०३ के बीच ५६३ लोगोंको सजायें दी गईं। लोगोंको यह भी याद होना चाहिए कि युद्ध-समाप्तिकी घोषणाके तुरन्त बाद यद्यपि शान्ति-रक्षा अध्यादेश मौजूद था, फिर भी लोग स्वतन्त्रतापूर्वक आये। ऐसे ही भारतीय भी आये, और उनको बिलकुल तंग नहीं किया गया। जब शरणार्थी बड़ी संख्यामें आने लगे तब ये निर्देश भेजे गये कि किसी भी भारतीयको परवानेके बिना न आने दिया जाये। उन दिनोंमें जो मुकदमे चलाये गये उनका कारण यही था। यह बिलकुल प्रत्यक्ष है कि बेचारे भारतीयोंने कोई धोखाधड़ी नहीं की; बल्कि वे केवल अज्ञानमें थे। कुछ भी हो, लड़ाईसे पहले यहाँ जो भारतीय रहते थे उनकी संख्या १५,००० थी। शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अन्तर्गत ब्रिटिश भारतीयोंको १३,००० परवाने दिये गये हैं। इसलिए हम अभी उस संख्या तक नहीं पहुँचे हैं जो लड़ाईसे पूर्व देशमें थी।

अँगुलियोंके निशान

यह पूछा जानेपर कि क्या उन्हें अँगुलियोंके निशानोंके बारेमें कुछ और कहना है, श्री गांधीने कहा:

जनरल स्मट्सने इस प्रणालीका उल्लेख करते समय न्याय नहीं किया है। वे जानते थे कि अँगुलियोंकी छाप मुख्य आपत्ति कभी नहीं रही है। सब अँगुलियोंकी छाप निःसन्देह झगड़ेका कारण होगी, क्योंकि हेनरीकी पुस्तकके अनुसार, जिसपर जनरल स्मट्स निर्भर रहे हैं, अँगुलियोंकी छाप केवल उन्हीं अपराधियोंसे लेनी आवश्यक होती है जो अपनी शिनाख्त लगातार छिपाते हैं और इसलिए जिनका वर्गीकरण जरूरी होता है। पुस्तकमें स्पष्ट बताया गया है कि शिनाख्तके लिए अँगूठोंके निशान बिलकुल काफी होते हैं। यदि कोई भारतीय अपनी शिनाख्त छिपानेका साहस करे तो वह तत्काल निषिद्ध प्रवासी हो जायेगा, क्योंकि उसका नाम प्रवासियोंकी सूचीमें न होगा। प्रवासीका लाभ इसीमें है कि वह ऐसा सिद्ध करनेकी पूरी सुविधा दे कि वही अधिकारी व्यक्ति है।

मुख्य आपत्ति

अधिनियमके विरुद्ध मुख्य आपत्तियाँ ये हैं कि यह एक ऐसे आरोपके आधारपर बनाया गया है जो सिद्ध नहीं हुआ है। यह एक अपमानजनक प्रकारके वर्गीय कानूनके निर्माणका प्रयत्न है और भारतीय समाजने अपने-आपको, सही या गलत, बहुत सोच-विचारके बाद इसके आगे न झुकनेकी गम्भीर शपथसे बाँध लिया है।[1] इन सब बातोंसे स्पष्ट रूपसे प्रकट हो जाता है कि सरकार और पंजीयन अधिनियमसे प्रभावित जातिके बीच पूरी गलतफहमी है। हम अपने विरुद्ध लगाये गये आरोपोंका खण्डन करते हैं। हमने बहुत बार सरकारसे नम्रतापूर्वक अदालती जाँच[2] करवानेकी प्रार्थना की है। निश्चय ही अब भी इन आरोपोंकी सत्यता सिद्ध

१. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४३४ पर सितम्बर १९०६ की आम सभामें पास प्रस्ताव संख्या ४।
२. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ १, ३, ६, ५७, १२७ आदि।

करनेका, यदि वह सिद्ध की जा सकती है तो, समय है। उदाहरणार्थ, निम्न मुद्दोंके सम्बन्धमें गवाही लेनेके लिए उच्च न्यायालयके एक न्यायाधीशकी या जोहानिसबर्गके मुख्य न्यायाधीशकी नियुक्ति क्यों न कर दी जाये: (१) क्या चोरीसे प्रवेशका कोई संगठित प्रयत्न किया गया है? (२) क्या शान्ति-रक्षा अध्यादेश धोखेबाजीके प्रयत्नका सामना करनेके लिए पर्याप्त है? (३) क्या पूरी शिनाख्तके लिए दस अँगुलियोंकी छाप लेनी आवश्यक है? (४) क्या प्रवासी-प्रतिबंधक अधिनियममें थोड़ासा संशोधन करके पूरी शिनाख्त कराना सम्भव नहीं है?

चौथे मुद्देके बारेमें उन्होंने बताया कि हम शान्ति-रक्षा अध्यादेशको स्थायी रूपसे विधान संहितामें नहीं रख सकते; किन्तु प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियममें सुगमतासे ऐसा संशोधन किया जा सकता है, जिससे सरकार सब एशियाइयोंको, जो अन्यथा निषिद्ध प्रवासी हो जायेंगे, अधिवास प्रमाणपत्र दे सके। ऐसे संशोधनसे अनिवार्यताका डंक निकल जायेगा और हम अनावश्यक वर्गीय कानूनसे भी बच जायेंगे एवं वह निश्चय ही एक रक्षात्मक कानून माना जायेगा।

डराना-धमकाना

श्री गांधीने कहा:

डराने-धमकानेके सम्बन्धमें मैं केवल यही कह सकता हूँ कि किसी भी प्रकारकी शारीरिक जोर-जबर्दस्ती नहीं की गई है; हाँ, बिरादरीसे अलगाव और बहिष्कार अवश्य किया गया है। किन्तु जबतक भारतीय अनाक्रामक प्रतिरोधी रहते हैं तबतक मुझे ऐसे मार्गसे बचनेका कोई उपाय दिखाई नहीं देता। अपने व्यक्तिगत अनुभवके आधारपर मैं यह कहता हूँ कि जिन भारतीयोंने पंजीयन करा लिया है, उन्होंने भी इसलिए कराया है कि वे अपनी उपनिवेशमें रहनेकी अभिलाषाको दबा नहीं सके हैं; और इसलिए नहीं कराया है कि वे अधिनियमको पसन्द करते हैं। जिन लोगोंने सबसे पहले पंजीयन कराया उनमें से एकने 'इंडियन ओपिनियन' को एक लम्बा पत्र लिखा है, जिसमें इस बातपर खेद प्रकट किया है कि उसे पंजीयन कराना पड़ा। उसने सामान्य समाजको संघर्ष जारी रखनेके लिए प्रोत्साहित किया है और संघर्षकी सफलताकी कामना की है। मेरे पास ऐसे बहुत-से पत्र हैं जो मुझे उन लोगोंने, जिन्होंने पंजीयन करा लिया है, व्यक्तिगत रूपसे लिखे हैं। और बहिष्कारमें क्या हमने बोअरोंका ही थोड़ा-बहुत अनुकरण नहीं किया? मैं नहीं समझता कि हम उस हदतक गये हैं जिस हदतक नेशनल स्काउटोंके सम्बन्धमें बोअर गये थे।

जनरल स्मट्सका वक्तव्य

श्री गांधीने आगे कहा:

नेताओं द्वारा समाजको धोखा दिया जानेके सम्बन्धमें, मुझे खेद है कि जनरल स्मट्सने ऐसी बात कही है। मैं किसी खण्डनके भयके बिना कह सकता हूँ कि यह कानून लोगोंके बीच अपने सही रूपमें और व्यापक तौरपर वितरित किया गया है और उसका अनुवाद स्वतः एक अत्यन्त शक्तिशाली तर्क सिद्ध हुआ है। नेताओंने इस कानूनके सम्बन्धमें जो बात सच्ची समझी है, उसको ब्रिटिश भारतीयोंके सम्मुख रखनेका पूरा प्रयत्न किया है। यदि लोगोंसे शाही संरक्षणपर भरोसा रखनेका अनुरोध करके हमने उन्हें भ्रमित किया है तो मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ; किन्तु मुझे भय है कि मैं अपने देशवासियोंसे उस संरक्षणपर सदा भरोसा रखनेके लिए तबतक कहूँगा जबतक लॉर्ड एलगिन व्यवहारतः यह सिद्ध न कर दें कि

हमारे मुट्ठी-भर ब्रिटिश भारतीय सम्राट्के नामपर किये गये अपमानके विरुद्ध संरक्षणके लिए चिल्लायेंगे तो वे असहाय छोड़ दिये जायेंगे और उनकी रक्षाके लिए एक अँगुली भी न उठाई जायेगी। यह अन्ध-विश्वास हो सकता है; किन्तु मैं उसे कायम रखना चाहता हूँ। मेरा विचार — और इस वक्तव्यको अपने देशवासियोंके सम्मुख रखनेमें भी मैंने इसके साथ एक दूसरा वक्तव्य सदा जोड़ा है — यह है कि हमें अन्तिम विश्वास ईश्वरपर होना चाहिए। सम्भव है मैंने अपने देशवासियोंको गलत समझा हो। मैं निश्चय ही इस आन्दोलनके कुछ नेताओंपर मुकदमे चलानेका स्वागत करता हूँ। इससे जनरल स्मट्सको, जनताको और स्वयं मुझे भी दिख जायेगा कि इस कानूनका विरोध आम लोग कर रहे हैं, या वह केवल दो या तीन भारतीयोंके प्रभावके कारण हो रहा है। भारतीय जीतके लिए जीत नहीं चाहते। उनके विरुद्ध चाहे कुछ भी कहा जाये, वे अपने-आपको केवल कानूनपालक कहते हैं। वे केवल यही चाहते हैं कि उनकी गम्भीर सत्परम्पराका सम्मान किया जाये। वे सरकारकी सहायता करना चाहते हैं; और वे अब भी सरकारसे नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहते हैं, बशर्ते कि सरकार उनकी भावनाओंका अधिक खयाल करे।

[अंग्रेजीसे]

स्टार, ६–१–१९०८

७. भेंट : 'ट्रान्सवाल लीडर' को

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ६, १९०८]

'ट्रान्सवाल लीडर' के एक प्रतिनिधिने श्री गांधीसे कल भेंट की और पिछले शनिवारको मेविलमें जनरल स्मट्सने जो भाषण[1] दिया था उसपर उनके विचार जानने चाहे।

श्री गांधी इस विषयपर विचार-विनिमयके लिए राजी हो गये और बोले :

इसे मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि भारतीय जनरल स्मट्स या किसी दूसरे उपनिवेशवासीका विरोध नहीं करना चाहते और न वह सम्मानपूर्वक समझौतेके रास्तेमें रोड़

१. जनवरी ४, १९०८। जनरल स्मट्सने अपने भाषणमें निम्नलिखित बातें कहीं थीं : (१) श्री गांधीने यह दलील दी है कि एशियाई अधिनियम वर्ग-विधान है; "परन्तु यह विषय १८८५ से वर्ग-विधानकी तरह ही लिया गया है और भारतीय उसे मानते रहे हैं"; (२) "अधिनियम उन भारतीयोंको उपनिवेशसे खदेड़ देनेके लिए पास नहीं किया गया है जो यहाँ १०, १५ या २० बरसोंसे रहते चले आये हैं", बल्कि "वह उन एशियाइयोंको, जो युद्धके पहले उपनिवेशमें थे, मान्यता देनेके लिए" तथा "भविष्यमें आव्रजन रोकनेके लिए" पास किया गया है; (३) "देशकी कोई भी संसद अधिनियमको रद करनेकी क्षमता नहीं रखती"; (४) ब्रिटिश सरकार हमारे साथ है और मेरी समझमें यह बात नहीं आती कि वह ट्रान्सवालकी मदद आगे क्यों नहीं करती रहेगी; (५) यदि भारतीय कानूनको अंगीकार नहीं करते तो उन्हें उसके नतीजे भुगतने पड़ेंगे। उन्हें परवाने देनेसे इनकार किया जा सकता है, जेलमें डाला जा सकता है अथवा वे सीमासे बाहर किये जा सकते हैं। भारतीयोंको उनके नेताओंने बरगलाया है और सरकारने उन्हें गिरफ्तार कर लिया है। यदि वे पंजीयनके लिए व्यक्तिगत ढंगसे आनेके बजाय सामूहिक रूपसे आयें तो उन्हें अवसर दिया जायेगा। मगर ये सब बातें मेरी निजी रायें हैं, सरकारकी नहीं।

अटकाना चाहते हैं। भारतीय इसे स्वीकार करते हैं कि वे एक ही शर्तपर इस देशमें रह सकते हैं और वह यह कि वे हिलमिल कर शान्तिपूर्वक काम करें और अपनी मर्यादाओंको भी समझें। मेरी नम्र सम्मतिमें उन्होंने सदा इसी आधारपर काम किया है और भले ही इसके विपरीत चाहे जैसी बात कही जाये, वे अब भी कानूनके पाबन्द ट्रान्सवालवासी बने हुए हैं।

[भेंट करनेवाला :] यह बात उनके वर्तमान अनाक्रामक प्रतिरोधके रुखसे किस प्रकार मेल खाती है?

[गांधीजी :] अनाक्रामक प्रतिरोध, एक ऐसी बातके प्रति जिसे हम, सही हो या गलत, अपमानजनक और धार्मिक दृष्टिसे आपत्तिजनक समझते हैं, हमारा सम्भ्रान्त विरोधभर है। दुर्भाग्यसे जनरल स्मट्सका सारा भाषण यह प्रकट करता है कि उनकी भारतीय भावनाको जानने या सन्तुष्ट करनेकी इच्छा नहीं है। मैं यह बात बिना संकोचके कहता हूँ कि उन्होंने जो तथ्य दिये उनका उन्होंने पूरा अध्ययन नहीं किया है। उदाहरणके लिए, वे देशमें एशियाइयोंके संगठित रूपमें प्रवेश करनेकी बार-बार अस्वीकृत की गई बातकी चर्चा करते हैं। ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे मैं इसे बिलकुल गलत ठहराता हूँ। इसके ये मानी नहीं कि कुछ भारतीयोंने लुके-छिपे इस देशमें प्रवेश नहीं किया है; लेकिन इन सबसे आज भी शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अन्तर्गत प्रभावशाली ढंगसे निबटा जा सकता है। जो लोग इस देशमें बिना परवानेके या झूठे परवानेके आधारपर मौजूद हैं वे कोने-अँतरोंमें छिपे ही बैठे होंगे और एशियाई अधिनियम संशोधन कानूनकी पहुँच उन तक कभी न हो सकेगी। यह सम्भव नहीं कि जिन लोगोंके पास परवाने नहीं हैं या जिनके पास ऐसे कागज-पत्र हैं जो परवाने कदापि नहीं हैं, वे पंजीयन अधिकारीके पास देश छोड़नेका नोटिस लेनेके लिए जायेंगे।

लुक-छिपकर प्रवेश

लुक-छिपकर प्रवेशके आरोपका आधार वह रिपोर्ट है जो गत वर्ष[1] प्रकाशित हुई थी। रिपोर्ट स्वयं अपनी भर्त्सना करती है, और उससे यदि कुछ सिद्ध भी होता है तो विपरीत ही। पाँच वर्षोंके भीतर १५०० लोगोंका चालान किया जाना प्रकट करता है कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशका अमल प्रभावशाली ढंगसे किया गया है। और कप्तान हैमिल्टन फाउलने लॉर्ड मिलनरको जो रिपोर्ट पेश की उसमें वे भी इसी निष्कर्षपर पहुँचे थे। यदि उपनिवेशमें कोई भारतीय बिना परवानेका मिलता है, तो उसे लगभग आनन-फानन निकाला जा सकता है, और यदि वह उपनिवेश नहीं छोड़ता है तो उसे तुरन्त जेल पहुँचा दिया जाता है। लेकिन अधिकतर चालान उन भारतीयोंके हुए जो देशमें प्रवेश करनेकी कोशिश कर रहे थे और जिन्हें सरहदी नगरोंकी कड़ी जाँचके द्वारा सफलतापूर्वक रोक दिया गया था। वे भारतीय धोखा देकर आनेकी कोशिश ही कर रहे थे, सो बात नहीं है। शुरू-शुरूमें उनका विश्वास था, जैसा कि बहुत-से यूरोपीयोंका भी था, कि ब्रिटिश झंडेके नीचे उन्हें प्रवेश करनेमें, या यों कहिए कि, ट्रान्सवालमें पुनः प्रवेश करनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती और उनकी चेष्टा उसीके अनुसार थी। क्योंकि उनमें से अधिकतर भारतीय ऐसे शरणार्थी थे जो तटवर्ती नगरोंमें ठहरे हुए थे और पुनः प्रवेशके अवसरकी ताकमें थे।

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ४२८–२९ और ४३२–३४।

जनरल स्मट्स जाली परवानोंकी बात करते हैं और उसी साँसमें यह भी कहते हैं कि यह बताना कठिन है कि कौन परवाना जाली है, कौन असली। यह बिलकुल बेतुकी बात है। अनुमतिपत्र-अधिकारियोंके पास सदा एक प्रतिपत्र रहता है, जिसपर प्रार्थियोंको दिये गये अनुमतिपत्रकी ही संख्या दर्ज रहती है, जिससे जालका बराबर पता लग सके। मैं जानता हूँ, कुछ महीने हुए, वर्तमान पंजीयकके दफ्तरके एक अधिकारीने ऐसे कागजात लोगोंको दिये थे, जिन्हें वह परवाने कहता था। धोखेमें आकर जिन व्यक्तियोंने उन कागजोंको ले लिया था वे उनका उपयोग नहीं कर पाये। उन्होंने न केवल अपना पैसा गँवाया, बल्कि अपनी प्रतिष्ठा भी खोई। वह अधिकारी अब इस देशमें नहीं है, लेकिन मेरा विश्वास है कि लोगोंको काफी ठग चुकने और यह देखनेके बाद कि उसका भण्डा फूटनेवाला है, वह भाग गया है। बम्बई या डेलागोआ-बेमें या कहीं दूसरी जगह ऐसा दफ्तर कभी नहीं था जहाँ उस व्यापारके चल सकनेकी सम्भावना हो जिसकी जनरल स्मट्सने बात की है। दलाल निस्सन्देह थे; पर भारतमें नहीं, दक्षिण आफ्रिकामें। वे जोहानिसबर्गके एशियाई दफ्तरमें शरणार्थियोंको और जब-तब देशमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवालोंको असली परवाने दिया करते थे।

परवानोंकी जालसाजी

जालसाजी इस तरह होती रही है। उपनिवेश-सचिवके पास जोहानिसबर्गके एशियाई अधिकारी उन प्रार्थियोंके नाम भेजते रहे हैं जिन्हें वे परवानोंके लिए उपयुक्त समझते थे। उपनिवेश-सचिव ऐसे परवानोंके दिये जानेकी मंजूरी देते रहे हैं। लेकिन ये नाम अक्सर नक़ली होते थे, यद्यपि परवाने बाकायदा जारी किये जाते थे और उनपर सही सही अँगूठोंके निशान या हस्ताक्षर भी होते थे। इस प्रकार जो लोग देशमें प्रवेश पानेके अधिकारी होते थे उन्हें प्रवेश पाने अथवा अपने दावोंपर विचार करानेके पूर्व लम्बी रकमें देनी पड़ती थीं। इस बातपर सर आर्थर लालीका ध्यान तीन बार आकर्षित किया गया और उन्होंने अन्तमें मुकदमा चलाया जानेका आदेश दिया। मुकदमा तो असफल रहा, लेकिन सम्बद्ध अधिकारियोंको निकाल दिया गया, क्योंकि उनके विरुद्ध विभागीय स्तरपर इल्जाम सिद्ध हो गया था। लेकिन इन बातोंसे यह मालूम होता है कि शान्ति-रक्षा अध्यादेश कितना कारगर रहा। घुस-पैठके बारेमें १८८५ के कानून ३ की बात उठाना और उसे अपर्याप्त बतलाना मसलेको गलत ढंगसे सामने लाना है। उस कानूनका उद्देश्य एशियाई प्रवासपर अंकुश लगाना कभी नहीं था। वह सिर्फ इतना कहता है: "जो लोग इस गणतंत्रमें व्यापारके या दूसरे उद्देश्यसे बस जाते हैं, वे अपना नाम एक विशेष पंजिकामें दर्ज करानेपर बाध्य होंगे।" इस प्रकार ट्रान्सवालमें व्यापार करनेवालोंसे व्यक्ति-कर वसूल करना इसका उद्देश्य था, क्योंकि भारतीय पंजीयन कराने या कुछ शुल्क देनेके लिए भी मजबूर नहीं थे। भारतीयोंका प्रवास उतना ही मुक्त था जितना यूरोपीयोंका। ऐसे प्रवासको सीमित करनेका प्रश्न शान्तिकी घोषणा होनेके बाद उठा और तब शान्ति-रक्षा अध्यादेशका उपयोग, बिलकुल अनुचित रूपमें, एशियाइयोंके प्रवेशको रोकनेके लिए किया गया। कारण कुछ भी हो, यह सुझाव दिया गया कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशमें संशोधन होना चाहिए। संशोधनका मसविदा 'ट्रान्सवालमें एशियाइयोंसे सम्बन्धित विधान' नामक सरकारी रिपोर्टके पृष्ठ ९ पर मिलता है, जो गत वर्ष[1] प्रकाशित हुई है।

१. यह वास्तवमें जनवरी १९०८ में प्रकाशित हुई। देखिए "नीली पुस्तिका", पृष्ठ १०१-१०२।

संशोधनकी कार्रवाई बिलकुल उचित होती, और ब्रिटिश भारतीयोंको शिकायतका अवसर न होता। उसी समय १८८५ के कानून ३ के संशोधनका एक मसविदा भी सुझाया गया था।

नीति एकाएक बदली

यह बिलकुल नरम ढंगका था, लेकिन एकाएक सब-कुछ बदल गया, और मैं समझता हूँ कि वह श्री लॉयनेल कर्टिस थे, जिन्होंने इस सबके बाद भी इस तरहकी कानूनी-व्यवस्थाके अभिप्राय और रुखको पलट दिया और समाजपर एशियाई संशोधन अध्यादेशका मसविदा लाद दिया। यह अब कानूनके रूपमें मंजूर हो गया है। इसे १८८५ के कानून ३ का संशोधन कहना एक गलत नाम देना है; यह वास्तवमें सारी एशियाई नीतिको परिवर्तित कर देता है। इससे पहले भी एशियाइयोंके सम्बन्धमें वर्गीय कानून बने हैं किन्तु उनके विरुद्ध बहुत सुननेमें नहीं आया; लेकिन एशियाई पंजीयन कानून एक बिलकुल ही नई चीज है, और चूँकि यह एक झूठे इल्जामपर आधारित है, जो ऊपर बताया जा चुका है, इसे भारतीय समाज द्वारा कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता, और विशेषकर इसलिए कि यह समाज एक गम्भीर प्रतिज्ञासे बँधा हुआ है।

मुझे अचरज है कि जनरल स्मट्सने इन बातोंकी बराबर उपेक्षा की है, और ब्रिटिश भारतीयोंसे अपने अन्तःकरणके विरुद्ध आचरण करनेको कहा है। कोई भी उनसे यही अपेक्षा करता कि जबतक उनका मुख्य ध्येय, अर्थात् उपनिवेशके प्रत्येक भारतीय या एशियाई निवासीकी शिनाख्त, सिद्ध होती रहती तबतक एक बहुत शक्तिशाली सरकार तथा बहुसंख्यक यूरोपीयोंके प्रतिनिधिके नाते उनमें इतनी शालीनता और उदारता होनी चाहिए थी कि वे भारतीयोंके मनोभावका आदर करते। इसे वे छः महीने पहले भी कर सकते थे और अब भी यह हो सकता है।

किन्तु श्री गांधी, जनरल स्मट्सका कथन आपके कथनसे बहुत भिन्न है।

बिलकुल ठीक। यह कहा जा सकता है कि मेरा कथन केवल प्रति-कथन है और यह भी कि जनरल स्मट्सने वही कहा होगा जिसे वे सच समझते हैं। मैं नहीं चाहता कि भारतीय समाज जो-कुछ कहता है उसे ज्योंका-त्यों मान लिया जाये। लेकिन मैं यह अवश्य कहता हूँ कि मैंने जो-कुछ ऊपर कहा है वह अदालती और खुली जाँचका पर्याप्त आधार प्रस्तुत करता है। कोई भी न्यायप्रिय उपनिवेशी उसपर एतराज़ नहीं कर सकता। यदि ऐसी जाँचके दौरानमें बड़ी संख्यामें प्रवेशके आरोप और शान्ति-रक्षा अध्यादेशकी खामीके बारेमें कही गई बातें सिद्ध हो जायें तो एशियाई पंजीयन अधिनियमके पक्षमें कुछ कहनेको हो सकेगा। परन्तु यदि ऐसे आयोगका निर्णय भारतीय दावेके पक्षमें हो तो एक प्रबल सरकार, जो ब्रिटिश भारतीयोंके साथ न्यायपूर्ण बर्ताव करनेका दम भरती है, अपनी भूल स्वीकार क्यों न करे और अपना कदम क्यों वापस न ले ले?

अँगुलियोंकी छाप

यह पूछा जानेपर कि अँगुलियोंकी छाप देनेके विषयमें वास्तविक आपत्ति क्या है, श्री गांधीने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि इस विषयको लेकर बहुत-सा कागज और

कीमती स्याही नष्ट की जा चुकी है। किन्तु यह कभी अलंघ्य कठिनाईकी बात नहीं रही। वास्तवमें अँगुलियोंके निशान स्वेच्छया दिये जाते रहे हैं।

परन्तु दसों अँगुलियोंकी छापपर बड़ी गम्भीर आपत्ति है, क्योंकि इसमें अपराधीपनकी बू आती है। ई० आर० हेनरीकी किताबके मुताबिक दसों अँगुलियोंकी छापकी जरूरत केवल अपराधियोंके वर्गीकरणके लिए ही पड़ती है; भारतमें अनेक विभागोंमें अशिक्षितोंसे अँगूठेके निशान माँगे जाते हैं। किन्तु गतिरोध तो स्वयं एशियाई अधिनियमके कारण उत्पन्न हुआ है। आपत्तियाँ विनियमोंके प्रकाशित और घोषित किये जानेके पहले उठाई गई थीं।

जब श्री गांधीसे जनरल स्मट्स द्वारा धमकियोंका उल्लेख किया जानेकी बातपर वक्तव्य देनेको कहा गया तब उन्होंने कहा कि धमकी सिवा इसके कुछ नहीं है कि जिन भारतीयोंने पंजीयन प्रमाणपत्र लिये हैं उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाये और मुझे इस बातकी बड़ी आशंका है कि ऐसा बहिष्कार रोके नहीं रुकेगा। जिन एशियाइयोंने अपना पंजीयन कराया है उन्होंने अनेक बार स्वीकार किया है कि उनसे अनुचित कार्य हुआ है। यह डरके मारे हुआ है न कि काननूके प्रति सम्मानके कारण।

जनरल स्मट्सकी यह आलोचना कि नेताओंने धोखा दिया है, दुर्भाग्यपूर्ण है। जहाँतक मुझे मालूम है किसी भी नेताने किसी भी भारतीयको नहीं बरगलाया। एशियाई कानून अनुवादित करके जनसाधारणमें बाँटा जा चुका है। बड़ी सरकार द्वारा दिये जानेवाले संरक्षणकी बात भारतीय समाजके सामने निस्सन्देह रखी गई है और जबतक बड़ी सरकार और ब्रिटिश न्यायमें मेरी आस्था बनी हुई है तबतक मैं अपने देशवासियोंके सामने उसे रखता ही रहूँगा। अलबत्ता यदि मुझे यह दिखे कि अपनी पूर्व प्रतिज्ञाओंके बावजूद सम्राट्ने सारे भारतीय समाजका सर्वथा परित्याग कर दिया है तो बात दूसरी है। जनरल स्मट्सने हमारे प्रतिष्ठित समाजको कुलियोंकी जमात कहना उचित समझा है। यह कदापि न माना जाये कि भारतीय इन बातोंको नहीं जानते अथवा उन्हें इससे चोट नहीं पहुँचती। ब्रिटिश भारतीयोंने जनरल स्मट्सके एक-एक शब्दको बड़ी उत्सुकता और आतुरताके साथ पढ़ा है और जो पढ़ नहीं पाये उन्होंने उसका अनुवाद[1] सुना है। यह कहना आवश्यक नहीं है कि इन शब्दोंसे उन्हें स्वभावतः क्षोभ हुआ है। जबतक वे ब्रिटिश भारतीयोंको तुच्छ गिनते हैं और, जहाँतक उनकी स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत आवागमनका सम्बन्ध है, उन्हें ब्रिटिश प्रजाकी परिपूर्ण हैसियत देनेसे इनकार करते हैं, तबतक भारतीयोंको जेल अथवा देश-निकालेसे ही संतोष करना होगा।

नेतागण

जनरल स्मट्सने नेताओंपर हाथ डाला, इसके लिए मैं उन्हें साधुवाद दिये बिना नहीं रह सकता। अब उन्हें स्वयं पता चल जायेगा कि भारतीय विरोध सच्चा है या झूठा। प्रश्न यह है कि क्या वे अपराधीको पा जानेके बाद न्याय करेंगे? अथवा वे अपनी जबरदस्त शक्ति उन मुट्ठीभर भारतीयोंको कुचलनेमें लगायेंगे जिन्होंने ट्रान्सवाल समाजके किसी भी अंशको कभी किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचाई। नेताओंकी बात चली है इसलिए मुझे यहाँ इस बातसे अवश्य इनकार कर देना है कि उन सबने, जो गिरफ्तार हुए हैं, आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया है। सर्वविदित है कि कुछने तो अधिनियमके सम्बन्धमें कभी कोई काम नहीं किया। और

१. देखिए "जनरल स्मट्सका भाषण", पृष्ठ २०-२१।

जो लोग सरकारी नौकरीमें हैं उन्हें नौकरीसे बर्खास्त करनेकी धमकी देकर पंजीयन कराने-पर क्यों बाध्य किया जाता है [?] मुझे यह कहते हुए गर्व होता है कि सरकारके अधिकतर भारतीय नौकरोंने, जिनमें से कुछ लम्बे अर्सेसे सरकारी नौकरीमें हैं, पंजीयन करानेके बजाय बर्खास्त होना स्वीकार किया है। किन्तु यदि यह बात सच हो कि आन्दोलनको केवल नेताओंने ही जारी रखा है, तो फिर रेलोंमें काम करनेवाले भारतीय मजदूरों तक को बर्खास्त करनेका इतना सख्त रास्ता क्यों अपनाया गया है?

'अटल' कानून

इसके बाद श्री गांधीने जनरल स्मट्सके उपसंहारात्मक शब्दोंकी ओर ध्यान आकर्षित किया और कहा कि उन्होंने एक ऐसा सिद्धान्त निरूपित किया है कि यदि उसे सामान्यतः अमलके योग्य मान लिया जाये तो उसके फलस्वरूप स्वस्थ या अस्वस्थ हर तरहके आन्दोलनकी इतिश्री हो जायेगी। जनरल स्मट्सने फरमाया है कि आन्दोलनोंसे किसी कानूनमें कोई फेरफार नहीं किया जा सकता।

सभी जमातोंको प्रभावित करनेवाले सर्वसामान्य कानूनोंका विचार न करें तो भी मैं नेटाल मताधिकार कानूनका उदाहरण पेश कर सकता हूँ, जिसे भारतीय समाजके तर्कसम्मत विरोध और तत्कालीन उपनिवेश-सचिवकी लिखापढ़ीपर बदलना पड़ा था और सो भी तब जब नेटाल स्वराज्य प्राप्त कर चुका था। नेटाल नगरपालिका अधिनियमपर अभी सम्राट्की स्वीकृति[1] मिलनी शेष है। मेरी नम्र सम्मतिमें ब्रिटिश साम्राज्यका सच्चा बल इसमें है कि वह कोई सम्मानपूर्ण समझौता कर ले और अल्पसंख्यकोंकी शिकायतों और हकोंपर — विशेषतः जब वे कमजोर और प्रतिनिधित्वहीन हैं — ध्यान दे। ट्रान्सवाल नगरपालिका अध्यादेशको पेश करते समय सर रिचर्ड सॉलोमनने रंगदार लोगों द्वारा 'पास कानून' अस्वीकृत कर दिया जानेका उदाहरण दिया था। जहाँतक मुझे मालूम है वह कानून उनपर कभी लागू नहीं किया गया है।

जनरल स्मट्सके साथ भारतीय समाजके नेताओंने जो अनेक मुलाकातें कीं, उनके बारेमें आपका क्या कहना है? क्या आप किसी मैत्रीपूर्ण समझौतेपर नहीं पहुँच सके?

जहाँतक मुझे मालूम है, मुलाकातें अनेक नहीं हुईं। मुझे तो एक[2] की ही खबर है। मैं इतना बेशक जानता हूँ कि उन्होंने ब्रिटिश भारतीयों द्वारा किये गये समझौतेके हर प्रयत्नको बार-बार ठुकराया है। यह बिलकुल ठीक है कि हर बार प्रस्ताव एशियाई कानूनको रद किया जानेकी दृष्टिसे रखा जाता रहा है। भारतीयोंके लिए, जो ईश्वरमें विश्वास रखते हैं और जो अपने समक्ष प्रस्तुत सारी बातोंको जान लेनेके बाद गम्भीर प्रतिज्ञासे आबद्ध हैं, कोई अन्य मार्ग हो ही नहीं सकता।

मार्ग

क्या प्रस्तुत कठिनाईमें से निकलनेका कोई सम्मानपूर्ण मार्ग नहीं है?

भारतीय सदासे अधिनियमके महत्त्वपूर्ण उद्देश्योंको पूरा करनेकी तत्परता दिखाते रहे हैं; अर्थात् उपनिवेशमें रहनेका हक रखनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंकी पूरी-पूरी शिनाख्तके लिए

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ३५६।
२. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ४३२।

सरकारको हर तरहकी सुविधा देनेके लिए तैयार रहे हैं। यह शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अन्तर्गत स्वेच्छापूर्वक किया जा सकता था। अब वह अध्यादेश लगभग रद ही हो चुका है और यदि एशियाई अधिनियम भी रद किया जानेको है तो उसे पूर्णतः रद करना होगा। ऐसी हालतमें कठिनाईसे बाहर निकलनेका एक ही व्यावहारिक मार्ग है; अर्थात् संसदके अगले सत्रमें प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम इस प्रकार संशोधित किया जाये कि उसमें शिनाख्तके लिए आवश्यक धाराओंका भी समावेश हो जाये और भारतीय समाजने १६ वर्षसे कम उम्रके नाबालिगों तथा अधिनियमके अन्तर्गत निश्चित शैक्षणिक कसौटीपर, जो काफी कड़ी है, खरे उतर सकनेवाले भारतीयोंके बारेमें बार-बार जो वक्तव्य दिये हैं, उनका भी खयाल किया जा सके।

जब श्री गांधीसे अपने प्रस्तावको स्पष्ट करनेके लिए कहा गया तब उन्होंने कहा, प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियममें से, जिसके अन्तर्गत मन्त्रीको देशसे निकालनेका प्रबल अधिकार प्राप्त है, सभी काम निकाले जा सकते हैं। सन् १९०७ का एशियाई कानून संशोधन अधिनियम बिलकुल हटा दिया जाये और प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियममें थोड़ा-सा फेरफार कर दिया जाये, जिससे हर एशियाई एक 'निषिद्ध प्रवासी' बन जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि उसे उस हालतमें यह सिद्ध करना पड़ेगा कि वह उपनिवेशमें रहनेका हकदार है। अगर वह शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अथवा १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत दिया गया प्रमाणपत्र पेश कर सके तो उसे अधिवासी प्रमाणपत्र दिया जायेगा। यह अधिवासी प्रमाणपत्र उसके पास पहलेके मौजूद प्रमाणपत्र तथा अन्य कागज-पत्रोंकी जगह ले लेगा और इस नये प्रमाणपत्रमें प्राप्तकर्ताकी शिनाख्तके पर्याप्त प्रमाण तो रहेंगे ही। सोलह वर्षसे कम उम्रके बच्चोंके लिए अधिवासी प्रमाणपत्र लेना आवश्यक नहीं होना चाहिए; किन्तु उनके अभिभावकोंको और माता-पिताओंके नाम जारी किये गये अधिवासी प्रमाणपत्रोंपर ऐसे बच्चोंकी, नाम और तफसीलके साथ, पूरी गिनती दी जायेगी। ऐसे अधिवासी प्रमाणपत्रोंकी खरीद-फरोख्तकी रोक-थामके लिए प्रवासी अधिनियममें काफी कठोर व्यवस्था मौजूद ही है। श्री गांधीने कहा कि इस योजनासे सरकारको जो मिलना उचित है सब मिल जायेगा — अर्थात् इससे एशियाइयोंका आना रुक जायेगा तथा उन सब भारतीयों और एशियाइयोंकी पूरी शिनाख्त तथा पंजीयनकी व्यवस्था हो जायेगी जिन्हें वहाँ रहनेका अधिकार है।

अक्सर कहा गया है कि ट्रान्सवाल चूँकि देशके भीतरी हिस्सेमें स्थित उपनिवेश है इसलिए वहाँ केप या नेटालकी तरहका प्रवासी अधिनियम नहीं हो सकता। मेरी समझमें यह गलत है। अभिप्राय इतना ही है कि ट्रान्सवालके प्रवासी अधिनियममें केप या नेटालके अधिनियमकी अपेक्षा अधिक सख्तीके साथ शिनाख्तकी व्यवस्था की जानी चाहिए। नेटालके अधिनियमके अनुसार कोई भी भारतीय, किसी भी समय, अपना अधिवासी होना साबित कर सकता है और माँग कर सकता है कि उसे उपनिवेशमें आने दिया जाये। मैंने जो संशोधन सुझाया है उसकी रूसे अमुक अवधिमें हरएक भारतीयको अपना अधिवास अथवा निवासका अधिकार प्रमाणित करना पड़ेगा। उस अवधिकी समाप्तिपर उसपर सदाके लिए रोक लग जायेगी। निश्चय ही इससे अधिककी जरूरत तो नहीं हो सकती?

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, ७-१-१९०८

८. भेंट : रायटरको[1]

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ८, १९०८]

आज श्री गांधीने यह घोषित किया कि यदि एशियाई पंजीयन अधिनियमका अमल स्थगित कर दिया जाये तो मैं यह जिम्मेदारी ले लूँगा कि दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार्य फार्मके मुताबिक प्रत्येक भारतीयका पंजीयन एक मासकी अवधिमें हो जाये। तब अधिनियम अनावश्यक हो जायेगा और वापस लिया जा सकेगा।

यदि मेरे द्वारा दिये गये वचनका ईमानदारीसे पालन नहीं हुआ तो मैं प्रस्तुत अधिनियमको पूर्ण रूपसे लागू करनेमें सरकारका हाथ बटाऊँगा। भारतीय नेताओंका मुख्य उद्देश्य अनिवार्यताके तत्वका निवारण है। जो समझौता सुझाया गया है, वही एकमात्र ऐसा समझौता है कि जिसे भारतीय स्वीकार करनेके लिए राजी हैं; और उसकी शर्तोंके विषयमें सरकारके साथ विचार-विमर्शकी व्यवस्थाका प्रयत्न सम्भवतः किया जायेगा। भारतीय समाजका विचार है, ट्रान्सवालमें भारतीयोंके लुक-छिपकर प्रवेश तथा शिनाख्तके प्रश्नकी जाँच उच्च न्यायालयके किसी न्यायाधीश द्वारा करानेका मेरा सुझाव सरकारको परिस्थितिपर पुनर्विचार करनेका अवसर देगा।

[अंग्रेजीसे]
इंडिया, १०–१–१९०८

९. जनरल स्मट्सका भाषण[2]

[जनवरी १०, १९०८ के पूर्व][3]

जनरल स्मट्सने लम्बा भाषण दिया है। 'स्टार' और [ट्रान्सवाल] 'लीडर' ने उसका उत्तर श्री गांधीसे ली गई एक भेंटके रूपमें प्रकाशित[4] किया है। दूसरी जगह उसका अनुवाद दिया जा रहा है। भाषण बहुत समझने लायक है। चार महीने पहले स्मट्स साहब जो जोर दिखाते थे वह अब नहीं रहा। वे उसी भाषणमें एक जगह कहते हैं कि "हजारों भारतीय जेलमें कैसे डाले जा सकते हैं। जेल ही कहाँ हैं? इतनोंको देश-निकाला भी कैसे दिया जा सकता है?" दूसरी जगह कहते हैं कि यदि भारतीय पंजीयन नहीं कराते तो अन्तमें यह मार्ग अपनाना ही पड़ेगा। आजतक बड़ी सरकारने मदद की है, अब करेगी या नहीं सो

१. यह लेख "श्री गांधी द्वारा समझौतेका सुझाव" शीर्षकसे छपा था।

२. उनका ४ जनवरीको दिया गया मेविलका भाषण, देखिए पृष्ठ १३ पर दी गई पादटिप्पणी।

३. स्पष्ट है कि यह और इसके बादके दो लेख १० जनवरीसे, जबकि गांधीजीपर मुकदमा चला था और उन्हें सजा हुई थी, पहले ही लिखे गये थे।

४. देखिए "भेंट : 'स्टार' को" पृष्ठ ९-१३ और "भेंट : 'ट्रान्सवाल लीडर' को" पृष्ठ १३-१९।

जनरल स्मट्स नहीं जानते। फिर वे कहते हैं कि यह उनका निजी विचार है। स्थानिक सरकार क्या करेगी, इसकी भी जनरल स्मट्सको खबर नहीं है। ऐसा भाषण तो मूर्खतापूर्ण ही कहलायेगा। जनरल स्मट्स गुस्सेमें हैं। उन्हें होश नहीं है, इसलिए जो चाहे सो कहते हैं।

वे भारतीयोंके प्रति नफरत भी साफ-साफ जाहिर करते हैं। 'कुली' शब्दका निःसंकोच उपयोग करते हैं। हम "कुछ हद तक ही" ब्रिटिश-प्रजा हैं—ऐसा कहते हैं। यह एकदम नई बात है। आजतक तो हम ब्रिटिश प्रजा थे, किन्तु अब केवल थोड़े-बहुत ब्रिटिश प्रजा ही माने जा रहे हैं। इसके सिवा यह कहते हैं कि आजतक बड़ी सरकारके हस्तक्षेपके कारण वे हमें बस्तियोंमें नहीं भेज पाते थे, अब वे आशा करते हैं कि भारतीयोंको बस्तियोंमें भेजना सहज बात है। फिर कहते हैं कि श्री गांधीकी गिरफ्तारीके[1] बाद बहुतसे भारतीयोंने कहा है कि वे पंजीयन करानेके लिए तैयार हैं।

इस सबका क्या अर्थ किया जाये? यह तो प्रकट है कि भारतीय समाजने जनरल स्मट्सको भी कुछ करिश्मे दिखा दिये हैं। वे महोदय स्वीकार करते हैं कि गत मार्च महीनेमें उन्हें आशा नहीं थी कि भारतीय समाज इस प्रकार मुकाबला करेगा और इतनी शक्ति दिखायेगा। फिर भी उनकी धारणा है कि भारतीय समाज केवल दो-चार नेताओंके बहकावेमें आ गया है। नेतागण तो जेल जायेंगे; फिर क्या भारतीय समाज डरकर कायर बन जायेगा? यदि वह न डरे और हिम्मत बनाये रखे तो अंधा भी देख सकता है और बहरा भी सुन सकता है कि, जनरल स्मट्ससे कुछ होना-जाना नहीं है। यही महोदय फरमाते हैं कि उपाय भारतीय समाजके हाथमें ही है। सचमुच बात ऐसी ही है। केवल अन्तर इतना ही है कि श्री स्मट्सके कथनानुसार इलाज है, तत्काल गुलामीकी माला पहन लेना; हमारे कहनेके मुताबिक आजादी–मर्तबा–आबरू–स्वतन्त्रता–खुदा–ईश्वरका भय-रूपी सुगन्धित माला धारण करना, यह उपाय भारतीयोंके हाथमें है। लक्ष्मी तिलक लगाने आँगनमें आई है तो क्या ऐसे अवसरपर भारतीय मुँह फेर लेंगे? बात यह है कि पंजीयनका विचार स्वप्नमें भी न किया जाये; बेधड़क होकर व्यापार करें; ऐसा करते हुए जेल जाना पड़े तो जायें; देश-निकाला हो तो भी ठीक। ऐसा करनेपर इन दोमें से एक भी आफत नहीं आयेगी। और यदि आती भी हैं तो अनिवार्य पंजीयनकी बलाके मुकाबलेमें ये आफतें बहुत अच्छी हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–१–१९०८

१. दिसम्बर २७, १९०७ को; देखिए खण्ड ७, पादटिप्पणी २, पृष्ठ ४४४।

१०. रामसुन्दर[1]

रामसुन्दरका सम्मान करनेके कारण हमें काफी सुनना पड़ा है। हमारे पास कुछ पत्र भी आये हैं। कोई बताता है कि वह गिरमिटिया है; कोई कहता है कि उसने बहुत-से आदमियोंको ठगा है; कोई कहता है कि ऐसे आदमीको इस प्रकारका बादशाही सम्मान दिया गया, इसलिए भारतीय कौम अब दुबारा किसी नेताकी कुछ सुननेवाली नहीं है। ऐसे आदमीके वास्ते दूकानें बन्द की गईं, यह भारी भूल समझी जाये; और अब दुबारा चाहे कैसे ही भारतीयके लिए कहा जाये तो भी दूकानें बन्द होनेकी आशा कोई न रखे। फिर कुछ लोग इसे मौका मानकर हिन्दू और मुसलमानोंके बीच खाई पैदा करनेकी ताकमें हैं। हम इसे इन सबकी भूल समझते हैं। यदि रामसुन्दर गिरमिटिया होता और यह जानकर कौम उसे सच्ची बहादुरीके लिए मान देती, तो इसमें कौमकी अधिक शोभा मानी जाती। गरीबीमें दोष नहीं है, इसी प्रकार गिरमिटिया होनेमें भी नहीं है। गिरमिटिया महान् वीरता दिखायें, तो इसे भारतीय अधिक गौरवकी बात समझें, क्योंकि इससे ऐसा सुअवसर आ सकता है कि उनसे अच्छी स्थितिवाले व्यक्ति और भी बढ़कर पराक्रम दिखायें। किन्तु रामसुन्दर गिरमिटिया था अथवा कर्जदार था या नहीं, इस बातका कौमको पता नहीं था। इसकी उसे परवाह नहीं थी। जो काम उसने किया, जो भाषण उसने दिये वे सब प्रशंसाके योग्य थे। बादशाही सम्मान रामसुन्दरको नहीं दिया गया, बल्कि एक महीना जेल भोगनेवालेको दिया गया। दूकानें बन्द रहीं वे रामसुन्दरके लिए नहीं, परन्तु एक भारतीयको व्यर्थमें जेल दी गई, इसपर शोक प्रदर्शित करने और हमारे ऐक्यकी सबपर छाप डालनेके लिए। दूकान बन्द करनेका और बादशाही सम्मान देनेका लाभ भारतीय कौमको मिल चुका है। उसका जो लाभ रामसुन्दरने पाया था उसे वह खो बैठा है। हमने जो सम्मान दिया है वह उस व्यक्तिको नहीं बल्कि उस व्यक्तिमें निहित हमारे माने हुए सत्य और साहसको दिया है। सार यह कि, रामसुन्दरके बारेमें जो-कुछ भी किया गया वह करने योग्य था। अब जब कि हम यह देख चुके हैं कि वह आदमी चालबाज है तब उसका तिरस्कार कर रहे हैं। यह भी उचित है। इस प्रकार दुनियामें सदासे होता आया है। मद्रासका अरबथनॉट[2] जबतक प्रामाणिक माना जाता था तबतक वह राजा और प्रजाका प्रियपात्र था। जब उसका भण्डाफोड़ हुआ तब उसी साहबपर मुकदमा चला और उसे जेल हुई। जब हम प्रत्येक मामलेमें नित्य सत्य-असत्यका भेद रखने लगेंगे तभी यह माना जायेगा कि हम योग्य हुए और तभी हम प्रत्येक मामलेमें जीतेंगे। हिन्दू-मुसलमानके बीचमें डाले जानेवाले भेदके सम्बन्धमें हम अधिक कहना नहीं चाहते। लेकिन ऐसा भेद डालना बड़ी नादानी है, इसमें कोई शक नहीं है। जहाँ दोनोंका स्वार्थ एक-सा है और जहाँ धर्मकी बात नहीं है वहाँ हिन्दू-मुसलमानका भेद क्यों उठा करता है, यह बात हमारी समझसे परे है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–१–१९०८

१. देखिए "रामसुन्दर पण्डित", ४–५।

२. विख्यात साहूकार सर जॉर्ज अरबथनॉट, जो छः बार फोर्ट सेंट जॉर्जकी विधान-परिषदका सदस्य और सात बार मद्रास व्यापार-संघका अध्यक्ष चुना गया था। अपना बैंक ठप हो जानेपर उसने दिवालियेपनकी अर्जी दी थी। मई १९०७ के प्रारम्भमें उसपर धोखा देने और विश्वासघात करनेके जुर्ममें मुकदमा चलाया गया था। **इंडिया**, मई १०, १९०७।

११. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी[1]

[जनवरी १०, १९०८ के पूर्व]

'पैसिव रेजिस्टेन्स'

सम्पादकने 'पैसिव रेजिस्टेन्स' का गुजराती शब्द माँगा है। एक शब्द मेरे पास आया है, जो खराब नहीं है; यद्यपि उसमें सारा अर्थ नहीं आता। फिर भी अभी तो उसे काममें लाता हूँ। वह शब्द है 'सदाग्रह'। इसके बदले 'सत्याग्रह'को कुछ और अच्छा मानता हूँ। किसी वस्तुके खिलाफ जोर लगाना 'रेजिस्टेन्स' कहलाता है। इस लेखकने उसे आग्रह कहा है; और सच्चा आग्रह सत् अथवा सत्य-आग्रह हुआ। 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' को लेखकने अच्छा आग्रह कहा है। 'पैसिव' का पूरा अर्थ इसमें नहीं आता, किन्तु इनामी शब्द मिलने तक 'सत्याग्रह' काममें लायेंगे।

खैर, सत्याग्रहका जोर इस समय तो बहुत दीख रहा है। संसार भरमें भारतीय सत्याग्रहियोंका नाम सुनाई दे रहा है। यही नहीं बल्कि सब लोग हमारे पक्षमें बोलने लगे हैं। यह प्रश्न समस्त ब्रिटिश राज्यसे जुड़ा हुआ माना गया है। दक्षिण आफ्रिकामें 'ब्लूमफॉंटीन फ्रेंड', 'ट्रान्सवाल लीडर', 'प्रिटोरिया न्यूज़', 'केप टाइम्स', 'नेटाल-विटनेस', 'टाइम्स ऑफ नेटाल', 'नेटाल मर्क्युरी' — ये सब अखबार साफ-साफ सरकारसे कह रहे हैं कि कानूनमें परिवर्तन करना और भारतीयोंके साथ सुलह करना उसका कर्त्तव्य है। ये सभी अखबार कहते हैं कि अगर सरकार सुलह नहीं करेगी तो इससे पूरे ब्रिटिश राज्यको धक्का लगेगा और भारत जाग जायेगा। 'जाग जायेगा', ये शब्द भारतीयोंके लिए ऐसे हैं कि वे चौंक उठें; फिर भी, वे 'जाग जायेंगे,' इसमें तो सन्देह नहीं है — यदि भारतीय कौम आखिरी बोझा उठा पाये तो।

'स्टार' आदि जो अखबार बहुत खिलाफ बोलते थे वे अब मध्यम पड़ गये हैं। वे भारतीयोंकी बहादुरीका सम्मान करते हुए कहते हैं कि भारतीयोंमें जो गुण पहले कभी देखनेमें नहीं आये वे अब दीप्त हो उठे हैं।

जोहानिसबर्गके अखबारोंमें अच्छा लिखनेवाले चर्चाकारोंकी संख्याका अब पार नहीं रहा। बहुत-से सुप्रसिद्ध लेखक कह रहे हैं कि स्थानिक सरकार समझौता करनेके लिए बद्ध है। पादरियोंमें हलचल मची हुई है कि भारतीयोंकी धार्मिक भावनाको ठेस नहीं पहुँचानी चाहिए।

विलायतमें

विलायतका तो पूछना ही क्या? करीब करीब हरएक अखबार भारतीयोंकी तरफदारी कर रहा है। श्री रिचने सारे इंग्लैंडमें आग भड़का दी है। इंग्लैंडके विचारोंको रायटर तारसे भेजता है। 'टाइम्स'की माँग है कि चाहे जिस तरहसे हो, बड़ी सरकारको भारतीयोंकी सुनवाई करनी ही चाहिए। यह सत्य-आग्रहकी बलिहारी है। यह लिखते समय कानोंमें आवाज गूंज रही है कि सत्यका रक्षक सदैव ईश्वर है; और यहाँतक हमारा आ पहुँचना सत्यकी

१. ये साप्ताहिक संवादपत्र "जोहानिसबर्ग संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें **इंडियन ओपिनियन**में प्रकाशित किये जाते थे। पहला संवादपत्र मार्च ३, १९०६ को छपा था। देखिए खण्ड ५, पृष्ठ २१५-६।

जय प्रकट करता है। अब कहीं हार भी जायें तो इससे सत्यके गौरवपर आँच नहीं आती। लेकिन अपने असत्य, चालबाजी, फूट और भयके कारण हम हार सकते हैं। इस समयके लक्षण हारनेके नहीं हैं। भारतीय कौम बड़ा जोर लगा रही है। सभाएँ होती ही रहती हैं। उनमें सैकड़ों आदमी आते हैं। वे सब ऐसा कहते रहते हैं कि हम जेल जायेंगे, देश-निकाला भुगतेंगे, पर कानूनके आगे नहीं झुकेंगे। इतने सारे लोग रामसुन्दरकी तरह केवल नाटक करते हैं, ऐसा मैं तो नहीं मान सकता।

विराट् सार्वजनिक सभा

पहली तारीखको जो विराट् सार्वजनिक सभा हुई थी उसमें कमसे-कम २,५०० लोग रहे होंगे। सब लोगोंमें जोश था। उसका पूरा विवरण सम्पादक अन्यत्र देंगे। मैं तो इतना ही उल्लेख करता हूँ कि उस सभामें श्री डेविड पोलक (सम्पादक नहीं), 'रैंड डेली मेल' के सहायक सम्पादक, उसके चित्रकार, और चन्द दूसरे गोरे भी थे। ये सभी खास तौरसे देखनेके लिए आये थे। दूसरे नगरोंसे भी बहुत-से भारतीय आये हुए थे।

कुमारी स्लेशिनका भाषण

कुमारी स्लेशिन[1] बीस वर्षकी एक कुमारिका है। उसने हमारे समाजके लिए जितना काम किया है, उसका अन्दाज बहुत थोड़े भारतीयोंको है। यह महिला जो करती है सो वेतनके लिए नहीं; बल्कि इसलिए करती है कि उसमें बहुत सहानुभूति है। जो-जो काम इसे सौंपा जाता है उसे यह हर्षके साथ करती है। इसने पिछली सार्वजनिक सभामें भाषण करनेका इरादा किया। और जो अनुवाद नीचे दिया है वह सब इसके ही विचारोंका है। यह भाषण करनेसे पहले इसने अपने बड़ोंसे अनुमति ले ली थी। यह महिला मैट्रिक्युलेशनकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुई है और इसे उत्तम शिक्षण मिला है, ऐसा कहा जा सकता है। इसका भाषण श्री गांधीने पढ़कर सुनाया था। वह निम्न प्रकार है :

> अब लड़ाई चोटी तक पहुँच गई है। इस कारण आप लोगोंके उन दुःखोंके प्रति जिन्हें मैं शुरूसे ही देखती आई हूँ तथा उन दूसरे दुःखोंके प्रति जो आपको अभी भुगतने हैं, मैं अपनी सहानुभूति प्रकट करती हूँ। मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आगे आनेवाले दुःखोंसे आप भयभीत न हों, हार न मानें, बल्कि देश और धर्मके लिए जो शौर्य-भरा निश्चय आप लोगोंने किया है उसको पूरा करते हुए प्राण चले जायें तो भी लड़ते रहें। इंग्लैंडमें मेरी बहनें जो लड़ाई लड़ रही हैं उसकी याद मैं आप लोगोंको दिलाती हूँ। अपने अधिकारोंके लिए अपना सब-कुछ गँवानेके वास्ते वे महिलाएँ तैयार हुई हैं। उनमें से कई तो जेल जाकर पावन हुई हैं। अन्य तैयार हैं। यदि कोमलांगी नारियाँ

१. कुमारी सोंजा स्लेशिन एक यहूदी लड़की थी, उसका "चरित्र सोने जैसा खरा और बहादुरी योद्धाको भी शरमानेवाली" थी। सोलह वर्षकी आयुमें उसने गांधीजीके साथ एक त्वरा-लेखकके रूपमें काम किया और **इंडियन ओपिनियन**का बहुत-सा काम सम्हाला। उसे भारतीय संघर्षमें बहुत अधिक दिलचस्पी थी। "सैकड़ों भारतीय वीर उससे निर्देशनकी अपेक्षा करते थे। सत्याग्रहके दिनोंमें जब सभी जेलमें थे, उसने अकेले ही आन्दोलनका नेतृत्व किया। उस समय उसे हजारों रुपयोंकी व्यवस्था, भारी मात्रामें पत्र-व्यवहार और **इंडियन ओपिनियन**की देखभाल करनी पड़ती थी। परन्तु वह कभी परेशान नहीं हुई।" **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास**, अध्याय २३ और **आत्मकथा**, भाग ४, अध्याय १२, भी देखिए।

ऐसा करें तो क्या मर्द पीछे हटेंगे? आप लोगोंने जो रास्ता लिया है उसपर दृढ़ रहें। दिल मजबूत करके खुदाकी ओर निगाह रखकर विजय प्राप्त करें अथवा संघर्षमें मर मिटें। यदि आप इस निश्चयपर अटल रहे, आपने खुदाके नामपर ली गई कसम निबाही और आप लोगोंका रहन-सहन और बर्ताव जिस प्रकार सरल है उसी प्रकार आपके काम वीरतापूर्ण रहे, तो आप लोग अवश्य जीतेंगे।

एक बालिका इस प्रकार अपनी अन्तरात्मासे हमारी हिम्मत बढ़ा रही है। फिर भी यदि हम लोग कायर बनकर, जेलसे डरकर अपना नाम डुबा दें तो हमें बहुत पछताना होगा — यह सबको याद रखना चाहिए।

देश-निकाला होना सम्भव नहीं

प्रवासी कानून तो एक दिनका तमाशा हो गया है। किसीको देश-निकाला नहीं दिया जा सकता, यह अब सभी स्वीकार करने लगे हैं। श्री लेनर्डका[1] ऐसा मत है, यही नहीं; बल्कि 'डेली मेल' में एक विशेष लेखकने बहुत सारी दलीलें देकर बताया है कि भारतीयोंको देश-निकाला देना सम्भव नहीं है। इसलिए प्रवासी कानूनपर हस्ताक्षरका अर्थ यही हुआ कि बड़ी सरकार हम लोगोंकी सहायता करनेमें झिझकती है। और, क्यों न झिझके? हम लोग पंजीयकको इस प्रकारके गुप्त पत्र जो लिखते हैं कि, हम पंजीयन करवानेको तैयार हैं लेकिन शर्मके मारे नहीं करवा पाते; हमारे नाम लिख रखियेगा। हम ही पंजीयकको रामसुन्दरके बारेमें पत्र लिखते हैं कि वह व्यक्ति ऐसा है, वैसा है। वह चाहे जैसा हो किन्तु इस प्रकार गुप्त पत्र लिखनेसे हमारा मान घटता है। हम कायर ठहरते हैं। हम लोग जो बहादुरी दिखा रहे हैं उसे इन गुप्त लेखोंसे हानि पहुँचती है। गुप्त लेख गुप्त रूपसे लॉर्ड एलगिनके पास पहुँचेंगे। उन लेखोंको वे सही मान लेंगे। क्यों न मान लें? ऐसे लेखोंमें बहुत-थोड़ा सत्य हो तो हो, किन्तु उसके साथ अधिकांश झूठ भी पहुँच जाता है। इसलिए हमारा सिक्का खोटा ही माना जायेगा। हम लोग जब खरे सिक्के साबित होंगे, अनेक वर्षोंकी गुलामीके कारण हमारी जो हड्डियाँ ढीली पड़ गई हैं वे जब सख्त होंगी, जब हम लुक-छिपकर काली करतूत करनेसे बाज आयेंगे तब बड़ी सरकारको बड़ी सरकार भी हमारी बातकी सुनवाई करेगी। जबतक हममें सच्ची वीरता नहीं आई तबतक हम बड़ी सरकारको किस प्रकार दोषी कह सकते हैं।

कच्चे घड़े

जब प्रवासी कानूनपर हस्ताक्षर हुए तभी पीटर्सबर्गसे तार दिये गये — "हम आ रहे हैं"; बहादुर लोग बड़ी तेजीसे प्रिटोरिया पहुँचे। फिर खुदाबन्द चैमने साहबकी झुक-झुककर ताजीम की। उन्होंने कहा कि आप लोगोंको मैं गुलामीका पट्टा नहीं दे सकता। मजिस्ट्रेटका हुक्म ले आइये। फिर वे प्रिटोरियाके मजिस्ट्रेटके पास गये। उन्होंने कहा कि मुझे यह अधिकार नहीं है। अब (रविवारसे पहले) ये साहबान पीटर्सबर्गसे तशरीफ वापस ले आये हैं। वहाँके मजिस्ट्रेट जब हुक्म देंगे तब दुबारा प्रिटोरिया पधारेंगे। इन वीर पुरुषोंके नाम मैं जानता हूँ। ऊपरकी बात सही है या गुलामी मिल चुकी है, उसके बारेमें मैं निश्चित रूपसे नहीं कह सकता। जैसी कहानी मेरे पास आई है वैसी मैं पेश कर रहा हूँ।

१. जोहानिसबर्गके एक प्रसिद्ध बैरिस्टर।

बहादुरोंसे दो शब्द

मैं सुनता हूँ कि पीटर्सबर्गमें जो थोड़े-से बहुत ही बहादुर मेमन हैं और जो बड़ा जोर दिखाते आये हैं, वे तथा वहाँके सूरती और हिन्दू भी ढीले पड़ गये हैं; उनको कलमुँहोंकी छूत लग गई है, और वे थरथर काँप रहे हैं। यदि ऐसा हो तो उनके प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है। जहाँ कायरोंका जोरदार संग-साथ हो वहाँपर हिम्मतवालोंकी भी हिम्मत छूट जाये, यह सम्भव है। फिर भी उनसे और विशेषतः मेमन लोगोंसे मेरा खास निवेदन है कि किनारेपर आये हुए जहाजको न डुबाएँ। सबके-सब मेमन खिसक जायेंगे तो काठियावाड़— पोरबंदर, भाणवड़ और राणावावकी बदनामी होगी। हम कायरोंको जाने दें। उन्हें दुबारा जोश दिलायेंगे; किन्तु यदि एक भी मेमन सच्चा न बचे तो सारी कौम डूबेगी। एक जिन्दा-दिल रहेगा, वह औरोंको तारेगा। इसलिए मैं श्री अब्दुल लतीफ और उनसे, जो उनके साथ सचमुच टिक गये हैं, विनती करता हूँ। सूरती लोगों तथा हिन्दुओंसे मैं यही कहूँगा कि आप लोग खुदाका — ईश्वरका — नाम लें और किसी भी हालतमें हरगिज डूबें नहीं। थोड़ा-सा साहस बनाये रखेंगे तो लड़ाई बिलकुल आसान और सरल है। पीटर्सबर्गके बहुतसे भारतीय खिसक गये इसलिए आपको हताश नहीं होना चाहिए। सारे ट्रान्सवालके भारतीय जोशमें हैं। और अन्तमें जो पीटर्सबर्गमें रह जायेंगे उन्हें सच्ची बहादुरी शोभा देगी। क्योंकि वहाँ अधिक खतरा दिखाई देता है।

डेलागोआ-बेमें धोखेबाज

डेलागोआ-बेके दो धोखेबाज भारतीय लुटेरोंके बारेमें पंजीयकको पत्र लिखा गया है। पंजीयकने उनके नाम माँगे हैं। परन्तु वे नहीं दिये जा सकते। मेरे पास यह खबर आई है कि उनमें से एक गिरफ्तार कर लिया गया है और दूसरा नौ-दो-ग्यारह हो गया है। उनके साथ एक गोरा था, जो पंजीयक बना हुआ था। भारतीयोंके ऐसे शत्रुओंका सिलसिला कब खत्म होगा? ऐसा जान पड़ता है कि कुछ लोगोंको पैसा कमानेके लिए और कोई रास्ता सूझ ही नहीं पड़ता। यदि ऐसा ही है तो फिर खुद हमें इस प्रकारके दुर्जनोंसे दूर रहना है। मैं आशा करता हूँ कि डेलागोआ-बे तथा अन्य सभी भागोंमें भारतीय सब लोगोंको साव-धान कर देंगे। इस बड़ी लड़ाईमें झूठका सहारा नहीं चाहिए। हम लोगोंको अन्तमें जाकर अच्छा बनना है। रामसुन्दरकी तरह सिर्फ ढोंग नहीं करना है।

गोरोंकी सहानुभूति

लड़ाईने उचित रूप धारण किया है, इसलिए गोरे बड़ी सहानुभूति दिखा रहे हैं। जब अदालतके सामनेवाले मैदान और श्री गांधीके दफ्तरके सामने सभाएँ[1] हुई थीं तब दोनों अवसरों-पर लगभग सौ गोरे उपस्थित थे। उन सबकी सहानुभूति भारतीयोंकी ओर दिखाई पड़ रही थी। जो श्री हॉस्केन[2] हमें गुलामीका पट्टा लेनेकी सलाह दे रहे थे, वे महोदय अब हमें प्रोत्साहन देने लगे हैं। सत्य और साहसका ऐसा ही फल होता है।

१. दिसम्बर २८, १९०७ को हुई थीं, देखिए खण्ड ७ पृष्ठ ४६४।

२. विलियम हॉस्केन; ट्रान्सवालके एक प्रसिद्ध धनी और विधान सभाके सदस्य। सत्याग्रह आन्दोलनके साथ सहानुभूति रखनेवाले यूरोपीयोंकी समितिके अध्यक्ष थे। इन्होंने १९०८ के आन्दोलनमें सत्याग्रहियों तथा सरकारके बीच मध्यस्थता की थी और इसके तुरन्त बाद ही इन्हें हब्शियोंका पक्षपाती होनेके कारण राजनीतिक जीवनका त्याग करना पड़ा था। देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय १३ और १६ और खण्ड ७, पृष्ठ १५१।

व्यापारिक परवाने

व्यापारी और फेरीवाले जेलका खतरा उठाकर बिना परवानोंके व्यापार करनेवाले हैं; इसलिए श्री ईसप मियाँने राजस्व-आदाता (रिसीवर) के पास पत्र[1] भेजा है कि भारतीय कौम परवाने लिए बिना व्यापार करेगी, लेकिन पंजीयन नहीं करायेगी। और अपना व्यापार करनेमें जो संकट आयेगा उसे लोग सहन करेंगे। अगर सरकारका इरादा परवाना-शुल्क लेनेका हो तो भारतीय कौम शुल्क देनेको तैयार है।

आदाताने इसका उत्तर भेजा है कि एशियाई कानूनके अन्तर्गत बिना पंजीयन किसी भारतीयको परवाना नहीं दिया जा सकता और जो बिना परवानेके व्यापार करेंगे उन भारतीयोंको राजस्व कानूनके अन्तर्गत सजा दी जायेगी। 'सजा दी जायेगी' यह वाक्यांश अब किसी भारतीयको डरा नहीं सकता। सजाका खतरा उठाकर सब लोग व्यापार और फेरी करने जा रहे हैं। संघने भिन्न-भिन्न स्थानोंको कुल मिलाकर बहत्तर पत्र भेजे हैं। उनमें बताया है कि भारतीय लोग बिना परवानेके व्यापार करें। पैसे जमा किये हों या नहीं, इसकी चिन्ता न करें; क्योंकि जमा करनेसे बचाव नहीं हो सकता। बचाव केवल भारतीयोंकी हिम्मतपर निर्भर है। व्यापार चालू रखा जाये और बिना परवाना व्यापार करनेपर मुकदमा हो तब जुर्माना न देकर जेल भुगतें। उनके पीछे नौकर दूकान चला सकते हैं। नौकरोंपर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। सरकार दूकान बन्द नहीं कर सकती।

हिन्दू-मुसलमान

मैं देख रहा हूँ कि रामसुन्दरके सम्बन्धमें[2] किसीने कुछ अंशोंमें हिन्दू-मुसलमान प्रश्न उठाया है। और फिर नेटालसे तार आये हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि किसीने 'मर्क्युरी' में इस प्रश्नपर अधिक जोर दिया है। इसका खुलासा श्री दाउद मुहम्मद[3] और श्री पीरन मुहम्मदने दिया है, जो सन्तोषप्रद कहा जा सकता है। फिर भी जिसने 'मर्क्युरी' में खबर दी उस व्यक्तिको मैं कौमका दुश्मन समझता हूँ। जिस समय भारतीय कौमने बड़ा भारी काम अपने ऊपर उठा रखा है उस समय हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचमें कुछ भी विरोध है, ऐसा यदि कोई कहता है तो वह झूठ है, इतना ही नहीं बल्कि वह स्वार्थपरता गिनी जायेगी। मेरी सिफारिश है कि ऐसे जातिद्रोही और देशद्रोही मनुष्योंको विषके बराबर समझकर हम उनसे बचे रहें। यह स्पष्ट है कि इस प्रकारके भेद रखनेसे किसी भी कौमका हित नहीं हो सकता।

'संडे टाइम्स' का व्यंग्य-चित्र

'संडे टाइम्स' का सम्पादक चाहे भारतीयोंके विरुद्ध लिखता रहे, पर उसका चित्रकार तो भारतीयोंकी अच्छी सेवा कर रहा है। उसने [एक व्यंग्य-चित्रमें][4] यह बताया है कि भारतीय

१. देखिए "पत्र: राजस्व-आदाताको", पृष्ठ ६–७ और राजस्व-आदाताके उत्तरके लिए देखिए पादटिप्पणी ३, पृष्ठ ६।

२. देखिए "रामसुन्दर", पृष्ठ २२।

३. नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष और ट्रान्सवालके पुराने अधिवासी। उन्होंने जुलाई १९०८ में उपनिवेशमें प्रवेश किया था और सीमापर १९०७ के अधिनियम २ के अन्तर्गत अँगूठेका निशान लगानेसे इनकार कर दिया था। इस प्रकार उन्होंने ट्रान्सवालके पुराने भारतीय अधिवासियोंके प्रवेशाधिकारकी स्थापनाके लिए अपनेको गिरफ्तार कराया। इस अधिकारके बारेमें बादको स्मट्सने शंका उठाई थी।

४. देखिए चित्र, पृष्ठ ३२ के सामने।

कौम हाथी है। हाथी पैर मोड़कर जमकर बैठा है। श्री स्मट्स उसकी पीठसे सड़कका बेलन (स्टीम रोलर) लगा रहे हैं। हाथी बोल उठता है "देख लिया अब तेरा बल; गुदगुदी करना रहने दे।" सार यह कि हाथी जो जमकर बैठा है वह सड़कके बेलनसे उठनेवाला नहीं है। इस चित्रकी बदौलत हमारी बातका खूब प्रचार हो रहा है और जनरल स्मट्सकी हँसी उड़ रही है।

'डेली मेल' का व्यंग्य-चित्र

'डेली मेल'के व्यंग-चित्रमें श्री गांधीको आत्मबलिदान देनेवाले पादरीका वेश पहनाया गया है[1]। उन्हें एक मोटे खम्भेसे बाँध रखा है। उनके आसपास घासके पूले हैं। उन पूलोंके ऊपर तेलके तीन कनस्तर हैं। जिनपर लिखा है—परिमिटका कानून, एशियाई पंजीयन कानून, और प्रवासी कानून। इन तीनों पीपोंमें से पूलोंपर तेल गिर रहा है। श्री स्मट्सके हाथमें जलती हुई मशाल है। उनकी पोशाकमें से ढकी हुई तलवारकी नोक झलक रही है। संत गांधी कहते हैं—"आपका मुख तो भयंकर दीखता है। अब बहुत देर हुई। मशाल क्यों नहीं लगाते? जल्दी करें, ताकि निबटारा हो।" लेकिन जनरल स्मट्सने पीठ फेर रखी है, और सुलगानेका साहस नहीं हो रहा है।

पॉचेफ्स्ट्रूमके भारतीय

पॉचेफ्स्ट्रूमके भारतीयोंपर भयभीत होनेकी तोहमत लगाई जा रही है। उसका उत्तर उन्होंने 'स्टार'में दिया है कि उनके सभी लोग पक्के हैं। सिर्फ कुछ मेमन लोगोंने ही मुँह काला किया है। फिर, मन्त्री श्री अब्दुर्रहमानपर पंजीयन करानेका आरोप लगा था। उसके जवाबमें उन्होंने पत्र लिखा है कि उन्होंने पंजीयन नहीं कराया है और अगर कोई साबित कर दे कि कराया है तो वे खुद ५० पौंड इनाम देनेको तैयार हैं।

रविवारको सभा

पिछले रविवारको मसजिदके सामने फिर सभा हुई थी। उसमें बहुतसे भाषण हुए और सभाने परवानोंके बिना दूकानें खुली रखने और फेरी करनेका निर्णय किया। इस समय तो जोश बहुत देखनेमें आ रहा है।

[ट्रान्सवाल] 'लीडर' की आलोचना

जनरल स्मट्सके भाषणपर आलोचना करते हुए 'ट्रान्सवाल लीडर' लिखता है कि:

> जनरल स्मट्सके पहले भाषणोंकी अपेक्षा उनका यह पिछला भाषण अधिक समझदारीका दीखता है। उनका रुख क्यों बदला, उन्होंने इसके कारणोंका संकेत किया है। विरोध-पक्षके सदस्योंको वे इस काममें शामिल करना चाहते हैं या नहीं, यह बात भी साथमें कह दी होती तो अच्छा होता। वे लोग परिवर्तन करनेके विरुद्ध नहीं हैं, ऐसा कहनेका सरकारका इरादा हो तो यह आश्वासन प्रकट रूपमें दे देना चाहिए। ५,००० एशियाई आये हैं, यह बात यदि सरकारी अफसर निश्चित रूपमें बता सकते हैं तो वे किस रास्ते आते हैं और कौन हैं, यह सरकार नहीं बता सकती, यह अचरजकी बात है। जेलमें डालनेकी चर्चाको श्री स्मट्सने समय खोनेके समान बताकर

१. देखिए चित्र, पृष्ठ ३३ के सामने।

छोड़ दिया है। इसपर सरकारका जितना खर्च होता है उतना एशियाइयोंके ट्रान्सवालमें रहनेसे कभी भी होता है ऐसा नहीं कहा जा सकता। अगर देश-निकाला देनेका अधिकार हो तो भी ऐसा कर सकना सम्भव नहीं दीखता। इसलिए उपनिवेश मन्त्रीने नेताओंको उकसानेका निश्चय किया है। वे मानते हैं कि इससे सब-कुछ निपट जायेगा। एक पूरीकी-पूरी कौम दो-तीन नेताओंके हाथका खिलौना बनी हुई है, इस दलीलपर हमें यकीन नहीं है। समय ही बतायेगा कि वह बात सही है या नहीं। चीनका राजनयिक प्रतिनिधि (कॉन्सल) इस क़ानूनके विरुद्ध है ही, फिर भी चीनियोंने पंजीयनसे इनकार कर दिया है; इसे देखते हुए तो जनरल स्मट्सकी दलील नहीं टिक सकती। भारतीय सत्याग्रहियोंकी जीतका प्रभाव वतनियोंपर क्या पड़ेगा, जनरल स्मट्सको इसका डर बना हुआ है। किन्तु पहले भी एशियाइयोंके सिवा अन्य लोगोंसे सम्बन्धित कानूनमें रद्दोबदल क्यों किये गये हैं? फिर यदि अपनी परेशानी और रंजके समय वतनीलोग यह सीख लें कि ऐसेगाई और बन्दूकके अतिरिक्त सत्याग्रहका सौम्य रास्ता भी है, तो क्या बुरा है?

अधिक कलमुँहे

पॉचेफस्ट्रूमसे[1] . . . . [१]
पीटर्सबर्गसे . . . . [३]
प्रिटोरियासे . . . . [३]

मौलवी साहब अहमद मुख्त्यार

मौलवी साहबको पंजीयकने लिखा है कि यदि वे अपनी ओरसे यह विश्वास दिला दें कि अनुमतिपत्रकी अवधि समाप्त हो जानेपर वे लौट जायेंगे तो उन्हें समय दिया जायेगा। इसका उत्तर मौलवी साहबने दिया है कि पंजीयक एक बार श्री हाजी हबीबके समक्ष और दुबारा श्री नगदी तथा श्री मँगाके समक्ष हर छः माहके बाद अवधि बढ़ा देनेके लिए वचनबद्ध हैं। इसी बूतेपर उन्होंने मदरसेका काम शुरू किया है, मस्जिदका काम चालू है, और वे हमीदिया अंजुमनमें धर्मोपदेश (वाज़) कर रहे हैं, और इस कानूनके बारेमें भी धार्मिक आपत्तियाँ समझाते हैं। यह सब उनका काम है और इसे वे करते रहेंगे।

प्रिटोरियाके मुकदमे

तारीख ७ को श्री तुलसी और श्री सेठके मुकदमोंकी सुनवाई हुई थी। श्री सेठको २१ तारीखसे पहले तथा श्री तुलसीको १२ तारीखसे पहले ट्रान्सवाल छोड़नेका नोटिस दिया गया है।

रंगदार लोगोंकी सहानुभूति

आफ्रिकन पोलिटिकल ऑर्गेनाइज़ेशनके एक सम्मेलनमें ट्रान्सवालके भारतीयोंकी विपत्तिपर सहानुभूतिका प्रस्ताव किया गया है। इस सम्बन्धमें संघके नाम डा० अब्दुर्रहमानकी ओरसे तार आया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–१–१९०८

१. नाम यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई संख्याएँ प्रत्येक नगरके कलमुँहोंकी संख्या बताती हैं।

१२. भेंट: 'स्टार' को

[जोहानिसबर्ग
जनवरी १०, १९०८]

श्री गांधीने इस बातका आग्रह किया कि कानूनसे अनिवार्यताका तत्त्व निकाल दिया जाये और फलतः परवाने लेने तथा पंजीयन करवानेके बारेमें जारी की गई हिदायतें भी वापिस ले ली जायें। इसके बदलेमें उन्होंने जिम्मेदारी ली कि एक महीनेके अन्दर-अन्दर इस देशमें रहनेवाले हर भारतीयका पंजीयन दोनों पक्षों द्वारा स्वीकृत फार्मके अनुसार हो जायेगा। यह स्वीकृत फार्म उन भारतीयोंको दिया जायेगा जो उपनिवेशमें रहनेके अधिकारी हैं अथवा जो अन्य किसी प्रकारसे अधिवासी स्वीकृत कर लिये गये हैं।

यदि स्वेच्छया पंजीयन प्रामाणिकताके साथ करा लिया गया तो पंजीयन अधिनियम बेकार हो जायेगा। और भारतीय समाज संसदके अगले अधिवेशनमें उसके वापिस ले लिये जानेकी आशा करेगा। इसके विपरीत यदि नेताओंके वचनकी पूर्ति नहीं हुई तो श्री गांधीने कहा कि जो लोग पंजीयन नहीं करायेंगे उनपर वे कानूनका लागू किया जाना पसन्द करेंगे।

श्री गांधी तो इससे भी आगे जानेको तैयार थे। और स्पष्ट ही उनका मंशा भारतीय व्यापारियोंके प्रति फैली हुई दुर्भावनाको दूर करना था। उनकी तीव्र इच्छा थी कि व्यापारिक परवाने जारी करनेके सम्बन्धमें सरकार और विभिन्न नगरपालिकाएँ अपने उपनियम भी बना लें, ताकि केवल वे ही भारतीय व्यापारके परवाने प्राप्त कर सकें जिनके पास दूकानके लिए उपयुक्त जगह हो और उपयुक्त रीतिसे हिसाब-किताब रख सकनेके साधन हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–१–१९०८

१३. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको अन्तिम सन्देश

[जोहानिसबर्ग
जनवरी १०, १९०८]

ट्रान्सवालके भारतीयोंको

जो भारतीय कैदमें गये हैं, वे कैदमें रहेंगे। यह समझ लेना चाहिए कि इस अर्सेमें ट्रान्सवालके भारतीय जो-कुछ करेंगे उसीपर जीत निर्भर रहेगी। सरकारने कुछ लोगोंको कैद किया, यह बहुत अच्छा किया। पीछे रहनेवाले भारतीयोंकी अब पूरी तरह कसौटी होगी।

कमजोर मनुष्य डरेंगे। ब्लेकलेग –– कलमुँहे –– तरह-तरहकी बातें बनायेंगे। इस प्रकारकी एक भी बातसे डिगना नहीं चाहिए। अपने बहादुर भाइयोंसे मेरी विनती है कि वे शपथको न भूलकर हिम्मत रखें।

लड़ाई शुरू करते समय ही हमने सोच रखा था कि सब-कुछ खो देंगे लेकिन खूनी कानूनको मानकर स्वाभिमान नहीं गँवायेंगे। अंग्रेजोंमें स्वाभिमानके लिए — देशके लिए — सब-कुछ गँवा देनेके सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। इसी प्रकार हम भी करेंगे तभी मनुष्य बनेंगे — मनुष्य रहेंगे। इसलिए मैं मान लेता हूँ कि सब लोग परवाना मिले या न मिले, माल मिले या न मिले, फिर भी दृढ़ संकल्प रहकर जेल या देश-निकाला भुगतनेके ही विचारपर डटे रहेंगे। यदि मनका रुख बदल दें तो जेल कोई चीज नहीं है।

कोई किसी दूसरेके सहारेपर न रहे; बल्कि सभी अपने बलपर रहें। यदि ऐसा किया जाये तो कुछ भारतीयोंके कानूनको मान लेनेपर भी शेष लोग उनकी नकल करनेकी इच्छा नहीं करेंगे।

आपकी अपनी, और देशकी सेवाएँ दोनों इसीमें सन्निहित हैं। अगर भूलसे चक्करमें पड़कर पंजीयन करा लेंगे तो किनारेपर आये हुए जहाजको डुबायेंगे।

इस खुदाई लड़ाईमें जिस तरह हिम्मतकी जरूरत है उसी तरह सत्यकी भी है। बहुत-से लोगोंको भुखमरी भुगतनी पड़ेगी। उनको सहायता पहुँचानी होगी। इसमें बहुत प्रामाणिकताकी आवश्यकता है। भिन्न-भिन्न गाँवोंसे सहायता आयेगी; उसका उपयोग अच्छे ढँगसे करना होगा। याद रखना चाहिए कि बिना आवश्यकताके कोई सहायता न माँगे। और सहायता देनेवाले, जो पैसा अथवा अनाज उनके हाथमें आये, उसका उपयोग अत्यन्त प्रामाणिकतासे करें।

इस लड़ाईमें हमारे सभी सद्गुणोंकी आजमाइश होगी। दुर्गुण जाहिर होकर सामने आ जायेंगे। याद रखिए कि इतने तमाम लोगोंको कैदमें भेज देनेके बाद, अब डरके मारे कानूनको मानकर यह मौका खो नहीं देना है।

जिन्होंने पंजीयन कराया है उनसे और यदि कोई अब करा लें तो उनसे द्वेष न किया जाये। यदि आपका ऐसा विश्वास रहा कि उन्होंने अच्छा काम नहीं किया है तो आपके मनमें उनकी तरह करनेका विचार भी नहीं उठेगा। जो अन्ततक लड़ते रहनेका साहस बनाये रखेंगे वे किसी भी देशमें अपनी रोजी कमा सकेंगे।

दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भारतीयोंसे

ट्रान्सवालके भारतीय तन, मन और धनका कष्ट उठा रहे हैं। आपको केवल पैसेका कष्ट सहन करना है; तो इसमें चूकें नहीं। धनकी बहुत आवश्यकता पड़ेगी। आप लोग बधाई आदि देते हैं यह अच्छा है, आवश्यक है। किन्तु इसके साथ-साथ आप पैसे देंगे तभी बधाई शोभा देगी। यह लड़ाई केवल ट्रान्सवालके भारतीयोंके लिए नहीं है, समस्त भारतीय कौमके लिए है। अर्थात् इसमें आपका भी स्वार्थ है। आप लोग जिस प्रकार पैसोंसे सहायता कर सकते हैं वैसे ही सभाओं और प्रस्तावोंसे भी कर सकते हैं।

सभी भारतीयोंसे

चाहे जो हो, सार्वजनिक मामलोंमें हिन्दू-मुसलमानका भेद हटाये बिना कभी जीत मिलनेवाली नहीं है। यह कुंजी सभीपर लागू होती है। हम हिन्दू-मुसलमान एक देशके हैं और एक माँके बेटे हैं, जब यह भावना मनमें प्रबल होगी तभी विजय मिलेगी।

मोहनदास करमचंद गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–१–१९०८

१४. भाषण : न्यूटाउन मस्जिदमें[1]

[जोहानिसबर्ग
जनवरी १०, १९०८]

'स्टार' (जोहानिसबर्ग) के गत शनिवारके अंकसे विदित होता है कि उस दिन प्रातः-काल जब यह मालूम हुआ कि श्री गांधी तथा अन्य भारतीय और चीनियोंको, जिन्हें लगभग १५ दिन पहले ४८ घंटेके अन्दर उपनिवेश छोड़कर चले जानेका आदेश हुआ था, आज अदालतमें फैसला सुननेके लिए हाजिर होना है तब भारतीय समाजमें बड़ी खलबली मच गई। 'बी' अदालतके बाहर १० बजे बड़ी भीड़ हो गई और दरवाजे खोले जानेके पहले अदालतने सूचित किया कि अभियुक्तोंके मामलेकी सुनवाई तीसरे पहरसे पहले नहीं होगी। श्री गांधीको मामलेके इस तरह कुछ घंटोंके लिए मुलतवी हो जानेसे अपने देशवासियोंके समक्ष कुछ भाषण करनेका अवसर मिल गया। यह भाषण भारतीय जन-साधारणको सत्याग्रह आन्दोलनके नेताओंके कारावासकी अवधिमें दृढ़ बने रहनेके लिए विदाईके समयका उद्बोधन था। सभा ११ बजे न्यूटाउन-स्थित मस्जिदके अहातेमें की गई और यद्यपि खबर देनेके लिए बहुत कम समय मिला तो भी बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे। अहातेमें सभाके लिए एक मंच खड़ाकर दिया गया था और हजारोंकी तादादमें इधर-उधर पड़े हुए काम देने लायक मिट्टीके तेलके पीपोंपर लोगोंके बैठनेकी व्यवस्था की गई थी। मंचपर ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष ईसप इस्माइल मियाँ, शानदार पूर्वी वेषभूषामें एक भारतीय पण्डित और श्री गांधी थे। श्री ईसप मियाँने कुछ प्रारम्भिक शब्द कहे और बादमें श्री गांधी बोले। लोगोंने उनका भाषण बहुत ध्यानपूर्वक सुना। सबकी आँखें बीचमें स्थित क्षीणकाय श्री गांधीकी ओर लगी थीं। इस सभासे श्री गांधीका अपने देशवासियोंपर कितना प्रभाव है सो झलक रहा था।

श्री गांधी हिन्दीमें[2] बोल चुकनेके बाद अंग्रेजीमें बोले। उन्होंने कहा, मैं आप लोगोंको बहुत देर तक रोके रखना नहीं चाहता। मुझे आज सुबह टेलिफोनसे यह सूचना दी गई है कि जिनके नोटिसकी अवधि चल रही है और जिनकी अवधि समाप्त हो चुकी है उन लोगोंको १० बजे अदालतमें हाजिर होना है। हम लोग अदालत जानेके लिए रवाना हो ही रहे थे कि अधीक्षक वरनॉन आ पहुँचे और उन्होंने बतलाया कि हमें दो बजे हाजिर होना है। मुझे यकीन है कि जो लोग आज जेल जा रहे हैं वे तनिक भी भयभीत नहीं हैं, प्रत्युत यह मानते हैं कि सरकारने इस प्रकार उन्हें देशकी सेवा करने और यह दिखानेका कि वे मनुष्य हैं, कुत्ते नहीं, अच्छा अवसर दिया है। मैं इतना अन्धविश्वासी तो हूँ ही कि यह मान लूँ कि ऐसी चीजोंका बारबार मुल्तवी होना, भले ही वे अन्तमें घटित हो जायें, हवाका रुख जाहिर करता है, और उनसे यह भी मालूम होता है कि भगवान हमारे साथ है।

१. प्रस्तुत विवरण **स्टारके** संवाददाताका है, जो बादमें **इंडियन ओपिनियनमें** "श्री गांधीकी विदाई: नेताओंकी गिरफ्तारी" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

२. उपलब्ध नहीं है।



बेलन और हाथी

''देख लिया अब तेरा बल; गुदगुदी करना रहने दे।''

(देखिए पृष्ठ २७)



GANDHI, THE MARTYR:—He certainly looks very fierce, but I wish he would hurry up and do something.

आत्म-बलिदानी गांधी:– लगता तो बडा खूँख्वार है; लेकिन काश! जरा जल्दी हाथ दिखाता! (देखिए पृष्ठ २८)

आतिथ्य

मैंने समझा था कि मुझे सम्राट्का आतिथ्य स्वीकार करनेसे पहले अपने देशवासियोंसे दो शब्द कहनेका अवसर नहीं मिलेगा। किन्तु ईश्वरकी इच्छा दूसरी ही थी। मैं आपके सामने हूँ और मैं एक महीने, दो महीने, हो सकता है ६ महीनेके लिए, आपसे बिदा हो रहा हूँ। मेरा आपसे यह कहना है कि "आप अपने-आपको धोखा न दें, सरकारको धोखा न दें और अपने तुच्छ सेवकको धोखा न दें।" मेरा सचमुच यह विश्वास है कि संघर्ष आपकी मर्जीसे शुरू किया गया है। जब मैंने आपके सामने कानूनकी सच्ची हकीकत पेश की थी तब आप सबने कहा था कि इस कानूनके आगे घुटने टेकना आपके लिए सम्भव नहीं है। ऐसे कानूनके आगे झुकनेके बजाय आप जेल जाने, देशसे निकाले जाने और अपना सर्वस्व गँवा देनेके लिए तैयार हैं।

अधिनियमका दंश

मैं हजार बार कह चुका हूँ और फिर कहता हूँ कि इस कानूनमें सवाल अपनी पत्नी या माताका नाम अथवा अपने अँगूठे या दस अँगुलियोंकी छाप देनेका नहीं है, हालाँकि जब हम इन्हें देनेपर मजबूर किये जाते हैं तब इनपर विचार करना जरूरी हो जाता है। दंश तो कानूनकी मूल-भावनामें है। ईसा मसीहने कहा है, भगवानको किसीने नहीं देखा, क्योंकि वह अशरीरी तत्त्व है। उसी प्रकार इस कानूनका अन्तर्निहित तत्त्व भी शब्दोंसे प्रकट नहीं किया जा सकता। हर भारतीय इस तत्त्वका अनुभव करता है और अनुभव करनेपर उससे उसी प्रकार दूर रहना चाहता है जिस प्रकार शैतानसे। कानून समूचे भारतीय समाजके तिरस्कारपर आधारित है; और जनरल स्मट्सके यह कह देनेसे कि वे भारतीयोंके साथ उचित और न्यायपूर्ण बर्ताव करना चाहते हैं, तनिक भी अन्तर नहीं पड़ता। फैसला उनके कामोंकी बिनापर दिया जाना चाहिए, उनके शब्दोंकी बिनापर नहीं। हमारे देखनेमें यह आया है कि थोथी प्रतिष्ठाके कारण सरकार, जो-कुछ हम स्वेच्छासे देना चाहते हैं, उसे लेनेको तैयार नहीं है और हमें गुलामोंकी तरह देनेपर विवश करना चाहती है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता-सम्बन्धी मामलोंमें अनिवार्यता तभी लादी जा सकती है जब सम्बन्धित व्यक्ति गुलाम हों।

कुत्तेका पट्टा

उन्होंने बताया कि उन्हें उस समयकी, जब वे श्री अलीके साथ जनताके सेवकके रूपमें इंग्लैंड गये थे, एक घटना अच्छी तरह याद है। जहाजपर एक सज्जनने कहा, "मैं समझ गया, आप कुत्तेके पट्टेसे छुटकारा पानेकी गरजसे लन्दन जा रहे हैं।" बिलकुल ठीक। हम गलेमें कुत्तेका पट्टा नहीं लटकाना चाहते, इसीलिए हमने लड़ाई छेड़ी है। हम लोग भावनापर सर्वस्व न्यौछावर करनेको तैयार हैं, किन्तु हमारी यह भावना एक उदार भावना है। यह ऐसी भावना है जिसका पोषण धार्मिक भावनाके रूपमें करना आवश्यक है। यह वह भावना है जो लोगोंको एकसूत्रमें बाँधती है। यह वह भावना है जो प्राणीको सृष्टिकर्तासे आबद्ध करती है। यह वही भावना है जिसके लिए मैंने आप लोगोंसे प्रार्थना की है और सलाह दी है कि आवश्यक होनेपर आप अपने प्राण भी अर्पित कर दें। आपके इस कामकी प्रतिध्वनि सभी ब्रिटिश उपनिवेशोंमें तथा भारतके कोने-कोनेमें गूँज उठेगी। हम कोई अपराधी नहीं हैं।

जनरल स्मट्सकी कार्रवाई

उन्होंने कहा कि मेरा यह खयाल जरूर है कि जनरल स्मट्सने भारतीयोंको गिरफ्तार करके और उन्हें जेल पहुँचानेका इरादा करके बड़ा सराहनीय काम किया है। जनरल स्मट्सने जो रिपोर्टें पढ़ी हैं उनके परिणामस्वरूप उनका यह विचार कि इस सारेके-सारे आन्दोलनका आधार चन्द भारतीय ही हैं, सर्वथा उचित है। यदि यह थोड़ेसे भारतीयोंपर ही निर्भर है और यदि पिछले १६ महीनोंसे हमारे समस्त देशवासी एक साथ होकर काम नहीं करते रहे हैं तब तो, मेरे विचारमें, हमने अपने-आपको इस कानूनके योग्य साबित कर दिया है। जब मैं और मेरे साथी उपद्रव करनेके लिए यहाँ न रहने दिये जायेंगे तब भी यदि भारतीय कंधेसे-कंधा मिलाकर दृढ़ बने रहे और हर प्रकारकी असुविधा झेलने और सर्वस्व गँवानेके लिए तत्पर रहे तो मुझे इसमें किंचिन्मात्र सन्देह नहीं है कि उन्हें सब-कुछ मिल जायेगा और उन्हें, जिन विवेकशील उपनिवेशियोंकी कद्र कुछ कीमत रखती है, उनकी प्रशंसा प्राप्त हो जायेगी। और यदि वे कानूनके आगे घुटने टेक देंगे तो सचमुच वे कुत्तों जैसी जिन्दगी बसर करने और उपनिवेशियोंकी ठोकरें खानेके लायक बन जायेंगे। मैं और मेरे साथी जैसे ही मैदानसे हटेंगे वैसे ही, बहुत सम्भव है, पंजीयन कार्यालयके दरवाजे फिर एक बार खोल दिये जायेंगे, किन्तु फिर भी मैं यह आशा अवश्य करता हूँ कि आप लोगोंने जो-कुछ सार्वजनिक रूपसे कहा है और परमात्माके सामने एकान्तमें जिसके लिए प्रार्थना की है, उसे आप अन्त तक निबाहेंगे। मुझे आशा है कि आप किसी प्रकारके आतंक या धमकी, अथवा अपने सहप्रजाजनों — यदि उन्हें इस नामसे याद किया जा सके — या ब्रिटिश यूरोपीय प्रजाजनों द्वारा की गई कितनी भी सभाओंके कारण उस पथसे विचलित नहीं किये जा सकते जिसपर आप अग्रसर हो चुके हैं। जो व्यक्ति भगवानपर भरोसा रखता है उसके लिए न कोई आतंक है, न कोई भय है।

"धार्मिक स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष"

दूसरे लोग कुछ भी कहते रहें, मैं सदा यही कहूँगा कि यह संघर्ष धार्मिक स्वतन्त्रताके लिए है। 'धर्मसे मेरा मतलब औपचारिक या रूढ़ धर्म नहीं है, बल्कि मेरा तात्पर्य उस धर्मसे है जो सब धर्मोंकी तहमें होता है, जो लोगोंका अपने सिरजनहारसे साक्षात्कार कराता है। यदि आप मनुष्यत्वको तिलांजलि देते हैं और बिना कोई शारीरिक असुविधा झेले ट्रान्सवालमें बने रहनेके उद्देश्यसे समझ-बूझकर किया हुआ संकल्प तोड़ते हैं तो आप निस्सन्देह अपने प्रभुसे पराङ्मुख होते हैं। ईसा मसीहके वचनोंको दुहराते हुए कहना पड़ेगा कि जो भगवानका अनुचर होना चाहते हैं उन्हें संसारका परित्याग करना पड़ता है। मैं इस संघर्षमें आपसे संसार त्यागने और प्रभुसे उसी प्रकार चिपके रहनेके लिए कहता हूँ जिस प्रकार कोई शिशु अपनी माताके वक्षसे चिपका रहता है। यदि आप यह करते हैं तो मुझे इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि संघर्षका परिणाम सफलताके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता।

एक महीने बाद

यह बात कुछ महत्त्व नहीं रखती कि जनरल स्मट्स आज क्या सोचते हैं, किन्तु एक महीने बाद जब आप लोगोंमें से हरएक यह दिखा देगा कि आप मनुष्य हैं, तब जो-कुछ वे सोचेंगे सो महत्त्वपूर्ण होगा। मुझे इस बातमें जरा भी शक नहीं है कि उद्देश्यकी सचाई और समाजमें व्याप्त वास्तविक भावनाको पहचानने योग्य मानवता जनरल स्मट्समें है और अगर आप यह सिद्ध कर दिखाएँ कि ज्यादातर भारतीय कानूनको स्वीकार करनेके बजाय जेल, अपमान, अपने माल-असबाबकी जब्ती –– यह सब सहन करनेको तैयार हैं तो उस हालतमें जनरल स्मट्स, चाहे उनके पास कोई जाये या न जाये, कहेंगे, "बेशक, ये ऐसे लोग हैं जिन्हें मैं अपना नागरिक कहनेमें गर्व मानूँगा, जिन्हें मैं अपना समकक्ष सह-नागरिक समझूँगा और जो राष्ट्रके कामके होंगे।" किन्तु यदि आप मोर्चेपर इस तरह न डटे तो जनरल स्मट्स बेशक यह भी कहेंगे, "अच्छी बात है, १०,००० भारतीय उपनिवेशमें रहें; हम उन्हें कुत्तोंकी तरह रख सकते हैं और अपनी मौत मरने दे सकते हैं।" अपनी स्वाभाविक मौत तो वे ट्रान्सवालके बाहर बहुत दूर वहाँ मरेंगे जहाँ उन्हें जमीनका एक टुकड़ा प्राप्त होगा। किन्तु यदि उन्हें शानदार मृत्यु, मनुष्योचित मृत्यु पानी है तो उसके लिए उनके सामने एक ही मार्ग है। यदि संयोगसे ऐसा हो कि यह मार्ग अपनानेपर भी आपमें से हरेक आदमीको ट्रान्सवाल छोड़ना पड़े तो क्या यह श्रेयस्कर नहीं है कि पुराने एम्पायर नाटकघरकी सभामें किये गये अपने पुनीत संकल्पको तोड़कर कायरोंकी तरह बने रहनेके बजाय उसे मनुष्यकी भाँति छोड़ दें। मेरा खयाल है, यदि उपनिवेशको यह विश्वास हो जाये कि हम लोग सच्चे हैं, अपने उद्देश्य, देश, धर्म और आत्मसम्मानके लिए कष्ट सहनेको तैयार हैं तो सारा उपनिवेश एक स्वरसे जनरल स्मट्ससे कहेगा कि आपको इन्हें देशसे बाहर निकाल देनेका अधिकार नहीं दिया गया है। ये भविष्यमें कोई आव्रजन नहीं चाहते। ये लोग यहाँ रहकर गोरोंके साथ अनुचित स्पर्धा नहीं चाहते। जो समाज इस प्रकारका संघर्ष करनेकी क्षमता रखता है, वह गलत ढंगकी होड़में नहीं उतरेगा और ऐसे किसी भी कानूनको मान लेगा जो सभीके भलेके लिए बना हो, मुट्ठी-भर दूकानदारोंकी भलाईके लिए हर्गिज नहीं। यदि देशके सर्वसामान्य हितके लिए दूकानोंका नियमन करना आवश्यक हो तो अपनी ओरसे हमने असंख्य बार ऐसा करनेको कहा है। ये उपनिवेशको भारतीयोंसे भर नहीं देना चाहते। किन्तु उन थोड़ेसे भारतीयोंको, जिन्हें ट्रान्सवालमें बने रहनेका अधिकार प्राप्त है, इस शक्तिशाली साम्राज्यके सन्नागरिकोंकी हैसियतसे रहने दिया जाना चाहिए, और जब तक आपसे बने, उन्हें पशुओंकी तरह नहीं रखना चाहिए। (हर्ष-ध्वनि)

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–१–१९०८

१५. जोहानिसबर्गका मुकदमा[1]

[जोहानिसबर्ग
जनवरी १०, १९०८]

आज तीसरे पहर गवर्नमेंट स्क्वेयरके पूर्वी पार्श्वमें बड़ी चहलपहल दिखाई पड़ रही थी। दोपहरको भोजनकी छुट्टीके वक्त पूरे समय भारतीयोंका खासा जमाव रहा। ठीक दो बजे भारतीयोंका बड़ी संख्यामें अनवरत रूपसे आना शुरू हो गया, जिससे यह प्रकट होता था कि नेतागण आ रहे हैं। श्री गांधी पहले दिखाई दिये। बूंदाबाँदी हो रही थी। वे 'स्टार' के प्रथम संस्करणको पढ़ते हुए धीरे-धीरे चले आ रहे थे और उनके भक्तगण छाते खोले हुए उन्हें वर्षासे बचा रहे थे। स्क्वेयरकी ओर भारतीयोंका ताँता लगा हुआ था और अदालतका सार्वजनिक प्रवेश-द्वार रुद्ध हो गया था। मजिस्ट्रेट श्री जॉर्डन भीड़में से गुजरते हुए दीख पड़े। दो बजकर दस मिनटपर दरवाजेके ताले खटके और बाहर भीड़का दबाव बढ़ गया। दरवाजे खोल दिये गये और भीड़को कप्तान पॉटर, अधीक्षक वरनॉन और पुलिसके जवानोंने बढ़नेसे रोक दिया। अफसरने लोगोंको दरवाजेके सामनेसे हट जानेका आदेश दिया और बड़ा हुल्लड़ मचा। लोगोंका हुजूम पीछे हटा और जब द्वारसे कुछ लोगोंके एक-साथ निकलनेकी गुंजाइश हो गई तब लोगोंको भीतर आनेकी इजाजत दे दी गई। भारतीय धक्का-मुक्की करते रहे और दरवाजेपर खड़ी पुलिसकी परवा न करके भीतर आनेकी कोशिश करते रहे। पुलिस-आयुक्त अदालतमें था, उसने दरवाजेपर इन्तजाम बढ़ा दिया और प्रवेश-मार्गसे फिर भीड़ हटा दी गई। एक और हंगामा हुआ; पुलिसने तीन व्यक्तियोंको गिरफ्तार किया। जब जनताके लिए सुरक्षित स्थान भर गया तब अदालतमें लोगोंका आना रोक दिया गया और उसके कुछ क्षणों पश्चात् मजिस्ट्रेट इजलासमें आये।

"खामोश"की आवाज लगाई गई और मो० क० गांधी तलब किये गये।

अदालतके फाटकके आसपास घुड़सवार और पैदल पुलिसके दस्तेने घेरा बाँध लिया।

सबसे पहले श्री मो० क० गांधीकी पुकार हुई[2]। उन्होंने यह अभियोग स्वीकार कर लिया कि ४८ घंटेके अन्दर उपनिवेशसे निकल जाने सम्बन्धी अदालतके हुक्मको उन्होंने नहीं माना।

'बी' अदालतके क्लार्क —— श्री फ्रेड क्लेट —— गवाहोंके कठघरेमें गये और उन्होंने तारीख २८ दिसम्बरको अदालतमें हुए सम्राट् बनाम गांधीके मुकदमेके कागजात पेश किये।

१. अक्टूबर १९०८ में गांधीजीके पहली बार गिरफ्तार किये जानेपर रेवरेंड जोज़ेफ जे० डोकने लिखा था, "उधर 'बी' फौजदारी अदालतमें मुकदमा चालू; दरवाजेपर उत्तेजित एशियाइयोंकी रेल-पेल; भीड़ बाहर दूर तक फैली हुई; रूक्ष न्यायाधीश आवेशपूर्ण मुद्रामें अध्यक्षकी कुर्सीपर विराजमान; सामने नीचे कानूनी कार्यालयका वक्र चन्द्र।" देखिए **एम० के० गांधी : ऐन इंडियन पैट्रियॉट इन साउथ आफ्रिका (मो० क० गांधी : दक्षिण आफ्रिकामें एक भारतीय देशभक्त)।**

२. '**रैंड डेली मेल**' ने उक्त मुकदमेका विवरण देते हुए, जॉन फोर्तोएन, सी० एम० पिल्ले, पी० के० नायडू, एम० ईस्टन और एम० ई० फड़वाके नाम भी दिये हैं। गांधीजीके साथ इनपर भी एशियाई पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत अभियोग लगाया गया था।

उस दिन प्रतिवादीको ४८ घंटेके अन्दर उपनिवेशसे निकल जानेकी आज्ञा सुनाई गई थी।[1] गवाहने स्वयं लिखित आज्ञा अभियुक्तको दे दी थी।

मजिस्ट्रेटके यह पूछनेपर कि उन्हें कोई प्रश्न पूछने हैं, श्री गांधीने कहा:

'जी, नहीं।'

'बी' विभागके अधीक्षक वरनॉनने कहा कि उस रोज दिनके दो बजे उन्होंने अभियुक्तको आज्ञा न माननेके अपराधमें गिरफ्तार किया। हुक्म जारी होनेके बादसे आजतक उन्होंने अभियुक्तको कई बार देखा है।

श्री गांधीने इसके बाद भी कोई प्रश्न नहीं पूछा।

श्री शूरमनने सूचित किया कि मामला यही है।

श्री गांधीने एक छोटा-सा वक्तव्य देनेकी इजाजत माँगी, जिसके मिलनेपर उन्होंने कहा कि उनका खयाल है कि उनके मुकदमे और उनके बादमें आनेवाले लोगोंके मामलोंमें फर्क किया जाना चाहिए। अभी-अभी प्रिटोरियासे उन्हें संदेश मिला है कि उनके साथी देशभक्तोंके मामलोंकी जाँच वहाँ हो चुकी है और उन्हें वहाँ तीन-तीन महीनेकी कठोर परिश्रमकी सजा दी गई है। इसके अतिरिक्त भारी-भारी जुर्माने भी हुए हैं, तथा जुर्माने न चुकानेपर तीन-तीन महीनेका सपरिश्रम कारावास और दिया गया है। अगर इन आदमियोंने कोई गुनाह किया है तो उनसे बड़ा गुनाह उन्होंने [श्री गांधीने] किया है। इसलिए उन्होंने मजिस्ट्रेटसे उन्हें कड़ीसे-कड़ी सजा देनेकी प्रार्थना की।

श्री जॉर्डन: आप कानूनमें विहित भारीसे-भारी सजाकी माँग कर रहे हैं?

श्री गांधी: जी, हाँ।

श्री जॉर्डन: यह सजा छः महीने सपरिश्रम कारावास और पाँच सौ पौंडका जुर्माना है। परन्तु मुझे कहना होगा कि इतनी भारी सजा देनेकी आपकी माँगको स्वीकार करनेकी इच्छा मुझे नहीं हो रही है। आपने जो गुनाह किया है उसे देखते हुए यह बहुत अधिक जान पड़ती है। आपने तारीख २८ दिसम्बरके आदेशकी अवज्ञा की। यह अपराध व्यवहारतः अदालतकी तौहीन है। और यह एक प्रकारसे राजनीतिक अपराध है। अगर इसमें कानूनकी अवज्ञाकी बात नहीं होती तो कानूनके अन्तर्गत जो सजा देनेका अधिकार मुझे है उसमें से हलकीसे हलकी सजा देना मैं अपना कर्त्तव्य मानता। इस स्थितिमें मेरे खयालसे आपको दो महीनेके सादे कारावासकी सजा देना इस मामलेके लिए काफी होगा

इसके बाद श्री गांधीको हिरासतमें ले लिया गया।[2]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-१-१९०८

१. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४५८-६०।

२. गांधीजीने कुछ बरसों बाद इसके बारेमें लिखते हुए अपने "कुछ परेशान" हो उठनेकी बात कही है। वे हिरासतमें अकेले थे; इस कारण वे "गम्भीर विचार" में पड़ गये, "घर, अदालतें, जहाँ कि मैं वकालत करता था, सार्वजनिक सभाएँ—सब सपने हो गये और अब मैं एक कैदी था।" यदि लोग जेलमें काफी संख्यामें नहीं आये तो "दो महीने युग हो जायेंगे।" किन्तु जल्दी ही उनके मनमें इन विचारोंपर "लज्जा" आई। और उन्हें यह याद हो आया कि उन्होंने लोगोंसे किस प्रकार जेलोंको "सम्राट्का अतिथिगृह" माननेको कहा था। इस दूसरे विचार-प्रवाहका उनके मनपर "स्वस्थ प्रभाव" पड़ा। देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास**, अध्याय २०।

१६. संदेश: 'रैंड डेली मेल'को

[जोहानिसबर्ग
जनवरी १०, १९०८]

'रैंड डेली मेल' के प्रतिनिधिने श्री गांधीके जेल जानेसे पहले उनका अन्तिम संदेश माँगा। संदेश इस प्रकार था:

यह लड़ाई मैंने प्रार्थनापूर्ण भावसे, अत्यन्त नम्रताके साथ और हेतुको पूर्ण रूपसे न्याययुक्त मानते हुए शुरू की है। मुझे आशा है कि किसी दिन उपनिवेशवासी मेरे देशभाइयोंके साथ न्याय करेंगे। जहाँतक मेरे देशभाइयोंकी बात है, उनसे तो मुझे यही आशा है कि वे अपने पुनीत और गम्भीर संकल्पपर दृढ़ रहेंगे। ऐसा करनेमें उनकी कुछ भी हानि होनेवाली नहीं है। यदि उन्हें इसमें अपना सर्वस्व भी गँवाना पड़े तो इस दृढ़ताके कारण साथियोंकी नजरोंमें वे ऊँचे ही उठेंगे। मैं निश्छल भावसे कहता हूँ कि मुझे गिरफ्तार करके जनरल स्मट्सने एक बड़ा शानदार काम किया है। उनकी धारणा है कि मैंने अपने देशभाइयोंको गुमराह किया है। परन्तु मैंने ऐसा किया है, इसका भान मुझे नहीं है। हाँ, यह हो सकता है कि मैं खुद ही गलतीपर होऊँ। जो हो, मेरा क्षेत्रसे हटाया जाना यह स्पष्ट कर देगा कि यथार्थमें परिस्थिति क्या है, असली या बनावटी। इसलिए बात तो पूरी तरह हमारे ही हाथ है।

[अंग्रेजीसे]

रैंड डेली मेल, ११–१–१९०८

१७. प्रार्थनापत्र:[1] जेल-निदेशकको

[जोहानिसबर्ग
जनवरी २१, १९०८][2]

महामहिमकी जोहानिसबर्ग-जेलमें इस समय कैद
निम्न हस्ताक्षरकर्ताओंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

हम सब प्रार्थी एशियाई हैं और संख्यामें कुल इक्कीस हैं। हममें से अठारह ब्रिटिश भारतीय और तीन चीनी हैं। अठारह भारतीयोंको जलपानमें मकईका दलिया दिया जाता है। बाकी चौदह बारके खानेमें सात बार चावल और घी, तीन बार सेम और चार बार मकईका दलिया होता है। मकईके दलियेके साथ शनिवारको आलू और रविवारको शाक दिये जाते हैं। धार्मिक कारणोंसे उक्त सब लोग शाकाहारी हैं; कुछ केवल इसलिए शाकाहारी हैं, क्योंकि उनको धर्मानुकूल मारे गये पशुओंका मांस या उचित मांस नहीं मिलता। चीनियोंको चावल और घीके बजाय समूची मकई और चर्बी दी जाती है। सब प्रार्थियोंको या तो यूरोपीय खाना

१. यह "मेरे जेलके अनुभव–२" पृष्ठ १३९-४१ से लिया गया है और इसका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था, पृष्ठ १४७।

२. यह प्रार्थनापत्र २१ जनवरी १९०८ को लिखा और भेजा गया था। इसी दिन ७६ अन्य सत्याग्रही भी गांधीजी तथा उनके साथी कैदियोंमें आ मिले थे। देखिए "मेरा जेलका अनुभव [२]", पृष्ठ १३७ तथा "मेरा जेलका अनुभव [३]", पृष्ठ १४७।

खानेकी आदत है या उनके भोजनमें रोटी या मैदेकी कोई चीज होती है; यह बात अधिकतरके बारेमें सत्य है। किसी भी प्रार्थीको मकईका दलिया खानेकी आदत नहीं है। उनमें से अधिकांशको कोष्ठबद्धता है और वह कदाचित् मकईका दलिया खानेसे है। प्रार्थियोंमेंसे सात व्यक्तियोंने जेलमें आनेके बादसे जलपान नहीं किया है; इसमें अपवाद एक बारका है जब कुछ चीनी गवाहोंने उनकी दुर्दशा देखकर उन्हें एक डबलरोटी दे दी थी और वह उन्होंने आपसमें बाँट ली थी। यह बात गवर्नरके सिर्फ ध्यानमें लाई गई थी, जिसने कहा कि चीनियोंका ऐसा करना उचित नहीं था। प्रार्थियोंकी विनम्र सम्मतिमें ऊपर बताया गया भोजन उनके लिए बिलकुल अनुपयुक्त है। इसलिए प्रार्थी नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं कि उनके लिए मकईके दलियेको छोड़कर यूरोपीय दर्जेका भोजन या कोई दूसरा ऐसा भोजन निर्धारित किया जाना चाहिए जो जीवित रहनेके लिए उपयुक्त माना जा सके और उनकी जातीय आदतोंसे या दक्षिण आफ्रिकामें दीर्घकाल तक निवाससे बनी आदतोंसे मेल खाता हो।

चूँकि यह मामला बहुत ही संकटका है, इसलिए प्रार्थी तारसे उत्तर देनेका अनुरोध करते हैं। इस प्रार्थनापत्रको लिखनेके बाद लगभग ७० और लोग आ गये हैं। उन्होंने जलपान बिलकुल नहीं किया है और जलपान करनेमें उनको तीव्र आपत्ति है।

[आपके, आदि,
मो० क० गांधी
और अन्य]

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २१–३–१९०८

१८. पत्र : उपनिवेश सचिवको[1]

जोहानिसबर्ग जेल
जनवरी २८, १९०८[2]

सेवामें
माननीय उपनिवेश सचिव, ट्रान्सवाल

महोदय,

एशियाई पंजीयन संशोधन कानूनके विरोधमें प्रमुख हिस्सा लेनेवाले भारतीय और चीनी समुदायोंके[3] प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे हम सेवामें निम्न निवेदन करते हैं:

जहाँतक अँगुली-निशानीको उन एशियाइयोंकी शिनाख्तके लिए आवश्यक समझा गया है जिनकी शिनाख्त किसी अन्य तरीकेसे भली-भाँति नहीं हो सकती, हमारा विरोध कानूनकी

१. यह पत्र तथा वह मसविदा जो कार्टराइट जेलमें गांधीजीके पास लाये थे, ११–७–१९०२ के **इंडियन ओपिनियन**में, प्रकाशित हुए थे। मसविदेको या तो जनरल स्मट्सने बनाया था या मंजूर किया था, देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय २१ और "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" पृष्ठ ६५। इस पत्रके चार स्रोत हैं: प्रिटोरिया आर्काइव्ज़; कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, जिसे ट्रान्सवाल सरकार द्वारा इस पत्रकी प्रति भेजी गई थी; कार्टराइटके मसविदेकी दफ्तरी प्रति जिसमें गांधीजीके कहनेपर हाथसे परिवर्तन किये गये हैं (एस० एन० ४९०७); और **इंडियन ओपिनियन**।

२. किन्तु **इंडियन ओपिनियन**में प्रकाशित पत्रमें तारीख २९ जनवरी, १९०८ पढ़ी है।

३. कार्टराइटके मसविदेमें केवल "भारतीय समुदाय" है।

उन धाराओंके प्रति, जो ऐसी अँगुली-निशानीको अपेक्षित बनाती हैं, उतना अधिक नहीं है, जितना कि उसमें निहित अनिवार्यताके तत्त्वके प्रति। उस आधारपर हमने कानून रद हो जानेपर स्वेच्छया पंजीयन करा लेनेका प्रस्ताव बार-बार रखा है और आज भी, जबकि काफी देर हो गई है, हम सरकारसे जहाँतक हो सके उसी रास्तेको अपनानेका आग्रह करेंगे, जिसका हमने अनेक बार प्रस्ताव किया है[1]।

हम मानते हैं कि संसदके कार्यावकाश-कालमें कानूनको रद करना सम्भव नहीं है, और आपकी बार-बारकी इस सार्वजनिक घोषणाकी ओर भी हमारा ध्यान गया है कि कानूनके रद होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। फिर भी हम यह बता देना चाहते हैं कि विभिन्न सरकारी सूचनाओं द्वारा पंजीयनके लिए निश्चित की गई अवधियाँ समाप्त हो गई हैं और इसलिए अब जो भी पंजीयन कराया जाता है वह निश्चित रूपसे स्वेच्छया होगा, जिसको स्वीकार करनेके लिए हमने सरकारसे मूलतः प्रार्थना की थी।[1]

इन परिस्थितियोंमें हम एक बार फिर सरकारके सामने विनम्र सुझाव रखेंगे कि १६ वर्षसे[2] अधिक उम्रके सभी एशियाइयोंको एक निश्चित अवधिके भीतर, उदाहरणार्थ तीन महीनेके भीतर, पंजीयन करा लेनेकी सुविधा दी जाये; इस प्रकार पंजीकृत लोगोंपर अधिनियम[3] लागू न हो; और सरकार इस प्रकारके पंजीयनको कानूनी रूप देनेके लिए जैसा उचित समझे, करे। इस प्रकारका पंजीयन उन लोगोंपर भी लागू होना चाहिए जो अभी उपनिवेशसे बाहर हैं लेकिन बादमें वापस आ सकते हैं और अन्यथा वापस आनेके हकदार हैं।[4]

हमें इस बातसे कोई आपत्ति नहीं है कि एशियाइयोंका पंजीयन करते समय **जहाँतक सम्भव हो**[5] कानून तथा विनियमोंकी आवश्यकताओंको पूरा किया जाये, बशर्ते कि पंजीयन अधिकारी कोई ऐसी जानकारी प्राप्त करनेपर जोर न दें जिससे प्रार्थीकी धार्मिक भावनापर चोट पहुँचे; और पंजीयन अधिकारियोंको उन लोगोंको अँगुली-निशानीसे छूट देनेका स्वविवेकाधिकार हो जो अपनी शिक्षा, सम्पत्ति और सार्वजनिक चरित्रके लिए सुविख्यात हैं या वैसे भी सरलतासे पहचाने जा सकते हैं। इस प्रकारके मामलोंमें हमारा आग्रह है कि अधिकारियोंको यह अधिकार हो कि वे प्रार्थीके हस्ताक्षरको ही शिनाख्तका प्रमाण मान लें।

यदि सरकार इन सुझावोंको मान ले और इन शर्तोंपर पंजीयन स्वीकार[6] कर ले तो हम मानते हैं, पंजीयनके लिए निश्चित अवधिमें इस कानूनके अन्तर्गत होनेवाले सारे मुकदमे

१. स्वेच्छया पंजीयनका प्रस्ताव सवप्रथम ट्रान्सवालके भारतीयोंकी २९ मार्च १९०७ की सार्वजनिक सभामें किया गया था। यह प्रस्ताव एशियाई कानून संशोधन अध्यादेशके अन्तर्गत होनेवाले सभी एशियाइयोंके अनिवार्य पंजीयनके स्थानपर विकल्पके रूपमें था। देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ४२०।

२. "१६ वर्षसे अधिक उम्रके" — ये शब्द कार्टराइटके मसविदेमें नहीं हैं। गांधीजी द्वारा बढ़ाये गये शब्द थे — "१६ वर्षसे अधिकके"। प्रिटोरिया आर्काइव्जकी प्रतिमें प्राप्त अतिरिक्त शब्द "उम्र" से ऐसा जान पड़ता है कि कार्टराइटका यह मसविदा, गांधीजी द्वारा उसमें किये गये संशोधनोंके साथ (एस० एन० ४९०७), दुबारा टाइप किया गया था और इस परवर्ती मसविदेमें कुछ मामूली शाब्दिक परिवर्तन किये गये थे। यह परवर्ती मसविदा उपलब्ध नहीं है।

३. मसविदेमें था "अधिनियमके अन्तर्गत सजाएँ लागू न हों" जिसे गांधीजीने काट कर "अधिनियम लागू न हो" कर दिया।

४. यह वाक्य मसविदेमें नहीं है और गांधीजीने जोड़ा है।

५. उपनिवेश-सचिवकी प्रतिमें ये शब्द रेखांकित हैं, किन्तु मसविदेमें तथा **इंडियन ओपिनियन**में नहीं हैं।

६. मसविदेमें "स्वीकार" करनेके बदले "फिर खोलने" का उल्लेख था।

"B" COURT.

No. B 75

190 8.

L.D. 18.

In the Court of the Resident Magistrate

for the District of WITWATERSRAND.

Holden at JOHANNESBURG.

H. H. Jordan Asst before

Esquire, Resident Magistrate

for the said District, on the 10th day of January 1908

Rex

versus

A 219 Mohandas Karamchand Gandhi

Indian solicitor 37

Charged with the Crime of Con Sec 7 Ord 5 of 1903.

in that upon (or about) the 9th day of January 1908

and at (or near) JOHANNESBURG.

in the said District, the said accused, an Asiatic over the age of [illegible] years, after having been ordered

~~did wrongfully and unlawfully~~

to leave this Colony within 48 hours by the Assistant Resident Magistrate "B" Court, Johannesburg on the 28th December, 1907, under Section 8 Sub Section 3 of Act 2 of 1907, [illegible] 5 of 1903, did wrongfully and unlawfully fail to do so within the time specified in the order.

The prisoner being arraigned, pleaded guilty

Judgment: guilty

Sentence: Two months imprisonment

without h. l.

दण्डादेश (देखिए पृष्ठ ३७)



"मुझे छूना मत" — उस समयका एक व्यंग्य-चित्र

और दण्ड स्थगित रखे जायेंगे। हम फिर अपने देशभाइयोंपर पंजीयन करानेके लिए पूरा जोर डालेंगे और उन लोगोंसे, जो पंजीयन करानेसे इनकार करते हैं या जो कानूनन पंजीयनके हकदार नहीं हैं, अपना सारा सम्बन्ध तोड़ लेंगे।

हम उपर्युक्त सुझाव इसलिए पेश कर रहे हैं कि हम सरकारके सामने यह सिद्ध करनेके लिए सचमुच उत्सुक हैं कि हम वफादार और कानूनका पालन करनेवाले हैं, तथा हम ऐसा कोई भी रास्ता अपनानेको तैयार हैं जो हमारी अन्तरात्माको चोट पहुँचाये बिना[1], तथा किसी प्रकार हमारा अपमान किये बिना या हमपर कोई लांछन लगाये बिना[2], हमें इस मुसीबतसे बाहर निकाल ले जाये।

आपके आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी
लिअंग क्विन[3]
थम्बी नायडू[4]

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ और टाइप की हुई तथा हाथसे संशोधित दफ्तरी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४९०७) और कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, २९१/१२७ से।

१९. भेंट: 'रैंड डेली मेल' को

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ३०, १९०८]

श्री गांधीके [प्रिटोरियासे] वापस आनेपर 'मेल' का एक प्रतिनिधि उनसे मिला था . . .
समझौतेके सम्बन्धमें अनेक प्रश्नोंकी बौछार तुरन्त उनपर हुई . . .

[संवाददाता:] दोनों पक्षोंके लिए सम्मानपूर्ण, श्री गांधी?

[गांधीजी:] बिलकुल। उपनिवेशके सम्मानपर जरा भी आँच नहीं आई। साथ ही एशियाइयोंकी भावनाओं और संशयोंका पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

तो यह झुकना नहीं है?

बिलकुल नहीं। हमने केवल एक ऐसी व्यवस्था की है, जिससे सारा प्रश्न सन्तोषजनक रूपसे हल हो गया है — सन्तोषजनक सभी सम्बद्ध पक्षोंके लिए।

१. "हमारी अन्तरात्माको चोट पहुँचाये बिना" — ये शब्द मसविदेमें गांधीजी द्वारा बढ़ाये गये हैं।

२. मसविदेमें यहाँ शब्दकी गलती है।

३. "जोहानिसबर्गके चीनी अधिवासियोंके नेता", चीनी संघ तथा कैंटोनीज़ क्लबके अध्यक्ष।

४. थम्बी नायडू; मॉरिशसके एक तमिल व्यापारी जिन्हें गांधीजीने 'शेरके समान' कहा है। यदि उनके स्वभावमें उतावलापन न होता तो वे ट्रान्सवालके भारतीय समाजका नेतृत्व ग्रहण कर लेते; भाषाएँ सीखने तथा भोजन तैयार करनेके प्रति उनका बड़ा चाव था; वे अनाक्रामक प्रतिरोधी भी रहे और बादको तमिल कल्याण समितिके अध्यक्ष बने। **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय २० भी देखिए।

और कुछ?

श्री गांधीने कुछ और कहनेसे इनकार कर दिया और बताया कि वार्ताओंके बारेमें आगे कुछ कहनेका यह उपयुक्त अवसर नहीं है।

इस समय हमारे संवाददाताने देखा कि श्री गांधीके सिरके बाल बहुत बारीक कटे हुए थे और उनकी मूँछें भी कटी थीं। श्री गांधीसे प्रश्न किया गया कि क्या उनपर भी वे नियम लागू किये गये थे जो साधारणतः मामूली कैदियोंपर लागू होते हैं?

नहीं, यह सब मैंने स्वयं किया है। जैसा कि आप जानते हैं, कैदियोंको कंघों तथा ब्रुशोंका इस्तेमाल करनेकी इजाजत नहीं होती। इसलिए मैंने स्वास्थ्यकी दृष्टिसे किला-जेल (फोर्ट) के गवर्नरसे दरख्वास्त की कि मुझे बाल कटानेकी इजाजत दी जाये। पहले वे हिचके, परन्तु बादमें राजी हो गये — और अब मुझे देखिए।

किला-जेलमें आपके साथ कैसा व्यवहार हुआ?

मेरा पूरा लिहाज रखा गया — उतना लिहाज, जितना कि नियमोंके अनुसार गवर्नर मेरे प्रति कर सकते थे। वहाँके अधिकारियोंने जिस ढंगका बरताव हमारे साथ किया, उसकी प्रशंसा किये बगैर मैं नहीं रह सकता। परन्तु इस दिशामें उनके अधिकार सीमित हैं।

और खाना?

साधारण खुराक।

जेलके किस हिस्सेमें आप रखे गये थे?

वतनियोंके हिस्सेमें।

फोर्ड्सबर्गकी मस्जिद तक की अल्प यात्रामें कुल इतनी ही बातचीत हो सकी। मस्जिदके सम्मेलन-स्थानपर श्री गांधी अपने बहुत-से देशभाइयोंसे मिले, यद्यपि समय अर्धरात्रिके बादका हो चुका था। उन्होंने उन वफादार अनुयायियोंको संक्षेपमें बताया कि उनकी रिहाई किन कारणोंसे हुई।

उपर्युक्त बातचीतसे मनपर यह छाप पड़ी कि श्री गांधी अपनी रिहाईको सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग लेनेवालोंकी विजय माननेको हरगिज तैयार नहीं थे। उलटे, वे इस बातसे बहुत खुश दिखाई दिये कि एक ऐसे समझौतेपर पहुँचा जा सका है, जिससे दोनों पक्षोंमें से किसीके सम्मान, साख या प्रतिष्ठाको क्षति नहीं पहुँची है।

बाकी एशियाई किलेसे आज सुबह रिहा किये जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

रैंड डेली मेल, ३१-१-१९०८

२०. भेंट: 'ट्रान्सवाल लीडर' को[1]

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ३०, १९०८]

कुछ भारतीय फेरीवालोंने, उनका खयाल है, कल सुबह एक अन्य सज्जनके साथ श्री गांधीको रेलवे स्टेशनकी ओर जाते देखा; उक्त सज्जन पुलिस थाना फोर्ड्सबर्गके हाकिम अधीक्षक वरनॉन निकले। किन्तु यह निश्चित नहीं हो सका कि साथमें श्री गांधी ही थे और उनके देखे जानेकी बात एक दिलचस्प अफवाहका आधार बन कर रह गई। दरअसल उपर्युक्त भारतीयोंका अनुमान ठीक था, क्योंकि सवा ११ बजेके करीब श्री गांधी पार्क स्टेशनके लिए रवाना हुए, जहाँसे वे अधीक्षक वरनॉनके साथ प्रिटोरिया गये। किन्तु श्री गांधीकी रिहाईपर, जो आज ही होनेवाली है, उनके साथियोंको कल रातको बड़ा अचम्भा हुआ। श्री गांधी प्रिटोरियासे १० बजे लौटे और उनसे मिलनेके लिए ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री ईसप मियाँके अतिरिक्त कोई नहीं था -- सारी बात इतनी खूबीके साथ छिपाकर रखी गई थी। 'लीडर'के एक प्रतिनिधिने श्री गांधीके पहुँचनेपर उनसे भेंट की। उनके सामान्य स्वास्थ्यपर इस कारावासका कोई असर दिखाई नहीं पड़ता था। वे काफी प्रसन्न थे।

जेलमें बरताव

यह पूछा जानेपर कि आपके साथ जेलमें किस प्रकारका बरताव किया गया, श्री गांधीने उत्तर दिया कि जेलके नियमोंके अन्तर्गत दी जा सकनेवाली रियायतों और मेहरबानियोंके लिए मैं और मेरे साथी कैदी गवर्नर तथा अन्य अफसरोंके प्रति बड़े ही कृतज्ञ हैं। परन्तु उन्होंने यह भी कहा कि उन नियमों और एशियाइयोंको दिये जानेवाले भोजन तथा निवासके बारेमें बहुत-कुछ कहनेको है। ये एशियाई एक-आध अपवादको छोड़कर हर तरहसे वतनियोंके समकक्ष कर दिये गये थे। श्री गांधीने फिर भी इस परिस्थितिपर बादमें अधिक विस्तारसे प्रकाश डालना ठीक समझा।

समझौता

ज्यादा बड़े मुद्दोंके सम्बन्धमें प्रश्नोंका उत्तर देते हुए श्री गांधीने कहा:

जो समझौता हुआ है वह अधिकांशमें वही है जो पंजीयन कानूनके अन्तर्गत की जानेवाली कार्रवाई शुरू होनेके पहले प्रस्तावित किया गया था। यह समझौता उपनिवेशमें रहनेवाले ऐसे प्रत्येक एशियाईकी पूरी-पूरी शिनाख्त दे देगा जिसकी उम्र सोलह वर्षसे ऊपर होगी और जो उपनिवेशमें रहने अथवा पुनः प्रवेश पानेका अधिकारी होगा। प्रस्तावके अनुसार शिनाख्त और कानूनके बीच मुख्य अन्तर है अनिवार्यताका दंश हटा दिया जाना । समझौता एशियाइयोंको उनकी आन और जिम्मेदारीपर छोड़ देता है। और अगर मेरे देशवासी ईमानदारीके साथ उसका पालन नहीं करते तो मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि हमारी स्थिति कानूनके

१. बादमें यह विवरण ८-२-१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में छोटे-मोटे परिवर्तनोंके साथ प्रकाशित हुआ था।

अन्तर्गत होनेवाली स्थितिसे भी बदतर होगी और यह योग्य ही होगा। परन्तु मुझे किसी प्रकारकी बाधा नहीं दिखाई देती। पिछले तीन हफ्तोंमें बड़े पैमानेपर जो गिरफ्तारियाँ हुई हैं, मैं समझता हूँ, उनके बारेमें एशियाइयोंको शिकायतका कोई कारण नहीं हो सकता। वह कार्रवाई कानूनके सम्बन्धमें हमारी भावनाओंकी उत्कटता और सचाईकी जाँच करनेके लिए जरूरी थी। मैं कह देना चाहता हूँ कि किलेमें बन्द हम लोगोंको एक बार फिर स्वेच्छया पंजीयनकी बात चलानेके बारेमें सरकारको दर्खास्त देनेकी अनुमति दी गई थी। और सरकारने यह कदम हमारे उस प्रार्थनापत्रके[1] उत्तरमें ही उठाया है। मेरी विनम्र सम्मतिमें सरकारने हमारी प्रार्थनाको मानकर वास्तविक शक्तिका परिचय दिया है। यहाँ मैं यह और कह देना चाहता हूँ कि जहाँतक मुझे पता है, एशियाई समुदायोंके नेतागण उपनिवेशवासियोंके इस निर्णयका वफादारीके साथ पालन करेंगे कि जो एशियाई अपने पूर्व-अधिवासके लिहाजसे उपनिवेशमें प्रवेश पानेके अधिकारी नहीं हैं, आगेसे उनका आव्रजन रोका जाना चाहिए।

जेलें आज खाली हो जायेंगी

गत रात्रि 'लीडर'के एक प्रतिनिधिको पता लगा है कि जेलोंमें बन्द भारतीय, जिनकी संख्या लगभग २२० है, आज छोड़ दिये जायेंगे। जहाँतक जोहानिसबर्गका सम्बन्ध है, प्रदर्शन आदि नहीं किया जायेगा। अगले दिनोंमें एशियाइयोंके नेता अपने देशभाइयोंको नई परिस्थिति समझायेंगे। नेताओंको पूरा बिश्वास है कि समझौतेका निष्ठाके साथ पालन किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, ३१–१–१९०८

२१. पत्र : 'इंडियन ओपिनियन'को[2]

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ३०, १९०८के बाद]

सम्पादक
'इंडियन ओपिनियन'

महोदय,

मेरे सह-कारावासियों तथा मेरे नाम मुबारकबादीके तारपर-तार चले आ रहे हैं, क्योंकि प्रेषकोंके विचारसे भारतीय पक्षकी विजय हुई है। हम तो इसे सत्यकी ही विजय मान सकते हैं। जो भी हो, क्या मैं अपने तथा अपने साथियोंकी ओरसे आपके समाचारपत्र द्वारा मुबारकबाद सम्बन्धी तारों और पत्रोंके अगणित प्रेषकोंको उनकी कृपापूर्ण भावनाके लिए धन्यवाद दे सकता हूँ? उन सब व्यक्तियोंको पृथक्-पृथक् रूपसे लिखना सम्भव नहीं हो सका और मेरा विश्वास है, वे इस अनिवार्य चूकके लिए हमें क्षमा करेंगे।

१. देखिए "पत्र : उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ ३९-४१।

२. इस पत्रके गुजराती रूपान्तर (पृष्ठ ५४) पर तारीख २ फरवरी १९०८ है। अनुमान है अंग्रेजी पत्र जनवरी ३०, १९०८ और फरवरी २, १९०८के बीच लिखा गया होगा।

मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ और आशा रखता हूँ कि यदि भविष्यमें फिर कभी ऐसा अवसर आया तो हम लोग सत्य, मान-मर्यादा और आत्मसम्मानकी खातिर जेल जाने अथवा अन्य किसी प्रकारकी मुसीबत झेलनेको -- यदि उसे मुसीबतके नामसे पुकारा जाये -- तैयार रहेंगे।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-२-१९०८

२२. भाषण : ब्रिटिश भारतीय संघकी सभामें[1]

[जोहानिसबर्ग
जनवरी ३१, १९०८]

जिस भगवान्पर विश्वास रखकर [मैंने] यह संघर्ष शुरू किया था और लोगोंको इसे चलानेकी सलाह दी थी, उस ईश्वरकी दी हुई इस अप्रत्याशित जीतपर उसीका आभार मानना है। ईश्वर सचाईको हमेशा मदद पहुँचाता है, ऐसा मैं मानता आया हूँ और इसलिए मैंने उसके नामपर संघर्ष शुरू किया था। उसमें इस दर्जे तक फतह मिली है। दी हुई सजा वापस लेकर और जेलके दरवाजे खोलकर सरकारने लोगोंको छोड़ दिया, इसका कारण क्या है? अपनी सचाई और दृढ़ता ही। मैं कहता था कि यदि हम सचाईपर ही चलेंगे तो यही गोरे हमारी तरफदारी करेंगे और हुआ भी वैसा ही। आजतक हमारे सच्चे संघर्षमें गोरोंने जो सहायता की है, हम उसके लिए भी आभारी हैं। उन लोगोंके प्रयत्न करनेका कारण भी यह है कि ईश्वरने उनके हृदयमें यह प्रेरणा उत्पन्न की कि मेरे सेवकोंपर जो अत्याचार हो रहा है, उसके लिए संघर्ष करो।

मेरे यह कहनेकी तो कोई जरूरत ही नहीं रहती कि जनरल स्मट्सने अपने एक भाषणमें[2] कहा है कि सबको जेलमें ठूँस देना भी सम्भव नहीं है। इस सबसे प्रकट होता है कि समाज एक होकर काम करे तो विजय अवश्य होती है। अब हमें अपनी शिनाख्त और कसौटीके विचारसे स्वेच्छया पंजीयन करा लेना है और सरकारने यह मंजूर किया है। इससे खूनी कानून सदाके लिए समाप्त हो जाता है। कानूनके कारण हमें जो कलंक सहना पड़ता था वह अब खत्म हो गया है। जो शिक्षित हैं और जिनके जमीन-जायदाद वगैरह है, सरकार उनके हस्ताक्षर स्वीकार करेगी और अशिक्षितोंको आवेदनपत्रपर दस अँगुलियाँ देनी पड़ेंगी। यद्यपि मैं स्वयं इसके विरुद्ध हूँ और मैं सरकारसे इसे हटवानेके लिए भरसक लड़ता रहूँगा, फिर भी यदि सरकार न माने और यदि अँगुलियोंकी छाप देनी ही पड़े तो इसमें मैं कुछ भी

१. गांधीजीके जेलसे छूटनेके दिन शामको ब्रिटिश भारतीय संघके तत्वावधानमें एक सार्वजनिक सभा हुई थी, जिसमें उन्होंने अपने साथी भारतीयोंको "समझौते" की शर्तोंके बारेमें बताया था। यह भाषण "समझौतेका खुलासा" शीर्षकसे केवल गुजराती विभागमें प्रकाशित हुआ था।

२. मेविलमें दिया गया भाषण; देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ १३।

हानि नहीं देखता; क्योंकि यह छाप हमें अपनी स्वेच्छासे देनी है। कोई अनिवार्य रूपसे माँगे तो नहीं दी जा सकती। और इस विषयमें एकमत होकर काम करनेके लिए सरकारने हमें तीन महीनेकी अवधि दी है। इसलिए मैं आपके हितके लिए जो बन पड़ेगा सो करूँगा।

कानूनके मुताबिक सरकारने बच्चोंका पंजीयन अनिवार्य कर दिया था; वह भी रद हो गया है। कानूनमें उपयुक्त संशोधन करनेका प्रश्न जब प्रिटोरियामें संसद शुरू होगी तब हाथमें लिया जायेगा। फिर भी फिलहाल हमें जेलसे रिहा कर दिया है; इसलिए हमें अपना सौजन्य दिखा देना है। सरकारसे कुछ लिखित रूपमें मिलना हमारे लिए व्यर्थ है। कारण कि यह काम संसदका है और इसलिए संसद जो कुछ करेगी उसीपर निर्भर रहना है। जिस तरह लॉर्ड राबर्ट्स आदि हमें बड़ी संसदके भरोसेपर वचन देते थे उसी प्रकार उपनिवेश-सचिवने भी संसदके भरोसेपर हमें छोड़ दिया है; और जब संसद प्रारम्भ होगी तब इस कानूनसे[1] हमें छुटकारा मिलेगा। अर्थात् कानून वापस लेकर प्रवासी विधेयकमें फेरफार किया जायेगा। इस तरह सरकारका अभिप्राय भी पूरा हो जायेगा और हमारे मानकी रक्षा भी हो जायेगी, तथा हम जो आजादी माँगते थे वह मिल जायेगी।

हमारी विजयका कारण तो जोहानिसबर्गसे १५०, प्रिटोरियासे २५ और अन्य स्थानोंसे लोग जेल गये, यही है। स्त्रियोंने भी अपना कर्त्तव्य पूरी तरह निबाहा है। धरनेदारोंने तो इसमें बेहद चतुराई दिखाई है; इनकी होशियारीकी तारीफ स्वयं सरकार किये बिना नहीं रह सकी। और समाजकी जबर्दस्त दृढ़ता देखकर वही सरकार ठिकानेपर आ गई है, यह पक्की बात है। ईश्वरपर भरोसा रखकर जो संघर्ष चलाया जाता है उसमें विजय अवश्य मिलती है। अँगुलियोंकी शर्त हटवानेकी आशा भी मुझे है।

हमें अपनी इस जीतसे फूल नहीं जाना चाहिए। और गोरोंको सरकारके विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहिए। नम्रता ईश्वरको भी प्यारी है और यही मार्ग अपने सच्चे संघर्षमें विजय पानेका भी है। हमें सरकारके साथ छल नहीं करना है, बल्कि सरकार और उपनिवेशके गोरोंको अपने अच्छे व्यवहारसे यह दिखा देना है कि हम अपने मानकी रक्षा करनेवाले कानूनकी इज्जत करते हैं। यदि, कदाचित् सरकारसे लापरवाही हुई हो और उसके कारण ऐसी गुंजाइश रह गई हो जिससे बेईमानी करनेका मौका मिल सकता हो, तो वैसी गुंजाइश भी हमें खत्म कर देनी है। इससे सरकार खुद जान जायेगी कि ये लोग शरारत करनेवाले नहीं हैं। और यदि हमने अपनी भलमनसाहतके अनुसार आचरण करके सरकार तथा उपनिवेशके लोगोंपर अपनी छाप डाल दी तो राहत जरूर मिलेगी।

सरकार हमें धोखा भी नहीं दे सकती; क्योंकि हमारे पास सत्याग्रहका जबर्दस्त हथियार है। और इसी हथियारसे हम सरकारको ठिकाने लाये हैं। इसके बाद सरकार जो-कुछ करेगी वह हम लोगोंको साथ रखकर करेगी। जबतक हम जेलको नजरके सामने रखकर संघर्ष करते रहेंगे तबतक वह सरकारको ठिकाने लानेके लिए पर्याप्त होगा।

हम इस समय जो करते हैं सो सभी-कुछ हमें चुपचाप करना है। और यदि हममें से कोई सरकार अथवा अन्य किसीको खबर देगा तो वह पक्का देशद्रोही होगा। सरकारका जासूस बननेमें कोई लाभ नहीं है। कौमका साथ देनेमें लाभ है। जिन लोगोंने नये कानूनके अन्तर्गत पंजीयन कराया है वे भी यदि इस कानूनकी रूसे पंजीयन करायेंगे तो छुटकारा पा जायेंगे। हमें अपने वचनका भी पालन करना है और इस तरह अपनी सचाईका नमूना पेश

करना है। संसदके बैठते ही [एशियाई पंजीयन] कानून रद होगा और प्रवासी कानूनमें फेरफार होगी और इसके द्वारा डर्बन जैसा अधिवासी प्रमाणपत्र मिलेगा।

जिन्होंने हमें सच्ची मदद पहुँचाई है हमें उनका एहसान मानना है। इनमें से एक श्री पोलक[1], दूसरे श्री रिच[2] और 'लीडर'के सम्पादक श्री कार्टराइट[3] हैं। उसी प्रकार लन्दनकी समितिके सदस्य तथा अन्य जिन लोगोंने संघर्षमें योग दिया है, उनका आभार माननेका प्रस्ताव पास करना है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–२–१९०८

२३. भेंट: रायटरको

जोहानिसबर्ग
जनवरी ३१, १९०८

श्री गांधीने भेंटमें कहा कि जिन्होंने अपने अधिवासका अधिकार सिद्ध कर दिया है, उन्हें उपनिवेशमें छेड़छाड़से मुक्त रखकर छोड़ देना ही काफी नहीं होगा; बल्कि उन्हें हर प्रकारका प्रोत्साहन देना चाहिए, ताकि वे एक सड़ा हुआ घाव न रहकर, जहाँतक हो सके समाजमें घुलमिल जायें और दक्षिण आफ्रिकाके भावी राष्ट्रका अंग बन जायें। प्रमुख जातिको उस समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिए जब निम्न स्तरकी जातियाँ सभ्यताकी मापमें ऊँची उठा दी जायें। श्री गांधी जनरल स्मट्ससे इस बातमें सहमत हुए कि नेटालमें गिरमिटिया प्रथा किसी भी मूल्यपर बन्द हो जानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया, ७–२–१९०८

१. हैरी सॉलोमन लिऑन पोलक, **ट्रान्सवाल क्रिटिक**के सहायक सम्पादक; गांधीजीसे जोहानिसबर्गके शाकाहारी भोजनगृहमें अचानक मुलाकात होनेके बाद वे **इंडियन ओपिनियन**में आ गये। उन्होंने फीनिक्सके जीवनको उसी प्रकार अपनाया था "जिस प्रकार बतख पानीके जीवनको अपनाती है।" गांधीजी, जो उनके विवाहके अवसरपर शहबाला बने थे, उनके बारेमें कहते हैं, "हम सहोदर भाइयोंकी तरह रहने लगे।" १९०६ में गांधीजीके इंग्लैंड जानेके बाद उन्होंने **इंडियन ओपिनियन**के सम्पादनका भार सम्हाला। १९१३ में ट्रान्सवालके 'महान अभियान'के बाद उन्हें गिरफ्तार किया गया। देखिए **आत्मकथा,** अध्याय १८, २१ और २२ तथा **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय २३ और ४५।

२. एल० डब्ल्यू० रिच थियॉसफिस्ट थे और गांधीजीके पास एक उम्मीदवार वकीलके रूपमें आनेसे पहले वे जोहानिसबर्गकी एक व्यावसायिक फर्मके प्रबन्धक थे। लन्दनसे उन्होंने बैरिस्टरीकी परीक्षा पासकी (देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ७१ और ९२); वे दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिके मन्त्री रहे (देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २४३) और बादको उसके "वास्तविक प्रणेता" बन गये। देखिए **आत्मकथा,** भाग ४, अध्याय ४ और १३ तथा **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय, १४ और २३। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंपर लिखी उनकी पुस्तिकाके लिए, देखिए खण्ड ७, परिशिष्ट ८।

३. अल्बर्ट कार्टराइट, **ट्रान्सवाल लीडर**के सम्पादक; गांधीजीसे उनका सम्पर्क सन् १९०६ में इंग्लैंडमें हुआ था। जब गांधीजी प्रिटोरिया जेलमें थे तब उन्होंने श्री स्मट्स और गांधीजीके बीच मध्यस्थता की थी। तबसे पूरे दक्षिण आफ्रिकी संघर्षमें वे "शान्तिके दूत"का कार्य करते रहे। देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय २१ और २५।

२४. तार[1] : द० आ० ब्रि० भा० समितिको[2]

[जोहानिसबर्ग]
फरवरी १, १९०८

[अफ्रीकालिआ[3]
लन्दन]

समझौतेमें अपेक्षा है कानून रद हो; और वही जो पहलेके स्वेच्छा-प्रस्तावमें है।

[गांधी]

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ३७२२/०८

२५. द० आ० ब्रि० भा० समितिको लिखे पत्रका एक अंश[4]

फरवरी १, १९०८

. . . यदि तीन मासके अन्तमें पंजीयन संतोषजनक नहीं होता तो जिन्होंने पंजीयन न कराया हो उनके खिलाफ कानून लागू किया जा सकता है। दूसरी ओर, यह गृहीत है कि यदि हम अपना इकरार पूरा कर देते हैं तो एक संशोधन-अधिनियम द्वारा कानून रद कर दिया जायेगा। जो किया जा चुका है उसे कानूनी रूप देनेके लिए संसदके आगामी सत्रमें एक विधेयक पेश किया जायेगा . . .।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस : जूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ३७२२/०८

१. यह उस संक्षिप्त विवरणसे उद्धृत किया गया है, जो रिचने उपनिवेश कार्यालयको भेजा था, और बादमें छापा गया था। यह तार **इंडियन ओपिनियन**के ७–११–१९०८के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

२. दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति (साउथ आफ्रिका ब्रिटिश इंडियन कमिटी)।

३. दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति, लन्दनका तारका पता।

४. ६ अक्तूबर, १९०८ को श्री रिचने उपनिवेश कार्यालयको एक पत्र भेजा था। यह अंश उसके साथ संलग्न संक्षिप्त विवरणसे उद्धृत किया गया है।

२६. पत्र[1] : जनरल स्मट्सको

जोहानिसबर्ग,
फरवरी १, १९०८

प्रिय श्री स्मट्स,

गत गुरुवारको मेरे और श्री चैमनेके बीच जो बातचीत हुई उसके पश्चात् मैंने आपसे पुनः भेंट करनी चाही थी और श्री लेनने[2] सूचित किया था कि मेरे जानेके पहले आपसे मिलना हो सकेगा। परन्तु वैसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

श्री चैमनेसे जो बातचीत हुई उसने मुझे थोड़ा बेचैन कर दिया; क्योंकि वे तब भी एशियाई कानूनका राग अलाप रहे थे। वस्तुतः उनकी बातसे मैंने यह समझा कि अब पंजीयनका जो कार्य होगा उसे उक्त अधिनियमके अन्तर्गत वैध रूप दे दिया जायेगा। जब आपसे भेंट हुई थी तब मैंने ऐसा बिलकुल नहीं समझा था। और यह बात सर्वश्री क्विन, नायडू और मेरे संयुक्त-पत्रसे[3] भी स्पष्ट हो जाती है। मेरी बड़ी इच्छा है कि यह कार्य बिना किसी कठिनाईके और आपको पूर्ण सन्तोष देने योग्य ढंगसे पूरा हो जाये। इसलिए मैं स्वभावतः इस बातके लिए बहुत चिन्तित हूँ कि कोई भी गलतफहमी बीचमें न आ पाये। कृपया मेरी इस बातका भी विश्वास कीजिए कि एशियाई-विरोधी आन्दोलनकारियोंके शोर-गुलके कारण उत्पन्न आपके मार्गकी कठिनाइयाँ दूर करनेमें मैं कुछ उठा नहीं रखूँगा। इसलिए, क्या आप इस सम्बन्धमें मुझे पुनः आश्वस्त करनेकी कृपा करेंगे? स्वेच्छया पंजीयनको एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत वैध बनाना फिरसे इस प्रश्नके मर्मको कुरेदना है। आपने कृपापूर्वक मुझसे कहा था कि इसको कानूनी रूप देनेके तरीकेपर आगे चलकर हमारे बीच विचार-विमर्श किया जायेगा। मैं पहले ही सुझाव दे चुका हूँ कि प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियममें जितना आवश्यक हो उतना संशोधन करके उसके अन्तर्गत यह कार्य करना सर्वोत्तम उपाय है।

मैं यह भी मान लेता हूँ कि आवेदन और पंजीयनका फार्म समाजके नेताओंसे सलाह करके तय किया जायेगा। और यह भी, कि इसे यथासम्भव शीघ्र किया जायेगा, जिससे पंजीयनका कार्य आगे बढ़े।

इसके अलावा, मैंने दस अँगुलियोंके निशानके बारेमें श्री लेनके पास एक सन्देश छोड़ दिया था। इस बारेमें मैंने श्री चैमनेसे विचार-विनिमय किया था, और वे दसों अँगुलियोंके निशानोंका कोई भी औचित्य नहीं बता सके; बल्कि उन्होंने स्वीकार किया कि शिनाख्तके लिए एक अँगूठेका निशान बहुत काफी है। व्यक्तिगत रूपसे मेरे लिए अँगूठेकी निशानी

१. फरवरी १ से लेकर जून १३, १९०८ तक गांधीजी और जनरल स्मट्सके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ वह "क्या मंसूखीका वादा किया गया था : सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार" शीर्षकसे **इंडियन ओपिनियन**में प्रकाशित किया गया था। इस पत्रकी एक नकल रिचने अपने २७ जुलाई १९०८ के पत्रके साथ संलग्न पत्रके रूपमें उपनिवेश कार्यालयको भी भेजी थी।

२. स्मट्सके निजी सचिव।

३. देखिए "पत्र : उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ ३९–४१।

अथवा समस्त अँगुलियोंकी छाप देना एक ही सा है; किन्तु एशियाइयोंमें बहुत-से ऐसे हैं जिन्हें दूसरी बातमें अपार कठिनाई प्रतीत होती है, और चूँकि मैं जानता हूँ कि आप केवल कारगर शिनाख्त चाहते हैं, इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप अँगूठेका निशान स्वीकार करेंगे। अपनी पूछताछके उत्तरमें मुझे गिरमिटिया प्रवासियोंके संरक्षक और नेटालके मुख्य प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीके तार मिले हैं। संरक्षक महोदय लिखते हैं:

> **गिरमिटिया भारतीयोंसे, उनके आगमनपर, दसों अँगुलियोंके निशान लेनेका तरीका अप्रैल १९०३ से प्रारम्भ हुआ, जब वह वांछनीय समझा गया।**

प्रवासी प्रतिबन्धक अधिकारीने, जो स्वतन्त्र भारतीयोंके आव्रजनका नियन्त्रण करता है, नीचे लिखे अनुसार उत्तर दिया है:

> **आपके आजकी तारीखके सिलसिलेमें -- इस विभागसे जो प्रमाणपत्र दिये जाते हैं, उनके लिए केवल दोनों अँगूठोंके निशान आवश्यक हैं।**

अब आप देखेंगे कि कैप्टन (?)[१] क्लार्कने आपको जो सूचना दी है वह गलत है। मेरे दावेके पक्षमें आव्रजन-विभाग और संरक्षक-विभाग द्वारा बरता जानेवाला भेद भी अत्यन्त मूल्यवान प्रमाण है। संरक्षकको एशियाइयोंके एक ऐसे वर्गके लोगोंसे साबिका पड़ता है जिनके सामने अपनी शिनाख्त छिपानेके अनेक प्रलोभन होते हैं। इसलिए उनके सम्बन्धमें वर्गीकरण आवश्यक है। आव्रजन-विभागको एशियाइयों तथा अन्य लोगोंके ऐसे तबकेसे काम पड़ता है जिसे नेटालमें प्रवेश करने और वहाँ बने रहनेका दावा सिद्ध करनेके लिए हमेशा अपनी शिनाख्त प्रमाणित करनी पड़ती है। इसलिए उस विभागको केवल अँगूठोंके निशानोंकी आवश्यकता होती है। क्या इससे यह पूरी तरह प्रकट नहीं होता कि आपको समस्त अँगुलियोंके निशानोंकी बिलकुल जरूरत नहीं है? और जैसा कि मेरे विशेषज्ञ सलाहकार बताते हैं, वर्गीकरणका तरीका बिलकुल गैर-जरूरी होनेके अलावा फक्त शिनाख्तके तरीकेके मुकाबलेमें महँगा भी है। केपमें भी सिर्फ अँगूठेके निशान ही जरूरी होते हैं। और इस सिलसिलेमें मैं आपके मनमें यह अवश्य बैठा देना चाहता हूँ कि विवेकपर छोड़ देनेकी बातका परिणाम पक्षपात और अन्तमें जालसाजी भी हो सकता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि धनसे भरे-पूरे किसी व्यक्तिका ईमानदार होना जरूरी नहीं है और फिर भी, चूँकि वह दूसरी तरह जाना-बूझा हो सकता है, उसका केवल हस्ताक्षर स्वीकार कर लिया जायेगा। मेरे विचारसे, अपवाद केवल उन लोगोंके मामलेमें किया जाना चाहिए जो आव्रजन अधिनियमके अन्तर्गत निर्धारित शैक्षणिक परीक्षा पास कर लें। निःसन्देह, उनका तो व्यक्तित्व ही उनकी शिनाख्त है। परन्तु दूसरोंके बारेमें मैं अपने अनुभवके बलपर यह आग्रह करता हूँ कि विवेकवाली बात छोड़ दी जाये। यदि आपने दसों अँगुलियोंके निशानोंका आग्रह रखा तो विवेक सम्बन्धी धाराके प्रयोगके लिए प्रार्थनापत्रोंकी भरमार हो जायेगी। और चूँकि मेरे पास अँगुलियोंके निशानोंके बारेमें विशेषज्ञकी सम्मति मौजूद है, मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि शिनाख्तके लिए आपको अँगुलियोंके निशानोंकी आवश्यकता नहीं है।

मैं यह भी सूचित करना चाहता हूँ कि भारतीयोंको बिना परवानेके व्यापारकी खुली छूट देनेसे उपनिवेशियोंमें हो-हल्ला मचेगा। क्या आपका यह खयाल नहीं है कि उन्हें

१. प्रश्न-चिह्न मूलमें है।

परवाने दे देना अथवा कच्ची रसीदें देकर उनसे परवानोंका शुल्क जमा करा लेना ज्यादा अच्छा होगा?

मैं आशा करता हूँ कि इस पूर्णतया व्यक्तिगत और गोपनीय पत्रको आत्मीयताके स्वरमें लिखकर मैंने उचित ही किया है; और आपका उत्तर भी ऐसा ही माना जायेगा। मैं सार्वजनिक रूपसे जो वक्तव्य दे रहा हूँ, उनमें से किसीमें भी यदि आपको थोड़ा-भी अनौचित्य दिखा हो तो मेरी गलती सुधारनेकी कृपा करें।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

जनरल जे० सी० स्मट्स
प्रिटोरिया

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८
तथा इंडिया ऑफिस : जूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, २८९६/०८

२७. पत्र : श्री और श्रीमती वॉगलको

जोहानिसबर्ग
फरवरी १, १९०८

प्रिय श्री और श्रीमती वॉगल[1],

बधाईके[2] लिए, कृपया, मेरा धन्यवाद स्वीकार करें। निस्संदेह मेरा यह विश्वास है कि आपकी ये शुभ कामनाएँ केवल औपचारिक नहीं, बल्कि आपके हृदयकी अभिव्यक्ति हैं।

मुहम्मद खाँने[3] कल मुझे बताया कि श्रीमती वॉगलकी तबीयत अच्छी नहीं रहती। यह सुनकर मुझे दुःख हुआ। चाहता हूँ कि मैं स्वयं उन्हें देखनेके लिए आऊँ और साथ ही आप दोनोंको व्यक्तिगत रूपसे धन्यवाद दूँ। किन्तु फिलहाल तो मुझे कामसे छुटकारेकी बात ही नहीं सोचनी है। तोड़नेका काम समाप्त हो चुका; अब बनानेका कार्य शुरू हुआ है, जो उससे कहीं ज्यादा कठिन है। किन्तु यह समझकर कि मैंने अपने बलका नहीं बल्कि सत्यके, जिसे दूसरे शब्दोंमें ईश्वर कहते हैं, बलका भरोसा किया है, मैं बिलकुल निश्चिन्त हूँ।

आपका हृदयसे,
मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ४४०७)से। सौजन्य : अरुण गांधी।

१. वॉगल एक वस्त्र-विक्रेता थे। उन्हें तथा उनकी पत्नीको भारतीय संघर्षसे बड़ी सहानुभूति थी। श्रीमती वॉगल भारतीय महिलाओंमें गहरी दिलचस्पी लेती थीं और उन्हें पढ़ाया भी करती थीं।

२. आंदोलनके प्रथम दौरमें गांधीजीके सफल होने तथा उनके जेलसे छूटनेपर।

३. गांधीजीके एक कर्मचारी तथा सत्याग्रही।

२८. भेंट : पत्र-प्रतिनिधियोंको[1]

[जोहानिसबर्ग
फरवरी १, १९०८]

. . . इस लड़ाईसे कमसे-कम एक बात असन्दिग्ध रूपसे प्रकट हो गई है कि ट्रान्सवालके भारतीय स्वाभिमानी हैं और मनुष्यों जैसा बरताव पानेके लायक हैं। उनके बारेमें अक्सर यह कहा जाता रहा है कि उनमें पारस्परिक हितके लिए मिलकर काम करनेकी शक्ति नहीं है। मेरा खयाल है कि मैं अपने देशवासियोंके बारेमें यह दावा उचित रूपसे कर सकता हूँ कि उन्होंने अप्रतिम स्वार्थत्यागका परिचय दिया है। सैकड़ों गरीब फेरीवालोंने मजिस्ट्रेट द्वारा किये गये छोटे-छोटे जुर्माने देनेके बदले केवल सिद्धान्तके लिए जेलकी मुसीबतें झेलना पसन्द किया है। अपने वकालतके अनुभवमें मैंने ऐसे मुवक्किल अधिक नहीं देखे जिन्होंने जुर्मानेका विकल्प होनेपर जेल जाना पसन्द किया हो। यदि जुर्माना देनेपर जेलको टालना सम्भव होता था तो वे उसे टालनेके लिए भारीसे-भारी जुर्माने देनेके लिए तैयार रहते थे। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि उपनिवेशके गरीबसे-गरीब भारतीयोंने जो एकता दिखाई है उसने तो एक हदतक मेरी भी आँखें खोल दी हैं। और मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि इससे उपनिवेशियोंकी आँखें भी खुल गई होंगी। इसलिए, मेरी समझमें, अभी जो समझौता हुआ है वह अगर भारतीयोंके लिए भी सम्मानप्रद हो — और सरकारके लिए तो है ही — तो कहना होगा कि भारतीयोंने उसके लिए लगभग अपना खून बहाया है। सैकड़ों भारतीयोंने इसके लिए जो त्याग किया है उसे ठीक-ठीक बताना सम्भव ही नहीं है। और मैं इस वर्गमें उन भारतीयोंको भी गिनता हूँ, जो संघर्षकी तकलीफें उठानेमें अपने-आपको असमर्थ मानकर उपनिवेशको ही छोड़कर चले गये हैं। उपनिवेशमें जिनके बहुत बड़े-बड़े भण्डार थे, ऐसे व्यापारी भी आनेवाली हर मुसीबतके प्रति उदासीन हो गये; किन्तु उन्होंने उस कानूनके आगे सिर झुकाना स्वीकार नहीं किया जिसे वे जलील करनेवाला मानते हैं। मेरा तो खयाल है कि अपने-आपको विश्वासके योग्य सिद्ध करनेके लिए भारतीयोंने जो-कुछ किया वह करना जरूरी था। और उनके प्रार्थनापत्रको स्वीकार करके सरकारने तीन महीनेकी रियायत देनेके सिवा कुछ अधिक नहीं किया है। अब हम कसौटीपर कसे जा रहे हैं। मेरी समझमें तो असली काम अब शुरू होता है। अब हमें अपनी बाजी सीधे और सम्मानप्रद ढंगसे खेलनी है।

हमें अब सरकार और उपनिवेशियोंको बता देना है कि एक समूहके रूपमें भारतीय कौमका धोखा-धड़ीसे उपनिवेशमें घुसनेसे कोई ताल्लुक नहीं है और यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे हम जरा भी बँधे हुए नहीं हैं, तथापि हम स्वीकार करते हैं कि ऐसे प्रत्येक एशियाईकी, जिसे

१. यह **इंडियन ओपिनियन**में "श्री गांधीसे भेंट: सीधा और सम्मानप्रद रुख" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। भेंटकी तिथिके विषयमें देखिए पादटिप्पणी पृष्ठ ५४ ।

उपनिवेशमें बने रहने या उपनिवेशमें पुनः प्रवेशका अधिकार है, पूरी-पूरी शिनाख्त देना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है। अगर हम यह करनेमें सफल हो गये तो ब्रिटिश भारतीयोंके कट्टरसे-कट्टर विरोधीको भी मानना पड़ेगा कि जो लोग उपनिवेशके स्थायी निवासी होनेका अपना अधिकार सिद्ध कर दें और सरकारको अपनी पूरी-पूरी पहचान दे दें उन्हें उपनिवेशमें न केवल बगैर किसी छेड़छाड़के रहने दिया जाये, बल्कि ऐसे लोगोंको हर तरहका प्रोत्साहन दिया जाये, ताकि वे उपनिवेशमें एक सड़े हुए घावके रूपमें पड़े रहनेके बदले, जहाँतक सम्भव हो, यहाँके समाजमें घुल-मिल जायें और भावी दक्षिण आफ्रिकी राष्ट्रके एक अंग बन जायें। मेरा विश्वास है कि दक्षिण आफ्रिकामें असली राजनीतिक निपुणता यहाँके किसी वर्गके निवासियोंके साथ अछूतों या पशुओंकी तरह व्यवहार करनेमें नहीं है, बल्कि मनुष्योचित व्यवहार करने और उन्हें अधिक उन्नत बनानेमें है। अनुचित होड़ और इस तरहके सवाल केवल इसलिए पैदा होते हैं कि कभी-कभी ऐसी होड़के उदाहरण देखनेमें आते हैं। यदि दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाली विभिन्न कौमोंको नागरिकताका सही-सही ज्ञान करा दिया जाये तो इन सारी बातोंका निश्चय ही इलाज किया जा सकता है। नागरिकतासे एक क्षणके लिए भी मेरा अभिप्राय सारी कौमोंको मताधिकार देनेका दावा पेश करना नहीं है। परन्तु मैं यह जरूर चाहता हूँ कि शासक कौम उस दिनकी प्रतीक्षा करे जब नीचे स्तरवाले समाजोंका दर्जा ऊपर उठाया जायेगा। सारे प्रश्नको इस दृष्टिसे देखते हुए नेटालके गिरमिटिया भारतीयोंके सम्बन्धमें जनरल स्मट्सने जो शब्द कहे हैं उनसे पूरी तरहसे सहमत होनेमें कमसे-कम मुझे कोई पशोपेश नहीं है। सच तो यह है कि वहाँके ब्रिटिश भारतीय सदासे यही कहते रहे हैं कि किसी भी कीमतपर गिरमिटिया मजदूरोंकी प्रथाको बन्द कर देना चाहिए। भारतीयों, अर्थात् स्वतंत्र भारतीयोंने कभी इस प्रथाको न तो चाहा है और न बढ़ावा ही दिया है। और मैं स्वीकार करता हूँ कि यदि नेटालमें गिरमिटिया मजदूरोंकी प्रथा न होती तो एशियाई प्रश्नने जो तकलीफ दी है, वह न होती। निश्चय ही मेरा यह विश्वास है कि जबतक नेटाल बाहरसे गिरमिटिया मजदूर लाता रहेगा तबतक एशियाइयों-सम्बन्धी कोई-न-कोई परेशानी बनी ही रहेगी। परन्तु मेरे इस कथनका कोई यह अर्थ न लगा ले कि गिरमिटिया मजदूर आजाद होकर ट्रान्सवालमें घुसे चले आ रहे हैं। मैं जानता हूँ कि पहले इस तरहकी बातें कही गई हैं। परन्तु मैं निश्चित जानता हूँ कि वे एकदम निराधार हैं। इसका अन्य कोई कारण न हो तो भी कमसे-कम एक कारण तो है ही कि उनपर बहुत कड़ी निगरानी है। और भारतसे आये हुए किसी भारतीयको बगैर निःशुल्क पासके उपनिवेशसे बाहर कहीं जाने नहीं दिया जाता। नेटालका प्रवासी विभाग प्रत्येक गिरमिटिया भारतीयका पता लगा सकनेकी स्थितिमें है।

किला-जेलके अनुभवोंके बारेमें पूछे जानेपर श्री गांधीने कहा :

जहाँतक जेलके अधिकारियोंका प्रश्न है, उन्होंने मुझे आराम पहुँचानेमें कोई बात उठा नहीं रखी। गवर्नर तथा अन्य समस्त अधिकारियोंका व्यवहार बड़ा कृपापूर्ण और सौजन्ययुक्त रहा। गवर्नर प्रतिदिन आते थे और नियमित रूपसे प्रतिदिन पूछते थे कि हमारी कोई शिकायत या जरूरत तो नहीं है। और अगर कुछ होता तो तुरन्त उसका उपाय हो जाता। अगर हमें किसी चीजकी जरूरत होती तो जेलके नियमोंके अनुसार पूरी की जा सकनेवाली कोई भी बात तुरन्त पूरी कर दी जाती। हमें जेलके पुस्तकालयसे तथा बाहरसे भी पुस्तकें प्राप्त करनेकी सुविधा दी गई थी।

श्री गांधीने यह भी कहा कि कलके 'ट्रान्सवाल लीडर' में[1] छपे हुए कुछ शब्दोंका अर्थ कहीं गलत न लगा लिया जाये इसलिए यह कह देना जरूरी है कि जहाँतक उनका सम्बन्ध है वहाँतक जेलमें पूरी सफाई रखी जाती थी। इसका अपवाद सिर्फ वह जगह थी, जहाँ ऐसे कैदियोंको जिन्हें उनकी अपनी-अपनी कोठरियोंमें नहीं भेजा जा सकता था, रुकना पड़ता था। वहाँपर खटमल बहुत थे। ये लकड़ीकी दरारोंमें से निकलकर आते थे। इसमें दोष जेलके अधिकारियोंका नहीं था, बल्कि इसका कारण था जगहकी बेहद कमी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–२–१९०८

२९. पत्र: 'इंडियन ओपिनियन' को

जोहानिसबर्ग
फरवरी २, १९०८

सम्पादक
'इंडियन ओपिनियन'

महोदय,

संघ तथा मेरे नाम और उसी प्रकार रिहा होनेवाले भारतीयोंके नाम बधाईके तारोंका पार नहीं है। पत्र भी बहुत आये हैं। सबको अलग-अलग जवाब देनेका समय नहीं है, इसलिए मैं अपने साथियोंकी और अपनी ओरसे तार भेजनेवाले तथा पत्र लिखनेवाले सभी भाइयोंको आपके इस अखबार द्वारा धन्यवाद देनेकी अनुमति चाहता हूँ। और अलग-अलग उत्तर नहीं दे पाया हूँ, इसकी क्षमा माँगता हूँ और मैं ऐसी कामना करता हूँ तथा ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि जब फिर ऐसा अवसर आये तब ये कैदी तथा अन्य हम सब भारतीय सत्य और देशके निमित्त वैसा ही करें जैसा भारतीय कैदियोंने इस समय किया है।

आपका, आदि,
मोहनदास करमचंद गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–२–१९०८

१. **ट्रान्सवाल लीडर** में गांधीजीकी रिहाईकी और ब्रिटिश भारतीयों एवं जनरल स्मट्सके बीच हुए समझौतेकी शर्तोंकी घोषणा एक खबरमें की गई थी। यहाँ कदाचित् उसीका उल्लेख किया गया है। खबर यह थी: "... स्वयं एशियाई जिस राहतसे एक बार फिर खुली हवामें साँस लेंगे वह शायद जेल-अधिकारियोंकी राहतसे बड़ी न होगी। जेल-अधिकारियोंको उन अनिच्छुक मेहमानोंसे मुक्ति मिल जायेगी, जिन्होंने अपनी संख्याके कारण, अपने विशिष्ट भोजनके कारण और अपने निरपराधी स्वरूपके कारण अनेक सरकारी जेलोंके साधनोंकी कड़ीसे-कड़ी परीक्षा की है। इन कैदियोंको अत्यन्त कष्ट रहा है। जोहानिसबर्ग जेलके एक छोटेसे चौकमें, जिसमें ४५ बंदियोंकी गुंजाइश है, १५० से अधिक लोगोंको इस कष्टप्रद मौसममें अपने दिन बिताने पड़े हैं। दो भारतीय पंक्तिमें खड़े-खड़े गर्मीके कारण बेहोश होकर गिर पड़े। एशियाइयोंकी यह बड़ी शिकायत है कि जोहानिसबर्ग जेलमें प्रवेशके समय जिस कमरेमें कैदियोंको कपड़े बदलवानेके लिए ले जाया जाता है, उसकी छत और दीवारोंमें इतने खटमल, पिस्सू आदि हैं कि उनसे अपने कपड़ों और बालोंको बचाना असम्भव है। ये उसकी पुरानी और सड़ी हुई लकड़ीमें पैदा हो गये हैं...।" यह खबर **ट्रान्सवाल लीडर** में ३१–१–१९०८ को छपी थी और इसलिए यह भेंट १ फरवरी १९०८ को हुई होगी।

३०. भाषण: ब्रिटिश भारतीय संघकी सभामें[1]

[जोहानिसबर्ग]

मैंने सत्याग्रहीकी हैसियतसे काम किया है और करूँगा। अर्थात् ईश्वरके सिवा मैं किसी औरसे डरूँ, यह नहीं हो सकता। कुछ लोगोंने धमकियाँ दी हैं कि "यदि समाज दस अँगुलियोंकी छाप देना स्वीकार कर लेगा तो मार पड़ेगी।" उन लोगोंको मैं बता देना चाहता हूँ कि मैं स्वयं जेलमें दो बार अँगुलियोंकी छाप दे चुका हूँ। इसलिए अगर मारना ही हो तो सबसे पहले मुझे मारें। मैं इसके खिलाफ मजिस्ट्रेटके सामने फरियाद करने नहीं जाऊँगा, बल्कि जो मारेगा उसका एहसान मानकर धन्यवाद दूँगा कि मेरे भाईकी लाठी मुझपर पड़ी। मैं इसमें अपनी इज्जत समझूँगा। जो काम हुआ है उसे मैंने ही किया है और आगे भी मैं ही जिम्मेदार रहूँगा। इसलिए किसी बातके लिए किसी दूसरेको उलाहना न दिया जाये बल्कि मुझे दिया जाये। मैं कौमका नेता बनकर घमण्ड करना अथवा प्रतिष्ठा पाना नहीं चाहता। मैं तो उसके सेवककी भाँति ही रहना चाहता हूँ। और उसके लिए मुझसे समाजकी जितनी सेवा बन पड़ेगी उतनी करनेमें मैं आनन्द मानूँगा। इसीमें मेरा गौरव भी है। वास्तविकताको प्रकट करना मेरा काम है। और यह मैं शुरूसे करता आया हूँ। नये कानूनमें केवल मेरे हस्ताक्षर लेकर पंजीयन करा लेनेके लिए कहा जाता तो भी मैं तो इनकार ही करता। नया कानून टूटा, इसलिए स्वेच्छापूर्वक पंजीयन करवानेको मैं इज्जतका काम समझता हूँ। कानूनके रद हो जानेसे हमारी टेक, सौगन्ध और हठ, सबकी रक्षा हो जाती है। इससे मानो हमें कुछ मनुष्यता मिली। कानूनके बारेमें मैं जितना जानता हूँ और समझा सकता हूँ, उतना दूसरा कोई नहीं समझा सकेगा। इसमें मेरे अभिमानकी कोई बात नहीं है। परन्तु मैं जो सलाह दूँगा सो अपनी समझके अनुसार सही ही दूँगा। सन् १९०३ से आज तक की सारी घटनाओंको मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ। आजतक की लड़ाईमें हमने अभीतक केवल एक यही काम किया है कि जमीन साफ कर ली है। अब उसपर मकान बनानेका काम बाकी है। मकान कैसे बाँधा जाये, उसकी रचना कैसी हो, यह सब अभी निश्चय करना है। अभी सवाल दस अँगुलियोंकी छाप देनेतक नहीं आया है। अगर देनी भी पड़े तो हम अपनी मर्जीसे ही देंगे। इस बारेमें मैं जो कुछ कर सकता हूँ सो कर रहा हूँ। ऐसा ही मैं पहले भी कह चुका हूँ। मुझे फिर कह देना चाहिए कि यह काम हमको बिलकुल खानगी तौरसे करना है। शोर नहीं करना है। यदि हम शोर करेंगे तो हमारी उतनी हानि होगी। हम हर हालतमें अत्यन्त नम्रतासे काम लें। जिस हिम्मतके साथ हमने सरकारसे लड़ाई छेड़ी, उसका परिणाम अच्छा ही निकलेगा। अब भी हमें हिम्मत ही रखनी है। मैं जो काम करता हूँ वह इसलिए नहीं कि मुझे कौमसे इज्जत या इनाम मिले। मैं तो यह सब कर्तव्य समझकर कर रहा हूँ और करता रहूँगा। कानूनके बारेमें यदि आप कुछ पूछना चाहें तो मेरा दफ्तर खुला है। मुझसे जो सलाह बन पड़ेगी, दूँगा। वह उचित लगे तभी उसपर अमल किया जाये, नहीं तो

१. यह सभा २ फरवरी १९०८को जोहानिसबर्गमें हुई। श्री ईसप मियाँ सभाके अध्यक्ष थे।

नहीं। मैं हमेशा समाजके साथ हूँ। कानूनके बारेमें मैंने बहुत-सी बातें तो समझा ही दी हैं। फिर भी 'ओपिनियन' में और स्पष्ट किया जायेगा, उसे आप देख लें।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, ८–२–१९०८

३१. पत्र[१] : मगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
फरवरी ५, १९०८

चि० मगनलाल[२],

मेरा इरादा था, तुम्हें गुजरातीमें लिखूं, लेकिन लिख नहीं सकता। तुम्हारा पत्र देखा। पूरा विवरण भेजकर तुमने अच्छा किया। यह तुम्हारा कर्तव्य था। मुझपर **ऐसी** बातोंका प्रभाव नहीं हो सकता, और गम्भीर रूपसे तो किसी भी हालतमें नहीं, जैसा कि तुमपर होगा। इसके दो कारण हैं: (१) यह कि मैं **काफी अभ्यस्त** और परिपक्व हो गया हूँ; और (२) यह कि दूर होनेके कारण मैं सही दृष्टिकोण अपना सकता हूँ। डर्बनके असन्तोषसे मैं जरा भी प्रभावित या परेशान नहीं हुआ हूँ। मैंने यह नहीं सोचा था कि यह इतना **उग्र** होगा; किन्तु यह अनपेक्षित भी नहीं है—तुम दोनों मुहावरोंका भेद समझते होगे। मैं इसके लिए पूरी तरह तैयार हूँ। इसका सीधा-सादा और एकमात्र कारण यह है कि मैंने उस समस्त सहायताका उपयोग तो किया है जो प्राप्त हुई और जिसके लिए मुझसे वादे किये गये थे, लेकिन ऐसी किसी सहायतापर मैंने कभी अपना भरोसा नहीं रखा है। ज्यादासे -ज्यादा मैंने उन्हें ऐसे अनेक साधन माना है, जिनके द्वारा ईश्वर, या सत्यने अपना काम किया है। कारण, मैंने असंख्य अवसरोंपर यह देखा है कि कुछ खास आदमी वहीं तक **वफादार** रहे हैं जहाँतक उनके लिए अचेतन मनसे सत्यकी सेवा करना आवश्यक था; **क्योंकि** अपने भीतर सत्य न होनेके कारण वे उसी तरह दूर जा पड़े हैं जिस तरह अपना संरक्षण-**कार्य** समाप्त करते ही पेड़ोंकी छालें अलग हो जाती हैं। और जहाँतक तुमने इन घटनाओंसे अपने-आपको पस्त होने **दिया** है, वहाँतक तुम उनको आत्मसात् नहीं कर पाये हो और न ही कष्ट-सहनके **परिमार्जक** प्रभावको समझ सके हो।

मेरे लिए. . .इससे क्या फर्क पड़ता है, अगर वे थोड़े-से लोग भी, जो वास्तविक संघर्षको **समझते** हैं, मुँह मोड़ लें . . .इस बस्तीमें न ठहरें[३]. . .समझौता, कि एक समय आ सकता है जब हम रत्ती-रत्ती सहायतासे वंचित **हो** जायें? तब भी हम अपना कर्तव्य अडिग रूपसे, निरुत्साह या खिन्न हुए बिना, निभाते **जायेंगे**। वह समय अभी नहीं आया है, लेकिन जो लोग बुरेसे-बुरेके लिए तैयार हैं वे बीचकी स्थितियोंको बराबर दार्शनिक भावसे स्वीकार

१. यह पत्र कहीं-कहीं फटा-फटा है। काले टाइपमें दिये गये शब्द पूरे पत्रके संदर्भमें अनुमानसे जोड़े गये हैं।

२. मगनलाल गांधी (१८८३–१९२८); गांधीजीके चचेरे भाई खुशालचन्द गांधीके द्वितीय पुत्र; गांधीजीके इंग्लैंडके रास्ते भारतके लिए विदा होनेके बाद फीनिक्स आश्रमके और आगे चलकर सत्याग्रह आश्रम, साबरमतीके व्यवस्थापक।

३. यहाँ मूल अंग्रेजीमें जो शब्द है उसका अर्थ होगा "कहे"।

कर सकते हैं। इसलिए तुम्हें ये बातें सुनकर अपने दिमागसे उसी तरह निकाल देनी चाहिए जैसे बत्तखकी पीठपर से पानी बह जाता है। मैं जानता हूँ कि वहाँके लोग जो प्रश्न उठा सकते हैं उनमेंसे कईके उत्तरकी आवश्यकता तुम्हें नहीं है। ऐसा एक भी प्रश्न नहीं है जिसपर मैंने विचार नहीं किया हो, जिसका समाधान मैंने अपनी शक्ति-भर नहीं कर लिया हो। आशा है, जब यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचेगा, तुम स्वस्थ-सानन्द होंगे।

मैं चाहता हूँ, फीनिक्स आकर तुम लोगोंसे मिलूँ, लेकिन अभीतक तो सम्भव नहीं है। फिर भी, महीने-भरमें वहाँ आ सकता हूँ।

वहाँ जो बात भी घटित हो, चाहे वह साधारण ही हो, उसके सम्बन्धमें मुझे पूरा विवरण भेजना कभी मत भूलो।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च :] यह पत्र दूसरे लोगोंको भी पढ़ा देना। जो कुछ समझमें नहीं आये, मुझसे पूछो।

गांधीजीकी लिपिमें गुजराती पश्चात्-टिप्पणी सहित तथा उनके हस्ताक्षरसे युक्त हस्त-लिखित मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४७९४) से। सौजन्य : श्री छगनलाल गांधी।

३२. नम्रता

एक भारतीय कहावत है कि "आमका पेड़ जितना अधिक फलता है उतना ही अधिक झुकता है"। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि ट्रान्सवालमें भारतीय सम्मानके साथ — और, उससे भी अधिक, अपने पवित्र संकल्पको तोड़े बिना — अपने संघर्षसे निकल आये हैं। उन्होंने जो कुछ भी कष्ट सहन किया है, वह उनकी आत्म-शुद्धिकी एक आवश्यक प्रक्रिया मानी जानी चाहिए।

समझौतेका मंशा उस कानूनको अन्ततोगत्वा रद करना है, जो आपत्तिकी आत्मा था। स्वेच्छया पंजीयन, जिसका प्रस्ताव अक्सर किया जाता रहा है, अब स्वीकार कर लिया गया है। और जो शर्त श्री गांधी, श्री क्विन और श्री नायडू द्वारा लिखित शानदार किन्तु साथ ही नम्रतापूर्ण पत्रमें दी गई है, वह यह है कि यह कानून उन लोगोंपर लागू नहीं होगा, जो अपने-आप पंजीयन करा लेंगे। शिनाख्तके सम्बन्धमें सरकारको जो-कुछ चाहिए था प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार, दोनों पक्षोंको, वे जिस बातके लिए प्रयत्नशील थे, उसका सार मिल जाता है। इस दृष्टिकोणसे विचार करनेपर यह समझौता भारतीय समाज तथा सरकार — दोनोंके लिए समान रूपसे श्रेयस्कर है। सरकारने भारतीय-भावनाको — आखिरी क्षणोंमें सही — जानने-समझनेकी आवश्यकताका अनुभव करके अपनी शक्तिका परिचय दिया है। बहु-चर्चित अँगुलियोंके निशानकी बात रह जाती है, यद्यपि उसमें आवश्यकतानुसार फेरबदलकी गुंजाइश है और भारतीय समाजके द्वारा उसका अंगीकृत किया जाना उसकी दूरदर्शिता ही प्रमाणित नहीं करता, बल्कि यह भी प्रकट करता है कि भारतीय-आपत्ति कभी भी अँगुलियोंके निशानपर केन्द्रित नहीं रही है।

इस समझौतेको हमें भारतीयोंकी विजयका नाम नहीं देना चाहिए। इस सम्बन्धमें 'विजय'का प्रयोग उस शब्दका दुरुपयोग होगा। परन्तु यदि यह शब्द इस सम्बन्धमें

प्रयुक्त किया भी जा सके तो विजय सत्यकी हुई है। भारतीयोंने सदा ही कहा है — और ठीक ही कहा है — कि यह संघर्ष धार्मिक संघर्ष है। जो लोग धर्म शब्दका ऊपरी अर्थ लगाते हैं, उन्हें इस संघर्षके अन्दर कोई धार्मिकता नहीं दीख पड़ी है। लेकिन स्वयं भारतीय लोग दूसरी प्रकारसे विचार करते आये हैं। उन्होंने इसे ईश्वरके नामपर शुरू किया था और अब उनका कर्तव्य है कि वे परमपिताके आगे नतमस्तक हों कि उन्हें इस अग्नि-परीक्षासे गुजरनेके लिए पर्याप्त शक्ति प्राप्त हुई।

इसके अलावा भारतीयोंके पास इस समझौतेपर गर्व करनेका कोई कारण नहीं है। किन्तु इससे उन्हें नम्रताके साथ आगे बढ़नेको प्रत्येक प्रकारका उत्तेजन अवश्य मिला है, क्योंकि एक जुदा ढंग और उच्चतर कोटिके कार्यका श्रीगणेश तो अब हुआ है। भारतीय समाज कसौटीपर चढ़ा दिया गया है, और यह उसीकी याचनापर हुआ है। बजाय इसके कि सरकार पंजीयन करानेके लिए कानूनका सहारा लेती और अवज्ञा करनेवालोंको कानूनी दण्डका भागी बनना पड़ता, भारतीयोंने रकारको ट्रान्सवालमें रहनेका अधिकार रखनेवाले सब भारतीयोंकी शिनाख्त-सम्बन्धी प्रत्येक सुविधा देनेका वचन देकर नैतिक उत्तरदायित्व और इसी कारण एक उच्चतर कोटिका उत्तरदायित्व उठा लिया है। इसलिए अब यह रचनात्मक कार्य हो गया है। भारतीय समाजने आवश्यक विध्वंसात्मक कामको, नियमित, शान्तिपूर्ण और बिलकुल शिष्ट ढंगसे चलाते रहनेकी योग्यता दिखा दी है, परन्तु अब उसे अपनेको ठोस और टिकाऊ रचनात्मक कार्य करनेकी क्षमता रखनेवाला सिद्ध करके दिखाना है। जब भारतीय समाज अपने-आपको अपने ऊपर रखे गये विश्वासके योग्य सिद्ध कर देगा तब वह अपनेको साधुवाद दे सकेगा और सभी विचारशील लोगोंकी निगाहमें निश्चय ही बहुत ऊँचा उठ जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–२–१९०८

३३. स्वेच्छया पंजीयन

हमें सूचना दी गई है कि ट्रान्सवालके सब भारतीयोंके लिए स्वेच्छया पंजीयनका, जिसे सरकार द्वारा स्वीकृत कर लिया गया है, काम जोहानिसबर्गके वॉनब्रैंडिश स्क्वेयरमें स्थित पुराने डच गिरजाघरमें अगले सोमवार, ता० १० से ९ बजे, परन्तु पहले दिन दस बजे, पूर्ण गाम्भीर्यके साथ शुरू हो जायेगा। दूसरी जगहोंमें पंजीयनके सम्बन्धमें यथोचित समयपर सूचना दी जायेगी। कहा गया है कि प्रिटोरिया और जोहानिसबर्गको छोड़कर, अर्जियाँ लेनेका काम विभिन्न जगहोंके मजिस्ट्रेटोंके जिम्मे रहेगा।

पंजीयन-प्रमाणपत्र और प्रार्थनापत्रके फार्मोंमें उन्हें नई परिस्थितिके अनुकूल बनानेके लिए, बहुत-कुछ रद्दोबदल किया गया है। प्रत्येक बालिग मर्द भारतीयको चाहिये कि वह पंजीयनके लिए कार्यालयमें हाजिर हो। ऐसी स्थितिमें उन सबका, जो प्रमाणपत्र पानेके अधिकारी होंगे, पंजीयन किया जायेगा। मोटे तौरसे, जिन लोगोंके पास उनके नाम वैध रूपसे दिये गये अनुमतिपत्र हैं और जिनके पास पुराने डच पंजीयन प्रमाणपत्र उनकी सम्पत्तिके रूपमें हैं, उनका तथा उन सब बच्चोंका, जो १६ वर्षकी अवस्थाके पूर्व ही खुल्लमखुल्ला आ गये

थे, पंजीयन कर दिया जायेगा। शिनाख्तके तरीकोंके बारेमें सामान्य तौरपर निम्नलिखित बातें सभी अभिप्रायों और हेतुओंके लिए नियमावलीका काम दे सकती हैं :

(क) जो लोग जायदाद सम्बन्धी योग्यता रखते होंगे अथवा अन्य किसी प्रकारसे ट्रान्सवालके निवासियोंके रूपमें परिचित हो चुके होंगे उनसे, पंजीयकके स्वविवेकके अनुसार अँगुलियोंके निशानोंके स्थानपर हस्ताक्षर—ऐसे हस्ताक्षर जो सुस्पष्ट हों और जिनसे हस्ताक्षर करनेवालेके व्यक्तित्वकी छाप मिलती हो, और जो अक्षरोंके आकार-मात्र न हों—स्वीकार कर लिये जायेंगे।

(ख) प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियममें दी हुई शैक्षणिक कसौटीपर खरी उतरने योग्य पर्याप्त शिक्षा पाये हुए लोगोंसे अँगुलियोंके निशानके स्थानपर हस्ताक्षर स्वीकार किये जायेंगे।

(ग) उन व्यक्तियोंको, जिन्हें अँगुलियोंके निशान देनेके बारेमें वास्तविक अथवा अन्तरात्माप्रेरित आपत्ति होगी और जो उपर्युक्त दो धाराओंके अन्तर्गत नहीं आते, सभी अँगुलियोंकी छापके बजाय अँगूठा-निशानी देनेकी इजाजत होगी।

ये बहुत उदार छूटें हैं, परन्तु, हमारी सम्मतिमें, भारतीयोंके लिए इन छूटोंका लाभ न उठाना ही अधिक शोभाजनक होगा। मुख्य बात हासिल हो ही चुकी है इसलिए हमारी रायमें अब प्रत्येक व्यक्तिको बिना किसी हिचकके अँगुलियोंकी छाप दे देनी चाहिए। कुछ भी हो, नेताओंको तो, जिन्हें अँगुलियोंकी छाप न देनेका अधिकार है, सबसे पहले अपना यह अधिकार छोड़ देना चाहिए और ऐसे निशान देनेकी रजामंदी प्रकट करनी चाहिए, ताकि शिनाख्तका काम सुविधाके साथ हो जाये और सरकारके लिए यह तरीका सुगमतर बन जाये। हमारा विश्वास है कि भारतीय समाज इस छूटका यथासम्भव सीमित उपयोग करके अपना सच्चा गौरव प्रकट करेगा। हमें मालूम हुआ है कि श्री ईसप मियाँ, श्री गांधी तथा अन्य लोगोंने, जिन्होंने इस आन्दोलनसे अपनेको एकरूप कर रखा है, इस छूटकी माँग न करनेका निश्चय कर लिया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–२–१९०८

३४. सत्यकी जय

"हे अर्जुन, तू सुख और दुःखमें, लाभ और हानिमें, जय और पराजयमें समान भाव रखकर युद्ध कर। इससे तुझे पाप नहीं लगेगा।"[1]

हम यह मानते हैं कि ट्रान्सवालके भारतीयोंकी पूर्ण विजय हुई है। उन्होंने सोलह महीने टक्कर ली। सारी कौम एक हो गई। समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी भावना जाग्रत हुई। जेल जानेका प्रण भी पूरा हुआ। और अनपेक्षित शीघ्रतासे समझौता हुआ। जेलके दरवाजे कैदकी मियाद पूरी होनेसे पहले ही खुल गये, यह अद्‌भुत घटना है। संसारके

१. सुखे दुःखे सम थई, लाभालाभे जयाजये,
युद्ध तुं कर हे पार्थ, तेथी पाप थशे नहि।
[सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥
भगवद्‌गीता–२, ३८]

इतिहासमें ऐसे उदाहरण बहुत नहीं मिलेंगे। सरकारने भारतीय समाजपर बड़ा विश्वास किया है और वैसी ही बड़ी जिम्मेवारी उसपर डाली है। भारतीय समाजकी जो माँग थी वह स्वीकार कर ली गई है। माँग यह थी कि नया कानून उसपर लागू न हो। "कानून लागू न हो", इस वाक्यका अर्थ समझ लेना उचित होगा। १९०६ के सितम्बर मासमें यह शपथ ली गई थी कि 'कानूनके आगे नहीं झुकेंगे।' उस समय सिर्फ कानून था; उसके अन्तर्गत जुलाई [१९०७] मासमें बनाई गई धाराएँ नहीं थीं।[1] हम इस कानूनके आगे नहीं झुकेंगे, यह भारतीय समाजका महान प्रण था। अब सरकारने वचन दिया है कि अमुक शर्त पूरी होनेपर वह कानून भारतीयोंपर लागू नहीं किया जायेगा। शर्त यह है कि भारतीय समाज स्वेच्छासे उस कानूनके उद्देश्यको कानूनसे बाहर पूरा करे। यानी शर्त स्वेच्छया पंजीयन करानेकी है। और भारतीय समाज समय-समयपर इस प्रकारके पंजीयनके लिए कहता आया है। यह स्वेच्छया पंजीयन अब सरकारने मान लिया है और सरकारने कहा है कि जो लोग स्वेच्छया पंजीयन करायेंगे उनपर नया कानून लागू नहीं होगा। अर्थात् या तो वह कानून केवल कलमुँहोंके लिए ही रहेगा अथवा सबके लिए दूसरा कानून बनेगा।

जब लड़ाई शुरू हुई तब कई कमजोर-दिल भारतीय कहा करते थे कि "सरकारी कानून कभी टूट नहीं सकता।" "यह तो दीवारपर सिर मारने जैसा है।" "सरकार कानूनमें थोड़ा-सा परिवर्तन करे तो बस है।" "सरकारका मुकाबला करना मूर्खता है।" ऐसा कहनेवालेको पैसे या दूसरे लालचके मारे खुदाका — ईश्वरका बहुत कम भान था। अब उसी कानूनके टूटनेका समय आ गया है। अभी वह टूटा नहीं है। परन्तु 'टूटेगा', यह कहकर जेलमें भेजे हुए भारतीयोंको छोड़ा गया है। सबके-सब अखबार आश्चर्यमें पड़ गये हैं। गोरे अपने दाँतों तले अँगुली दबा रहे हैं और सोच रहे हैं कि "यह सब कैसे हो गया?"

इस जीतको हम सत्यकी जय समझते हैं। हम यह नहीं कहना चाहते कि सभी भारतीयोंने सत्यके ही द्वारा लड़ाई लड़ी। यह भी नहीं कहा जा सकता कि किसीने इसमें अपना स्वार्थ नहीं देखा। फिर भी हम यह निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि यह लड़ाई सत्यके लिए थी और नेताओंमें से बहुतोंने केवल सत्यका सहारा लेकर संघर्ष किया है। इस कारण यह अद्भुत परिणाम निकला। सत्य ही ईश्वर है, अथवा खुदा ही सच है। इस प्रकारके वचन प्रत्येक धर्ममें मिल जाते हैं। इस सत्यका, इस खुदाका, जो मनुष्य सेवन करता है वह कभी हारता नहीं, यह खुदाई कानून है। कभी-कभी सत्य-व्रत पालनेवाला व्यक्ति हारता हुआ प्रतीत होता है, किन्तु वह आभास-मात्र है। वास्तवमें वह हारता नहीं है। अभीष्ट परिणाम न निकलनेपर हम "हार हुई", ऐसा मानते हैं। परन्तु दीख पड़नेवाली हार कई बार जीत ही हुआ करती है। ऐसे हजारों उदाहरण मिलते हैं। सामान्य श्रेणीका सत्य धारण करके हम कोई परिणाम प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करें, और वह परिणाम प्राप्त न हो तो दोष सत्यका नहीं है, हमारा है। [अभीष्ट] परिणाम अच्छा न हो तो हमारे चाहते हुए भी ईश्वर हमें वह परिणाम नहीं देता। इसीलिए हमने ऊपर यह श्लोक दिया है कि सुख या दुःख, लाभ या हानि सब बातोंमें सम रहकर अर्थात् एक-जैसे रहकर हमें लड़ाई लड़नी है। ऐसा करते हुए हम पाप नहीं करते। यह कुंजी पुरानी है। और यह कुंजी हाथमें रखें तो हम बड़ी-बड़ी अड़चनोंके ताले खोल सकते हैं। जो मनुष्य इस प्रकार

२. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ८२–८४।

लड़ेगा, वह केवल खुदाके नामपर ही लड़ेगा, वह हार-जीत नहीं गिनता। उसका प्रण तो एक ही है। और उसका महान काम इतना ही है कि खुदाके नामपर सत्यका सेवन करता हुआ अपना कर्तव्य करे। उसका फल देनेवाला मालिक बड़ा है।

जिस प्रकार सत्यकी जय हुई है उसी प्रकार सत्याग्रहकी जीत हुई है। सब भारतीयोंको अब ज्ञात हो जाना चाहिए कि सत्याग्रह अक्सीर इलाज है। वह भीषण रोगोंको दूर कर सकता है। इस जीतका यह फल अवश्य होना चाहिए कि हम सत्याग्रहका पूरा-पूरा उपयोग करें। हाँ, उसका समय होना चाहिए, और लोगोंमें ऐक्य होना चाहिए। कुछ कष्टोंपर सत्याग्रह लागू नहीं होता, यह भी समझ लेना है। जहाँ हमारे लिए कोई-न-कोई कदम उठाना जरूरी हो जाये वहीं सत्याग्रह काममें आ सकता है। जैसे सरकार जमीन न दे, इसमें सत्याग्रह काम नहीं आ सकता। लेकिन सरकार अगर हमें अमुक जगहपर चलनेकी मनाही करे, हमें बस्ती-बाड़ोंमें चले जानेको कहे, हमारा व्यापार बन्द करे, तो इन सबपर सत्याग्रह किया जा सकता है। अर्थात् जब हमारे हाथों कोई ऐसा काम करवानेकी नीयत हो, जो हमारे धर्म और हमारे पौरुषके लिए अशोभनीय हो, तो हम सत्याग्रह-रूपी अमूल्य औषधि काममें ला सकते हैं। वह औषधि इस शर्तपर लागू होगी कि हम सब एक होकर हानि उठानेके लिए तैयार रहें।

कोई कहेगा कि यह सब तो लम्बी-चौड़ी बातें हैं। जीत कैसी? समझौता कौन-सा? दस अँगुलियाँ लगानेकी बात तो चल ही रही है। इस प्रकारकी बहस करनेवालेको हम अनजान समझते हैं; क्योंकि यह लड़ाई दस अँगुलियोंकी नहीं है। कानूनके टूटनेके बाद दस अँगुलियाँ लगानी पड़ें, तो कोई हर्ज नहीं। कलंक दस अँगुलियाँ देनेमें नहीं है। बुराई नये कानूनके मातहत कुछ भी देनेमें है। विनयके विचारसे या अपनी इच्छासे अपने मित्रके जूते साफ करनेमें हलकापन नहीं है। लेकिन डरकर, हुक्म मानकर जूते साफ करना तो टहल करनेके समान होगा, और इसमें तौहीन समझी जायेगी। इसलिए कोई बात अच्छी है या बुरी, यह उसके सन्दर्भोंपर आधारित होता है। हम जानते हैं कि कई भारतीय इसे दस अँगुलियोंकी ही लड़ाई समझनेकी जबर्दस्त भूल करते हैं। पर इन भारतीयोंको याद रखना है कि कानूनके बाहर दस अँगुलियाँ लगानेमें कुछ भी तौहीन नहीं है। शपथ-भंग तो है ही नहीं। यह लिखते समय इस बातका निश्चय नहीं है कि दस अँगुलियाँ लगानी ही पड़ेंगी। अँगुलियोंकी छाप न देनी पड़े इसकी सारी कोशिशें की जा रही हैं। परन्तु हमारा कर्तव्य है कि लोगोंको स्पष्ट रूपसे समझा दें। अँगुलियाँ लगानी पड़ें या नहीं, इसमें कोई हर्ज नहीं है। लड़ाई किस बातकी थी, उसको ठीक-ठीक समझ लेनेकी आवश्यकता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–२–१९०८

३५. खूनी कानूनको स्वीकार करनेवालोंसे

'ब्लैकलेग' [धोखेबाजों] को हमने अबतक कलमुँहे आदिकी उपमा दी है। यह हमने सोच-समझकर और बिना गुस्सेके किया है। ऐसा करना हमारा कर्तव्य था। ये उपमाएँ द्वेषभावसे नहीं, बल्कि स्नेहके कारण, दुखित होकर दी थीं।

अब उन्हें कलमुँहा कहनेका समय नहीं रहा। पहले उनका उदाहरण लोगोंके सामने लाना आवश्यक था। वह लड़ाई समाप्त हो चुकी है इसलिए उन्हें उपमाएँ देना अनुचित कहलायेगा। इस कारण अब हम ऐसा लिखना बन्द कर रहे हैं और जो मुक्त हो रहे हैं उन्हें हमारी सलाह है कि वे खूनी कानूनके आगे झुकनेवालोंपर जरा भी गुस्सा न करें और उनके साथ उत्पन्न भेदको मिटाकर उनके दोष भूल जायें। वे और अन्य भारतीय एक ही देशके हैं, एक ही रक्तके हैं, और भाई-भाई हैं। लाठीकी चोटसे जैसे पानी अलग नहीं हो सकता वैसे हम भी अलग नहीं हो सकते।

जिन्होंने खूनी कानून मान लिया है, उनको हमारी यह सलाह है कि वे जैसे बने वैसे, नम्रतापूर्वक, अपनी भूल कबूल करके समाजमें आ मिलें। की गई गलतीके लिए खुदासे माफी माँगें और फिर अवसर आनेपर शक्तिका परिचय दें।

संघका भवन (फेडरेशन हाल) बनानेकी बात फिर उठी है। [वह बने] तो वे इसमें बहुत बड़ी मदद कर सकते हैं। जब सारे समाजने बड़ी मुसीबत उठाई है, बहुत नुकसान सहन किया है, तब कानूनको स्वीकार कर लेनेवालोंने पैसे कमाये हैं। बहरहाल उन्होंने पैसेके लिए कानून कबूल किया है; इस कारण उनके लिए यह उचित होगा कि वे संघके भवनके खर्चकी मदमें अच्छी-खासी और पर्याप्त रकम दें।

हमें अपनी यह सिफारिश उनसे जबर्दस्ती नहीं मनवानी है। सच्चा पछतावा इस तरह नहीं होता। यदि वे सच्ची भावनासे तथा कौम और देशकी भलाईके खातिर दें तभी वह शोभा देगा। हमें आशा है कि जिन मेमन लोगोंने वीरतापूर्वक समाजकी नाक रखी है, वे और ट्रान्सवालसे बाहरके मेमन, कानूनके आगे झुक जानेवाले मेमनोंसे अपना कर्तव्य पूरा करनेके लिए कहेंगे; और इसी प्रकार दूसरी कौमोंके जो भाई अनिवार्य पंजीयन करा चुके हैं, उन्हें उनकी कौमके लोग तथा दूसरे भारतीय समझायेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–२–१९०८

३६. रिचका महान कार्य

श्री रिचने जो सेवाएँ की हैं उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। फिर भी यह तो निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि उन्होंने एवं अन्य कुछ सज्जनोंने सहायता न की होती तो हमें कभी विजय प्राप्त न होती। हमारा सुझाव है कि समाज श्री रिचके कामकी ठीक-ठीक कीमत समझे। यह उसका कर्तव्य है। इस समय श्री रिचका काम श्रीमती रिचकी रोगशय्याके पास रहना था; किन्तु उन्होंने ऐसा न करके घड़ी-भरके लिए भी पतवार नहीं छोड़ी। इस प्रकारके आत्मबलिदानकी जितनी कद्र की जाये, कम है। श्री रिच निहायत गरीब व्यक्ति हैं, इसलिए हम सबसे अच्छा रास्ता यह समझते हैं कि उन्हें कुछ-न-कुछ रकम भेंट की जाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–२–१९०८

३७. स्वर्णाक्षरोंमें क्यों नहीं?

हमने पहले 'रसिक'के लेखपर टिप्पणी लिखते हुए यह कहा था कि जब जेल-महलसे भारतीय पुनीत होकर लौट आयेंगे और हमें विजय मिल जायेगी तब हम 'इंडियन ओपिनियन' को स्वर्णाक्षरोंमें छाप सकते हैं। अब कुछ पाठकों द्वारा सवाल पूछे जा रहे हैं। हमें लगता है कि अभी हमारी सच्ची जीत नहीं हुई। वह एक प्रकारसे तो सच्ची जरूर है, क्योंकि सत्याग्रहका पूरा पालन हुआ, जेलके दरवाजे खुले और कानून-मुक्त पंजीयन करानेकी बात निश्चित हुई। और यदि हम वैसा करते हैं तो कानून रद होगा। अर्थात्, अभी दो बातें भविष्यपर निर्भर हैं। सरकारने हमारा विश्वास किया, उससे हमें फूल नहीं उठना चाहिए। जब हम उस विश्वासके योग्य साबित होंगे तभी सही जीत मिली मानी जायेगी। हमने कुदालीका काम, अर्थात्, जमीन खोदने और उसे साफ करनेका काम ठीक तरहसे किया। अब राजका, चिनाईका काम सही-सही करेंगे या नहीं, यह देखना है। कानूनके रद होनेकी कुंजी सरकारने हमें सौंप दी है। इसे जब हम लागू करें और कानून वास्तवमें रद हो जाये तभी पूरी जीत कहलायेगी। यह प्रस्तुत कार्य ही सबसे कठिन है। उसे करनेमें बड़ा परिश्रम लगेगा तथा उसके लिए बहुत धैर्य और अत्यधिक ईमानदारीकी जरूरत होगी। यह सब हम दिखायेंगे या नहीं, यह आगे चलकर मालूम होगा। कुछ भारतीय यह शंका करते हैं कि स्वेच्छया पंजीयन करा लेनेपर भी यदि सरकारने कानून रद नहीं किया तो? इस शंकाको हम व्यर्थ समझते हैं। करने लायक मुख्य शंका यह है कि यदि भारतीयोंने सचाई नहीं बरती तो? हमें स्वेच्छया पंजीयनका यह कार्य निर्धारित नियमोंके अनुसार पूरा करना है। किसीको इसमें अपना स्वार्थ नहीं देखना है; बल्कि समाजका हित समझकर बड़ी तेजीसे पंजीयन करवा लेना है। यही नहीं, पंजीयन केवल सही व्यक्तियोंको ही करवाना है। जरा

भी अनुचित लोभ न किया जाये। हम तो अन्तःकरणसे यह देखना चाहते हैं कि कोई भी भारतीय झूठा न निकले और शत-प्रतिशत पंजीयन स्वीकृत कर लिये जायें। तब जो रंग जमेगा, और भारतीयोंकी जो जीत होगी उसे देखनेके लिए देवता उतरेंगे। तब कानून अपने-आप रद होगा और तभी 'इंडियन ओपिनियन' को स्वर्णाक्षरोंमें प्रकाशित करनेका सुझाव मान्य होगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-२-१९०८

३८. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी[1]

समझौता क्या है?

जनरल स्मट्सके नाम श्री गांधी, श्री नायडू और श्री क्विन इन तीनोंने जोहानिसबर्ग जेलसे ता० २९ जनवरीको एक पत्र[2] लिखा था:

जनरल स्मट्सका उत्तर[3]

[प्रिटोरिया
जनवरी ३०, १९०८]

[महोदय]

आपका २९ तारीखका पत्र मिला। अपने पत्रमें आप लोगोंने उन भारतीयों और चीनियोंके स्वेच्छया पंजीयन करानेकी बात कही है जो ट्रान्सवालमें कानूनके अनुसार रहते हैं और जिन्हें पंजीयनका अधिकार है। उपनिवेश-सचिव आपके इस कदमको समझदारीसे भरा हुआ मानते हैं। वे कहते आये हैं कि ट्रान्सवालके एशियाई सामूहिक रूपसे स्वेच्छया पंजीयन करानेको कहें तो उन्हें अवसर दिया जायेगा। आप लोगोंने अपने पत्रमें कानूनकी जानकारी सही-सही दी है। नोटिसोंके समाप्त हो जानेके बाद कानूनी पंजीयन हो सके, ऐसी बात नहीं है। उपनिवेश-सचिव, कानूनमें बताये गये ढंगका ही पंजीयन मंजूर कर सकते हैं; लेकिन उसके तरीकेमें आप लोग जो छोटे-मोटे परिवर्तन करनेको कहते हैं, उन्हें वे मंजूर कर लेंगे। इस बीच जिनका पंजीयन होगा उनके खिलाफ कानूनकी सजा अमलमें नहीं लाई जायेगी। वे आप लोगोंके इस वचनको स्वीकार करते हैं कि आप इस पंजीयनको अन्तिम और उत्तम बनानेके लिए अपने भाइयोंको समझानेका प्रयास करेंगे।

[आपका आज्ञाकारी सेवक,
ई० एम० जॉर्जेस
कार्यवाहक सहायक उपनिवेश सचिव]

१. इस शीर्षकके अन्तर्गत १८ और २५ जनवरी, १९०८ के दो लेख गांधीजीके लिखे नहीं थे, क्योंकि वे उस समय जेलमें थे। इसी कारण ये लेख इस खण्डमें उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं।

२. मूल अंग्रेजी पत्रके अनुवादके लिए देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ ३९-४१।

३. यह पत्र ११-७-१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**के अंग्रेजी विभागमें प्रकाशित किया गया था।

ऊपरके पत्रका अर्थ

ये दोनों पत्र राजनीतिक हैं। इस सम्बन्धमें सच्चा श्रम श्री अल्बर्ट कार्टराइट ('ट्रान्सवाल लीडर' के सम्पादक) ने किया है। स्वयं श्री अल्बर्ट कार्टराइट अपने सत्यके लिए जेल जा चुके हैं। इसीलिए उन्होंने भारतीयोंको सहायता पहुँचानेके अथक प्रयत्न किये हैं। उन्होंने श्री गांधीसे जेलमें मिलनेके लिए सरकारसे खास इजाजत ली। दो बार मिले। पहली भेंट उन्होंने २१ तारीख मंगलवारको की। तब दोनोंके बीच यह बातचीत हुई कि आगामी संसदमें नया कानून रद हो और इस समय भारतीय-समाज स्वेच्छया पंजीयन कराये। दोनोंके बीच इस सम्बन्धमें लिखा-पढ़ी भी हुई। इसके बाद श्री कार्टराइट प्रगतिवादी दल (प्रोग्रेसिव पार्टी) के मुखियोंसे मिले। उन्होंने इसे स्वीकार किया। किन्तु यह सुझाया कि भारतीय लोग जेलसे इस प्रकारका पत्र लिखें और स्वेच्छया पंजीयनकी बात करें। ऐसा पत्र तैयार करके श्री कार्टराइट दुबारा २८ तारीखको जेलमें आये[1]। नया कानून स्वेच्छया पंजीयनवालोंपर लागू न होगा, यह उस पत्रमें स्पष्ट नहीं था; और वह अर्जी अकेले भारतीयोंकी ओरसे थी; तथा उससे फिलहाल जो ट्रान्सवालसे बाहर हैं उनकी रक्षा नहीं होती थी; इसी प्रकार उसमें १६ वर्षसे कम आयुवाले बालकोंका भी समावेश होता था; इसलिए श्री गांधीने उसमें परिवर्तन किये। श्री कार्टराइटने आनाकानी की, तब श्री गांधीने कहा कि यदि इतना स्वीकार न हो तो अभी भारतीय जेलमें ही रहेंगे। श्री कार्टराइट इतना सुनते ही गद्गद् हो गये और बोले: "अच्छा, आपको जो परिवर्तन करने हों, सो करें। आप सत्यके लिए लड़ रहे हैं। ये परिवर्तन उचित हैं। और इन्हींसे आपके मानकी रक्षा होगी। यदि श्री स्मट्स इतना स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं स्वयं उनका मुकाबला करूँगा और प्रगतिवादी दलसे उनका विरोध कराऊँगा — ऐसी आशा है।" फिर उक्त परिवर्तन करके श्री क्विन और श्री थम्बी नायडूको, जिन्होंने बहुत ही अच्छा काम किया है, बुलाया गया। उन दोनोंने उस पत्रको[2] पसन्द किया, और उसपर हस्ताक्षर कर दिये। उसे लेकर श्री कार्टराइट बिदा हुए। ये हस्ताक्षर दोपहरको १२–३० बजे हुए। श्री कार्टराइट उसी दिन २–३० की गाड़ीसे प्रिटोरिया गय। पाँच बजे उन्होंने टेलिफोन किया कि जनरल स्मट्सने वह पत्र स्वीकार कर लिया है। एक शब्द बदलनेकी इजाजत माँगी, सो दे दी गई। इससे अन्दाजा हुआ कि अब भारतीयोंकी रिहाई समयपर हो जानी चाहिए।

अन्य शर्तें

कुछ बातें लिखी जाती हैं, और कुछ बातें हमेशा केवल वचनपर छोड़ देनी होती हैं। इस समझौतेमें भी ऐसा ही हुआ है। श्री कार्टराइटकी मारफत यह भी कहलाया गया था कि जो भारतीय सरकारी नौकरियोंसे अलग कर दिये गये हैं उन सबको फिर नौकरीपर बहाल करनेकी व्यवस्था की जानी चाहिए। और जो नया पंजीयन बने, वह किस प्रकारका हो, इसपर भारतीय समाजसे बातचीत होनी चाहिए। इस सम्बन्धमें श्री कार्टराइटने टेलिफोनसे बताया कि नौकरीवालोंके बारेमें जनरल स्मट्स बँधते नहीं हैं लेकिन पूरी कोशिश करेंगे; और

१. **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय ११ में गांधीजी कहते हैं, समझौता-पत्रका मसविदा या तो "जनरल स्मट्सने बनाया या मंजूर किया था।"

२. देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ ३९–४१।

पंजीयनके फार्मके बारेमें सलाह-मशविरा करेंगे। नया पंजीयन कानूनके बाहर होगा; उसे कानूनी रूप कैसे दिया जाये, इसपर भी परामर्श होगा।

श्री गांधीका प्रिटोरिया जाना

गुरुवार ३० तारीखको जेलके गवर्नरके नाम श्री गांधीको प्रिटोरिया भेज देनेका हुक्म आया। इसपर वे अधीक्षक वरनॉनके साथ प्रिटोरिया गये। रास्तेमें खाने-पीनेका प्रबन्ध सरकारने किया था। सब गुप्त रखना था। भारतीय धरनेदार प्रिटोरियामें बड़ा अच्छा काम कर रहे थे; वे देखे बिना न रहते इसलिए प्रिटोरिया पहुँचनेसे पहले गाड़ी विशेष रूपसे रोककर श्री गांधीको उतार लिया गया, और श्री लेन तथा अधीक्षक बेट्सके साथ वे उपनिवेश कार्यालयमें गये। स्मरण रहे कि श्री गांधी अभी कैदी ही थे। ठीक दो बजे जनरल स्मट्ससे मुलाकात हुई। वे बोले: "मेरे मनमें भारतीय कौमके खिलाफ कुछ भी नहीं है। उक्त पत्रमें जो माँग की गई है वह बहुत अधिक मानी जायेगी, किन्तु सरकारका विचार उसे स्वीकार कर लेनेका है। पंजीयन किस रूपमें करें और बादमें उसको कानूनका रूप कैसे दें, इसपर आगे चलकर विचार करूँगा। यह पंजीयन नये कानूनके बाहर ही होगा; लेकिन मेरी सलाह है कि इस बारेमें आप लोग आम चर्चा न करें। अगर आम चर्चा करेंगे तो आपको ही हानि पहुँचेगी, क्योंकि लोग मेरे खिलाफ हो जायेंगे।" श्री गांधी द्वारा दस अँगुलियोंकी बात चलानेपर उन्होंने कहा: "यदि दस अँगुलियोंकी आवश्यकता पड़े तो आपको देनी चाहिए; इसके खिलाफ आपकी लड़ाई नहीं है, यह आप कह चुके हैं। तथापि इस सम्बन्धमें भी हम बातचीत करेंगे।" फिर वे बोले: "मेरी दूसरी सलाह यह है कि आप लोग 'कलमुँहों' (ब्लैकलेग) को हानि न पहुँचाएँ।" श्री गांधीने कहा कि "इस सम्बन्धमें सिफारिश करनेकी आपको कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। उन्होंने भूल की है, ऐसा हम निश्चित रूपसे मानते हैं। फिर भी वे हमारे भाई हैं और हमारे रक्त हैं। किसी भले भारतीयका उद्देश्य उन्हें परेशान करनेका नहीं हो सकता। और जो हदसे ज्यादा जोशीले लोग होंगे उन्हें काबूमें रखनेका काम हरएक समझदार भारतीयका है।" इसके अतिरिक्त और जो बातें हुईं उन्हें यहाँ देना आवश्यक नहीं है। इसके बाद मन्त्रिमण्डलकी सभा हुई और, उन लोगोंकी स्वीकृतिपर, श्री गांधीको ऊपरके अनुवादके अनुसार उत्तर देकर रिहा कर दिया गया।

सार

इस समझौतेका सार यह है कि भारतीय समाजने स्वेच्छया पंजीयनका जो प्रस्ताव किया था वह पूराका-पूरा स्वीकृत हो गया है। नया पंजीयन कानूनके अन्तर्गत नहीं होगा, बल्कि उसके बाहर होगा, और इस पंजीयनपर नया कानून लागू नहीं होगा। पंजीयन करानेके सम्बन्धमें 'गजट' में प्रकाशित सूचनाओंको वापस लेनेकी आवश्यकता अब नहीं रहती, क्योंकि उन सूचनाओंकी अवधि पूरी हो जानेके कारण वे समाप्त हो चुकी हैं।

परवानोंके बारेमें क्या?

परवानोंसे सम्बन्धित नोटिस अभीतक बना हुआ है, इसलिए यह व्यवस्था की गई है है कि कलमुँहों (ब्लैकलेग) के अतिरिक्त प्रत्येक भारतीय फिलहाल बिना परवानेके व्यापार कर सकेगा, और जब नया पंजीयन करानेवालोंके लिए नया कानून बनेगा तब परवाना मिलेगा। इस बीच बिना परवाना व्यापार करनेके लिए किसीपर मुकदमा नहीं चलाया जा सकेगा।

दस अँगुलियोंके बारेमें क्या?

"दस अँगुलियोंकी दिये निशानी, उतर जायेगा मूँछका पानी"[1] ऐसे गीत गाये जानेके बाद क्या श्री गांधी दस अँगुलियोंकी छाप देनेकी सलाह देंगे? इसका उत्तर श्री गांधीने "हाँ, देंगे" दिया है और अब भी दे रहे हैं। हमारी लड़ाई अँगुलियोंके निशानके खिलाफ नहीं है, कानूनके खिलाफ है। कानूनके आगे न झुकें, इतना पर्याप्त है। कानून मानकर हस्ताक्षर देनेमें तौहीन है। परन्तु कानूनसे बाहर अँगुलियोंकी छाप या कुछ अधिक देनेमें भी तौहीन नहीं है। उक्त गीत उस कानूनके लिए गाया गया है; दस अँगुलियोंके निशान देना आदि तो उसके बाहरी लक्षण थे। वास्तविक कैदी, कैदीकी पोशाक पहने रहता है इसलिए हम उसे कैदीके रूपमें पहचानते हैं। उसका गान करते हुए हम उसके कुर्तेका वर्णन भी कर सकते हैं। परन्तु वही पोशाक कोई सज्जन शौकसे पहने अथवा कोई अंग्रेज नाचमें फैन्सी ड्रेसके रूपमें पहने तो वह इससे कैदी नहीं हो जाता।

श्री गांधी और अन्य भारतीयोंने जेलमें अठारह अँगुलियोंकी छाप दी, यह उनके लिए सम्मानकी बात है। ऐसा करनेमें उन्होंने कुछ गलत नहीं किया। न देते तो गलत कहलाता। अँगुलियोंके निशानवाला वह कागज अगर मिल जाय तो वह मढ़वाकर रखने लायक है। क्योंकि जेल जाना भारतीयोंकी मुक्तिका दरवाजा खोलनेके समान था। इसलिए उस जेलमें जो कुछ हुआ वह यदि उचित था तो सराहनीय ही माना जायेगा।

रेशमकी डोरी फाँसी देनेके काममें आ सकती है। ऐसी अवस्थामें हम उससे भड़केंगे। उसी रेशमकी डोरीसे माला गूँथकर पहनी जाये तो उसे शोभायमान हार मानेंगे।

यह निश्चित नहीं है कि दस अँगुलियोंकी छाप देनी ही पड़ेगी। अभी इस सम्बन्धमें बातचीत चल रही है। किन्तु कानून रद हो जाये और दस अँगुलियोंकी छाप देनी पड़े तो उसके विरोधमें संघर्ष छेड़ना नादानी कहलायेगी — सूरजका प्रकाश छोड़कर जुगनूकी चमकके पीछे दौड़ने जैसा समझा जायेगा।

इसके सिवा, प्रवासी कानूनके अनुसार अब गोरोंके लिए भी दस अँगुलियोंकी छाप देनेकी प्रणाली लागू हुई है। इसलिए इस बारेमें बहुत जोर देकर नहीं कहा जा सकता। इतना खुलासा करनेकी आवश्यकता भी नहीं होनी चाहिए। फिर भी ऐसा करनेकी जरूरत पड़ी है, क्योंकि इस सम्बन्धमें कितने ही लोग चर्चा कर रहे हैं। इसी कारण और स्पष्ट किया है।

शिक्षित और जाने-माने लोग

स्वेच्छया पंजीयनमें यह इजाफा किया गया है कि अधिकारियोंको शिक्षित और जाने-माने व्यापारियों आदिके हस्ताक्षर लेनेकी इजाजत दे दी गई है। श्री गांधीने इसका आग्रह नहीं किया था, किन्तु जो कागज उनके सामने रखा गया उसीमें यह बात थी। इसे निकाल देना उचित मालूम नहीं पड़ा, इसलिए रहने दिया गया है। शिक्षितोंके हस्ताक्षरोंसे काम चला लिया जाये यह ठीक जान पड़ता है। क्योंकि शिक्षित कौन है, यह [तय करना] अधिकारीकी इच्छापर निर्भर नहीं रहता। किन्तु शिक्षित न होनेपर भी जानेमाने व्यक्तिसे उसके हस्ताक्षर लेना बहुत दोषपूर्ण है। जाने-माने कौन, इसका निर्णय अधिकारी करें, इसमें गुलामीकी बू आती है। इसलिए मेरी सिफारिश इस रास्तेका उपयोग न करनेकी है। हकसे जो बात बन

१. दस आंगळियो तणी निशानी दीये मूंछनुं जाशे पाणी।

सके उसीमें औचित्य है। कृपाके रूपमें प्राप्त करना दोष है। ऐसा नहीं है कि इसमें बुरे-भले, अमीर-गरीबका भेद नहीं रहता; परन्तु अच्छे-बुरे और अमीर-गरीबका निर्णायक अधिकारियोंको नहीं होना चाहिए।

पूर्णाहुति

श्री गांधीको उपनिवेश कार्यालयसे आज्ञा मिलनेके बाद रिहा कर दिया गया और जोहानिसबर्ग जानेकी अनुमति दे दी गई। जागरूक धरनेदार खबर मिलते ही उपनिवेश कार्यालयके आसपास जमा हो गये थे। उन्हें अधीक्षक बेट्सने बताया कि श्री गांधी चले गये हैं। उन्होंने जवाब दिया कि "अगर वे चले गये होते तो हम जाने बिना नहीं रहते, क्योंकि हमने सब दरवाजे रोक रखे हैं।" इसलिए बाहर निकलते ही धरनेदारोंसे भेंट हुई। [श्री गांधीने] उन्हें समाचार दिया कि शुक्रवारके सवेरे सब लोग रिहा हो जायेंगे और कहा कि यह सन्देश अन्य लोगों तक पहुँचा दें।

आधी रातकी सभा

श्री अब्दुल्लाने श्री ईसप मियाँको तार दिया था कि अन्तिम गाड़ीपर वे और श्री पोलक श्री गांधीसे पार्क स्टेशनपर मिलें। तदनुसार केवल ईसप मियाँ और श्री अस्वात मिले। उसी समय बहुत-से भारतीय मस्जिदमें इकट्ठा हो गये, और अहातेमें रातके बारह बजे लगभग १,००० भारतीयोंकी सभा हुई। श्री गांधीने उपर्युक्त समझौतेकी बात कही और यह समझाया कि अब जरा भी शोर-गुल किये बिना या जुलूस निकाले बिना, चुपचाप काम करना चाहिए। 'लीडर' का संवाददाता उपस्थित था। उसने सभाका विवरण न छपवानेकी बात मान ली। सब समझ गये कि हमें असलियतसे काम है, धूमधामकी आवश्यकता नहीं है। लोग बड़े खुश हुए।

जेलके दरवाजे खुले

शुक्रवारको दिनके बारह बजे जेलके दरवाजे खुल गये। सारे ट्रान्सवालमें कानूनके सम्बन्धमें या परवानोंके सम्बन्धमें जितने भारतीय गिरफ्तार हुए थे वे सब रिहा कर दिये गये। और प्रायः सारा विवरण समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुआ। सब आश्चर्यमें पड़ गये। गोरे भी बहुत खुश हुए। संघके नाम जेल यात्रियोंके लिए बधाईके तार आये। सौसे अधिक तार आये होंगे। उन सबको यहाँ देनेकी जरूरत नहीं है। उसके लिए पर्याप्त स्थान भी नहीं है। इनमें एक तार पोरबन्दरसे, एक अदनसे, और एक विलायतसे भी आया था। कुछ तार गोरोंके भी आये हैं। कुछ गोरोंने [संघके] कार्यालयमें आकर भारतीय कौमको बधाई दी।

प्रगतिवादी दलकी सम्मति

यह समझौता करनेसे पहले श्री स्मट्सने प्रगतिवादी दलकी सम्मति ले ली थी। श्री स्मट्सने २७ तारीखको सर जॉर्ज फेरारके[1] नाम निम्न पत्र[2] लिखा था:

१. सर जॉर्ज हर्बर्ट फेरार (१८५९–१९१५): "ईस्ट रैंड प्रोप्रायटरी माइन्स" के अध्यक्ष; उत्तरदायी सरकार बननेसे पहले और उसके बाद भी ट्रान्सवाल विधान परिषदके सदस्य।

२. मूल अंग्रेजी पत्र और उसका जवाब (देखिए अगला पृष्ठ) ८–२–१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में प्रकाशित हुआ था।

[प्रिय सर जॉर्ज फेरार]

एशियाई अब स्वेच्छया पंजीयनके लिए कह रहे हैं; इसलिए उन्हें दुबारा पंजीयन कराने दिया जाये, तथा शिक्षित और जाने-माने भारतीयोंसे अँगुलियोंकी छाप न ली जाये — ऐसा करनेमें क्या आपको और आपके दलके सदस्योंको कुछ आपत्ति है, कृपया यह पूछ देखें। जान पड़ता है कि इस प्रकार अब जो पंजीयन होंगे उनको सही ठहरानेके लिए संसदको दूसरा कानून बनाना होगा; और यह सम्भव है कि जो पंजीयन स्वेच्छया हों उनपर कानूनकी सजाओंका अमल बंद रखा जाये। जान पड़ता है सरकारसे एशियाई इस प्रकारका निवेदन करेंगे। अतः मैं चाहता हूँ कि इस बातका निपटारा करनेसे पहले आपका अभिप्राय मुझे मिल जाये।

[आपका, हृदयसे,
जे० सी० स्मट्स]

उत्तर देते हुए सर जॉर्ज फेरारने ३० तारीखको लिखा:

[प्रिय श्री स्मट्स,]

आपका पत्र प्राप्त हुआ; मैंने अपने मित्रोंको इसकी जानकारी दी। उससे नीचे लिखे प्रश्न पैदा होते हैं, जिनके उत्तर साथ दिये हैं।

प्रश्न १: एशियाइयोंके लिए दुबारा पंजीयनका द्वार खोल दिया जाये, और उनकी इच्छानुसार उन्हें स्वेच्छया पंजीयन करानेका अवसर दिया जाये, क्या इसमें कोई आपत्ति है?

उत्तर: नहीं, बशर्ते कि इसके लिए अवधि निश्चित कर दी जाये।

प्रश्न २: शिक्षित और जाने-माने एशियाइयोंके सम्बन्धमें अँगुलियोंकी छाप न माँगी जाये, क्या इसमें कोई आपत्ति है?

उत्तर: नहीं, बशर्ते कि शिनाख्त करनेके लिए अन्य योग्य साधन हों।

प्रश्न ३: इस बीच जो व्यक्ति स्वेच्छया पंजीयन करायें, उन्हें कानूनमें कही हुई सजाएँ न दी जाएँ; क्या इसमें कोई आपत्ति है?

उत्तर: नहीं।

आपके पत्रके अन्तिम वाक्यसे क्या मैं यह समझूँ कि एशियाई कौम इस नई रीतिको स्वीकार करना चाहती है और यदि ऐसा भरोसा न हो जाये तो सरकार उपर्युक्त शर्तें स्वीकार नहीं करेगी?

इस सम्बन्धमें हमारे पक्षका क्या कहना है यह मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ। हम लोग कानूनसे सहमत थे। और अब भी उसपर कायम हैं। उसका उद्देश्य पूरा होना चाहिए। हमें कहना चाहिए कि जो धाराएँ बनाई गईं हैं वे सरकार द्वारा बनाई गई थीं, और वे धाराएँ संसदके समक्ष नहीं लाई गई थीं; इसलिए इसके सम्बन्धमें सारा उत्तरदायित्व सरकारको वहन करना है।

हमें लगता है कि सफलताके लिए कानूनका अमल यथासम्भव सौम्य रूपसे किया जाना चाहिए, और जहाँतक सम्भव हो बड़ी सरकारके उत्तरदायित्व और कठिनाइयोंको ध्यानमें रखना चाहिए।

[आपका, हृदयसे,
जॉर्ज फेरार]

इसका अर्थ

इन पत्रोंसे जाहिर होता है कि प्रगतिवादी दल हमारे विरुद्ध नहीं है। ऊपरके इन कुछ पत्रोंसे यह स्पष्ट दिखाई नहीं देता कि नया कानून रद हो ही जायेगा, अथवा स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंपर वह लागू होगा ही नहीं। इसलिए किसीको सन्देह हो तो वह उचित होगा । ये पत्र इस इरादेसे लिखे गये हैं कि गोरे बहुत न चौंक पड़ें। फिर भी सरकार अगर धोखा देकर कानून वही बनाये रखे तो क्या होगा, यह सवाल पैदा हुआ है। इसका उत्तर सीधा है। हम लोग नया पंजीयन कायदेके अनुसार नहीं करा रहे हैं, यह तो ठीक ही है। बादमें यदि सरकार कानून रद नहीं करती तो हम इसके कारण कुछ बँध नहीं जाते। कानून रद न हो तो दुबारा लड़ेंगे, और तीन महीनेमें हम जो और ताकत इकट्ठी कर लेंगे वह हमारे काम आयेगी। यही नहीं, सरकारकी ज्यादा बदनामी होगी और उस हद तक हम लोगोंकी शक्ति बढ़ेगी। स्वेच्छया पंजीयनकी और सत्याग्रह (पैसिव रेजिस्टेन्स) की यह विशेषता है कि हमारे सूत्र सरकारके हाथमें होनेके बजाय हमारे ही हाथमें रहते हैं।

सम्पूर्ण समझौता

उक्त समझौतेकी लिखा-पढ़ी हो जानेके बाद जनरल स्मट्ससे फिर भेंट हुई। उसमें सब बातें साफ हो गई हैं।

१. अगर भारतीय समाज स्वेच्छया पंजीयन करायेगा तो नया कानून पूराका-पूरा रद हो जायेगा।

२. स्वेच्छया पंजीयनको वैध बनानेके लिए एक नया विधेयक स्वीकृत किया जायेगा।

३. स्वेच्छया पंजीयन १६ वर्षसे कम आयुवाले बालकोंपर लागू नहीं होगा।

४. स्वेच्छया पंजीयनकी अर्जी और पंजीयन-पत्र नये छपेंगे। पंजीयन-पत्रोंमें पति, पत्नी और बालकोंका नाम और उनकी आयु दी जायेगी।

स्वेच्छया दी गई अर्जीसे माँका नाम हटा दिया जायेगा और उसमें बालकों और नाबालिगोंके नाम रहेंगे। जिनके सोलह वर्षसे नीचेकी आयुके चलने-फिरने योग्य बालक हों उनको उन्हें अपने साथ ले जाना होगा, जिससे उनको देखकर उनकी आयु, और मुँहपर निशानी हो तो लिखी जा सके। जिनके बालक ट्रान्सवालसे बाहर हों वे अपने बालकोंके केवल नाम और आयु बता दें तो पर्याप्त होगा। सोलह वर्षसे कम आयुका होनेपर भी यदि माँ-बाप किसी बालकके लिए अलग पंजीयनकी माँग करेंगे तो वह मिल सकेगा। इसलिए अब याद रखना चाहिए कि पंजीयन कराते समय जो बालक ट्रान्सवालमें मौजूद हों और जो ले जाने योग्य हों उन्हें अपने साथ ले जाया जाये।

अँगुलियोंके निशानके बारेमें

(१) जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा अच्छी तरह पाई है उन्हें अँगुलियों या अँगूठोंकी छाप देनेकी आवश्यकता नहीं होगी।

(२) जो जाने-माने हैं अथवा जिनके पास धन-सम्पत्ति है वे अँगुलियों और अँगूठोंकी छाप देनेसे मुक्त हो सकते हैं।

(३) जिनको दसों अँगुलियोंकी छाप देनेपर विशेष आपत्ति हो, सरकार उनके अँगूठेके निशानको मान लेगी।

(४) और सबको दस अँगुलियोंकी छाप देनी होंगी।

इस प्रकार जो छूट मिली है वह अत्यन्त सन्तोषप्रद कही जा सकती है। इससे कुछ भी अधिक माँगना भारतीय समाजका ओछापन कहलाता। मनुष्योंका स्वाभिमान सदा उनकी मर्यादामें सीमित रहता है। छिछले होकर अधिकको याचना करना और वह मिल जाये तो उसे ले भी लेना, योग्य नहीं है। इसलिए प्रत्येक भारतीयको मेरी सलाह है कि वह शिक्षा अथवा धन-सम्पत्ति आदिके कारण मिलनेवाली छूटका लाभ न ले। स्वेच्छया पंजीयनके द्वारा हम मर्यादामें रहकर जो-कुछ करेंगे उसमें अप्रतिष्ठा नहीं है, बल्कि भलमनसाहत है। हम शिनाख्तमें सरकारकी मदद करेंगे — उसके लिए जितनी आवश्यक हो उतनी, बल्कि उससे अधिक ही। इस प्रकार हम ऊँचे चढ़ेंगे, यह विश्वासपूर्वक समझ लेना चाहिए। इन कारणोंसे श्री ईसप मियाँ, श्री गांधी और अन्य सत्याग्रहियोंने अपनी दस अँगुलियोंके निशान देनेका निश्चय किया है। उक्त व्यक्तियोंको जो अधिकार हैं उन्हें वे इस प्रकार खोते नहीं हैं, बल्कि सुरक्षित रख सकते हैं। कुछ अधिकार ऐसे होते हैं कि उनका उपयोग न किया जाये तो वे आभूषणकी भाँति शोभा देते हैं, परन्तु उनका उपयोग करनेपर परिणाम हानिकर होता है। जो अलंकार साफ-साफ दिखाई देते हैं, अपने संघर्षको समझानेकी दृष्टिसे मैं उनका उल्लेख कर रहा हूँ। कानून और उसके रहस्य अर्थात् भेदको हम आत्मा या रूह कह सकते हैं। धाराओं अर्थात् अँगुलियों आदिको हम शरीर अथवा बदनकी उपमा दे सकते हैं। कानूनरूपी आत्माके, जो दुरात्मा यानी खराब रूह है, विनाशके प्रयत्नमें हम पिछले सोलह महीनोंसे जुटे हुए हैं। फलस्वरूप उस खराब रूह यानी दुरात्माका नाश हुआ है। अब जो शरीर बच रहा है उससे उसका सम्बन्ध नहीं है। इसी शरीरके अन्दर खराब रूहके बदले अच्छी रूह यानी आत्मा बस जाये तो हम उस शरीरका विरोध नहीं करेंगे। स्वेच्छया पंजीयन रूपी अच्छी आत्मा यानी रूहके उसी शरीरमें अथवा उसी प्रकारके शरीरमें प्रविष्ट होनेसे, हमारा उक्त शरीरसे कोई झगड़ा नहीं रहता। इतना ही नहीं, किन्तु हम उसका आदर करेंगे। लेखक स्वयं इस उपमाको गम्भीरतासे मानता है। इस भूमिकापर बहुतसे विचार उत्पन्न होते हैं और उनका विस्तार करनेसे यह प्रत्यक्ष सिद्ध हो सकता है कि हमारी लड़ाई सचमुच खुदाई यानी धार्मिक थी; और समझदार मनुष्य तत्काल देख सकता है कि हमें इसमें सम्पूर्ण विजय अप्रत्याशित शीघ्रतासे प्राप्त हुई है।

पंजीयन कौन करा सकेगा?

(१) वे, जिनके पास सच्चे अनुमतिपत्र हैं अर्थात् अपन अनुमतिपत्रोंपर जिनके अँगूठोंके निशान आदि सही-सही होंगे।

(२) वे, जो १९०२ के मई मासकी ३१ तारीखको ट्रान्सवालमें थे — चाहे उनके पास अनुमतिपत्र हों या न हों।

(३) जिनके पास डचोंके समयके अपने निजके तीन-पौंडी पंजीयनपत्र हैं और जो इस समय ट्रान्सवालमें हैं।

(४) जो ट्रान्सवालमें लड़ाईके पश्चात् १६ वर्षसे कम आयुमें ठीक ढंगसे दाखिल हुए हैं।

इस प्रकारके प्रमाणवाले व्यक्तिको स्वेच्छया पंजीयन करानेमें दिक्कत नहीं होगी।

चेतावनी

यह लिखते समय 'स्टार'में सरकारके विरुद्ध दो बहुत ही कड़े पत्र मेरे देखनेमें आये हैं। एकके लेखकका नाम फिलिप हेमंड है। उसने लिखा है कि सरकारने भारतीयोंको सब-

कुछ दे डाला है, इसलिए श्री स्मट्सको शक्तिशाली व्यक्ति नहीं कहा जा सकता। श्री हेमंडका कहना है कि भारतीयोंको बेधड़क जेलमें रखना ठीक था। श्री हाइमन लेवी नामक एक और गोरा लिखता है कि उसने अपना मत श्री स्मट्सके दलके लोगोंको दिया था। अब चूँकि उन्होंने भारतीयोंकी सुन ली है इसलिए उसे उनपर रोष है और उसने श्री स्मट्सके खिलाफ बहुत सख्त लिखा है। इन पत्रोंसे पता चलता है कि जब संसदकी बैठक होगी तब श्री स्मट्सकी स्थिति विषम हो जायेगी। यह सब देखकर भारतीय कौमको अच्छी तरह विचार करना है और पंजीयन बड़ी तेजीसे निपटा देना है, जिससे सबको विश्वास दिलाया जा सके कि हम सच्चा खेल ही खेल रहे हैं। भारतीय कौमके भविष्यकी परिस्थितिका आधार आगामी तीन महीनेके कामपर होगा। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि प्रत्येक भारतीय अपने स्वार्थका विचार छोड़कर केवल यही सोचेगा कि कौमका भला कैसे हो।

कार्यालय कब खुलेगा?

स्वेच्छया पंजीयन करनेके लिए आगामी सोमवारको वॉन ब्रैंडिस स्क्वेयरके पुराने देवालयमें कार्यालय खुलेगा। स्वेच्छया पंजीयन लेनेवाले उस समय वहाँ तुरन्त पहुँच जायें। हमारा कर्तव्य है कि हम बड़ी तेजीसे इसे पूरा करें। व्यवस्था हुई है कि इस सम्बन्धमें 'गज़ट'में सूचना नहीं छपेगी — सो ऐसा समझकर कि इसमें हमारी अधिक शोभा है। यह सम्भव है कि प्रिटोरियाके अतिरिक्त अन्य गाँवोंमें पंजीयन मजिस्ट्रेटोंके द्वारा होंगे। हमारे पास तीन महीनेकी अवधि है; किन्तु डेढ़ महीनेकी अवधिमें समाप्त कर दें तो और भी अच्छा हो।

तारोंकी वर्षा

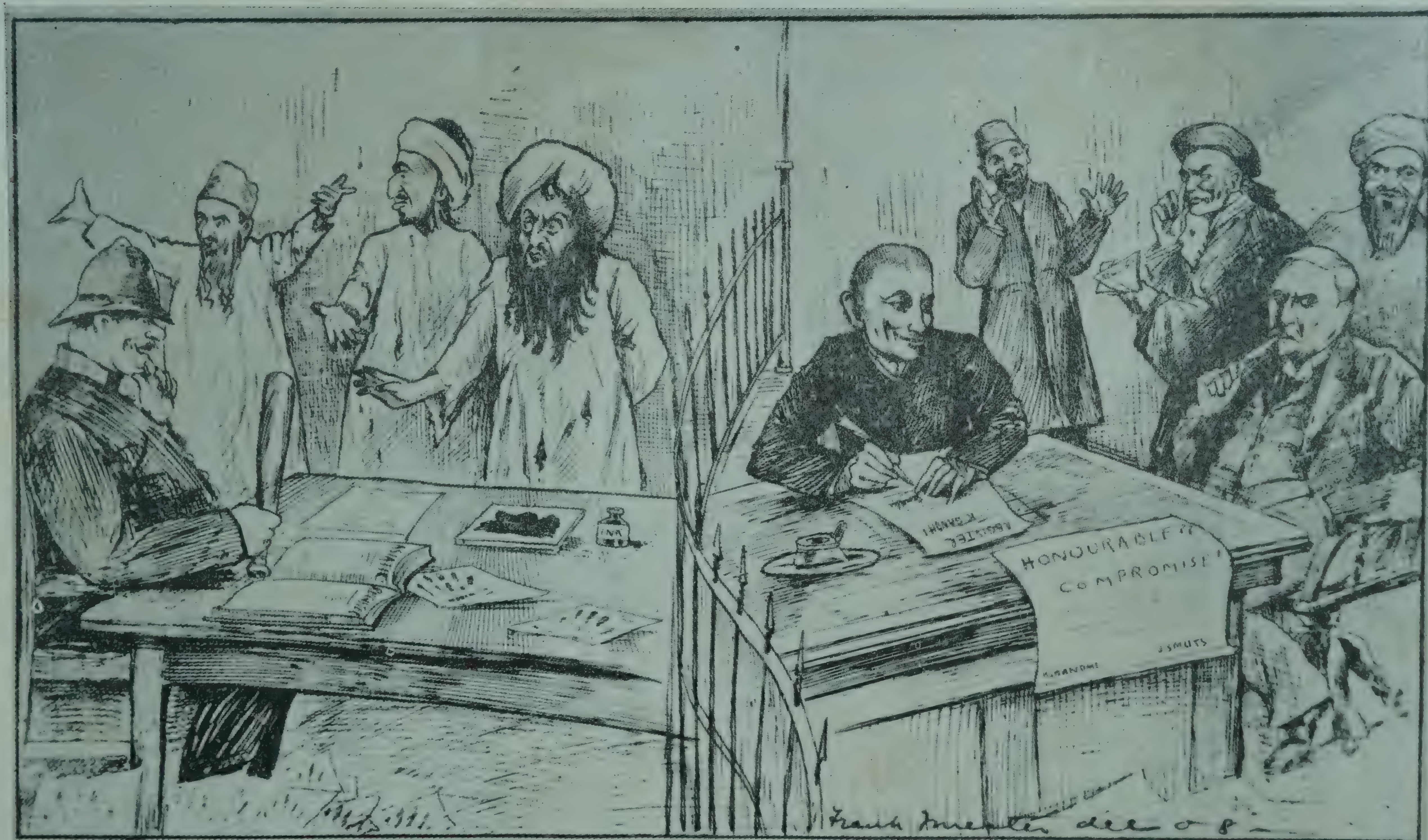
कैदियोंकी रिहाईके बारेमें तारोंकी वर्षा ही हो गई है। दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक भागसे तार छूटे हैं। करीब डेढ़ सौ तार आये होंगे। शुक्रवार और शनिवारको पाँच-पाँच मिनटके बाद तारवाला आता हुआ देखा गया। इसके सिवा अदनसे और भारतसे भी तार आये हैं। अदनसे श्री कैकोबादका, पोरबन्दरसे श्री हाजी इस्माइल झवेरीका और बम्बईसे प्रेसिडेंसी एसोसिएशनकी ओरसे सर फिरोजशाह मेहताका तार आया है। सर फिरोजशाहका तार लम्बा है; उसमें कौमको बड़ी बधाई दी गई है, और उसके धैर्य, साहस, सहिष्णुता और चातुर्यकी प्रशंसा की गई है।

गोरोंकी सहायता

ट्रान्सवालकी लड़ाईमें गोरोंसे जो सहायता प्राप्त हुई है उसकी सीमा नहीं है। श्री कार्टराइट, श्री डेविड पोलक, श्री फिलिप्स[1], श्री डोक[2], श्री स्टेंट, ('प्रिटोरिया न्यूज'के

१. चार्ल्स फिलिप; कैथलिक धर्मके स्थायी शासन संघ द्वारा नियुक्त पादरी। देखिए: **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय २३।

२. पूज्यपाद जोज़ेफ जे० डोक (१८६१–१९१३); जोहानिसबर्गके बैपटिस्ट गिरजाघरके पादरी। कैथलिक धर्मके स्थायी शासन संघ द्वारा भारतीयोंके प्रति उनकी सहानुभूतिको अस्वीकार करनेपर वे अपने पदसे त्यागपत्र देनेके लिए तैयार थे। १९११ में जब गांधीजी और पोलक जेलमें थे तब उन्होंने **इंडियन ओपिनियन**का सम्पादन किया था। अपने धार्मिक व्यवसायका अनुसरण करते हुए रोडेशियामें उनकी मृत्यु हुई। देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय २२।



SPOOFED!

धोखा ! (देखिए पृष्ठ ७९)



जनरल स्मट्सका बेलन और भारतीय समाज

(देखिए पृष्ठ ७९)

सम्पादक) आदि प्रसिद्ध गोरोंने बहुत ही अच्छी सहायता की। इनमें से कई तो अन्ततक हमारा साथ देनेकी तैयारीमें थे। इसके अतिरिक्त सैकड़ों गोरोंने सहायता करनेका इरादा किया था, जिसका हमें पता तक नहीं चला। विलायतमें फैले हुए जोशसे प्रकट होता है कि वहाँके लोग भी सत्यके लिए संघर्ष करनेको तैयार हो चुके हैं। इस विचारको हृदयमें रखकर गोरोंके प्रति अपने रोषको मिटा देना भारतीय समाजके योग्य होगा। उन लोगोंमें कुछ भी अच्छा नहीं हो सकता, ऐसा हम कई बार बिना विचारे कह देते हैं। परन्तु यह स्पष्ट भूल है। मनुष्य जाति एक ही है। और यदि बहुतसे गोरे भूलसे भेद मानें तो भी हमें ऐसी भूल नहीं करनी चाहिए।

फेडरेशन हॉल

बुधवारको संघकी समितिकी बैठक हुई थी। उसमें तय हुआ है कि समाज-भवन (फेडरेशन हॉल) के लिए, और कुछ अन्य खर्चके लिए, चन्दा किया जाये। दस शिलिंगके टिकट निकाले जायें और प्रत्येक कमसे-कम इतना दे। जो अधिक देनेकी क्षमता रखते हों वे अधिक दें। विशेष आगामी सप्ताहमें लिखूँगा। मुझे आशा है कि इस बातमें सभी पर्याप्त सहायता देंगे।

जीतका व्यंग्य-चित्र

गत ११ तारीखके अंकमें हम 'संडे टाइम्स' के उस व्यंग्य-चित्रका उल्लेख कर चुके हैं जिसमें यह बताया गया था कि ट्रान्सवाल सरकार-रूपी स्टीमरोलर भारतीय कौम-रूपी[1] हाथीको कुचल डालनेपर तुला हुआ है। उक्त समाचारपत्रने भारतीय कौमकी जीत दिखानेके लिए उसी व्यंग्य-चित्रको अभी-अभी दूसरे रूपमें दिया है।[2] उसमें स्टीमरोलर टुकड़े-टुकड़े होकर अस्त-व्यस्त बिखरा पड़ा है। स्मट्स साहबकी कुर्सी टूटी हुई हालतमें जमीनपर पड़ी है। शोचनीय अवस्थामें स्मट्स साहब उसपर पड़े हुए हैं और सामने खड़े हाथीकी ओर भयकी दृष्टिसे देख रहे हैं। उनके सिरपर अपयशकी टोपी धरी है। अस्त-व्यस्त पड़े हुए स्टीमरोलरको देखकर भारतीय समाज-रूपी हाथी स्मट्स साहबके बिलकुल पास तक अपनी सूंड बढ़ाये प्रफुल्लित खड़ा है, और पूछ रहा है, "कहिए, आप सब मजेमें तो हैं?" और यह भी दिखाया गया है कि श्री गांधी-रूपी महावत अपने दोनों हाथोंकी अँगुलियोंको, जिस प्रकार पंखा फैलाया जाता है उस प्रकार फैलाकर अपनी नाकसे लगाकर मानो श्री स्मट्ससे यह कह रहा है कि "क्यों? चख लिया अँगुलियोंकी छापका स्वाद?" व्यंग्य-चित्रके नीचे लिखा है: "श्री गांधीकी अँगुलियोंकी निशानी लगवानेवाले उपनिवेश-सचिवका चित्र।"

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-२-१९०८

१. देखिए व्यंग्य-चित्र पृष्ठ ३२ के सामने।
२. देखिए व्यंग्य-चित्र सामने।

३९. पत्र : मित्रोंको[1]

जोहानिसबर्ग,
फरवरी १०, १९०८

मेरे प्रिय मित्रो,

मैं अच्छी तरह हूँ। स्नेही भाई श्री डोक तथा स्नेहमयी बहन श्रीमती डोक मेरी सार-सँभाल कर रहे हैं। मैं आशा करता हूँ कि कुछ ही दिनोंमें मैं अपना काम हाथमें ले लूँगा।

जिन लोगोंने यह कृत्य किया है वे जानते न थे कि वे क्या कर रहे हैं। उन्होंने सोचा कि मैं कोई गलत काम कर रहा हूँ। उन्होंने अपना गुबार निकालनेके लिए वह रास्ता अपनाया जिसके अलावा वे और कुछ जानते ही न थे। इसलिए मेरा निवेदन है कि उन लोगोंके खिलाफ कोई कार्रवाई न की जाये।

यह देखकर कि प्रहार मुसलमान या मुसलमानों द्वारा किया गया था, हिन्दू लोग कदाचित् क्षुब्ध होंगे। यदि ऐसा होगा तो वे संसारके तथा परमपिताके सामने गुनहगार होंगे। मैं तो यही कह सकता हूँ कि जो रक्त बहा है, उससे दोनों जातियोंके बीच स्थायी मैत्री स्थापित हो, और मैं हृदयसे यही प्रार्थना करता हूँ। ईश्वर करे वह फलवती हो।

वारदात होती चाहे न होती, मेरी सलाह ज्योंकी-त्यों रहेगी। एशियाई लोगोंके इस बहुत बड़े भागको अँगुलियोंकी छाप देनी चाहिए। जिन्हें कोई ऐसी आपत्ति हो, जिसका सम्बन्ध अन्तरात्मासे है, उन्हें सरकारसे छूट मिल जायेगी। इससे अधिकको याचना करना लड़कपन प्रकट करनेके समान होगा।

सत्याग्रहकी भावनाको अच्छी तरहसे समझ लेनेपर ईश्वरके सिवा और किसीसे डरनेकी बात रह ही नहीं जाती। इसलिए विवेकशील और गम्भीर हृदयवाले भारतीयोंके एक बहुत बड़े बहुमतको चाहिए कि वह अपने कर्तव्य-पालनके मार्गमें किसी प्रकारके कायरतापूर्ण भयके द्वारा बाधा उत्पन्न न होने दे। स्वेच्छासे कराये गये पंजीयनके खिलाफ कानूनको मंसूख कर देनेका वादा किया ही जा चुका है; इसलिए प्रत्येक नेक भारतीयका यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि वह भरसक सरकारकी तथा उपनिवेशकी सहायता करे।

आपका विश्वस्त मित्र तथा सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–२–१९०८

१. गांधीजीके स्वेच्छया पंजीयनके प्रस्तावसे कुछ भारतीय नाराज हो गये थे। १० फरवरी १९०८ को जब वे पंजीयन कराने पंजीयन कार्यालयकी ओर जा रहे थे, मीर आलम और दूसरे कुछ पठानोंने उनपर हमला किया था। देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास**, अध्याय २२।

४०. समझौतेके बारेमें प्रश्नोत्तरी

हम देखते हैं कि जो समझौता हो चुका है उसके बारेमें कई सवाल उठे हैं। लोग तरह-तरहकी बातें कर रहे हैं, और कुछ नासमझ व्यक्ति ऐसा भी कह रहे हैं कि यह जाहिरा जीत कहीं हार तो नहीं है। हमारी समझमें ट्रान्सवालमें भारतीयोंको जो जीत मिली है उसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि प्रत्येक भारतीयके लिए उसका सही रहस्य समझ लेना ठीक होगा। इसलिए हम प्रायः सभी प्रश्नोंका खुलासा संवादके रूपमें दे रहे हैं। पाठक दो प्रकारके होते हैं। एक तो जागते हुए भी सोनेवाले, अर्थात् समझनेके इरादेसे नहीं, किन्तु केवल द्वेषभावसे और छिद्र खोज निकालनेके लिए पढ़नेवाले; और दूसरे वे जो सचमुच ही नहीं समझते, अर्थात् जो सचमुच नींदमें हैं। हम जो संवाद यहाँ दे रहे हैं वह दूसरे प्रकारके पाठकोंके लिए ही उपयुक्त है। जो नींदमें हो उसे जगाया जा सकता है; किन्तु जो जागता हुआ भी सो रहा है उसे कैसे जगाया जाये? यह संवाद पाठक और सम्पादकके बीच है और हमारी सिफारिश है कि प्रत्येक पाठक इसे बार-बार और बहुत ध्यानसे पढ़े।

प्रस्तावना

पाठक: सम्पादक महोदय, आपने ट्रान्सवालके समझौतेके सम्बन्धमें जो लिखा है मेरा इरादा उसके बारेमें कुछ प्रश्न पूछनेका है। यदि आप इजाजत दें, तो पूछूँ।

सम्पादक: निःसन्देह पूछिए। हमारा काम अपनी बुद्धिके अनुसार अपने पाठकोंको खबरें और जानकारी देनेका है। हमारा ध्येय समाजकी सेवा करना है। यह लोगोंकी शंकाएँ दूर करनेपर ही हो सकता है।

प्रश्न पूछनेसे पहले एक बात याद रखें; अपने यहाँ कहा जाता है कि अधिकार अर्थात् योग्यता न हो तो जवाब समझमें नहीं आ सकता। जैसे जोड़ने और घटानेकी जानकारीके बिना कोई गुणा और भागके प्रश्न पूछे तो वह उन उत्तरोंको समझनेका अधिकारी नहीं है — उसके पास वह योग्यता नहीं है; इसी प्रकार प्रश्नोंके सम्बन्धमें आपकी योग्यता यह होनी चाहिए कि आप जो प्रश्न पूछें वे निर्मल हृदयसे, देशके हितके वास्ते, और ईश्वरको साक्षी रखकर पूछे जायें। यदि आपमें इतनी पात्रता हुई तो हमारा उत्तर समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। जो शर्त आपपर लागू होती है वह हमपर भी लागू होती है। हमारा उत्तरदायित्व अधिक है, इसलिए ये तीनों शर्तें हमें अधिक सम्हालनी हैं। अतएव जो प्रश्न आप करेंगे उसका उत्तर हम निर्मल हृदयसे, देशके कल्याणके वास्ते और ईश्वरको साक्षी समझकर ही देंगे। अब आप बेखटके सवाल पूछें।

इसे जीत कैसे कह सकते हैं?

पाठक: आपने लिखा है कि ट्रान्सवालके भारतीयोंने सम्पूर्ण विजय पाई है, और वे जो माँगते थे उससे ज्यादा ही मिला है। मैं यह ठीक-ठीक नहीं समझ पाया।

सम्पादक: आपको 'इंडियन ओपिनियन'के पिछले अंकोंको देख जाना पड़ेगा। ध्यानसे देखनेपर पता चलेगा कि भारतीय कौमकी माँग स्वेच्छया पंजीयन करवाकर कानूनको रद

करानेकी थी। पाँच हजार[1] व्यक्तियोंके हस्ताक्षरसे जो अर्जी भेजी गई थी उसमें भी यही शर्त थी। स्वेच्छया पंजीयन कानूनवाले पंजीयनके ही समान होता तो भी हमारे लिए उसमें आगा-पीछा करनेकी कोई बात नहीं थी। अब सरकारने स्वेच्छया पंजीयन स्वीकार कर लिया है; यदि ऐसा किया जाये तो कानूनको रद कर देनेके लिए लिखित वचन मौजूद है। इसीसे हम अपनी सम्पूर्ण जीत मानते हैं। परन्तु समझौतेके अनुसार तो स्वेच्छया पंजीयनमें सुशिक्षित, प्रतिष्ठित आदि लोगोंकी परिस्थितिका ध्यान भी रखा गया है। फिर, स्वेच्छया पंजीयन तो भविष्यमें जो भारतीय ट्रान्सवालमें आयेंगे उनपर भी लागू होता है। और जिनको सरकारी नौकरीसे अलग किया गया है उन्हें भी बहुत करके दुबारा ले लिया जायेगा।

स्वेच्छया बनाम अनिवार्य पंजीयन

पाठक: मैं तो अभीतक स्वेच्छया और अनिवार्यके बीच उलझा हुआ हूँ। और मैं जानता हूँ कि दूसरे लोग भी इसे सही-सही नहीं समझते। इसलिए आप समझायें तो अच्छा हो।

सम्पादक: इसके न समझे जानेपर मुझे कोई आश्चर्य नहीं है। इसे बहुत-से गोरे भी नहीं समझ पाते। कानूनके अनुसार पंजीयन करानेसे हम लोगोंपर जुल्म होता था। और उसमें तौहीन थी। इसका नाम है अनिवार्य पंजीयन। उसी प्रकारका पंजीयन यदि हम स्वेच्छया करायें तो हमारी प्रतिष्ठा बनी रहती है। और इससे हम कुलीन कहलायेंगे। उदाहरणके लिए, यदि मैं अपने मित्रकी सेवा करूँ, उसके पाँव धोऊँ, उसका मैला उठा दूँ, तो इससे हमारी मित्रता बढ़ेगी, मेरी आत्मा प्रसन्न होगी, और लोग मुझे बहुत भला आदमी समझेंगे। दूसरा मनुष्य वही काम जोर-जबर्दस्तीसे, उसे पसन्द न होनेपर भी, मार खानेके डरसे या सिर्फ पैसेके लालचसे और बुरा काम समझकर करता है। ऐसे व्यक्तिको हम नीच और गुलाम मानेंगे। उसे स्वार्थी कहेंगे। वह स्वयं भी ऐसा काम करनेमें लजायेगा। कोई उसे देख ले तो वह छिप जानेकी कोशिश करेगा। ऐसा मनुष्य पापी कहलायेगा और उसकी आत्मा कभी प्रसन्न नहीं होगी। जैसा यह अन्तर है वैसा ही अन्तर स्वेच्छया और अनिवार्य पंजीयनमें है।

पाठक: अब बात कुछ समझमें आई। परन्तु मुझे तो लगता है कि आपने जो उदाहरण दिया वह लागू नहीं होता; क्योंकि यदि हम स्वेच्छया पंजीयन न करायें तो ऐसा जान पड़ता है कि कानून हमपर लागू किया जायेगा। फिर हम लालचमें पड़कर स्वेच्छया पंजीयन कराते हैं; इसलिए आप जिसे स्वेच्छया कह रहे हैं उसमें, मैं तो जबर्दस्ती और स्वार्थ, दोनों दोष देख रहा हूँ।

सम्पादक: आप भूल कर रहे हैं। स्वेच्छया पंजीयन न करायें तो कानून हमपर लादा जायेगा, यह ठीक है; किन्तु इसमें जबर्दस्ती नहीं है। यदि सरकार यह कहे कि "आप लोग पंजीयन करायें अन्यथा हम कानूनको अमलमें लायेंगे तो बेशक वह जबर्दस्ती कहलायेगी। परन्तु हम तो यह कह रहे हैं कि हम लोग स्वेच्छया पंजीयन करानेके लिए तैयार हैं। अगर हम न करायें तो आप कानून लागू करें। यह माँग हम जबर्दस्तीके डरसे नहीं, बल्कि अपनी ईमानदारी जाहिर करनेके लिए, और इसलिए कर रहे हैं कि स्वेच्छया पंजीयन करानेमें

१. वास्तवमें यह संख्या ४,५२२ थी। देखिए: खण्ड ७, पृष्ठ ३२०।

हम तौहीन नहीं मानते। फिर, स्वेच्छया पंजीयनकी माँगका विशेष उद्देश्य उस भ्रमको दूर करना है जो हमारे बारेमें हमारे इज्जतदार होनेपर भी सरकारके मनमें है। इसलिए इसमें जोर-जबर्दस्तीकी कोई बात नहीं है। यदि जबर्दस्तीसे डरकर हमने यह किया होता तो सोलह महीनों[1] तक सरकारसे लोहा न लेते। तथ्य तो यह है कि हमारे — हमारे सत्यके — सामर्थ्यसे डरकर सरकारने स्वेच्छया पंजीयनको मान्य किया है।

फिर, आप इसमें यह दोष बताते हैं कि ऐसा लालचके मारे किया गया है। यह भी बिना विचारे कहा जा रहा है। गहराईसे देखें तो प्रत्येक कार्यमें लालच रहता ही है। मैंने जो उदाहरण दिया उसमें भी — अपने मित्रकी मैं जो सेवा करता हूँ उसमें — एक प्रकारका लालच मौजूद है, अपनी आत्माको प्रसन्न करनेका। ऐसा करना खुदाका फर्मान है, यह सोचकर उसकी आज्ञा पालन करनेके लिए यदि मैं वह सब करूँ तो यह सबसे श्रेष्ठ प्रकारका लालच है; फिर भी लालच तो है ही। अपने मित्रका अधिक प्यार पानेके लिए करूँ, तो भी वह लालच है, और घटिया किस्मका लालच है। स्वेच्छया पंजीयनमें उस प्रकारका लालच मौजूद है। यह दोष नहीं है, गुण है। साधारण बातचीतमें ऐसी आशाको हम लालच नहीं कहते। किन्तु अपने ही स्वार्थके लिए जो होता है उस मनोवृत्तिको लालच कहते हैं। जो आदमी खुदाका बन्दा बनकर निरन्तर मनुष्य-जाति अथवा जीवमात्रकी सेवा करता है और उसीमें मग्न रहता है उसे अवश्य खुदाकी चाकरीमें रहने — निर्वाण पानेका — लालच है; ऐसे मनुष्यकी हम पूजा करते हैं। और संसारमें यदि इस प्रकारके बहुत-से मनुष्य हो जायें तो आज जो पाप, क्लेश, दुःख, भुखमरी, रोग आदि दिखाई पड़ते हैं उनकी जगह पुण्य, समृद्धि, शान्ति, सुख और एकता दिखाई देने लगें।

दस अँगुलियों[की छाप]

पाठक: मुझे लगता है कि स्वेच्छया और अनिवार्यका भेद अब मेरी समझमें आ गया। लेकिन देखता हूँ कि दस अँगुलियोंकी छाप तो हमारे भाग्यमें है ही। लगता है कि इसमें गरीब तो मर गये और शिक्षितों और साहूकारोंकी बन आई। अगर आप अब दस अँगुलियोंकी छाप देना पसन्द करते हैं तो पहले इसके विरुद्ध इतना सारा क्यों लिख डाला?

सम्पादक: यह प्रश्न अच्छा किया। यदि उपर्युक्त अन्तर आप अच्छी तरह समझ गये हों तो इस प्रश्नका उत्तर ऊपर आ गया है। फिर भी हम आपके प्रश्नपर विचार करें।

पहले तो दस अँगुलियोंकी छाप देनेकी बात ही नहीं रह गई; अर्थात् कानूनमें पूरी कौमके लिए दस अँगुलियोंके निशान देनेका विधान था, इसलिए वह हमारी चमड़ीपर एक दाग था। अब तो दस अँगुलियोंकी निशानी केवल शिनाख्तके लिए दाखिल की गई है।

दूसरी बात यह कि शिक्षित और साहूकार बच गये, यह कहना उचित नहीं है। शिक्षित मनुष्यकी और सम्पन्न तथा जाने-माने व्यक्तिकी शिनाख्त उसके ज्ञान और शरीरमें ही निहित है। इसलिए उनसे अँगुलियोंकी निशानी देनेके लिए कहना अपमान कहलायेगा। इस प्रकार विचार करनेपर अनपढ़ या वे लोग जो जाने-माने नहीं हैं, अँगुलियोंकी छाप दें तो इसमें आपत्तिकी कोई बात नहीं है; बल्कि उनका पूरा-पूरा बचाव हो जाता है। उदाहरणके लिए, सभी लोग नेटालका अधिवास-पत्र लेनेके लिए बाध्य नहीं हैं। जाना-माना व्यक्ति ऐसे प्रमाणपत्रके बिना जा सकता

१. सितम्बर १९०६ से जनवरी १९०८ तक

है। लेकिन यदि इसपर बहस करके कोई अनपढ़ अथवा अप्रसिद्ध व्यक्ति ऐसा करने बैठे तो वह मारा जायेगा; और वापस लौटनेमें उसे बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ेंगी।

तीसरी बात, पहले अँगुलियोंके निशानके विरुद्ध लिखनेकी बड़ी आवश्यकता थी। इसलिए नौ महीने तक लड़ाई[1] चलनेके बाद जून मासमें[2] जब निश्चित रूपसे अँगुलियोंकी छापकी खबर मिली तब हम प्रसन्न हुए और उसके बारेमें जो कुछ पढ़ना था वह पढ़कर कौमके सामने रखा। कालरूपी — शैतानी — कानूनको धारारूपी अँगुलियोंकी छाप आदिका देह प्राप्त हुआ इससे हमें खुशी हुई। हमने देखा कि लोग कानूनका भीषण रूप अब सही-सही देख सकेंगे, और यही हुआ। धाराएँ प्रकाशित होनेके बाद ही पूरा रंग आया। हमने यह बताया कि अँगुलियाँ तो भारतमें केवल अपराधियोंसे ली जाती हैं।

उसके सम्बन्धमें हमने प्रभावपूर्ण कविताएँ छापीं: "दस अँगुलियोंकी दिये निशानी"— "जो कसम खुदाकी खाकर भी दे देगा निशानी"[3]— आदि पंक्तियोंकी ध्वनि अभीतक हमारे कानोंमें गूँज रही है।

इनमें से हम कुछ भी वापस नहीं ले रहे हैं। और जो व्यक्ति कानूनको मानकर अँगुलियोंकी छाप तो क्या, केवल जरा-सा हस्ताक्षर भी दे दे तो उसपर ये पंक्तियाँ लागू करेंगे।

पाठक: अब अँगूठा तो अँगूठा, आप तो अँगुलियोंकी छाप तक देनेकी सलाह दे रहे हैं; यह क्यों?

सम्पादक: क्योंकि अँगुलियाँ आदि तथ्य-रूपी शरीरमें जबतक शैतान रूपी कानून था तब तक हम उसके विरुद्ध थे। वह शैतानी रूह शरीरमें से निकल चुकी, इसलिए अँगुलियाँ आदि तथ्य रूपी शरीरके विरुद्ध हमारा विशेष झगड़ा नहीं रहता। अब अँगुलियोंकी छाप देनेमें हम अपमान नहीं वरन सम्मान समझते हैं।

पाठक: मैं घबरा गया हूँ। जो अँगुलियोंकी छाप पहले खराब थी वह अब अच्छी हो गई है, यह बात गले नहीं उतरती। इसे और समझनेकी आवश्यकता है।

सम्पादक: आप घबरा रहे हैं, यह स्वाभाविक है। हम इन सारी बातोंका विचार कर चुके हैं, इसलिए हमें सभी बातें साधारण और सुगम लगती हैं। आपके सामने यह बात नये विचारके रूपमें आ रही है; इसलिए वह कठिन लगे बिना नहीं रह सकती। ऊपर मित्रकी और गुलामकी सेवा-चाकरीका एक उदाहरण हम दे चुके हैं। वह यहाँ भी लागू होता है। अब दूसरा उदाहरण लें। इस देशमें हम ऊँचा कोट पहनते हैं; उसमें दोष नहीं माना जाता। परन्तु अपने देशमें हम ऊँचा कोट पहनें और हमारे शरीरका नीचेका भाग दिखाई दे तो उसमें दोष है। इसलिए एक ही वस्तु एक स्थानपर उचित और दूसरे स्थानपर अनुचित कहलाती है। और फिर भारतमें दस अँगुलियोंकी छाप देना अपराधीके लिए अनिवार्य है। यही बात खूनी कानूनके अन्तर्गत थी। अब जो हमें देनी है, वह अनिवार्य नहीं है, बल्कि स्वेच्छया है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। इसका कारण यह है कि हम कई बार लोगोंको ऐसी सालह देते आये हैं और आगे भी देंगे। ऐसा विवेक करनेमें हमारी योग्यता प्रकट होती है। जब ट्रान्सवालमें अनिवार्य रूपसे तसवीर देनेकी बात चली थी तब समाजने उसका

१. सितम्बर १९०६ से जून १९०७।
२. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ६७।
३. 'दस आंगळियो तणी निशानी'—'जे कसम खुदाना खाई निशानी करशे'।

विरोध किया। यह उचित था। शौकके लिए अथवा और किसी कारणसे हिन्दू-मुसलमान तसवीर उतरवाते हैं। इससे आप देख सकते हैं कि बहुत-सी वस्तुएँ किसी हेतुके अनुसार ही अपमानजनक या सम्मानजनक हो सकती हैं।

पाठक : अब ऐसा लगता है कि मैं समझ रहा हूँ। किन्तु मनमें यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या इस तरह सभी वस्तुएँ किसी एक अवसरपर अच्छी और दूसरे अवसरपर बुरी हो सकती हैं ?

सम्पादक : ऐसा तो हो ही नहीं सकता। उपर्युक्त लड़ाईकी बात सभी वस्तुओंपर लागू नहीं होती। कुछ वस्तुएँ देश और कालके अनुसार खराब या अच्छी होती हैं। कुछ ऐसी होती हैं जो सदा और सब जगह खराब या अच्छी होती हैं। खुदाका नाम लेना हमेशा और सभी जगह अच्छा है। व्यभिचार हमेशा और सब जगह खराब है। नियम यह है कि जिस वस्तुमें अपने-आपमें पाप — बुराई — नहीं होती, उसी वस्तुपर उक्त नियम लागू किया जा सकता है।

पाठक : आपके ही ढंगसे देखें तो दस अँगुलियोंकी छाप देनेमें आपत्ति नहीं है, ऐसा मेरी समझमें आ रहा है। लेकिन गोरे मजाक उड़ा रहे हैं कि "क्यों, अब तो दस अँगुलियोंकी छाप दोगे न?" "पियानो बजानेमें अब शर्म छूट गई?"[1] "धर्मकी बड़ी-बड़ी बातें करते थे, वे कहाँ गईं?" वे इस प्रकारके प्रश्न पूछ-पूछकर चिढ़ाते हैं। "क्रिटिक"में तो व्यंग्य-चित्र[2] भी छापा गया है। उसमें बताया है कि शिक्षितोंका और व्यापारियोंका धर्म तो बच गया, औरोंका गया। इस चित्रमें श्री गांधी गर्वके साथ कुर्सीपर बैठकर हस्ताक्षर कर रहे हैं और गरीब भारतीय लाचार होकर खड़े-खड़े अँगुलियोंकी छाप लगा रहे हैं और उनकी अँगुलियोंसे काली-काली स्याही टपक रही है। यह दुःख कैसे सहा जाये? कसे देखा जाये?

सम्पादक : यह प्रश्न झूठे अभिमानका लक्षण है। गोरोंके कहनेसे हमारी प्रतिष्ठा नहीं चली जाती। हमने खुदाका सहारा लिया था। इसलिए इस बातपर विचार करना चाहिए कि हमें वह क्या कहता है। बहुत सारे गोरे तो हमारी लड़ाई समझे नहीं हैं। बहुतोंको यह पता नहीं है कि हमारी लड़ाई जिस कानूनके खिलाफ थी, वह तो हम लोग वचनका पालन करेंगे तब रद होगा। जब वह समय आयेगा तब बहुतोंकी आँखें खुलेंगी। फिर सभी गोरे ऐसा नहीं कहते। विलायत-भरके समाचारपत्र हमारी प्रशंसा करते हैं, और हमारी जीत मानते हैं। जोहानिसबर्गका 'रैंड डेली मेल' तो सरकारके विरुद्ध बहुत कड़ा लेख लिखता है कि उसने भारतीयोंको सब-कुछ दे डाला। 'संडे टाइम्स' ने व्यंग्य-चित्र[3] प्रकाशित करके बताया है कि जनरल स्मट्सका स्टीमरोलर बिखरकर चूर-चूर हो गया है, और भारतीय हाथी पीछे घूमकर उन्हें डाँट रहा है। अनेक समझदार गोरे तथा बाहरके प्रायः सभी मनुष्य भारतीयोंकी जीतका डंका बजा रहे हैं। तथापि यदि ऐसा न हो तो भी हम यह याद रखें कि हमें "आम

१. जिन लोगोंने सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग नहीं लिया था — अर्थात् कलमुँहें — और नये कानूनके अन्तर्गत पंजीयन प्रमाणपत्र प्राप्त करनेके प्रयोजनसे अपने प्रार्थनापत्रोंपर अपनी अँगुलियोंके निशान देनेके लिए पंजीयन कार्यालयमें गये थे, उनका मजाक उड़ाते हुए सत्याग्रहियोंने आरम्भमें ही कहा था कि वे वहाँ "पियानो बजानेके लिए" जाते हैं।

२. देखिए व्यंग्य-चित्र पृष्ठ ७२ के सामने।

३. देखिए व्यंग्य-चित्र पृष्ठ ७३ के सामने।

खानेसे" काम है। "गिननेका काम" भले ही और सब करते रहें। हम यह मिसाल याद रखें कि "धनीको ढक्कनमें दिख जाता है, पड़ोसीको आकाशमें भी नहीं दिखता"।[1]

दस अँगुलियाँ बनाम दो अँगूठे

पाठक: दस अँगुलियोंकी छाप देनेमें कुछ भी आपत्ति नहीं है, यह तो अब स्पष्ट हो गया। परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि यदि दस अँगुलियोंके बिना काम चल सकता था तो फिर दो अँगूठोंसे क्यों नहीं चला लिया गया?

सम्पादक: यह समझने योग्य बात है। दुनियामें यह नियम दीख पड़ता है कि सच्चे शूर — शालीन लोग — केवल अपने सही उद्देश्यके लिए लड़ते हैं — जान देते हैं। वह प्राप्त हो जानेपर झुक जाते हैं। इससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। एरण्डका पेड़ ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-त्यों पोला होता जाता है और जरा-सा झुकाया कि टूट जाता है। बरगदका पेड़ ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-त्यों मजबूत होता है और उसकी जटाएँ झुकती जाती हैं और दुबारा धरतीमें जाकर उगती हैं और फैलती हैं। एरण्डके नीचे कोई छाँहके लिए नहीं बैठता। परन्तु बरगदके वृक्षके नीचे हजारों मनुष्य छाँह पा सकते हैं, और पाते हैं। भारतीय कौमने समझौतेके सम्बन्धमें वैसा ही किया है। संघर्षका हेतु कानून था; वह रद हो गया इसलिए दूसरी बातोंपर झुकनेमें शालीनता है। सरकार कहती है कि "आप लोग अँगुलियोंके लिए नहीं लड़ रहे थे; तब फिर उसके लिए हठ क्यों करते हैं?" वास्तवमें इस प्रश्नका उत्तर हमारे पास नहीं है। श्री ईसप मियाँ आदि दस अँगुलियोंकी छाप दें इससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। अपने सार्वजनिक भाषणमें भी श्री स्मट्स यह बात कह चुके हैं। फिर हम लोगोंको सरकारसे अभी बहुत-कुछ लेना है। यह न समझें कि कानून रद हो गया, अर्थात् सब-कुछ मिल गया। गलत खुशामद हमें नहीं करनी है, परन्तु अपना स्वाभिमान बनाये रखकर सरकारको प्रसन्न कर सकें तो यह हमारा कर्तव्य है। यह कानून हटेगा लेकिन इसके बदलेमें क्या होगा? दूसरे कानून किस प्रकारके होंगे? ये सब बातें भारतीयों द्वारा किये जानेवाले अगले तीन महीनोंके बरतावपर निर्भर होंगी। इन कारणोंसे दस अँगुलियोंकी छाप देना उचित है। फिर भी सभीके अँगुलियोंकी छाप देनेकी कोई बात नहीं है। जो नहीं देंगे वे भी अगर वास्तवमें ट्रान्सवाल-निवासी हुए तो उनका पंजीयन होगा। लेकिन अब सच्चा स्वाभिमान दस अँगुलियोंकी छाप देनेमें है। इसीलिए हमने अँगुलियोंकी छाप देनेकी सलाह दी है। हम यहाँतक मानते हैं कि जो भारतीय जिद करके दस अँगुलियोंकी छाप नहीं देगा वह बहुत हद तक नासमझ कहलायेगा। हकीकत यह है कि प्रवासी कानूनके अन्तर्गत कुछ गोरी महिलाओंको भी अँगुलियोंकी छाप देनी पड़ेगी। इस हालतमें दो अँगूठे और दस अँगुलियोंका वाद-विवाद करनेसे हमारा गौरव घटता है और हमारी गिनती बालकोंमें होती है।

पाठक: यह बात तो पूरी तरह समझमें आती है। परन्तु ट्रान्सवालसे बाहरके लोग, जिन्होंने भारतीयोंको बहुत सहायता दी है, कहते हैं कि "आप लोगोंने तो अपना स्वार्थ पूरा किया; अब और जगहोंपर जहाँ कोई दस अँगुलियोंकी बात जानता भी नहीं था वहाँ उनका चलन हो जायेगा।[2] श्री गांधी जैसे व्यक्ति दस अँगुलियोंकी छाप दे डालें तो फिर

१. "धणीने ढांकणीमां सूझे अने पाडोशीने आभलामां पण न सूझे"।

२. रोडेशियामें सचमुच ही ऐसा हुआ। देखिए "रोडेशियाके भारतीय", पृष्ठ २५७–८।

दूसरोंका इनकार कौन सुनेगा? ट्रान्सवालके भारतीयोंने तो औरोंका सत्यानाश कर दिया।" इसका उत्तर कैसे दें?

सम्पादक: यदि बाहरवाले इस प्रकारका प्रश्न करें तो वह बहुत गलत कहलायेगा। उन लोगोंको तो हमारा संघर्ष समझना चाहिए था। क्योंकि सोचिए, अगर ट्रान्सवालमें भारतीय स्वेच्छापूर्वक अँगुलियोंकी छाप देते हैं तो वे अन्यत्र अनिवार्य कैसे हो जायेंगी? क्या बाहरवाले चूड़ियाँ पहनते हैं जो वे अनिवार्यतः अँगुलियोंकी छाप देंगे? सही बात तो यह है कि कानूनके विरोधमें जबर्दस्त संघर्ष करके पूरे दक्षिण आफ्रिकामें ही नहीं, सारी दुनियामें हमने निर्बल मनुष्योंकी सहायता की है और उन्हें सबल बनाया है।

'मर्क्युरी' कहता है कि इस लड़ाईका सही अर्थ यह है कि जो लोग मताधिकार-विहीन हैं उन्हें अधिकार प्राप्त हो गया, कोई सरकार इसके बाद काले मनुष्योंके विरुद्ध उनकी राय लिए बिना कानून नहीं बना पायेगी। सभी उपनिवेशोंको बड़ी सरकारके हितका विचार करना पड़ेगा।

यह बात शब्दशः सही है। भारतीय जनता बिना मताधिकारके थी; वह अब मताधिकार-युक्त हो गई है। इसलिए अन्य उपनिवेशोंके सम्बन्धमें अँगुलियोंकी चर्चा करना तो खीर-पूरी छोड़कर पापड़की चिन्तामें पड़ने जैसा हास्यास्पद होगा।

हम यह भी बताये देते हैं कि देर-सबेर सभी जगहोंपर दस अँगुलियोंका नियम लागू होना सम्भव है। क्योंकि मनुष्यकी पहचान करनेके लिए वह उत्तमसे-उत्तम शास्त्रीय उपाय है; और इससे किसीके धर्ममें बाधा नहीं पड़ती। नेटालमें गिरमिटियोंके लिए वह १९०३ में प्रारम्भ हुआ। ट्रान्सवालमें बहुत-से गोरे लोगोंपर वह लागू होता है। इसलिए इस प्रकार स्वेच्छासे अँगुलियोंकी छाप देनेमें कुछ भी बुराई नहीं है; बल्कि उससे होनेवाले लाभ प्राप्त किये जा सकेंगे।

फिर यह भी विचार करना है कि केप, डेलागोआ-बे आदि स्थानोंमें तो फोटोग्राफ वगैरह लिये जाते हैं। इसके मुकाबले हम अँगुलियोंकी छाप हजार दर्जा बेहतर समझते हैं।[1] याद रखें कि ट्रान्सवालमें अँगुलियाँ केवल आवेदनपत्रमें आयेंगी, प्रमाणपत्रमें नहीं।

वर्ग-भेद क्यों किया?

पाठक: अब अँगुलियोंकी बात नहीं करूँगा; लेकिन मुझे कहना चाहिए कि आजतक 'इंडियन ओपिनियन' वर्ग-भेदके विरुद्ध रहा है; फिर अब वर्ग-भेदके पक्षमें वह क्यों बोलता है, यह समझमें नहीं आता। जब प्रिटोरियाके मेमन लोगोंने अर्जी दी थी कि सुप्रतिष्ठित लोगोंको अँगुलियोंकी छाप नहीं देनी चाहिए, और लोग भले ही दें, तब आपने बहुत कटु लिखा था। यह मैं अबतक भूला नहीं हूँ। अब आप कह रहे हैं कि वर्ग रहनेमें हर्ज नहीं है। क्या आप यह परस्पर-विरोधी कथन समझायेंगे?

सम्पादक: आपने यह प्रश्न ठीक किया। वास्तवमें यह माँग अगर श्री गांधी करते तो विरोध होता। हुआ तो लगभग यह है कि खुद सरकारने इस प्रकार आवेदनपत्र लिखनेका प्रस्ताव किया है। सरकार जो बात अधिकारके रूपमें देनेको तत्पर थी उसे छोड़ देना अनुचित कहलाता। हम प्रतिष्ठित लोगोंके लिए पृथक् अधिकार माँगें, और सरकार खुद ही दे, इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है।

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ३६६ और ३६९।

फिर इस वर्गमें शिक्षित समुदाय भी है। इस समुदायके खिलाफ हम नहीं बोले, क्योंकि शिक्षा — सच्ची शिक्षा — सदैव सम्मान प्राप्त करेगी। यदि शिक्षित व्यक्तिको भी अँगुलियोंकी छाप द्वारा शिनाख्त देनी पड़े तो फिर अँगुलियोंकी बात शिनाख्तकी न रहकर जातिगत बन जायेगी। अतः शिक्षाका भेद तो सामान्यतः रहेगा ही।

प्राकृतिक वर्गोंके विरुद्ध कोई नहीं जा सकता। हमारी लड़ाई कृत्रिम वर्गके विरुद्ध है। जिस वर्गका मापदण्ड अफसरोंके हाथमें रहता है, उसमें हम गुलामी देखते हैं। समझौतेके अनुसार जो वर्ग बनते हैं उनमें भी अफसरोंके हाथमें बात रहती है। फिर भी वे वर्ग निश्चित अवधिके लिए होते हैं इस कारण उनमें दोष नहीं जान पड़ता। शर्त यह है कि प्रमुख व्यक्ति उस छूटका लाभ न लें। यह छूट बनी रहे तो वह आभूषणके समान शोभा देगी। उसका लाभ बहुत-से भारतीय उठायेंगे तो वह बेकार हो जायेगी और हानिकर भी होगी, ऐसा हम मानते हैं।

मेमन लोगोंने वर्ग-भेदकी जो अर्जी दी थी वह अलग ढंगकी थी। उन्होंने कानूनको मानकर केवल अँगुलियोंके बारेमें वर्ग-भेदकी माँग की थी। वह तुच्छ माँग थी। फिर वह माँग सरकारकी ओरसे नहीं आई थी। उसमें तो याचना करने गये और मुँहकी खाई। इससे समझा जा सकता है कि उस माँग और इस वर्ग-भेदमें बहुत बड़ा अन्तर है। इस समय जो वर्ग बनाया गया है यदि प्रमुख व्यक्ति उसपर ढंगसे चलें तो गरीब लोग लाभ उठा सकेंगे। दरअसल बात यह है कि बड़ोंको गरीबोंका संरक्षक — ट्रस्टी — बनकर रहना चाहिए।

जनतासे क्यों नहीं पूछा?

पाठक: अब तो मुझे लगता है कि मेरे मनको लगभग पूरा सन्तोष हो गया है — यद्यपि मुझे अब भी दुबारा विचार करना पड़ेगा। अलबत्ता मनमें एक शंका रह जाती है। श्री गांधीने और श्री नायडूने अपनी खुदमुख्त्यारीसे हस्ताक्षर क्यों किये? वे लोग तो समझदार माने जाते हैं, फिर कौमसे बिना पूछे उसे बाँध दिया; क्या यह कोई बुद्धिमानीकी बात मानी जायेगी? यदि उन्होंने कौमपर छोड़ा होता तो मेरे मनमें ऊपरके जो प्रश्न पैदा हुए, वे भी पैदा न होते। ये लोग भूल तो नहीं कर बैठे हैं?

सम्पादक: इस प्रकारकी शंकाका आपके मनमें उठना ही यह जाहिर करता है कि हमारे सारे उत्तर आप पर्याप्त रूपसे नहीं समझे। प्रारम्भमें ही हमने आपसे कह दिया था कि कौम स्वेच्छया पंजीयनको तो स्वीकार कर चुकी थी। और सरकार उसी पंजीयनको मान लेनेके लिए कहे, तो उसमें कौमकी स्वीकृति लेनेकी बात नहीं बचती।

पाठक: परन्तु अँगुलियोंकी बात कौमने कहाँ कबूल की थी?

सम्पादक: आपने अँगुलियोंकी बात फिर छेड़ दी? अँगुलियोंकी बात ही खटकती दीखती है? आप क्यों भूलते हैं कि लड़ाई अँगुलियोंकी नहीं थी। इसलिए जिसके वास्ते लड़ाई नहीं थी उसके सम्बन्धमें पूछनेकी क्या बात रह जाती है? इसके सिवा अँगुलियोंकी छाप देना स्वीकार कर लिया, यह भी कैसे कहा जा सकता है? कानूनमें जैसी अँगुलियाँ थीं वैसी उन्होंने स्वीकार नहीं की हैं। दस अँगुलियोंकी छाप दी जाये या नहीं यह तो उन्होंने कौमकी मुख्त्यारीपर छोड़ा है। दो अँगूठोंकी छाप ही जो देना चाहता है वह इतना देकर पंजीयन करवा सकता है। वे तो केवल सलाह दे रहे हैं कि दस अँगुलियोंकी छाप देनेमें कौमकी शान बढ़ती है; और स्वयं वे देंगे, ऐसा कहते हैं।

फिर यह भी आपको सोचना चाहिए कि जिनको अगुआ मान लिया गया हो उनको ऐन मौकेपर कुछ हदतक छूट होनी ही चाहिए। ऊपरके समझौतेमें उस प्रकारकी छूट ली गई है, यह हम स्वीकार नहीं करते। लेकिन इस अवसरपर नेताओंके प्रति आवश्यक कर्त्तव्योंके सम्बन्धमें दो शब्द कहना उचित जान पड़ता है। नेताओंको चुनते समय बहुत विचार करना चाहिए। लेकिन एक बार जिसको अगुआ मान लिया उसको छूट न रहे तो कई बार बहुत हानि होती है। हर घड़ी पूछनेकी जरूरत बनी रहे तो यह अविश्वासका सूचक है। जहाँ विश्वास नहीं होता वहाँ पूरा काम भी नहीं हो पाता। नेताओंपर भरोसा रखा जाये, यह एकदिली, बड़प्पन और जनताके जोशका लक्षण है। ऐसा कोई समाज, जिसके अगुआ ईमानदार और विश्वसनीय नहीं हैं, कभी आगे नहीं बढ़ सकता। नेताओंसे कभी-कभी शुद्ध बुद्धिसे भूल हो जाती है। इससे उन्हें दोष नहीं देना चाहिए। एक ही कसौटी है — और वह है ईमानदारी। जिसमें ईमानदारी है उसका भरोसा करना उत्तम मार्ग है।

उपसंहार

पाठक: अब तो पूछने योग्य कोई प्रश्न नहीं सूझता। मैं इस लड़ाईका अन्तिम परिणाम क्या मानूँ?

सम्पादक: हम आशा करते हैं, और ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि जो उत्तर शुद्ध बुद्धिसे दिये हैं, वे आप तथा और जो कोई पढ़ें, उनके लिए कल्याणप्रद हों। अन्त क्या होगा यह हमारे-आपके हाथकी बात है। जो साहस हमने दिखाया है वही साहस नित्य बनाये रखें तो खूनी कानूनके बननेमें रुकावट होगी, ऐसा हम मानते हैं। भारतीय कौमका सम्मान तो अब बहुत ही बढ़ गया है, यह सभी जानते हैं। यही बड़ी बात है। सम्मान बढ़ानेके ध्येयसे ही यह लड़ाई लड़ी गई थी। अब हम पाई हुई पूँजीको सम्हालें तो बड़ा ही लाभ होगा। ऐसा होना चाहिए कि हर जगह सत्याग्रहका चलन हो जाये। यदि यह हुआ तो भारतीय समाज सब प्रकारसे विजय प्राप्त करेगा।

आनेवाले तीन महीनोंमें भारतीय कौम योग्य बरताव करे या न करे, स्वेच्छया पंजीयनका अपना प्रण पाले या न पाले, फिर भी सत्याग्रहकी पूरी-पूरी जीत हुई है, इसमें कसर नहीं रहती। आप अब भी कदाचित् यह मानें कि अँगुलियोंकी बात कायम रही, सो भूल हुई है। इससे भी सत्याग्रह निस्तेज नहीं बनता। वह सब प्रकारसे विजयी हुआ है। दस अँगुलियोंकी छाप स्वीकार करनेवालोंपर दोष लगाना चाहें तो भले लगायें। परन्तु यह बात पक्की समझें कि सत्यकी विजय हुई है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-२-१९०८

४१. नेटालमें परवाने

एस्टकोर्टमें व्यापारके लिए परवाने नहीं दिये गये हैं। स्टैंजरमें श्री काजीकी दूकानके सिलसिलेमें परेशानी हुई है। और जगहोंमें भी होगी। ऐसी स्थितिमें नेटालके भारतीय व्यापारी अपना धंधा कैसे कर सकेंगे?

मार्ग दो हैं। एक तो यह कि स्वर्गीय श्री लैबिस्टरकी सलाहके अनुसार मुकदमा लड़ा जाये। इसके लिए किसी नगरपालिकापर दावा करना चाहिए। इसमें बड़ा खर्च और बहुत झंझट है। फिर इसमें जीत होगी ही ऐसा भरोसा नहीं है।

दूसरा मार्ग सरल मानें तो सरल, और कठिन कहें तो कठिन है। वह है सत्याग्रहका। क्योंकि यहाँ सत्याग्रह करनेपर कैदकी सजा तो होती नहीं है, इसलिए जो व्यक्ति बिना परवानेके व्यापार करेगा उसपर सिर्फ जुर्माना हो सकता है। जुर्माना न दे तो भी जेल नहीं भेजते, उसका माल बेच दिया जाता है। फिर एक बार मालके बिक जानेपर वर्षभर तक व्यापार नहीं हो सकता। माल बार-बार बिक सकता है। ऐसा हुआ तो तबाही हो जायेगी; किन्तु सभी महान कार्योंमें भारी त्यागकी आवश्यकता होती ही है। एक भक्तने कहा है कि "भक्ति करना सिरका सौदा है, और इसका मार्ग विषम है।"[1] सत्याग्रहमें देशभक्ति निहित है ही। इसलिए उसमें सिर अर्थात् मस्तक देनेकी बात तो जुड़ी ही है। सत्याग्रह केवल अपने स्वार्थ-साधनके लिए नहीं किया जा सकता। सबके भलेके लिए ही हो सकता है।

ट्रान्सवालके मुकाबले नेटालके व्यापारियोंके लिए इस प्रकारकी लड़ाई लड़ना कुछ कठिन प्रतीत हो सकता है। किन्तु सही-सही विचार करें तो वह सरल है। कठिनाई यह है कि लोग तुरन्त बहाना बतायेंगे कि जेल तो हम जा सकते हैं लेकिन सामान नीलाम नहीं होने देंगे। यह भी एक बात है कि इस लड़ाईमें पूरीकी-पूरी कौम शामिल नहीं हो सकती; इसलिए चन्द लोगोंको ही जोर लगाना होगा। सरलता यह है कि हमारे अनुभवके मुताबिक तो भारतीय और अन्य सभी कौमें आम तौरसे जेलसे डरती हैं, और सामान बिक जाने देती हैं। फिर सामानको जाने देनेमें ज्यादा खतरा नहीं है, और चतुर आदमी हिकमतसे छका सकता है। खास जरूरत इस बातकी है कि अगर एक मनुष्यको परवाना न मिले (अन्यायपूर्वक), तो सभी लोग बिना परवाना व्यापार करें। जिस प्रकार सभी लोगोंको सरकार जेलमें बन्द नहीं कर सकती उसी प्रकार वह सब लोगोंका माल भी नहीं बेच सकती। इसलिए ऐक्यकी बड़ी आवश्यकता है। हम यह नहीं कहते कि सभी व्यापारी अर्थात् सारे नेटालके व्यापारी परवानोंके बिना व्यापार करें; परन्तु केवल उस-उस नगरके अथवा प्रदेश (या डिविजन) के व्यापारी अनुमतिपत्रके बिना व्यापार करें।

यह हो सकता है कि सब लोगोंको परवाने मिल जानेके बाद भी कुछको न मिलें। ऐसा हो तो जिनको न मिले हों वे मरनेके लिए तैयार होकर दूकानें खुली रख सकते हैं। ऐसा करनेके लिए चतुराई और समय-सूचकता चाहिए। एक बात तो यह भी हो सकती है कि ऐसी दूकान रखी जाये जिसमें बेंच आदि सामान मकान-मालिकका हो। सामान बहुत

१. "भक्ति शीषतणुं साटुं आगळ वसमी छे वाट ।"

कम रखें जो कि रोजके-रोज बिक जाये, अथवा चट-पट किसीको दे दिया जा सके। इस प्रकार करनेपर सरकार जुर्माना करती रहे तो भी इससे उसकी दाल नहीं गलेगी। जब जुर्माना हो तब सभा करके सरकारको सूचित किया जाये कि उस मनुष्यके परवानेके बिना व्यापार करनेसे सारी कौम खुश है। ऐसा करनेसे सरकार ढीली पड़ जायेगी। परन्तु यह काम शूरवीरों और देशभक्तोंका है। जो लोग केवल अपने लिए ही जीते हैं उनकी गिनती तो पत्थरोंमें की गई है। उन्हें ऐसी बहादुरी नहीं सूझेगी। परन्तु जब सभीके अधिकारोंके लिए लड़ा जाये, तभी यह सम्भव है। फेरीवाले तो बड़ी आसानीसे सरकारको छका सकते हैं। ऐसा हो तब सरकार अनायास कानून बदलेगी। यह पक्का समझें कि ट्रान्सवालकी लड़ाईसे सभी भारतीयोंका सम्मान बढ़ा है, इसलिए सरकार चौंक पड़ेगी।

ऐसा कदम सरे-आम ही उठाना चाहिए। इसलिए इस सम्बन्धमें सभाएँ की जानी चाहिए। सरकारको प्रस्ताव भेजे जाने चाहिए। और बादमें संघर्ष शुरू किया जाये। जैसा ट्रान्सवालमें शुरूसे किया गया उसीका अनुसरण करें।

इसके पूर्वोदाहरण भी हैं। अंग्रेज लोग अपना माल बिक जाने देते हैं परन्तु शिक्षणका शुल्क नहीं देते। अब उनसे कोई नहीं पूछता। मरहूम श्री ब्रैडलॉ[1] अपनी युक्तियोंसे ही सारे ब्रिटिश राष्ट्रको हिला देते थे। ऐसा वे किस प्रकार करते थे, यह किसी और समय बतायेंगे।

परन्तु यह संघर्ष यदि नेटालके सज्जन करना चाहते हों तो उन लोगोंको सोच-समझकर बड़ी संख्यामें इकट्ठे होकर ऐक्य करके, खुदाको दरम्यान रखकर ठंडेपनसे आरम्भ करना चाहिए। कदम बढ़ाकर पीछे नहीं हटना है यह बात हृदयंगम कर लेनी चाहिए। कुछ भी शुरू न किया जाये, यह पहली बुद्धिमानी है। प्रारम्भ करनेके बाद हरगिज न छोड़ा जाये, यह दूसरी बुद्धिमानी है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–२–१९०८

१. चार्ल्स ब्रैडलॉ (१८३३–९१); एक अंग्रेज मुक्त विचारक और राजनीतिज्ञ, जिन्होंने कई वर्षोंतक एनी बेसेंटके साथ काम किया और नेशनल रिफॉर्मरका सम्पादन किया; १८८० में नौर्दैम्पटनसे संसद-सदस्य चुने गये लेकिन संसदमें छः साल बाद जा पाये, क्योंकि वे संसदीय शपथ-अधिनियमके अनुसार शपथ लेना चाहते थे, बाइबिलकी शपथ नहीं। अपने नास्तिक और रूढ़ि-विरोधी विचारोंके कारण वे उन समस्त प्रवृत्तियोंका नेतृत्व करते थे जिनकी राहमें समाज रोड़े अटकाता था।

४२. रिचके लिए चन्दा[1]

श्री रिचके सम्बन्धमें हम गत सप्ताह लिख चुके हैं। जान पड़ता है कि सभीके मनमें श्री रिचकी कद्र करनेकी उत्कट इच्छा है। श्री रिचने सारे दक्षिण आफ्रिकाकी सेवा की है, और अब भी कर रहे हैं। इसलिए इसमें प्रत्येक भारतीयको योग देना चाहिए, ऐसा हम मानते हैं। हमें लगता है कि चन्देमें जितनी रकम हो जाये उतनी कम है। यदि हम श्री रिचको एक हजार पौंड वार्षिक देकर रखें तो भी वह अधिक नहीं कहलायेगा। हमने तो उनको केवल काम चलाने भरको ही दिया है। श्रीमती रिचकी बीमारीके समाचार मिलनेके बाद उनको घरके खर्चके लिए जितना आवश्यक हो उतना पैसा निकालनेकी अनुमति भेजी गई है। इससे पहले तो उनको केवल १५ पौंड प्रतिमास दिया जाता था। अर्थात्, उन्हें औसतन २५ पौंडसे अधिक नहीं दिये गये, ऐसा कहा जा सकता है। हम मानते हैं कि श्री रिचको कमसे-कम ३०० पौंडकी थैली भेजना अधिक नहीं होगा। यदि इससे अधिक भेजा जाये तो कुछ अनुचित न होगा। श्री रिचको सम्मानित करनेमें हमारा सम्मान है। इससे और लोग भी हमारी ओर मुड़ेंगे। यह नहीं कि पैसेके लालचसे, किन्तु हम सुसंस्कृत कौम हैं, यह समझकर। पैसेके लालचसे काम करनेवालोंसे तो हमें सदैव दूर रहना है। श्री रिचको तो इस प्रकारका खयाल भी नहीं है। जब उनमें पैसोंका लालच पैदा हो जाये तब उन्हें निकम्मा समझा जाये। इस सम्बन्धमें हम चन्दा शुरू कर रहे हैं और हम समझते हैं कि इसमें बहुत सारे भारतीय योग देंगे। ऐसा करनेमें हमारी बड़ी शोभा होगी और किसीको अधिक बोझ महसूस नहीं होगा। हमारे सैकड़ों पाठक यह संकल्प कर लेंगे तो चन्दा तुरन्त हो जायेगा। जो पैसे आयेंगे हम 'इंडियन ओपिनियन' में उनकी प्राप्ति स्वीकार करेंगे। सब लोग याद रखें कि डॉ० बूथके[2] लिए अधिकतर गरीबोंसे ही चन्दा लिया गया था। उसमें १०० पौंड जमा हुए थे, और डॉ० बूथको वह थैली तथा मानपत्र दिया गया था। डॉ० बूथका असम्मान किये बिना हम कह सकते हैं कि श्री रिचकी बराबरी करनेवाला गोरा हमें शायद ही मिला है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–२–१९०८

१. देखिए "रिचका महान कार्य", पृष्ठ ६३।

२. पूज्यपाद कैनन बूथ; डर्बनमें सेंट जॉनके अध्यक्ष; गिरमिटिया भारतीयोंके बच्चोंकी शिक्षाके लिए "चर्च ऑफ इंग्लैंड मिशन" की ओरसे भारतीय विभागके प्रबन्धकर्ता; नेटाल भारतीय डोलीवाहक दलके चिकित्सा-अधिकारी; डर्बनके भारतीय अस्पतालमें अवैतनिक रूपसे काम किया। चन्दा वस्तुतः डॉ० बूथके लिए नहीं, बल्कि इसी अस्पतालके लिए था। देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १५५ और **आत्मकथा,** भाग ३, अध्याय १०; तथा भाग ४, अध्याय २४।

४३. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

ब्रिटिश भारतीय संघ

ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघने बड़े पैमानेपर चन्दा इकट्ठा करना शुरू कर दिया है। यह निश्चय किया गया है कि किसीसे दस शिलिंगसे कम न लिये जायें और सब लोग भर-सक उससे अधिक दें। चन्देका मुख्य हेतु यह है कि जोहानिसबर्गमें एक विशाल सभाभवन बनाया जाये। दक्षिण आफ्रिकामें कहीं भी भारतीयोंकी प्रतिष्ठाके योग्य भवन नहीं है। यह एक बड़ी कमी है। जोहानिसबर्गमें इस प्रकारका सभाभवन बनाना बहुत उचित कहलायेगा, इसमें सन्देह नहीं है। हर प्रमुख समाजके पास इस प्रकारका सभाभवन केप टाउन, डर्बन, मैरित्सबर्ग आदि सभी जगह होना चाहिए। इसका न होना हमारी दीनताका सूचक है। अतः ट्रान्सवालके लोगोंने जोहानिसबर्गमें भवन बनानेका विचार किया है।

इसके सिवा लॉर्ड ऐम्टहिल[1] और सर मंचरजी भावनगरीको[2] उनके अमूल्य कामके लिए सुन्दर मानपत्र भेजनेका भी लोगोंने इरादा किया है। और श्री पोलक तथा कुमारी स्लेशिनकी, जिन्होंने दिन-रात जी-तोड़ परिश्रम किया है, एवं उनके समान परिश्रम करनेवाले अन्य अनेक गोरोंकी, कद्र करनेका विचार किया गया है। यह सब खर्च भी इसी चन्देमें से करना है।

दस शिलिंगकी टिकटोंपर श्री ईसप मियाँके अपने ही हाथके हस्ताक्षर भी छपे हैं। बाईं ओर पैसे लेनेवालेके हस्ताक्षरकी जगह है। इस प्रकारकी रसीदकी किताबें कई जगह भेज दी गई हैं। सब लोग पैसे जमा करके संघके मन्त्रीके पास तुरन्त भेज दें। रसीदके दूसरे हिस्सेमें पैसे देनेवालेका नाम ठीक तरहसे लिखें और रसीद लिये बिना कोई भी व्यक्ति पैसा न दे। चन्दा तुरन्त इकट्ठा करके भेज देना जरूरी है। प्रत्येक व्यक्तिको मेरी सलाह है कि संघर्षकी स्मृतिके रूपमें वह इस रसीदको सँभाल कर रखे। दुबारा और कोई माँगने आये तो वह दिखाई भी जा सकती है। अगर बहुतसे व्यक्ति चन्दा जमा करनेमें हाथ बँटायें तो स्वेच्छया पंजीयन समाप्त होनेसे पहले वह पूरा हो जायेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–२–१९०८

१. आर्थर ओलिवर विलियर्स रसेल, ऐम्टहिलके द्वितीय बैरन (१८६९–१९३५); १९१८ में स्थापित नेशनल पार्टी (राष्ट्रीय दल) के एक संस्थापक; दलकी परिषदके अध्यक्ष, १९१९; मद्रासके गवर्नर, १८९९–१९०६; भारतके स्थानापन्न वाइसरॉय और गवर्नर जनरल, १९०४; डोक द्वारा लिखी गई गांधीजीकी जीवनीके प्रस्तावना लेखक।

२. सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरी (१८५१–१९३३)। ये इंग्लैंडमें बसे एक पारसी बैरिस्टर थे। यूनियनिस्ट दलकी ओरसे १० वर्षतक ब्रिटिश लोकसभाके सदस्य रहे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लन्दन-स्थित ब्रिटिश समितिके सदस्य भी थे। इन्होंने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके कष्टोंके सम्बन्धमें इंग्लैंडमें लोकमत तैयार करनेमें बहुत सहायता दी थी।

४४. द० आ० ब्रि० भा० समितिको लिखे पत्रका एक अंश[1]

फरवरी १५, १९०८

...कानूनका रद किया जाना नियत लक्ष्य था और वह ईश्वरके नामपर अंगीकार किया गया था। जहाँतक मुझे मालूम है उसे पानेके प्रयत्नमें हम कभी अपने पथसे विचलित नहीं हुए। और क्या हम कमसे-कम अवधिमें और न्यूनतम क्षति उठाकर लक्ष्य तक नहीं पहुँच गये हैं? ...

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस : जुडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ३७२२/०८

४५. सत्याग्रहका भेद

सत्याग्रहका सच्चा भेद बहुतसे भारतीय अबतक नहीं समझे हैं, इसलिए बड़ी गलतफहमी फैली हुई नजर आती है। इस कारण खूनी कानूनके विरोधमें प्राप्त जीतके सिलसिलेमें सत्याग्रहपर विशेष रूपसे विचार करनेकी आवश्यकता है। जो लोग सत्याग्रहको भलीभाँति समझते हैं उनके मनमें जीतके बारेमें कुछ भी उलझन पैदा नहीं होनी चाहिए।

सत्याग्रही ऐसी बहुत-सी छूटें ले सकता है जो अन्य लोग नहीं ले सकते, क्योंकि सत्याग्रहीमें सच्ची मर्दानगी आ जाती है। जब उसके मनसे भय निकल गया तब वह किसीकी गुलामी नहीं करता। इस स्थितिपर पहुँचनेके बाद वह एक भी अनुचित बर्तावके आगे नहीं झुकेगा।

इस प्रकारका सत्याग्रह केवल सरकारके विरुद्ध नहीं, कौमके विरोधमें भी किया जा सकता है, और किया जाना चाहिए। सरकार उलटी चलती है, तो कई बार कौम भी उसी प्रकार टेढ़ी राह पकड़ लेती है। ऐसे अवसरपर कौमके विरुद्ध सत्याग्रहका प्रयोग करना कर्त्तव्य है। स्वर्गीय थोरोने, जिनकी पुस्तकका सार[2] हम प्रकाशित कर चुके हैं, अपनी कौमका भी विरोध किया। उन्होंने सोचा कि उनकी कौम गुलामोंको बेचनेका रोजगार करके गलत राहपर चल रही है। इसलिए उन्होंने अपनी कौमका विरोध किया। महान लूथर अकेला ही अपनी कौमके विरुद्ध खड़ा हो गया था, जिसकी बदौलत आज जर्मनी स्वतन्त्रताका उपभोग कर रहा है। गैलीलियोने अपनी कौमका विरोध किया। उसकी अपनी ही कौम

१. यह पत्रांश ट्रान्सवालकी स्थितिके बारेमें एक संक्षिप्त विवरणसे लिया गया है जिसे रिचने अपने ६ अक्तूबर, १९०८ के पत्रके साथ संलग्न करके उपनिवेश-कार्यालयको भेजा था।

२. संकेत थोरो-लिखित **सविनय अवज्ञाका कर्तव्य (द ड्यूटी ऑफ सिविल डिस-ओबिडिएन्स)** शीर्षक लेखकी ओर है। देखिए खण्ड ७, पृष्ठ २२०-२ और २३१-३।

उसको मार डालनेपर तुल गई। फिर भी उसने दृढ़तासे कहा, "आप मुझे मारें या न मारें, पृथ्वी तो घूमती है ही।" आज हम सब जानते हैं कि पृथ्वी गोल है और चौबीस घंटेमें वह अपनी धुरीपर एक चक्कर लगा लेती है। कोलम्बसने अपने नाविकोंके विरोधमें सत्याग्रह किया। बहुत थक जानेपर नाविकोंने कहा, "अब अमेरिका मिलनेवाला नहीं है। लौट चलो, नहीं तो मार डालेंगे।" धैर्यवान कोलम्बसने उत्तर दिया कि "मुझे मरनेका डर नहीं है; अभी और थोड़े दिनों यात्रा करना ठीक होगा।" अन्तमें उसने अमेरिकाको खोज लिया और वह अमर हो गया।

ऐसी अजीब औषधि है यह सत्याग्रह। हम डरके मारे कहते हैं कि "सरकारने अगर कानून रद नहीं किया तो?" ऐसा कहना सत्याग्रहकी खामी बताना है। मानो सत्याग्रहके शस्त्रसे अब हम कुछ प्राप्त नहीं कर सकते, ऐसी कायरताकी बातें हम लोग किया करते हैं। परन्तु हमें अपने सत्याग्रहसे विदित होता है कि अब हम मुक्त हो गये हैं। इसलिए हमारे भय करनेकी कोई बात नहीं है। "ये सब तो कहनेकी बातें हैं। दुबारा लड़ चुके। एक बार लड़कर भर पाया।" कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं। ऐसा कहनेवाले सत्याग्रही कभी नहीं थे। अगर "हम लोग ऐसी लड़ाई लड़ चुके"—यह कहना सही हो, तो हमारा लड़ना-न-लड़ना समान है।

अब हम उपर्युक्त कथन सिद्ध करेंगे। देखनेमें आता है कि कोई चीज जिस साधनसे प्राप्त होती है उसीके द्वारा उसे बनाये रखा जा सकता है। शेर किसी प्राणीको बलसे पकड़ता है, और उसे बलसे दबाये रखता है। जो लोग बल-प्रयोगसे कैद किये जाते हैं वे बलके द्वारा ही वहाँ रोके भी जाते हैं। बल-प्रयोगसे जीते हुए मुल्कको बादशाह बलसे ही वशमें रखते हैं। उसी प्रकार प्यारसे ली गई वस्तु प्यारसे रखी जाती है। माँ अत्यन्त प्यारसे बच्चेको उदरमें रखती है। और अत्यन्त प्यारसे उसे पाल-पोसकर बड़ा करती है। बचपनमें उसपर की जानेवाली मारपीट आदिको बल-प्रयोग न माना जाये। इसके सिवा यदि किसी कारण माँ बच्चेपर प्रेम करना बन्द कर देती है तो बच्चा हाथसे निकल जाता है, ऐसे उदाहरण भी देखनेमें आते हैं। इसी प्रकार, जो वस्तु सत्याग्रहसे प्राप्त हुई है, वह सत्याग्रहसे ही टिकी रह सकती है। और यदि सत्याग्रह गया तो वह वस्तु भी निश्चित रूपसे गई समझें। अगर कोई मनुष्य सत्याग्रहसे प्राप्त की गई वस्तुको शरीर-बलसे सम्हालकर रखना चाहे तो यह असम्भव है। मान लीजिए कि भारतीयोंने जो जीत सत्याग्रहसे पाई है उसका फल अब वे शरीर-बलसे सम्हालकर रखना चाहें, तो यह बात एक बच्चा भी समझ सकता है कि वे एक मिनटमें कुचल दिये जायेंगे। इसी प्रकार सत्याग्रह छोड़कर बैठ जायें तो जो पाया है उसे फिरसे गँवा देना पड़ेगा।

इन उदाहरणोंसे यह बात समझमें आ जानी चाहिए कि सत्याग्रह मनकी स्थिति है। और जिसके मनकी स्थिति सत्याग्रही बन गई है वह सदैव, सब जगह, सभी परिस्थितियोंमें विजयी ही है। चाहे फिर उसके विरोधमें राजा हो या प्रजा, अपरिचित हो या परिचित, पराया हो या अपना।

ऐसे चमत्कारी सत्याग्रहको हम लोग नहीं समझते, इसी कारण भारतमें हम दीन-हीन और निस्तेज होकर रहते हैं। और यह केवल सरकारके ही सम्बन्धमें नहीं, व्यक्तिगत सम्बन्धमें भी ठीक है। हम लोग अपने देशकी कुछ स्पष्टतः हीन रूढ़ियोंको बनाये हुए हैं;

इनका प्रधान कारण सत्याग्रहका अभाव है। हम लोग जानते हैं कि अमुक चीज खराब है, किन्तु भय, आलस्य अथवा झूठी शर्मके कारण हम उसे नहीं छोड़ते।

इस लेखको समाप्त करते हुए एक आखिरी और ताजा उदाहरण हम देंगे। प्रिटोरिया टाउन हॉलमें जब गोरोंने भारतीयोंके विरोधमें सभा की, तब हमारे पक्षमें बोलनेवाले केवल चार गोरे थे। अर्थात्, हजार मनुष्योंके विरुद्ध चार थे। फिर भी इन चार व्यक्तियोंने लोगोंकी गालियाँ खाते रहकर भी अपना मत वीरतासे प्रकट किया। और परिणाम यह हुआ कि उनके सत्याग्रहसे पूरी सभाका महत्त्व जाता रहा और वह सभा किसी पशु-शाला जैसी होकर रह गई।

हम प्रत्येक भारतीयसे सिफारिश करते हैं कि वह इन विचारोंको अच्छी तरह समझ ले। जो समझ जायेंगे वे जीतका स्वरूप जान सकेंगे और भारतीय प्रजाको आगे भी जो कार्य करने हैं उन्हें कर सकेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–२–१९०८

४६. मेरा सम्मान[1]

आरम्भ

मुझपर मार पड़ी, इसपर स्वयं मुझे जरा भी अचम्भा नहीं है। नौ तारीखको ही मैं कह चुका था कि नया कानून रद करनेका वचन मिलनेपर अब कानूनके बाहर दस अँगुलियोंकी छाप देनेमें मैं तौहीन नहीं मानता; यही नहीं, बल्कि इसमें अपना सम्मान समझता हूँ। मस्जिदके सामने जो सभा हुई थी उसमें जब स्वेच्छया अँगुलियोंके निशान देनेमें भारतीयोंपर जबर्दस्ती रोक लगाई गई, तब मुझे लगा कि अगर मुझमें सच्चा सत्याग्रह हो तो मुझे स्वयं अँगुलियोंकी छाप देनी ही चाहिए; इसलिए उस समय मैंने कसम खाकर कहा कि सोमवारके दिन यदि मैं जीवित रहा तो निश्चय ही अँगुलियोंकी छाप दूँगा। अपने इस कथनपर मुझे अब भी कोई अफसोस नहीं है, बल्कि मैं यह मानता हूँ कि मैंने अपने ईश्वरके प्रति और अपनी कौमके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा किया है। सोमवारको सवेरे पौने दस बजे श्री ईसप मियाँ, श्री नायडू, और अन्य भारतीयोंके साथ जब मैंने पंजीयन कार्यालयकी ओर प्रस्थान किया तभी मैं समझ गया था कि किसी प्रकारका हमला होगा। मारनेवालोंमें से दोको मैंने कार्यालयके पास देखा। वे भी साथ हो लिये। तब बात और भी साफ हो गई। परन्तु जैसा मैं कह चुका हूँ, मैंने विचार किया कि अपने भाइयोंके हाथ मार खानेमें रत्ती-भर भी दुःख नहीं मानना चाहिए।

आगे चलनेपर उनमें से एक व्यक्तिने पूछा: "सब किधर जाते हो?" श्री ईसप मियाँ जवाब देनेवाले ही थे कि मैं बीचमें पड़ा और बोल उठा: "मैं दस अँगुली देनेकू जाता हुँ।

१. यह लेख "श्री गांधी द्वारा प्रेषित" रूपसे **इंडियन ओपिनियन**में छपा था।

दुसरे भी ओ ही करेंगे। तुमारे अंगुठा देना होगा तो तुम देने सकते है।"[1] इसके बाद क्या हुआ मुझे नहीं मालूम। केवल इतना ही स्मरण है कि मुझपर सख्त मार पड़ी।

मेरी बायीं पसलीमें बड़ी सख्त चोट आई है। साँस नहीं लेते बनती। ऊपरका ओंठ आधा चिर गया है। उसमें टाँके लगाये गये हैं। बाँई आँखपर काला दाग पड़ गया है और कपालपर घाव है। इसके सिवा दायें हाथपर और बायें घुटनेपर मामूली जख्म हैं। प्रहार कैसे हुआ इसका मुझे भान नहीं है, लेकिन लोगोंका कहना है कि मुझपर लकड़ीकी पहली चोट पड़ते ही मैं चक्कर खाकर गिर पड़ा। फिर उन्होंने लोहेके नल और लाठी और लातोंसे मारना शुरू कर दिया। और अन्तमें मुझको मरा समझकर रुक गये। मैं पीटा गया इसकी मुझे कुछ-कुछ याद है। मार पड़ते ही मेरे मुँहसे "हे राम" शब्द निकले ऐसा भी भान होता है। श्री थम्बी नायडू और श्री ईसप मियाँने बीच बचाव किया। इस कारण नायडूपर भी काफी प्रहार हुए। उनका कान चिर गया। श्री ईसप मियाँकी अँगुलीपर थोड़ी-सी चोट आई। जब बेहोशी दूर हुई तब मैं हँसता हुआ उठा। मेरे मनमें जरा भी तिरस्कार अथवा रोष मारनेवालेपर नहीं था।

अब सोचता हूँ तो समझमें आता है कि मौतसे हम लोग व्यर्थ ही डरते हैं। मैं तो मानता हूँ कि बहुत समयसे मैंने डरना छोड़ दिया था। परन्तु अब तो और भी निडर बन गया हूँ। अगर मेरी मूर्छा न टूटती तो बादमें जो दुःख भोगना पड़ा, वह न भोगता। इससे स्पष्ट होता है कि दुःख केवल तभी तक होता है जबतक शरीरके साथ जीवका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। जीव जब शरीरके साथ पूरा सम्बन्ध अनुभव करने लगा तब ही मुझको दुःखका भान हुआ।

दोष किसीका नहीं

अपने पीटे जानेके लिए मैं किसीको दोष नहीं देता।[2] मारनेवाले कभी मेरी बड़ी आव-भगत करते थे। अब मारनेपर उतर आये हैं। जिन दिनों मेरा सम्मान करते थे उन दिनों उनकी मुझपर आस्था थी। जब उन्होंने मारा तब यह समझकर कि मैंने उनका और कौमका बुरा किया है। कुछको ऐसा लगा कि मैंने सरकारको दस अँगुलियोंकी छाप देना स्वीकार करके अपनी कौमको बेच डाला है। ऐसा मान लेनेपर वे मुझे क्यों न मारते? यदि उनमें विवेक होता तो वे मारनेका रास्ता अपनानेके बजाय किसी और ढंगसे मेरे प्रति तिरस्कार प्रकट करते। फिर भी उनके मनमें कारण तो वही होता। मेरा अनुभव है कि कुछ लोगोंके पास अपनी नाराजगी जाहिर करनेका एक ही रास्ता होता है। वे शरीर-बलको ही सर्वोच्च मानते हैं। तब मैं किस प्रकार गुस्सा करूँ? उनपर मुकदमा चलानेसे क्या फायदा? मेरा सच्चा कर्त्तव्य यही है कि उन्होंने मुझपर जो आक्षेप लगाया है उसे गलत सिद्ध कर दूँ। यह सिद्ध करनेके लिए समय चाहिए। तबतक संसारकी रीतिके अनुसार मारधाड़ चलती ही रहेगी। इस स्थितिमें समझदारोंके लिए यही उचित है कि वे इस प्रकारके दुःखोंको धैर्यपूर्वक ही

१. मूलमें ये शब्द हिन्दीमें ही हैं। भाषा अथवा मात्राओंमें परिवर्तन नहीं किया गया।

२. गांधीजीने महान्यायवादीको तार देकर वास्तवमें सूचित भी किया कि मुझे मारनेवाले लोग अपराधी नहीं हैं। देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय २२। यह तार उपलब्ध नहीं है।

सहन करें। मैं अपनेको समझदार मानता हूँ, इसलिए सिरपर आये हुए दुःखको सहन करनेमें ही मेरी मुक्ति है। मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि खुदाके डरको छोड़कर और कोई डर नहीं रखना चाहिए। अगर मैं ऐसा डर रखूँ तो वह खुदाके फरमानको तोड़ना होगा। तब फिर दुःखका डर क्यों मानूँ? इसलिए मैं खुदासे माँगता हूँ कि वह मुझको मृत्यु आने तक निर्भय बनाये रखे। और अपने स्नेहीजनोंसे उसी प्रकारकी प्रार्थना करनेके लिए कहता हूँ।

उपचार

जब मुझे कुछ होश आया तब लोग मुझे जहाँ मार पड़ी थी उसके सामने स्थित श्री गिब्सनके दफ्तरमें ले गये। श्री ल्यू[1] और छोटे गिब्सन साहबने उपचार किया। डॉक्टरने जख्म धोये। जब अस्पतालमें ले जानेकी बात चल रही थी तब श्री डोक, जो पादरी हैं और जिन्होंने हमें [संघर्षके] आखिरी दौरमें बहुत सहायता की है, मारकी बात सुनकर दौड़े आये। उन्होंने मुझको अपने यहाँ ले जानेका प्रस्ताव किया। कुछ विचार करनेके बाद मैंने उसे मान लिया। श्री डोककी उम्र लगभग छियालीस वर्षकी होगी; वे बैप्टिस्ट पंथके ईसाई हैं। उन्होंने न्यूजीलैंड, भारत, वेलेस्टाउन[2] आदि देशोंमें बहुत यात्रा की है। तीन महीने हुए वे ग्राहम्स-टाउनसे यहाँ आये हैं। उनकी शुश्रूषा एवं उनके अपने तथा कुटुम्बके स्वभावको देखते हुए वे सन्त पुरुष ही कहलायेंगे। वे मेरे खास मित्र नहीं हैं। मैं मुश्किलसे तीन-चार बार उनसे मिला था। वह भी लड़ाईके सिलसिलेमें, तथा उनका समाधान करनेके लिए। इसलिए उन्होंने एक पराये मनुष्यको अपने घरके अन्दर दाखिल किया। घरके सभी व्यक्ति तत्परतासे मेरी सेवामें लगे रहे। उन्होंने अपने लड़केकी कोठरी मुझे सौंप दी। और अपने पुत्रको पुस्तकालयमें फर्शपर सुलाते रहे। जबतक मैं बीमार रहा तबतक वे सारे घरमें जरा भी आवाज नहीं होने देते थे। बच्चे भी बहुत ही धीरे चलते-फिरते और आते-जाते थे। श्री डोक स्वयं मेरा मल-मूत्र उठाकर ले जाते और उन बर्तनोंको साफ करते थे। और मुझे यह देखते रहना पड़ता था। पट्टी बाँधने और साफ करने आदिका सब काम श्रीमती डोकने उठा लिया था। जो काम मैं खुद कर सकूँ सो भी मुझे नहीं करने देते थे। पहली रातको पति-पत्नी दोनों ही सारी रात जागते रहे, और कदाचित् मुझे कुछ जरूरत पड़ेगी, इस विचारसे मेरी कोठरीमें आते-जाते रहे। जो लोग मुझसे मिलने आते श्री डोक अपना सवेरेका समय उनका सत्कार करनेमें लगाते थे। लगभग पचास भारतीय रोज आते थे। श्री डोक घरमें हों तबतक भारतीयोंको वे गन्दे हैं या साफ इस बातपर ध्यान दिये बिना बैठकमें ले जाते, आदरसे बिठाते और मेरे पास ले आते थे। साथमें यह भी सबको धीरेसे समझाते थे कि वे मुझे अधिक कष्ट न दें। इस प्रकार उन्होंने मेरी सेवा-शुश्रूषा की। मेरी और मिलने आनेवालोंकी खातिरदारी की। इतना ही नहीं, कौमके कष्टोंके सम्बन्धमें जो-कुछ आवश्यक हो सो भी वे करते रहे। फिर वे श्री कार्टराइट, श्री फिलिप्स[3], आदिसे मिलनेकी फिक्र रखते थे, मेरे संदेश ले जाते थे और जो-कुछ करना उचित हो वह अपने-आप किया करते थे।

१. युक लिन ल्यू, ट्रान्सवालमें चीनके महावाणिज्य दूत। खण्ड ६, पृष्ठ १४ भी देखिए।

२. जान पड़ता है, मूलमें भूलसे पैलेस्टाइनके लिए यह शब्द छप गया था।

३. चार्ल्स फिलिप्स; कांग्रिगेशनल गिरजेके पादरी; देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय २३।

जिस समाजमें इस प्रकारके मनुष्य मिलते हों वह समाज यदि आगे बढ़े तो इसमें क्या आश्चर्य है? और जिस धर्मके अन्दर ऐसे सुकोमल, दयालु और सच्चे कुलीन मनुष्य मौजूद हों, उस धर्मको झूठा भी कैसे कहा जाये? यह सब करनेमें ईश्वरको प्रसन्न करना ही उनका एकमात्र हेतु था। मेरे पास आकर प्रायः रोज रातको अपनी पद्धतिके अनुसार वे ईश्वरकी प्रार्थना भी करते थे। घरके भीतर भी हमेशा भोजनके समय आरम्भसे पहले और समाप्तिके बाद प्रार्थना करते थे। वे अपने बाल-बच्चोंसे भी बारी-बारीसे बाइबलमें से कुछ पाठ पढ़वाते थे। मुझे तो इसमें जरा भी स्वार्थ-दृष्टि दिखाई नहीं पड़ी, और उनके अपने बर्तावमें तथा बालकोंके शिक्षणमें भी सचाई ही दृष्टिगोचर होती थी। वे जो-कुछ करते थे उसमें दम्भ अथवा औरोंको अच्छा लगे इस दृष्टिसे कुछ किया गया हो ऐसा मैंने नहीं देखा। इस प्रकारकी एकरूपता और इस हदतक अच्छाई हिन्दू या मुसलमान धर्मगुरुओं अथवा गृहस्थोंमें बहुत देखनेमें नहीं आती। अंग्रेजोंमें भी बहुधा ऐसा होता है सो नहीं कहा जा सकता। कहाँ कम होगा, कहाँ अधिक, इसके विवेचनमें न पड़कर मैं यही कामना करता हूँ कि श्री डोक और उनके कुटुम्ब जैसे सैकड़ों भारतीय कुटुम्ब हों।

चिकित्सा

मुझे सख्त मार पड़ी थी और मेरे घाव गहरे थे, फिर भी डॉक्टरोंके कथनानुसार मैं जिस तेजीसे स्वस्थ हुआ उस तेजीसे अधिकतर रोगी स्वस्थ होते नहीं देखे गये। मैं डॉक्टरोंके हाथमें था, फिर भी दवा तो केवल घरेलू ही थी। पहले दो दिन मैंने कुछ भी खाया-पिया नहीं। इस कारण मेरा ज्वर नहीं बढ़ा। तीसरे दिन मुझको ज्वर बिलकुल नहीं था। दस तोले दूधसे मैंने आहार शुरू किया और धीरे-धीरे अंगूर और नाशपाती तथा अन्य फल आदि बढ़ाये। बादमें दूधमें भिगोई हुई डबल रोटी एक बार लेना शुरू किया। और अब भी वही आहार चल रहा है। ऊपरवाले तीन दाँतोंको क्षति पहुँचनेके कारण स्थिति यह है कि कड़ी वस्तुएँ कुछ दिनों तक नहीं खाई जा सकेंगी। मुँह और सिरपर घावके साथ-साथ बेहद सूजन थी। उसपर स्वच्छ गीली मिट्टीकी पट्टी रखी जाती थी। इससे सूजन बिलकुल कम हो गई। पसलियोंमें सख्त चोट आई थी। वहाँपर मिट्टीकी बहुत मोटी पुल्टिस बाँधनेसे उसमें बहुत-कुछ आराम है। डॉक्टरका खयाल था कि घावपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे शायद घाव विषाक्त हो जाये। परन्तु यह मैंने अपनी जिम्मेदारीपर किया था। लेकिन डॉक्टरको भरोसा हो गया है कि मिट्टीसे बड़ा लाभ हुआ। आम तौरसे इस प्रकारके घाव, जिनमें टाँके लगे थे, पके बिना नहीं रहते। मेरी ऐसी धारणा है कि मिट्टीका लेप करनेसे घाव बिना पके भरने लगता है। और हुआ भी वैसा ही है। मैंने मिट्टीके बहुत उपचार किये हैं। मुझे लगता है कि समझदारीसे प्रयोग किया जाये तो उससे अनेक रोगोंमें लाभ पहुँचता है। किसी समय इसके बारेमें अपने अनुभव 'इंडियन ओपिनियन' के पाठकोंके सामने रखनेकी आशा करता हूँ।

सारांश

उपर्युक्त विवरण लिखनेका उद्देश्य केवल समाचार देना अथवा साप्ताहिकके पन्ने भरना ही हो, ऐसा नहीं है। उद्देश्य यही है कि मेरे अपने अनुभव औरोंके लिए उपयोगी साबित हों। मार पड़ी, इससे भारतके प्रत्येक सेवकको यही सार निकालना है कि यदि

कौमकी सेवा करनी हो, और साथ ही साथ नित्य सचाई ही बरतनी हो तो, मार भी खानी पड़ेगी। इसमें यदि दुःख न मानें तो आत्माको अधिक शान्ति और सुख प्राप्त होता है। और उस हदतक कौमकी सेवा करनेके लिए अधिक सामर्थ्य प्राप्त होता है। इस प्रकारकी मार सचमुच सम्मान है, ऐसा माना जा सकता है। श्री डोकका कार्य हमारे सबके लिए कल्याणदायी है, और जो घरेलू औषधि बताई वह भी समझने योग्य है। श्री डोकके नाम धन्यवादके प्रायः चालीस तार भिन्न-भिन्न स्थानोंसे आये थे; और कुछ भारतीयोंने उनके पास फल, मेवे, आदि उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके निमित्त भेजे थे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–२–१९०८

४७. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

श्री ड्रूका पत्र

'ब्लूमफॉन्टीन फ्रेंड' के सम्पादक श्री ड्रू[1] जो ऑरेंज उपनिवेशकी धारासभाके सदस्य हैं, अपने पत्रमें लिखते हैं :

> मैं समझता था कि चूँकि आप थोड़ी ही अवधिके बाद कारावाससे छूटकर जीत गये, इसलिए इसे आसानीसे प्राप्त जीत कहा जाये। लेकिन अब देखता हूँ कि पूरा-पूरा कष्ट सहन किये बिना पार पाना आपके नसीबमें नहीं था। परन्तु मुझे उम्मीद है कि इतना उत्कृष्ट और सम्मानास्पद जो समझौता हुआ है आपकी कौम उसे स्वीकार करेगी। अगर वह इसे कबूल नहीं करेगी तो एक भी यूरोपीयकी सहानुभूति भारतीयोंके प्रति नहीं रहेगी।

श्री ड्रूके ये शब्द विचारणीय हैं। जब और लोग हमारे विरुद्ध थे तब श्री ड्रूकी सहानुभूति पूर्णतया भारतीयोंके प्रति थी। 'इंडियन ओपिनियन' के पाठक यह जानते हैं। श्री ड्रूने निजी तौरपर सहायता भी बहुत की है। उनके जैसे व्यक्ति जब ऐसा लिखते हैं तब हमें समझना चाहिए कि हद हो गई।

पंजीयन कार्यालय कबतक खुला रहेगा?

यह सवाल बहुत-से लोगोंने पूछा है। जवाब यह है कि जबतक जरूरत दिखाई देगी तबतक। स्वेच्छया पंजीयनमें कार्यालय खुला रहनेके लिए निश्चित अवधि नहीं हो सकती। किन्तु मोटे हिसाबसे प्रति सप्ताह एक हजार मनुष्य पंजीकृत होते दीख पड़ते हैं। और जोहानिसबर्गकी जनसंख्या पाँच हजारकी हो तो उसके पाँच सप्ताह खुले रहनेकी सम्भावना है।

१. रेवरेंड डयूडनी ड्रू; अपनी पुस्तक **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास**में गांधीजीने उन्हें "दक्षिण आफ्रिकाके एक उत्तम वक्ता" बताया है। यूरोपीयोंके प्रबल विरोधके बावजूद उन्होंने भारतीय पक्षका समर्थन किया। फ्रेंड पत्रका सम्पादन करनेके लिए उन्होंने पादरीका काम छोड़ दिया था।

पुलिस जाँच-पड़ताल करेगी या नहीं?

यह प्रश्न पूछनेवाले व्यक्ति समझौतेको नहीं समझते। जो लोग स्वेच्छया पंजीयन करायें उनपर खूनी कानून अथवा उसके अन्तर्गत बनाई गई धाराएँ बिलकुल लागू नहीं होतीं, और लागू होंगी भी नहीं ऐसा लिखित वचन है। इसलिए फिर ऊपरका प्रश्न नहीं रहता। इसका अर्थ मैं यह नहीं लगाना चाहता कि पुलिस किसीसे पूछेगी ही नहीं। स्वेच्छया पंजीयन करा चुकनेके बाद कुछ-न-कुछ नया कानून तो बनेगा ही। उस कानूनमें जाँच-पड़तालसे सम्बन्धित कुछ खण्ड रखे जायेंगे। ये खण्ड किस प्रकारके होंगे, नया कानून कैसा बनेगा, इसका आधार भारतीय कौमके तीन महीनेके बरतावपर है। पठान लोग क्षुद्र नासमझीके कारण, और बच्चोंकी-सी माँग करके सरकारपर बुरा प्रभाव डाल रहे हैं। इसके विपक्षमें सरकारको यह प्रतीति हो जाये कि भारतीय कौमके अन्य लोग समझदार, प्रामाणिक और बाकायदा चलनेवाले हैं तो उनके योग्य कानून बनेगा। इसलिए इस समय प्रत्येक भारतीयपर पूरा-पूरा उत्तरदायित्व है, यह समझ लिया जाये। स्थानिक सत्ताधिकारियोंसे पग-पगपर काम पड़ेगा। इसमें बड़ी सरकार बीचमें नहीं आती, आ भी नहीं सकती, यह जान लेना चाहिए। तो फिर जिस बातसे हमारी मानवतापर आँच नहीं आती उस बातमें सरकारके साथ विवेकसे और विचारपूर्वक बरतना चाहिए, यह ध्यानमें रखकर तीन महीनेके लिए और सदाके लिए ये नियम दे रहा हूँ:

१. प्रत्येक भारतीय अपना निजी स्वार्थ भूलकर समूचे समाजका हित देखे।

२. गलत अनुमतिपत्रका स्वयं प्रयोग न करें और दूसरोंको प्रोत्साहित भी न करें।

३. गलत ढंगसे अपने आदमीको दाखिल करनेका विचार न करें।

४. लड़कोंके नाम और उम्र सही-सही दें।

५. भारतीय बड़ी संख्यामें दाखिल हों, इस प्रकारका लोभ छोड़ दें।

६. अधिकारियोंके साथ उद्दण्डताका व्यवहार न करें। खुशामद जरा भी न की जाये, लेकिन नम्रता रखें।

७. सबके-सब भारतीयोंसे जल्दी-जल्दी पंजीयन करायें।

८. प्रायः सभी भारतीय समझदारीसे और यह जानकर अँगुलियोंकी छाप दें कि इसके देनेमें मानहानि नहीं है।

इन नियमोंका पालन किया जायेगा तो मैं साहसके साथ कह सकता हूँ कि अब जो कानून बनेगा वह इतना नरम होगा कि भली-भाँति सहन किया जा सकेगा; और वह हमारे योग्य होगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–२–१९०८

४८. संक्षेपमें स्पष्टीकरण[1]

सब जानते हैं कि इस अखबारमें मेरे लेख कई जगह रहा करते हैं। फिर भी आम तौरसे पाठक हमेशा यह नहीं बता सकेंगे कि कहाँ मैंने लिखा है, और कहाँ और लेखकोंने। इस लेखको मैं अपने हस्ताक्षरसे इसलिए दे रहा हूँ, ताकि यह समझा जा सके कि इसके विचार खास मेरे अपने हैं।

अब सरकारके साथ हुई सुलहपर होनेवाली चर्चाएँ प्रायः बन्द हो गई हैं। लोग अधिक समझने लगे हैं और उस हद तक वे शान्त हुए जान पड़ते हैं। फिर भी अभी बातचीत होती रहती है। नेटालसे मेरे नाम बड़े रोषपूर्ण पत्र आये हैं। कुछमें मुझे गाली तक दी गई है। इससे पता चलता है कि हमारी स्थिति अब भी बड़ी दयनीय है। मेरे मनपर गालीका कुछ भी असर नहीं है। किन्तु इससे जाहिर होता है कि भावनाएँ किस हद तक उत्तेजित हो रही हैं।

समझौतेके खिलाफ यह जो विवाद छिड़ा हुआ है वह कुछ लोगोंके लिए तो केवल बहाना ही है, ऐसा भी मेरे देखनेमें आ रहा है; लेकिन इसकी तहमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच अनबन पैदा करानेका इरादा है। मैं समझता हूँ कि मेरे लिए दोनों कौमें एक-सी हैं। देशसेवा करनेमें हिन्दू और मुसलमान एक और साथ-साथ हैं। फिर भी मैं देख पाया हूँ कि हिन्दुओंने मुझे दोष नहीं दिया है, और वे भरोसा करते हैं कि समझौता ठीक हुआ है। उलाहनेके जितने पत्र आये हैं वे केवल मुसलमानोंकी ओरसे आये हैं। इसका क्या कारण है, यह सोचनेकी आवश्यकता है। इस बातको लिखनेमें मुझे संकोच हो रहा है। फिर भी जो बातें कई लोगोंके मुँहसे निकलती रहती हैं और जिनके सम्बन्धमें चर्चाएँ होती रहती हैं, उनको छिपाना कतई ठीक नहीं है। यही नहीं, इस तरह छिपाना अन्तमें हानिप्रद हो सकता है।

जब सत्याग्रह जोरोंपर था तब श्री अली[2] मेरे हिन्दू होनेके कारण मुझपर पूरा-पूरा विश्वास नहीं कर सके। इसलिए उन्होंने श्री अमीर अलीके[3] नाम तार भेजा। इस समय कई मुसलमानोंने श्री जिन्नाके नाम तार करनेकी बात सोची थी, और अन्तमें पठानोंने तो तार

१. **इंडियन ओपिनियन**में यह "श्री गांधीका एक पत्र", शीर्षकसे प्रकाशित किया गया था।

२. हाजी वजीर अली; १८५३ में मारीशसमें भारतीय तथा मलायी माता-पितासे उत्पन्न हुए थे; डच, अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी भाषाएँ धारा-प्रवाह बोलते थे; १८८४ में दक्षिण आफ्रिकामें आये और पूर्ण रूप से भारतीयोंके हित-साधनमें लग गये। उन्होंने मताधिकार कानून संशोधन अधिनियमके खिलाफ चलाये गये आन्दोलनमें प्रशंसनीय कार्य किया। १८९२ में केपके रंगदार लोगोंके संगठनके अध्यक्ष चुने गये थे; हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके संस्थापक थे और अध्यक्ष रहे; १९०६ में इंग्लैंड भेजे गये; ट्रान्सवाली भारतीय प्रतिनिधि मण्डलके गांधीजीके साथ सदस्य थे; देखिए खण्ड ६। उन्होंने न तो सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग लिया और न एशियाई पंजीयन अधिनियमको ही मंजूर करना चाहा; इसलिए १९०७ में वे अपने विशाल हितोंको छोड़ ट्रान्सवाल त्यागकर चले गये। देखिए खण्ड ७, पृष्ठ २०७।

३. सैयद अमीर अली (१८४९–१९२८); प्रिवी कौंसिलकी न्याय-समितिके सदस्य; कलकत्ता उच्च न्यायालयके न्यायाधीश, १८९०–१९०४; **इस्लाम** तथा मुस्लिम कानून और इस्लाम धर्म सम्बन्धी कई पुस्तकोंके लेखक। हाजी वजीर अलीने जुलाई १९०७ में अमीर अलीको, जो उन दिनों द० आ० ब्रि० भा० समितिके सदस्य थे, एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने गांधीजी द्वारा एशियाई पंजीयन अधिनियमके खिलाफ आंदोलन जारी रखनेसे विरोध प्रकट करते हुए लिखा था कि उससे "मेरे हजारों सहधर्मी, जो सबके-सब व्यापारी हैं, न कि हिन्दुओंकी तरह अधिकांशतः फेरीवाले", बरबाद हो जायेंगे। उन्होंने सत्याग्रह आंदोलनको रोकनेके लिए समितिके हस्तक्षेपकी माँग की थी। देखिए खण्ड ७, पृष्ठ १२४-५।

किया भी। श्री अलीने जो किया था उसके लिए मैं उनको दोष नहीं देता। इस समय पठानोंने जो किया उसके लिए भी मैं उनको दोष नहीं दे रहा हूँ। श्री अमीर अलीसे मैं परिचित हूँ। कौमके लिए उनसे मैंने मदद माँगी है। और वह मिली है। श्री जिन्नासे भी मैं परिचित हूँ। दोनोंको आदर-भावसे देखता हूँ। इसलिए मैं यह बात उलाहनेके रूपमें नहीं, बल्कि हमारे मनकी स्थिति क्या है, यह सूचित करनेके लिए लिख रहा हूँ।

बात यह है कि मैंने दोनों कौमोंको इकट्ठा करनेके लिए बड़ी ही मेहनत की है। इतनेपर भी कहीं-कहीं विश्वासकी कमी देखता हूँ। यह हमारी कमजोरीका लक्षण है। मैं यह जानकर दुःखी हो रहा हूँ। फिर समझौतेके बारेमें जो चर्चाएँ चलती हैं, उनसे मुझे पता चलता है कि कुछ मुसलमान भाई कह रहे हैं कि "गांधीने मुसलमानोंका सत्यानाश कर दिया, और पन्द्रह वर्षसे ऐसा ही करता आ रहा है।" ऐसे वचन किसी भी भारतीयके मुँहसे निकलें, यह बड़े खेदकी बात है। कहनेवालेको खुद समझ होनी चाहिए कि स्वप्नमें भी किसीका बुरा करनेका विचार मुझे कभी नहीं आया।

यह सारी लड़ाई अच्छी स्थितिवाले भारतीयोंकी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिए थी। दक्षिण आफ्रिकामें मुसलमान अधिक अच्छी स्थितिमें रहते हैं। यह लड़ाई मुख्यतया व्यापारियोंके लिए थी। हमीदिया इस्लामिया अंजुमनने बड़ी भारी मदद न दी होती तो हम कभी जीत नहीं सकते थे। बहुत सारे मुसलमान भी मेहनत न करते तो भी जीत हाथ न आती। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि मैंने मुसलमानोंका सत्यानाश कर दिया?

मैं समझता हूँ कि ऐसा कहनेवाले लोग थोड़े ही हैं। ज्यादातर मुसलमान समझते हैं और जानते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें हिन्दू-मुसलमान एक ही हैं और उन्हें एक होकर रहना चाहिए। अगर मुझसे कुछ हानि हुई हो तो वह सिर्फ मुसलमानोंकी ही नहीं, किन्तु पूरी भारतीय कौमकी होनी चाहिए। ऐसा हुआ दिखाई नहीं देता। फिर भी चर्चा चल रही है। इसलिए म अपने मुसलमान भाइयोंको चेतावनी देता हूँ कि ऐसी बात कहकर जो झगड़ा करवाना चाहते हैं उनको कौमका दुश्मन समझें और उनकी बात न सुनें।

जो लोग मानते हैं कि झगड़ा करनेमें अच्छाई है उनसे मैं कहता हूँ कि आप लोग अपने हाथसे बरबाद हो रहे हैं, और सारी कौमको बरबाद करना चाहते हैं। ऐसा करनेसे बचें। स्वार्थकी दृष्टि छोड़कर अच्छाई करनेकी ओर मन लगायें।

हिन्दू भाइयोंसे मैं कहता हूँ कि जो कौमके बैरी हों ऐसे कुछ मुसलमान चाहे जैसा बोलें, फिर भी उसको मनमें न लाकर हम सबको एक ही होकर रहना है। ऐसा विचार करके भूल करनेवालोंकी भूलको दरगुजर कर दें। उलटकर जवाब न दें। झगड़ा दोष ड्यौढ़ा किये बिना पैदा नहीं होता। यह बात याद रखकर आप लोग आधे दोषमें भी न पड़ें।

दक्षिण आफ्रिकामें मेरा कर्त्तव्य तो एक ही है; और वह है — हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक रखकर, एक ही समझकर, कौमकी सेवा करना। इस बातके सिलसिलेमें कुछ प्रश्न पैदा हुए हैं। उनपर विचार आगामी सप्ताहमें करेंगे। इस बीच ऊपरके तथ्योंको धैर्यसे और बार-बार पढ़नेकी सिफारिश मैं सभी भारतीयोंसे करता हूँ।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, २२–२–१९०८

४९. पत्र : जनरल स्मट्सको[1]

जोहानिसबर्ग
फरवरी २२, १९०८

प्रिय श्री स्मट्स,

आपसे प्राप्त अनुमतिके अनुसार मैं आज आपकी सेवामें १९०७ के प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम संख्या १५के[2] संशोधनार्थ विधेयकका मसविदा भेज रहा हूँ। मेरी सम्मतिमें मसविदा परिस्थितिका पूर्ण हल उपस्थित करता है। मेरे इसे भेजनेका समय आ गया है, क्योंकि इस बातके सब आसार दिखाई दे रहे हैं कि इस समझौतेको एशियाई बिना विरोधके स्वीकार कर लेंगे।

आप देखेंगे कि एशियाई अधिनियम द्वारा प्रदत्त कुछ अधिकारोंको विधेयकमें नहीं लिया गया है; जैसे, रद किये जानेवाले अधिनियमके अन्तर्गत वे एशियाई पंजीयनके अधिकारी हैं जो १९०२ की ३१ मईको ट्रान्सवालमें थे; परन्तु प्रस्तुत मसविदेमें वे उसके अधिकारी नहीं हैं। मैंने ऐसा जान-बूझकर किया है, क्योंकि इससे एशियाई प्रलोभनमें पड़ सकते हैं। मैं यह मानकर चला हूँ कि जो ३१ मई १९०२ को उपनिवेशमें थे, उन्होंने स्वेच्छया पंजीयनकी अवधि पूर्ण होने तक उसका लाभ उठा लिया होगा। उपनिवेशमें उस तारीखको उपस्थित और अबतक न लौटनेवाले बहुत-से लोग नहीं होंगे; फिर भी यदि कुछ ऐसे अपवाद हों तो वे संशोधनके अनुच्छेद 'छ'की अन्तिम धाराके अनुसार निपटाये जा सकते हैं। दूसरी ओर मैंने उन एशियाइयोंको खास तौरसे संरक्षण देनेकी धृष्टता की है जिन्होंने युद्धसे पहले पुरानी सरकारको ३ पौंड दिये थे; यद्यपि १९०७ के अधिनियम २ में उनका उल्लेख नहीं है, तथापि मंशा सदैव उनकी रक्षा करनेका था और इस समय उपनिवेशके बाहर ऐसे प्रमाण-पत्रोंके मालिक सौसे अधिक नहीं हो सकते।

अस्थायी अनुमतिपत्रोंसे सम्बन्धित धारा १९०७ के अधिनियम २ से ली गई है। विधेयकके मसविदेमें मैंने स्वर्गीय अबूबकर आमदकी चर्च-स्ट्रीटवाली जायदादके[3] बारेमें एक धारा रखनेकी धृष्टता की है। जैसा कि आप जानते हैं, १९०७ के अधिनियम २ का तत्सम्बन्धी खण्ड निष्फल सिद्ध हुआ। ऐसे खण्डके लिए प्रवासी विधेयक उपयुक्त स्थान नहीं जान पड़ता, परन्तु चूँकि यह कानून एशियाई कानून संशोधन अधिनियमको रद करता है, इसलिए उस अधिनियमके अन्तर्गत माँगी गई राहत इस रद करनेवाले विधेयकमें भी दी जानी चाहिए। मुझे विश्वास है कि आप उत्तराधिकारियोंको उनकी पैतृक सम्पत्तिका स्वामित्व पुनः प्रदान

१. लेनने १२ मार्चके अपने उत्तर (एस० एन० ४७९८) में लिखा था कि जनरल स्मट्स "अन्य मामलोंमें बहुत व्यस्त हैं" और "उन्हें इस प्रश्नपर विचार करनेका अवसर नहीं मिला।" रिचने अपने २७ जुलाईके पत्रके साथ स्मट्सको लिखे गये इस पत्रकी भी एक नकल संलग्नकर उपनिवेश-कार्यालयको भेजी थी।

२. देखिए इसके साथ संलग्न-पत्र।

३. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ २७८-९ और खण्ड ६, पृष्ठ १२५-६।

करनेकी कृपा करेंगे। आपको पता होगा कि वह जायदाद एक यूरोपीय पेढ़ीको पट्टेपर दी गई है और वह हर तरहसे यूरोपीयोंके ही उपयोगमें आ रही है और वहाँ बनी हुई इमारत सब प्रकारसे प्रिटोरिया नगरके मुख्य मार्गके लिए शोभनीय है।

एशियाई अधिनियममें से मैंने शराबके बारेमें कथित राहत देनेवाली धाराको नहीं लिया है। मेरा व्यक्तिगत खयाल है कि वह बिलकुल व्यर्थ है और उसे किसी भाँति अधिनियमका अंग नहीं होना चाहिए था।[1]

मैं जानता हूँ कि आप प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके[2] खण्ड ६ में भी संशोधन करनेवाले हैं। मैं उसके संशोधनका मसविदा भी पेश करने ही वाला था, परन्तु दुबारा सोचनेपर मेरी समझमें आया कि वह बात मेरे क्षेत्रमें नहीं आती। परन्तु क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूँ कि निष्कासनके बदले मजिस्ट्रेटको अधिकार दे दिया जाये कि वह उन लोगोंको सजा दे जो देश छोड़नेकी आज्ञाका उल्लंघन करें और जबतक वे अपने-आप और अपने खर्चसे देश न छोड़ दें, तबतक के लिए उन्हें जेलमें रहनेकी सजा दे? मेरा खयाल है कि कोई सभ्य सरकार सम्भवतः अधिकसे-अधिक इतना ही कर सकती है। यदि ऊपरके अनुसार खण्ड ६ में संशोधन कर दिया जाता है तो खण्ड ११ और खण्ड १५ के उपखण्डमें भी वैसा ही संशोधन करना आवश्यक होगा।

अब मुझे इतना ही और कहना है कि प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमको जैसा मैंने समझा है उसके अनुसार मलायी और केपके रंगदार लोग वर्जित प्रवासी ठहरते हैं। मैं नहीं समझता कि सरकारका ऐसा कोई इरादा था। मैं तो ऐसा कुछ सोचता हूँ कि खण्ड २ की धारा 'ज' के द्वारा उनका वैसा ही संरक्षण किया जायेगा जैसा आफ्रिकाकी आदिम जातियोंके वंशजोंका किया जाता है।

मेरी सम्मतिमें, एशियाई अधिनियमके मुख्य उद्देश्यको कार्यान्वित करनेके लिए, अर्थात् निरीक्षणके लिए और परवानोंको केवल उन लोगों तक सीमित रखनेके लिए जो वर्जित प्रवासी नहीं हैं, और किन्हीं संशोधनोंकी आवश्यकता नहीं होगी। क्योंकि, प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत इन दोनों बातोंकी भरपूर व्यवस्था कर दी गई है। परवानेके लिए प्रार्थनापत्र देनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको यह सिद्ध करना होगा कि वह वर्जित प्रवासी नहीं है। और प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत नियुक्त अधिकारियोंको अधिकार होगा कि यदि किसी व्यक्तिपर वर्जित प्रवासी होनेका सन्देह हो तो वे उससे इसको अन्यथा प्रमाणित करनेको कहें।

यदि ऐसे एशियाई हों जो स्वेच्छया पंजीयनकी सुविधासे लाभ नहीं उठाते तो मेरा खयाल है कि जो संशोधन मैंने सुझाये हैं उनको ध्यानमें रखते हुए, आपको उनके मामलेमें एशियाई अधिनियमका प्रयोग करनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इस अधिनियमकी रूसे वे अपने आप वर्जित प्रवासी ठहरेंगे और निष्कासनकी आज्ञाके भागी होंगे। जो लोग उपनिवेशके बाहर हैं और पहलेके अधिवासी होनेके कारण शिक्षा सम्बन्धी योग्यता न रखनेपर भी उपनिवेशमें पुनः प्रवेश करनेके अधिकारी हैं उनके लिए, आप देखेंगे, मेरे द्वारा प्रस्तुत

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ १२५।

२. देखिए प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयककी धाराओंके लिए खण्ड ७, परिशिष्ट ३, और प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके लिए इस खण्डका परिशिष्ट १।

मसविदेके अनुसार, अपने पहुँचनेके दिनसे सात दिनके अन्दर स्वेच्छया पंजीयनके फार्मके आधारपर पंजीयन-प्रमाणपत्र लेना जरूरी है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

जनरल जे० सी० स्मट्स
उपनिवेश कार्यालय
प्रिटोरिया

[संलग्न]

१९०७ के अधिनियम १५ के संशोधनार्थ प्रस्तुत प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयकका मसविदा

१. उक्त अधिनियमका खण्ड एक एतद् द्वारा विखण्डित किया जाता है और नीचे लिखे अनुसार प्रतिस्थापित किया जाता है: "शान्ति रक्षा अध्यादेश, १९०३, एशियाई कानून संशोधन अधिनियम संख्या २, १९०७, और १८८५ के कानून संख्या ३ के अनुच्छेद दो के उपखण्ड (ग) जैसा कि फोक्सरस्टके प्रस्तावों, १२ अगस्त १८८६ के अनुच्छेद १४१९ और १६ मई, १८९० के अनच्छेद १२८ द्वारा संशोधित हुए थे, एतद् द्वारा विखण्डित किये जाते हैं; परन्तु उक्त अध्यादेश, अधिनियम या कानूनके अन्तर्गत ऐसे विखण्डनसे पहले जो-कुछ भी किया गया वह ऐसे विखण्डनसे प्रभावित नहीं होगा।"

२. खण्ड दोके उपखण्ड एकका अनुच्छेद (छ) एतद् द्वारा विखण्डित किया जाता है और निम्नलिखित द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है: "कोई एशियाई जिसने एशियाई कानून संशोधन अधिनियम, १९०७ के अन्तर्गत पंजीयनका प्रमाणपत्र प्राप्त कर लिया है; या कोई एशियाई जिसने . . . की तारीख . . . के पहले इसके साथ संलग्न फार्मके अनुसार और अनुसूची (क) में वर्णित, प्रमाणपत्र प्राप्त किया है; या कोई एशियाई जो उपनिवेशमें न होते हुए, अपने पास कोई अनुमतिपत्र या पंजीयनका प्रमाणपत्र रखता हो, जो उसके नाम कानूनी तौरपर जारी किया गया हो, और जिसका वह प्रवासी अधिकारीके सन्तोषके अनुसार कानूनन मालिक हो, और जो उपनिवेशमें प्रवेश करनेके बाद ७ दिनके भीतर अनुसूची (क) के अनुसार पंजीयनके लिए प्रर्थनापत्र दे दे; या कोई एशियाई जो मन्त्री द्वारा ऐसे प्रमाणपत्रके योग्य समझा जाये और जो "वर्जित प्रवासी" की परिभाषाके, जैसा कि १९०७ के उक्त अधिनियम १५ में है, उपखण्ड ३, ४, ५, ६, ७, या ८ के क्षेत्रके अन्दर नहीं आता।"

३. मन्त्रीको अधिकार होगा कि वह किसी "वर्जित प्रवासी" को उपनिवेशमें प्रवेश करने और बने रहनेके लिए समय-समयपर अस्थायी अनुमतिपत्र जारी करे।

४. जायदाद सं० ३७३ चर्च स्ट्रीट, प्रिटोरियाका भाग, जो स्वर्गीय अबूबकर आमदके नामसे पंजीकृत हुआ था और जो इस समय हेनरी सॉलोमन लियोन पोलकके नाम पंजीकृत

है, स्वर्गीय अबूबकरके उत्तराधिकारियोंके पक्षमें, १८८५ के कानून ३ के, जैसा कि वह फोक्सरस्टके प्रस्तावों, १२ अगस्त १८८६ के अनुच्छेद १४१९ से संशोधित हैं, खिलाफ किसी बातके होते हुए भी और बिना और अधिक हस्तान्तरणका कर दिये हुए, हस्तान्तरित किया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८

इंडिया आफिस, ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स: २८९६/०८ बी।

५०. नीली पुस्तिका[1]

लॉर्ड एलगिनने[2] जनवरी मासमें जो "नीली पुस्तिका" प्रकाशित की है वह अब आफ्रिका आ पहुँची है। उसे नीली पुस्तिका कहा जाता है; किन्तु सचमुच तो "उसे काली पुस्तिका" कहना चाहिए। जो आदमी इस नीली पुस्तिकाको पढ़ेगा और समझेगा वह तुरन्त समझ जायेगा कि बात यह है कि जो जीत भारतीयोंको मिली है वह बड़ी सरकारके विरोधी होनेके बावजूद मिली है। और वह केवल सत्यके बलपर। जनवरी १० तक बड़ी सरकारका विचार एकदम कच्चा था, ऐसा दीख पड़ता है। उसके बाद बड़ी सरकारका विचार बदल गया, ऐसा हमने देखा। किन्तु इसमें बड़ी सरकारकी अच्छाई मानने जैसा कुछ नहीं है। वह तो 'रपट पड़ेकी हर गंगा' जैसा हुआ है। इस किताबसे जाहिर होता है कि प्रवासी अधिनियम[3] जैसा है यदि वैसा ही रहे तो उसकी दूसरी धाराकी उपधारा ४ का अर्थ सरकारके विचारके अनुसार यह है कि ट्रान्सवालके बाहर रहनेवाला कोई भी भारतीय प्रवेश नहीं पा सकता। यदि उस कानूनका सचमुच यही अर्थ हो तो मिली हुई जीत कितनी अच्छी है, यह और भी स्पष्ट हो जाता है। किन्तु उसके साथ यह भी समझना जरूरी है कि यदि प्रवासी कानूनका सरकार द्वारा किया गया अर्थ ठीक हो तो परीक्षा उत्तीर्ण करने-वाला भारतीय प्रवेश नहीं पा सकता। यदि भारतीय समाज अगले तीन महीने तक अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह करे तो सम्भव है कि ऐसी आशंका निरर्थक सिद्ध हो जाये। फिर भी फिलहाल तो "नीली पुस्तिका" के बारेमें यह टीका उचित है कि प्रवासी कानूनका ऐसा विषाक्त अर्थ निकलनेपर भी उसे लॉर्ड एलगिनने मंजूर कर लिया। और इसी प्रकार प्रवासी अधि-नियमकी धारा ६ में भारतीयोंको देश-निकाला देनेकी बात डाली गई थी, उसे भी एलगिन साहब मंजूर कर चुके थे, सो भी यह कहकर कि एशियाई अधिनियमको लागू करने और सत्याग्रहका निवारण करनेके लिए स्थानिक सरकारको अधिक शक्तिकी जरूरत है, सो दी जानी चाहिए।

१. **ब्ल्यू बुक** या सरकारी रिपोर्ट।

२. लॉर्ड एलगिन (१८४९–१९१७); भारतके वाइसराय, १८९४–९९; वापसीपर दक्षिण आफ्रिकाके युद्धके बारेमें नियुक्त रायल कमीशनके अध्यक्ष मनोनीत किये गये; १९०५ में सर हेनरी कैम्बेल-बैनरमैनके मन्त्रिमण्डलमें उपनिवेश मन्त्री बनाये गये। ट्रान्सवाल भारतीयोंके शिष्टमण्डलसे उनकी भेंटकी रिपोर्टके लिए देखिए खण्ड ६, पृष्ठ १२०-१३०।

३. देखिए खण्ड ७, परिशिष्ट ३।

श्री मॉर्लेने[1] भी थोड़ी-बहुत आनाकानी करनेके बाद उसे स्वीकार कर लिया। और राजाओं आदिको यात्रा आदिके लिए अनुमतिपत्र मिलेगा, श्री स्मट्सके ऐसा कहनेपर लॉर्ड एलगिन तथा श्री मॉर्लेने सन्तोष प्रकट किया। यह बात जिस हद तक ब्रिटिश राज्यके लिए अशोभनीय है, उसी हद तक भारतीय समाजपर लांछन लगानेवाली भी है। ब्रिटिश राज्यकर्तागण हमें इतना ओछा और नासमझ मानते हैं कि वे सोचते हैं कि काफिर जिस तरह चिड़ियों और पिनोंसे खुश हो जाते हैं हम भी उसी प्रकार तुच्छ चीजें पाकर खुश होकर बैठ जायेंगे। जिन राज्यकर्ताओंके मनमें ऐसा निकृष्ट विचार था उन्हें लाचार होकर जेलमें दो सौ भारतीयोंको देखकर अपना विचार बदलना पड़ा। यह सत्यकी खूबी है। यह भारतीय समाजको समझना चाहिए। इसी "नीली पुस्तिका"में हम यह भी देखते हैं कि चीनी दूतने अँगुलियोंकी बात उठाई थी परन्तु चीनी संघकी एक अर्जीपर वह बात उन्हें वापस लेनी पड़ी थी। और चीनी दूतको श्री एडवर्ड ग्रेसे कहना पड़ा था कि वह संघर्ष कानूनको लेकर था [केवल अँगुलियोंके निशानोंको लेकर नहीं]। इतनी जबर्दस्त कोशिश करनेके बाद प्राप्त विजयको भारतीय समाज अशोभनीय कदम उठाकर अथवा नासमझीसे फेंक नहीं देगा, ऐसी हम आशा करते हैं। इस "नीली पुस्तिका"के आवश्यक अंशका अनुवाद समय मिलनेपर हम अपने पाठकोंकी सेवामें रखेंगे, ताकि हमारे अन्तरमें जो चित्र अंकित है उसे वे भी देख सकें। इस बीच प्रार्थना है कि संघर्ष बहुत-कुछ शेष है, इसे समझ लें। हमें तीन महीनेकी अवधि केवल अपनी तैयारी पूरी करने और अपने हथियारोंपर सान चढ़ानेके लिए मिली है। यदि असावधानीसे ऐसा सोचा गया कि हम फिर वही संघर्ष नहीं कर सकते जिसे किया जा चुका है, तो हम जीती बाजी हार जायेंगे और हाथ मलते रह जायेंगे। भारतके सभी हितैषियोंको बार-बार इसपर विचार करना चाहिए। उन्हें अपना धैर्य, सहनशीलता, उदारता, उद्योग आदि सभी गुण छोड़ नहीं देने हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–२–१९०८

५१. रिचकी कद्र[2]

श्री रिचके बारेमें अब जरा भी समय नहीं खोना चाहिए। उन्होंने अमूल्य सेवा की है। उनके प्रति कौम अपना कर्त्तव्य भुला देगी तो हम उसे महापाप समझेंगे। जो लगन और एकनिष्ठता श्री रिचने दिखाई है वैसी लगन और निष्ठाके भारतीय भी विरले मिलते हैं, फिर गोरे तो मिलेंगे ही कैसे? हम उम्मीद करते हैं कि गरीब और अमीर अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार चन्दा भेज देंगे। हम प्रत्येकका नाम प्रकाशित करेंगे। किसीको एक-दूसरेकी देखा-देखी नहीं करनी है। कौन पहल करेगा, यह विचार नहीं करना है। इस प्रकारके कामोंमें पहल करनेके लिए सभीको तैयार रहना चाहिए। इन दिनों श्री रिचकी ओरसे आने-

१. जॉन मॉर्ले (१८३८–१९२३); इंग्लैंडके राजनयिक, लेखक और दार्शनिक; आयर्लैंडको स्वराज्य देनेके उत्साही समर्थक; ग्लैड्स्टनके मंत्री-मण्डलमें आयर्लैंड-मंत्री; भारत-मंत्री, १९०५–१०; १९०८ में ब्लैकबर्नके वाइकाउंट मॉर्ले (लॉर्ड मॉर्ले) और लॉर्ड सभाके सदस्य बने; बादमें भारतीय शासनमें प्रातिनिधिक प्रणालीका सूत्रपात करनेके प्रयत्न किये। ट्रान्सवाल वासी भारतीयोंके शिष्टमण्डलकी उनके साथ भेंटकी रिपोर्टके लिए देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २१९–३१।

२. देखिए "रिचका महान कार्य", पृष्ठ ६३ और "रिचके लिए चन्दा", पृष्ठ ८६।

वाले पत्रोंका अनुवाद हम अधिक नहीं दे रहे हैं, यद्यपि आजकल उनके काफी लम्बे पत्र आ रहे हैं। अनुवाद न देनेका कारण समझा जा सकता है। श्री रिच जिन जानकारियोंके बारेमें लिख रहे हैं, हम लोग उनका परिणाम जान चुके हैं। इसलिए अन्य चालू बातोंको अधिक महत्त्वका समझकर श्री रिचके पत्रोंको छोड़ देते हैं, या उन्हें संक्षिप्त कर लेते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–२–१९०८

५२. खराब आदत

एक पाठकने डर्बनसे हमें लिखा है कि बहुत-से भारतीयोंको कलकत्तेके भारतीयोंके बारेमें अथवा मद्रासके भारतीयोंके बारेमें सबके सामने एवं अकेलेमें भी बोलते समय उनको "कुलिया" अथवा "कुली" कहनेकी आदत है। यह शिकायत सही दिखती है। कई बार समझदार भारतीयोंके मुखसे हमने ये शब्द सुने हैं। श्री स्मट्स अथवा अन्य गोरे "कुली" शब्दका प्रयोग करते हैं तब हम चिढ़ते हैं। परन्तु जो मजदूरवर्गके नहीं हैं, ऐसे कलकतियों अथवा मद्रासियोंके सम्बन्धमें उसी शब्दको जान-अनजानमें कई बार काममें लाते हैं। लेखकने हमें खबर दी है कि एक बार एक वकीलके समक्ष उसने एक भारतीय व्यापारीको कलकतियेके सम्बन्धमें "कुली" शब्दका प्रयोग करते देखा है। हम आशा करते हैं कि जिन भारतीयोंको यह आदत है वे तुरन्त इसे छोड़ देंगे। क्योंकि और कुछ कारण न हो तो भी इस प्रकारका अविचारी बरताव सब भारतीयोंको एक सूत्रमें बाँधनेमें विघ्नकारी होता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–२–१९०८

५३. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

पंजीयन

पंजीयन तेजीके साथ चल रहा है। जितने भारतीय आते हैं अधिकारी उन्हें निबटा नहीं पाते। वे प्रतिदिन दो सौसे अधिक अर्जियाँ नहीं ले पाते हैं। सब अधिकारी जोहानिसबर्गमें रुके हुए हैं; इसलिए कहीं अन्यत्र कार्यालय खोलना सम्भव नहीं हुआ है। किन्तु सम्भव है, मार्च महीनेके मध्य तक सभी जगह कार्यालय खोल दिये जायें।

चीनी लोग

चीनी लोगोंके पंजीयनके बारेमें फिर गलतफहमी हो गई थी। श्री चैमनेने श्री क्विनसे यह कहा कि सबके-सब चीनी अँगूठेका निशान ही देते हैं, यह उचित नहीं है। इसपर श्री गांधीको मध्यस्थता करनी पड़ी, और अन्तमें फिरसे यह स्वीकृत हुआ कि जो चीनी आयें उनसे अँगूठेकी छाप ही ली जाये। ज्यों-ज्यों चीनी लोग इस प्रकार बाल हठ कर रहे हैं त्यों-त्यों उनकी प्रतिष्ठा कम होती जा रही है। ज्यों-ज्यों भारतीय तेजीके साथ कार्यालयमें जाकर दस अँगुलियोंके निशान दे रहे हैं त्यों-त्यों उनकी सज्जनता और सीधेपनका पता चलता जा रहा

है। प्रायः ९५ प्रतिशत भारतीय दस अँगुलियोंके निशान दे चुके हैं। केवल पाँच प्रतिशतने अँगूठेकी छाप दी होगी। सच्ची बहादुरीमें सज्जनता और सीधापन सदैव होता है। यह देखनेमें आता है कि जबतक अपना जोर दिखानेका कोई कारण नहीं हो तबतक अत्यन्त निर्भयतासे रहनेवाले मनुष्य पूरी तरह शान्त और दीन जान पड़ते हैं। सुप्रसिद्ध जनरल गॉर्डन[1] सामान्यतः मनुष्योंके सम्पर्कमें आनेपर सदा बकरीके समान नम्र, दयालु और सरल दिखाई देता था। उसमें उद्दण्डता बिलकुल नहीं थी। बच्चे भी उससे बड़ी स्वच्छन्दताके साथ बातें कर सकते थे। वही व्यक्ति जब अपना अथवा अपने राष्ट्रका स्वाभिमान खण्डित होता देखता था तब सिंहकी तरह गरज उठता था।

अँगुलियोंके निशानकी कथा

अब भी मुझे अँगुलियोंकी छापके सम्बन्धमें लिखते ही रहना पड़ता है। इसलिए मैं स्वयं कौमपर लज्जित हूँ। यह बात इतनी सीधी है कि इसके सम्बन्धमें अभीतक चर्चा चलते रहना अजीब-सा लगता है। परन्तु स्वर्गीय प्रोफेसर मैक्समूलर कह गये हैं कि जबतक सामनेवाले व्यक्तिपर सत्यकी छाप नहीं पड़ती तबतक वही बात दोहरा-दोहराकर अलग-अलग तरहसे कहनेमें कुछ भी दोष नहीं है। इतना ही नहीं, ऐसा करना आवश्यक है। फिर हम लोगोंमें से कुछ विघ्न-संतोषी व्यक्ति कौममें फूट देखना चाहते हैं। उन लोगोंकी दलीलोंका बार-बार खण्डन करके साफ दिलवाले परन्तु भोले भारतीयोंके मनको स्थिर रखनेके लिए जो विचार हमें सूझें, उन्हें बताना आवश्यक है। दस अँगुलियाँ कहें या अठारह, वे सारे दक्षिण आफ्रिकामें लागू होकर रहेंगी, ऐसा लक्षण मैं देख रहा हूँ। और यदि ऐसा हुआ तो घबरानेकी कोई बात नहीं है। ट्रान्सवालमें प्रवासी अधिनियम पहली जनवरीसे लागू है। वह अबतक भारतीयोंके खिलाफ अमलमें नहीं लाया जा सका है; क्योंकि उनका संघर्ष तो पंजीयनके ही खिलाफ था। इस कानूनके अन्तर्गत चार प्रकारके पास लेने पड़ते हैं।

ट्रान्सवाल छोड़कर जानेवाला व्यक्ति, जो पुराना निवासी होनेके कारण ट्रान्सवालमें रहनेका अधिकारी है, लेकिन यूरोपीय भाषाका जानकार न होनेके कारण लौटते समय जिसको अपना अधिकार साबित करनमें कठिनाई उपस्थित होनेकी सम्भावना है, उसके लिए धाराके अनुसार पास ले जानेकी व्यवस्था की गई है। भारतीयोंके लिए इस प्रकारके पासकी आवश्यकता क्वचित् ही होगी। क्योंकि उनके पास तो पंजीयन प्रमाणपत्र होते हैं। लेकिन इस प्रकारके पासोंकी आवश्यकता गोरे, यहूदी और मजदूरवर्गके अन्य गोरोंके लिए है, क्योंकि उन्हें अंग्रेजी भाषाका ज्ञान न हो और कुछके पास २० पौंड नकद न हो, ऐसा हो सकता है। इस प्रमाणपत्रकी एक ओर व्यक्तिका नाम और पता होता है और दूसरी ओर उसकी दसों अँगुलियोंका निशान होता है। अर्थात् इस समय भारतीयोंको जैसा करना पड़ता है यह उसीके अनुसार है। अन्तर इतना ही है कि भारतीयोंको तो दस अँगुलियाँ केवल आवेदनपत्रमें देनी पड़ती हैं, पासमें नहीं। उपर्युक्त पासमें तो दसों अँगुलियाँ निहित हैं ही और वह पास जगह-जगहपर दिखाना पड़ता है।

१. चार्ल्स जॉर्ज गॉर्डन (१८३३–८५) अंग्रेज सैनिक व प्रशासक; क्रीमियाकी लड़ाईमें भाग लिया और बादमें चीन तथा मिस्रमें अपने दायित्वोंको बड़ी खूबीसे निभाया; अन्तमें सूडानके गवर्नर-जनरलके रूपमें मेहदीकी सेनाके विरुद्ध खार्तूमका बचाव करते समय वीर-गतिको प्राप्त हुए। चीनमें अच्छा काम करनेके कारण उन्हें "चीनी-गॉर्डन" भी कहा जाता था।

दूसरा पास उसी कानूनके अन्तर्गत उस व्यक्तिके लिए है जो पहली ही बार प्रवेश चाहता है। यह प्रायः यहूदियोंपर लागू होता है, क्योंकि उन्हें फोक्सरस्टके निकट आनन-फानन परीक्षा आदिकी सुविधा नहीं है। ऐसे लोगोंके लिए बन्दरगाहोंपर या बिलायतमें ही पास निकलवानेकी सुविधा कर दी गई है। उस पासमें उपर्युक्त पासकी तरह ही सभी अँगुलियाँ देनी पड़ती हैं।

तीसरा पास सबके लिए सीमित अवधिका अनुमतिपत्र देनेके बारेमें है। उसमें भी दसों अँगुलियाँ रहती हैं।

चौथा पास उन साक्षियोंके लिए है, जिन्हें ट्रान्सवालमें दाखिल कराना हो, लेकिन जो परीक्षा नहीं दे सकते। उसमें भी दसों अँगुलियाँ देनी पड़ती हैं।

इस प्रकार चार किस्मके पास हैं, जिनमें से दो तो ज्यादातर गोरोंपर ही लागू होते हैं। उन पासोंमें दस अँगुलियाँ रखी गई हैं। तो फिर अँगुलियाँ लेनेकी इस रूढ़िका विरोध भारतीय कौम कैसे कर सकती है? दूसरी बात यह देखनेकी है कि इस धाराका विरोध गोरे बिलकुल नहीं करते। इसका कारण समझना चाहिए। गोरे मुक्त हैं, स्वतन्त्र हैं। इसलिए व्यर्थमें डर नहीं जाते। और जहाँ वास्तवमें अपमान नहीं है, वहाँ अपमान देखते नहीं है। और इसी कारण उन्हें यह भी महसूस नहीं होता कि दस अँगुलियाँ देना कोई बुरी बात है। वास्तविकता यह है कि शिनाख्त करनेके और धोखाधड़ी रोकनेके लिए, दस अँगुलियोंवाला नियम सुन्दर, सरल और शास्त्रीय है। वह पहले कैदियोंपर लागू किया गया, यह बात सही है। और इसी कारण जब भारतीयोंपर खास दबाव देकर उसे लागू करनेकी बात सामने आई तब हमने उसका उचित विरोध किया। परन्तु अब विरोध करनेका कोई कारण नहीं रहता। बहुत-से नये सुधार इन कैदियोंकी मारफत प्रचलित किये गये हैं, जैसे कि चेचकका टीका। जब चेचकके टीकेकी खोज श्री जेनरने की तब उसका सबसे पहला प्रयोग कैदियोंपर किया गया। ऐसा जब प्रतीत हुआ कि वह प्रयोग सफल हो गया तब दूसरोंपर उसे लागू किया गया। कोई यह नहीं कह पाया कि इस कारण स्वतन्त्र मनुष्योंका अपमान हुआ है।

यदि कोई यह प्रश्न करे कि ये सारी दलीलें प्रारम्भमें क्यों नहीं दी गईं तो इसका उत्तर भी बहुत सरल है। पहले जो अँगुलियाँ थीं वे गुलामी-कानूनसे जुड़ी हुई थीं। और इस कारणसे वे हमारे लिए गुलामीके एक चिह्नके रूपमें थीं। और इसी सबब अँगुलियोंके सम्बन्धमें जो-कुछ हीनतासे भरी हुई बात थी उसे स्पष्ट करना कर्त्तव्य था। अन्ततोगत्वा वे दाखिल होंगी ही, और उसमें वैज्ञानिक दृष्टिसे लाभ है, इत्यादि दलीलें दे देकर भारतीय कौमको दासताके जालमें जकड़नेमें सहायता करनेका उद्देश्य इस साप्ताहिकका कभी नहीं रहा। इसलिए अमुक परिस्थितिमें अँगुलियाँ देनी पड़ेंगी, अथवा उनके देनेमें दोष नहीं है, ये दलीलें उस समय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। वह समय कानूनके खिलाफ मामला जोरदार बनानेका था। उस समय मेरे द्वारा भेजे गये संवादपत्रोंमें अथवा इस समाचारपत्रमें अन्यत्र जितनी दलीलें दी गईं वे सबकी-सब उचित थीं। और वे उसी प्रकारकी परिस्थितिमें आज भी अक्षरशः लागू हो सकती हैं। संसारके किसी भी भागमें अनिवार्य रूपसे केवल भारतीय कौमपर उनकी चमड़ीको दागनेके लिए दस अँगुलियाँ अथवा एक अँगूठा भी दाखिल किया गया, तो यही अखबार फिरसे झण्डा उठायेगा। और जो दलीलें दी जा चुकी हैं उन्हें फिर

पेश करेगा। परन्तु सभीको यह याद होगा कि हम हमेशा यह कहते आये हैं कि हमारी लड़ाई अँगुलियोंकी नहीं है, कानूनकी है। कानून चला गया इसलिए भारतीय तलवार अपने-आप म्यानमें चली गई।

परवानोंके विषयमें

कुछ कारणोंसे अब ऐसा प्रबन्ध हुआ है कि जिन्होंने स्वेच्छासे पंजीयन करा लिया है उनको नया कानून लागू होनेसे पहले ही परवाने दे दिये जायें। उनमें इतनी बात लिखी जायेगी कि ये परवाने संसद द्वारा स्वेच्छया पंजीयन स्वीकृत होनेकी शर्तपर दिये गये हैं। पहले शर्तके साथ रसीद दी जानेवाली थी; उसकी तुलनामें यह बात अधिक सन्तोषप्रद है; और यह लक्षण इस बातका जान पड़ता है कि सरकारका इरादा भारतीय कौमको दिये गये वचनका पूरी तरह पालन करनेका है।

मई ३१, १९०२

अर्जीके फार्ममें जो यह पूछा जाता है कि क्या आप ३१ मईको ट्रान्सवालमें थे, उस सम्बन्धमें बार-बार प्रश्न किये गये हैं। इसका उद्देश्य भारतीयोंका लाभ ही है। क्योंकि जो लोग मई १९०२ की ३१ तारीखको ट्रान्सवालमें रहे हों वे लोग अनुमतिपत्र अथवा उस प्रकारके किसी भी साधनके बिना पंजीयन करा सकते हैं।[1]

पंजीयन करा लेनेवाले क्या कानूनके अन्तर्गत आयेंगे?

इस प्रश्नको पूछनेकी जरूरत नहीं है। जनरल स्मट्सके साथ लिखित इकरार है कि जो लोग स्वेच्छासे पंजीयन करा लेंगे वे कानूनके दायरेमें नहीं आयेंगे, भले ही ऐसे भारतीय बहुत थोड़े ही हों।

नये आनेवाले लोग

नये लोग ट्रान्सवालमें दाखिल हो सकेंगे या नहीं, यह प्रश्न भी पूछा गया है। मेरी समझमें जो लोग प्रवासी कानूनके अन्तर्गत होनेवाली शैक्षणिक जाँचमें उत्तीर्ण हो सकेंगे, वे प्रवेश पा सकते हैं। परन्तु अभी विलायतसे जो "नीली-पुस्तिका" (ब्ल्यू बुक) आई है उससे पता चलता है कि ट्रान्सवालकी सरकार द्वारा लगाये जानेवाले अर्थके अनुसार प्रवासी कानूनकी धारा २ की उपधारा ४ के अन्तर्गत शिक्षित भी प्रवेश नहीं पा सकते।[2] मैं स्वयं इस अर्थको नहीं मानता। उसी प्रकार श्री ग्रेगरोवस्की[3] भी इसे स्वीकार नहीं करते। नया कानून रद करते समय यदि मेरी आशाके अनुरूप सुधार हुए तो उपधारा ४ द्वयर्थी है कि नहीं, यह प्रश्न नहीं रहेगा। उस धाराका अर्थ चाहे जो हो, मेरी निश्चित सलाह है कि नये भारतीय अथवा बिना अनुमतिपत्रवाले शरणार्थी भारतीय फिलहाल ट्रान्सवालमें आनेका विचार बिलकुल न करें। भारतीय कौमका पहला काम तीन महीनोंकी अवधिमें अपनी भलमनसाहत और प्रामाणिकता सिद्ध करना है। इसके पश्चात् जो कुछ होना होगा सो होता रहेगा। फिलहाल शिक्षित अथवा शरणार्थी ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेका लोभ करेंगे तो कौमको इससे हानि होगी, ऐसी मेरी निश्चित धारणा है। इस संघर्षमें डर्बनने बड़ी सहायता की है। और मैं

१. देखिए 'पत्र: जनरल स्मट्सको', पृष्ठ ९८–१००।

२. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ १०३।

३. जोहानिसबर्गके एक बैरिस्टर

आशा करता हूँ कि बिना अनुमतिपत्रवाले भारतीयोंको फिलहाल ट्रान्सवालमें आनेसे रोकनेके लिए डर्बन अब भी कुछ और समय तक पूरी कोशिश करेगा।

फोक्सरस्टके भारतीय

फोक्सरस्ट समितिने संघको तार द्वारा ७ पौंड जनवरीमें भेजे हैं। इसका विवरण निम्न लिखित है:

श्री मुहम्मद सुलेमान, ३ पौंड; श्री हुसेन सुलेमानकी कम्पनी (पारख), २ पौंड; सर्वश्री सुलेमान मूसाजी मंगेरा, इब्राहीम मुहम्मद जादवत और मूसा सुलेमान, प्रत्येकके १० शिलिंग; श्री असमाल अहमद कानमवाला और श्री अहमद इब्राहीम हासरोडके ५–५ शिलिंग; कुल ७ पौंड। यह विवरण पहले दिया जाना चाहिए था, परन्तु नहीं दिया जा सका। इसका मुझे खेद है।

नया पंजीयन

नये पंजीयनके लिए नीचे लिखी खाना-पूरी करनी होगी: नाम, कौम, आयु, ऊँचाई, हुलिया, पंजीयकके हस्ताक्षर, पंजीयनकी तिथि, पंजीयन करानेवालेके हस्ताक्षर और दायें हाथका अँगूठा। इसके बाद, नीचे पत्नीका नाम, पता, और सोलह वर्षसे नीचेके बच्चों तथा सोलह वर्षसे नीचेके अल्पवयस्कोंका नाम, आयु, पता और रिश्ता। यह पंजीयन नये कानूनके अनुसार होनेवाले पंजीयनसे सर्वथा भिन्न प्रकारका है। पुराने पंजीयनके[1] अनुसार पत्नीका नाम दिया जाता है और उसके देनेसे स्त्रियोंकी परेशानी कम हो सकती है। ऊपरके पंजीयनमें नये कानूनका नाम नहीं है। स्वेच्छासे लिये गये पहले पंजीयन-प्रमाणपत्रपर नम्बर १ और बादके पंजीयनपत्रोंपर इसीके अनुसार क्रमशः नम्बर दिये जायेंगे।

स्त्रियोंके अँगूठे

फोक्सरस्टसे समाचार है कि भारतीय स्त्रियोंसे अधिकारी अँगूठे लेते हैं, और स्त्रियाँ दे देती हैं। अँगूठा देनेके बाद वे इसकी शिकायत करनेसे इनकार करती हैं। इस प्रकार डर ही डरमें हम कितना खो चुके हैं। मैं तो यही चाहता हूँ कि स्त्रियोंको ऐसी परेशानी न उठानी पड़े। गोरी स्त्रियोंको तो अँगूठे दरकिनार रहे, अँगुलियाँ भी देनी पड़ेंगी। इसका कारण है — बहुतसी बदचलन गोरी स्त्रियाँ दाखिल हो जाती हैं। यह लांछन ट्रान्सवालमें भारतीय स्त्रियोंपर लागू नहीं होता। इस कारण यदि भारतीय कौम साहसके साथ काम करे तो मैं मानता हूँ कि भारतीय स्त्रियाँ जाँच-पड़तालकी तबाहीसे बची रहेंगी। यह बात ध्यानमें रखकर इस प्रकारके जितने किस्से होते रहें, वे सब संघके पास भेजनेमें भूल नहीं की जायेगी, ऐसी मुझे आशा है।

पीटर्सबर्गकी जेल

पीटर्सबर्गमें, कानूनके सिलसिलेमें जो भारतीय जेल गये थे, श्री खंडेरिया उनके अनुभव लिखते हुए सूचित करते हैं कि हम लोग सब जेलमें एक साथ थे। सुविधा बहुत अच्छी थी। भोजनमें रोज दाल, चावल, शाक और घी मिलता था। मजिस्ट्रेट बड़ा भला था, इसलिए पत्र लिखनेकी इजाजत मिल गई थी। इसी प्रकार सप्ताहमें एक बार व्यापार-

१. जो १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत जारी किया गया था।

रोजगारके बारेमें कर्मचारी मिलनेके लिए आ सकता था। जेलर भी भला था। जेलमें मिलनेके लिए श्री भायातके मैनेजर, और श्री अब्दुल लतीफ अली आये थे।

मेरी धारणा शुरूसे ही थी कि गाँवोंकी जेलोंमें भारतीयोंको कुछ भी अड़चन नहीं होगी; क्योंकि कई प्रकारकी छूट, जो वहाँ ली जा सकती है, जोहानिसबर्ग, प्रिटोरिया, आदि नगरोंकी जेलोंमें मिल ही नहीं सकती। अब भी हमें बहुत काम करने पड़ेंगे और कई बार जेल जाना होगा; इसलिए इस प्रकारकी जानकारियाँ ध्यानमें रखने जैसी हैं।

संघकी सभा

ब्रिटिश भारतीय संघकी समितिकी एक सभा शुक्रवार तारीख २१ को हुई थी। भारतीय बड़ी संख्यामें उपस्थित थे। कुछ चर्चा हो चुकनेपर श्री इमाम अब्दुल कादिर द्वारा प्रस्तुत और श्री थम्बी नायडू द्वारा अनुमोदित इस आशयका प्रस्ताव पास किया गया कि श्री रिचकी कद्र करनेके लिए दक्षिण आफ्रिकासे कमसे-कम ३०० पौंडकी रकम उनके पास भेजनेका प्रबन्ध किया जाये। और यदि आवश्यक हो तो संघकी निधिसे उसके लिए १०० पौंड ले लिए जायें।[1] लॉर्ड ऐम्टहिल और सर मंचरजी भावनगरीको २५ पौंड तकके मानपत्र भेजे जायें, श्री पोलकको ५० पौंडकी भेंट दी जाये, कुमारी श्लेशिनको १० पौंडकी या उससे अधिककी, श्री आइजकको[2] १० पौंडकी, श्री कर्टिसको १० पौंड की; और इसी प्रकार उन दूसरोंको भी, जिन्होंने संघर्षमें बहुत हाथ बँटाया हो। श्री कार्टराइट, श्री फिलिप्स, श्री डोक आदि सज्जनोंको निजी रूपसे भोज देनेका विचार भी उसी सभामें हुआ। उस भोजके लिए दो गिनीके टिकट निकाले जायेंगे। ऐसी उम्मीद है कि ये टिकट ३० भारतीय लेंगे। और इस रकमसे लगभग २० प्रतिष्ठित गोरोंको आमंत्रित करनेका खर्च निकल आयेगा। यदि यह हुआ तो इस प्रकार भोजमें इतने भारतीय और गोरे इकट्ठे हो जायेंगे कि दक्षिण आफ्रिकामें यह प्रायः प्रथम उदाहरण कहलायेगा।

संघने कद्रदानीका जो यह प्रस्ताव किया है उसमें उसने केवल अपना कर्त्तव्य पूरा किया है, ऐसा मैं मानता हूँ। जिन गोरे व्यक्तियोंने काम किया है उन्होंने अत्यन्त विशुद्ध भावसे और किसी भी प्रकार भेंटकी अपेक्षा न रखकर किया है। चीनी संघ भी इसी प्रकारका प्रस्ताव करनेवाला है। मैं आशा करता हूँ कि श्री रिचके लिए खास चन्दा किया जायेगा और इसके लिए संघकी स्थायी निधिमें हाथ नहीं लगाया जायेगा। श्री रिचकी सेवा ऐसी है कि उनके लिए किसी भी भारतीयको थोड़ा-बहुत देनेमें संकोच नहीं करना चाहिए।

एक सूचना

इस समय जोहानिसबर्गके ही पंजीयन कार्यालयमें भारतीयोंकी इतनी भारी भीड़ है कि बाहरके नगरोंसे वे ही भारतीय आयें जिन्हें भारत जानेकी बड़ी जल्दी हो। शेष लोगोंको बादमें समय मिल जायेगा।

१. देखिए पृष्ठ ६३, ८६ तथा १०२-३।

२. गैब्रियल आई० आइज़क; ब्रिटिश यहूदी और जौहरी; जोहानिसबर्ग शाकाहारी रेस्त्राँसे सम्बन्धित, और शाकाहारी; फिनिक्स बस्तीके एक समय सदस्य रहे, **इंडियन ओपिनियन**के लिए चन्दा और विज्ञापन प्राप्त करनेके लिए यदा-कदा दौरे किये; उक्त पत्रके और गांधीजीके हर कामके लिए सदैव तत्पर रहे; बादमें सत्याग्रही बन गये।

'हॉकर' और 'पेडलर'

बहुत-से फेरीवाले 'हॉकर' और 'पेडलर' का अन्तर समझे बिना 'हॉकर' का परवाना लेकर नाहक ही ज्यादा रकम भर देते हैं। जो लोग घोड़ागाड़ीमें मालकी फेरी करते हैं वे 'हॉकर' कहलाते हैं, और जो व्यक्ति हाथका ठेला अथवा टोकरी लेकर फेरी करते हैं, वे 'पेडलर' कहलाते हैं। 'पेडलर' का परवाना केवल ३ पौंडका है जब कि 'हॉकर' का पाँच पौंडका है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–२–१९०८

५४. विशेष विचार[1]

समझौतेके बारेमें जो खलबली मची हुई है उसका सही कारण मैं पिछले सप्ताह बता चुका हूँ।[2] मैंने उस समय और विचार करनेकी बात लिखी थी। जो लोग कौमका बुरा करनेके लिए ही तुले बैठे हैं उनको ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते। फिर मैं बेचारा क्या समझा पाऊँगा? जिनके अपने मनमें कुछ बुराई नहीं है, किन्तु जो इन लोगोंकी बातोंसे बहकावेमें आकर गलत राह पकड़ सकते हैं, मेरा यह प्रयास उनके लिए ही है।

मैंने औरोंसे क्यों नहीं पूछा

ऐसे प्रश्न होते रहते हैं, जिनका उत्तर दिया जा चुका है। जिस पत्रके[3] बारेमें कहा जाता है कि मैंने उसपर बिना पूछे हस्ताक्षर किये, उसमें अँगुलियोंकी बात निश्चित नहीं हुई थी। जनरल स्मट्ससे मिलनेके बाद रातको बारह बजे भारतीयोंकी विशाल सभा[4] हुई थी। उसमें मैंने अँगुलियोंकी बात रखी थी और वहाँपर एकत्रित सभी नेताओंने उसे कबूल करनेकी स्वीकृति दी थी। केवल शाहजी ही विरुद्ध थे। इसलिए अगले सोमवारको जब मैं श्री स्मट्ससे मिला तब लोगोंके विचार पूर्णतया जानकर गया था। फिर जेलमें नेताओंकी ओरसे जो सन्देश मुझे मिलते थे, वे मेरे ध्यानमें थे। लोगोंके वास्तविक कष्ट और उनके मनकी स्थितिकी मैं पूरी-पूरी जानकारी रखता था।

मैंने धीरज नहीं रखा

कुछ लोगोंका खयाल है कि जेलमें रहनेके कारण मुझे विलायतमें चलनेवाली बातोंका पता नहीं था। कुछ ठहर गया होता तो उचित रहता। यह भी ठीक नहीं है। जेलमें लोग मुझे सभी खबरें देते थे। न देते तो भी विलायतमें क्या होगा, सो भविष्यवाणी मैं कर ही चुका था। अर्थात् मैंने बिना समझे-बूझे कुछ नहीं किया है। सब्र रखनेसे कुछ और नहीं

१. **इंडियन ओपिनियन**में यह पत्र "श्री गांधीका दूसरा पत्र" शीर्षकसे प्रकाशित किया गया था।
२. देखिए "पत्र: मित्रोंको", पृष्ठ ७४ तथा "संक्षेपमें स्पष्टीकरण", पृष्ठ ९६-९७।
३. देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ ३९-४१।
४. संयोजकोंके अनुरोधपर अखबारोंने इस सभाकी कार्रवाई नहीं छापी थी।

मिलना था। क्योंकि दस अँगुलियाँ दबावमें आकर नहीं दी हैं। विलायतमें जो मदद मिली वह हमारे स्वेच्छया पंजीयनके प्रस्तावके बलपर ही। जब सरकारने हाथ बढ़ाया अगर तब मैंने समय गँवाया होता तो हम विलायतकी सहानुभूतिको खो बैठते। यह स्मरण रहे कि समझौतेके दूसरे दिन बुजुर्ग सेठोंको जेलमें आना था। इसलिए मेरा दिल रो रहा था। यदि टाला जा सके तो इस अवसरको टालना मैं अपना कर्त्तव्य समझता था। अर्थात् यह कहना बिलकुल अनुचित है कि उतावली की गई।

फिर मेरे बाद जो लोग जेलमें आये उनके सन्देशोंमें घबराहट थी। उनका कहना था कि लोगोंकी हिम्मत टूटने लगी है। फेरीवाले फेरी करने नहीं जाते; और मुझे जितनी जल्दी बन पड़े समझौता करनेका प्रयत्न करना चाहिए। जो लोग जेलमें आये हुए थे वे थोड़े दिनों बाद घबराने लगे थे। और कुछ कहा करते थे कि वे दुबारा नहीं आयेंगे। जब मैं जनरल स्मट्ससे मिला तब उन्होंने भी मुझसे यही कहा कि कई भारतीय कानून मान लेनेको तैयार हैं, जिनकी तुम्हें कोई खबर नहीं है। कई व्यक्ति उनके पास अलग-अलग अर्जी भेज चुके थे, उनमें से मैं कुछके नाम भी जानता हूँ। जो व्यक्ति सोलह महीनोंसे इस संघर्षमें पूरी तरह गुँथा हुआ है वह इन सारी बातोंको नजर-अन्दाज नहीं कर सकता। फिर भी यह सम्भव है कि दस अँगुलियाँ देनेमें स्वयं मुझे कुछ आपत्ति दीखती अथवा ट्रान्सवालके लोग बहुत नाराज होंगे ऐसा मुझे पता चलता, तो मेरे लिए कुछ-न-कुछ सोचनेकी बात होती। परन्तु मेरी जानकारीके अनुसार जिस प्रकार स्वेच्छया पंजीयन करानेमें आपत्ति नहीं थी उसी प्रकार स्वेच्छासे अँगुलियाँ देनेमें भी नहीं थी। और मैं जानता था कि ट्रान्सवालमें इसके बारेमें समझदार लोगोंका विरोध नहीं है; क्योंकि उनको पता था कि अँगुलियाँ देना स्वतः आपत्तिजनक बात नहीं थी, परन्तु जिस तरीकेसे कानूनके अन्तर्गत वे माँगी जाती थीं उसपर आपत्ति थी। वह परिस्थिति दूर होनेपर अँगुलियाँ देना अपने-आप निर्दोष बन गया।

क्या मैं जेलमें घबरा गया?

इस प्रकारका आक्षेप करनेवाले मुझे नहीं पहचानते। जेलमें यदि कोई भी मनुष्य अत्यन्त आनन्दसे रहता था तो वह मैं ही था। और किसीको जेलमें मेरे बराबर सन्तोष हो, ऐसा मुझे नहीं दिखा। और अब भी अवसर आनेपर मैं जेलका सहर्ष स्वागत करूँगा, मेरे मनकी ऐसी स्थिति है। जेल भुगतनेके सम्बन्धमें जो व्यक्ति इस हद तक दृढ़ता रखता हो उसे तो समझौतेके बारेमें विचार करनेकी जरूरत ही न पड़ती।

अँगुलियोंमें भेद क्या?

बहुत-से लोग यह पूछते हैं कि "मैं जो अँगुलियाँ देनेमें लाभकी बात कहता हूँ सो क्या है?" इसे थोड़ा-बहुत समझाऊँगा।

१. अँगुलियाँ देनेपर हम समझदार साबित हुए और हमने यह दिखा दिया कि लड़ाई अँगुलियोंके लिए नहीं थी।

२. ऐसे मामलोंमें सरकारका मन रखना बुद्धिमानीकी बात जान पड़ी, और अनुभवके बाद आज भी वैसी ही जान पड़ रही है।

३. अगर इस समय न दी होतीं तो आगे चलकर अनिवार्य रूपसे देनी पड़तीं। देते या नहीं, सो बात अलग है।

४. प्रवासी कानूनमें जगह्-जगह् गोरोंके लिए भी दस अँगुलियोंकी व्यवस्था है।

५. स्वयं मैंने दीं, यह अपने लिए गौरवकी बात मानता हूँ। और मैंने देकर अपनी कसमका पालन किया, पठानोंकी मारसे नहीं डरा हूँ, यह दिखा दिया तथा इस लांछनसे बच गया कि मैंने अपने लिए दस अँगुलियोंसे मुक्त रहनेका प्रबन्ध किया था।

६. इसमें बहुत-सारे गरीबोंके हितका संरक्षण हुआ है।

७. इससे भारतीय कौमका सम्मान बहुत बढ़ा है, और कई गोरोंका कौमके साथ पक्का भाईचारा हो गया है।

चीनी लोग कैसे छूटे?

कुछका कहना है कि चीनी लोग लड़े, इसलिए एक अँगूठा देकर छूट गये। यह गलत-फहमी है। उनको छुड़ानेवाला ब्रिटिश भारतीय संघ है। इसमें मध्यस्थ मैं था। और अपनी चारपाईसे श्री स्मट्सको सन्देशा मैंने भेजा था। इसलिए चीनियोंके अँगूठा देनेकी जो बात तय हुई वह समझौतेका भाग था। चीनियोंके समान हम भी कर सकते थे। परन्तु हठ करके चीनी लोग सरकारकी नजरोंमें आबरू खो बैठे हैं, और हम उसे रख सके हैं। यही नहीं, ऐसी स्थिति आ पहुँची है कि भारतीय कौमके बारेमें विचार करते समय सरकार चीनियोंको किनारे डाल सकती है। ऐसा करना हमारा काम नहीं है। समझदार चीनी यह सब जानते हैं। इसीलिए उन लोगोंने दस अँगुलियाँ दी हैं और आगे भी देंगे। श्री क्विन दे ही चुके हैं।

स्वेच्छया बनाम अनिवार्य

एक देशसेवकने इस सम्बन्धमें एक बड़ा अच्छा किस्सा मुसलमान भाइयोंको समझानेके विचारसे लिख भेजा है। कुरान शरीफके मुताबिक खुदाका नाम लेकर काटा गया मांस मुसलमानोंके लिए हलाल होता है। दूसरी तरहसे काटा हुआ हराम होता है। इसी प्रकार स्वेच्छया अँगुलियाँ देना हलाल है, उनका अनिवार्य दिया जाना हराम था।

क्या शिक्षित लोग लाभमें रहे?

यह प्रश्न उठाना बड़ी नासमझी है। जो लोग सही-सही ढंगसे सुशिक्षित हैं वे तो सदैव लाभमें ही हैं। यदि ऐसा न हो तो शिक्षणकी आवश्यकता नहीं रहती। अशिक्षितोंको यह सोचना चाहिए कि शिक्षित लोग ऊँचे उठें तो उसमें सारी कौमका लाभ है। फिर चाहे शिक्षित लोग चाँदी साबित हों या राँगा। फिर वे लोग लाभमें रहे, इसका क्या मतलब? अँगुलियाँ देने-न-देनेमें लाभ पानेकी कौन-सी बात है? लिखा-पढ़ा हुआ व्यक्ति हस्ताक्षर करेगा और अनपढ़ छाप देगा — इसमें किसने क्या लाभ पाया? दरअसल बात यह है कि हमारा काम अपने अधिकारोंको यथासम्भव सुरक्षित रखना है। व्यर्थका द्वेष करना हमारी क्षुद्रता और पुरुषार्थहीनता है। कुएँमें होगा तभी हौजमें आयेगा, ऐसा समझकर शिक्षणको प्रोत्साहन देना हमारा काम है। ऐसा शिक्षण हमें प्राप्त हो, हम इस प्रकारकी इच्छा करें। शिक्षणका मूल्य समझकर उसका प्रसार करना उचित है।

कानूनका रहस्य

कानूनमें सचमुच कौन-सा दोष है? यदि कोई ऐसा प्रश्न करे तो सर्वप्रथम मुझे यह कहना होगा कि वह भेद ऐसा नहीं है जो सहज ही बताया जा सके। हवाका परिणाम हमारी नजरमें आता है, परन्तु हम हवाको नहीं देख पाते। फूलकी सुगन्ध आती है, परन्तु

सुगन्धको हम आँखोंसे नहीं देख सकते। मैं किसीके यहाँ गया, वहाँ मेरा सम्मान हुआ या अपमान हुआ, इतना ही मैं कह सकता हूँ। परन्तु कई बार यह बताना सम्भव नहीं होता कि किस बातमें सम्मान था और किसमें अपमान। एक-से ही दिखनेवाले दो मोती रखे हों और उनमें एक सच्चा हो और दूसरा झूठा तो उसकी परख जौहरी ही करेगा, और वही हम मानेंगे। अनुभवके बलपर कानूनोंके बारेमें मैं अपनेको कुछ-कुछ जौहरी मानता हूँ। मैंने खूनी कानून पढ़ा, उसी घड़ी मेरे रोंगटे खड़े हो गये, और उसमें मुझे दुर्गन्ध आई। उस कानूनको बनानेका तर्ज ऐसा था कि वह हम लोगोंको गुलाम ही बना दे। वह हम लोगोंपर और दुःख आनेका श्रीगणेश था। हमपर इस प्रकारका कानून सदाके लिए लागू हो जाये, इसमें सारी दुनियामें हमारे कलंकित होने जैसी बात थी। वह कानून हमपर सिरजोरी करके पूरीकी-पूरी कौमको चोर ठहराकर बनाया गया था। इसलिए उस कानूनके मातहत हम लोगोंको लाखोंका लाभ हो तो वह भी हरामके बराबर था। वह कानून कोई पराया व्यक्ति पढ़े तो यही समझेगा कि ऐसा कानून स्वीकार करनेवाले लोग गुलाम होने चाहिए। उसमें मर्दानगीका लोप हो जाता था और विशिष्ट धर्मका अपमान होता था। उसमें हमारे बच्चोंको भी दीन-हीन बनानेकी बात थी। वह कानून अमलमें आता तो बस्ती-बाड़े हमारे मत्थे मढ़ दिये जाते। इन सारी बातोंमें दस अँगुलियोंकी बात कोई मूल्य नहीं रखती। मैं जानता हूँ कि ऊपरकी बातका भेद न समझ सकनेवाले व्यक्ति निकल आयेंगे। परन्तु हम लोग दीर्घकालसे गुलामीकी स्थितिमें हैं इस कारण आजादीको नहीं पहचान पाते। लाटूसको अनेक वर्षों तक अँधेरी कोठरीमें बंद रखनेके बाद जब बाहर निकाला गया, तब उससे सूर्यका प्रकाश सहन नहीं हो सका, और उसने दुबारा कोठरीमें बंद होनेके लिए प्रार्थनापत्र दिया। इस प्रकार हम लोग भी अँधेरी कोठरीमें पड़े हुए होनेके कारण प्रकाशको सहन नहीं कर पा रहे हैं।

क्या अँगुलियाँ और जगह भी [दाखिल की] जायेंगी?

मैं तो मानता हूँ कि बहुत-सी जगहपर अँगुलियाँ दाखिल होंगी। मैं इसमें कोई आपत्ति नहीं देखता। दारोमदार, वे किस प्रकार दाखिल होंगी, इस बातपर है। मुझपर कोई वस्तु जबरदस्ती आ पड़ेगी, इस डरसे क्या मैं अपनी मर्जी न रखूँ? मेरा मित्र आगे चलकर मुझपर ज्यादती करेगा, इस आशंकासे क्या मैं उसकी बीमारीके समय उसकी पूरी सेवा न करूँ? मैंने जेलमें स्वेच्छासे पाखाना उठाया। किसीने मुझे इसके लिए बाध्य नहीं किया था, और अगर मुझे बाध्य किया जाता तो अधिकारियोंको खरा जवाब मिलता। बाध्य होना पड़ेगा, इस डरके मारे अच्छा काम करनेकी बात अपनाना मैं नपुंसकता समझता हूँ।

अब बस हो गया। उपर्युक्त दलीलें इस रूपमें नहीं तो और रूपमें पहले भी दी गई हैं। उन्हें बराबर समझना है, और समझ लेनेपर मनमें निश्चय करना है कि हिन्दू-मुसलमान एक साथ ही रहेंगे। घड़ी-घड़ी बहक नहीं जाना चाहिए। सोच समझकर कदम रखेंगे। दुःसाहस नहीं करेंगे। इस प्रकारके बरतावसे ही एक राष्ट्र बनेंगे, और आगे बढ़ेंगे। नहीं तो हवाका जरा-सा झोंका लगते ही छोटे-मोटे बादलोंकी तरह हम छिन्न-भिन्न हो जायेंगे और फिर न तीनमें रहेंगे और न तेरहमें।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–२–१९०८

५५. पत्र : 'इंडियन ओपिनियन'को[1]

जोहानिसबर्ग,
मार्च ३, १९०८

सम्पादक
'इंडियन ओपिनियन'

महोदय,

भारतीय समाजकी इज्जत रह गई, जय प्राप्त हुई, संसारके हरएक राष्ट्रने भारतीयोंके सत्याग्रहका बखान किया और समाजकी प्रतिष्ठा बढ़ी। संघर्षके प्रारम्भमें ट्रान्सवाल और दक्षिण आफ्रिकाकी गोरी जाति भारतीयोंपर हँसती थी। किन्तु जब बातने रंग पकड़ा, सचमुच, तब ट्रान्सवाल और दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले सत्यप्रिय और पवित्र अन्तःकरणवाले गोरे मदद देनेके लिए आगे आये। विलायतमें बहादुर रिच अपनी प्यारी पत्नीकी, जो बीमार होकर बिस्तरपर पड़ी थीं, अथवा बाल-बच्चोंकी परवाह किये बिना रात-दिन, सख्त कैदकी सजावाले कैदीकी भाँति जुटे रहे। उन्होंने सारे विलायतमें पुकार की और उनकी पुकारकी ज्वालासे वहाँ रहनेवाले अमीर-उमरावों, छोटे-बड़े सभीके हृदयमें लपटें उठीं और उनसे ट्रान्सवाल सरकारके मन्त्रियोंके हृदयमें भी चिनगारियाँ पैदा हुईं। परिणामस्वरूप भारतीय बन्दी मुक्त किये गये। भारतीयोंकी माँग स्वीकार हुई और ईश्वरने समाजकी लाज रखी।

भारतीय समाजने जैसी फतह पाई है, दुनियामें वैसी यह पहली ही फतह है। इस फतहको जितना कीमती माना जाये, उतना ही कम है। इस विजयपर प्रत्येक भारतीयको अभिमान होना चाहिए। सत्यका पल्ला पकड़े रहनेसे भगवान और भगवानके भक्त सदा आपकी मददके लिए खड़े ही रहेंगे। ईश्वरीय मददके इस प्रमाणकी याद अपनी सन्तानोंके अन्तःकरणमें हमेशाके लिए अंकित कर रखनेके विचारसे हरएक भारतीय 'संघ-भवन' के निर्माणकी आवश्यकताको महसूस करेगा। जिसकी नसोंमें भारतीय रक्त बहता होगा, वह हर तरहसे उस कार्यकी प्रगतिके लिए हार्दिक सहायता करेगा। हर गरीब और धनवान इस भवनको भारतीय कौमकी कीर्तिका स्तम्भ समझकर जान-मालसे मदद करे, यही वांछनीय है।

निश्चय हुआ कि यह भवन जोहानिसबर्गमें बनाया जाये; उसके लिए थोड़े ही दिनोंमें चन्दा इकट्ठा करना शुरू हो जायेगा। ट्रान्सवालमें रहनेवाले प्रत्येक भारतीयको १० शिलिंग अनिवार्य रूपसे देना है। ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षके दस्तखतसे उन्हें उसकी रसीद दी जायेगी। व्यापारी, जमीन-जायदादके मालिक और अच्छी स्थितिके अन्य भारतीय यथासामर्थ्य १० शिलिंगसे अधिक इस निधिमें दें। इस विषयमें यदि कोई भारतीयोंको उलटी पट्टी पढ़ायेगा या गलत हलचलें करेगा तो वह देश और सत्यका दुश्मन गिना जायेगा। प्रत्येक भारतीय बन्धुको मेरी विशेष सलाह है कि वह ऐसे लोगोंके जालमें न फँसे, भगवानको साक्षी रखकर और सत्यको जानकर तन, मन तथा धनसे मदद करनेके लिए तत्पर रहे। आशा है कि बड़े आदमी इस काममें कमसे-कम ५० से १०० पौंड तक मदद देंगे। जो कोई भाई पुराने कानूनके मुताबिक

१. पत्रका विषय देखते ऐसा लगता है कि इस पत्रका मसविदा गांधीजीने ही तैयार किया था।

पंजीयन करा चुके हों, वे भी हमसे बिलकुल अलग नहीं हैं। उन्हें इस मौकेपर पूरी-पूरी मदद करनी है।[1] हमें आशा है कि उनकी ओरसे भी खासी अच्छी रकम सहायताके रूपमें मिलेगी।

श्री रिच, जो इस सम्पूर्ण संघर्षके समय विलायतमें हमारे सच्चे योद्धा थे और जिन्होंने इसमें अपार परिश्रम किया, एक असाधारण व्यक्ति हैं और इस समय उनकी योग्यताकी कद्र करना बहुत आवश्यक है। संघने सारे दक्षिण आफ्रिकाकी ओरसे उन्हें केवल ३०० पौंड देनेका निर्णय किया है -- और यह रकम बहुत ही मामूली है -- क्योंकि इस समय दूसरे कामोंके कारण इससे अधिक रकम नहीं भेजी जा सकती। यह आवश्यक है कि यह रकम तुरन्त ही चली जाये; इसलिए दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक उपनिवेशके नेतागण पैसा इकट्ठा करके उसे समयपर ब्रिटिश भारतीय संघ, जोहानिसबर्गको भेजनेकी कृपा करें।

आपका, आदि,
ईसप इस्माइल मियाँ
अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय संघ

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–३–१९०८

५६. मेरे जेलके अनुभव[2] [१]

यद्यपि मेरा जेल-जीवन अल्पकालिक ही था तथापि अनेक मित्रोंने मुझसे वहाँके अपने अनुभव लिखनेका आग्रह किया है। वहाँ मेरे देखनेमें कुछ ऐसी बातें आईं जिन्हें यदि न्यूनाधिक स्थायी रूपमें रख दिया जाये तो वे उपयोगी हो सकती हैं। चूँकि मेरा दृढ़ विश्वास है कि जेल-यात्राका साधन स्वतन्त्रता, स्वाधीनता और सुधारके द्वार खोलनेमें प्रायः सहायक हो सकता है, इसलिए मैं जो अनुभव लिखने जा रहा हूँ वे शायद उनके लिए निरर्थक न ठहरें जो किसी सिद्धान्तके लिए कुछ असुविधाओं अथवा कमसे-कम, अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर कुछ प्रतिबन्ध लगनेकी परवाह नहीं करते।

शुक्रवार, १० जनवरी १९०८ के तीसरे पहर मुझे तथा सर्वश्री पी० के० नायडू, सी० एम० पिल्ले, कड़वा, ईस्टन, और फोर्तोएनको (पिछले दो सज्जन चीनी हैं) एशियाई कानून संशोधन अधिनियमके[3] अन्तर्गत पंजीयन प्रमाणपत्र न लेनेके अपराधमें दो-दो महीनेकी सादी कैदकी सजा हुई। जोहानिसबर्गमें सबसे पहले मेरा मामला पेश हुआ। सजा सुना दी जानेके बाद मुझे चन्द मिनटोंके लिए अदालतसे लगे हुए हवालाती कमरेमें रखा गया और बादमें मुझसे एक घोड़ागाड़ीमें बैठनेके लिए कहा गया। अदालतके बाहर जमा जबर्दस्त भीड़की निगाह बचानेकी गरजसे मुझे वहाँतक चुपचाप ले जाया गया था। मुझे शीघ्रतासे किलेमें ले गये। जब मुझे

१. देखिए "खूनी कानूनको स्वीकार करनेवालोंसे", पृष्ठ ६२।

२. यह गांधीजीके नामसे "**इंडियन ओपिनियन**के लिए विशेष" रूपसे दो किस्तोंमें प्रकाशित हुआ था। दूसरी किस्तके लिए देखिए पृष्ठ १३९।

३. एशियाई पंजीयन अधिनियम।

वहाँ ले जा रहे थे तब मेरे मनमें अनेक विचार आये। क्या मेरे साथ विशेष रूपसे शुद्ध राजनैतिक कैदी जैसा व्यवहार किया जायेगा? क्या मुझे मेरे साथियोंसे अलग रखा जायेगा? मुझे जोहानिसबर्ग जेलमें ले भी जायेंगे या नहीं? मेरे संकल्प-विकल्प शीघ्र ही निराधार सिद्ध हुए और उससे मुझे बड़ी राहत मिली। श्री नायडू और जिन अन्य सज्जनोंपर मेरे साथ मुकदमा चलाया गया, उनसे मुझे अलग रखनेकी बात नहीं थी। और न हम लोगोंके साथ किसी विशिष्ट व्यवहारकी बात थी। किन्तु साथ ही इसके बाद जो हुआ वह मेरे लिए अप्रत्याशित-सा था। हम सभी पहले आमद-घरमें ले जाये गये। जिस कमरेमें कैदियोंका नाप-तौल आदि होता है और जहाँ उनकी पोशाक बदली जाती है, उसका यही नाम है। वहाँ हमारा वजन लिया गया और हमारे सबके कपड़े उतरवाये गये और हमें सादी कैद पानेवाले कैदियोंके कपड़े दिये गये। इनमें पाजामा, कुरता, बनियान, टोपी तथा एक जोड़ी बन्द चप्पलें थीं। हम सबसे अँगुलियोंकी छापें ली गईं और करीब ४ बजे हम लोगोंको, शामके भोजनके लिए ८–८ औंस रोटी देकर, अपनी कोठरीमें भेज दिया गया।

एशियाइयोंका वर्गीकरण वतनियोंके साथ

हमारी कोठरी वतनियोंके कक्षमें आती थी। हम जिस कोठरीमें रखे गये उसपर 'काले कर्जदार कैदियोंके लिए' लिखा हुआ था। यही अनुभव था जिसके लिए शायद हममें से कोई भी तैयार नहीं था। हमने तो यह आशा कर रखी थी कि हमें वतनियोंसे कहीं अलग उपयुक्त स्थान दिया जायेगा। वैसे यह कदाचित् ठीक ही हुआ कि हमें वतनियोंके वर्गमें रखा गया। इससे अब हमें वतनी कैदियोंके जीवन, रहन-सहन और रीति-रिवाजके अध्ययनका अवसर मिलेगा। मुझे यह भी अनुभव हुआ कि भारतीय समाजने सत्याग्रह संघर्ष समयसे पहले प्रारम्भ नहीं किया। भारतीयोंको वतनियोंकी श्रेणीमें रखे जानेके पीछे भारतीयोंके प्रति तिरस्कारकी भावना थी। मुझे एशियाई अधिनियम हमारी अपमानजनक स्थितिकी चरम सीमा जान पड़ा। मुझे निस्सन्देह ऐसा लगा कि यदि हमें विशेष कक्ष दिये जाते तो यह मामूली इन्सानियतकी बात होती; और मेरा विचार है कि हर पक्षपातहीन पाठकको ऐसा ही लगेगा। दोष जेल अधिकारियोंका नहीं था। इसमें दोष तो उस कानूनका था जिसमें एशियाई कैदियोंके साथ विशेष व्यवहारकी व्यवस्था नहीं की गई थी। इसमें शक नहीं कि जेलके गवर्नरने हमें कानूनकी सीमामें रहते हुए आराम पहुँचानेकी भरसक कोशिश की। चीफ वॉर्डरने, जो हेड वॉर्डर भी था और जो हमारा पहला अफसर पड़ता था, गवर्नरकी भावनाको पूरी तरहसे अंगीकार तो किया, किन्तु वह हमें उस जगहके सिवा जहाँ सारे दिन, और अंशतः रातको भी, वतनी भयंकर शोर और चीख-पुकार मचाते रहते थे, कहीं और रखनेमें असमर्थ था। बहुतसे वतनी कैदी जानवरोंसे कुछ ही कम होते हैं। वे प्रायः दंगा-फसाद करते और अपनी कोठरियोंमें परस्पर झगड़ते रहते थे। गवर्नर उन थोड़े-से भारतीय कैदियोंको (सैकड़ों कैदियोंमें भारतीय कैदियोंकी संख्या मुश्किलसे आधा दर्जन थी, यह भारतीयोंके लिए कितनी प्रशंसाकी बात है) उस कक्षसे अलग नहीं रख पाया, जिसमें वतनी कैदी थे। और फिर भी यह बिलकुल साफ है कि अलग रखा जाना शारीरिक दृष्टिसे आवश्यक है। भारतीयों और अन्य एशियाइयोंके वतनियोंके साथ वर्गीकरणपर इतना आग्रह था कि हमारी बंडियोंपर, जो नई थीं और जिनपर सब छापें नहीं पड़ी थीं, 'एन' वर्ण छापा

गया, जिसका अभिप्राय 'नेटिव' अर्थात् वतनी था। उस अविचारपूर्ण वर्गीकरणका नतीजा यह हुआ कि भारतीयोंको आंशिक रूपमें भूखा रहना पड़ता था; और यह जब हम खूराकके प्रश्नपर आयेंगे तब अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

कोठरीका विवरण

हमें जिस कोठरीमें रखा गया था उसमें कानूनन १३ कैदी रखे जा सकते थे। इसलिए शुरूमें स्वभावतः स्थान काफी था। साढ़े पाँच बजे कोठरीमें बन्द कर दिया जाना एक अनोखी अनुभूति थी। कोठरी टीनकी चद्दरोंकी बनी हुई थी। वह काफी मजबूत थी, मगर भागनेपर उतारू कैदियोंके लिए कुछ भी नहीं थी। हवाके आने-जानेकी व्यवस्था भी शायद ठीक थी। किन्तु ऊपरकी आधी खुली दो छोटी-छोटी खिड़कियाँ और सामनेकी दीवारके सूराख आजकी जरूरतोंको पूरा नहीं करते थे, यद्यपि मुझे विश्वास दिलाया गया था कि ट्रान्सवालकी सभी जेलोंमें ये कोठरियाँ सबसे अधिक हवादार हैं। कोठरीमें बिजलीकी रोशनी थी। लेकिन उसमें एक ही बत्ती थी और वह आरामके साथ पढ़नेकी दृष्टिसे बेकार थी। रातको ८ बजे बत्ती बुझा दी जाती थी। और रातको बीच-बीचमें बेतरतीब जलाई-बुझाई जाती थी। रातके खर्चके लिए एक बाल्टी पानी और टीनका आबखोरा हमें मिलता था। शौच आदिके लिए एक किश्तीमें जन्तुनाशक घोलके साथ एक कोनेमें बाल्टी रख दी जाती थी। हमारे सोनेके लिए थे तीन इंची पाये लगे लकड़ीके तख्ते, दो कम्बल, एक निकम्मा तकिया और नारियलकी चटाई। हमारे माँगनेपर गवर्नरने आदेश दिया कि लिखनेके लिए एक मेज और दो बेंचें हमारी कोठरीमें रख दी जायें।

खूराक

कोठरी सवेरे ६ बजे खोल दी जाया करती थी और दिन नाश्तेके साथ शुरू होता था। पहले हफ्ते हमें १२ औंस मकईका दलिया (पुपु) दिया जाता था, जिसे हममें से अधिकांश लोग लगभग यों ही छोड़ दिया करते थे। भारतीय और चीनी मकईके दलियेके तनिक भी अभ्यस्त नहीं थे। विशेषतः जब उसमें न दूध होता था, न चीनी। पहले हफ्तेमें सादी कैदवाले वतनी कैदियोंके लिए नीचे लिखे अनुसार खूराक निश्चित थी: रोज नाश्तेमें १२ औंस मकईका दलिया; सोमवार, बुधवार और शुक्रवारको दोपहरमें १२ औंस सेम; मंगलवार, गुरुवार, शनिवार तथा रविवारको चौथाई गैलन (१ क्वार्ट) मकईका दलिया; और रातके भोजनमें नित्य ४ औंस कुटी हुई मकई और १ औंस चर्बी। किन्तु भारतीय कैदियोंको कुटी हुई मकईके स्थानपर ४ औंस चावल और १ औंस घी मिला करता था। यह खूराक संतोषजनक नहीं थी — इस कारण नहीं कि वह सुस्वाद नहीं थी, बल्कि इसलिए कि वह एशियाई शरीरके लिए बिलकुल उपयुक्त नहीं थी। चीनियोंकी परिस्थिति और भी खराब थी, क्योंकि उन्हें खूराक पूरे तौरपर वतनियोंके अनुसार दी जाती थी और इसलिए उसमें चावल नहीं होता था। शुरूमें हम लोगोंमें से ज्यादातर लोगोंको लगभग उपवास करना पड़ा। और जब हमने अपनी स्वाभाविक अरुचिको जीत लिया तब भी इस खूराकसे हममें से कुछको कब्ज और कुछको पेचिश हो गई। फिर भी हमने तय कर लिया था कि हम इसी खूराकको लेते रहेंगे और किसी मेहरबानी या सुविधाके लिए हाथ नहीं फैलायेंगे। हमारी भावना यह थी कि इस मामलेमें गवर्नरको कदम उठाना चाहिए और देखना चाहिए कि हमें अधिक

उपयुक्त खूराक दी जाये। इसलिए जब गवर्नरने हमसे पूछा कि क्या खूराकके बारेमें हमें कुछ कहना है तब हमने सिर्फ इतना ही कहा कि यद्यपि खूराक अनुपयुक्त है, किन्तु हम कोई मेहरबानी नहीं चाहते। दूसरे हफ्ते मकईके दलियेके साथ ८ औंस आलू अथवा सब्जी जोड़नेसे खूराकमें कुछ सुविधा हुई; और रविवारको १२ औंस मांस भी दिया गया। लेकिन हम लोगोंमें से अधिकतर व्यक्ति या तो शाकाहारी थे अथवा पशुके अपनी धार्मिक पद्धतिके अनुसार न काटे जानेके कारण उक्त मांसको ग्रहण नहीं कर सकते थे। इसलिए हमें १ पौंड सब्जी दी गई। किन्तु यह खूराक अधिक दिनों तक जारी नहीं रही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–३–१९०८

५७. आसमानी किताबसे

आसमानी अर्थात् "नीली" और आसमानीका मतलब "ऊपरकी" भी हुआ। हमने पिछले हफ्ते जिस किताबसे उद्धरण देनेकी बात कही थी, वह नीली[1] किताब कहलाती है, किन्तु वह ऊपरकी [दिव्य] किताब नहीं है। हमने उसे काली किताब कहा है और वह नारकीय जैसी जान पड़ती है। उस पुस्तकमें ८८ पृष्ठ हैं। उसका आकार फुलस्केप है। १९०७ के अप्रैलकी चार तारीखका पत्र सबसे पहले दिया गया है। उसमें चीनी राजदूतकी ओरसे लिखे गये पत्रका अधिकांश भाग हम छोड़ देंगे। भारतीय समाजकी ओरसे भेजे गये विभिन्न तार और दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिने जो पत्र आदि भेजे थे, उनको भी हम अधिकांशतः छोड़ देंगे। खूनी कानून, प्रवासी कानून आदि जो कानून उसमें आये हैं उन सबको भी हम छोड़ देंगे।

११ जुलाईको लॉर्ड सेल्बोर्न लॉर्ड एलगिनको तार करते हैं कि ट्रान्सवालकी संसद जो प्रवासी विधेयक पास करना चाहती है, उसकी मंजूरी वे तारसे भेज दें। तारमें उक्त विधेयकका सार दिया गया है। १६ जुलाईको लॉर्ड एलगिन जवाब देते हैं कि "विधेयकको तारसे मंजूरी नहीं दी जा सकती।" उन्होंने अनुभवसे यह देख लिया है कि इस प्रकारके कानूनोंको तारसे मंजूरी देनेपर [पीछे] कठिनाइयाँ आती हैं।

लॉर्ड सेल्बोर्नका पत्र

लॉर्ड सेल्बोर्न एशियाई कानूनके बारेमें लॉर्ड एलगिनको जवाब देते हुए तारीख २७ जुलाईको लिखते हैं:

> आप अँगुलियोंके बारेमें जो कुछ लिखते हैं, स्थानीय सरकार उसे मंजूर कर सकनेकी स्थितिमें नहीं है। श्री हेनरीकी पुस्तकमें बताया गया है कि भारतमें अँगुलियोंकी छाप बहुत ली जाती है। सर लेपेल ग्रिफिनने[2], जिन्हें भारतका अनुभव है, अँगुलियोंके

१. देखिए "नीली पुस्तिका", पृष्ठ १०१-०२ ।

२. सर लेपेल हेनरी ग्रिफिन (१८३८–१९०८); आंग्ल भारतीय प्रशासक; सामान्यतः भारतीयोंके प्रति सहानुभूतिशील; दक्षिण आफ्रिकामें ट्रान्सवाल तथा अन्यत्र उनके हितोंके प्रबल समर्थक; ट्रान्सवालके भारतीयोंके उस शिष्टमण्डलका नेतृत्व किया जो दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके कष्टोंको लेकर लॉर्ड एलगिन और मॉर्लेसे मिला था। देखिए खण्ड ६ ।

बारेमें आपत्ति उठाई है। इससे मुझे तो आश्चर्य होता है। मैं तो मानता हूँ कि जो एशियाई ट्रान्सवालमें कानूनके मुताबिक हैं, वे अँगुलियोंकी छाप देनेके खिलाफ आपत्ति नहीं करेंगे। किन्तु इतना निश्चित है कि उससे जाली अनुमतिपत्रोंके दलालोंका धन्धा नष्ट हो जायेगा अथवा जिन लोगोंने झूठे ढंगसे भारतीयोंको दाखिल करके बड़ी कमाई की है, उनका धन्धा भी नष्ट हो जायेगा। इसी तरह अँगुलियोंकी पद्धतिके चलनसे जाली ढंगसे दाखिल भारतीय यहाँ बस भी नहीं सकेंगे। यह धन्धा बहुत चला हुआ है, लोगोंने खूब पैसा कमाया है और सड़ाँधके आ घुसनेका डर है। ये बातें साथ नत्थी किये गये कागजोंसे मालूम हो जायेंगी। इतना याद रखना है कि ट्रान्सवालकी सरकारको जिस मामलेकी ठीक-ठीक जानकारी है, वही मामला साथकी टिप्पणीमें दिया गया है। मुझे विश्वास है कि ऐसे बहुत-से मामले हुए हैं जिनकी ट्रान्सवाल सरकारको खबर ही नहीं पड़ी। 'लाला' नामक भारतीयने जिस तरहके लालच अधीक्षक वरनॉन तथा कांस्टेबल हैरिसको दिये, अधिकारी वैसे लालचोंसे दूर रहें तो अच्छा। कुछ भारतीयोंने नये कानूनका विरोध किया है; उसका कारण यही है कि उस कानूनसे उनकी कमाईका धन्धा बन्द हो जायेगा और जिस ढिलाईसे वह धन्धा चल सकता है, वह ढिलाई खत्म हो जायेगी।

चैमनेकी टिप्पणी

श्री चैमने द्वारा भेजी गई रिपोर्टसे "नीली किताब" के सातसे भी अधिक पृष्ठ भरे हुए हैं। वह सारा हिस्सा जाली अनुमतिपत्र काममें लानेवालों, अनुमतिपत्रके बिना दाखिल होनेवालों, भ्रष्टाचार, अनुमतिपत्रका अँगूठा बदलवानेवालों, झूठी उमर बतानेवालों तथा अनुमतिपत्रसे सम्बन्धित ऐसे ही अन्य धोखाधड़ीके मामलोंके तथ्योंसे भरा हुआ है। इनमें से एक-न-एक अपराध करनेके लिए १९०६ की फरवरीसे १९०७ के जूनकी २४ तारीख तक प्रायः १०० व्यक्ति गिरफ्तार बताये गये हैं। इनमें से १० चीनियोंके मामले हैं और बाकीके सारे मामले भारतीय हैं। इनमेंसे कुछ मामलोंके तथ्य श्री चैमने इस तरह देते हैं:

> १९०७ के मई मासमें फतह मुहम्मद नामके भारतीयने एशियाई दफ्तरके श्री कोडीका पता-ठिकाना एक सिख नौकरकी मारफत प्राप्त किया। वह श्री कोडीके स्थानपर गया और डेलागोआ-बेसे दो लड़कोंको लानेके लिए अनुमतिपत्र देनेके बदले ५० पौंडकी रिश्वत देनेको कहा।
>
> १९०६ के मई मासमें शिवबख्श नामका एक व्यक्ति एशियाई दफ्तरमें आया और उसने अपने लड़के चंदमानको ट्रान्सवालसे बाहर निकालनेकी प्रार्थना की। इस बातमें तथ्य यह प्रकट हुआ कि चंदमान उसका लड़का नहीं था; बल्कि वह उसका लड़का कहकर जाली ढंगसे दाखिल किया गया था। बादमें चंदमान शिवबख्शका खून करनेपर उतारू हो गया और इसीलिए शिवबख्शने उपर्युक्त प्रार्थना की।
>
> १९०६ के अप्रैलमें दो भारतीयोंने डेलागोआ-बेसे अनुमतिपत्र माँगे। उनके मिलनेके पहले ही उक्त भारतीय जाली अनुमतिपत्रसे दाखिल हो गये। मुकदमेके दरमियान मालूम हुआ कि उन लोगोंने उक्त अनुमतिपत्र डेलागोआ-बेसे प्राप्त किये थे। एक व्यक्तिके पास एक नोट-बुकका पता चला। उसमें अनुमतिपत्र माँगनेवालोंकी जाँच

करते हुए जो बातें पूछी जाती हैं, उनकी जानकारी लिखी गई थी — जैसे अंग्रेजी, वतनी और डच भाषाके व्यापार सम्बन्धी शब्द, जोहानिसबर्गका संक्षिप्त वर्णन, भारतीय बस्तीकी जानकारी, पोस्ट ऑफिस, मजिस्ट्रेटकी अदालत, जोहानिसबर्गके रेलवे स्टेशन आदिका पता। उन लोगोंने बताया कि १३ अन्य व्यक्ति भी उसी प्रकार जोहानिसबर्गमें दाखिल हुए हैं।

एक चीनीने अनुमतिपत्रके लिए अरजी दी। उसकी जाँचके दौरानमें मालूम हुआ कि वह व्यक्ति तीन बार अलग-अलग नामोंसे ट्रान्सवालमें दाखिल हुआ था और बदचलनीके अपराधमें उसे तीन बार सजा दी गई थी और तीन बार ट्रान्सवालसे बाहर निकाला गया था।

१९०६के अगस्तमें अरबी ईसा नामक व्यक्तिने एक कैदीको छुड़वानेके लिए कोमाटीपूर्टमें रिश्वत देनेकी कोशिश की और इसलिए उसे ६ महीनेकी सख्त सजा दी गई।

१९०६ के अगस्तमें ही डाह्याभाई शंकरभाई नामक भारतीयने सारजेंट मैकडुगलसे कहा कि लोगोंको जाली दाखिला दिलवानेसे मैं आपको प्रति मास सौ-डेढ़ सौ पौंडकी आमदनी करा दे सकता हूँ।

डेलागोआ-बेके ब्रिटिश वाणिज्यदूतका पोर्तुगीज जासूस १९०६के दिसम्बरमें लिखता है कि 'लाला' नामके व्यक्तिने ट्रान्सवालमें दो लड़कोंको दाखिल करनेके बदले मुझे १७ पौंडकी रिश्वत देनी चाही थी।

१९०७ के जनवरी मासमें हे यी-यांग नामक चीनी अनुमतिपत्रपर से अँगूठेका निशान मिटाकर उसपर नई छाप लगानेके अपराधमें पकड़ा गया था। कोर्टमें उसने शपथपूर्वक कहा कि मैंने अनुमतिपत्र डेलागोआ-बेसे ४० पौंड देकर खरीदा है; और अन्य १८ चीनियोंने भी इसी तरह किया है।

मई १९०७ में मोरार लाला नामक एक व्यक्ति जिसने अनुमतिपत्रके लिए दरखास्त दी थी, गिरफ्तार किया गया। सख्तीके साथ जाँच किये जानेपर वह फूटकर रो पड़ा और उसने स्वीकार किया कि उसका नाम जिना लाला है; और मोरार लाला उसका भाई था जो देश लौटकर मर चुका था।

१९०७ के मार्चमें चार भारतीय ट्रान्सवालमें दाखिल हुए। उनके अँगूठोंकी छाप अनुमतिपत्रपर के अँगूठोंकी छापसे मिलती थी। जाँच करनेपर यह मालूम हुआ कि दफ्तरमें से उनकी नकलें चुरा ली गई थीं और उनपर लगी हुई अँगूठेकी छापको मिटाकर उन्होंने अपने अँगूठोंकी छाप लगा दी थी। अभी इन आदमियोंका पता नहीं चला है। पुलिस जाँच कर रही है।

और भी ऐसे मामलोंका जिक्र किया गया है जो इस प्रकारके जाली अनुमतिपत्रोंके बलपर दाखिल हुए और यह बादमें मालूम पड़ा; किन्तु पुलिस अभीतक जिनका पता नहीं लगा पाई है।

दुलभ और जीवन गोविन्द नामक भारतीयोंने १९०७ के मई महीनेमें बताया कि डेलागोआ-बेके एक भारतीय तथा एक गोरेके पाससे उन्होंने प्रति अनुमतिपत्र २२ पौंड देकर अनुमतिपत्र खरीदे हैं।

१९०७ के जून महीनेमें लालाबावाने बताया कि उसने अनुमतिपत्र ३० पौंडमें खरीदा।

जोहानिसबर्गमें १९०७ के जूनमें काका हीराने कहा कि उसने कानजी मोरारसे ३० पौंडमें अनुमतिपत्र खरीदा था।

किसी भारतीय द्वारा दूसरे भारतीयके नाम लिखा गया एक पत्र पुलिसके हाथ लगा। उसमें लिखा था: "सलाम। दीगर खबर यह है कि ८-१० भारतीय जोहानिसबर्गमें आये हुए हैं। यदि उनमें से हरएकको अनुमतिपत्र मिले तो मैं हर व्यक्तिपर १५ पौंड दूँगा। यदि तुमसे बने तो यह कमानेका अच्छा मौका है।"

१९०७ के मार्चमें शेख अहमदकी अरजी अनुमतिपत्रके लिए आई। जाँचके सिलसिलेमें अधीक्षक वरनॉनको पता चला कि एक भारतीयने किसी दूसरे भारतीयको तीन भारतीयोंके दाखिलेके जाली अनुमतिपत्र देनेके बदले ७५ पौंड देनेको कहा है।

१९०७ के मईमें एम० लाला नामक एक व्यक्ति अदालतमें पेश किया गया। उसने हर जाली अनुमतिपत्रवाले व्यक्तिपर अधीक्षक वरनॉनको ८ पौंड देनेके लिए कहा था। उसने यह भी कहा था कि अगर अधीक्षक वरनॉन यह धन्धा करें, तो उन्हें हर महीने ४०० पौंड और कॉस्टेबल हैरिसको हर महीने २०० पौंडकी आमदनी हो सकती है।[1]

जमीनका हक

१७ अगस्तको लॉर्ड एलगिनने ट्रान्सवालकी सरकारसे कहा कि श्री कॉक्सकी[2] सिफारिशके मुताबिक भारतीयोंको उनके धन्धेवाले स्थानमें जमीन खरीदनेका हक दिया जाना चाहिए। ट्रान्सवालकी सरकारने इसके उत्तरमें स्पष्ट 'ना' लिख दिया।

प्रवासी कानूनपर डी' विलियर्सकी टीका

श्री डी' विलियर्स, जो ट्रान्सवालके अटर्नी जनरल हैं, निम्नानुसार टीका करते हैं:[3]

आजतक लोगोंके आवागमनपर प्रतिबन्ध लगानेके लिए अनुमतिपत्रका कानून था। उसपर हाई कमिश्नरकी मारफत अमल किया जाता था। ट्रान्सवालको स्वराज्य मिल जानेके बाद हाई कमिश्नरने उस कानूनको लागू करनेसे इनकार कर दिया। इसलिए नेटाल और केपकी तरहका प्रवासी कानून बनाना आवश्यक जान पड़ा। 'निषिद्ध प्रवासी' शब्दोंके अन्तर्गत वे भारतीय भी आ जाते हैं जिनपर एशियाई कानून संशोधन अधिनियम लागू होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यूरोपकी किसी भाषाका ज्ञान होनेपर भी उनपर प्रतिबन्ध है। इसी तरह जो एशियाई फिलहाल कानूनको न माननेके इरादेसे बाहर गये हैं वे भी इस प्रतिबन्धमें आ जाते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि जो एशियाई

१. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ १२-३।

२. हैरॉल्ड कॉक्स (१८५९-१९३६); अलीगढ़के मोहम्डेन एंग्लो-ओरिएण्टल कालिजमें गणितशास्त्रके प्राध्यापक, १८८५-७; अर्थशास्त्री और पत्रकार; संसद-सदस्य, १९०६-९। खण्ड ६ भी देखिए।

३. गुजरातीसे किया गया डी' विलियर्सकी टीकाका यह अनुवाद ७-३-१९०८के **इंडियन ओपिनियन**में प्रकाशित अंग्रेजी पाठसे मिला लिया गया है।

नये कानूनको मान चुके हैं और जो उपनिवेशमें हैं केवल वे ही ट्रान्सवालमें रह सकते हैं। इसके सिवा खण्ड ६ के मुताबिक उन भारतीयोंको देशसे निकालनेका हक दे दिया गया है जो कानूनको माननेसे इनकार करते हैं। ऐसा करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई है, क्योंकि एशियाई आबादीने कानून न माननेकी सार्वजनिक रूपसे घोषणा की है। इसलिए सरकारका इरादा यह है कि अन्ततोगत्वा यदि अन्य लोगोंको नहीं, तो फसाद करनेवाले नेताओंको देशके बाहर कर दिया जाये। सरकार उन्हें कैदमें रखनेके खर्च और कैदमें रखनेके कारण उत्पन्न अड़चनोंसे बचना चाहती है। सरकार इस अधिकारको बहुत सोच-विचार कर काममें लायेगी।

लॉर्ड एलगिनका श्री मॉर्लेको पत्र

जगह-जगह दिखाई देता है कि लॉर्ड एलगिनने भारतीयोंको कुछ नहीं गिना और उन्हें तेजहीन, कायर और गुलामीके योग्य माना है। दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिका पत्र तथा भारतीयोंकी अरजी श्री मॉर्लेको भेजते हुए लॉर्ड एलगिन इस तरह लिखते हैं :[1]

> लॉर्ड एलगिन प्रवासी कानूनके खण्ड २ (४) और खण्ड ६ (ग) के विषयमें श्री मॉर्लेके विचार जानना चाहते हैं। खण्ड २ (४) का हेतु भारतीय अथवा अन्य नये एशियाइयोंको ट्रान्सवालमें दाखिल होनेसे रोकना है। श्री मॉर्ले जानते हैं कि बड़ी सरकारने हमेशा उन एशियाइयोंके अधिकारोंकी रक्षा करनेकी व्यवस्था की है जो उपनिवेशमें रहते हैं; और उसने अन्य उपनिवेशोंमें जिस प्रकारका प्रवासी कानून बना है वैसा कानून बनानेसे इनकार नहीं किया। श्री लिटिलटनने जो कुछ पहले लिखा है लॉर्ड एलगिन श्री मॉर्लेका ध्यान उसकी ओर आकर्षित करते हैं; और कहते हैं कि वे इसलिए उक्त खण्ड [२(४)] के विषयमें कोई आपत्ति पेश नहीं करना चाहते।[2] खण्ड ६ (ग) का विचार एशियाई कानूनके सम्बन्धमें करना आवश्यक है। उस कानूनकी रूसे जो एशियाई पंजीयन न करायें उन्हें उपनिवेश छोड़नेका हुक्म दिया जा सकता है और यदि कोई उस हुक्मकी अवज्ञा करे, तो ऐसे एशियाईको कारावास दिया जा सकता है। इस खण्डका हेतु इस प्रकारके एशियाईको देशके बाहर करनेका अधिकार प्राप्त करना है। यद्यपि उपनिवेश-सचिवको लगता है कि ऐसे अधिकारका खुलकर उपयोग करना ठीक नहीं है, तो भी बड़ी सरकारने जिस एशियाई कानूनको स्वीकार किया है और भारतीय समाज जिसके बहुत विरोधमें दिखाई पड़ता है, उस कानूनपर अमल करनेके लिए उपनिवेशको जैसी सत्ता चाहिए वैसी सत्ता देनेके बारेमें बड़ी सरकार 'ना' नहीं कह सकती। इसलिए श्री मॉर्लेको इसपर जो कुछ कहना है, उसे समझ लेनेके बाद लॉर्ड एलगिनका इरादा देश-निकाला देनेकी शर्तको भी बरकरार रखनेका है। खण्ड ६ (ख) में भी, जिसका सम्बन्ध भारतीय समाजके

१. उद्धृत पत्रका गुजरातीसे किया गया हिन्दी अनुवाद ७-३-१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में प्रकाशित मूल अंग्रेजी पत्रसे मिला लिया गया है।

२. मूल अंग्रेजीमें कहा गया है, "चूँकि उपनिवेशीय मनोभावनाकी दशाको देखते हुए यह स्वयं ब्रिटिश भारतीयोंके हितमें है कि भविष्यमें प्रवेशपर प्रतिबन्ध लगाया जाये"।

साथ नहीं है, सुधार करना लॉर्ड एलगिनको आवश्यक प्रतीत होता है; और इसलिए विदेश कार्यालयके साथ वे लिखा-पढ़ी कर रहे हैं।

इसका अर्थ

लॉर्ड एलगिन साहबका पत्र अत्यन्त निराशाजनक है। उनके विचारके अनुसार तो इसका अर्थ यह हुआ कि ट्रान्सवालका कानून केप तथा नेटालके कानूनकी अपेक्षा कहीं अधिक कठोर है। केप और नेटालके कानूनके अनुसार सामान्य अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीय दाखिल हो सकता है, किन्तु ट्रान्सवालके कानूनके मुताबिक वैसे भारतीयपर भी परोक्ष रूपसे प्रतिबन्ध लग जाता है। तिसपर भी एलगिन साहब कहते हैं कि कानूनमें कोई नई बात नहीं है। फिर खण्ड ६ (ग)में विशेष रूपसे भारतीयोंको देशसे बाहर करनेकी बात है। उसे भी एलगिन साहब पसन्द करते हुए जान पड़ते हैं। इसका अर्थ यह है कि यदि भारतीय किसी कानूनका विरोध करें और यदि उस कानूनको स्वीकार करानेके लिए फाँसी तक की सजा देनेका अधिकार आवश्यक जान पड़े तो लॉर्ड एलगिन उसे मंजूर कर लेंगे। जहाँ बाहरी राज्योंके बीचमें आनेका प्रश्न है वहाँ एलगिन साहब उस खण्डमें तो संशोधन करनेकी बात कहते हैं और उस प्रकारका संशोधन करनेका वचन भी वे जनरल स्मट्ससे ले चुके हैं। यदि भारतीय समाज ईश्वर और अपने बलपर लड़े बिना रह गया होता, तो लॉर्ड एलगिनका पत्र पढ़नेके बाद कौन ऐसा कह सकता है कि उसकी धज्जियाँ नहीं उड़ गई होतीं। जरा देखिए कि विदेशी प्रजाके विषयमें उक्त महोदयको कितनी चिन्ता है। हम लोगोंमें कहावत है कि "भय बिन होय न प्रीत"। मैं नहीं मानता कि यह कहावत ज्यादातर सही होती है, किन्तु लॉर्ड एलगिनके विषयमें तो यह शब्दशः सही है।

लॉर्ड एलगिनका विदेश कार्यालयके नाम पत्र

> लॉर्ड एलगिन खण्ड ६ (ब) के विषयमें सर एडवर्ड ग्रेका विचार जानना चाहते हैं। यह उपखण्ड उस मनुष्यको देश-निकालेका अधिकार देता है जिसे स्थानीय सरकार विद्रोही मान ले। इस उपखण्डसे ब्रिटिश प्रजा और अन्य प्रजाके ऊपर बहुत जोखिमसे भरा हुआ अधिकार मिल जाता है। यह ठीक है कि ब्रिटिश बेचुआना लैंड और दूसरे स्थानोंमें, जहाँ यह कानून बड़ी विषम परिस्थितिमें और लड़ाईके अन्तमें बनाया गया था, ऐसी सत्ता दी गई है। किन्तु स्वराज्यका उपभोग करनेवाले उपनिवेशमें इस प्रकारके कानूनोंको लागू करना देखनेमें नहीं आता। इस प्रकारके कानूनके विरुद्ध अन्तःपरिषद (प्रिवी कौंसिल)ने भी बहुत आलोचना की है। इसके सिवा शान्ति-रक्षा अध्यादेशमें जबरदस्ती सीमासे बाहर करनेकी सत्ता थी ही नहीं। फिर १८९६में भूतपूर्व अध्यक्ष क्रूगरकी सरकारने विदेशियोंके देश-निकालेका जो कानून बनाया था, उसे बड़ी सरकारने रद कर दिया। इसलिए लॉर्ड एलगिनने सोचा है कि प्रवासी कानून पास करानेके साथ यह शर्त भी रखी जाये कि उस खण्डमें परिवर्तन हो।

टीका

इस पत्र और श्री मॉर्लेके नाम लिखे गये पत्रमें कितना बड़ा अन्तर है! यदि लॉर्ड एलगिन भारतीय समाजसे भयभीत हैं, तो ऊपर जो दलीलें दी गई हैं, भारतीयोंके विषयमें उनसे अधिक जोरदार दलीलें दी जा सकती थीं। उदाहरणके लिए, १८९६में श्री क्रूगरके

कानूनके विषयमें सरकारने जो कुछ लिखा था, उससे भी अधिक सख्त बातें भारतीयोंके बारेमें लिखी गईं। तब फिर भारतीयोंके विषयमें राष्ट्रपति क्रूगरके समयमें जो कुछ नहीं हो सका, वह आज कैसे हो सकता है? इसका जवाब ऊपर दिया जा चुका है। भारतीय समाज पंखविहीन है, इसलिए लॉर्ड एलगिनको उसकी क्या परवाह!

श्री मॉर्लेका जवाब[1]

श्री मॉर्लेको अफसोस है कि वे इस कानूनको दूसरे उपनिवेशोंके कानूनों जैसा नहीं मान सकते। दूसरे उपनिवेशोंने शिक्षणके विषयमें जो शर्त रखी है, उस प्रकारकी शर्त रखनेमें आपत्ति नहीं है। किन्तु खण्ड २ (४) में जो शर्त रखी गई है, वैसी किसी भी अन्य कानूनमें नहीं देखी जातीं। इस धाराके मुताबिक जो कानून विशेष परिस्थितियोंकी दृष्टिसे बनाये गये हैं, स्थायी हो जाते हैं। इस तरहकी धाराके कारण यूरोपमें शिक्षित भारतीय भी दाखिल नहीं हो सकते। इसके सिवा जो लोग १९०२ के बाद ट्रान्सवाल निवासीकी तरह अधिकार प्राप्त कर चुके हैं उनपर भी प्रतिबन्ध लग जाता है। किन्तु वह[2] इस बातको समझती है कि बड़ी सरकारको भारतीय हितोंकी परवाह किये बिना निर्णय लेना पड़ेगा। यदि १९०७ के कानूनसे १९०३ के पहलेके हकोंकी रक्षा हो सकती हो, तो प्रवासी कानूनके विषयमें कहने योग्य अधिक कुछ नहीं बचता। पहलेके इतिहासको देखते हुए श्री मॉर्ले खण्ड २ और ६ के उपखण्डोंको अंगीकार करते हैं। चूँकि १९०७ के कानूनको स्वीकृति मिल गई है, इसलिए उस कानूनको अमलमें लानेके लिए जो भी अतिरिक्त सत्ता ट्रान्सवालको मिलनी उचित है वह उसे दी जानी चाहिए। किन्तु खण्ड ४[3] के मुताबिक तो चाहे जैसा भारतीय क्यों न हो, उसे हमेशाके लिए बन्धनमें रहना पड़ेगा, अर्थात् अन्य उपनिवेशोंके मुकाबलेमें यह कानून अधिक सख्त हुआ। १९०७ के कानूनके मुताबिक अस्थायी अनुमतिपत्र दिये जा सकते हैं। यह ठीक है। श्री मॉर्ले आशा भी करते हैं कि उस सत्ताका उपयोग जाने-पहचाने व्यक्तियोंको दाखिल होने देनेमें किया जायेगा। किन्तु इस विषयमें ट्रान्सवालकी सरकारसे आश्वासन लेना आवश्यक है। इस प्रकारके कानूनका असर भारतमें क्या होगा, सो लॉर्ड एलगिनको बतलाना आवश्यक नहीं है। जब १९०७ का कानून मंजूर किया गया, तब श्री मॉर्लेने यह नहीं सोचा था कि उक्त कानून हमेशा कायम रहेगा। इसलिए श्री मॉर्लेको आशा है कि उपखण्ड ४ के विषयमें लॉर्ड एलगिन ट्रान्सवालकी सरकारको अच्छी तरह समझा देंगे।

टीका

इसके आधारपर लॉर्ड एलगिनने जनरल स्मट्सको लिखा कि यदि राजा-उमरावों आदिको अनुमतिपत्र दिये जायें और विदेशियोंको देश-निकाला देनेके खण्डमें परिवर्तन किया जाये, तो

१. यह लॉर्ड एलगिनके ऊपर दिये गये पत्रका उत्तर है।

२. भारत सरकार, जिसके इस प्रश्नसे सम्बन्धित मत लॉर्ड एलगिनको लिखे गये पत्रमें सूचनार्थ उद्धृत किये गये हैं।

३. इसके स्थानपर "२ (४)" होना चाहिए था।

कानून मंजूर किया जायेगा। ट्रान्सवालकी सरकारने इसके मुताबिक करना मंजूर किया और लॉर्ड एलगिनने कानूनपर अपनी मुहर लगा दी।

उपर्युक्त पुस्तकमें रामसुन्दरके मुकदमेका पूरा विवरण दिया गया है। भूमिके अधिकारके विषयमें लॉर्ड एलगिनने ट्रान्सवालकी सरकारसे स्पष्ट कहा है कि भूमिका अधिकार नहीं मिल सकता। इसके बावजूद हम भी स्पष्ट रूपसे इतना ही कह सकते हैं कि यदि भारतीय कौम स्वार्थान्ध नहीं बनी और यदि उसने योग्य आचरण किया, तो थोड़े ही वर्षोंमें उसे जमीनका अधिकार भी मिल जायेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–३–१९०८

५८. जीत किसमें है?

सभी कह सकते हैं और समझ सकते हैं कि कानून रद करनेका वचन दिया गया और स्वेच्छया पंजीयन स्वीकार किया गया, इसमें तो हमारी जीत है; किन्तु इस लेखमें हम कुछ दूसरी तरह विचार करना चाहते हैं। विचार करनेपर ऐसा जान पड़ता है कि संसारमें जनसाधारण जिसे जीत मान लेते हैं वह जीत नहीं, वरन् बहुत अंशमें जीतकी निशानी जैसी होती है। कई बार जीतकी निशानी होनेके बजाय वह हारकी निशानी भी होती है। हमें ऐसा कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं लगती। यदि कोई आदमी चोरी करनेके इरादेसे निकले, बड़ी कोशिश करे और वैसा करनेमें सफल हो जाये, तो उसके हिसाबसे वह जीत गिनी जायेगी। विचार करें, तो यह विजयके रूपमें उसकी पराजय हुई है; और यदि वह निष्फल होता तो उसकी जीत कहलाती। हमने यह मोटा उदाहरण लिया; क्योंकि यह शायद तुरन्त समझमें आ सकता है। मनुष्यकी जिन्दगीमें ऐसे सैकड़ों अवसर आते हैं जिनमें ठीक क्या है और गलत क्या है, इसे वह स्वयं आसानीसे नहीं समझ पाता। उस समय इच्छित परिणाम प्राप्त होनेपर हार मानें कि जीत, यह निश्चित करना मुश्किल जान पड़ता है। इसका अर्थ यह निकला कि वास्तवमें हार-जीतका सम्बन्ध परिणामसे नहीं है। फिर अमुक परिणाम प्राप्त कर लेना हमारे हाथमें नहीं है। यदि कोई मनुष्य ऐसा दम्भ करता है कि उसने अमुक-अमुक बात की, तो वह चक्रके ऊपर बैठी हुई मक्खीके समान झूठा दम्भ रखकर यह समझता है कि यह चक्र तो उसने ही घुमाया है। इसलिए मनुष्यका कर्त्तव्य तो यह हुआ कि समयपर प्राप्त स्थिति और देशमें उसके लिए जितना करने योग्य हो, उतना वह तन-मन-धनसे कर डाले। इसका अर्थ उसके लेखे जीत पाना ही है। बीमारको बचा लेना वैद्यका काम नहीं है, क्योंकि वह बात उसके हाथमें नहीं है, किन्तु उसको बचानेके लिए अपना सम्पूर्ण कौशल और पूरी भावना लगा देना उसका कर्त्तव्य है। यदि वह उतना कर ले, तो वह जीता माना जाता है। उसके बाद बीमार बचता है या नहीं, इससे उसकी जीतमें न कोई कमी आती है, न वृद्धि होती है।

यहाँतक समझ लेनेके बाद अब हम ट्रान्सवालके संघर्षका विचार करेंगे। हम बिना हिचकिचाहटके कह सकते हैं कि यदि नया कानून थोड़ी-सी कोशिशसे ही रद हो जाता, तो हम

उससे सन्तोष मान सकते थे; किन्तु तब उसमें हार-जीतकी कोई बात न होती। यदि वह कानून सहज ही रद हो गया होता, तो स्पष्ट है कि उससे हमारे नामका डंका न पिटता। आज भारतीयोंकी जीतकी गूँज सारी दुनियामें जैसी गूँज रही है, वैसी न गूँजती। वस्तुस्थिति आज यह बताती है कि भारतीयोंकी जीत कानून खत्म किये जानेकी आशामें नहीं, किन्तु उसे खत्म करनेके लिए जो-कुछ किया गया, उसमें है। यदि कानून खत्म न होता, तो भी भारतीयोंकी हिम्मतके गीत घर-घर गाये जाते। हम ऐसे बहुत-से दृष्टान्तोंका स्मरण कर सकते हैं। इस समय मुझे एक प्रख्यात दृष्टान्त याद आ रहा है। स्पार्टाके मुट्ठी-भर लोग थर्मापोलीका रास्ता रोककर खड़े हो गये और जबतक उनमें से एक भी आदमी जीवित रहा, तबतक उन्होंने शत्रुका सामना किया।[1] अन्तमें यह रास्ता शत्रुओंके कब्जेमें चला गया। किन्तु दुनिया आज भी जानती है कि जीत तो स्पार्टाके बहादुरोंकी ही हुई और आजतक यूरोपमें कोई भी मनुष्य जब जबर्दस्त बहादुरी करता है, तब कहा जाता है कि उसने स्पार्टनों-जैसी बहादुरी दिखाई। इसलिए, जितना करने योग्य था उतना भारतीयोंने किया, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता; किन्तु भारतीय कौमने बहुत किया, बड़ा प्रयास किया और उस हदतक परिणाम कुछ भी हुआ हो, हम उसे उसकी जीत ही मानते हैं। यह समझ लेना चाहिए कि इस सिद्धान्तके अनुसार भारतीयोंको सदा ही लड़ते रहना है; क्योंकि अभी बहुत-से उद्देश्य प्राप्त करने हैं। जमीनें लेनी हैं, गाड़ियोंमें स्वतन्त्रतापूर्वक यात्रा करनी है। यह सब करनेके लिए हमने आजतक जैसी कोशिश की, वैसी हमेशा करनी पड़ेगी, इसलिए यह सहज ही समझा जा सकता है कि कदम-कदमपर हमारी जीत ही है। कदम-कदमपर जीतके लिए हमें कदम-कदमपर जो करना है सो करते जाना चाहिए। जो मनुष्य जीतको इस तरह देखता है, वह कभी फूल न जायेगा। वह कभी भूल नहीं कर सकता और वह प्राप्य फलकी परवाह नहीं करता; क्योंकि उसका बोझ वह व्यक्ति अपने ऊपर नहीं उठाता। बोझ उठानेवाला तो केवल इस जगतका सिरजनहार ही है, बाकी 'मैं कर्ता हूँ, मैं कर्ता हूँ'[2] सोचना तो अज्ञान है; यह तो "शकटका भार ज्यों श्वान खींचे"[3] मानने जैसी बात हुई।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७-३-१९०८

१. 'फेडेरेशन हाल' के निर्माणका सुझाव (पृष्ठ ११३) रखनेके कुछ समय बाद ही गांधीजी द्वारा थर्मापोलीका यह दृष्टान्त देना अर्थपूर्ण है। स्पार्टन शौर्यके स्मारकपर लियोनिडासकी यह प्रसिद्ध आज्ञा अंकित है: "नाश्ता यहाँ; भोजन हेडेस (यमलोक) में।"

२-३. "हूँ करूँ हूँ करूँ-एज अज्ञानता, शकटनो भार ज्येम श्वान ताणे" (**आश्रम भजनावली**); अर्थात्, जैसे गाड़ीके नीचे चलता हुआ कुत्ता यह मानता है कि गाड़ीको मैं ही खींच रहा हूँ।

५९. 'पैसिव रेजिस्टेन्स' इत्यादि शब्दोंका गुजराती अर्थ

हमें निराश होकर कहना पड़ता है कि हमने कतिपय अंग्रेजी शब्दोंके समानार्थक गुजराती शब्दोंके विषयमें जो पुरस्कार घोषित किया था,[1] उसके मुताबिक लोगोंने जो शब्द भेजे हैं, उनमें ज्यादातर कामके नहीं हैं। केवल चार ही व्यक्तियोंने ऐसे शब्द भेजे हैं। इससे ऐसा नहीं जान पड़ता कि हमारा पाठक-वर्ग 'इंडियन-ओपिनियन' की भाषामें अथवा गुजराती भाषामें बहुत दिलचस्पी लेता है। एक सज्जन लिखते हैं कि 'पैसिव रेजिस्टेन्स' का शब्दार्थ 'प्रत्युपाय' हो सकता है। उसपर टिप्पणी करते हुए लेखक कहता है कि जो होता है उसे होने देना और उसका यथासम्भव इलाज करना प्रत्युपाय है। यह शब्द और यह टिप्पणी दोनों ही बेकाम हैं। 'प्रत्युपाय' अर्थात् अमुक वस्तुके विरुद्ध उपाय। तब अच्छेके मुकाबलेमें बुरा उपाय भी 'प्रत्युपाय' हुआ और शरीरबल द्वारा किया गया उपाय भी 'प्रत्युपाय' हुआ। 'पैसिव रेजिस्टेन्स' का अर्थ है, बुराईको दूर करनेके लिए आन्तरिक उपाय काममें लाना और शरीर-बलका उपयोग न करना। फिर जो टिप्पणी उन्होंने दी है, उससे नासमझी प्रकट होती है। 'पैसिव रेजिस्टर' जो कुछ होता है उसे कभी नहीं होने देगा; अर्थात् जो-कुछ भी बुरा होगा उसके मुकाबलेमें वह हमेशा अपने मनोबलका उपयोग करता रहेगा। दूसरा शब्द 'कष्टाधीन प्रतिवर्तन' प्राप्त हुआ है। इसमें 'प्रति' शब्द फाजिल है और विरोधी है। इससे भाषाका अज्ञान प्रकट होता है। 'कष्टाधीन वर्तन' में 'पैसिव रेजिस्टेन्स'का कुछ आभास मिलता है, किन्तु यह शब्द बड़ा है और पूरा अर्थ प्रकट नहीं करता। तीसरा शब्द 'दृढ़ प्रतिपक्ष' भेजा है। जिस तरह 'प्रत्युपाय' उपयुक्त नहीं हो सकता, उसी तरह यह शब्द भी वह अर्थ प्रकट करनेमें समर्थ नहीं हो सकता जिस अर्थमें हम पैसिव रेजिस्टेन्सका उपयोग करते हैं। इन्हीं सज्जनने 'सिविल डिस-ओबिडिएन्स' के लिए भी शब्द भेजा है। यह उतावलीमें भेजा गया जान पड़ता है। उन्होंने 'सत्यानादर' शब्द दिया है। यह तो विरोधी अर्थ हुआ। इसका अर्थ हुआ सत्यका अनादर अर्थात् सत्यके मुकाबलेमें खड़ा होना। 'सिविल डिसओबिडिएन्स' तो असत्यका अनादर है और जब वह अनादर सत्य-रीतिसे हो तो 'सिविल' कहा जायगा। उसमें भी 'पैसिव' का अर्थ समाया हुआ है। इसलिए फिलहाल तो एक ही शब्दका प्रयोग किया जा सकता है और वह है 'सत्याग्रह'। यह शब्द जिन्होंने भेजा है वे[2] अपना नाम प्रकट नहीं करना चाहते। उन्हें इनामकी भी इच्छा नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे पुरस्कारका अनादर करना चाहते हैं, किन्तु किसी रूपमें इस पत्रके साथ सम्बन्धित होनेके कारण वे इस पुरस्कारका लाभ नहीं उठाना चाहते।

हमने ऊपर जो आलोचना की, वह हेतुपूर्वक की है। जिन्होंने पुरस्कारके लिए ये शब्द भेजे हैं, योग्य यह था कि सम्पूर्ण विचार करके वे शब्दोंका उचित अर्थ समझते। 'पैसिव रेजिस्टेन्स' का अर्थ समझना भी आवश्यक था। जल्दी-जल्दी करके चाहे जो शब्द दे डालनेसे अपनी भाषाका अपमान होता है और अपना अनादर होता है। इसलिए ऐसा करना, और

१. देखिए, खण्ड ७, पृष्ठ ४५१

२. यह व्यक्ति श्री मगनलाल गांधी थे। उन्होंने 'सदाग्रह' शब्द सुझाया था, जिसे बदल कर गांधीजीने 'सत्याग्रह' कर दिया था। देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय १२।

वह भी 'पैसिव रेजिस्टेन्स' जैसे शब्दके अर्थ देनेके सिलसिलेमें, एक तरहसे 'सत्याग्रह' के संघर्षका ही खण्डन हुआ। यह किस प्रकार सहन किया जा सकता है? हमें आशा है कि इसके बाद ये तीनों प्रतिस्पर्धी और दूसरे पाठक विशेष यत्न करके साहसके अन्य काम करके प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे और उन कामोंकी भी प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–३–१९०८

६०. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

पंजीयन

अनुमतिपत्र कार्यालयको घड़ी-भरकी फुरसत नहीं है और सब बिना आनाकानीके दसों अँगुलियोंकी छाप दे रहे हैं। यह संख्या चार हजारके ऊपर पहुँच गई है। इसलिए अब आशा की जा सकती है कि थोड़े ही समयमें सब पूरा हो जायेगा।

पठान अब पंजीयन कराने लगे हैं। आज कर सकते हैं तो पहले दिनसे ही ऐसा कर सकते थे। फिर भी उन्होंने अब भी समझदारीसे काम लिया है, इसलिए उनका अभिनन्दन करना चाहिए।

विलायतसे कुछ पत्र

पूरे समझौतेके लन्दनमें प्रकाशित होनेके बाद दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिके नाम बड़ी संख्यामें पत्र और तार आये हैं। इनमें से कुछ श्री रिचने हमें भेजे हैं। उनके उद्धरण देने योग्य हैं; वे यहाँ दिये जा रहे हैं।

सर चार्ल्स ब्रूस[1] लिखते हैं कि जो तार आये हैं उनसे मुझे प्रसन्नता हुई है। भारतीय समाजने जो साहस और संयम दिखाया वह प्रशंसाके योग्य है। इस कालके इतिहासमें ऐसे बिरले ही उदाहरण मिलते हैं।

सर लेपेल ग्रिफिन लिखते हैं कि पंजीयनके विषयमें जो समझौता हुआ है, उसके लिए मैं श्री रिच और अन्य उन सब लोगोंको बधाई देता हूँ जो इसमें सहायक हुए। लॉर्ड सभामें जो चर्चा हुई उससे हमें यह समझ लेना चाहिए कि भारतीय समाजको समानाधिकार मिलनेका प्रश्न अभी जैसाका-तैसा बना हुआ है। जैसे-जैसे समय बीत रहा है, वैसे-वैसे उपनिवेशके लोग यह समझते जा रहे हैं कि भारतीय समाजको अधिकार दिये बिना छुटकारा नहीं है। इसी बीच पूर्व आफ्रिका, युगांडा, बोर्नियो, न्यूगिनी, गियाना, जमैका आदि स्थानोंमें उनका स्वागत किया जा रहा है और वे वहाँ जा सकते हैं।

डॉ० थॉर्नटन[2], जो किसी समय पंजाबमें न्यायाधीश थे, लिखते हैं कि ऐसा सुन्दर परिणाम निकलनेका मुख्य कारण यह है कि भारतीय समाजने दृढ़ता और नम्रतासे अनेक बाधाएँ

१. सर चार्ल्स ब्रूस (१८३६–१९२०); मॉरिशसके उपनिवेश-सचिव (१८८२), बादमें गवर्नर (१८९७–१९०४); ब्रिटिश गियानाके लेफ्टिनेंट गवर्नर भी (१८८५–९३); साम्राज्य तथा साम्राज्यीय नीतिसे सम्बन्धित अनेक पुस्तकोंके लेखक।

२. टॉमस हेनरी थॉर्नटन, सी० एस० आई०, (१८३२–१९१३); पंजाब सरकारके प्रधान सचिव (१८६४-७६); भारत सरकारके कार्यवाहक विदेश-सचिव (१८७६–७); भारत सम्बन्धी कई पुस्तकोंके लेखक; देखिए खण्ड ६।

रहते हुए भी काम किया और 'इंडियन ओपिनियन'ने प्रभावकारी किन्तु संयत ढंगसे लेख लिखे। मैं उन्हें बहुत बधाई देता हूँ।

सर रोपर लेथब्रिजने,[1] जो कलकत्ताके प्रख्यात समाचारपत्र 'इंग्लिशमैन' के मालिक हैं, निम्नलिखित तार किया: ''बहुत बधाइयाँ देता हूँ, क्योंकि समझौता भारतीय कौमका सम्मान अक्षुण्ण रखकर हुआ है।''

लन्दन भारतीय समितिके सेक्रेटरी श्री एम० शाकिर अली लिखते हैं:[2]

> आप और आपके साथियोंने ट्रान्सवालमें जो काम किया है उसके लिए लन्दनकी भारतीय समिति आपका बहुत अभिनन्दन करती है। देशी भाइयोंके लिए जो अमूल्य काम आप करते आये हैं और ट्रान्सवालमें कानूनके विरुद्ध सत्याग्रहकी आपने जो लड़ाई लड़ी है, उसे भारतीय जनता कभी नहीं भूल सकती। आप और आपके साथियोंने जो अद्भुत साहस दिखाया है, जो दुःख सहन किया है और जेल जाकर जो उत्तम आदर्श स्थापित किया है, वह बहुत बखान करने योग्य है। आपने यह बता दिया है कि आपका संघर्ष सत्यपर आधारित है और बड़ी सरकारके सामने यह सिद्ध कर दिया है कि जहाँ भारतीय समाजके सम्मानको ठेस पहुँचती है, वहाँ भारतीय दुर्बल हों और उन्हें दूसरे लोगोंकी मदद भी न हो, तो भी वे इकट्ठे होकर लड़ाई कर सकते हैं। समितिकी यह भावना आप अपने साथ कष्ट उठानेवाले अन्य भारतीय भाइयोंपर भी प्रकट करनेकी कृपा करें।

ट्रान्सवाल आनेवालोंको सूचना

मैंने सुना है कि भारतके शत्रु-जैसे कुछ भारतीय ट्रान्सवालमें गलत ढंगसे प्रवेश करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ज्यादातर ऐसे ही लोगोंके कारण १६ महीने तक भारतीय समाजने दुःख उठाया है और ऐसे ही भारतीय फिर समाजको नुकसान पहुँचायेंगे। हरएक जिम्मेदार व्यक्तिको मेरी खास सलाह है कि बीचमें पड़कर जहाँ-कहीं इस ढंगसे छल-कपटके साथ ट्रान्सवालमें आनेका प्रयत्न होता हो, वहाँ लोगोंको समझा दिया जाये और बुरा काम करनेसे रोका जाये। स्वेच्छया पंजीयन करानेवाले भारतीय ऐसा करनेके लिए सरकारके साथ बँधे हुए हैं, यह बात याद रखनी चाहिए।

एक समाचार

मुझे समाचार मिला है कि जिन्हें पंजीयन पत्र मिल चुका है, उन्हें तुरन्त परवाना मिलेगा। अब उस प्रकारके व्यक्तियोंको इस बारेमें जल्दी करनी चाहिए। पंजीयन हुआ हो या न हुआ हो, पहले तीन महीनेके लिए परवाने सभीको मिल सकें, ऐसी कोशिश की जा रही है। अधिक समाचार अगली बार देनेकी आशा है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–३–१९०८

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ १६१।

२. यह पत्र अनुमानतः गांधीजीको ही लिखा गया था।

६१. मेरा जेलका अनुभव [१][1]

यद्यपि मैं तथा अन्य भारतीय केवल थोड़े ही दिनों सत्यके लिए जेलमें रहे तथापि वहाँ जो अनुभव मिला वह दूसरोंके लिए उपयोगी हो सकता है ऐसा सोचकर तथा कई स्थानोंसे ऐसी माँग हुई है इसलिए उसे यहाँ देना चाहता हूँ। जेलकी मारफत भारतीय समाजको अभी बहुत-से अधिकार पाने शेष हैं, यह भी मेरी धारणा है। इसलिए सब लोग जेलके सुख-दुःख समझें यह आवश्यक है। कई बार जहाँ वास्तवमें कोई भी कष्ट नहीं होता वहाँ हम अपने मनसे दुःखकी कल्पना कर लेते हैं। इसलिए यह बिलकुल स्पष्ट है कि हर वस्तुकी ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त कर लेनेसे लाभ ही होता है।

तारीख १० जनवरीके दोपहरको दो बार गिरफ्तारीके हमले हो चुकनेपर जेल जानेका अवसर आया। मुझे तथा मेरे साथियोंको सजा मिलनेके पहले प्रिटोरियासे तार आ गया था। उसमें यह खबर थी कि वहाँ पकड़े गये भारतीयोंको नया कानून स्वीकार न करनेके कारण तीन-तीन मासका कठोर कारावास दिया गया है और उसके साथ जुर्माना भी किया गया है। जुर्माना न देनेपर और भी तीन मासकी सजाकी बात थी। यह जानकर मैं स्वयं ईर्ष्यालु हो उठा था और इसीलिए मैंने मजिस्ट्रेटसे अधिकसे-अधिक सजा देनेको कहा; किन्तु वह नहीं मिली।[2]

हम सबको दो मासकी सादी कैदकी सजा दी गई। मेरे साथी थे सर्वश्री पी० के० नायडू, सी० एम० पिल्ले, कड़वा, ईस्टन और फोर्टोएन। अन्तिम दो सज्जन चीनी हैं। सजा होनेके बाद दो-चार मिनटके लिए मुझे अदालतके पीछेकी हवालातमें रखा गया। इसके बाद मुझे चुपचाप एक गाड़ीमें ले जाया गया। उस समय मेरे मनमें अनेक विचार उठे। क्या मुझे किसी अलग जगहमें रखकर राजनीतिक कैदी माना जायेगा, क्या मुझे दूसरोंसे अलग कर देंगे, अथवा मुझे जोहानिसबर्गके बजाय किसी दूसरी जगह ले जायेंगे — ऐसे विचार उठ रहे थे। मेरे साथ जो गुप्तचर था वह क्षमा माँग रहा था। मैंने उससे कहा, माफी माँगनेकी कोई बात नहीं है, क्योंकि मुझे कैदखानेमें ले जाना तुम्हारा कर्तव्य है।

कैदखाना

मेरी सारी कल्पनाएँ निरर्थक थीं, यह तुरन्त मालूम हो गया। मुझे भी वहाँ पहुँचाया गया, जहाँ अन्य कैदियोंको भेजा जा रहा था। थोड़ी ही देरमें दूसरे साथी भी आ गये। हम सब मिल गये। पहले तो हम सबका वजन लिया गया, फिर सबसे अँगुलियोंकी छाप ली गई; फिर सबके कपड़े उतरवाये गये और उसके बाद हमें जेलकी पोशाक दी गई। पोशाकमें काली पतलून, बंडी, बंडीके ऊपर पहना जानेवाला कुर्त्ता (जिसे अंग्रेजीमें जम्पर कहते हैं), टोपी और मोजे दिये गये। हमारे पुराने कपड़ोंके लिए एक-एक अलग थैली

१. यह तथा इस मालाके शेष लेख "श्री गांधी द्वारा प्रेषित" रूपमें **इंडियन ओपिनियन**में प्रकाशित हुए थे। देखिए पृष्ठ १३४, १४६ और १५१ भी

२. देखिए "जोहानिसबर्गका मुकदमा", पृष्ठ ३६-३७।

हरएकको दी गई और वे उसमें रख दिये गये। इसके बाद अपनी-अपनी कोठरियोंमें पहुँचानेके पहले हरएकको ८ औंस रोटीका टुकड़ा दिया गया। फिर हमें वतनियोंकी जेलमें ले गये।

वतनी और भारतीय एक?

वहाँ हमारे कपड़ोंपर 'एन' छाप लगाई; अर्थात् हमें बाकायदा 'नेटिवों' [वतनियों] की श्रेणीमें रख दिया गया। हम सब अनेक असुविधाएँ झेलनेके लिए तैयार थे। किन्तु हमने यह नहीं सोचा था कि हमारी यह गति होगी। हमें गोरोंके साथ न रखें यह तो समझा जा सकता है, किन्तु ठेठ वतनियोंके साथ रखा जाये यह हमें असहनीय जान पड़ा। यह हालत देखकर हमने सोचा कि सत्याग्रहका संघर्ष तनिक भी गैरजरूरी अथवा असामयिक नहीं है। खूनी कानून भारतीयोंको एकदम निःसत्व बना देनेवाला है इससे यह और भी स्पष्ट हो गया।

फिर भी हमारा वतनियोंके साथ रखा जाना बहुत हद तक सन्तोषप्रद सिद्ध हुआ। उनकी हालत, उनका व्यवहार और उनका स्वभाव जाननेका अच्छा अवसर मिला। दूसरी तरह देखनेपर उनके साथ रखे जानेमें तौहीन समझना मनको ठीक नहीं लगा। फिर भी सामान्य दृष्टिसे देखें तो भारतीयोंको अलग रखना चाहिए, इसमें भी सन्देह नहीं है। हमारी कोठरियोंसे लगी हुई वतनियोंकी कोठरियाँ थीं। उनमें और बाहरके मैदानमें वे शोरगुल मचाया करते थे। हम लोग सादी सजावाले कैदी थे, इसलिए हमारा स्थान अलग था। नहीं तो हम लोगोंको उन्हींके साथ रखा जा सकता था। सख्त सजा पानेवाले भारतीयोंको वतनियोंके साथ ही रखा जाता है।

यह बात तौहीनकी है या नहीं, इसे अलग रख दें तो भी यह जोखिमसे भरी हुई है, इतना कहना पर्याप्त है। वतनी ज्यादातर जंगली होते हैं। और फिर उनमें भी जेल आनेवाले वतनियोंका क्या पूछना। वे शरारती और बड़े गन्दे होते हैं तथा उनका रहन-सहन लगभग जानवरोंका-सा होता है। एक-एक कोठरीमें पचाससे-साठ तक व्यक्ति रख दिये जाते हैं। वे कभी-कभी उन कोठरियोंमें ऊधम करते और बीच-बीचमें लड़ पड़ते हैं। ऐसी संगतमें बेचारे भारतीयोंकी क्या हालत होती होगी, सो पाठक आसानीसे समझ सकते हैं।

अन्य भारतीय कैदी

सारी जेलमें हम लोगोंके अतिरिक्त मुश्किलसे ही तीन-चार भारतीय कैदी थे। उन्हें वतनियोंके साथ बन्द होना पड़ता था। इतना हमसे ज्यादा था। फिर भी मैंने देखा कि वे प्रसन्न मनसे रहते थे, और बाहरसे यहाँ उनकी सेहत अधिक अच्छी थी। उन्होंने बड़े जेलरकी कृपा प्राप्त कर ली थी। वतनियोंके मुकाबिलेमें काम करनेमें वे अधिक तेज और होशियार थे, इसलिए उन्हें जेलके भीतर ही अच्छा काम सौंप दिया गया था। अर्थात् वे भण्डार और करघोंपर निगरानी तथा ऐसे ही दूसरे काम करते थे, जो तनिक भी नागवार अथवा नीचे दर्जेके न जान पड़ें। वे हमारे भी बड़े मददगार बन गये थे।

रहनेकी जगह

हमें एक कोठरी दी गई। उसमें तेरह व्यक्तियोंको रखने लायक जगह थी। उस कोठरीपर "काले कर्जदार कैदी" लिखा हुआ था। अर्थात् उसमें ज्यादातर दीवानी-सजायाफ्ता काले लोगोंको रखा जाता था। उस कोठरीमें हवा और उजालेके लिए दो छोटी-छोटी

खिड़कियाँ थीं। उनमें मजबूत सरिये लगे हुए थे। इसलिए जितनी हवा आती थी वह हम लोगोंके हिसाबसे काफी नहीं थी। उस कोठरीकी दीवारें टीनके पतरोंकी थी। उनमें तीन जगह आधे-आधे इंच व्यासवाले काँचके झरोखे थे जिनसे जेलर छिपे ढंगसे यह देख सकता था कि कैदी भीतर क्या कर रहे हैं? हमारी कोठरीके पास ही जो कोठरी थी उसमें वतनी कैदी थे। उनके पासकी कोठरीमें गवाह लोग रखे गये थे जिनमें वतनी, चीनी और केप बॉय थे। वे भाग न जायें, इसलिए उन्हें जेलमें रखा गया था।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–३–१९०८

६२. स्वर्गीय डॉक्टर पोप

'टाइम्स'में प्रकाशित स्वर्गीय डॉक्टर जी० यू० पोपकी[1] जीवनी हम अन्यत्र दे रहे हैं। वे उन चन्द आंग्ल-भारतीयोंमें से थे जो आज भी पचास वर्ष पूर्वकी परम्पराको लेकर आगे बढ़ रहे थे। उनकी विद्वत्ता और पाण्डित्यको अन्य किसी भी बाह्य प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। उनकी कृतियाँ ही ऐसा स्मारक हैं जिनसे उनका नाम सदैव जुड़ा रहेगा। मद्रासके लोगोंमें डॉक्टर पोपकी अपेक्षा अधिक श्रद्धा तथा गहनतर सम्मान-भावना किसी अंग्रेजके प्रति नहीं रही। उनका उदाहरण मद्रासके शिक्षित वर्गके लिए एक ज्योतिपुंज है। वह ज्योति उन्हें खोज और व्याख्याके रास्तेपर आगे बढ़ानेवाली है, जिससे संसार उस महान् अतीतके बारेमें कुछ जान सके जो अभी हाल ही में विस्मृतिमें डुबा दिया गया है और साहित्य, भाषा-विज्ञान, दर्शन तथा धर्मशास्त्रके भण्डार प्रकाशमें आ जायें एवं लोगोंको भविष्यमें अपने विकासकी दिशाका कुछ संकेत मिल जाये। डॉक्टर पोपका देहावसान भारतीय तथा यूरोपीय विद्वत्समाजके लिए समान क्षति है। उनकी स्मृति सदैव उन्हें प्यारी रहेगी जो भारतको प्यार करते हैं और जिन्होंने भारतीयोंके बीच मेहनतकी जिन्दगी बिताते हुए, उनके प्रति सहानुभूतिके भावसे प्रेरित होकर भारतको प्रबुद्ध करनेका काम किया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–३–१९०८

१. जॉर्ज उग्लो पोप (१८२०–१९०८) दक्षिण भारतमें मिशनरी कार्यकर्ता, १८३९–८१; ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटीमें तमिल तथा तेलगुके प्राध्यापक, १८८४–९६; तमिल भाषा सम्बन्धी कुछ पुस्तकोंके लेखक तथा **कुरल** और **तिरुवजागम**के अनुवादक।

६३. स्वर्गीय सर लेपेल ग्रिफिन

सर लेपेल हेनरी ग्रिफिनकी मृत्युसे आंग्ल-भारतीय संसारसे एक बहुत ही दिलचस्प व्यक्तित्व उठ गया। सर लेपेल एक जाँचे-परखे प्रबन्धकर्त्ता थे। उन्होंने प्रबन्धकार्य एक लम्बे अर्से तक किया था। वे एक विद्वान् पुरुष थे और सार्वजनिक धनकी व्यवस्था और सदुपयोग करनेमें दक्ष थे। उन्होंने भारतसे अपना नाता कभी नहीं तोड़ा और पूर्व भारत संघके अध्यक्षकी हैसियतसे भारतीय मामलोंके सम्बन्धमें वे प्रायः जनताके सामने आया करते थे। जो शिष्ट-मण्डल लॉर्ड एलगिनसे मिलने गया था, उसके अगुआ बनकर उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें बसने-वाले भारतीयोंकी बड़ी सहायता की थी। उन्होंने भारतीय संघर्षमें दिलचस्पी लेना अन्ततक नहीं छोड़ा। उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय संघके उपसभापतिके पदपर मनोनीत किया जाना स्वीकार कर लिया था और इस हैसियतसे वे समितिको अपने परामर्श और पथ-प्रदर्शनसे लाभान्वित करते रहे थे। हम सर लेपेलके परिवारके प्रति आदरके साथ अपनी समवेदना प्रकट करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–३–१९०८

६४. एस्टकोर्टके परवाने

एस्टकोर्टकी अपील समझने और जानने योग्य है।[1] अदालतके निर्णयको हम चूहेका काटना मानते हैं। वह इस तरहका होता है कि हम सोते ही रहें और यह खबर न पड़े कि कोई काट गया है। थोड़ी-बहुत मुहलत देकर भारतीयोंको भुलानेकी कोशिश की हुई है। यदि ऐसा हुआ तो अदालतके निर्णयको भारतीय समाजके लिए हानिकारक मानना चाहिए। किन्तु अवसर ऐसा है कि यही निर्णय लाभकारी हो सकता है। अदालतने जो मुहलत दी है इस बीच भारतीय समाजको उचित है कि उसका लाभ उठाते हुए वह अपना उपाय जारी रखे। यदि ऐसा किया गया तो मुहलतका मिलना ठीक माना जा सकता है। कर्नल ग्रीनने

१. मार्च २ और ३, १९०८को एस्टकोर्ट स्थानिक निकायकी बैठक हुई। उसमें परवाना अधिकारीके निर्णयके विरुद्ध पाँच भारतीयोंकी याचिकाओंपर विचार किया गया। परवाना अधिकारीने उनके १९०८ के परवानोंको नया करनेसे इनकार कर दिया था। श्री ए० एम० पटेलके परवानेको नया करनेके विरुद्ध परवाना अधिकारीकी ये आपत्तियाँ थीं: (क) उनकी बहियाँ असन्तोषजनक ढंगसे रखी गई हैं, रकमें गलत दर्ज हैं और (ख) बहियोंमें रकमें पहले दर्ज नहीं की गई थीं; बल्कि वे प्रार्थी द्वारा मुनीमको दी गई जबानी सूचनाके आधारपर दर्ज की गई हैं। कर्नल ग्रीनने परवाना अधिकारीसे जिरह की। उससे ज्ञात हुआ कि (क) उसने प्रार्थीके परवानेको गत वर्ष नया कर दिया था, यद्यपि बहियाँ उसी ढंगसे रखी गई थीं और (ख) उसने प्रार्थीको इस आशयकी कोई सूचना नहीं दी थी कि भविष्यमें बहियाँ भिन्न ढंगसे रखी जायें। हिसाबमें तथाकथित भूलें श्री जी० आर० वीटीकी हैं। ये एक यूरोपीय मुनीम हैं जिन्हें प्रार्थीने नियुक्त किया था। गवाहकी हैसियतसे अदालतके सामने मुनीम श्री वीटीने

बड़ा सख्त भाषण दिया, लेकिन अदालतपर उसका प्रभाव नहीं पड़ा। इससे प्रकट होता है कि अदालतका इरादा एस्टकोर्टसे भारतीयोंका नामोनिशान मिटा देनेका है। कर्नल ग्रीनके भाषणसे अन्दाज लगाया जा सकता है कि उक्त सज्जन संसदमें भी मदद करेंगे। वे मदद करें अथवा नहीं, भारतीय समाजका कर्तव्य तो साफ दिखाई पड़ रहा है, विलायतमें इसपर बहुत चर्चा होनेकी जरूरत है। इस मामलेमें बड़ी सरकारको अर्जी भी भेजनी चाहिए। लॉर्ड ऐम्टहिल और लॉर्ड कर्जनके[2] जो भाषण लार्ड-सभामें हुए हैं, और हम जिनका सार गत सप्ताह दे चुके हैं, उनसे जाहिर होता है कि उक्त सज्जन भी ट्रान्सवालके संघर्षके मुद्दे समझ पाये हैं। नेटालके प्रश्नका निपटारा करनेमें उनके प्रभावका उपयोग हो सकेगा, ऐसा संकेत किया गया है। भारतीय समाजके लिए उचित है कि उसका पूरा लाभ उठाये। और अन्तमें यदि न्याय न मिले तो सत्याग्रह [का शस्त्र] धारण करनेका निश्चय करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–३–१९०८

प्रमाणित किया कि एक यूरोपीय दूकानदार श्री हेलेट भी उनसे मुनीमीका काम लेते हैं और वे उनकी बहियाँ भी बहुत-कुछ इसी ढंगसे रखते हैं। फिर भी निकायने, एकके विरुद्ध पाँच सदस्योंके बहुमतसे, यह निर्णय किया कि छः महीनेकी सूचनाके बाद श्री पटेलको अपना कारोबार बन्द कर देना होगा।

अपीलकर्ताओंके वकील कर्नल ग्रीनने तब निकायको सम्बोधित किया: "...दूकानदार अपने व्यापारके आँकड़े गुजरातीमें लिखते हैं और उनके मुनीम उनकी नकद बिक्री और प्रतिदिनकी कुल बिक्री जोड़कर उनकी बहियाँ लिखते हैं। बहियाँ पूर्ण रूपसे, बल्कि उल्लेखनीय ढंगसे अच्छी तरहसे रखी गई हैं।" उन्होंने आगे कहा हमें सन्तोष है कि जो कच्ची बहियाँ गुजरातीमें रखी जाती हैं वे दूकानदारके हिसाबकी रोजमर्राकी बहियोंका अंग नहीं हैं और हम दो बहुत प्रसिद्ध मुनीमोंकी, जो अपने कार्यमें दक्ष हैं, गवाही सुननेके बाद इस निर्णयपर पहुँचे हैं। हमें और भी सन्तोष इस बातसे है कि गुजरातीकी बहियाँ पिछले परवाना अधिकारीकी विशेष सलाहसे रखी गई हैं और उसे उनके इन बहियोंके रखनेके ढंगसे सन्तोष था। इन परिस्थितियोंमें मैं खयाल करता हूँ कि यह बहुत ही मुनासिब होगा यदि याचिकायें स्वीकार की जायें।...

कर्नल ग्रीनने इसके पहले निकायको सम्बोधित करते हुए अन्तमें कहा था, "कानूनका यह मन्शा कभी नहीं है कि इस प्रकारका कोई स्थानिक निकाय ऐसा गन्दा काम करे। और मैं अपनी अन्तरात्माकी शपथ लेकर कहता हूँ कि यदि आप इस प्रार्थनाको अस्वीकार करेंगे, तो मैं सोचता हूँ कि हम सबको ऐसा लगेगा, जैसे हम कीड़े-मकोड़े हों।" स्थानिक निकायने पाँच परवानोंमेंसे दोको शर्तोंके साथ नये किये जानेकी आज्ञा दी।

२. जार्ज नैथेनियल, कर्जन ऑफ केडलस्टन, प्रथम मार्क्विस (१८५९–१९२५); भारत उप-मन्त्री १८९१-९२; भारतके वाइसराय और गवर्नर जनरल, १८९९–१९०५; १९१५ में एसक्विथके संयुक्त मन्त्रिमण्डलमें शामिल हुए; विदेश-मन्त्री, १९१९–२४; **ब्रिटिश गवर्नमेंट इन इंडिया** (भारतमें ब्रिटिश शासन), **प्राब्लेम्स ऑफ दि फार ईस्ट** (सुदूर पूर्वकी समस्याएँ) तथा अन्य पुस्तकोंके लेखक।

६५. मेरा जेलका अनुभव [२]

हम सबके दिनमें घूमने फिरनेके लिए एक छोटा-सा आँगन था जिसके चारों ओर दीवार थी। आँगन इतना छोटा था कि उसमें दिनको चलना-फिरना कठिन होता था। नियम था कि उस अहातेके कैदी बिना इजाजत बाहर नहीं जा सकते। नहाने और पाखाना जानेकी सुविधा भी इसी अहातेमें की गई थी। नहानेके लिए पत्थरके दो बड़े हौज थे और बरसात जैसे नहानेके लिए दो फुहारेदार नल थे। पाखानेके लिए एक बालटी और पेशाबके लिए दो बालटियाँ थीं। शर्म बचाकर एकान्तमें नहाने-धोने अथवा शौचकी सुविधा नहीं थी। जेलकी नियमावलीमें भी यह बात थी कि कैदियोंके लिए एकान्तमें शौचकी व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। इसलिए कई बार कैदियोंको दो-दो तीन-तीनकी कतारमें बैठकर शौच करना पड़ता था। नहानेकी भी यही हालत थी। पेशाबकी बालटी भी खुलेमें थी। यह सब शुरू-शुरूमें अटपटा लगता है। किसी-किसीको तो इसमें बड़ी ही तकलीफ होती है। फिर भी गहराईसे सोचनेपर समझा जा सकता है कि जेलखानेमें ऐसी बातें एकान्तमें सम्भव नहीं हैं। और सार्वजनिक रूपसे इन्हें करनेमें कोई खास बुराई नहीं है। इसलिए धीरजके साथ ऐसी आदत डाल लेनी चाहिए और इस प्रकारकी बेपर्दगीसे घबराना या परेशान नहीं होना चाहिए।

कोठरीमें सोनेके लिए लकड़ीके तीन इंची पायोंपर तख्ते लगे हुए थे। प्रत्येकके पास दो कम्बल, छोटा-सा तकिया और सोनेके लिए बिछाने लायक नारियलकी चटाई — ये चीजें थीं। एक-आध बार तीन कम्बल मिल सकते थे मगर वे सिर्फ मेहरबानीके तौरपर। कई लोग ऐसी सख्त शय्यासे घबराते दीख पड़ते थे। सामान्यरूपसे जिन्हें मुलायम बिछौनेपर सोनेकी आदत होती है उन्हें ऐसी कठोर शय्यापर सोना मुश्किल लगता है। वैद्यक-शास्त्रके नियमके अनुसार कठोर शय्या अधिक अच्छी मानी जाती है। इसलिए यदि हम घरोंमें भी सख्त बिस्तरको काममें लानेका चलन अपनायें तो जेलकी शय्यासे कष्ट न हो। कोठरीमें हमेशा एक बालटी पानी रहता था और रातमें पेशाबके लिए एक और बालटी गड्ढेमें रखी जाती थी; क्योंकि रातको कोई भी कैदी कोठरीसे बाहर नहीं जा सकता। हर आदमीको आवश्यकतानुसार थोड़ा साबुन, एक सूती अँगौछा और लकड़ीका चम्मच भी दिया जाता था।

सफाई

जेलखानेमें रखी जानेवाली स्वच्छता बहुत ही अच्छी कही जा सकती है। कोठरीका फर्श हमेशा जन्तुनाशक पानीसे धोया जाता था। उसके किनारे-किनारे चूनेसे ढिग दी जाती थी। इससे कोठरी सदा नई-सी बनी रहती थी। गुसलखाने और पाखाने भी सदा साबुन और जन्तुनाशक पानीसे साफ रखे जाते थे। मुझे स्वयं सफाईका शौक है, मैं ऐसा मानता हूँ। इसलिए जब संघर्षके अन्तिम दिनोंमें हमारे बहुत लोग आ गये तब मैं खुद ही जन्तुनाशक पानीसे पाखाना साफ करने लगा। पाखाना उठानेके लिए सदा नौ बजे कुछ चीनी कैदी आते थे। उसके बाद दिनमें सफाई अपने हाथों ही करनी पड़ती थी। सोनेके तख्ते सदा पानी और बालूसे रगड़कर धोये जाते थे। असुविधाकी बात केवल इतनी ही थी कि तकिय और कम्बलोंकी सैकड़ों कैदियोंमें बार-बार अदल-बदल हो जानेकी सम्भावना थी।

कम्बलोंको यद्यपि हमेशा धूपमें फैलाया जाना चाहिए, किन्तु इस नियमका कदाचित् ही पालन होता था। जेलका अहाता नित्य दो बार साफ किया जाता था।

कुछ *नियम*

जेलके कुछ नियम सबके जानने योग्य हैं। साँझको ५॥ बजे कैदियोंको बन्द कर दिया जाता है। रातके ८ बजे तक वे कोठरीमें पढ़ सकते हैं और बातचीत कर सकते हैं। ८ बजनेके बाद सबके लिए सो जाना अनिवार्य होता है। अर्थात् नींद न आये तो भी लेटे रहना चाहिए। ८ बजेके बाद बीच-बीचमें बातचीत करना जेलके नियमका उल्लंघन माना जाता है। वतनी कैदी इस नियमका ठीक-ठीक पालन नहीं करते इसलिए पहरेदार रातको उन्हें चुप रखनेके लिए 'ठुला-ठुला'[1] कहकर दीवारोंपर लाठी ठोंकते हैं। कैदियोंको बीड़ी पीनेकी सख्त मुमानियत होती है। इस नियमका पालन बड़ी सतर्कतासे कराया जाता है। फिर भी मैं देखता था कि कैदी बीड़ीके नियमका छुपकर उल्लंघन किया करते थे। सवेरे ५॥ बजे उठनेकी घंटी बजती है। उस समय हर कैदीको उठकर मुँह-हाथ धो डालना चाहिए तथा अपना बिस्तर समेट लेना चाहिए। सवेरे ६ बजे कोठरीका दरवाजा खोला जाता है। उस समय हर कैदीको अपने समेटे हुए बिस्तरके पास बाअदब खड़ा रहना चाहिए। रखवाला आकर हर कैदीको गिनता है। इसी तरह हर कैदीको कोठरी बन्द किये जाते समय अपने बिस्तरके पास खड़ा रहना चाहिए। कैदखानेकी चीजके सिवा और कोई चीज कैदीके पास नहीं होनी चाहिए। गवर्नरकी इजाजतके बिना कपड़ोंको छोड़कर कुछ और नहीं रखा जा सकता। हर कैदीके कुर्तेपर बटनके सहारे टँकी हुई एक थैली होती है। उसमें कैदी अपना टिकट रखता है। इस टिकटपर उसका नम्बर, सजा, नाम आदि दर्ज रहता है। साधारणतया दिनको कोठरीमें रहना मना है। सपरिश्रम सजावाला कैदी तो कामपर जाता है इसलिए रह ही नहीं सकता। सादी सजावाला कैदी भी कोठरीमें नहीं रह सकता। उसे आँगनमें रहना चाहिए। हमारी सुविधाके विचारसे गवर्नरने एक मेज और दो बेंचें रख देनेकी इजाजत दे दी थी; और ये बहुत उपयोगी सिद्ध हुईं।

यदि सजा दो महीनेसे ज्यादा की हुई हो तो नियम है कि वह कैदी अपने बाल और मूँछें कटवा दे। भारतीयोंपर यह नियम सख्तीसे लागू नहीं किया जाता था। यदि कोई एतराज करे तो मूँछें रहने दी जाती हैं। इस बारेमें मुझे मजेदार अनुभव हुआ। मैं खुद जानता था कि कैदियोंके बाल काटे जाते हैं। और यह भी जानता था कि बाल और मूँछें कटवा डालनेका नियम कैदियोंके आरामके खयालसे है; न कि उनकी तौहीनके खयालसे। मैं खुद इस नियमको बहुत आवश्यक समझता हूँ। कैदखानेमें बाल सँवारनेके लिए कंघा आदि साधन नहीं होते। यदि बाल साफ न रखे जायँ तो फुंसियाँ इत्यादि होनेकी बड़ी सम्भावना होती है। फिर गर्मी हो तो बाल असहनीय हो जाते हैं। कैदियोंको आइना नहीं मिलता; इसलिए मूँछका गन्दा रहना मुमकिन है। खाते समय रूमाल तो होता नहीं है; लकड़ीका चम्मच खानेमें अड़चन डालता है। मूँछ लम्बी हो तो खाना मूँछमें लग जाता है। इसके सिवा मेरा इरादा कैदखानेके सारे अनुभव लेनेका था। इसलिए मैंने बड़े दरोगासे अपनी मूँछ और बाल कटवानेकी माँग की। उसने कहा, "गवर्नरकी सख्त मनाही है"। मैंने कहा, "मैं जानता

१. ठुला शब्दका अर्थ है 'खामोश रहो'।

हूँ कि गवर्नर मुझपर जबरदस्ती नहीं करना चाहते; परन्तु मैं अपने बाल और मूँछें खुशीसे कटवाना चाहता हूँ। उसने गवर्नरसे प्रार्थना करनेको कहा। दूसरे दिन गवर्नरकी अनुमति मिल गई, किन्तु उसने कहा कि "अब तो आपके दो महीनोंमें से दो दिन कम हो गये हैं। इसलिए मुझे आपके बाल कटवानेका हक नहीं है।" मैंने कहा, "सो मैं जानता हूँ; परन्तु मैं अपने आरामके खातिर अपनी मर्जीसे कटवाना चाहता हूँ।" फिर भी उसने हँसकर आनाकानी की। बादमें मुझे मालूम हुआ कि गवर्नरको कुछ शक और डर था कि कहीं मेरी इस माँगमें कोई भेद तो नहीं है। जेलसे छूटनेपर गवर्नरपर जबरदस्ती बाल और मूँछें कटवानेका इलजाम लगाकर शोर तो नहीं करूँगा। ऐसा उन्हें लगा। मैंने तो अपनी माँग चालू ही रखी। "मर्जीसे कटवाना चाहता हूँ", ऐसा लिखकर देनेको भी कहा। गवर्नरका शक दूर हो गया और अन्तमें बड़े दरोगाको मुझे कैंची दे देनेका हुक्म हुआ। मेरे साथके कैदी श्री पी० के० नायडू भलीभाँति हजामत करना जानते थे। खुद मुझे भी थोड़ा-बहुत आता है। मैंने बाल-मूँछ काटे, यह देखकर और उसका कारण समझनेपर दूसरोंने भी वैसा ही किया। कुछने केवल बाल कटवाये। श्री नायडू और मैं मिलकर भारतीय कैदियोंके बाल काटनेमें दो घंटे देते थे। मेरा खयाल है कि इससे अधिक आराम और सुविधा हुई। इसके कारण कैदी अच्छे दिखते थे। जेलमें उस्तरेसे काम लेनेकी मुमानियत है। केवल कैंचीका ही इस्तेमाल करने देते हैं।

निरीक्षण

कैदियोंके निरीक्षणके लिए जब विभिन्न अधिकारी आते हैं तब सब कैदियोंको एक कतारमें खड़ा होना पड़ता है। उन्हें अधिकारीके आनेपर टोपी उतारकर सलाम करना आवश्यक है। सभी कैदियोंकी टोपी अंग्रेजी ढंगकी होनेसे उसके उतारनेमें कोई बाधा नहीं थी। और उतारनेका नियम था। इतना ही नहीं, वह मुनासिब भी था। किसी अधिकारीके आनेपर इस तरह कतारमें खड़े होनेका हुक्म 'फॉल इन' शब्दका उपयोग करके किया जाता था। अर्थात् 'फॉल इन' शब्द हमारी खुराक बन बैठा था। इसका अर्थ केवल इतना है कि कतारमें सावधान होकर खड़े रहो। ऐसा दिन-भरमें चार-पाँच बार होता था। उनमें से एक अधिकारी जो नायब दरोगा कहलाता था, जरा अकड़ू था; इसलिए भारतीय कैदियोंने उसका नाम 'जनरल स्मट्स' धर दिया था। वह कई बार सवेरे सबसे पहले आता और फिर शामको भी आ जाता। साढ़े नौ बजे डॉक्टर आता था। वह बड़ा भला और दयालु जान पड़ता था। हमेशा चिन्ताके साथ कुशल पूछता। जेलके नियमके अनुसार हर कैदीको पहले दिन सबके सामने नंगे होकर डॉक्टरको अपना शरीर दिखाना चाहिए। किन्तु इस डॉक्टरने हम लोगोंपर यह नियम लागू नहीं किया और जब भारतीय कैदी ज्यादा हो गये तब उसने कहा कि यदि किसीको छाजन आदि रोग हों तो वह मुझसे कह दे, ताकि मैं एकान्तमें ले जाकर उसकी जाँच कर लूँ। साढ़े दस या ग्यारह बजे गवर्नर और बड़ा दारोगा आता था। गवर्नर बहुत दृढ़, न्यायी और शान्त स्वभावका व्यक्ति जान पड़ा। वह सदा एक ही प्रश्न पूछता, 'आप सब अच्छे तो हैं? आपको कुछ चाहिए? आपको कोई शिकायत करनी है?' जब कभी कोई माँग या शिकायत की जाती तब वह ध्यान देकर सुनता और जो माँग पूरी की जा सकती थी उसे स्वीकार कर लेता था। यदि शिकायत की गई होती तो उसको दूर करता। कुछ शिकायतों और माँगोंका हम आगे विवेचन करेंगे। सहायक गवर्नर भी कभी-कभी आता था। वह भी नेक था किन्तु सबसे भला, सुशील और सहानुभूतिशील तो था हमारा ही अफसर, जो बड़ा

दरोगा कहलाता था। वह स्वयं बड़ा धार्मिक था और उसका हमारे प्रति प्रत्येक बर्ताव अच्छा सभ्यतापूर्ण होता था; यही नहीं हर कैदी मुक्तकण्ठसे उसकी प्रशंसा करता था। कैदियोंके सारे अधिकारोंकी हर तरहसे पूर्ति करनेकी उसे लगन थी। कैदियोंका कोई नगण्य अपराध नजरमें आ भी जाता तो वह उसे दर-गुजर कर देता था और यह समझकर और जानकर कि ये सब वास्तवमें निर्दोष हैं, हम सबपर विशेष ममता रखता था। अपनी भावना प्रकट करनेके लिए कई बार हम लोगोंसे आकर बातचीत भी करता था।

कैदियोंकी संख्यामें वृद्धि

मैं कह चुका हूँ कि पहले हम केवल पाँच सत्याग्रही कैदी थे। १४ जनवरी मंगलवारको श्री थम्बी नायडू, जो प्रधान धरनेदार थे, और चीनी संघके प्रधान श्री क्विन आये। उन्हें देखकर सब बहुत खुश हुए। १८ जनवरीको १४ और व्यक्ति आये; उनमें समंदरखान भी था। उसे दो मासकी सजा मिली थी। शेष १३ व्यक्तियोंमें मद्रासी, कानमिया और गुजराती हिन्दू थे। वे सब बिना परवाना फेरी लगानेके अपराधमें गिरफ्तार किये गये थे और उन सबको दो-दो पौंड जुर्माना हुआ था। न देनेपर १४ दिनकी कैद थी। वे साहसके साथ जुर्माना न देकर जेल आये थे। २१ जनवरी मंगलवारको ७६ लोग और आये। उनमें दो महीनेकी सजा पानेवाला था नवाबखाँ। शेष दो पौंड जुर्माना अथवा १४ दिनकी जेलकी सजावाले थे। इनमें अधिकतर लोग गुजराती हिन्दू थे। कुछ कानमिया और कुछ मद्रासी थे। २२ जनवरी बुधवारको दूसरे ३५ व्यक्ति आये। २३ को तीन आये। २४ को एक आया। २५ को दो, २८ को छः और उसी दिन शामको अन्य चार लोग आये। फिर २९ को ४ कानमिया आये। इस तरह २९ जनवरी तक कुल मिलाकर १५५ सत्याग्रही कैदी हो गये। गुरुवार अर्थात् ३० जनवरीको मुझे प्रिटोरिया ले जाया गया था। किन्तु मुझे मालूम है कि उस दिन भी ५ अथवा ६ कैदी आये थे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–३–१९०८

६६. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

पंजीयन अभी जारी है। कुछ व्यक्ति समाजको हानि पहुँचानेपर तुले जान पड़ते हैं। उन्हें केवल अपना स्वार्थ ही दिखाई देता है। वे प्रार्थनापत्रके फार्ममें झूठी जानकारी भरते हैं। ये सब नुकसान पहुँचानेवाली बातें हैं। फिर कुछ तो यही मानते हैं कि संघर्षके अन्तमें झूठोंको भी संरक्षण मिलना चाहिए। इसके समान बड़ी भूल दूसरी कौन-सी हो सकती है। सत्यकी लड़ाईमें मिथ्या कैसे बच सकता है, यह समझमें नहीं आता। किन्तु जैसे सूर्य सच्चेकी सचाईके लिए तपता है और उससे झूठेको भी गरमी मिल जाती है, उसी प्रकार यदि भारतीयोंमें ज्यादातर भारतीय सच्चे हों, तो कुछ-एक झूठे लोगोंका भी ठीक ढंगसे बचाव होना सम्भव है। यदि अधिकांश भारतीय सच्चे साबित हो जायें, तो सरकारसे कहा जा सकता है कि जो लोग बिना अनुमतिपत्रके हैं, उन्हें परेशान न किया जाये। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि बिना अनुमतिपत्रवाले भारतीयोंने कानूनन अपराध किया है, किन्तु

वह अपराध ऐसा नहीं है जिसके कारण उन्हें खास तौरसे परेशान किया जाये। यदि वे लोग सरकारको बाकायदा तथ्य दे दें और वे किस तरह आये हैं यह सरकारको बता दें, तो मेरी मान्यता है कि सरकार तरह देकर उन्हें भी पंजीयन करनेका हुक्म दे देगी। किन्तु इसके पहले भारतीय समाजको लोभ छोड़ना चाहिए। प्रार्थनापत्र सही भरने चाहिए और नये लोगोंको दाखिल करनेमें विवेक बरतना चाहिए। लोभ पापका मूल है, यह बात हर काममें याद रखना जरूरी है।

भारतीयोंके मित्रोंको प्रीति-भोज

श्री कार्टराइट, श्री फिलिप्स, श्री डोक आदि जिन महान अंग्रेजोंने हमें बहुत सहायता पहुँचाई है, उन्हें शनिवारको प्रीति-भोज दिया जायेगा। उसमें कुछ भारतीय भी उपस्थित रहेंगे। कहा जा सकता है कि दक्षिण आफ्रिकामें ऐसा लगभग पहली ही बार हो रहा है। उसका विशेष हाल हम अगली बार देंगे।

सर लेपेल ग्रिफिन

स्वर्गीय सर लेपेल ग्रिफिनके कुटुम्बको ब्रिटिश भारतीय संघकी ओरसे दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश [भारतीय] समितिकी मारफत समवेदनाका तार भेजा गया है।[1]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–३–१९०८

६७. पत्र : एफ० एच० टैथमको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १४, १९०८

श्री एफ० एच० टैथम
एडवोकेट
पीटरमैरित्सबर्ग

प्रिय महोदय,

मुझे पता चला है कि बद्री तथा अन्य लोगोंके विरुद्ध कोई मुकदमा सर्वोच्च न्यायालयके सामने विचाराधीन है। उसके सम्बन्धमें श्री लैबिस्टरने आपको मुकर्रर कर लिया है। श्री बद्री मेरे पुराने मुवक्किल हैं। उनकी अनुपस्थितिमें उनका आम मुख्तारनामा भी मेरे ही पास था और उन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि मैं उन्हें मुकदमा समझा दूँ। अतएव यदि आप कृपया कागजात[2] मुझे भेज दें, ताकि मैं जान सकूँ कि मुकदमा किस बाबत है तो मैं आभारी होऊँगा। देखनेके बाद मैं कागजात फौरन ही वापस कर दूँगा।

आपका विश्वस्त,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४७९९) से।

१. "स्वर्गीय सर लेपेल ग्रिफिन", भी देखिए, पृष्ठ १३२।
२. वादी तथा प्रतिवादीके बयान; देखिए एस० एन० ४७९७।

६८. पत्र : सी० ए० डी आर० लैबिस्टरको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च १८, १९०८

श्री सी० ए० डी आर० लैबिस्टर
सॉलिसिटर
डंडी

महोदय,

विषय : बद्री और अन्य लोग तथा वावड़ा ऐंड कं०

इस विषयमें आपने मेहरबानी करके जो तार मुझे फीनिक्स भेजा, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आपको मालूम ही है कि बद्रीका आम मुख्तारनामा उनकी अनुपस्थितिमें मेरे पास था। मैं सारी स्थिति बद्रीको समझाना चाहता हूँ; इसीलिए मैंने श्री टैथमसे कुछ समयके लिए सम्बद्ध कागज-पत्र माँगे थे। परन्तु साथके पत्रसे आपको मालूम होगा कि श्री टैथमने मुझे आपको लिखनेके लिए कहा है। अतएव क्या आप मेहरबानी करके वे कागजात मुझे भेज देंगे? मैं उन्हें देखकर आपको वापस कर दूँगा।

आपका विश्वस्त,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४८००) से।

६९. मेरे जेलके अनुभव [२]

आहारमें परिवर्तन

१४ जनवरीको श्री थम्बी नायडू और श्री क्विन आये। परन्तु उससे स्थितिमें कोई बड़ा अन्तर नहीं पड़ा, क्योंकि वे उसे सहन करनेके लिए बिलकुल तैयार थे। लेकिन १८ तारीखको १४ कैदी और आ गये। इनमें से एकको छोड़कर बाकी सब फेरीवाले थे और प्रत्येकको दो-दो पौंड जुर्माने या १४ दिनकी जेलकी सजा दी गई थी। इन लोगोंको इस प्रकारका भोजन करनेकी आदत नहीं थी; इसलिए उनसे इस बातकी आशा करना कि वे एक बारगी उसे अंगीकार कर लेंगे, सम्भव न था। इसलिए यह एक बड़ी चिन्ताकी बात थी। जेलके गवर्नरका ध्यान बाकायदा इस ओर आकर्षित किया गया। उन्होंने नियमोंके कारण अपनी असमर्थता प्रकट की। मजहबकी बिनापर उठाई गई किसी आपत्तिपर तो वे गौर करनेके लिए बिलकुल राजी थे, परन्तु जहाँ बात केवल पसन्दगी और नापसन्दगीकी थी वे मदद करनेमें असमर्थ थे। जेल-जीवन आखिर जेल-जीवन ठहरा; लोगोंकी रुचियोंका वहाँ खयाल नहीं किया जा सकता। मामला अगर केवल रुचिका ही होता, तो यह कहना ठीक था। परन्तु दुर्भाग्यसे यह बात आदतकी थी। चूँकि खुराक सम्बन्धी तालिका एशियाई लोगोंकी

जातीय आदतोंका उचित खयाल रखे बगैर तैयार कर ली गई थी, इसलिए तनावमें पड़कर यह व्यवस्था टूट गई। जिस प्रकार भारतीयोंके लिए कढ़ी इत्यादि अतिरिक्त राष्ट्रीय व्यंजनोंकी आशा करना मूर्खतापूर्ण होता, उसी प्रकार जेल अधिकारियोंके लिए ऐसा भोजन निर्धारित कर देना जो भारतीयोंको मुआफिक न आता हो — फिर वह डॉक्टरी खयालसे चाहे जितना पौष्टिक क्यों न हो — मूर्खतापूर्ण था। गाय या बकरीका उबला हुआ गोश्त भारतीयोंके लिए उतना ही निकम्मा होता है जितना मकईका दलिया। वे गेहूँ या चावलसे बनी चीजोंपर, फिर वे चाहे जितनी सादी क्यों न हों, बसर कर सकते थे, परन्तु आफ्रिकामें नफीस माने जानेवाले भोजनोंपर नहीं। फलतः कैदियोंकी इस नई टोलीको भूखों मरनेकी नौबत आ गई। उन्होंने सुबहका नाश्ता छोड़ दिया और जो चावल उन्हें दोपहरके भोजनके लिए मिलता था, अर्थात् चार औंस चावल तथा एक औंस घी, चूँकि नाश्तेके साथ भी अपर्याप्त था, उन लोगोंके लिए तो बहुत ही कम था जिन्हें सुबहसे निराहार रहनेके बाद चावलकी उपर्युक्त मात्रा ही दी जाती थी।

जेलखानेमें प्रार्थनापत्र

इसलिए नीचे लिखी हुई अर्जी[1] जेलके गवर्नरकी मारफत जेलोंके निदेशक (डायरेक्टर ऑफ प्रिजन्स)के पास भेजी गई।

जैसा कि आवेदनपत्रके अन्तिम भागमें कहा जा चुका है, लगभग सत्तर सत्याग्रहियोंके आ जानेके कारण मैंने गवर्नरसे प्रार्थना की कि वे तार या टेलिफोन द्वारा हमारी शिकायतोंको बड़ी सरकारके पास भेज दें और अविलम्ब आदेशकी प्रार्थना करें। उन्होंने कृपापूर्वक ऐसा किया और फौरन आदेश जारी हुआ कि आगे विचार करने तक नाश्तेमें मकईके दलियेकी जगह चार औंस डबलरोटी और शामके भोजनमें मकईके दलियेकी जगह आठ औंस डबलरोटी दी जाया करे। जब इस मामलेपर और आगे विचार किया जा रहा था, समझौता हो गया और हम सब रिहा कर दिये गये।

तुलना

तो भी पाठक यह तो समझ ही गये होंगे कि एशियाई कैदियोंके भोजनका यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसे छोड़ा नहीं जा सकता। ट्रान्सवालकी जेलोंमें साधारणतया बहुत ही कम भारतीय कैदी होते हैं इसलिए इस ओर इसके पूर्व किसीका ध्यान नहीं गया। निदेशकने जिस परिवर्तनका हुक्म दिया उसके कारण सबसे बड़ी शिकायत तो रफा हो गई है। लेकिन सादी कैद भुगतनेवाले कैदियोंके लिए भी चार औंस डबलरोटी, एक कौर ही है। यद्यपि स्वास्थ्याधिकारी (मेडिकल ऑफिसर)ने कहा है कि वर्तमान खुराकके अलावा कोको, मक्खन या दालका दिया जाना स्वादिष्ट भोजन देने जैसा माना जायेगा इसलिए उसे जेल भोजनके रूपमें दिये जानेकी मुमानियत है तथापि मेरा खयाल यह है कि इसमें रोटीको खाये जाने योग्य बनानेके लिए उपर्युक्त ढंगकी किसी-न-किसी चीजका जोड़ा जाना नितान्त आवश्यक है। अब हम तनिक सादे यूरोपीय कैदियोंकी खुराकके परिमाणपर गौर करें। इन्हें सुबहके नाश्तेके लिए एक पिंट दलिया और चार औंस डबलरोटी, दोपहरके भोजनमें प्रतिदिन आठ औंस रोटी या सेम या आलू या सब्जियोंके साथ गोश्त या शोरवा; रातके भोजनके लिए आठ औंस डबलरोटी और एक पिंट दलिया दिया जाता है। मुझे मालूम हुआ है कि उन्हें कोको या अन्य ऐसा ही कोई पेय भी

१. पाठके लिए देखिए "प्रार्थनापत्र: जेल निदेशकको", पृष्ठ ३८-३९।

दिया जाता है। अब, यह बात समझमें नहीं आती कि यूरोपीयोंको दलिया तथा चार औंस रोटी क्यों दी जाती है जबकि भारतीयोंको दलियाके स्थानपर केवल चार औंस रोटी मिलती है। क्या उन्हें भारतीयोंकी अपेक्षा अधिक भूख लगा करती है? और फिर भारतीय केवल बारह औंस सेमकी फलियाँ क्यों पायें, जब कि यूरोपीयोंको उतनी ही फलियोंके अलावा आठ औंस डबलरोटी भी मिलती है? यह ऐसी असंगति है जिसको समझ पाना बहुत कठिन है। यूरोपीय लोग कई तरहका बढ़िया या अधिक मँहगा भोजन पायें इसे सहन करना सम्भव है परन्तु भोजनके परिमाणके सम्बन्धमें यह सम्भव नहीं है। इसलिए, स्पष्ट है कि भारतीयोंको दिये जानेवाले भोजनमें बहुत फेरफारकी आवश्यकता है। और फिर, मेरी रायमें इस बातसे कि उपनिवेश-सचिवने कभी ऐसे कैदियोंके भोजनके बारेमें, जो साधारण कैदी नहीं माने जा सकते, जानकारी हासिल करनेकी तकलीफ गवारा नहीं की, भारतीय समाजके प्रति उनकी हृदयहीन तिरस्कार-भावना व्यक्त होती है। समझौता हो चुका है; इसलिए मामलेके इस दर्दनाक पहलूपर हम अधिक नहीं कहना चाहते।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-३-१९०८

७०. दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति

श्री रिचके साप्ताहिक पत्र आते रहते हैं, किन्तु फिलहाल वे उतने जरूरी नहीं हैं, इसलिए हम उन्हें प्रकाशित नहीं करते। जो तथ्य उनसे मिलते हैं उनके विषयमें तार पहले मिल चुके होते हैं, इसलिए वे पुराने-से जान पड़ते हैं। किन्तु अपने अन्तिम पत्रमें उन्होंने इस विषयमें प्रश्न किया है कि समिति कायम रखी जाये या नहीं। इसलिए हम उसकी कुछ बातें नीचे दे रहे हैं:

> मंगलवारको समितिकी बैठकमें इस विषयपर चर्चा हुई कि भविष्यमें क्या किया जाये। लॉर्ड ऐम्टहिल उपस्थित थे। उनके सिवा सर मंचरजी, श्री टी० जे० बेनेट,[1] सर विलियम वेडरबर्न,[2] डॉक्टर थॉर्नटन और श्री पोलक[3] उपस्थित थे।
>
> लॉर्ड ऐम्टहिलने बताया कि समितिका सच्चा काम तो अब शुरू हुआ समझना चाहिए। दूसरे सदस्योंने भी राय जाहिर की कि समितिको खत्म करना बहुत गलत होगा। आपने देखा होगा कि लॉर्ड ऐम्टहिलकी कोशिश अभी जारी ही है। कुछ सदस्योंका तो यहाँतक आग्रह है कि समितिने ऐसा काम किया है कि उसे किसी भी तरह जारी रखना चाहिए। आपका क्या मत है, यह जाननेके लिए समितिने मुझसे

१. बॅनेट कोलमैन ऐंड कम्पनीसे सम्बन्धित; **दी टाइम्स ऑफ इंडियाके** प्रकाशक तथा दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिके एक सदस्य।

२. बम्बई सिविल सर्विसके सदस्य, अवकाश-प्राप्त करनेपर संसद-सदस्य; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिके अध्यक्ष, १८९३; कांग्रेसके अध्यक्ष १९१०।

३. हेनरी पोलकके पिता, दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिके निर्माणमें जिनका प्रमुख हाथ रहा; वे उसके सदस्य भी रहे; देखिए खण्ड ६।

> लिखनेको कहा है। समितिके सदस्य कौन हैं और समितिने क्या काम किया है, इस विषयमें संघको कुछ बताना आवश्यक नहीं है। सभी इस बातको मानेंगे कि यदि समिति एक बार भंग हो जाये, तो फिर उसकी स्थापना मुश्किल होगी। फिर अभी वहाँके और नेटालके बहुत-से सवाल बचे हुए हैं। उनके विषयमें भी मुझे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। नेटाल कांग्रेसका एक पत्र था जिसमें [विक्रेता] परवाना अधिनियमके कारण भारतीयोंकी परेशानीकी बात लिखी थी। यह प्रश्न बड़े महत्त्वका है। आशा है, ऐसे प्रश्नोंकी चर्चा करनेमें वहाँके भारतीय पैसेका लोभ नहीं करेंगे।
>
> श्रीमती रिचकी बीमारीके कारण मुझे कुछ महीने तो यहाँ रहना ही पड़ेगा। डॉक्टरने उनपर दुबारा शल्य-क्रिया की है। उनकी ऐसी स्थिति हो गई है कि दो परिचारिकाएँ उनकी सेवामें रखनी पड़ी हैं। ऐसी स्थितिमें मेरा यहाँसे जाना सम्भव नहीं होगा। मेरे मनमें यह विचार चलता रहता है कि यदि मैं स्वयं यहाँ वकालत करूँ, तो समितिको मुझपर कम खर्च करना पड़े; और यदि अपने लिए एक कार्यालय ले सकूँ, तो समितिका किरायेका खर्च बच जाये।
>
> बैरिस्टर श्री जिन्नाने मुझे प्रेसिडेंट स्ट्रीटके श्री मुहम्मद शाहका तार दिखाया था। इस तारमें उन्होंने सूचित किया है कि लगभग ७०० मुसलमान समझौतेसे नाराज हैं। उनका विचार पंजीयन न करवानेका ही जान पड़ता है। श्री जिन्नाको मैंने यह जवाब लिख देनेकी सूचना दी है कि तारसे [ट्रान्सवालमें] सबके एकमत होनेका समाचार पढ़कर प्रसन्नता हुई। इस सम्बन्धमें तथ्य क्या हैं, सूचित कीजिए।

अब यह तय करना भारतीय समाजके हाथमें है कि समितिका क्या करे। समिति कायम रखनेकी आवश्यकता जान पड़ती है। यदि श्रीमती रिचकी बीमारी बीचमें न आती, तो समितिका खर्च कम होता। किन्तु जो खर्च हुआ है, उतनेसे भी समितिका काम चलाया जा सकता है। यह भी हमारे लिए कम खुशीकी बात नहीं है। इसलिए हमें विश्वास है कि समितिको चलाने लिए प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक भारतीय परिश्रम करेगा। बहुत-से व्यक्ति सहज ही इस काममें मदद कर सकते हैं। इसलिए हमें आशा है कि प्रत्येक भारतीय इस सम्बन्धमें आवश्यक सहायता देगा और अपने विचार प्रकट करेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१–३–१९०८

७१. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

यूरोपीयोंको भारतीयोंका प्रीति-भोज

भारतीय समाजने अपने कुछ कर्त्तव्योंमें से एक कर्त्तव्य गत शनिवार तारीख १४ को पूरा किया। सत्याग्रह संघर्षमें कुछ गोरोंने अच्छी-खासी मदद की थी। उनके सम्मानमें कुछ-न-कुछ करना समाजका कर्तव्य था। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि टिकटें निकालकर प्रीति-भोज दिया जाये। टिकटोंका शुल्क रखा जाये और उनकी आमदनीसे निमन्त्रित गोरोंको भोज दिया जाये। इससे यह भी मालूम हो जायेगा कि भारतीय मुखिया कुछ खर्च करनेको तैयार हैं या नहीं। संघपर बिना कोई अधिक बोझ पड़े गोरोंसे सम्बन्ध घनिष्ठ करनेकी यह बात सबको पसन्द आई और भोजकी तिथि निश्चित कर दी गई। श्री केलनबैककी[1] मददसे भोजके लिए मेसॉनिक हॉल मिल गया और वहाँके मन्त्रीने भोजन तैयार करानेकी जिम्मेदारी अपने सिर ले ली। प्रत्येक टिकटकी दर दो गिन्नी रखी गई। मेसॉनिक हॉलके मालिकने प्रति व्यक्ति १० शिलिंग लिया। भोजके निमन्त्रणपत्र छपवाने आदिका खर्च अतिरिक्त हुआ। जिन गोरोंको आमन्त्रित किया गया, वे थे श्री हॉस्केन (संसद-सदस्य), श्री और श्रीमती फिलिप्स, श्री और श्रीमती डोक, श्री कार्टराइट (ट्रान्सवाल 'लीडर' के सम्पादक), श्री डेविड पोलक, श्री और श्रीमती वॉगल, श्री आइज़क, श्री ब्रिटलबैंक, रेवरेंड श्री पेरी,[2] श्री कैलनबैक, श्री मैकिंटायर,[3] कुमारी स्लेशिन, श्री और श्रीमती पोलक, श्री ब्राउन,[4] तथा 'रायटर' के प्रतिनिधि श्री प्रॉक्टर। अन्य जिन लोगोंको आमन्त्रित किया गया था, उनमें श्री स्टेंट ('प्रिटोरिया न्यूज' के सम्पादक), श्री एडवर्ड्स, श्री लिख्तन्स्टाइन,[5] श्री लुई, श्री हॉफमेयर,[6] तथा श्री हावर्ड पिम भी थे। ये सज्जन उपस्थित नहीं हुए, किन्तु इनमें से लगभग सभीने शुभ कामनाएँ भेजी थीं। श्री स्टेंटने तार भेजा था। श्री पिमने अपने पत्रमें लिखा था कि "मुझे दुःख है कि मैं अन्यथा व्यस्त होनेके कारण आ नहीं सकता; मैं हृदयसे आशा करता हूँ कि आपका काम सफलतापूर्वक सम्पन्न होगा और सरकार तथा भारतीय समाजके बीच जो सद्भाव पैदा हुआ है, वह सदा बना रहेगा।" चीनी संघके प्रमुख श्री क्विन भी उपस्थित थे। भारतीयोंकी संख्या लगभग ४० थी।

१. हरमान कैलनबैक; जोहानिसबर्गके एक सम्पन्न वास्तुकार और "आध्यात्मिक प्रवृत्तियोंके व्यक्ति।" उन्हें फोक्सरस्टके एक यूरोपीयने उनकी भारतीयोंके प्रति सहानुभूतिके कारण द्वन्द्व-युद्धके लिए चुनौती दी थी। उन्होंने उसे यह कहकर नामंजूर कर दिया कि "मैंने शान्तिका धर्म अपना लिया है"। वे स्वयं सत्याग्रही हो गये थे और उन्होंने जोहानिसबर्गके पास स्थित अपना १२०० एकड़का 'टॉल्स्टॉय फार्म' सत्याग्रहियोंके परिवारोंको रखनेके लिए दे दिया था। वे इसमें खातीगीरी, बागबानी और जूते बनाना सिखाते थे। जूते बनाना उन्होंने ट्रैपिस्ट मठमें सीखा था। वे गांधीजीके साथ मिलकर भोजन-सम्बन्धी प्रयोग करते थे। गांधीजीने कहा है कि उनमें "तीव्र भावना, व्यापक सहानुभूति और बाल-सुलभ सरलता" है। देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास** और **आत्मकथा**।

२. रेवरेंड पेरी: जोहानिसबर्गके ट्रायविले बेप्टिस्ट गिरजाघरके पादरी।

३. जे० डब्ल्यू० मैकिंटायर; एक स्कॉट थियॉसफिस्ट और गांधीजीके मुंशी।

४. एफ० एच० ब्राउन; लन्दनमें **टाइम्स ऑफ इंडियाके** संवाददाता; १९०६ में ट्रान्सवाल एशियाई कानून-संशोधन अध्यादेशके सिलसिलेमें लॉर्ड एलगिन और श्री मार्लेसे भेंट करनेवाले शिष्टमण्डलके एक सदस्य।

५ तथा ६. जोहानिसबर्गके वकील।

अध्यक्ष थे श्री ईसप मियाँ। श्री ईसप मियाँ, श्री इमाम अब्दुल कादिर, श्री कामा तथा श्री गांधीने सहायता देनेवाले गोरोंके प्रति आभार प्रदर्शित किया; और बादमें उनकी ओरसे श्री हॉस्केनने उत्तर दिया। उसमें उक्त महोदयने कहा :[1]

> मैंने जुलाईमें भारतीय समितिको कायदा मान लेनेकी सलाह दी थी। मुझे अब उस बातपर शर्म आती है। मेरा विचार भारतीय समाजका भला करनेका ही था। मुझे लगा कि बोअर सरकारका मुकाबला करना निरर्थक है किन्तु मुझे श्री गांधीने जवाब दिया कि भारतीय समाज आदमीकी मददके बलपर नहीं लड़ रहा है, उसका आधार ईश्वरीय सहायता है और जिसके नामसे उसने लड़ाई शुरू की है, वही उसकी मदद करेगा। देखता हूँ कि ये शब्द ठीक सिद्ध हुए हैं। भारतीय समाजने जो बहादुरी दिखाई है, उससे बहुत-से गोरोंकी सहानुभूति बढ़ी है। भारतीय समाजने गोरोंको बहुत-कुछ सिखाया है। इस भोजके आयोजनसे मुझे खुशी हुई है। गोरे और कालोंको मिलकर रहना ही शोभा देता है। भारतीय समाजने जो एकता, धीरज और नम्रता दिखाई है, वह बहुत ही प्रशंसनीय है।

श्री कार्टराइटने कहा : मैं अधिक नहीं कर सका, इसलिए लज्जित हूँ। भारतीय समाजकी वीरतासे उसका मान बहुत अधिक बढ़ा है। उसने जो उदाहरण उपस्थित किया है, वह अत्यन्त अनुकरणीय है।

श्री फिलिप्सने कहा :

> मैं श्री हॉस्केनके शब्दोंका समर्थन करता हूँ। एशियाके लोगोंने ईश्वरके ऊपर सच्चा विश्वास दिखाया है। गरीब गोरोंकी मदद करनेवाले संघको चीनियोंने १०५ पौंड देकर बहुत-बड़ा आदर्श उपस्थित किया है। जिन गोरोंने उन्हें परेशान किया, जो संघ काले लोगोंकी मदद नहीं करता, उन्हीं गोरोंकी, उसी संघकी चीनियोंने मदद की, यह कोई मामूली बात नहीं है। मुझे बड़ी ही प्रसन्नता हुई है कि हम आज इस तरह इकट्ठे हुए हैं। कुछ लोगोंके मनमें सन्देह है कि सरकार दगा देगी। किन्तु सरकार अब दगा नहीं दे सकती। यदि दे, तो विरोध करनेके लिए काफी गोरे भी आगे आयेंगे।

श्री डोकने भाषणमें कहा, "भारतीय समाजने सत्याग्रहकी सच्ची लड़ाई लड़ी है। वह अपने नामको इसी तरह निभाता चला जायगा, ऐसी आशा है।"

श्री प्रॉक्टरने कहा :

> रायटरका काम केवल समाचार देना था। यदि श्री पोलक समुचित ढंगसे समाचार न देते, तो रायटरने जितना किया, उतना करना सम्भव न होता।

बादमें श्री डी० पोलकने भाषण देते हुए कहा :

> भारतीय समाजने सारे काले लोगोंकी मुक्तिका दरवाजा खोल दिया है। इस समाजने वास्तविक साम्राज्यवादको समझा है। उसके कामसे काले और गोरे काफी हद तक पास-पास आये हैं।

तदनन्तर श्री पोलकका संक्षिप्त भाषण हुआ और बादशाहकी दीर्घायु-कामनाका गीत गाया गया। इसके बाद ११ बजे सभा समाप्त हुई।

१. भाषणका यह सारांश स्वतंत्र रूपसे तैयार किया गया प्रतीत होता है।

खानेकी वस्तु सूचित करनेवाले कार्डके ऊपर छापा गया था: "सत्याग्रहकी लड़ाईमें सत्य और न्यायके लिए जिन गोरोंने संघर्ष किया यह भोज उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए दिया गया है।"

भोजनमें २४ वस्तुएँ थीं। उनमें मांसकी कोई वस्तु नहीं थी। अर्थात् सभीको रुचनेवाली वस्तुएँ-भर वहाँ थीं। चीजें ऐसी बनाई गई थीं कि गोरे और हमारे समाजके सब लोगोंको पसन्द आयें। पीनेके लिए नीबूका शर्बत (लैमनजूस) सोडावाटर, वगैरह दिये गये थे।

कहा जाता है कि दक्षिण आफ्रिकामें यह अपने ढंगका पहला ही भोज था। किसी गोरेकी भावनाको निरर्थक ठेस न लगे इसलिए इस भोजके सम्बन्धमें कोई चर्चा नहीं की गई, बल्कि इसे पूरी तरह गुप्त रखा गया।

चीनियोंका भोज

चीनियोंने शुक्रवारको मानपत्र देनेके लिए सभा बुलाई है; वे भी हमारी तरह उस दिन भोज देंगे जिसका विवरण अगले सप्ताह दिया जायेगा।[1]

पंजीयन कार्यालय

पंजीयनका काम यहाँ आगामी शुक्रवारको बन्द हो जायेगा। प्रिटोरियामें भी उसी दिन बन्द होगा। पाँच हजारसे ऊपर प्रार्थनापत्र जोहानिसबर्गमें दिये जा चुके हैं। जान पड़ता है, अब और कोई नहीं बचे। पीटर्सबर्गमें कार्यालय ३० तारीखको खुलेगा। स्पेलोनकिनके कुछ व्यक्तियोंका पंजीयन हो गया है। जर्मिस्टनमें कार्यालय २३ तारीखको खुलेगा। जीरस्ट, लिख्तनबर्ग और वेरिनिगिंगमें कार्यालय खुल चुके हैं। जीरस्ट और लिख्तनबर्गमें कर्मचारियोंने गलतफहमीके कारण पहले सबसे १० अँगुलियोंकी छाप अथवा हलफिया बयान माँगे। इसपर संघने तुरन्त तार किया और अब ठीक प्रबन्ध हो गया है।

परवाने

परवाने अब बिना किसी परेशानीके मिल सकते हैं; बहुतसे लोग तो ले भी चुके हैं।

धोखाधड़ी

पंजीयकके सामने इस समय कुछ भारतीय झूठी जानकारी देते हैं। बच्चोंके झूठे नाम या अधिक नाम गिना देते हैं। इस सबसे उनका नुकसान होगा। ऐसे लोगोंको बहुत सावधानीसे चलना चाहिए।

स्त्रियोंके अँगूठेकी छाप

फोक्सरस्टमें किसी स्त्रीके अँगूठेकी छाप ली गई थी; अब बन्दोबस्त हो गया है और किसी भी स्त्रीका अँगूठा नहीं लिया जाता।

परवानेके बारेमें सूचना

राजस्व आदाता (रिसीवर ऑफ रेवेन्यू)ने विशेष सूचना दी है कि कोई भी भारतीय तत्काल परवाना ले सकता है। अनुमतिपत्र दिखानेकी भी आवश्यकता नहीं है। फिर भी अबतक बहुत कम भारतीयोंने परवाने लिये हैं। यदि इस समय परवाने नहीं ले लिये जाते तो बिना परवानोंके व्यापार करनेपर मुकदमे चलाये जायेंगे। इसलिए सभी भारतीय व्यापारियों अथवा फेरीवालोंको तुरन्त परवाने ले लेने चाहिए।

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ १५५।

जस्टिस अमीर अली

ब्रिटिश भारतीय संघके सदस्योंने श्री जस्टिस अमीर अलीको मानपत्र देनेका निश्चय किया है और वह लॉर्ड ऐम्टहिलको भेजे जानेवाले मानपत्रके ही साथ जायेगा।

इसके सिवा जिन्होंने संघर्षमें भाग लिया है उन सबको हमीदिया इस्लामिया अंजुमनने मानपत्रके रूपमें पत्र लिख भेजनेका प्रस्ताव किया है। जिन लोगोंको ये पत्र भेजे जायेंगे, यथासम्भव उन सबके नाम प्रकाशित किये जायेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१–३–१९०८

७२. मेरा जेलका अनुभव [३]

खूराक

खूराकका प्रश्न कई व्यक्तियोंके लिए कई परिस्थितियोंमें विचारणीय हो जाता है। किन्तु कैदियोंके लिए तो यह प्रश्न और भी विचारणीय हुआ करता है। उनका स्वास्थ्य बहुत हदतक अच्छी खूराकपर ही आश्रित रहता है। खूराकके बारेमें नियम यह है कि जेलमें जो मिले वही लिया जाय; तथा दूसरी जगहसे कुछ न लिया जाये। फौजियोंको जो खूराक मिलती है वही लेनी पड़ती है किन्तु उनमें और कैदियोंमें बड़ा अन्तर है। सिपाहीको उसके भाईबन्द दूसरी खानेकी चीजें भेज सकते हैं और वे उन्हें ले सकते हैं। कैदीको तो खानेकी और कोई चीज लेना मना है। खूराककी असुविधा कैदखानेका बड़ा चिह्न है। बातचीतमें भी जेलका अधिकारी कहेगा कि जेलमें स्वादकी बात तो है ही नहीं। सुस्वादु वस्तु जेलमें नहीं दी जाती। जब जेलके डॉक्टरसे मेरी बातचीत हुई तब मैंने उससे कहा कि रोटीके साथ चाय अथवा घी अथवा अन्य किसी वस्तुकी जरूरत है। तो उसने कहा कि यह तो आप स्वादके विचारसे माँग रहे हैं, जो जेलमें सम्भव नहीं है।

अब हम जेलकी खूराकका विचार करें। जेलके नियमके मुताबिक पहले हफ्ते भारतीयोंको निम्नानुसार खूराक मिलती है: सवेरे १२ औंस मकईके आटेकी लपसी, चीनी या घीके बिना। दोपहरको ४ औंस चावल और १ औंस घी। शामको चार दिन १२ औंस मकईके आटेकी लपसी। तीन दिन १२ औंस उबाली हुई सेम और नमक।

यह खूराक वतनियोंको दी जानेवाली खूराकके आधारपर तय की गयी है। अन्तर इतना ही है कि शामको वतनियोंको कूटी हुई मकई तथा चर्बी दी जाती है। उसकी जगह भारतीयोंको [दोपहरके भोजनमें] चावल मिलता है।

दूसरे हफ्तेसे और उसके बाद सदाके लिए मकईके आटेके साथ दो दिन उबाले हुए आलू और दो दिन कोई दूसरी तरकारी, जैसे पत्तागोभी तथा कद्दू आदि, दी जाती है। जो मांस खाते हैं उन्हें दूसरे हफ्तेसे इतवारके दिन तरकारीके साथ गोश्त भी दिया जाता है।

जो कैदी पहले पहुँच गये थे उन्होंने सोचा था कि सरकारसे कोई रियायत नहीं माँगेंगे और जो खूराक मिलेगी, तथा उसमें से जो पुसायेगी उसीसे काम चला लेंगे। वास्तवमें ऊपरकी खूराक भारतीयोंके लिए उपयुक्त नहीं कही जा सकती। वैद्यकके हिसाबसे ऊपरकी खूराकसे पर्याप्त पोषण मिल सकता है। मकई वतनियोंकी तो सदाकी खूराक है। इसलिए ऊपरकी खूराक उन्हें बहुत

ही माफिक आती है और इसीलिए वे जेलमें आकर तन्दुरुस्त हो जाते हैं। किन्तु भारतीयोंको तो चावलके सिवा कोई और चीज माफिक नहीं आती। मकईका आटा शायद ही कोई भारतीय खाता हो; अकेली सेम खानेकी भी हमें आदत नहीं होती। और वे लोग शाक-सब्जी जिस ढंगसे पकाते हैं वैसी शाक-सब्जी खाना भारतीयोंको कभी पसन्द नहीं आ सकता। वे शाक-सब्जी साफ नहीं करते और उसमें मसाला भी नहीं डालते। फिर वतनियोंके लिए बननेवाली सब्जी ज्यादातर तो गोरोंके लिए बनी हुई सब्जीका छिलका अथवा अवशेष होता है। मसालोंमें सिवा नमकके दूसरा कुछ भी नहीं दिया जाता। चीनीका तो नाम भी नहीं रहता। इसलिए ख़ूराकका मामला सबको कठिन लगा। फिर भी हमने निश्चय किया कि सत्याग्रही जेलके अधिकारियोंसे चिरौरी करने नहीं जायेंगे और उनकी कृपा भी नहीं चाहेंगे। इसलिए हम लोगोंने उपर्युक्त ख़ूराकसे सन्तोष कर लिया।

गवर्नरने हमसे पूछताछ की। उन्हें उत्तरमें बताया गया कि 'ख़ूराक ठीक नहीं है। किन्तु हम सरकारसे कोई रियायत नहीं चाहते। यदि सरकारको ही सूझे और वह फेरफार करे तो ठीक ही है; नहीं तो कानूनन जो ख़ूराक हमें मिलती है, हम वही लिया करेंगे।'

किन्तु यह निश्चय बहुत दिनोंतक नहीं टिका। जब और लोग आये तब हम सबने विचार किया कि दूसरोंको ख़ूराक-सम्बन्धी कष्टमें शामिल करना ठीक नहीं है। वे जेल आ गये, यही काफी है। और उनकी खातिर सरकारसे अलग माँग करना उचित है। इस खयालसे गवर्नरसे इसकी बातचीत शुरू कर दी। गवर्नरसे कहा कि यद्यपि हम चाहे जैसी ख़ूराकपर रह सकते हैं, फिर भी हमारे बादके लोग ऐसा नहीं कर पायेंगे। गवर्नरने इसपर विचार किया और यह उत्तर दिया कि, "केवल धार्मिक कारणोंसे अलग रसोई करनेकी इजाजत मिल सकेगी, लेकिन ख़ूराक तो जो दी जाती है वही रहेगी। दूसरे प्रकारकी ख़ूराक देना मेरे हाथमें नहीं है।"

इस बीच, जैसा पहले कह चुके हैं,[1] चौदह भारतीय और आ गये। उनमें कुछ लोगोंने पुपु (मकईकी लपसी) लेनेसे साफ इनकार कर दिया और भूखे रहने लगे। इसपर मैंने जेलके नियम पढ़ डाले और पाया कि इस विषयमें जेल-विभागके निदेशक (डायरेक्टर ऑफ प्रिजन्स) को आवेदनपत्र भेजा जा सकता है। तदनुसार गवर्नरसे अर्जी देनेकी इजाजत लेकर नीचे लिखे अनुसार अर्जी भेजी।[2]

उपर्युक्त प्रार्थनापत्रपर हम इक्कीस व्यक्तियोंने हस्ताक्षर किये। इसके बाद जब आवेदन-पत्र भेजा जा रहा था तब ७६ भारतीय और आ गये। उन्हें भी पुपु नापसन्द थी। इसलिए प्रार्थनापत्रके नीचे एक वाक्य यह जोड़ा गया कि ७६ व्यक्ति और आये हैं; और यह कठिनाई उन्हें भी महसूस होती है। अतएव तुरन्त प्रबन्ध किया जाना चाहिए। मैंने गवर्नरसे प्रार्थना की कि यह अर्जी तारसे भेजी जाये। इसपर उन्होंने टेलीफोनपर निदेशककी अनुमति लेकर तुरन्त पुपुके बदले चार औंस रोटी देनेका हुक्म दिया। हम सभी लोग बड़े खुश हुए। इस-लिए २२ तारीखसे हमें सबेरे ४ औंस रोटी मिलने लगी और शामको भी पुपुवाले दिन रोटी मिला करती। साँझको ८ औंस अर्थात् आधी रोटीका हुक्म था। यह व्यवस्था केवल दूसरे हुक्मके आने तक के लिए ही थी। गवर्नरने इस सवालपर विचार करनेके लिए समिति बैठाई थी और अन्तमें आटा, घी, चावल, दाल देनेकी बात चल रही थी कि इतनेमें हम लोग छूट गये और इसलिए कुछ खास नहीं हो पाया।

१. देखिए "मेरा जेलका अनुभव [२]", पृष्ठ १३४-३७।
२. प्रार्थनापत्रके अनुवादके लिए देखिए "प्रार्थनापत्र: जेल-निदेशकको", पृष्ठ ३८-३९।

पहले जब हम केवल ८ ही व्यक्ति थे तब हम रसोई नहीं बनाते थे। चावल ठीक नहीं बनता था और जब हरे शाककी बारी आती तब वह बहुत खराब बनता था। इसलिए हमने स्वयं पकानेकी इजाजत भी ले ली। पहले दिन श्री कड़वा रसोई बनाने गये। उसके बाद श्री थम्बी नायडू तथा श्री जीवण ये दोनों रसोई करने जाते थे। इन लोगोंने अन्तिम दिनोंमें रोज १५० आदमियों तक का भोजन बनाया। रसोई बनानेके लिए एक वक्त जाना पड़ता था। हफ्तेमें दो बार हरे शाककी बारी आती, तब दोनों वक्त जाना पड़ता था। श्री थम्बी नायडू खासा श्रम करते थे। सबको परोसनेका काम मेरे जिम्मे था।

पाठक उपर्युक्त प्रार्थनापत्रसे यह समझ सकेंगे कि ध्वनि हमने ऐसी रखी है कि हमें कुछ अपने ही लिए अलग तरहकी खूराक नहीं चाहिए बल्कि परिवर्तन भारतीय कैदी मात्रके लिए किया जाना चाहिए। गवर्नरसे भी इसी प्रकारकी बात हुआ करती थी और उसने यह मंजूर किया था। अब भी आशा की जा सकती है कि जेलमें भारतीय कैदियोंकी खुराकमें सुधार हो जायेगा।

फिर तीनों चीनियोंको चावलके बदले हमसे भिन्न खूराक मिलती थी, इससे जी कचोटता था। इससे ऐसा आभास होता था कि चीनियोंको हमसे अलग और हीन गिना जाता है। इसलिए उनकी ओरसे भी मैंने गवर्नर तथा श्री प्लेफर्डको अर्जी[1] भेजी और अन्तमें हुक्म आया कि चीनियोंको भारतीयोंकी तरह ही खूराक दी जाये।

खूराकके विषयमें लिखते हुए यूरोपीयोंको जो दिया जाता है उससे तुलना करना ठीक होगा। उन्हें सबेरे नाश्तेमें पुपु तथा ८ औंस रोटी मिलती है। [दोपहरके] खानेमें भी हमेशा रोटी और रसम् (सूप) अथवा रोटी और गोश्त तथा आलू अथवा हरा शाक। शामको सदा रोटी तथा पुपु। अर्थात् यूरोपीयोंको, तीन बार रोटी मिलनेके कारण पुपु मिलती है या नहीं, इसकी फिक्र नहीं होती। फिर गोश्त और रसम् मिलता ही था इसलिए इतना उन्हें हमसे अधिक मिला। सिवा इसके उन्हें कई बार चाय और कोको भी मिलती है। इस तरह वतनियोंको अपनी रुचिका और यूरोपीयोंको उनकी रुचिका भोजन मिलता था। बेचारे भारतीय अधरमें ही लटके रहे। उन्हें अपनी खूराक नहीं दी जाती; और यूरोपीयोंकी खूराक दी जाये तो गोरे बुरा मानें; और भारतीयोंकी अपनी खूराक क्या है इसका विचार भी अधिकारी किस लिए करें! तब फिर उनके लिए वतनियोंकी श्रेणीमें डाले जाकर दुःख भोगना ही रह गया।

ऐसा अंधेर अभीतक चल रहा है। मैं इसे अपने सत्याग्रहकी कसर मानता हूँ। एक प्रकारका भारतीय कैदी चोरीसे अन्य आवश्यक खूराक मँगाकर खाता है, इसलिए उसे भोजन-सम्बन्धी कष्ट नहीं होता। दूसरे प्रकारका भारतीय कैदी जो खराक मिलती है सो खा सकता है; अपने ऊपर आये हुए दुःखकी कहानी कहनेमें उसे शर्म आती है अथवा दूसरोंकी वह कोई चिन्ता नहीं करता। इसलिए बाहरके लोग अँधेरेमें रहते हैं। यदि हम सत्यपर दृढ़ रहें और जहाँ अन्याय हो वहाँ विरोधकी आवाज उठायें तो ऐसे कष्ट सहन ही न करने पड़ें। इस प्रकार यदि स्वार्थ छोड़ दें और परमार्थका ध्यान रखें तो कष्ट-निवारणका उपाय तत्काल निकल आता है।

किन्तु जिस प्रकार ऐसे कष्टका उपाय आवश्यक है उसी प्रकार एक अन्य विचार करना भी जरूरी है। जेल जानेपर कुछ-न-कुछ कष्ट उठाने ही पड़ते हैं। यदि कष्ट ही न

१. यह उपलब्ध नहीं है।

हों तो कैदी कैसा? जो अपने मनको मार सकता है वह कष्टमें आनन्दका अनुभव करके जेलमें मौजसे रह सकता है। फिर भी दुःखकी बात वह भूलता नहीं। उसे दूसरोंकी खातिर इसे भूलना भी नहीं चाहिए। फिर, हम अपने सारे आचारोंको ऐसे हठपूर्वक पकड़े हुए हैं कि उनमें बिना कोई परिवर्तन किये काम नहीं चल सकता। 'जैसा देश वैसा भेव' — यह कहावत प्रसिद्ध है। हम दक्षिण आफ्रिकामें रहते हैं तो हमें यहाँकी खूराकमें जो भी अच्छा है उसकी आदत डाल लेनी चाहिए। पुपु गेहूँकी तरह अच्छी, सादी और सस्ती खूराक है। उसमें स्वाद नहीं है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। कई बार वह गेहूँसे भी बढ़कर लगती है। फिर मेरे खयालसे तो हम जिस देशमें रहते हैं उस देशके सम्मानकी दृष्टिसे वहाँकी भूमिमें जो पैदा होता हो सो खाद्य, यदि खराब न हो तो, अंगीकार करना उचित है। अनेक गोरे, उन्हें पसन्द है इसलिए, सबेरे पुपु लेते हैं; उसके साथ दूध अथवा घी अथवा चीनी मिलनेसे वह स्वादिष्ठ बन जाती है। इसलिए उक्त कारणोंसे और हमें अभी फिर कई बार जेल जाना पड़ेगा इसलिए पुपु खानेकी आदत हर भारतीयको डाल लेनी चाहिए; यदि हम ऐसा करें तो केवल नमकके साथ पुपु खानेका अवसर उपस्थित होनेपर भी बहुत कठिनाई नहीं होगी। अपनी कुछ आदतोंको देशके भलेके लिए छोड़े बिना चारा नहीं है। जो राष्ट्र आगे बढ़े हैं उन्होंने महत्त्वहीन बातोंका आग्रह नहीं रखा है। मुक्ति-सेना (साल्वेशन आर्मी) के लोग जिस देशमें जाते हैं वहाँके अच्छे रिवाज, पोशाक आदि ग्रहण करके लोगोंका मन हर लेते हैं।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, २१–३–१९०८

७३. पत्रः मगनलाल गांधीको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च २६, १९०८

चि० मगनलाल,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। मैं आशा करता हूँ, तुम श्री पोलकसे निरन्तर सम्पर्क बनाये रखोगे। मैं समझौतेके सम्बन्धमें भारतीय समाचारपत्रोंकी कतरनें देखना चाहता हूँ। मुझे आशा है, हसनके[1] जानेसे पहले तुमने उसका स्वागत-सत्कार किया होगा।

श्री बद्रीसे कहो कि रुपया फिरसे जमा कर दिया गया है और ब्याज उसके खातेमें जुड़वा दिया गया है। श्री लैबिस्टरसे[2] मुझे डेनहाऊसर-सम्पत्तिके कागजात मिल गये हैं और मैं उनको देख रहा हूँ। इसके बाद श्री बद्रीको इस मामलेमें और ज्यादा लिखूँगा। तुम्हारा २१ पौंडके उल्लेखसे क्या मतलब है सो मैं ठीक-ठीक नहीं समझा। क्या यह रकम प्रेसको श्री बद्रीसे मिली है?

तुम्हारा शुभचिन्तक,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४८०४)से।

१. नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष श्री दाउद मुहम्मदके पुत्र श्री हसन ऊँची शिक्षा प्राप्त करनेके लिए इंग्लैंड जा रहे थे।

२. देखिए "पत्र: सी० ए० डी आर० लैबिस्टरको", पृष्ठ १३९।

७४. पाँच करोड़ भुखमरीसे ग्रस्त

भारतके तारोंसे मालूम हुआ है कि लॉर्ड मिंटोने अपने भाषणमें मध्यभारतमें पाँच करोड़ लोगोंके अकालग्रस्त होनेकी बात कही है और कहा है कि यदि उन्हें मदद न मिली तो केवल अन्नकी कमीसे उनके प्राण चले जायेंगे। इस समाचारको पढ़कर किस भारतीयको रोमांच न हुआ होगा, किसका मन रो न उठा होगा? फिर भी किसीके मनमें यह आता होगा कि हम लोग इतनी दूर बैठकर क्या कर सकते हैं; कुछ यह भी सोचते होंगे कि इस मामलेमें तो भारतमें होते तो भी मदद नहीं की जा सकती थी, यह तो दैवी प्रकोप ठहरा इसलिए इसमें कुछ नहीं किया जा सकता। इसके सिवा कुछ लोग अंग्रेजी राज्यको दोष देते होंगे। हम इन सब बातोंको भ्रमपूर्ण मानते हैं। अपना नहीं, दूसरेका दोष देखना यह साधारण स्वभाव है। दूसरेकी गलती तुरन्त दिखाई पड़ जाती है, किन्तु जरा गहराईसे विचार करना चाहिए।

हमारा निश्चित अभिप्राय है कि यद्यपि यह स्थिति निस्सन्देह ईश्वरीय इच्छासे उत्पन्न हुई है, तथापि इसमें दोष हमारा है और वह मुख्य रूपसे यह है कि हममें सत्यकी बहुत कमी दिखाई पड़ती है। बहुत हदतक गोरे सोच-समझकर हम लोगोंपर झूठका आरोप लगाते हैं। सभी गोरे शत्रुताके कारण आरोप नहीं लगाते। हम ऐसे आरोपोंसे चिढ़ते हैं। यदि चिढ़नेके बदले हम उनका सम्यक् अर्थ करें और मनमें उनपर विचार करें, तो बड़ा लाभ हो सकता है।

भारतके भारतीयोंसे यहाँके भारतीय कुछ अलग नहीं हैं। यदि हम ट्रान्सवाल या नेटालको देखें, तो दिखेगा कि हम लोगोंमें झूठ बहुत बढ़ गया है। झूठके इस दोषसे हमारी हानि होती है। इस दोषको दूर करनेके बदले हम सरकारका विरोध करते हैं और उसपर रोष प्रकट करते हैं। सरकार मर्यादा छोड़ देती है, इसलिए विरोध किये बिना काम नहीं चलता। फिर भी केवल सरकारका विरोध करनेसे ही हम सुखी नहीं हो सकते।

हमें अपना विरोध भी करना चाहिए। धोखा देनेकी आदत छोड़ देनी चाहिए। हम जैसा सरकारी मामलोंमें करते हैं, वैसा ही व्यक्तिगत व्यवहारमें भी करते हैं। परिणामस्वरूप हम डरपोक बनते हैं और अपना डर ढाँकनेके लिए कदम-कदमपर प्रवंचना और दम्भका मार्ग पकड़ते हैं।

नेटालमें व्यापारिक परवानोंके लिए हम गलत ढंगसे बहुत पैसा खर्च करते हैं, किन्तु सचमुच जो सचाई बरतनी चाहिए वह नहीं बरतते। सही ढंगसे परवाने लेनेकी शक्ति बहुत थोड़े भारतीयोंमें है।

ट्रान्सवालमें सबको अपनी-अपनी पड़ी रहती है। जैसे-तैसे अनुमतिपत्र चाहिए और जितने लड़कोंको लाते बने उतनोंको दाखिल कर डालना चाहिए। यह सारा लोभ ही पापका मूल है। यह उदाहरण जल्दी समझा जा सकता है, इसलिए हमने दिया। झूठके और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं।

कुछ पाठक पूछेंगे कि ट्रान्सवालके अनुमतिपत्रों और नेटालके व्यापारिक परवानोंके झूठेपनके साथ अकालका क्या सम्बन्ध है? यह बात हमारी समझमें नहीं आती, यही हमारी चूक है।

हमने जो उदाहरण दिये हैं, वे केवल हमारे महारोगकी निशानियाँ हैं। हमारी मान्यता है कि जबतक छल-कपटके ऐसे तरीके हमारे बीच चलते रहेंगे, तबतक भारतके लिए चैनसे बैठना कभी सुलभ न होगा। हम यहाँसे पैसा भेजें अथवा कोई दूसरी मदद करें, इसके बजाय हमें स्वयं अच्छा होना चाहिए। सत्य ग्रहण करना बड़ी मदद है, और सच्ची मदद है। यहाँके भारतीय सत्य करनेवाले, सत्य बोलनेवाले और बहादुर बनें, तो उसका असर भारतपर अवश्य पड़ेगा। शरीरमें कोई पीड़ा हो, तो मनको उसकी प्रतीति होती है। यदि कहीं [किसी हिस्सेमें] कुछ अच्छा हो, तो उसका अच्छा असर सब जगह होता है। इसी प्रकार जिस समाजमें कुछ लोग अच्छा करते हैं उसका अच्छा असर तमाम समाजपर पड़ता है और खराब करनेका असर खराब पड़ता है। यह ईश्वरीय नियम है, ऐसा हम मानते हैं। और यदि हमारे पाठक भी ऐसा ही मानते हों, तो पाँच करोड़ भारतीयोंमें फैली हुई दुःखदायी भुखमरीका वर्णन पढ़कर दयालु भारतीयोंको तुरन्त सत्य धारण करने-करानेका प्रयत्न करना चाहिए। हम इसीको अपने देशकी सच्ची मदद समझते हैं। यह इलाज बहुत कठिन है; उसी प्रकार बहुत सरल भी है। थोड़ा विचार करनेसे सभी इस निर्णयपर पहुँच सकेंगे कि यही सच्चा उपाय है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–३–१९०८

७५. मेरा जेलका अनुभव [४]

रोगी

हम डेढ़ सौ कैदियोंमें से यदि एक भी बीमार न पड़ता तो बड़े ताज्जुबकी बात होती। पहले रोगी श्री समुन्दर खाँ थे। उन्हें तो जब वे जेलमें आये तभी तकलीफ थी। इसलिए उन्हें आनेके बाद दूसरे ही दिन अस्पतालमें ले गये। श्री कड़वाको संधिवातका रोग था। कितने ही दिनों तक कैदखानेमें ही डॉक्टरसे मरहम वगैरह लेते रहे। किन्तु बादमें उन्हें भी अस्पतालमें भर्ती होना पड़ा। दूसरे अन्य दो कैदियोंको चक्कर आनेके कारण अस्पताल ले जाया गया। हवा बहुत गर्म थी इसलिए, और बाहर धूपमें रहना होता था इसलिए, किसी-किसीको चक्कर आ जाते थे। उनकी सार-सँभाल यथासम्भव की जाती थी। आखिरी दिनोंमें श्री नवाबखाँ भी बीमार पड़ गये थे। और छूटनेके दिन चलनेके लिए उन्हें हाथोंका सहारा देना पड़ा था। डॉक्टरने उनको दूध आदि देनेका आदेश दिया, तब कहीं उनकी तबीयत कुछ सँभली। फिर भी कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि सत्याग्रही कैदियोंका स्वास्थ्य ठीक रहता था।

जगहकी तंगी

मैं कह चुका हूँ कि हमें जिस कोठरीमें बन्द किया जाता था उसमें केवल ५१ कैदियोंके रहने योग्य जगह थी। आँगन भी उतने ही कैदियोंके लायक था। अन्तमें जब ५१ की जगह १५१ से भी अधिक कैदी हो गये तब बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई। गवर्नरने बाहर तम्बू लगवाये। कई लोगोंको वहाँ ले जाया जाता था। आखिरी दिनोंमें १०० कैदी सोनेके लिए बाहर जाते थे; किन्तु सवेरे उन्हें वापस ले आया जाता था; इसलिए आँगन बहुत छोटा पड़ता था। उतनी-सी जगहमें कैदी बड़ी मुश्किलसे रह पाते थे। और तिसपर हम अपनी

आदतके मुताबिक जहाँ-तहाँ थूक देते थे; इसलिए जगहके बहुत गन्दे होने और लोगोंके बीमार पड़नेकी सम्भावना पैदा होती थी। किस्मतसे लोग समझानेपर मान जाते थे और आँगन साफ रखनेमें मदद करते थे। आँगन तथा पाखानेकी देख-रेख बड़ी सतर्कताके साथ की जाती थी। तभी लोग बीमारीसे बच पाये। इतने कैदियोंको ऐसी तंग जगहमें रखा गया, इसमें सरकार दोषी है, इसे सभी मानेंगे। यदि जगहकी तंगी थी तो सरकारको लाजिम था कि इतने कैदियोंको न भेजती। यदि संघर्ष लम्बा चलता तो सरकार और कैदियोंका समावेश नहीं कर सकती थी।

वाचन

मैंने पहले कहा है[1] कि गवर्नरने हमें जेलमें मेज दी जानेकी अनुमति दे दी थी। साथ ही दावात कलम आदि भी दिये गये थे। जेलमें एक पुस्तकालय भी था। उसमें से कैदियोंको किताबें दी जाती हैं। उनमें से मैंने कार्लाइलकी पुस्तक तथा बाइबल ली थीं। जो चीनी दुभाषिया आता था उसके पाससे अंग्रेजीमें कुरानशरीफ, हक्सलेके भाषण, कार्लाइल द्वारा लिखित बर्न्स, जॉन्सन और स्कॉटके जीवन-वृत्तान्त तथा बेकनके नीति-विषयक निबन्ध — ये पुस्तकें मैंने ली थीं। मेरी अपनी पुस्तकोंमें से मणिलाल नभुभाईकी[2] टीकावाली गीताजीकी पुस्तक, तमिल पुस्तकें, मौलवी साहब द्वारा दी हुई उर्दूकी किताब, टॉल्स्टॉयकी रचनाएँ, रस्किन तथा सॉक्रेटीजकी[3] रचनाएँ, ये पुस्तकें थीं। मैंने इनमें से बहुतसी किताबें जेलमें पढ़ीं या दुबारा पढ़ीं। तमिलका नियमसे अभ्यास करता था। सवेरे गीताजी और दोपहरमें ज्यादातर कुरानशरीफके अंश पढ़ता, शामको श्री फोर्तोएनको बाइबिल पढ़ाता। श्री फोर्तोएन चीनी ईसाई हैं। उनका अंग्रेजी सीखनेका इरादा था, इसलिए उन्हें बाइबिलके द्वारा अंग्रेजी सिखाता था। यदि दो माहका पूरा जेल-निवास भोगा होता तो कार्लाइलकी एक पुस्तकका और रस्किनकी पुस्तकका[4] अनुवाद पूरा कर सकनेकी आशा थी। मेरा खयाल है कि मैं ऊपरकी पुस्तकोंमें डूबा रह सकता था। इसलिए यदि मुझे दो माहसे भी अधिककी सजा हुई होती तो मैं हिम्मत न हारता। इतना ही नहीं, मैं अपने ज्ञानमें उपयोगी वृद्धि कर सकता था। अर्थात् बड़े मजेमें रहता। फिर मेरी यह भी मान्यता है कि जिन्हें अच्छी पुस्तकें पढ़नेका शौक है वे एकान्तका समय चाहे जैसी जगहमें आसानीसे काट सकते हैं।

जेलके साथियोंमें मेरे सिवा पुस्तकें पढ़नेवाले थे श्री सी० एम० पिल्ले, श्री नायडू और चीनी कैदी। दोनों ही नायडू गुजराती सीखने लगे थे। अन्तिम दिनोंमें कुछ गुजराती गीतोंकी पुस्तकें भी आई थीं; उन्हें बहुत लोग पढ़ते थे। किन्तु मैं इसे वाचन नहीं मानता।

कवायद

जेलमें सारा दिन पढ़ते ही नहीं रह सकते। और यदि वह सम्भव भी हो तो अन्ततोगत्वा हानिकारक होगा, हम यह जानते थे; इसलिए हमने बड़ी कठिनाईसे दरोगाके पास

१. देखिए "मेरा जेलका अनुभव [२]", पृष्ठ १३४-३७।

२. मणिलाल नभुभाई द्विवेदी (१८५८–९८); संस्कृतके पण्डित, गुजराती कवि, लेखक व पत्रकार; भारतीय दर्शनपर कई पुस्तकोंके प्रणेता; स्वामी विवेकानन्दके साथ विश्वधर्म परिषद (अमेरीका) में शरीक हुए थे।

३. स्पष्टतः **प्लेटोज़ डायलॉग्स,** क्योंकि गांधीजीने निश्चय ही इन्हीं दिनों **एक सत्यवीरनी कथा** (सुकरातका मुकदमा और उसकी मृत्यु) नामकी गुजराती लेख-माला लिखना प्रारम्भ किया होगा।

४. **अन्टु दिस लास्ट।**

कसरत-कवायद सीखनेकी इजाजत गवर्नरसे ले ली थी। दरोगा बड़ा सज्जन था। अतएव वह हमें बड़ी खुशीसे सुबह-शाम कवायद करवाता था। और वह बहुत मुफीद थी। लम्बे अर्सेतक यह कवायद चलती रहती तो हम सबको बड़ा लाभ होता। किन्तु जब ज्यादा भारतीय इकट्ठे हो गये, तो दरोगाका काम भी बढ़ गया और आँगन छोटा पड़ गया, इसलिए कवायद बन्द हो गई। फिर भी श्री नवाबखाँ साथ थे, इसलिए उनकी सहायतासे थोड़ी-बहुत मामूली कवायद चलती रही।

इसके अतिरिक्त गवर्नरकी इजाजतसे हमने सिलाईकी मशीनपर सीनेका काम ले लिया था। उसपर कैदियोंकी जेबें सीना सीखते थे। श्री थम्बी नायडू और श्री ईस्टन इस तरहके काममें निपुण थे। इसलिए उन्होंने इसे जल्दी सीख लिया। मुझे अच्छी तरह सीखनेमें देर लगी। अभी पूरा सीखे भी नहीं थे कि इतनेमें कैदियोंकी संख्या एकदम बढ़ गई। इसलिए वह काम अधूरा ही रह गया। पाठक इस-प्रकार समझ सकते हैं कि आदमी चाहे तो जंगलमें मंगल कर सकता है। इस तरह ढूँढ़कर एकके बाद एक काम करते रहते तो किसीको भी जेलकी अवधि भारी न लगती; प्रत्युत अपने ज्ञान और बलमें वृद्धि करके बाहर आते। इसके कई उदाहरण मिलते हैं कि जेलमें अच्छी नीयत रखनेवाले लोगोंने बड़े-बड़े काम भी किये हैं। जॉन बनियनने कारावासमें बड़ी तकलीफोंके बीच दुनियामें अमरता प्राप्त करनेवाली 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' नामक पुस्तक लिखी। उस पुस्तकको अंग्रेज लोग बाइबिलके बाद दूसरे नम्बरकी कृति मानते हैं। श्री तिलकने बम्बईके जेलमें नौ महीनेके भीतर अपना 'ओरायन' नामक ग्रन्थ लिखा। इसलिए जेलमें अथवा अन्यत्र सुख या दुःख पाना, अच्छा या निकम्मा बनना ज्यादातर स्वयं अपने मनपर निर्भर करता है।

मुलाक़ात

जेलमें हम लोगोंसे मिलने कुछ अंग्रेज आया करते थे। सामान्य नियम यह था कि पहले महीनेमें कोई भी कैदीसे मुलाकात करनेके लिए नहीं आ सकता। इसके बाद प्रति मास किसी एक रविवारको एक व्यक्तिसे भेंट करनेकी इजाजत रहती है।[1] इस नियममें विशिष्ट कारणोंसे परिवर्तन किया जाता है। ऐसे फेरफारका लाभ श्री फिलिप्सने लिया। हम लोग जिस दिन जेल पहुँचे उसके दूसरे ही दिन उन्होंने श्री फोर्तोएनसे, जो चीनी ईसाई हैं, मिलनेकी इजाजत माँगी और वह उन्हें मिल गई। उक्त सज्जन श्री फोर्तोएनके साथ-साथ हम अन्य कैदियोंसे भी मिले। उन्होंने हम सबको हिम्मतके वचन सुनाये और बादमें अपनी पद्धतिके अनुसार ईश्वरकी प्रार्थना की। श्री फिलिप्स इस तरह तीन बार मिलकर गये। इसी तरह श्री डेविस नामक अन्य पादरीने भी मुलाकात की।

श्री पोलक तथा श्री कोयन[2] विशेष अनुमति लेकर एक बार मिलने आये थे। उन्हें[3] केवल दफ्तरके कामके बारेमें मिलनेकी इजाजत थी। जो इस तरह मिलने आता है उसके साथ हमेशा दरोगा रहता है। और जो बातचीत होती है वह उसके सामने ही।

१. मूल गुजराती वाक्यसे यह स्पष्ट नहीं होता कि कोई कैदी महीनेमें सिर्फ एक ही मुलाकातीसे मिल सकता था, अथवा मुलाकातीको भी महीनेमें बस एक ही कैदीसे मिलने दिया जाता था।

२. श्री रिचके श्वसुर-महोदय।

३. 'उन्हें' से यहाँ तात्पर्य श्री पोलकसे है।

'ट्रान्सवाल लीडर' के सम्पादक श्री कार्टराइट विशेष अनुमति लेकर तीन बार मिलने आये। वे समझौता करानेके उद्देश्यसे ही आते थे। अतएव उन्हें अकेलेमें (दरोगाकी अनुपस्थितिमें) भेंट करनेकी इजाजत थी। पहली मुलाकातमें उक्त महोदयने इस बातपर विचार-विमर्श किया कि भारतीय समाज क्या स्वीकार करेगा। दूसरी मुलाकातमें वे अपने और अन्य अंग्रेज नेताओं द्वारा तैयार किया हुआ मसविदा लेकर आये। उसमें कतिपय परिवर्तन करनेके बाद श्री क्विन, नायडू और मैंने दस्तखत किये। इस मसविदे[1] और समझौतेके विषयमें 'इंडियन ओपिनियन' में अन्यत्र बहुत लिखा जा चुका है, इसलिए यहाँ अधिक लिखना जरूरी नहीं है।

चीफ मजिस्ट्रेट श्री प्लेफर्ड भी एक बार मिलने आये थे। उन्हें तो चाहे जब मिलनेका अधिकार है। और वे कुछ खास हमसे ही मिलने आये थे यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी कहा जाता है कि हम सब जेलमें थे इसलिए वे विशेष रूपसे समय निकालकर आये थे।

धार्मिक शिक्षा

आजकल पश्चिमी देशोंमें सभी जगह कैदियोंको धार्मिक शिक्षा देनेका रिवाज देखा जाता है। इसलिए जोहानिसबर्गकी जेलमें कैदियोंके लिए विशेष गिरजाघर है। यह गिरजाघर ईसाइयोंके लिए है। वहाँ केवल गोरे कैदियोंको ही जाने दिया जाता है। मैंने श्री फोर्तोएनके लिए तथा अपने लिए विशेष रूपसे माँग की, किन्तु गवर्नरने कहा कि उस गिरजाघरमें केवल गोरे ईसाई कैदी ही जा सकते हैं। प्रत्येक रविवारको इस गिरजाघरमें गोरे कैदी जाते हैं और वहाँ अलग-अलग पादरी आकर धर्मकी शिक्षा देते हैं। वतनियोंके लिए भी विशेष अनुमति लेकर कुछ पादरी आया करते हैं। वतनियोंके लिए देवालय नहीं है। अतएव वे जेलके मैदानमें इकट्ठे होते हैं। यहूदियोंके लिए उनके पुरोहित आते हैं।

किन्तु हिन्दू और मुसलमानोंके लिए वैसा कुछ भी नहीं है। हकीकतमें भारतीय कैदी अधिक नहीं होते; फिर भी उनके धर्मके [शिक्षणके] लिए जेलमें कोई व्यवस्था नहीं है, इससे भारतीय समाजकी हीनता सूचित होती है। इस विषयमें दोनों समाजोंके नेताओंको, दोनों धर्मोंके शिक्षणके प्रबन्धका विचार, एक कैदी हो तो भी, करना चाहिए। इस कामके लिए मौलवी अथवा हिन्दू-धर्मोपदेशक स्वच्छ हृदयवाले होने चाहिए। नहीं तो शिक्षण कंटक बन सकता है।

उपसंहार

अधिकांश ज्ञातव्य बातें ऊपरके लेखमें आ गई हैं। कारावासमें वतनियोंके साथ ही भारतीयोंकी गिनती की जाती है। इसपर अधिक विचार किया जाना चाहिए। गोरे कैदियोंको सोनेके लिए चारपाई मिलती है, दाँत साफ करनेके लिए दातुन और नाक तथा मुँह साफ करनेके लिए तौलियाके सिवा रूमाल भी मिलता है। ये सब चीजें भारतीय कैदियोंको क्यों नहीं मिलतीं, इसकी जाँच-पड़ताल करना उचित है।

किसीको ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि हमें इन बातोंमें पड़कर क्या करना है। बूँद-बूँदसे सरोवर भरता है, इस कहावतके अनुसार छोटी-छोटी चीजोंसे हमारा गौरव बढ़ता अथवा नष्ट होता है। जिनके मान नहीं, उनके धर्म नहीं, यह हमने 'अरबी ज्ञान'[2] ग्रन्थमें पढ़ा

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" पृष्ठ ६४–७३।

२. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४५३।

है। जो राष्ट्र आगे बढ़े हैं वे धीरे-धीरे अपने मानकी रक्षा करके ही बढ़े हैं। मानका अर्थ उद्धतता नहीं है; किन्तु भयके कारण अथवा आलस्यवश जो हमारा है उसे न जाने देनेकी मनःस्थिति रखना और उसके अनुसार आचरण करना वास्तविक मान है। ऐसे मानको वही समझ सकता है जिसका ईश्वर – खुदा – पर सच्चा भरोसा, आधार है। मेरा निश्चित मत है कि प्रत्येक विषयमें ठीक-ठीक जानने और ठीक-ठीक करनेका गुण उस व्यक्तिमें नहीं आ सकता जिसमें सच्ची श्रद्धा नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–३–१९०८

७६. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

चीनियोंकी सभा

चीनियोंने कमाल कर दिखाया है। एकताकी दृष्टिसे उन्होंने हम लोगोंको हरा दिया, सुघड़तामें उन्होंने हमें हरा दिया; और उन्होंने हमें सभ्यतामें और उपकार-वृत्तिमें भी हरा दिया।

शुक्रवार २० तारीखको उन्होंने दो प्रकारके आमन्त्रण दिये थे। एक था जिन्होंने उनकी मदद की थी उन्हें मानपत्र देनेकी सभाका और दूसरा था प्रीति-भोजका। सभा तीन बजे की गई — उनके अपने ही भवनमें। उसमें अंग्रेज और बहुत-से भारतीय भी निमन्त्रित थे। उनके भवनके आगे हमारा भवन फीका है। वह बहुत अच्छी तरह सजाया गया था। उस सभामें श्री फिलिप्सको एक मानपत्र दिया गया जिसमें सुन्दर चित्रकारी की गई थी। उसमें उनकी मेहनतके लिए श्री फिलिप्सका उपकार माना गया था।

दूसरा मानपत्र श्री डोकको दिया गया। उसमें उनके काम तथा उन्होंने श्री गांधीकी जो सेवा की उसके बदले उपकार माना था। श्रीमती डोकको ओककी बनी हुई एक सुन्दर मेज दी गई। वह भी इसलिए कि उन्होंने श्री गांधीकी सेवा-शुश्रूषा की।

श्री कार्टराइटको २७ पौंड मूल्यकी सोनेकी घड़ी दी गई। श्री डेविड पोलकको २० पौंडकी थैली अर्पित की गई। श्री पोलकको जो मानपत्र दिया गया उसमें कौमके लिए अतिशय श्रम करनेके लिए उनका आभार माना गया। उसमें कहा गया: आपके कामका मूल्य हम पैसेसे नहीं चुका सकते। आपके मनमें संतोष है। इसीको आप बदला मानते हैं। किन्तु हम अपना फर्ज समझकर जो कुछ आपको तथा श्रीमती पोलकको अर्पण कर रहे हैं, हम आशा करते हैं कि आप उसे स्वीकार करेंगे।

श्रीमती पोलकको काँटे-चम्मचकी एक संदूकची और सोनेकी एक जंजीर दी, जिनका मूल्य लगभग २८ पौंड है। श्री पोलकको ५० पौंडकी थैली भी दी गई।

श्री रिचको मानपत्र विलायत भेजा गया है। वह उक्त सभामें पढ़कर सुनाया गया। उसमें लिखा है:

> आपकी अथक मेहनतके बिना ऐसा सन्तोषजनक फैसला नहीं हो सकता था। आपने जो काम किया है उसकी तारीफ चारों ओर हो रही है; उसीके कारण विलायतमें ऐसी कठिन लड़ाई चली। आपका काम हम कभी भूल नहीं सकते।

श्री रिचको उन्होंने ६० पौंडकी थैली भेजी है। कुमारी स्लेशिनको उन्होंने १० पौंड मूल्यकी सोनेकी घड़ी अर्पित की।

श्री गांधीको एक मानपत्र दिया गया है। उसमें लिखा है :

आपने राजनीतिक बुद्धिमानी प्रकट की; उसीके कारण ऐसा अच्छा समझौता हुआ है। आप ही ऐसा काम करने योग्य थे, इसलिए हम आपके बहुत आभारी हैं। यदि आप इस काममें न होते तो हम हार जाते। किन्तु हम आपका विशेष मान आपके सद्‌गुणोंके लिए करते हैं। आपके सद्‌गुणोंसे यह संघर्ष पवित्र हुआ, यह हमारी मान्यता है; और उसीसे आज एशियाई कौमका मान बढ़ा है। आपने अपनी बहादुरीके साथ विनय और नम्रता रखी, इसलिए हम सब आपको बहुत चाहते हैं और आपकी सलाहकी आकांक्षा रखते हैं।

इस बैठकमें श्री हॉस्केन उपस्थित थे। उन्होंने अच्छा भाषण दिया।

शामके प्रीति-भोजमें ९२ लोगोंके लिए मेजें लगाई गई थीं। इनमें ३० मेहमान और बाकीके ६२ चीनी थे। भोजनके समय बैंड भी हाजिर था। भोजनमें तीन चीनी महिलाएँ और चीनी वाणिज्यदूत भी उपस्थित थे। भोजनके बाद श्री क्विनने [चीनके] बादशाहकी प्रशंसामें भाषण किया। उसमें उन्होंने कहा :

हम अंग्रेजी राज्यमें स्वतन्त्रतापूर्वक रहते हैं, इसलिए उसकी उन्नतिकी कामना करते हैं। हम चीनकी प्रजा हैं, इसलिए चीनके बादशाहकी उन्नतिकी कामना करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

चीनी संघके मन्त्रीने अपने भाषणमें कहा :

यूरोपीय सज्जनोंने भारतीयोंकी मदद की, क्योंकि भारतीय ब्रिटिश प्रजा हैं। हमारे साथ वैसा सम्बन्ध नहीं है। फिर भी उन्होंने हमारी मदद की। यह तो केवल न्याय-दृष्टि ही कही जायेगी। इसलिए हमने उन्हें यह जो प्रीति-भोज दिया, सो कुछ भी नहीं है।

उसके बाद श्री हॉस्केन जवाब देनेके लिए उठे। उन्होंने कहा :

मुझसे तो कुछ भी नहीं बन पड़ा। मैं काले-गोरोंके बीच अन्तर नहीं करता। एशियाके लोगोंने हमें सीख दी है। आपकी बहादुरी और आपकी विजय, ये दोनों बहुत ही बखान करने योग्य हैं।

श्री फिलिप्सने कहा :

एशियाइयोंकी बहादुरीके विषयमें एक-एक शब्द सच्चा है। मुझसे जितना बनेगा, मैं उतना अवश्य करता रहूँगा।

श्री डोकने उसी प्रकारका भाषण किया। बादमें श्री कार्टराइट तथा श्री पोलक बोले। श्री पोलकने कहा :

एशियाइयोंके संघर्षसे काले मनुष्योंके सारे समाजको लाभ हुआ है। बोअर सरकारको हरानेवाले एशियाई ही हैं, ऐसा मैं मानता हूँ।

श्री गांधीने कहा :

इस सारी प्रशंसासे एशियाई फूल न जायें, तो अच्छी बात है। अभी बहुत काम करना बाकी है। यदि यह नहीं हुआ, तो हम पीछे रह जायेंगे। सभ्यता, नम्रता और सच्चाईको साधना बहुत आवश्यक है। केवल ईश्वरपर भरोसा रखना तो बहुत साफ दिलवालोंसे ही बन सकता है।

श्री ईसप मियाँने भाषण करते हुए कहा :

चीनियोंने भारतीय कौमको परास्त कर दिया है। भारतीय लोगोंकी अपेक्षा वे बहुत-सी बातोंमें बढ़ गये हैं। भारतीय और चीनी इकट्ठे होकर लड़े, यह बहुत अच्छा हुआ। मैं स्वयं ब्रिटिश राज्यका विश्वास छोड़ देनेकी बातपर आ गया था। अब लगता है कि यदि न्याय प्राप्त करनेवाले मेहनती और सच्चे हों तो ब्रिटिश राज्यमें न्याय मिल सकता है।

इसके बाद सम्राट्का गीत गाकर सभा ११ बजे समाप्त हुई।

क्रूगर्सडॉर्पमें शिक्षा

क्रूगर्सडॉर्पमें काले बच्चोंकी पाठशालाएँ हैं। उसमें कुछ केपके छोकरे जाते हैं; भारतीय नहीं जाते अथवा बहुत थोड़े जाते हैं। इसलिए भय है कि कहीं सरकार वह शाला बन्द न कर दे। अतएव भारतीय माता-पिताओंको चाहिए कि शालामें भेजने योग्य अपने बच्चोंको वे पाठशालामें भेजें। "नहीं-मामासे काला मामा ठीक" इस कहावतके अनुसार मैं भारतीय माता-पिताओंको सलाह देता हूँ कि इस पाठशालाका उपयोग किया जाये। मैंने सुना है कि कुछ मद्रासी बालक वहाँ जाते हैं।

परवानोंके विषयमें

मैं पिछली बार परवानोंके विषयमें लिख चुका हूँ। संघके नाम प्रिटोरियासे पंजीयकका तार आया है। उसमें कहा गया है कि अभीतक बहुत थोड़े भारतीयोंने परवाने लिये हैं। यदि वे तुरन्त परवाने नहीं लेंगे, तो उनपर बिना परवाना व्यापार करनेका मुकदमा चलाया जायेगा। विजय प्राप्त करनेके कारण कुछ भारतीय कदाचित् यह मान रहे हैं कि अब उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ा जा सकता। यदि कोई ऐसा सोचेगा तो वह बड़ा धोखा खायेगा और समाजको नुकसान पहुँचायेगा। फिलहाल हम जो कुछ करते हैं उसका आधार हमारी साख है। इसलिए यदि साख गई, तो हमें जो मिला है उसे भी गँवा बैठेंगे। जो समाजका भला चाहनेवाले लोग हैं, उन्हें यह बात याद रखनी चाहिए और दूसरोंको समझानी चाहिए। अँगूठेके बारेमें भी शिकायतें आ रही हैं। कदाचित कुछ लोग सोचते हैं कि सरकारको कोई भी कारण दिये बिना १० अँगुलियोंकी छाप देनेसे बच सकते हैं। किन्तु यह विचार भूलसे भरा हुआ है। यह बात याद रखनी चाहिए कि शिक्षा अथवा साहूकारीके आधारपर अथवा धर्म या ऐसे ही किसी दूसरे कारणसे दस अँगुलियोंकी छाप देनेसे मुक्ति मिल सकती है। यदि आपमें से कोई पंजीयकके सामने खड़े होकर कहे कि मैं दस अँगुलियोंकी छाप नहीं दूँगा, तो वह काफी नहीं होगा। मुझे आशा है कि परवाना और अँगुलियोंके बारेमें ऊपर कही गई बातोंका सारे भारतीय ध्यान रखेंगे।

रुडीपूर्टके भारतीय

रुडीपूर्टके गोरे लोग भारतीयोंके प्रति ईर्ष्यालु होते जा रहे हैं। यह पता चलनेपर कि उस नगरमें कुछ भारतीय जमीन लेकर गोरोंके नामपर चढ़ा देते हैं और मिलकियतका उपभोग करते हैं, उन्होंने उस सम्बन्धमें उपनिवेश-सचिवको लिखा है और सूचित किया है कि कानूनमें इस प्रकार परिवर्तन करना चाहिए जिससे गोरे भारतीयोंकी ओरसे जमीन न रख सकें और भारतीय जमीनके पट्टे गोरोंके नामपर न ले सकें। इससे भारतीयोंको सतर्क हो जाना चाहिए कि गोरोंने अपनी तलवार म्यानमें नहीं रखी है। इस बीच यदि भारतीय घमण्ड या किसी दूसरे कारणसे मिली-मिलाई इज्जत गँवा बैठे, तो बादमें पछताना पड़ेगा।

श्री बेलीका भाषण

श्री ऐब्रे बेली ट्रान्सवालकी संसदके एक प्रमुख सदस्य हैं। वे प्रगतिशील दलके मुखिया हैं। उसके सिवाय वे खानोंके मालिक भी हैं। क्रूगर्सडॉर्पमें उन्होंने गत शनिवारको भाषण दिया। वे उसमें खूनी कानूनके बारेमें बोले। (यह भाषण हमने दूसरी जगह दिया है।)[1] श्री बेलीके इस भाषणसे हम दो चीजें सीख सकते हैं। एक तो यह कि भारतीय चाहे जो समझें, गोरे तो यह समझते हैं कि बोअर सरकार हार गई है और पीछे हट गई है। दूसरे, यह कि गोरोंके साथ टक्कर लेना अभी शेष है। इसलिए भारतीय समाजको हमेशा जाग्रत रहना है। यदि हम ऊँघते हुए पकड़े गये, तो मारे जायेंगे। सत्य और एकतारूपी हमारे दो हथियार हमेशा सजे रहने चाहिए।

संघका भवन

श्री ईसप मियाँको नीचेके मुताबिक पत्र मिला है।

> महोदय, तारीख १४ के अंकमें आपके हस्ताक्षरोंसे संघके भवनकी निधिसे सम्बन्धित गुजराती लेख मैंने पढ़ा है, "जिसकी नसोंमें भारतीय रक्त बहता होगा वह इस काममें दिल खोलकर मदद करेगा।" आपके ऐसे सत्य-वचनोंसे मेरा रक्त भी सतेज हो गया है। नीचेकी तुच्छ भेंट स्वीकार करके कृतज्ञ बनाइये। मनजी नथुभाई घेलाणी, पौंड १–०–०; बिठलदास मनजी, १० शिलिंग तथा मोहनलाल मनजी, १० शिलिंग। कुल पौंड २।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–३–१९०८

१. यह नहीं दिया गया है। अपने भाषणमें श्री बेलीने कड़ी भर्त्सनाके स्वरमें बोलते हुए कहा कि एशियाई पंजीयन अधिनियमको लेकर जनरल स्मट्स शाही सरकारके दबावमें आ गये हैं और अपने निर्णयसे "पीछे-हट" गये हैं। क्रूगर्सडॉर्पके गोरोंमें एशियाइयोंके प्रश्नको लेकर जो जागरूकता है और गोरे फेरीवालोंकी लीगका जो एशियाई विरोधी आन्दोलन है, उससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता है। उन्होंने क्रूगर्सडॉर्पके गोरोंसे खासतौरसे स्त्री-समाजसे भारतीय फेरीवालोंका बहिष्कार करनेकी अपील की।

७७. मिस्रके प्रख्यात नेता [१]

स्वर्गीय मुस्तफा कामेल पाशा

गत फरवरी मासमें मिस्रके प्रख्यात नेता मुस्तफा कामेल पाशा ३३ वर्षकी अल्पायुमें गुजर गये। उनका संक्षिप्त जीवन-चरित्र मिस्रके समाचारपत्रोंके आधारपर नीचे दिया जाता है।

उनका जन्म सन् १८७४ में हुआ था। छः वर्षकी अवस्थामें उन्होंने विद्याभ्यास प्रारम्भ किया। [घरमें] कुछ वर्षोंके अभ्यासके पश्चात् वे काहिराके एक विद्यालयमें, जो प्रसिद्ध अब्बास पाशाकी स्मृतिमें खोला गया था, भर्ती हुए। उन्हीं दिनों उनके पिता अली एफेन्दी मुहम्मदकी मृत्यु हो गई। वे एक सरकारी विभागमें मुख्य इंजीनियर थे। मुस्तफा कामेल पाशा दस वर्षकी आयुमें प्राथमिक शिक्षाकी परीक्षामें प्रथम स्थान लेकर उत्तीर्ण हुए। उसके चार वर्ष बाद वे माध्यमिक शिक्षाकी परीक्षामें पास हुए और उसमें उन्होंने एक चतुर और बुद्धिमान विद्यार्थीका नाम कमाया। पन्द्रहवें वर्षमें उन्होंने कानून और फ्रेंच भाषा पढ़ना शुरू किया। इस अवसरपर उनके राजनीतिक जीवनका बीजारोपण हुआ। कुछ समय पश्चात् विद्याध्ययनके निमित्त वे फ्रांस गये और १९ वर्षकी उम्रमें कानूनकी परीक्षा पास करके उसकी उपाधि प्राप्त की।

वे कानून सम्बन्धी अपने ज्ञानके बलपर इस छोटी उम्रमें साहसके साथ राजनीतिक क्षेत्रमें कूद पड़े और उन्होंने एक बड़ा संघर्ष शुरू किया। इस दिशामें वे अपने भाषणों और लेखों द्वारा मृत्युपर्यन्त जोरदार प्रयत्न करते रहे। काहिराकी अनेक समितियोंमें शामिल हुए और अपने भाषणोंसे उनके सदस्योंको राजनीतिक संघर्षोंमें भाग लेनेके लिए उत्साहित किया। फ्रांसके टूलस नगरके फ्रेंच चैम्बरको उन्होंने एक पत्र लिखा। यह उनके राजनीतिक जीवनका पहला महत्त्वपूर्ण कदम था। इस पत्रमें उन्होंने मिस्र देशकी कठिनाइयों और कष्टोंका वर्णन किया था। उनके इस साहसी और बुद्धिपूर्ण कार्यकी बदौलत उन्हें राजनीतिक विषयों-पर सार्वजनिक रूपसे बोलनेका प्रथम अवसर प्राप्त हुआ। टूलसके ख्यातनामा राजनीतिक व्यक्तियोंके समक्ष भाषण करनेके लिए वे आमन्त्रित किये गये।

मुस्तफा कामेल पाशा अपनी वाक्पटुता द्वारा अपने श्रोताओंको किस प्रकार प्रभावित करते थे, इसका अनुमान तो वे ही लगा सकते हैं जिन्होंने उन्हें भाषण करते हुए सुना है। सार्वजनिक अथवा निजी बातचीतमें, विशेषकर अपने देशकी स्थितिके विषयमें, उनको बोलते हुए देखकर सुननेवालोंके मनमें बड़ा आनन्द होता था। अपने सार्वजनिक भाषणों द्वारा वे लोगोंमें जोश भरकर उन्हें अत्यन्त अधीर बना दिया करते थे और अपनी सच्ची देशभक्ति द्वारा उनके मन हर लेते थे। उनकी राजनीति ठेठ प्रजापक्षी (नेशनलिस्ट अथवा भारतके एक्स्ट्रीमिस्टोंकी पद्धतिसे मिलती-जुलती) थी। रावसे रंकतक सभी लोग उनके भाषणोंको सुननेके लिए उमड़ पड़ते थे। और वे प्रत्येक व्यक्तिको प्रजाकीय भाईचारेका बोध कराते थे। काहिरा और एलेक्जेंड्रियाके लोगोंमें १८९५ से १९०७ तक उन्होंने अनेक भाषण दिये। वे अपने इन भाषणोंको बड़ी बुद्धिके साथ और सुन्दर रीतिसे तैयार किया करते थे, और उनका लक्ष्य सदा पूरा उतरा।

मुस्तफा कामेल पाशाको लोग अपना रक्षक एवं उद्धारकर्ता मानते थे। उनका लोगोंके प्रति कितना स्नेह था, इस सम्बन्धमें अनेक भावनापूर्ण किस्से हैं। जब कभी किसी कौमको सरकार (अंग्रेज)के विरुद्ध कोई शिकायत करनी होती तब वे 'लीवा' (मुस्तफा कामेल पाशाका अखबार)के दफ्तरको घेर लेते और बीच-बचाव करने या मार्गदर्शनके लिए कामेल पाशासे प्रार्थना करते। ऐसे समय उन्हें कैसा व्यवहार करना चाहिए इस विषयमें वे उन्हें सलाह देते और कहा करते कि दृढ़ता और साहससे काम लो तथा सत्य और कर्तव्यके मार्गपर डटे रहो। इन सद्‌गुणोंके कारण कामेल पाशाने नाम कमाया था।

लोग उनको कितना प्रेम करते थे पाशा इसका एक उदाहरण बड़े गर्वके साथ सुनाया करते। एक बार भाषण देनेके लिए भवनमें जाते हुए वे "अरबागी" किरायेपर लेकर वहाँ गये। उसके पश्चात् वहाँ कोचवानको एक घंटेतक रुकना पड़ा। भाषण देनेके पश्चात् जब कामेल पाशा किराया देने लगे तब कोचवानने उसे लेनेसे साफ इनकार कर दिया और कहा कि जन-नायककी सेवा करनेमें मुझे बहुत आनन्द मिलता है और गर्व होता है। वे लोगोंमें कितने प्रिय थे इसके ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। लोग उनके वचन सुनकर पागल हो उठते और अपना कर्तव्य पालन करने तथा मिस्रकी उन्नति करनेके लिए आतुर हो जाते।

(अपूर्ण)

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, २८–३–१९०८

७८. पत्र:[1] सी० ए० डी आर० लैबिस्टरको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च २८, १९०८

श्री सी० ए० डी आर० लैबिस्टर
डंडी

प्रिय महोदय,

विषय: बद्री तथा अन्य व्यक्ति

मैं इस मामलेसे सम्बन्धित सभी कागजात पढ़ गया हूँ। यदि प्रतिकथनके अनुच्छेद ६ और ७ में किये गये दावे सच हैं, अर्थात् यदि वह जमीन जिसे वावड़ाके नाम दर्ज करनेकी चेष्टा की जा रही है, इकरारनामेमें कही गई जमीन नहीं है, तो हम मामलेको सरलतासे जीत लेंगे। किन्तु मुझे लगता है कि यह इतना अच्छा है कि सच नहीं हो सकता; क्योंकि इससे वावड़ा लगभग झूठा ठहरता है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप स्वयं सारे तथ्योंके बारेमें पूरी तरह आश्वस्त हो गये हैं और गुरदीनने चाहे जो कहा हो उसीपर निर्भर नहीं रहे हैं। क्योंकि हो सकता है कि उसने जोशमें आकर बहुत-सी गलत-बयानियाँ कर दी हों।

आपका विश्वस्त,

[अंग्रेजीसे]

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४८०५) से।

१. देखिए "पत्र: सी० ए० डी आर० लैबिस्टरको", पृष्ठ १३९।

७९. पत्र : मगनलाल गांधीको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च २८, १९०८

चि० मगनलाल,

कृपया श्री बद्रीसे कहना कि मैंने उनके कागजात खूब ध्यानके साथ पढ़ लिये हैं। मैंने वह इकरारनामा, जिसपर न्यू कैसलके श्री ऐंडर्सनके हस्ताक्षर हैं, पढ़ लिया है। वावड़ाके सम्मन्सका उत्तर भी मैंने पढ़ लिया है। दो चीजें हैं, जिनके कारण श्री बद्रीको पूरी सफलता अवश्य मिलनी चाहिए। उत्तरके अनुच्छेद ६ और ७ में कहा गया है कि वावड़ा जिस भूमि-पर अपना दावा बताता है, यह जमीन वह नहीं है जिसका जिक्र इकरारनामेमें किया गया है। और सर्वेक्षकने जिस भूमिका सर्वेक्षण किया है उसमें वह भूमि भी शामिल है जो इकरार-नामेमें, जिसके आधारपर सम्मन्स जारी किये गये हैं, उल्लिखित नहीं है। यदि ये दो बातें साबित की जा सकें तो श्री बद्री अवश्य जीत जायेंगे। किन्तु मुझे बड़ी आशंका है कि कहीं दिये गये जवाबमें कोई गलती न हो। अतएव उन्हें बहुत सावधान रहना चाहिए; क्योंकि यदि वे हार गये तो उन्हें सर्वोच्च न्यायालयमें कदाचित् १०० पौंड या उससे भी अधिक खर्च करने पड़ेंगे। डंडीके सॉलिसिटर श्री लैबिस्टरने मेरे पास कागजात भेजे हैं। उन्हें बड़ी आशा है; किन्तु मैं स्वयं इस बारेमें पूरा इत्मीनान कर लेना चाहता हूँ कि जिस जमीनको वावड़ा तलब करते हैं, वह इकरारनामेमें उल्लिखित भूमि नहीं है। इसलिए आपके पास इस सम्बन्धमें बहुत जोरदार और निर्णायक प्रमाण होना जरूरी है। तुम्हें चाहिए कि श्री बद्रीको यह पत्र अच्छी तरह समझा दो। यदि वे कुछ और प्रश्न पूछना चाहें तो मैं अब इनका उत्तर देनेकी स्थितिमें हूँ; क्योंकि मेरा खयाल है कि मेरे पास सारे कागजात मौजूद हैं और, इसके अलावा, मैं उन्हें गौरसे देख चुका हूँ। श्री बद्रीसे यह भी कह देना कि जो पिछला हिसाब उन्हें दिया गया था, और जिसके बारेमें उन्होंने कुछ कहा था, उसके बाद मैंने उनसे कोई फीस नहीं ली है और जो काम मैं अब कर रहा हूँ, उसकी भी कोई फीस बिना उनकी सहमतिके लेनेका मेरा इरादा नहीं है। उनसे पूछना कि स्वयं उनका इस मामलेमें क्या मत है और क्या इसके लिए मुझे फीस लेनी चाहिए। उनसे कहना कि यद्यपि यह आम रिवाज नहीं है, फिर भी मैं चाहता हूँ कि फीसके मामलेमें पूर्ण रूपसे वे ही मेरा पथ-प्रदर्शन करें; क्योंकि उन्होंने मुझपर इतना अधिक विश्वास रखा है।

यदि तुम्हें श्री बद्री न मिलें तो इस पत्रको तुम जीतन मियाँके घर छोड़ सकते हो।

तुम्हारा शुभचिन्तक,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४८०६) से।

८०. लॉर्ड सेल्बोर्नके विचार

लॉर्ड सेल्बोर्नने क्लार्क्सडॉर्पमें भारतीयोंके प्रश्नपर जो भाषण दिया वह समस्त भारतीयोंके लिए विचारणीय है। हम उसका अनुवाद अन्यत्र दे रहे हैं।

लॉर्ड सेल्बोर्नके भाषणका अर्थ यह है कि भारतीयों और दूसरी एशियाई कौमोंको गोरोंके खास देशमें न आने देना चाहिए। उनके लिए खास देश रखा जाये जिसमें वे बसें। उन्होंने गोरोंके देशमें उनको न आने देनेका उपाय यह बताया है कि भारतीय तो ब्रिटिश प्रजा हैं और उनमें कोई दम नहीं है, इसलिए उनके साथ चाहे जैसा व्यवहार किया जा सकता है। बाकी रहे जापानी और चीनी। उनको बाहर रखनेके लिए अंग्रेजी बेड़ेको मजबूत बनाया जाये जिससे कि उनको बलात् दूर रखा जा सके।

गोरोंके खास देशोंमें लॉर्ड सेल्बोर्न दक्षिण आफ्रिका, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, न्यूजीलैंड आदिको गिनते हैं। वे यह [तो] मानते हैं कि भारतीयोंको बाहर जानेकी छूट मिलनी चाहिए। इसलिए वे कहते हैं कि भारतीयोंके लिए पूर्व आफ्रिका जैसे देश रखे जायें।[1] विचार करें तो इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीयोंको दासताकी अवस्थामें ही रखा जाये, क्योंकि भारतीय यदि पूर्व आफ्रिका जैसे देशोंमें बसेंगे तो वहाँ भी कर्ता-धर्ता तो गोरे ही रहेंगे। यह तो गोरोंके शिक्षण प्राप्त करने और उन्नति करनेके लिए एक नया क्षेत्र खोलनेके समान होगा। फिर, केवल भारतीय ही बसें और नये देशोंको वर्तमान विचारोंके अनुसार आबाद करें, इतनी शक्ति उनमें नहीं है। इसलिए केवल भारतीय लोगोंके लिए ही देश पृथक् करनेका विचार बिलकुल व्यर्थ है। इसके अतिरिक्त लॉर्ड सेल्बोर्नके भाषणका अर्थ यह हुआ कि जिस देशमें गोरोंके बसने लायक अच्छी जलवायु हो उस देशमें भारतीयोंको न बसने दिया जाये। यानी भारतीयोंके लिए रोगकारक, गर्म और मलेरिया-ग्रस्त देश रखे जायें। भारतीय उनमें सड़ते रहें, इसमें लॉर्ड सेल्बोर्न तनिक भी हस्तक्षेप करना नहीं चाहते।

हम लॉर्ड सेल्बोर्नके इस भाषणको स्वार्थपूर्ण और भयंकर मानते हैं। उनके विचारोंके अनुसार चला जाये तो दक्षिण आफ्रिकामें अन्तमें एक भी भारतीय न रहेगा। वे महानुभाव यह मानते हैं कि पूर्व और पश्चिम कभी इकट्ठे नहीं हो सकते। उनकी यह मान्यता ठीक हो तो भारत अंग्रेजोंके अधीन केवल दासके रूपमें ही रह सकता है। उसके लिए अन्य मार्ग तो रहा ही नहीं। हम इस विचारको नहीं मानते। यदि हमें यह निश्चय हो जाये कि अंग्रेज लोगोंका ऐसा विचार है और उससे मुक्त होनेका मार्ग नहीं है, तो अंग्रेजी राज्यके विरुद्ध झंडा उठाना ही पड़ेगा। और भारतको अंग्रेजोंके शासनसे सर्वथा मुक्त करनेका उपाय करना होगा और बताना होगा। हम मानते हैं कि हम अंग्रेजी झंडा कायम रखकर भी स्वतन्त्रतासे रह सकते हैं। बोअरोंके ऊपर अंग्रेजी झंडा है, फिर भी उनकी स्वतन्त्रतामें कमी नहीं है।

तब लॉर्ड सेल्बोर्नके विचारोंके विरुद्ध क्या उपाय किये जायें, यह विचारणीय है। हम मानते हैं कि इसका उपाय हमारे हाथमें है। दुनियामें नियम यह दिखाई देता है कि हम जो चाहते हैं और जिसके योग्य होते हैं वही हमें मिलता है। हम यदि दुनियाके विभिन्न

१. लॉयनेल कर्टिसने भी १९०६ में ऐसा सुझाव दिया था; देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ४६८–९ ।

भागोंमें बसना और उन्नति करना चाहते हैं तो हम वैसे उपाय करेंगे। इन उपायोंमें हमें तीन मुख्य दिखाई देते हैं। वे ये हैं: (१) प्रत्येक भारतीय अपने धर्मका पालन सचाईके साथ श्रद्धापूर्वक करे; (२) हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता रहनी चाहिए, और (३) भारतीय प्रजाजन सच्ची शिक्षा प्राप्त करें।

यदि पहली शर्तका पालन किया जाये तो उसमें दूसरी दो शर्तोंका समावेश अपने-आप हो जाता है। हम सब मुख्य धर्मोंको सच्चा मानते हैं; इसलिए यदि प्रत्येक जाति अपने-अपने धर्मका उचित पालन करे तो ईश्वरमें उसका विश्वास दृढ़ हो जायेगा और उसे सत्य ही प्रिय लगेगा। यदि हम ठीक तरहसे अपने-अपने धर्मका पालन करें तो एक दूसरेके बीच झगड़ा न होगा अर्थात् एकताकी रक्षा होगी। और जो ठीक प्रकारसे धर्मका पालन करना चाहते हैं वे अशिक्षित और अज्ञानी कदापि नहीं रह सकते। वे आलसी भी न रह सकेंगे; और यदि आलस्य चला जाये तो फिर छोटे-बड़े सब शिक्षा प्राप्त करनेमें जुट जायेंगे।

हम इन विचारोंकी ओर प्रत्येक भारतीयका ध्यान आकर्षित करते हैं। हम ऐसे युगमें रहते हैं, जिसमें हमें बहुत सावधानी रखनी है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–४–१९०८

८१. नेटालके भारतीय

नेटालके भारतीयोंपर आक्रमण किया जा रहा है। कोई कहता है कि व्यापारियोंको कतई व्यापारका परवाना न देना चाहिए। कोई कहता है कि भारतीय-मात्रको नेटालसे निकाल देना चाहिए। अब उपनिवेश-सचिव डॉ० गबिन्सने अपना मत 'मर्क्युरी'में व्यक्त किया है। उसके अनुसार नेटाल सरकार गिरमिटिया भारतीयोंका प्रवेश रोकने और भारतीयोंको व्यापारिक परवाने देना बन्द करनेका कानून बनानेका विचार रखती है। उसने गिरमिटियोंका आना एक निश्चित अवधिके बाद बन्द करनेका निश्चय किया है। उसने इसी उद्देश्यसे कलकत्ताकी एजेंसी बन्द कर दी है। उसने व्यापारियोंके परवाने दस वर्ष बाद बन्द करने और दस वर्ष बाद जो भारतीय व्यापारी रह जायें उन्हें मुआवजा देकर उनकी दूकान बन्द करनेका निश्चय किया है।

गिरमिटियोंका आना बन्द किया जाये, यह बात प्रोत्साहित की जाने योग्य है। जबतक गिरमिटिया भारतीय आते रहेंगे तबतक भारतीय समाजको बिलकुल सुख-शान्ति न मिलेगी।

व्यापारिक परवाना कानून जबतक प्रकाशित नहीं किया जाता तबतक उसके सम्बन्धमें बहुत नहीं कहा जा सकता। किन्तु दस वर्षकी अवधि देकर मुआवजेकी व्यवस्थाके साथ कोई कानून बनाया जाये तो फिर अधिक कहने योग्य नहीं रहता। किन्तु भारतीयोंका उद्देश्य मुआवजा लेकर भाग जाना न होना चाहिए। जो नेटालमें रहते हैं उनका उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे नेटालको अपना दूसरा देश मानेंगे और उसमें घर बनाकर रहेंगे। उससे कोई उनको निकालनेका विचार करे तो उसे मंजूर नहीं करना चाहिए। यह देश जितना गोरोंका है उतना ही हमारा है, ऐसी भावना आनी चाहिए और वैसा ही मानकर उसको समृद्ध

करनेमें हमें गर्व अनुभव करना चाहिए। इस दृष्टिसे दस वर्षका कानून हमें पसन्द नहीं है। फिर भी हम उस कानूनको स्वीकृत होनेसे रोक न सकें, यह सम्भव है। किन्तु दस वर्षके अन्दर हम अपना तेज — अपनी स्थिति ऐसी चमका सकते हैं कि गोरे स्वयं ही हमें निकालनेकी बात करनेके बजाय रखनेका ही विचार करें। ऐसी स्थिति लाना भारतीयोंके हाथमें है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–४–१९०८

८२. हसन मियाँकी बिदाई

श्री दाउद मुहम्मदके सुपुत्र श्री हसन मियाँ, जिनके विलायत जानेकी बात बहुत दिनोंसे चल रही थी, पिछले सप्ताह विलायतके लिए रवाना हो गये हैं। उन्हें बहुत-सी दावतें और मुबारकबादियाँ दी गईं; और खुशीके नारे लगे। इस सबका यह अर्थ है कि लोग अच्छा काम देखकर प्रसन्न होते हैं और उसे पसन्द करते हैं। श्री हसन मियाँ अभी जवान हैं। उन्हें बहुत सीखना और देखना है। हम उनकी लम्बी उम्र, तन्दुरुस्ती और भलाईकी कामना करते हैं। नेटालसे विलायत जानेवाले अपने दर्जेके भारतीयोंमें श्री हसन मियाँ पहले ही गिने जायेंगे। हम श्री दाउद मुहम्मदको उनकी बहादुरीके लिए मुबारकबाद देते हैं।

भारतीय समाजको इस उदाहरणसे सबक लेना चाहिए। भारतीय समाज सच्ची शिक्षाके अभावमें न केवल पिछड़ा ही रहेगा, बल्कि और पिछड़ता चला जायेगा। विलायतकी शिक्षा, अंग्रेजीका अभ्यास, दुनियाके इतिहासका ज्ञान, विज्ञानका अध्ययन, ये सारी बातें आजके जमानेमें बहुत जरूरी हैं। इनके अभावमें मनुष्य बिना हाथ-पाँवका रह जाता है। यह ज्ञान प्राप्त करनेके बाद उसका क्या उपयोग किया जाये, यह भी समझना चाहिए। ज्ञान केवल साधन है। उससे अच्छा काम हो सकता है। पैसा कमाया जा सकता है और लोक-सेवा की जा सकती है। इस ज्ञानका उपयोग अच्छी बातोंमें और लोक-सेवाके लिए किया जाये, तो ही इसे प्राप्त करना ठीक माना जा सकता है, नहीं तो यह ज्ञान विषके समान है। हम ऐसा पहले भी कह चुके हैं; और यह बात हरएकको समझमें आ सकती है।

श्री हसन मियाँके[1] साहसका अनुकरण अन्य माता-पिता करेंगे, हमें ऐसी आशा है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–४–१९०८

१. अभिप्राय स्पष्ट ही दाउद मियाँसे है।

८३. पत्रलेखकोंको सूचना

हम समझौतेके बारेमें काफी टीका-टिप्पणियाँ प्रकाशित कर चुके हैं। एक अंकमें उसके पक्षमें बहुत-सा छापा था। इस अंकमें उसके विरोधमें जो मिला है, उसमें से जितना बना उतना प्रकाशित कर रहे हैं। हम सोचते हैं अब समझौतेपर टीका-टिप्पणी बन्द करनेका समय आ गया है। समाजको दूसरे काम हाथमें लेने हैं और नये पराक्रम दिखाने हैं। समाज सब-कुछ कर चुका, ऐसा नहीं है। जिसे हमेशा आगे बढ़ना है, वह कभी आरामसे नहीं बैठता। इसलिए हम इसके बाद समझौतेके बारेमें पक्ष या विपक्षके स्थानीय [पत्रलेखकोंके] टीकापत्र प्रकाशित नहीं कर सकेंगे। अलबत्ता भारत अथवा विलायतसे कुछ आये, तो भावी मार्गदर्शनकी दृष्टिसे ही थोड़ा-बहुत प्रकाशित करेंगे। इस अंकमें हमने जो-कुछ प्रकाशित किया है, उसमें कई लिखनेवालोंकी स्पष्ट भूल है, ऐसा हम सोचते हैं। किन्तु स्वयं हम तथा दूसरे इन बातोंके सम्बन्धमें इतनी अधिक टीका कर चुके हैं कि विशेष लिखने या भूल सुधारनेकी जरूरत नहीं जान पड़ती है। हरएक आन्दोलनमें कुछ-न-कुछ गलतफहमियाँ रहती हैं और होती हैं। उनके उत्तर हमेशा दिये नहीं जाते। वे उत्तर कालान्तरमें सबको मिल जाते हैं। अपने वाचक वर्गको अब हम समझौतेकी शिकायतों अथवा आलोचना बन्द करनेकी सलाह देते हैं। उन्हें इतना ही याद रखना पर्याप्त है कि हमने सत्याग्रहकी जो महिमा देखी, वह जरा भी धुंधली नहीं पड़ सकती।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–४–१९०८

८४. एक सत्यवीरकी कथा [१]

प्रस्तावना

अत्यन्त महान, धर्मात्मा और वीर पुरुष सुकरातका जन्म ईसासे ४७१ वर्ष पूर्व हुआ था। वे यूनानमें जन्मे थे और उनका जीवन धर्म और लोकहितके काम करनेमें बीता था। कुछ ईर्ष्यालु लोगोंसे उनका शील, उनके सद्गुण नहीं देखे गये; और उन्होंने उनपर झूठे आरोप लगाये। सुकरात खुदासे[1] बहुत डरकर चलते थे, इसलिए मनुष्यों द्वारा की गई आलोचनाकी कम परवाह करते थे। उनको मृत्युका भय नहीं था। वे सुधारक थे और यूनानकी राजधानी ऐथेन्सके लोगोंमें जो दोष आ गये थे सदा उनको दूर करनेका प्रयत्न करते थे। ऐसा करते हुए वे बहुतसे लोगोंके सम्पर्कमें आते थे। युवकोंके मनपर उनका अच्छा-खासा प्रभाव

१. गांधीजी जो समय-समयपर महत्त्वपूर्ण रचनाओंका गुजराती सार दिया करते थे, वे किसी-न-किसी प्रकार सामयिक विषयोंसे सम्बद्ध हुआ करते थे; और उनका उद्देश्य व्यावहारिक हुआ करता था, न कि ऐतिहासिक। यूनानका तत्कालीन धर्म बहु-देवतावादी था।

हुआ था और उनकी टोलियाँ उनके पीछे फिरती रहती थीं। इससे जो लोग दूसरोंको ठगते रहते थे, उनकी ठगी बन्द हो गई और जो लोगोंको भ्रष्ट करके अपना स्वार्थ साधते थे उनकी कमाईमें बाधा पड़ने लगी।

एथेन्समें यह कानून था कि जो वहाँके परम्परागत धर्मके अनुसार न चले और दूसरोंको उस प्रकार न चलनेकी सीख दे उसको अपराधी माना जाये और अपराध सिद्ध होनेपर उसे मृत्युदण्ड दिया जाये। सुकरात स्वयं राज्यके धर्मके अनुसार चलते थे किन्तु उसमें जो पाखंड आ गया था उसको मिटानेके लिए दूसरोंको निर्भयतापूर्वक उपदेश देते और स्वयं उस पाखण्डसे दूर रहते थे।

एथेन्सके कानूनके अनुसार इस प्रकारके अपराधकी जाँच पंचोंके सामने होती थी। सुकरात-पर राज्य-धर्मका उल्लंघन करने और दूसरोंको उसका उल्लंघन करनेकी सीख देनेका आरोप लगाया गया एवं उसपर महाजन मण्डलमें विचार किया गया। सुकरातकी शिक्षासे महाजन मण्डलके बहुतसे लोगोंकी हानि हुई थी। इस कारण वे उनके प्रति वैरभाव रखते थे। उन्होंने सुकरातको अनुचित रीतिसे दोषी ठहराया और उन्हें विष पीकर मरनेका दण्ड दिया। प्राणदण्डकी अनेक विधियाँ काममें लाई जाती थीं। उनमें से सुकरातको विषपानके द्वारा मृत्युकी सजा दी गई।

यह वीर पुरुष अपने ही हाथसे विषपान करके दिवंगत हुआ और जिस दिन उसको विषपान करना था उसी दिन उसने अपने एक मित्र और शिष्यके सम्मुख शरीरकी नश्वरता और आत्माकी अमरताके सम्बन्धमें व्याख्यान किया। कहा जाता है कि सुकरात विषपानके अन्तिम क्षणतक निर्भय रहे और उन्होंने हँसते-हँसते विषपान किया। उनको जो-कुछ कहना था उसका अन्तिम वाक्य कहकर उन्होंने जैसे हम प्रसन्नतापूर्वक शर्बत पीते हैं, वैसे विषका प्याला प्रसन्नतासे पिया।

आज संसार सुकरातको स्मरण करता है। उनकी शिक्षासे लाखों लोगोंका हित हुआ है। उनपर दोष लगानेवालों और उनको दण्ड देनेवालोंकी दुनिया निन्दा करती है। सुकरात तो अमर हो गये और उनके तथा उन्हीं जैसे अन्य पुरुषोंके यशसे आज समस्त यूनान यशस्वी है।

सुकरातने अपनी सफाईमें जो भाषण दिया उसका विवरण उनके शिष्य ख्यातनामा अफलातून (प्लेटो)ने लिखा है। उसका अनुवाद बहुत-सी भाषाओंमें हुआ है। यह भाषण बहुत सुन्दर और नीति-रससे परिपूर्ण है। इसलिए हम उसको यहाँ दे रहे हैं। हम उसका शब्दशः अनुवाद नहीं, सार-मात्र देंगे।

हमें दक्षिण आफ्रिकामें, बल्कि समस्त भारतमें अभी बहुतसे काम करने हैं। तभी भारतके संकट दूर होंगे। हमें सुकरातकी भाँति जीना और मरना आना चाहिए। इसके अतिरिक्त सुकरात महान सत्याग्रही थे। उन्होंने अपने ही देश यूनानके लोगोंके विरुद्ध सत्याग्रह किया। उससे यूनानके लोग महान् हुए। हम जबतक कायरताके कारण अथवा प्रतिष्ठा न मिलने या प्राण जानेके भयसे अपने दोषोंको नहीं देखेंगे और उनको जाननेपर भी उनकी ओर अपने लोगोंका ध्यान न खींचेंगे तबतक सैकड़ों बाहरी उपाय करनेपर भी — काँग्रेसकी बैठकें करने और उग्रपंथी बननेपर भी — भारतका भला नहीं कर सकेंगे। उसका भला ऐसे न होगा। सच्चे मर्जको पहचानने, उसे स्पष्ट कर देने और उसका उचित इलाज करनेके बाद जब भारतका आन्तरिक और बाह्य शरीर रोगरहित होकर भला-चंगा हो जायेगा

तब अंग्रेजी या अन्य अन्याय-रूपी कीटाणु उसको कोई क्षति न पहुँचा सकेंगे। किन्तु यदि स्वयं शरीर सड़ा हुआ होगा तो एक प्रकारके संक्रामक कीटाणुओंको नष्ट करनेपर उनकी जगह दूसरे प्रकारके संक्रामक कीटाणु अधिकार जमा लेंगे और भारतके शरीरको नष्ट कर देंगे।

हम यहाँ सुकरातके भाषणका सार इस उद्देश्यसे दे रहे हैं कि हमारे पाठक इन बातोंको ध्यानमें रखकर और सुकरात जैसे महात्माके विचारोंको अमृत जैसा जानकर उसका रसपान करें और उससे अपने आन्तरिक रोगका उन्मूलन करके अन्य लोगोंको इस प्रकारके रोगोंके उन्मूलनमें सहायता दें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–४–१९०८

८५. मिस्रके प्रख्यात नेता [२]

विद्यार्थियोंमें वे अत्यन्त लोकप्रिय थे। एक विद्वानने कहा था कि मिस्रमें कानूनका अध्ययन करनेवाले सारे विद्यार्थी पाशाके दलके समर्थक थे। जब पाशा यूरोपसे वापिस आये उस समय उनके सम्मानमें विद्यार्थियों और दूसरे लोगोंका जो जुलूस निकला था उतना बड़ा जुलूस किसी भी मिस्रीके सम्मानमें पहले कभी नहीं निकला था।

मुस्तफा कामेल पाशा उत्तम वक्ता तो थे ही; वे अच्छे लेखक भी थे। इंग्लैंडके 'डेली न्यूज़' पत्रके मतानुसार दुनियाके मुसलमानोंमें वे एक जागरूक पत्रकार थे। जब वे स्कूलमें पढ़ते थे, तभी उन्होंने 'रोममें गुलामीकी प्रथा' और 'राष्ट्रोंका जीवन' नामकी पुस्तकें लिखी थीं। उन्होंने कुछ कविताएँ और 'ऐंडेलुशीयाकी विजय' नामका एक ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखा था। उनकी कल्पनाशक्ति और अध्यवसायकी शक्ति अक्षय थी। वे पूरे बीस वर्षके भी नहीं हुए थे, तभी उन्होंने 'अल मदरसा' नामका एक मासिक-पत्र निकाला था, जो उसमें प्रकाशित उनके लेखोंकी उग्रता और नवीनताके लिए प्रसिद्ध हो गया था। सन् १९०० में उन्होंने 'लीवा' नामका पत्र निकाला था। उसके पहले वे मिस्री और विदेशी मासिक पत्रों तथा समाचारपत्रोंमें लिखते थे। उन्हें फ्रेंच भाषाका पूरा ज्ञान था इसलिए उन्हें यूरोपीय जनताके सम्मुख मिस्रका सवाल रखनेके कीमती अवसर सुलभ थे। आगे चलकर उनपर कामका बोझ ज्यादा बढ़ गया। तो भी समय बचाकर उन्होंने एक पुस्तक जापानके बारेमें और एक पुस्तक पूर्वके सवालके बारेमें लिखी।

उनके अधिकांश गोरे मित्र फ्रेंच थे। पाशाकी मृत्युका दुःखदायी समाचार सुनकर उन्हें निश्चय ही गहरा आघात लगेगा — वे हाहाकार कर उठेंगे। उनके सद्गुणोंके कारण उनकी ओर बहुत लोग आकर्षित होते थे। उनका तौर-तरीका और बातचीतकी मिठास लोगोंका मन हर लेती थी और लोग उनके (राष्ट्रीय) पक्षमें शामिल हो जाते थे। मैडम जुलिएट ऐडमने, जो उनकी आजीवन मित्र रहीं, उनके भाषणोंके फ्रेंच संस्करणकी प्रस्तावनामें लिखा है कि "मुस्तफा कामेलने सारे यूरोपकी यात्रा की है और अपनी इन यात्राओंमें राजनीति और पत्रकारिताके क्षेत्रमें प्रसिद्ध अनेक लोगोंके साथ उन्होंने मित्रता की है।" यह मित्रता उन्हें अपने देशके हित-साधनमें उपयोगी सिद्ध हुई।

ब्रिटिश शासनका आरम्भ होनेपर मिस्रियोंके खिलाफ तिरस्कार और उपेक्षा बतानेकी जो बाढ़ आई उसे रोकना ही मुस्तफा कामेल पाशाके प्रयत्नका लक्ष्य था। इस प्रयत्नमें उन्हें सफलता मिली, इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता। आज फ्रेंच लोग मिस्रियोंके विषयमें ऊँची राय और उनके प्रति सहानुभूतिका भाव रखते हैं इसका श्रेय मुस्तफा कामेल पाशा द्वारा चलाये गये महान् संघर्षको ही है। भाषणों, संवादों और लेखोंके द्वारा उन्होंने दिखा दिया था कि देशोन्नतिके लिए चाहे जितनी मेहनत करनी पड़े, वे थकनेवाले न थे। उनके लेखों और भाषणोंमें इटलीके महान् देशभक्त मैज़िनीके सिद्धान्तोंकी झलक मिलती है। मैज़िनीका यह विश्वास कि अन्तमें सत्य और न्यायकी ही विजय होती है, पाशाके भाषणों और लेखोंमें भी खूब दिखाई पड़ता है। अपने कर्तव्योंके प्रति उपेक्षाका भाव, स्वदेशाभिमानकी कमी और कायरता, इन दुर्गुणोंको वे मिस्रका शत्रु मानते थे और इनके नाशके लिए बड़े-बड़े आन्दोलन चलाते थे।

उन्हें इस बातका पूरा निश्चय हो गया था कि पश्चिमके बौद्धिक साधनोंके बिना मिस्रकी सच्ची उन्नति नहीं हो सकती। वे मानते थे कि पश्चिम और पूर्वके लोगोंके सम्बन्ध अधिक गाढ़े होने चाहिए और उसकी आवश्यकतापर जोर देनेमें उन्होंने कुछ भी बाकी न रखा था। फिर भी वे इस्लामके पक्के अनुयायी थे। धार्मिक सुधारके बारेमें उनके उत्साहका पार न था। तुर्कीके साथ उनका सम्बन्ध सुविदित था। इस बातसे चिढ़कर कुछ गोरे उन्हें "टरको-फाइल"[१] कहते थे। उनकी राजनीतिक विचारधाराकी एक मान्यता यह थी कि तुर्की मिस्रकी आजादीके आड़े नहीं आयेगा। सुल्तान उनके राजनीतिक विचारोंके लिए उनका सम्मान करता था और उसने उन्हें "द्वितीय श्रेणीके मजीदिया" तथा "रुतबा-उल-सुफतानी" की उपाधियाँ प्रदान की थीं।

अपने जीवनके अन्तिम वर्षोंमें उन्होंने जो काम किया उसे सारा मिस्र अच्छी तरह जानता है। ज्यों-ज्यों उनकी उम्र बढ़ती गई, वे अपने ऊपर अधिकाधिक काम लेते गये। वे ऐसे व्यक्ति न थे कि किसीसे डर जायें या अपने हाथमें ली हुई मुहिमका त्याग कर दें। सूडानपर इंग्लैंडके अधिकार तथा ऐसी ही दूसरी घटनाओंसे मिस्रवासियोंकी स्वतन्त्रताको क्रूर आघात पहुँचा। किन्तु ऐसी घटनाओंसे पाशा एक क्षणके लिए भी निराश नहीं हुए। ज्यों-ज्यों उनके समर्थक उन्हें त्यागते गये और दूसरे डरपोक दोस्त अपने देशका समर्थन करना छोड़ते गये, त्यों-त्यों मुस्तफा कामेल पाशाकी हिम्मत और प्रबल होती गई और वे अपने प्रयत्नोंमें अधिकाधिक परिश्रम करते गये।

सन् १९०६ के दिसम्बरमें उन्होंने मिस्रके "राष्ट्रीय" दलकी स्थापना की थी। यह उनका अन्तिम महान कार्य था। उस दिन मृत्युशय्यासे उठकर उन्होंने जो भाषण दिया उससे हजारों लोग भावना-वश पागल-जैसे हो गये थे। उन्होंने तालियोंकी जोरदार गड़गड़ाहटके साथ उनके (राष्ट्रीय) दलके सिद्धान्तोंका पालन करनेका जो वचन दिया वह मानो अपने देश-बन्धुओंको मुस्तफा कामेल पाशा द्वारा मरते समय सौंपी गई धरोहर है।

अपने दलकी स्थापनाके कामके सिलसिलेमें उन्हें जो अपार परिश्रम करना पड़ा उससे उनके नाजुक स्वास्थ्यको ऐसा धक्का लगा कि फिर वे सँभल ही न सके। मरण-शय्यापर पड़े-पड़े

१. तुर्कीका पिट्ठू।

उन्होंने अपना आन्दोलन जारी रखा और [इंग्लैंडके] प्रधान मन्त्री तथा सर एडवर्ड ग्रेको पत्र लिखकर इस आरोपका कड़ा जवाब दिया कि मिस्रवासी स्वराज्य माँगनेके योग्य नहीं हैं। इसके बाद छठवें दिन, फरवरीकी १० तारीखको उनकी मृत्यु हो गई।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–४–१९०८

८६. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

हमीदिया अंजुमनका पत्र

हमीदिया अंजुमनने विदेशोंमें उन लोगोंका आभार माननेके लिए मानपत्रके रूपमें चिट्ठियाँ लिखी हैं जिन्होंने कानूनके विरुद्ध लड़ाईमें हमारी मदद की। ये पत्र सुनहरे, हरे और लाल रंगमें बहुत अच्छे मोटे कार्ड-पेपरपर छापे गये हैं और इनपर सुन्दर किनारी बनी हुई है। ऐसे लगभग दो सौ पत्र जायेंगे। उनपर श्री इमाम अब्दुल कादिर, श्री फैन्सी तथा श्री कुवाड़ियाके हस्ताक्षर हैं। मजमूनका[1] अनुवाद नीचे दिया जा रहा है:

आदरणीय महोदय,

ट्रान्सवालके भारतीयोंके संघर्षमें आपने बहुत दिलचस्पी ली और हमारे समाजने मददके लिए जब जो प्रार्थना की, आपने हमेशा उसकी ओर अविलम्ब ध्यान दिया, इसके लिए हम हमीदिया इस्लामिया अंजुमनकी तरफसे हार्दिक आभार प्रकट करनेकी अनुज्ञा लेते हैं। इस संघर्षमें समाजने अपार संकट उठाये; और आखिरकार जो शुभ परिणाम निकला, उसमें आपका समर्थन बहुत सहायक हुआ है, इसमें हमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुर्कीके मुसलमानोंपर लागू हो और वहाँकी अन्य प्रजापर लागू न हो, ऐसा धार्मिक भेद होनेके कारण मुस्लिम समाजको विशेष तौरसे उस कानूनका दुःख था; इसलिए उसे रद करानेके लिए अंजुमनका विशेष प्रयत्न करना स्वाभाविक था। और इसपर मुसलमानोंसे हमारी मदद करनेके लिए की गई दरखास्तको इतना अधिक समर्थन मिला यह हमारे अंजुमनके लिए बड़े सन्तोषकी बात है।

तीन मानपत्र

लॉर्ड ऐम्टहिल, सैयद अहमद अली तथा सर मंचरजी भावनगरीके मानपत्र तैयार हो गये हैं। वे आगामी सप्ताहमें श्री रिचको भेजे जायेंगे और श्री रिच समाजकी तरफसे इन तीनों महानुभावोंको मानपत्र देंगे, जिनमें इन महानुभावोंका आभार माना गया है।

'स्वर्ण-कानून'

सरकारने ट्रान्सवालमें निकलनेवाले खनिज पदार्थोंसे सम्बन्धित एक कानूनका विधेयक प्रकाशित किया है। वह कानून साधारण तौर पर "गोल्ड लॉ" अर्थात् 'स्वर्ण-कानून' कहलाता

१. मूल अंग्रेजी मानपत्र **इंडियन ओपिनियन**के १८–४–१९०८ के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

है। सरकारका इरादा उसे संसदकी आगामी बैठकमें पास करानेका है। जो स्वर्ण-कानून फिलहाल अमलमें है, यह मसविदा उससे मिलता-जुलता है। किन्तु पहले इसमें काले आदमियोंसे सम्बधित कुछ धाराओंके दो अर्थ निकलते थे; वे अब स्पष्ट रूपसे उनके विरुद्ध कर दी गयी हैं। प्रचलित कानूनके अनुसार सरकारने जोहानिसबर्ग इत्यादि नगरोंमें परवाने देनेसे इनकार कर दिया था। रुडीपूर्टमें जो मुकदमा हुआ, 'इंडियन ओपिनियन'के पाठकोंको उसका स्मरण होगा। किन्तु कानूनका निश्चित अर्थ न होनेके कारण सरकारने अपना आग्रह छोड़ दिया था। अब यदि ऊपरके मसविदेके मुताबिक कानून बन जाये तो खनिज प्रदेशकी जमीनके लिए काले लोगों और भारतीयोंको परवाने नहीं मिल सकेंगे; यही नहीं, वे वहाँ रह भी नहीं सकेंगे। इसका यह अभिप्राय हुआ कि खनिज प्रदेशवाले भागमें भारतीय और दूसरे काले लोग केवल बस्तियोंमें ही रह सकेंगे। उस कानूनके दूसरे खण्ड भी ज्ञातव्य हैं। इसका सारांश मैं अंग्रेजी विभागको भेज रहा हूँ। किन्तु मुख्य जानने योग्य बात तो जो मैंने बताई, वही है। इस कानूनके विरुद्ध भारतीय समाजको जबरदस्त संघर्ष करना पड़ेगा। विलायतका एक अंग्रेजी अखबार हमारे पक्षमें लिख चुका है। किन्तु सच्चा बल तो तभी चमकेगा जब हम वह सब करेंगे जो हमें करना चाहिए। हमारा आशा करना तभी शोभाजनक होगा। इस प्रकारके प्रयत्न भारतीय समाजके खिलाफ हमेशा होते ही रहेंगे। और हम जितना उनका विरोध करते रहेंगे उतने जीतते रहेंगे तथा शक्तिशाली बनते जायेंगे।

सच्चा इन्साफ

सोफियानगरमें कुछ वतनी अपने नाम जमीन लेकर बस गये हैं। यह क्षेत्र नगर-पालिकाकी सीमामें है। उसके नियमके अनुसार कोई वतनी नगरपालिकाकी इजाजतके बिना 'बस्ती' के बाहर नहीं रह सकता। नगरपालिकाने उपर्युक्त वतनियोंपर इस धाराकी रूसे मुकदमा चलाया। न्यायाधीशने उन्हें दण्ड दिया। वतनियोंने अपील की। उसमें वे लोग जीत गये हैं। सर्वोच्च न्यायालयने फैसला दिया है कि नगरपालिकाका यह नियम इन वतनियोंके लिए बेकायदा माना जायेगा।[२] यह निर्णय देते हुए न्यायाधीश वेसेल्सने नगरपालिकाके मुकदमेको अत्याचार कहकर उसकी निंदा की और कहा कि सभ्य राष्ट्रमें अपनी सम्पत्तिके उपभोगके अधिकारपर आघात नहीं किया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय सदा ऐसा न्याय करता आया है, यह सन्तोषकी बात है।

पंजीयन

लोग पंजीयन करा रहे हैं। प्रिटोरियामें कुछ भारतीयोंको १० अँगुलियोंकी छाप देनेमें सख्त आपत्ति थी; श्री चैमने उनकी आपत्ति स्वीकार नहीं करते थे। अब उसका फैसला हो गया है। उनके पंजीयनके लिए प्रिटोरियामें कार्यालय खास तौरपर खुला रखा जायेगा। जिन्होंने अबतक दरखास्त नहीं दी है, उन्हें अवसर देनेके विचारसे जोहानिसबर्गमें भी कुछ समयके लिए दफ्तर फिरसे खोला जायेगा। फिलहाल दफ्तर पीटर्सबर्ग, पॉचेफ्स्ट्रूम इत्यादि

१. देखिए परिशिष्ट २।

२. यद्यपि एक न्यायाधीशने कहा कि, "कानून भले ही नगरपालिकाके पक्षमें हो किन्तु न्याय पूरी तरह प्रार्थियोंके पक्षमें है;" किन्तु अदालतने इस मुद्देपर कोई निर्णय नहीं दिया। उसने सजा इस आधारपर रद की कि, 'तिथि निश्चित करनेवाला प्रस्ताव गजटमें प्रकाशित या अन्य किसी रीतिसे प्रसारित नहीं किया गया'।

स्थानोंमें घूम रहा है और ऐसी आशा है कि पंजीयनकी अर्जियाँ १० अप्रैल तक पूरी आ चुकेंगी। खयाल है कि उसके बाद पंजीयन-पत्र देनेमें एक महीना लग जायेगा।

उतावले भारतीय

बाहर रहनेवाले भारतीय ट्रान्सवालमें प्रवेश पानेके लिए बड़ी उतावली करते दीख पड़ रहे हैं। कुछ लोग गलत तरीकेसे भी दाखिल हो जाते हैं। मुझे इन सबसे कहना चाहिए कि इस तरह वे समाजको हानि पहुँचायेंगे। जिनके पास युद्धके बादका सच्चा अनुमतिपत्र हो, उनके आनेमें रुकावट नहीं है। किन्तु दूसरे भारतीयोंको अभी राह देखना लाजिम है।

गोरे फेरीवाले

क्रूगर्सडॉर्पमें श्री बेलीने जो भाषण दिया है उससे गोरे फेरीवाले बड़े आवेशमें आ गये हैं।[1] उन्होंने २०० पौंडकी मदद माँगी है। श्री बेलीने इस सम्बन्धमें ५० पौंड देनेको कहा है। उनका विचार भारतीय फेरीवालोंको छकानेका है। ऊपरकी हलचलोंमें कोई खास दम हो, ऐसा नहीं लगता। किन्तु यदि ऐसी हलचलके जारी रहते हुए हम बैठे रहें, तो अन्तमें नुकसान होगा, इसमें भी शक नहीं है। इसलिए भारतीय कौमको याद रखना है कि जिस शत्रुसे उसे टक्कर लेनी है, वह घड़ी दो घड़ीमें ही चीं बोल जानेवाला शत्रु नहीं है; बल्कि पेंतरे बदल-बदलकर सामने आनेवाला वीर है। भारतीय फेरीवाले इसे विशेष तौरसे समझ लें कि उन्हें अपना सामान साफ-सुथरा रखना चाहिए, प्रामाणिक ढंगसे बेचना चाहिए और उद्दण्डता नहीं करनी चाहिए।

उटशुरनके भारतीय

उटशुरन (केप उपनिवेश)से संघके नाम तार आया है। उसमें वहाँके प्रमुख श्री मुहम्मद खाँ सूचित करते हैं कि 'लगभग ४० भारतीयोंकी एक सभा हुई और उसमें संघके कामोंमें मदद करनेके लिए निधि इकट्ठी की गई; यह अगले हफ्ते भेज दी जायेगी।' उक्त अवधि बीच चुकी है, इसलिए अब किसी भी समय रकम मिल जानेकी सम्भावना है।

पंजीयनके विषयमें अन्तिम समाचार

तारीख ३० मार्च तक पंजीयनके लिए ७,२६२ प्रार्थनापत्र दिये गये हैं। उस तारीख तक ४,०९६ प्रमाणपत्र स्वीकृत हुए और उनपर हस्ताक्षर किये गये। सारे उपनिवेशमें अनेक स्थानोंपर कार्यालय खुल चुके हैं और तमाम लोग पंजीयन कराने लगे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–४–१९०८

१. देखिए पादटिप्पणी पृष्ठ १५८।

८७. नेटाल डायरेक्ट-लाइनके जहाज

हम अपने पत्रके गुजराती स्तम्भोंमें संवाददाताओंके भेजे हुए दो पत्रोंका सारांश छाप रहे हैं। पत्रोंमें नेटाल डायरेक्ट-लाइनके भारत जानेवाले जहाजोंमें स्थानकी कमी तथा अन्य असुविधाओंकी शिकायत की गई है। मुसाफिरोंकी शिकायत है कि उनके पाखाने खराब और गन्दे हैं; छत (डेक) परकी जगह तंग है और आरामदेह नहीं है; निचली मंजिल तो बहुत ही छोटी है; उसमें जितने मुसाफिरोंको ले लिया जाता है वे उसमें समा नहीं सकते। और भी शिकायतें हैं, जिनका फिलहाल जिक्र करना हम जरूरी नहीं समझते। हम इन जहाजोंके मालिकों और एजेंटोंका ध्यान उक्त तथ्योंकी ओर दिलाना चाहते हैं; और भरोसा करते हैं कि छतोंमें सफर करनेवाले मुसाफिरोंकी शिकायतोंकी पूरी तौरसे जाँच की जायेगी और उनके सच निकलनेपर उन्हें दूर किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–४–१९०८

८८. कुष्ठ रोगियोंकी दुआ

अंग्रेज लोग राज्य करते हैं, इसीलिए वे सुखी हैं, यह न माना जाये। उसके और बहुत-से कारण हैं। वे सुखी क्यों हैं, उनके हाथमें राज्य-सत्ता क्यों है, आदि बातोंके कारणोंके बारेमें हम बीच-बीचमें विचार करते रहे हैं।[1] कुष्ठ रोगियोंके एक चिकित्सालयका वर्णन पढ़ते हुए हमें फिर उस प्रकारका विचार करनेका एक कारण मिला। भारतमें बहुत कुष्ठ रोगी दिखाई पड़ते हैं। साधारण तौरपर हम ऐसे रोगियोंका तिरस्कार करते हैं, उन्हें अपने बीचसे हटा देते हैं। कुछ लोग ऐसा तो नहीं करते; किन्तु फिर भी उनकी दवा-दारू करनेवाले अथवा उनके लिए अच्छे औषधालय बनवानेवाले लोगोंके उदाहरण हमें अपने बीच नहीं मिलते। देखा यह जाता है कि इनकी सार-सँभाल करनेका काम गोरोंने ही उठा रखा है। हिन्दुओंने एक समूचा वर्ग ही ऐसा बना रखा है जिसे वे छूते नहीं हैं; जिसपर वे जुल्म करते हैं और बड़ी मुश्किलसे उनकी गिनती आदमियोंमें करते हैं। इस वर्गका संरक्षण भी गोरे ही करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

भारतमें चंदकुरी नामका एक गाँव है। उसमें ईसाई पादरियोंने कुष्ठ रोगियोंका अस्पताल बनाया है। वे उसमें किसी भी भारतीय कुष्ठ रोगीको दाखिल कर लेते हैं। सन् १९०० के पहलेकी जनगणनाके अनुसार भारतमें कमसे-कम एक लाख कुष्ठ रोगी थे। इन लोगोंकी सार-सँभाल करनेके लिए भारतमें पादरियोंने ५० अस्पताल खोले हैं। इन अस्पतालोंमें वे इस प्रकारके रोगियोंकी शुश्रूषा करते हैं, उन्हें शिक्षण देते हैं, उनके बाल-बच्चोंका लालन-पालन करते हैं, भोजन और कपड़ा देते हैं तथा उन्हें पढ़ाते हैं। यह सारा काम करनेके लिए

१. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४८२, ४८५, और खण्ड ६, पृष्ठ ४३६–३७।

विभिन्न देशोंसे गोरे अपना-अपना काम छोड़कर आते हैं। वे यही मानते हैं कि ऐसा करनेमें सच्चा परमार्थ है। वह सचमुच ईश्वरका कार्य है और उसे करनेमें उनका तथा उनके समाजका कल्याण है। कैनडासे श्री ऐंडर्सन नामक एक धनाढ्य गौरांग सज्जन यह काम करनेके लिए इन अस्पतालोंमें आये हैं।

इन सबका खर्च कौन चलाता है? यदि कोई ऐसा सवाल उठाये तो हमने ऊपरके तथ्य जिस किताबमें से लिये हैं उसी किताबमें इसका जवाब भी है। खर्चके लिए ये लोग विलायतमें चन्दा इकट्ठा करते हैं। हम भारतमें से उन्हें थोड़े पैसे ही देते हैं।

इसका उद्देश्य क्या है? इस सवालका जवाब भी सीधा है। बेशक उनका यह खयाल है कि इस प्रकारके जो रोगी मिलते हैं उन्हें ईसाई बनाया जाये। किन्तु यदि वे ईसाई न बनें तो भी वे उन्हें निकाल बाहर नहीं करते। उनका उद्देश्य हर हालतमें उनकी सेवा-शुश्रूषा करना रहता है।

जो समाज ऐसा परमार्थ करता है और जिस समाजमें ऐसा काम करनेके लिए हजारों मनुष्य मिल जाते हैं, वह समाज क्योंकर सुखी न हो, वह समाज क्योंकर राज्य न करे?

भारतके लोग जबतक अपना इस प्रकारका बोझ स्वयं नहीं उठाते, अपना ही कर्तव्य पूरा नहीं करते, तबतक वे किस प्रकार सुखी हो सकते हैं, किस प्रकार उन्हें स्वराज्य मिल सकता है? स्वराज्य मिल भी जाये, तो उससे क्या लाभ हो सकता है? इंग्लैंडमें कुष्ठ रोगी न हों, ऐसा नहीं है। उनकी और जरूरतें नहीं हैं, ऐसा भी नहीं है। किन्तु अंग्रेज-समाज ऐसे कामोंके लिए दूसरोंपर निर्भर नहीं रहता। अपना कर्तव्य वे स्वयं करते हैं। हम किसी अन्य समाजकी मदद करें, यह तो दूरकी बात है, हम स्वयं अपना ही बोझ नहीं उठा पाते।

ये बातें सोचने योग्य हैं। ऊपर-ऊपर विचार करके, वे हमें अधिकार नहीं देते इसलिए अंग्रेजोंको बुरा कहकर, उन्हें निकाल बाहर करनेका आन्दोलन चलाकर, हम अपनी विजय मान लेते हैं; किन्तु ऐसा करके हम अपना नुकसान करते हैं, फायदा नहीं। हम वास्तविक कारणको भुला देते हैं।

अंग्रेज राज्य करते हैं और सुख भोगते हैं, इसका कारण इन कुष्ठ रोगियोंकी दुआ ही क्यों न हो? और हम दुःख भोगते हैं; इसका कारण उनकी बददुआ क्यों नहीं हो सकती?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-४-१९०८

८९. केपके भारतीय

केप टाउनके 'केप आरगस'ने लिखा है :

जब दक्षिण आफ्रिकासे गोरोंके दलके-दल कामकी कमीके कारण चले जा रहे हैं तब सरकारके लिए जरूरी है कि वह अन्य लोगोंके आगमनपर ध्यान रखे। ज्यों-ज्यों गोरे निकलते जायें त्यों-त्यों एशियाई आते जायें — यह बहुत बुरा होगा। हमें एक पत्र मिला है; उससे जान पड़ता है कि प्रवासी कानूनपर अमल जितनी सावधानीसे किया जाना चाहिए उतनी सावधानीसे नहीं किया जाता, ऐसा सन्देह किया जा सकता है। कदाचित् कानूनमें ही कमी होगी, उसके कारण ऐसा होता होगा। हमारे पत्र-लेखकने कहा है कि दो सौ एशियाई अपने आपको सोलह वर्षसे कमका बताकर उतरे हैं। वे कहते हैं कि उनके पिता यहीं हैं, और उनकी माताएँ भारतमें हैं। यह बात ऐसी गम्भीर है कि इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

'केप आरगस' की यह टिप्पणी मनमें अंकित कर लेने योग्य है। याद रखना चाहिए कि 'केप आरगस' सामान्यतः भारतीयोंके प्रति वैर-भाव नहीं रखता। फिर भी वह ऐसा क्यों लिखता है? कहीं हमारा दोष तो नहीं है? हमारे विरुद्ध कुछ कहा जाये या किया जाये तो सबसे पहले हमें अपना ही दोष देखना चाहिए, यह बहुत-अच्छा नियम है।

केपमें भारतीयोंके प्रवेशके सम्बन्धमें कोई धोखाधड़ी होती है या नहीं, इसका पता हमें नहीं है। हमें उसका कोई अनुभव नहीं है। किन्तु नेटाल आदिमें जो-कुछ होता है उससे अनुमान किया जा सकता है कि इसमें कुछ अंशमें हमारा दोष भी होना चाहिए। यदि उक्त आरोपमें कुछ सत्य हो तो केपके भारतीयोंको विचार करना चाहिए। इस समय स्थिति ऐसी है कि दक्षिण आफ्रिकामें अधिक भारतीय नहीं आ सकते। यह आवश्यक है कि वे यहाँ न आयें।

ट्रान्सवालसे भी ऐसी ही शिकायत आई है। ऐसा कहा जाता है कि लोग वहाँ चोरीसे जाने लगे हैं।

इसका इलाज कैसे हो? यह प्रश्न बड़ा है। किन्तु यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि इस प्रश्नके उचित समाधानपर ही भारतीय समाजकी प्रतिष्ठा निर्भर है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–४–१९०८

९०. डंडीमें परवानेका मामला

डंडी प्रदेशमें श्री कासिम गुलाम पटेलको परवाना नहीं दिया गया, यह स्पष्ट अन्याय हुआ है। परवाना न देनेका कारण यह बताया गया कि उन्होंने अपने लेनदारोंसे तीन बार समझौता किया है। कोई व्यक्ति अपने लेनदारोंसे तीस बार भी समझौता करे तो इससे परवानेपर आघात क्यों होना चाहिए? ऐसा न्याय तो न्यायके प्रति अन्धे बने हुए लोग ही कर सकते हैं। एक सिंहने एक मेमनेको खा जानेका विचार किया, तो उसने उसपर आरोप लगाया कि तूने नदीके पानीको गँदला किया है। दीन मेमनेने कहा, मैं तो पानीके प्रवाहके नीचेकी ओर था और आप ऊपरकी ओर थे। इसपर सिंह राजाने दहाड़कर कहा: "तूने नहीं तो तेरे बापने गँदला किया है।" और वह मेमनेको खा गया। कुछ परवाना अधिकारियों और परवाना निकायने ऐसा ही करना आरम्भ किया है। भारतीय मेमना जब मेमना न रहकर सिंह बनेगा तब वह परवाना अधिकारियोंको भारी पड़ेगा, क्योंकि नियमके अनुसार शिष्य गुरुसे बढ़े बिना न रहेगा। क्या भारतीय सिंह जागेगा?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–४–१९०८

९१. जहाजोंमें कष्ट

नेटाल डायरेक्ट-लाइनके जहाजोंमें यात्रियोंको बहुत कष्ट होते हैं, इस आशयके दो पत्र हम इस अंकमें छाप रहे हैं। इन पत्रोंसे अनुमान किया जा सकता है कि उनमें अवश्य ही बहुत कष्ट होते होंगे। भारतीय यात्री इन कष्टोंका विरोध करने लगे हैं, इसे हम अच्छा लक्षण मानते हैं। जहाजोंमें गोरे यात्रियोंके लिए बहुत-सी सुविधाएँ देखी जाती हैं। इसका कारण यही है कि गोरोंको कष्ट होता है तो वे उसे कभी चुपचाप सहन नहीं करते। इन दोनों पत्रोंकी ओर हम उन जहाजोंके एजेंटोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। उनका कर्तव्य है कि वे इन कष्टोंके सम्बन्धमें उचित जाँच करें और इनका निवारण करें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–४–१९०८

१. देखिए "नेटाल डायरेक्ट-लाइनके जहाज", पृष्ठ १७२।

९२. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सीमान्तमें चोरी

अफवाह है कि ट्रान्सवालकी सीमापर चारों तरफसे भारतीय बिना अनुमतिपत्रके दाखिल हो रहे हैं। यदि भारतीय इस प्रकार गलत तरीकेसे ट्रान्सवालमें आ रहे हैं तो उन्हें तथा अन्य भारतीयोंको अन्ततोगत्वा परेशान होना पड़ेगा, यह बिलकुल स्पष्ट है। इसलिए चोरीसे आनेकी इच्छा करनेवाले भारतीयोंको बहुत विचार करना चाहिए। यदि पहले चोरी बिलकुल न होती, तो एशियाई कानून न बनता। यदि अब भी चोरी होती रही, तो फिर कानून बने बिना नहीं रहेगा। किन्तु नेतागण इसमें शामिल नहीं हैं। वे सरकारको किसी भी प्रकार दगा नहीं देना चाहते। इसलिए कार्यकारी प्रमुख श्री कुवाड़ियाने सरकारको निम्नानुसार लिखा है:

> मेरे संघको खबर मिली है कि कुछ एशियाई बिना अनुमतिपत्रके ट्रान्सवालमें दाखिल हो रहे हैं। कुछ तो चलकर आते हैं। मेरे संघको नहीं मालूम कि सीमापर किस तरहकी जाँच की जा रही है। किन्तु मेरे संघका विचार सरकारकी मदद करने और चोरीसे आनेवाले आदमियोंको रोकनेका हैं। अतएव मेरे संघका सुझाव है कि सीमापर और रेलगाड़ियोंपर ठीकसे चौकसी रखी जानी चाहिए। मेरे संघकी यह भी मान्यता है कि लोगोंको बिना नुकसान पहुँचाये यह किया जा सकता है। जो बिना अनुमतिपत्रके और बिना अधिकारके ट्रान्सवालमें घुस आते हैं उनके ऊपर मुकदमा चलाया जा सकता है। समझौतेमें इससे कोई बाधा नहीं पड़ती। मेरे संघकी मान्यता है कि उनपर प्रवासी कानूनके अनुसार मुकदमा चल सकता है।

एशियाई बाजार

क्लार्क्सडॉर्पके व्यापार-संघने प्रस्ताव किया है कि एशियाई लोगोंको बस्तियोंमें भेज दिया जाये और उनका व्यापार भी वहींतक सीमित कर दिया जाये। इस प्रस्तावको और मजबूत बनानेके लिए इस संघने पॉचेफ्स्ट्रूमके संघको लिखा। पॉचेफ्स्ट्रूमके संघने उक्त प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया और सूचित किया कि हरजाना दिये बिना उन्हें बस्तियोंमें नहीं भेजा जा सकता; और इसलिए उक्त संघने सरकारके पास ऐसा पत्र भेजनेसे इनकार कर दिया है।

काले लोग और शराब

एशियाई तथा अन्य काले लोगोंको शराबकी छूट मिल सके, इसके लिए प्रिटोरियामें आन्दोलन किया जा रहा है। अखबारोंके अनुसार श्री कासिम नामक कोई सज्जन हैं, जो इस हलचलमें बड़ा भाग ले रहे हैं। प्रिटोरियामें इस बातको लेकर सभाएँ भी हुई हैं। एक प्रार्थनापत्र तैयार किया गया है जो ट्रान्सवालकी संसदको भेजा जायेगा। उसमें कहा गया है कि शराब-बन्दी होनेपर भी काले आदमी शराब प्राप्त कर लेते हैं और उसमें गोरे उन्हें बहुत लूटते हैं। काले आदमी चोरीसे दारू पीते ही हैं तो फिर उन्हें प्रकट रूपसे पीने देनेमें ही सार है।

चोरीसे पीनेके कारण उन्हें जब शराब मिलती है, तो वे एकदम डटकर पी लेते हैं और नशेमें चूर हो जाते हैं। प्रार्थियोंका कहना है कि बजाय इसके सबको शराबकी छूट होनी चाहिए। इस अर्जीपर कई काले आदमियोंके हस्ताक्षर लिये जा रहे हैं। भारतीयोंमें से इस प्रार्थना-पत्रपर हस्ताक्षर करनेवाला कोई मिला हो, ऐसा नहीं लगता; और हमें आशा है कि इसपर कोई भारतीय सही करेगा भी नहीं। मेरी समझमें इस अर्जीके पीछे गोरोंका हाथ है। डच राज्यकर्त्तागण कुछ हद तक वतनियोंको दारूकी छूट देनेके पक्षमें हैं। यदि इसके विरुद्ध इंग्लैंडमें कुछ हलचल न हुई होती, तो संसदकी पिछली बैठकमें ही इस प्रकारका विधेयक पास हो जाता। मैं जानता हूँ कि कुछ भारतीय शराब चोरीसे खरीदते और पीते भी हैं। पीनेवाले स्वयं भी इतना समझते हैं कि शराब पीनेकी आदत बहुत बुरी है। वे इसकी लत नहीं छोड़ते, और यह भी मानते हैं कि छोड़ना बहुत मुश्किल है। ऐसा मानते हुए वे यह बात भूल जाते हैं कि मन और आत्मामें कितना बल है। यदि एक बार हिम्मत करके वे अपनी आदत छोड़ दें, तो उनका और समस्त समाजका लाभ हो सकता है।

गुप्ती

सरकार हमें खुली तलवारसे मारती है, इतना ही नहीं, वह अपने पास गुप्ती भी रखे हुए है। पिछले वर्ष कुत्तोंको रखनेके विषयमें एक कानून बनाया गया। साधारण तौरपर उस कानूनको कोई नहीं पढ़ेगा। मैंने भी उसे नहीं पढ़ा। अब जब उसपर अमल किया जा रहा है, तभी समझमें आया है कि यह एक नई परेशानी है। कुछ भारतीय नगरपालिकाकी सीमाके बाहर कुत्ते रखे हुए हैं। सरकार उन्हें कुत्ता पालनेपर हर साल १० शिलिंग देनेको कहती है। गोरे अपने कुत्तोंका निःशुल्क पंजीयन करा सकते हैं; तब फिर भारतीय और दूसरे काले आदमियोंपर ऊपर कहे अनुसार कर लगाना कहाँतक ठीक है? इस बातको लेकर शहरके भारतीयोंमें चर्चा चल रही है। कुछ इस बारेमें मुकदमा चलानेकी तैयारी कर रहे हैं। मुझे लगता है कि इस कानूनपर अमल नहीं किया जा सकता; क्योंकि इसमें बादशाहकी स्वीकृति सम्बन्धी धारा दिखाई नहीं पड़ती। रंगभेद करनेवाले प्रत्येक कानूनमें इस प्रकारकी धारा आवश्यक होती है। श्री नगदी इस विषयमें प्रयत्न कर रहे हैं, अतएव तत्सम्बन्धी अधिक जानकारी श्री नगदीसे प्राप्त की जा सकती है।

भारतीयोंकी प्रशंसा

'प्रिटोरिया न्यूज़' में पंजीयनसे सम्बन्धित एक लम्बा लेख है। उसमें कहा गया है कि भारतीयों तथा चीनियोंने इसमें अच्छी मदद की है और सन्तोष दिया है। आजतक पंजीयन ठीक हुआ है। ऐसे बहुत कम मामले हैं जिनपर एतराज किया जा सकता हो।

पोलक वकील हो गये

इस पत्रके सम्पादक श्री पोलकको गत सोमवारको वकालतकी सनद मिली है। पाठकोंको याद होगा कि श्री पोलक तीन वर्षसे कानूनके अध्ययनमें लगे रहते थे। उन्होंने लन्दनकी मैट्रीक्यु-लेशन परीक्षा पास की है। दूसरी परीक्षाएँ भी पास की हैं। उन्हें फ्रेंच भाषा लगभग उतनी ही आती है जितनी अंग्रेजी। पिछले तीन वर्षोंमें उन्होंने ट्रान्सवालकी कानूनकी परीक्षा उत्तीर्ण की। मार्च महीनेकी पहली तारीखको श्री गांधीके साथ उनके तीन वर्ष पूरे हो गये, इसलिए

वे वकालत करनके लिए प्रार्थनापत्र देनेके अधिकारी हो गये हैं। सर्वोच्च न्यायालयने गत सोमवारको वह प्रार्थनापत्र लिया और उसे स्वीकृत किया।

परवाने

जिन भारतीयोंने परवाने नहीं लिये हैं उन्हें [इस बारेमें] बहुत जल्दी करना चाहिए। जिनके पास नया पंजीयन है वे उसे दिखाकर समूचे वर्षके लिये परवाना प्राप्त कर सकते हैं। जिन्होंने पंजीयन नहीं कराया है उन्हें परवाना ३० जून तक का मिलेगा। किन्तु इसके लिए प्रार्थनापत्र इस महीनेकी ३० तारीख तक दे देना चाहिए। जो प्रार्थनापत्र नहीं देंगे उनके ऊपर मईके महीनेमें मुकदमा चलनेकी सम्भावना है। इसलिए प्रत्येक भारतीयको शीघ्र परवाना ले लेना चाहिए।

पंजीयन

तारीख ८ तक जो प्रार्थनापत्र दिये गये उनकी कुल संख्या ७,६०७ है और उस दिन तक दिये गये प्रमाणपत्रोंकी संख्या ४,५९० है। इन दिनों वार्मबाथ्स तथा लीडेनबर्गमें प्रार्थनापत्र लिये जा रहे हैं। बिनोनीमें तारीख १३, १४, और १५को, फोक्सरस्टमें तारीख १३, १४को; पॉचेफ्स्ट्रूममें तारीख १६, १७ और १८;को तथा क्रूगर्सडॉर्पमें तारीख १६, १७ और १८को प्रार्थनापत्र लिये जायेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–४–१९०८

९३. एक सत्यवीरकी कथा [२]

"हे एथेन्सके लोगो! मेरे अभियोक्ताओंके भाषणसे आप लोग कितने भ्रमित हुए हैं, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। उनका वक्तव्य ऐसा चातुर्यपूर्ण और सत्य दिखाई देता था कि मुझे स्वयं अपना भान नहीं रहा। फिर भी मैं कहता हूँ कि उन्होंने जो-कुछ कहा है वह असत्य है। उनके बहुतसे असत्योंमें से एक तो मुझे बहुत ही आश्चर्यजनक लगा। उन्होंने आपसे कहा है कि आप मेरे चातुर्यपूर्ण भाषणसे भ्रमित न हो जायें। चातुर्यका उपयोग तो वे ही करते हैं। मुझे चातुर्य आता ही नहीं। किन्तु यदि वे सत्यको चातुर्य कहते हों तो वह मुझमें है, यह मैं स्वीकार करता हूँ। किन्तु यदि वे मुझे सत्यवादीके रूपमें स्वीकार करें तो वे जिसे चतुर कहते हैं, वैसा चतुर मैं नहीं हूँ। कारण, यद्यपि उन्होंने बड़ा प्रभावशाली भाषण दिया है; फिर भी उनके भाषणमें सत्य कुछ नहीं है। मैं तो आपके सम्मुख जो सत्य है, उसको ही उसके पूर्ण रूपमें प्रस्तुत करनेवाला हूँ। मैं आपके सम्मुख कोई तैयार भाषण नहीं लाया हूँ। मैं बूढ़ा हूँ। मुझे आपके सामने चातुर्य या प्रभावका प्रयोग नहीं करना है। इसलिए मैं आपके सम्मुख सदा जिस सादे ढंगसे बोलता रहा हूँ वैसे ही सादे ढंगसे बोलूँ तो आप आश्चर्य न करें। मैं अब सत्तर वर्षसे अधिकका हो गया हूँ। इसमें मुझे न्यायालयका अनुभव आज पहली बार ही हो रहा है। इस कारण मैं न्यायालयके शिष्टाचार और न्यायालयकी भाषासे अपरिचित हूँ। इसलिए आप मेरे शब्दोंका खयाल न करें।

न्यायाधीशोंके रूपमें आपका काम यह देखना है कि मैं न्यायसंगत बात कहता हूँ या नहीं। मेरा कर्तव्य आपके सम्मुख सत्यको ही प्रस्तुत करना है।

"मुझपर बहुत-से लोगोंने आरोप लगाये हैं। एक आरोप यह है कि मैं सब प्रश्नोंकी छानबीन करता हूँ और गलतको सही साबित करता हूँ और लोगोंको भ्रमित करता हूँ। इन आरोपोंको लगानेवाले लोग शक्तिमान हैं। उन्होंने कहा है कि मैं अपने पूर्वजोंके धर्मका पालन नहीं करता। उन्होंने ऐसी बातें आपके कानोंमें आपके बाल्यकालसे भर-भरकर आपको [मेरे खिलाफ] उत्तेजित किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने ये बातें मेरे पीठ-पीछे की हैं। इस कारण मैं आपके सम्मुख अपनी सफाई पेश नहीं कर सका। उन्होंने ईर्ष्यावश या दुष्टतावश आपसे [झूठी] बातें करके आपके मनमें जो उत्तेजना पैदा कर दी है, मैं उसे आपके मनसे निकाल देना चाहता हूँ। किन्तु मैं जानता हूँ कि यह कार्य कठिन है। फिर भी मुझे जो कहना उचित है उसे मैं कहूँगा। परिणाम जो प्रभु चाहें सो हो।

"वे जो-कुछ कहते हैं उसका सार मैंने ऊपर बताया। इसके अतिरिक्त वे नाटकोंमें[1] मेरी हँसी करते हैं और उनमें यह दिखाते हैं कि मैं वायुमें उड़नेका प्रयोग करता हूँ। मैं इसके बारेमें कुछ नहीं जानता। मैं यह नहीं कहता कि वायुमें उड़ा नहीं जा सकता। कोई उसका जानकार हो तो वह बेशक वैसा प्रयोग करे। किन्तु मुझे इसका कोई ज्ञान नहीं है। फिर भी मेलीटस मुझपर ऐसा आरोप करता है। इस महाजन-मण्डलमें से आप अनेक लोग मेरे सम्पर्कमें हमेशा आते रहे हैं। आप एक-दूसरेसे पूछकर देखें कि क्या मैंने किसी दिन किसीसे ऐसी बात भी की है। और यदि आप सब यह कह सकें कि मैंने किसीसे ऐसी बात नहीं की तो आप समझ सकते हैं कि जैसे यह आरोप असत्य है वैसे ही अन्य आरोप भी असत्य होने चाहिए।

"फिर, मेरे विरोधी कहते हैं कि मैं लोगोंको शिक्षा देता हूँ और उनसे उसके बदले पैसा लेता हूँ। यह आरोप भी असत्य है। यह बात सत्य भी होती तो मैं इसमें कोई बुराई नहीं समझता। हममें कई शिक्षक हैं, जो अपना पारिश्रमिक लेते हैं। यदि वे अच्छी तरह शिक्षा दें और उन्हें पैसा मिले तो मैं इसमें कोई असम्मान नहीं मानूँगा। हमारे पास पशु हों तो हम उनको सिखानेके लिए मनुष्य रखेंगे और उनको पैसे देंगे। तब क्या हम अपने बाल-बच्चोंको अच्छा बनना, नागरिकोंके रूपमें अपने कर्तव्योंका पालन करना न सिखायें? और यदि उनको सन्मार्गपर ले जानेवाला शिक्षक मिले तो हम उसको धन और मान क्यों न दें? किन्तु मेरे लिए तो इस प्रकार शिक्षा देना सम्भव ही नहीं हुआ।

"तब आप कहेंगे, 'यदि तुझमें कोई दोष नहीं है तो तेरे ऊपर इतने आरोप क्यों लगाये जाते हैं? यदि तूने लोगोंको विशेषरूपसे प्रभावित न किया हो तो ये आरोप अन्य लोगोंपर क्यों नहीं लगाये जाते, तेरे ऊपर ही क्यों लगाये जाते हैं?' आपका ऐसा पूछना अनुचित नहीं होगा। मैं यह बतानेका प्रयत्न करूँगा कि मेरे ऊपर आरोप क्यों लगाये गये हैं। आपको कदाचित् मेरी बात व्यंग्यपूर्ण प्रतीत हो, फिर भी आप यह विश्वास रखें कि मैं जो सत्य है वही कहूँगा। वे मुझपर आरोप लगाते हैं, इसका कारण यह है कि मेरे पास अमुक ज्ञान है। 'यह ज्ञान कैसा है,' यह आप पूछेंगे तो मैं कहूँगा कि यह ज्ञान भले मानवीय ही हो तथापि हमारे देवताने भी कहा है, कि यह ज्ञान जितना मुझमें है उतना अन्य किसीमें नहीं है।

१. अभिप्राय एरिस्टोफ़ेनीज़के नाटक **क्लाउड्स (बादल)**, से है, जिसमें सुकरातको 'नगर-राज्य' की जड़ खोदनेवाला दिखाया गया है।

"ऐसी देववाणी[1] हुई फिर भी मैंने उसपर तुरन्त विश्वास नहीं किया। इसलिए हममें जो सबसे अधिक ज्ञानी कहा जाता था, मैं उसके समीप गया। मैंने उससे कुछ प्रश्न पूछे। उसपर से मैंने यह जाना कि उसे तो ज्ञानका दम्भमात्र था। मुझमें ज्ञानका दम्भ नहीं था, इसलिए मुझे ऐसा लगा कि मैं इस हदतक उसकी तुलनामें अधिक ज्ञानी हूँ। क्योंकि जो व्यक्ति अपने अज्ञानको जानता है कहा जा सकता है कि वह अपने अज्ञानको न जाननेवाले व्यक्तिकी तुलनामें ज्ञानी है। किन्तु जब मैंने पूर्वकथित ज्ञानीको उसका अज्ञान बताया तब मैं उसकी आँखोमें खटका। फिर मैं दूसरे ज्ञानीके समीप गया। उसने भी ज्ञानका दम्भ किया — अपने अज्ञानको ढँका। मैंने उसको यह बात बताई, इसलिए वह भी मेरा बैरी बन गया। इस प्रकार मैं बहुत-से लोगोंके समीप गया और उन सभीने अपने अज्ञानको छिपाया। मैंने उन सभीका दम्भ उन्हें बताया और इससे उनके मनमें मेरे प्रति कटुता आ गई। अपने अनुभवसे मैंने यह जाना कि जहाँ ज्ञानका जितना अधिक दम्भ था वहाँ वस्तुतः उतना ही अधिक अन्धकार था। मैंने यह भी देखा कि हम बहुत अज्ञानी हैं, इसका भान होना ही सच्चा ज्ञान है।

"मैं बहुत-से कवियोंके और बहुत-से कलाकारोंके समीप गया। मैंने देखा कि बहुत-से कवि अपनी कविताको नहीं समझा सके। कलाकारोंकी कला निःसन्देह ऊँची थी; किन्तु कलाके घमण्डसे उन्होंने यह मान लिया था कि अन्य विषयोंमें भी उनके पास अन्य लोगोंकी तुलनामें अधिक ज्ञान है। इस प्रकार वे सभी गोता खा रहे थे। मैंने देखा कि मुझे अपनी अज्ञानावस्थाका भान उन सबकी अपेक्षा अधिक था।"

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–४–१९०८

९४. मिस्रके प्रख्यात नेता [३]

मुस्तफा कामेल पाशाकी मृत्युकी खबर फैलते ही लोगोंमें व्याप्त शोककी भावना और उनकी शव-यात्राका मिस्रके समाचारपत्रोंमें प्रकाशित विवरण इस प्रकार है:

मुस्तफा कामेल पाशाकी मृत्युकी खबर फैलते ही शोककी गहरी छाया फैल गई और असंख्य लोग 'लीवा' पत्रके दफ्तरमें जमा होने लगे। बूढ़े लोगतक नन्हें बालकोंकी तरह फूट-फूटकर रो रहे थे। अधेड़ और युवक जोर-जोरसे विलाप कर रहे थे। दृश्य इतना शोक-जनक था कि पत्थर-जैसा कठिन हृदय भी पिघल जाता।

'लीवा' पत्रके दफ्तरके सामने लोगोंकी भीड़ सारे दिन जमी रही। वहाँ खड़ा किया गया तम्बू शोकमें डूबे लोगोंसे ठसाठस भरा था। मुस्तफा कामेल पाशाके घरसे जनाजा जब उठा उस समयका रोना-पीटना ऐसा हृदयद्रावक था कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। जो कड़ी छातीके मालूम होते थे ऐसे पुरुषोंकी आँखोंसे भी चौधार आँसू बहने लगे। स्त्रियों तथा दूसरे लोगोंके रुदनसे बहुत कोलाहल फैल गया था। बताया गया है कि जनाजेपर मिस्रका [राष्ट्रीय] ध्वज लपेटा गया था। रास्तेपर पहुँचनेके बाद कुछ ही देरमें लोग एक जुलूसकी

१. ओरेकल ऑफ डेल्फी।

शक्लमें व्यवस्थित होकर चलने लगे। मुस्तफा कामेल पाशाके स्कूलके विद्यार्थी इस जुलूसके आगे-आगे चल रहे थे; खेदीवके कानून और डाक्टरीके स्कूलोंके विद्यार्थी हाथोंमें काले झंडे लेकर चल रहे थे। दूसरे स्कूलोंके विद्यार्थियोंने भी इस जुलूसमें भाग लिया था। उन सबके हाथोंमें अलग-अलग शोक-चिह्न थे। दूसरे लोगोंको मिलाकर जुलूसमें भाग लेनेवालोंकी कुल संख्या एक लाखसे ज्यादा थी। बताया गया कि यह विशाल जुलूस तीन मील लम्बा था।

लोगोंकी इस भारी भीड़के कारण जुलूसके रास्तेपर गाड़ी आदि वाहनोंका आना-जाना बिलकुल बन्द कर दिया गया था। कहीं-कहीं भीड़ इतनी ज्यादा थी कि लोगोंका चलना भी मुश्किल था। दुर्घटनाएँ रोकने और व्यवस्था बनाये रखनेके लिए घूमनेवाले पुलिसके सिपाहियोंमें से कईकी आँखोंसे आँसू टपक रहे थे। रास्तेकी हर खिड़की और हर छत लोगोंसे भरी हुई थी और जहाँ देखिए वहीं स्त्रियाँ, पुरुष और बालक अपने प्यारे नेताके निधनपर फूट-फूटकर रो रहे थे। यह सारा दृश्य अत्यन्त हृदयद्रावक था।

धीरे-धीरे चलते हुए जुलूस कसाऊनकी मस्जिद तक पहुँचा। वहाँ २० मिनट प्रार्थना करनेके बाद वह फिर आगे बढ़ा। जिस समय वह कब्रिस्तान पहुँचा उस समय शोकमग्न जन-समुदाय समुद्रकी लहरोंकी भाँति चारों दिशाओंसे उमड़कर आता हुआ दिखाई पड़ रहा था। शवको कब्रमें उतारनेमें लोगोंकी झिझकके कारण कुछ देर लगी। दफनकी क्रियाके समय न्याय-विभागके भूतपूर्व प्रमुख इस्माइल पाशा सबरी द्वारा रचित मरसिया पढ़ा गया, जिसे सुनकर लोगोंका हृदय भर आया और वे फफक-फफककर रोने लगे। मरसियाकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

> ओ कब्र, तू अपने मेहमानका सम्मानपूर्वक स्वागत कर। वह सारी मिस्री जनताकी आशाओंका आधार था।
>
> तुम्हारे जैसा देशभक्त और उदारमना पुरुष भरी जवानीमें चला गया, यह दुःख हम सहन नहीं कर सकते। तुमने हमें फतहका रास्ता बताया है। तुम देशोन्नतिकी जो इमारत खड़ी कर गये हो हम उसकी रक्षा करेंगे। तुमने रोने-धोनेको कभी प्रोत्साहन नहीं दिया, किन्तु आजके एक दिनके लिए शोकमें डूबनेकी छुट्टी हमें दो! कल सुबहसे हम चट्टानकी तरह दृढ़ होकर तुम्हारा छोड़ा हुआ काम उठा लेंगे।

उत्तर-क्रियामें भाग लेनेवालोंमें अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति उपस्थित थे।

मिस्रकी स्वतन्त्रताके आकांक्षियोंके लिए १० फरवरीका दिन अतिशय शोकका दिन था। काहिरा शहरके इतिहासमें ऐसे दारुण शोककी कोई दूसरी घटना पहले कभी घटित नहीं हुई। लोग कहते हैं कि जिन्होंने उनकी शव-यात्राका जुलूस देखा है वे उसे लम्बे समय तक भूल नहीं सकेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–४–१९०८

९५. अंग्रेज सत्याग्रही महिलाएँ

हम भारतीय सत्याग्रहियोंकी लड़ाईकी तुलना मताधिकारके लिए अथक प्रयत्न करनेवाली अंग्रेज महिलाओंकी लड़ाईके[1] साथ हमेशा करते आये हैं। ये बहादुर अंग्रेज महिलाएँ अपनी यह लड़ाई अब भी चला रही हैं। उन्होंने अपनी लड़ाई हमसे पहले शुरू की थी और कहा नहीं जा सकता कि वह कब पूरी होगी। किन्तु उनकी हिम्मत और दुःख सहनेकी शक्ति अपार है। अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए अनेक महिलाएँ जेल हो आई हैं। उनमें से एकने अपना जेलका अनुभव एक अंग्रेजी समाचारपत्रमें प्रकाशित किया है। यह अनुभव हमें शरमानेवाला और प्रोत्साहन देनेवाला भी है। उनके कष्टोंकी तुलनामें हमारा कष्ट तो कोई चीज ही नहीं है। यह महिला लिखती है:

> हमें पहले एक चौकमें बन्द किया गया था। उसमें से निकालनेके बाद हम लोगोंसे हमारी उम्र, नाम, स्थान आदिके बारेमें प्रश्न किये गये। इन प्रश्नोंके द्वारा मानो जेलका आतिथ्य भोगनेके लिए आये हुए लोगोंका सार्वजनिक सत्कार किया जाता है। हमारे नाम-धाम आदि लिखे जा चुके, उसके बाद हम जेलकी पोशाक पहननेके लिए गये। पोशाकका कपड़ा बहुत खुरदरा था। पहले हमें एक विशेष प्रकारका कपड़ा पहनकर कुछ देर नंगे पाँव खड़े रहना पड़ा। उस समय हमारे पास घरके जो कपड़े और गहने आदि थे उनकी सूची बनाई गई और फिर हमारा वजन किया गया। उसके बाद हमारे बाल खोलकर जाँच की गई कि उनमें जूँ तो नहीं है। फिर हमसे थोड़ी देरके लिए अपने पाँव मामूली गरम पानीमें डाल रखनेके लिए कहा गया। बादमें हमने जेलकी अपनी पोशाकके बाकी कपड़े पहने। इन कपड़ोंपर एक पट्टा बाँधा गया, जिसपर हमारा नम्बर लिखा हुआ था। रूमालकी जगह हमें कपड़ेका एक-एक टुकड़ा दिया गया। चूँकि हमारे कपड़ोंमें कोई जेब नहीं थी, इसलिए इस टुकड़ेको पिनसे कपड़ेमें अटकाकर लटका लिया। यह टुकड़ा हम आठ दिनमें एकसे ज्यादा बार नहीं धो सकते थे। यानी, राज्यके मेहमान (जेलवासी)को सरदी हो जाये, तो उसके लिए कोई सुविधा नहीं थी।
>
> हमें साइकल-सवारोंके मोजों ('साइकलिंग स्टॉकिंग्ज') जैसे मोजे दिये गये। वे घुटनों तक नहीं पहुँचते थे। इसी तरह उन्हें ऊपर बाँध रखनेके लिए बन्द भी नहीं दिये गये थे। जेलके आसपास आधे घंटेके लिए जब हम घूमते थे, तब ये मोजे एकदम खिसक जाते थे। यह बहुत भद्दा मालूम होता था। हमें जो जूते दिये गये थे, वे बहुत ही सख्त चमड़ेके थे। उनपर बार-बार टाँके लगाये गये थे, और थिगड़े भी लगे थे। इसलिए उनका वजन बहुत ज्यादा हो गया था। उनके तलोंमें ठोंकी गई कीलें इतनी ज्यादा बाहर निकल आई थीं कि पाँवोंमें और मौजोंमें कुछ ही समयमें कितने ही छेद पड़ गये। इसके खिलाफ जब हमनें अपनी निरीक्षिकासे शिकायत की तब उसने पुराने जूतोंका एक ढेर हमारे सामने रख दिया और कहा कि इनमें जो जोड़े कम कीलोंवाले हों, वे ले लो।

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ३१-३२, ९२, ३५४, ४०२।

रातमें हमें हमारे भोंयरेमें (कोठरीमें) बन्द कर दिया जाता था। वहाँ लकड़ीके एक पटियेपर नारियलके रेशोंसे बनी हुई चटाई बिछाकर और दो पतले कम्बल ओढ़कर हम लेट जाते थे। नींद तो आती नहीं थी। सुबह छः बजे, जब कि जाड़ोंकी सुबहका अंधेरा पूरा मिटा भी नहीं होता था, हमारे उठनेकी घंटी बज जाती थी। मैं उठकर कभी-कभी तो रातके पहने हुए कपड़ोंपर ही दिनके कपड़े पहन लेती। रातको जो ठंड पड़ती, उसके कारण मुझे ऐसा करना पड़ता। बादमें कलईके एक बरतनमें हम मुँह धोते और आईना न होनेके कारण जैसे-तैसे अपने बाल बाँधते। इतनेमें कोठरीका दरवाजा खोल दिया जाता था, और हमसे पानी भरने जानेको कहा जाता था।

कोको (मैंने उसे कभी चखा नहीं था, इसलिए मैं उसका स्वाद नहीं बता सकती) और रोटी खानेके बाद हम कोठरीको धोते थे। यह रिवाज पहलेसे चला आ रहा था। मुझे वह बेढंगा और मूर्खतापूर्ण मालूम हुआ।

कोठरी धोने और अपना लकड़ीका चम्मच तथा प्रार्थनाकी पुस्तक आलमारीपर यथास्थान रख देनेके बाद हमें डाकखानेके लिए टाटकी थैलियाँ सीनेका काम दिया जाता था। बादमें आधा घंटा प्रार्थना करनेके लिए जाते थे। तीस-चालीस स्त्रियाँ साथ बैठतीं। उस समय कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्रीके साथ बातचीत न करे, इसलिए हमारी निरीक्षिका सामने बैठकर हमारी चौकसी करती थी।

फिर आधा घंटा कसरत करनेके बाद सबको दिनवाली कोठरीमें भर दिया जाता था। वहाँ हरएकको सख्त मेहनतका काम करना पड़ता था। दोपहरके समय चाबियोंकी आवाज और दरवाजोंके खुलनेकी खड़खड़ाहटके साथ भोजन आ जाता था। उसमें जो थोड़ी-सी चीजें होतीं, उनमें आलू भी होता था और वही एक चीज मैं खाती थी।

शामके समय चाय अथवा कोकोके साथ रोटी दी जाती थी। फिर डाकके थैले सीनेके काम आनेवाले कड़े धागेको काटनेके लिए दी गई कैंचियाँ वापस ले ली जातीं थीं। ऐसा करनेका हेतु शायद यह था कि अँधेरा होनेके बाद जो सख्त ठंड पड़ती है उससे घबराकर कोई इन कैंचियोंका प्रयोग आत्मघात करनेके लिए न करे। मोजे बाँधनेके लिए बन्द न देनेमें भी यही हेतु था। यह बात मुझे बादमें बताई गई थी।

कैदियोंको पत्र नहीं दिये जाते और न उन्हें किसीको पत्र लिखनेकी ही स्वतन्त्रता है। किसी कैदीके नाम कोई पत्र आये तो अधिकारी उसे पढ़कर इस टिप्पणीके साथ उसे भेजनेवालेके पास लौटा देते हैं कि कैदीको पत्र पानेका अधिकार नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–४–१९०८

९६. नेटालके गवर्नर और भारतीय

नेटालके गवर्नर महोदय यहाँ आनेके बाद पहली बार भारतीय प्रश्नके सम्बन्धमें बोले हैं। नेटाल खेत-मालिक संघकी वार्षिक सभामें भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि भारतीय मजदूरोंका उपयोग करनेके बजाय काफिर मजदूरोंका उपयोग करना चाहिए। फिर गवर्नर महोदयने कहा कि यदि वे ऐसा न करेंगे तो निर्बल और काले लोगोंके प्रति न्याय-दृष्टि रखनेका गोरोंका जो स्वभाव है, उसके अनुसार वे नेटालवासी भारतीयोंको न्याय न दे सकेंगे।

इस भाषणसे दो विचार उत्पन्न होते हैं। गवर्नरके कथनका आशय ढूँढ़नेपर मालूम होता है कि उन्होंने जो भाषण दिया है वह भारतीयोंके हितकी दृष्टिसे दिया है। फिर उन्होंने गोरोंको चेतावनी दी है कि वे यदि अब भारतीय मजदूरोंको बुलायेंगे तो नेटाल भारतीयोंके हाथोंमें चला जायेगा। सर मैथ्यू नैथनका विचार भारतीयोंके प्रति न्याय करनेका है, उसके लिए हम उनका आभार मानते हैं।

किन्तु हमारा काम तो यह है कि अच्छे और बुरे दोनोंका विचार करें और उनको तौलें। कुछ अच्छा देखें तो हम फूलकर कुप्पा न हो जायें। कुछ बुरा दिखाई दे तो निराश होकर क्रोधमें न भर जायें। इस सिद्धान्तके अनुसार विचार करें तो गवर्नरका अन्तिम कथन कुछ अधिक जान पड़ता है। गवर्नर महोदय कहते हैं कि निर्बल और काले लोगोंके प्रति न्याय करना गोरोंका स्वभाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीय निर्बल हैं और अभी निर्बल ही रहेंगे। गोरे सदा न्याय करते आये हैं और अभी करते रहेंगे। वे भारतीयोंको निर्बल मानते हैं, इसमें हम उनका दोष नहीं समझते; क्योंकि हम निर्बल हो गये हैं और निर्बल बने रहते हैं इसलिए लोग अँगुली उठायेंगे ही। किन्तु गवर्नरको यह विचार गोरोंके सम्मुख रखनेका अधिकार न था। यह उनको शोभा देनेवाला नहीं था। इससे हम गोरोंकी दृष्टिमें और भी निर्बल बनते हैं। इसका उपाय हमारे हाथमें ही है। हमें ऐसा सोचना चाहिए कि हम निर्बल थे, किन्तु अब वैसे नहीं हैं, या हैं तो अब नहीं रहेंगे। और चूँकि हम सबल हैं इसलिए हम अपने अधिकारों और अपने सम्मानके लिए लड़ेंगे।

ऐसा सोचनेमें 'सबल' का अर्थ 'शरीरसे बलवान' और 'लड़ेंगे' का अर्थ 'बन्दूक और तलवारसे लड़ेंगे' नहीं करना है। शरीरसे बलवान होनेकी आवश्यकता है। भारतीय तलवार और बन्दूक चलाना सीखना चाहें तो भले ही सीखें। किन्तु यदि उनके हाथोंमें सत्यरूपी तलवार हो तो वे सबल ही हैं, और तोपधारियोंको भी पछाड़ सकेंगे। हममें शरीर-बल नहीं है, इसलिए वे हमें निर्बल कहते हैं, ऐसा न माननेका बड़ा कारण यह है कि काफिर गोरोंके मुकाबले शरीरमें बहुत बलवान हैं फिर भी गोरे उन्हें निर्बल कहते हैं; क्योंकि उनमें बुद्धि कम है, उनमें अक्षर-ज्ञान नहीं है और उनमें कला नहीं है। हम कह सकते हैं कि गोरोंमें भले ही शरीर-बल हो, कला हो, कारीगरी हो, और अक्षर-ज्ञान हो; फिर भी यदि हममें सत्य होगा तो हम उनको हरा सकेंगे। जितनी आवश्यकता अक्षर-ज्ञान आदिकी है उतनी हममें स्वभावतः आ जायेगी। [इन गुणोंके] इस तरह आनेके सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं।

किन्तु, यदि हम सत्यको ग्रहण करके सबल होना और अपनेको सबल कहलाना चाहते हों तो हम तुरन्त देख सकेंगे कि नेटालमें इस समय जितने भारतीय हैं उतने ही काफी हैं। उपनिवेशके इस विचारसे हमारा विचार मिल जायेगा। कानूनके मुताबिक जो आ सके वह भले ही आये; किन्तु कानूनके विरुद्ध लोगोंको लाना बन्द करना चाहिए और गिरमिटियोंका आना बन्द होनेसे हमें प्रसन्न होना चाहिए। यदि इस समय यहाँ आबाद भारतीय अपनी मान-प्रतिष्ठाको प्राप्त कर लेंगे तो शेष लोगोंके कष्ट दूर हो जायेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–४–१९०८

९७. डेलागोआ-बेके भारतीय

डेलागोआ-बेके भारतीयोंको जागृत होने और जागृत रहनेकी बहुत आवश्यकता है। वहाँ एशियाइयोंके सम्बन्धमें जो विनियम प्रकाशित हुए हैं[1] उनकी ओर हम डेलागोआ-बेके भारतीयोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। ये विनियम बहुत समय पहले प्रकाशित हुए थे। इसके सम्बन्धमें हम पहले लिख चुके हैं। अब फिर चेतावनी देना आवश्यक समझते हैं। यदि ये विनियम बहुत समय तक रहेंगे तो बादमें इनका प्रतिकार कठिन होगा। और यद्यपि इनमें पुर्तगाली प्रजाकी रक्षाकी पर्याप्त व्यवस्था है, तो भी उनसे बहुत-से भारतीयोंके, जो पुर्तगाली प्रजा नहीं हैं, अधिकार मारे जाते हैं। यह कानून ऐसा है कि इसके अन्तर्गत कई तरहके पास सदा साथ रखने पड़ेंगे। और अन्य बहुत-सी अड़चनें भी हैं।

हमें एक तार मिला है, जिससे मालूम होता है कि चीनी लोग इस कानूनके विरुद्ध अच्छी टक्कर ले रहे हैं। चीनियों [के संघ] के अध्यक्ष श्री क्विन इसी कारण डेलागोआ-बे गये हैं। यह लिखते समय श्री पोलकको उनके साथ भेजनेकी कोशिशें हो रही हैं। हमें आशा है कि यदि श्री पोलक डेलागोआ-बे जायेंगे तो भारतीय नेता उनकी सहायता करेंगे और वहाँके कानूनके विरुद्ध जो-कुछ करना उचित हो वह करेंगे। किन्तु हम यह माने लेते हैं कि कदाचित श्री पोलक न जा सकें तो भी वे कानूनके विरुद्ध लड़ेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–४–१९०८

१. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४४७ और ४५० ।

९८. नेटाल कांग्रेसका कर्तव्य

लोबिटो-बेके भारतीयोंकी हालतका हृदयविदारक विवरण हम दूसरी जगह दे रहे हैं। वे नेटालमें हैं।[1] यह दूरी इतनी ही है कि यदि डर्बनके भारतीय उस तरफ कंकड़ फेंकें तो वह उनके बीचमें जाकर गिरेगा। जान पड़ता है, सरकारने उन्हें (क्वारंटीन) [सूतकके दिन बितानेके लिए पहाड़ी टेकरी] ब्लफमें भेज दिया है और अन्तमें भारत भेजनेका सोच रही है।[1]

इन भारतीयोंके शरीरपर एक लत्ता भी नहीं है, ऐसा कहा जाता है। श्री दाउद मुहम्मद, श्री दाउद उस्मान तथा श्री आंगलिया आदि सज्जनोंको चाहिए कि वे तुरन्त उचित उपाय करें। जो कांग्रेसके पदाधिकारी नहीं हैं किन्तु फिर भी जो आगे बढ़कर काम करनेवाले हैं — जैसे कि श्री पारसी रुस्तमजी — उन्हें यह काम उठा लेना चाहिए। करना यह है कि सत्ताधिकारियोंकी आज्ञा लेकर ये लोग उनसे मिलें, और उनकी राम-कहानी सुनें। यदि काम मिलनेकी सम्भावना हो तो उनको नेटालमें रखनेका प्रार्थनापत्र दिया जाये, यदि वे भूखों मरते हों तो चन्दा करके उनके लिए भोजनका प्रबन्ध किया जाये, यदि वे वस्त्रहीन हों तो तन ढाँकनेके लिए कपड़ा प्राप्त किया जाये। यह केवल कांग्रेसका ही काम नहीं है, वरन् जिसे अवकाश हो, ऐसे प्रत्येक भारतीयका काम है। थोड़ा-सा श्रम करनेसे बड़ा परमार्थ हो सकेगा। कांग्रेसका तो यह विशेष कर्तव्य है। इससे दीन-दुखियोंकी आत्मा दुआ देगी और इसीसे कांग्रेसके कर्ता-धर्ताओंका भी, जो भारतीयोंके न्यासी हैं, कल्याण होगा। हम आशा करते हैं कि इस काममें तनिक भी ढील नहीं की जायेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–४–१९०८

१. पुर्तगाली आफ्रिकाके लोबिटो-बेके बेनग्वेला रेलवे मार्गके निर्माणके लिए सन् १९०६ में स्टोन नामक एक अंग्रेज इंजीनियरने नेटालके भारतीयोंकी भरती की। तत्कालीन **इंडियन ओपिनियन** के समाचारोंसे विदित होता है कि वहाँके हालात बहुत खराब थे। पीनेको साफ पानीकी जगह गन्दा और तेलमिश्रित पानी मिलता था; सो भी जैसे-तैसे। उन्हें रद्दी चावल और खराब दाल मिलती थी। परिणाम-स्वरूप पहुँचनेके तीन महीनोंके भीतर लगभग आधे मजदूर मर गये। करीब ११ महीनोंके बाद झुंडके-झुंड लोग जगह छोड़कर जाने लगे। ५०० लोग मार्च १९०८ में और ४२९ लोग अप्रैलमें नेटाल पहुँचे। अप्रैलवाले लोगोंको भारत भेजनेके पहले क्वारंटीनमें ब्लफ भेजा गया था। उनकी हालत बड़ी दयनीय थी। नेटाल भारतीय कांग्रेसके दाउद मुहम्मद ब्लफ जाकर उनसे मिले और अप्रैलमें ही कांग्रेसने उपनिवेश-सचिवको मैरित्सबर्गमें तार देकर पूछा कि भारतमें उनका क्या प्रबन्ध किया गया। कांग्रेसके कर्ता-धर्ताओंने उनसे फिर मिलनेका प्रयत्न किया, किन्तु अनुमति नहीं मिली। देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ४०३, और खण्ड ७, पृष्ठ १११।

९९. केपमें महत्त्वपूर्ण मुकदमा

केपमें चार भारतीय लड़कोंपर मुकदमा चलनेकी खबर दैनिक पत्रोंमें आई थी। इसलिए हमने रायटरकी मारफत खास खबर मँगाई। इस सम्बन्धमें हमें जो तार मिला है उसका सार हम नीचे देते हैं। हम मानते हैं कि हमारे पाठक [प्रकाशित खबरमें] यह सुधार देखकर प्रसन्न होंगे। बहुत बार अंग्रेजी अखबारोंमें ऐसी बातोंकी पूरी खबर नहीं आती। खास तार मँगानेसे हमें कुछ ज्यादा खर्च करना पड़ता है। किन्तु उससे महत्त्वपूर्ण खबर मिल सकती है। इसलिए हमने यह निश्चय किया है कि जब ऐसा अवसर आये तब यह व्यवस्था की जाये।

रायटरने तार दिया है कि केपके अधिकारी चार भारतीय लड़कोंको केपमें उतरने देनेसे इनकार कर रहे थे। लड़कोंकी सफाई यह थी कि उनके माँ-बाप केपके अधिवासी हैं और उनकी आयु सोलह वर्षसे कम है, इसलिए उनको प्रविष्ट होनेका अधिकार है। इस सम्बन्धमें चार डॉक्टरोंने गवाही दी कि लड़कोंकी आयु सोलह वर्षसे अधिक है। सात डॉक्टरोंकी गवाही यह थी कि उनकी आयु सोलह वर्षसे कम है। इनमें से एक डॉक्टर कैरी थे। उन्होंने गवाही देते हुए कहा कि उन्हें भारतका बहुत अनुभव है। ये चार बालक [भारतके] जिस भागसे आये हैं उनमें मुसलमानोंका कद अच्छा देखा जाता है। इससे उन्होंने अनुमान किया कि उन लड़कोंका कद, मुसलमान होनेके कारण, सोलह वर्षसे कम आयुके लड़कोंके समान ही है। सर्वोच्च न्यायालयने इस गवाहीको मान्य करके लड़कोंको उतरनेकी अनुमति दे दी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–४–१९०८

१००. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सत्याग्रही भारतीय

संघके खजानची श्री कुवाड़िया देश जानेके लिए रवाना हो चुके हैं। उनका विचार बहुत करके अब देशसे वापस आनेका नहीं है। अपनी आयुका तिहाई भाग उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें बिताया है। इसलिए बाकी जिन्दगी देशमें रहकर खुदाकी बन्दगीमें तथा देशके कल्याणके कामोंमें गुजारनेका उनका विचार समझमें आता है और प्रशंसनीय है। हमीदिया अंजुमनने इतवारको उनका अभिनन्दन किया। उसी दिन श्री कुवाड़ियाने भी अपने यहाँ भोज दिया।

श्री कुवाड़ियाने सत्याग्रहकी लड़ाईमें बहुत अच्छा काम किया। उन्होंने अन्ततक हिम्मत रखी, जो लोग उनकी बात मान सकते थे ऐसे बहुत लोगोंको दृढ़ रखा तथा अपने भाषणोंसे लोगोंका उत्साह बढ़ाया। उनका व्यापार ठीक था, फिर भी उन्होंने उसकी परवाह किये बिना दूसरे व्यापारियोंकी तरह नुकसानका बोझ उठाया। लड़ाईके समय चन्दा करनेके लिए भी वे स्वयं निकल पड़े थे। ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे और वे सदा अच्छा काम करें यह हमारी प्रार्थना है।

श्री अलीभाई आकुजी तथा श्री अलीभाई मुहम्मदने भी श्री कुवाड़ियाकी तरह अधि-नियम-सम्बन्धी संघर्षमें बहुत ही प्रशंसनीय भाग लिया था। ये दोनों महोदय भी देश जानेके लिए रवाना हो गये हैं। श्री अलीभाई आकुजी तथा दूसरे कानमिया नेताओंने यदि प्रयत्न न किया होता तो कानमियोंको समझाना बहुत कठिन हो जाता। मेरी जानकारीके अनुसार श्री अलीभाई आकुजी पहले ही देश जानेवाले थे, तथापि वे संघर्षके विचारसे ही रुक गये। मैं कामना करता हूँ कि श्री अलीभाई आकुजी तथा श्री अलीभाई मुहम्मदको खुदा दीर्घायु करे और वे भी समाजकी सेवा आदि अच्छे काम करते रहें।

त्रिशूल

हमारे देशमें त्रिशूल नामक शस्त्रकी मार बहुत कष्टदायक मानी जाती है। यहाँकी नगर-पालिकाका इरादा भारतीयोंको वैसा ही त्रिशूल भोंकनेका है। सोफियाटाउनमें काफिरोंके मुकदमेमें[1] मात खानेपर भी इस नगरपालिकाको लाज नहीं आई। किन्तु हम लोगोंमें कहावत है कि बेशरमके नाक होती ही नहीं। उसी प्रकार इस नगरपालिकाके भी नाक नहीं है ऐसा जान पड़ता है। अंग्रेजीमें भी कहावत है कि नगरपालिकाके आत्मा होती ही नहीं, और जिसके आत्मा न हो उसे लाज-शर्म कैसी। नगरपालिकाने सोचा है कि स्थानिक सरकारसे तीन बातें माँगी जायें:

१. **नगरपालिका द्वारा निश्चित स्थानोंके सिवा दूसरी जगह काले लोग न रह सकें, ऐसी सत्ता प्राप्त करना।**
२. **नगरपालिका जिसे पसन्द करे उसके सिवाय दूसरी जगह काले लोगोंको पट्टेपर, खरीद कर या किसी दूसरी रीतिसे जमीन मिलनेपर पाबन्दी लगानेकी सत्ता प्राप्त करना।**
३. **काफिरोंको पैदल पटरियोंपर चलनेकी मनाही करनेके विषयमें अधिक सत्ता प्राप्त करना।**[2]

मुझे ऐसा अधिकार मिलनेकी तनिक भी सम्भावना दिखाई नहीं देती। फिर भी ट्रान्स-वालकी बड़ीसे-बड़ी नगरपालिका गम्भीरतापूर्वक ऐसा सोच सकती है, यह बात विचारणीय है। अपने दुश्मनको पहचान लेनेमें आधी विजय निहित है — इस सिद्धान्तके अनुसार हमें नगरपालिकाके विचारको मनसे भुलाना नहीं चाहिए। ऐसा कानून नहीं बन सकता, ऐसा जो मैं कहता हूँ उसका कारण है अपने समाजके ऊपर मेरा विश्वास। जिस कौमने अभी-अभी एक बड़ी विजय प्राप्त की है, जिसने १६ महीने तक सत्याग्रह चलाया है, वह पीछे हटनेवाली थोड़े ही है। तब फिर जोहानिसबर्गकी नगरपालिका चाहे जैसे विचारोंका सेवन करे वे उसके मनमें ही रह जायेंगे। जिस कौमके ऊपर इस प्रकारका त्रिशूल उठाया गया है, उस कौमको हमेशा सावधान रहना चाहिए। इसीमें हमारी समझदारी है और इसीमें हमारी जीत होगी।

परवाना

यह लेख पाठकोंके हाथमें पहुँचते-पहुँचते १९ अथवा २० तारीख हो जायेगी। जिन भारतीयोंने अभीतक व्यापारी परवाने न लिये हों, इसके बाद उनके पास केवल ११ दिन

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ १७०।
२. मूल प्रस्ताव १८–४–१९०८ के **इंडियन ओपिनियनमें** दिया गया था।

बच रहेंगे। इस बीच वे परवाने ले लें, ऐसी उनको मेरी विशेष सलाह है। मैं यह नहीं कह सकता कि इसके बाद नहीं ही मिलेंगे, किन्तु हमारा कर्तव्य है कि हम अपने हिस्सेका काम बराबर पूरा करें। यह भी याद रखा जाये कि जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक पंजीयन नहीं कराया है उन्हें ३० जून तक का परवाना मिल सकता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–४–१९०८

१०१. सत्याग्रह

इनामी निबन्ध

प्रस्तावना

जिस समय ट्रान्सवालकी लड़ाई जोरपर थी, उस समय हमने सत्याग्रहके मूलमें निहित नीतिके विषयमें लेखोंकी माँग की थी। पाठकोंको याद होगा कि उसके लिए हमने १० पौंडका इनाम भी घोषित किया था। इनामी लेख लिखनेवाले केवल चार व्यक्ति थे — २ गोरे और २ भारतीय। उनमें से इनामके लायक कौन है — इसकी जाँचका काम श्री डोकको सौंपा गया था। लेखोंकी जाँच करते समय श्री डोकके पास लेखकोंके नाम नहीं थे। अपनी जाँचके फलस्वरूप उन्होंने श्री मॉरिसको इनामके लायक ठहराया। तदनुसार हमने उन्हें १० पौंड भेज दिये।

स्थानकी कमीके कारण हम आजतक उनका लेख प्रकाशित नहीं कर सके। अब हमें समय और स्थानकी सुविधा है, इसलिए हम उसे प्रकाशित कर रहे हैं। पाठक श्री मॉरिसका मूल लेख अंग्रेजी विभागमें पढ़ सकते हैं। नीचे हम उनके लेखका अनुवाद दे रहे हैं:[1]

लेख लिखनेवालोंकी संख्या कम रही, इससे हम थोड़े निराश हुए। श्री मॉरिसका लेख आकर्षक और बहुत गहरा है, ऐसा हम नहीं कहते; किन्तु जो चार लेख हमारे पास आये उनमें उनका लेख उत्तम था, यह बात निश्चित है। इसके सिवा हम यह भी कह सकते हैं कि श्री मॉरिसका लेख कुल मिलाकर पठनीय है। दक्षिण आफ्रिकामें ऐसा लेख लिखनेवाला एक भारतीय निकल आया, यह हमारे लिए खुशीकी बात है। श्री मॉरिस भारतीय ईसाई हैं, इसलिए उन्होंने अपन लेखमें जो उदाहरण या प्रमाण आदि दिये हैं, वे ईसाई पुस्तकोंसे लिये हैं। इस बातको हम स्वाभाविक मानते हैं। हमारी कामना है कि श्री मॉरिसका लेख पढ़कर सत्याग्रहके विषयमें लोगोंका उत्साह बढ़े और इस किस्मकी लड़ाईसे वे ज्यादा परिचित हों।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–४–१९०८

१. इस गुजराती अनुवादका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। मूल अंग्रेजी लेखके अनुवादके लिए देखिए परिशिष्ट ३।

१०२. एक सत्यवीरकी कथा [३]

सुकरातका बचाव

"अब आप समझ सकते हैं कि मेरे विरुद्ध इतने आरोप लगानेवाले लोग क्यों हैं। मैंने राज्यकी अन्य सेवा इसलिए नहीं की कि हम कितने अज्ञानी हैं और मानव-जातिका ज्ञान कितना अल्प है, मैं इसका प्रत्यक्ष चित्र देनेमें व्यस्त रहा। मैंने अपना [दूसरा] सब काम छोड़ रखा है और मैं अत्यन्त दरिद्र रहा हूँ। किन्तु मुझे लगा कि यदि मैं मनुष्यको उसके अज्ञानका भान कराता हूँ तो मैं इसमें परमात्माकी सेवा करता हूँ। और चूँकि मैंने यह सेवा पसन्द की है, इसीलिए मेरे विरुद्ध लोगोंकी नाराजी बढ़ गई है।

"इसके अतिरिक्त कुछ युवक, जिनके पास अधिक काम नहीं है, मेरे पीछे फिरते हैं, और जैसे मैं प्रश्न करता हूँ, वैसे ही वे भी अर्ध-ज्ञानियोंसे प्रश्न पूछते हैं। इस प्रकार जिनसे प्रश्न पूछे जाते हैं और जिनकी पोल खुलती है, वे लोग मुझसे रुष्ट हो जाते हैं। वे मुझपर कोई दूसरा आरोप नहीं लगा सकते, इसलिए वे कहते हैं कि "यह आदमी उचितसे अधिक गहरे पैठता है, हमारे देवताओंको नहीं मानता और बुरेको अच्छा कहकर बताता है"। ऐसे लोग अपने अज्ञानको ढँकनेके लिए मेरे विरुद्ध सब लोगोंके कान अनुचित रूपसे भरते हैं। इन लोगोंमें मेलीटस और अन्य व्यक्ति हैं। मेलीटस यह कहते हैं कि मैं एथेंसके युवकोंको बिगाड़ता हूँ। अब मैं मेलीटससे ही प्रश्न करता हूँ।"

सुकरात: मेलीटस, क्या आपको यह नहीं लगता कि युवकोंको जिस रीतिसे सम्भव हो, सद्‌गुणी बनाया जाये?

मेलीटस: मुझे ऐसा लगता है।

सु०—तब युवकोंको सद्‌गुणी कौन बनाता है?

मे०—कानून।

सु०—इससे मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं मिला। मैं यह पूछता हूँ कि उनका सुधार "कौन" करता है?

मे०—सुधार तो न्यायाधीश करते हैं।

सु०—क्या आप यह कहते हैं कि जो न्यायके आसनपर बैठे हैं वे सद्‌गुण सिखा सकते हैं?

मे०—निस्सन्देह।

सु०—वे सभी या उनमें से कुछ ही?

मे०—सभी।

सु०—आपने ठीक कहा। अब मैं पूछता हूँ कि जो लोग यहाँ सुननेके लिए एकत्र हुए हैं, वे क्या वैसी शिक्षा नहीं दे सकते?

मे०—वे भी दे सकते हैं।

सु०—तब आप यह कहते हैं कि ऐथेंसके सभी लोग युवकोंको सद्‌गुण सिखा सकते हैं और केवल मैं ही उनको बिगाड़ता हूँ?

मे०—मैं यही कहता हूँ।

सु० — आपने मुझपर बहुत बड़ा दोष लगाया है। आप जो कहते हैं वह बात घोड़ोंपर भी लागू होती होगी। क्या आप ऐसा कहेंगे कि बहुत-से लोग उनको सुधार सकते हैं और थोड़े ही उनको बिगाड़ते हैं? ठीक देखें तो क्या ऐसा नहीं कि घोड़ोंको सिखानेवाले बहुत ही कम होते हैं और अन्य तो इस विषयमें अनभिज्ञ होते हैं? क्या आप यह स्वीकार नहीं करते कि यही नियम अन्य प्राणियोंके सम्बन्धमें भी लागू होता है? मुझे तो लगता है कि यह बात आपको स्वीकार करनी ही पड़ेगी, क्योंकि यह बिलकुल स्पष्ट है। मैं तो यह देखता हूँ कि मनुष्योंके लिए पृथक् नियम है, यह कहकर आप बिना समझे मुझपर आरोप लगाते हैं। फिर, क्या आप यह स्वीकार नहीं करेंगे कि जो लोग दुर्जनोंकी संगतिमें ज्यादा समय रहते हैं उनपर उनका [दुर्जनोंका] प्रभाव पड़ता है?

मे० — यह तो मैं स्वीकर करूँगा।

सु० — तब आप यह कहेंगे कि कोई-कोई व्यक्ति स्वतः ही अपना अहित करना चाहते हैं?

मे० — यह तो मैं नहीं कह सकूँगा।

सु० — तब यह बताइए कि मैं युवकोंको जान-बूझकर बिगाड़ता हूँ या अनजानमें?

मे० — मैं कहता हूँ कि आप उन्हें जान-बूझकर बिगाड़ते हैं।

सु० — यह आप कैसे कह सकते हैं? आप युवक हैं। मैं बूढ़ा हूँ। क्या आप मानते हैं कि मैं इतना भी नहीं समझ सकता कि मैं दूसरोंको बिगाड़ूँगा तो उसमें स्वयं मेरा ही अधिक अहित होगा? यह आप पहले स्वीकार कर चुके हैं।[1] क्योंकि हमने देखा कि दुर्जनोंकी संगतिमें रहनेवाला दुर्जन बन जाता है। कोई नहीं मानेगा कि मैं इस प्रकार अपनी हानि करना चाहता हूँ। और यदि मेरा यह तर्क ठीक हो तो फिर स्पष्टतः ही बिगाड़नेका आरोप समाप्त हो जाता है। अब मान लीजिये कि मैं अनजानमें बिगाड़ता हूँ। यदि यह बात थी तो मुझे शिक्षा देना आपका कर्तव्य था। आपने तो मुझे सुधारनेका प्रयत्न भी नहीं किया। आप मेरे समीप भी नहीं आये। मुझे तो आपने दण्ड दिलानेके लिए अकस्मात् [यहाँ ला] खड़ा किया है।[2] इस प्रकार मेलीटसने जो-कुछ कहा उससे प्रकट होता है कि उन्होंने किसी दिन गम्भीर विषयोंपर विचार नहीं किया है। अब यह देखिए कि मैं किस प्रकार युवकोंको बिगाड़ता हूँ। मेलीटस, आप यह कहते हैं कि हमारा नगर जिन देवताओंको मानता है, मैं उसे उनको न माननेकी सीख देकर बिगाड़ता हूँ?

मे० — मैं निस्सन्देह यही कहता हूँ।

सु० — तब आपका कहना क्या है? नगर जिन्हें मानता है मैं उसे उनको न माननेकी सीख देता हूँ या अन्य देवताओंको माननेकी सीख देता हूँ?

मे० — मैं तो यह कहता हूँ कि आप किसी भी देवताको नहीं मानते।

सु० — वाह! मेलीटस! आप तो यह कहते हैं कि समस्त नगर सूर्य और चन्द्रको मानता है, किन्तु मैं नहीं मानता।

मे० — मैं तो यही कहता हूँ कि आप सूर्यको पत्थर और चन्द्रमाको मिट्टी मानते हैं।

१. इससे पहले सुकरातने कहा था कि "बुरे नागरिक अपने पड़ोसियोंको हानि पहुँचाते हैं।" इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि "अगर मैं अपने किसी साथीको बदमाश बनाता हूँ तो हो सकता है, वह किसी न किसी तरह मुझे ही क्षति पहुँचाये"। गांधीजीके सारांशमें दलीलका यह अंश नहीं दिया गया है

२. आगेके दो वाक्य महाजन-मण्डलसे फटे गये हैं।

सु० — आपकी बातको कौन मानेगा? आप मुझपर जो आरोप लगाते हैं उसको कोई नहीं मान सकता। क्योंकि यदि मैं यह सिखाने लगूँ तो सभी कह सकते हैं कि यह तो कोई नई शिक्षा नहीं है। यह तो अन्य लोग भी कहते आये हैं।[1] इसके अतिरिक्त मैंने उनका कहना नहीं माना है। किन्तु यदि आप मुझपर सूर्य और चन्द्रमाके सम्बन्धमें ऐसा आरोप लगाते हैं तो आप यह भी कहेंगे कि मैं यह भी नहीं मानता कि ईश्वर है।

मे० — मैं निश्चित रूपसे कहता हूँ कि आप ईश्वरके अस्तित्वसे इनकार करते हैं।

सु० — तब तो आप जान-बूझकर ऐसी बात करते हैं जो सम्भव नहीं है। ईश्वर नहीं है, यह मैं कसे कह सकता हूँ? कौन यह कह सकता है कि मनुष्यसे सम्बन्धित वस्तुएँ हैं, किन्तु मनुष्यका अपना अस्तित्व नहीं है; अथवा घोड़ोंसे सम्बन्धित वस्तुएँ हैं, किन्तु घोड़े नहीं होते या देवदूतोंसे सम्बन्धित वस्तुएँ हैं, किन्तु देवदूत नहीं?

मे० — जिनसे सम्बन्धित वस्तुएँ होती हैं उनका अस्तित्व होता है।

सु० — आप मानते हैं कि मैं देवताओंसे सम्बन्धित बात करता हूँ, इसलिए आपको यह मानना ही चाहिए कि मैं देवताओंका अस्तित्व स्वीकार करता हूँ।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–४–१९०८

१०३. मिस्रके प्रख्यात नेता [४]

मुस्तफा कामेल पाशा द्वारा स्थापित राष्ट्रवादी (नेशनलिस्ट) दलकी कुछ जानकारी इस प्रकार है:

राष्ट्रवादी दलकी स्थापनाके लिए इस दलके करीब एक हजार सदस्योंकी एक विशाल सभा पिछले दिसम्बर महीनेमें हुई थी। इस सभामें जो प्रस्ताव पास हुए थे, उनमें से पहला प्रस्ताव यह था कि मुस्तफा कामेल पाशा आजीवन इस दलके नेता रहेंगे। उनकी मृत्युके बाद १० दिनके अन्दर एक सभा बुलाई जायेगी और नया नेता चुना जायेगा। राष्ट्रवादी दलके सदस्योंका एक सम्मेलन हर साल किया जायेगा जिसमें दलकी कार्यकारिणी समिति चुनी जायेगी। कार्यकारिणीमें से ८ सदस्योंकी एक उपसमिति बनेगी, जिसकी बैठक हर हफ्ते हुआ करेगी।

समाचारपत्रों और भाषणों द्वारा इस दलके विचारोंका प्रचार नील नदीके सारे प्रदेशमें हुआ है। दलके धनाढ्य सदस्योंने अपने खर्चसे कुछ स्कूल खोले हैं। इन स्कूलोंके द्वारा दलके सिद्धान्तोंका प्रचार लगातार अधिकाधिक हो रहा है। इस दलका उद्देश्य मिस्रमें संसदकी स्थापना करना है। यह उद्देश्य सिद्ध होने तक दलका सम्मेलन हर साल होता रहेगा और वह लोगोंका उद्धार करनेके लिए और उन्हें इस योग्य बनानेके लिए कि वे अपने अधिकारोंकी रक्षा स्वयं कर सकें, जो कुछ बनेगा सो करेगा।

राष्ट्रवादी दलके प्रयत्नोंमें ब्रिटिश सरकार आड़े नहीं आ सकती; क्योंकि यह दल अपना काम बुद्धिपूर्वक करता है और किसी भी प्रकारके हिंसक आचरणको कोई उत्तेजना नहीं देता।

१. मिलेटसका थेलिस और, विशेषकर, अनेक्सेगोरस।

इस सम्बन्धमें ६,००० लोगोंकी एक विशाल सभामें भाषण करते हुए मुस्तफा कामेल पाशाने घोषित किया था कि यह दल मिस्रके निवासियोंको उनकी वर्तमान स्थितिके प्रति जागरूक बनायेगा, वहाँकी जनतामें राजनीतिक चेतना पैदा करेगा और उसके दोनों वर्गोंमें एकता तथा शान्तिकी स्थापना करनेका मार्ग अपनायेगा। उसका मुख्य उद्देश्य यह है कि अन्तमें मिस्रके शासनका अधिकार मिस्री लोगोंके प्रतिनिधियोंको मिलना चाहिए; जिस तरह यूरोपके देशोंमें सर्वोपरि सत्ता संसदके हाथमें है उसी तरह यहाँ भी संसदकी सर्वोपरि सत्ता होनी चाहिए; और मिस्त्रके आन्तरिक शासनकी हद तक उसे ऐसी पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, जिसपर इंग्लैंडका कोई नियन्त्रण न हो।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–४–१९०८

१०४. पत्र : उपनिवेश-सचिवको[1]

[जोहानिसबर्ग
२५ अप्रैल, १९०८के पूर्व]

माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय,

मुझे मेरे संघकी समितिने आदेश दिया है कि स्वर्ण अधिनियमके मसविदेके सम्बन्धमें, जिसे सरकार संसदकी अगली बैठकमें पेश करनेका इरादा रखती है, उसका मन्तव्य सरकारके समक्ष पेश कर दिया जाये।

मेरी समितिकी नम्र रायमें उक्त कानूनका यह मसविदा ब्रिटिश भारतीयोंपर मौजूदा कानूनमें पाई जानेवाली निर्योग्यताओंसे कहीं अधिक सख्त निर्योग्यताएँ लादता है। मेरी समितिको यह आशा थी और यह आशा उसने अब भी छोड़ी नहीं है कि वह जिस समाजका प्रतिनिधित्व करती है, उसकी निर्योग्यताओंके बोझको सरकार बढ़ानेके बजाय कुछ कम ही करेगी।

मेरी समिति चाहती है कि मैं सरकारका ध्यान खासकर निम्नलिखित मुद्दोंकी ओर खींचूँ:

१. मसविदेमें "रंगदार व्यक्ति"की व्याख्यामें "कुली" शब्दका प्रयोग कायम रखा गया है। उपनिवेशकी वर्तमान भारतीय आबादीके लिए प्रयुक्त नामके रूपमें यह शब्द संतापजनक है, क्योंकि ट्रान्सवालमें, शब्दके सही अर्थमें, यदि कोई 'कुली' हों तो वे बहुत ही थोड़े हैं। इसके सिवा, आफ्रिकाके वतनियों और एशियाइयों, ब्रिटिश प्रजा और ब्रिटिशेतर प्रजाको[2] एक ही श्रेणीमें रखना ब्रिटिश भारतीयोंके विशिष्ट स्थानकी उपेक्षा करना है।

१. यह पत्र २५–४–१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में "ट्रान्सवालका मसविदा-रूप स्वर्ण-अधिनियम : एक महत्त्वपूर्ण विरोध-पत्र" शीर्षक से छपा था।

२. ट्रान्सवालके वे निवासी जो ब्रिटिश साम्राज्यके प्रजाजन नहीं थे।

२. अनगढ़ सोनेके धंधेका मूल कानून जारी रखनेसे यह मान्यता प्रकट होती है कि रंगदार लोग –– जो इस कानूनकी सामान्य निषेध-सीमामें होते हुए भी अब इससे विशेष रूपसे प्रभावित होते हैं –– कच्चे सोनेका धन्धा करनेमें ज्यादा बड़े गुनहगार हैं। परन्तु मेरे संघकी रायमें, जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सवाल है, सत्य इससे ठीक उलटा है।

३. इसके अतिरिक्त अनगढ़ सोनेकी जो व्याख्या की गई है वह शायद भारतीय सुनारोंके इंग्लैंडमें बनी और वहाँसे आयात की हुई सोनेकी छड़ों तक से गहने आदि बनानेके धन्धेपर रोक लगानेवाली है। यह तो आसानीसे मान ली जाने लायक बात है कि इससे सम्बन्धित सुनारोंके लिए एक भारी कठिनाई पैदा होती है।

४. इस मसविदेका खण्ड १२७, मैं निवेदन करना चाहता हूँ, कुछ अस्पष्ट है; और अपने अन्तर्गत रंगदार व्यक्तियोंके द्वारा किसी भी प्रकारके अधिकारोंकी प्राप्तिका सम्पूर्ण निषेध करता जान पड़ता है। इसी खण्डके अन्तर्गत इस मसविदेके प्रकाशनके पहले उपार्जित अधिकारोंके स्वामियोंको अपने अधिकार रंगदार व्यक्तिको हस्तान्तरित करने या शिकमी तौरपर देनेसे मना किया गया है। यह बात इस कानूनके प्रभावको पहलेसे लागू करती है।

५. अन्तमें, खण्ड १२८ में, अमुक घोषित क्षेत्रोंमें रहनेवाले रंगदार व्यक्तियोंको वहाँसे हटाकर बिलकुल अलग बसानेकी बात कही गई है। यदि यह खण्ड पास हो गया तो ब्रिटिश भारतीयोंमें से अधिकतरके लिए इस देशमें रहना भी असम्भव हो जायेगा।

इस सम्बन्धमें, मेरी समिति आदरपूर्वक सरकारको यह याद दिलाना चाहती है कि मेरा संघ एक ऐसी कौमका प्रतिनिधित्व करता है जो मानव-परिवारकी एक सुसंस्कृत शाखासे उत्पन्न होनेका दावा करती है, और जिसके व्यापारिक तथा दूसरे हित इतने बड़े हैं कि उसे अलग बस्तियोंमें बसानेका मतलब उसकी सम्पूर्ण बरबादी होगा; क्योंकि उस हालतमें वह बाजारों, बस्तियों और बाड़ोंमें अपने उन हितोंको बचानेमें सर्वथा असमर्थ हो जायेगी।

मेरी समिति सरकारको इस बातकी याद भी दिलाना चाहती है कि ट्रान्सवालमें बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंका अधिकांश खानोंके क्षेत्रोंमें रहता है।

इसलिए मेरी समिति सरकारके प्रति आदरकी भावना रखते हुए यह विश्वास करती है कि कानूनकी जिन धाराओंके खिलाफ यहाँ शिकायत की गई है उन्हें सरकार या तो वापस ले लेगी या उनमें ऐसा सुधार कर देगी कि ट्रान्सवालमें रहनेवाले भारतीय समाजको इच्छित राहत मिल जाये।

आपका, आदि
ईसप इस्माइल मियाँ
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज; कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स २९१/१३२ बी।

१०५. भारतीयोंपर जुर्माना

नेटालके प्रवासी विभागकी रिपोर्टके[1] सम्बन्धमें हम कुछ पहले लिख चुके हैं। अब हमें पूरी रिपोर्ट मिली है, उसे पढ़कर हमारे मनमें और भी कई विचार उठते हैं।

पिछले वर्षमें अधिवासी प्रमाणपत्र आदिके सम्बन्धमें भारतीयोंके २,६६६ पौंड १ शिलिंग नेटालके कोषमें गये। इनमें से ९७९ पौंड १० शिलिंग अधिवासी प्रमाणपत्रके सम्बन्धमें, ६३१ पौंड अतिथि पासके सम्बन्धमें और १,०३६ पौंड नौ-रोहण पासके सम्बन्धमें दिये गये। इसके अतिरिक्त जिन लोगोंने अतिथि पासकी शर्तें तोड़ीं उनके १२० पौंड जब्त किये गये। इस प्रकार थोड़ेसे भारतीयोंके पाससे पिछले वर्षमें बहुत बड़ी रकम चली गई। बहुतसे परवानोंका शुल्क एक पौंड है। इसलिए मानना होगा कि उक्त रकम लगभग दो हजार पाँच सौ भारतीयोंके पाससे गई।

इस प्रकार रुपया जानेसे कैसे बचे? यह प्रश्न पूछने और विचार करने योग्य है। एक तरीका तो यह है कि भारतीयोंमें पूरा जोर आ जाये और, सरकारी कानूनका भय खाये बिना, वे परवाना लें ही नहीं। यह उपाय केवल अधिवासी प्रमाणपत्र लेनेवालोंपर लागू हो सकता है। जो निश्चित अवधिके लिए ही आना चाहते हैं उनके बारेमें क्या हो? इसका उत्तर देना कुछ कठिन है। किन्तु मनुष्यकी युक्तिके आगे सब सरल हो जाता है। इस सम्बन्धमें सरकारके पीछे पड़े रहनेकी निरन्तर आवश्यकता है। सरकारको यह बतानेकी आवश्यकता है कि लोग यहाँ आकर उपनिवेशकी रेलों आदिका उपयोग करते हैं, इतना काफी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह उपाय भी है कि व्यापारी जैसे-हो-वैसे ज्ञान प्राप्त करनेकी तजवीज करें। वे अंग्रेजी भाषा पढ़ेंगे तो उक्त धन कुछ समयमें बच सकता है। अन्तिम उपाय सरकारको छलनेका विचार छोड़ देनेका है। यह अन्तिम उपाय ही खरा और अच्छेसे-अच्छा है।

इसके अतिरिक्त रिपोर्टसे यह भी पता चलता है कि ३,२३६ भारतीयोंको उतरने नहीं दिया गया, इसलिए उन्हें वापस जाना पड़ा। ये सब समुद्रके मार्गसे ही नहीं आये थे; कुछ ट्रान्सवालसे भी आये थे। इस प्रकार नेटालमें प्रवेशका प्रयत्न करनेमें भी बहुत-से धनकी हानि अवश्य ही हुई होगी। इसका उपाय तो हमारे ही हाथमें है। जितना रुपया हम खोटे काम करनेमें बहाते हैं, उसका दसवाँ भाग भी ज्ञान प्राप्त करनेमें खर्च करें तो दक्षिण आफ्रिकामें काली चमड़ीके प्रति जो द्वेष है वह समाप्त हो जाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–४–१९०८

१. रिपोर्टके सारांशके लिए देखिए परिशिष्ट ४।

१०६. लोबिटो-बेके भारतीय मजदूर

इन पीड़ित भारतीयोंके सम्बन्धमें हम गत सप्ताह लिख चुके हैं।[1] कांग्रेसके नेताओंने इस सम्बन्धमें आन्दोलन किया और [उनसे] मुलाकात की, इसके लिए हम उनकी प्रशंसा करते हैं। इन लोगोंके खाने-पीनेकी व्यवस्था ठीक थी, यह जानकर सन्तोष होना चाहिए। दुःख केवल यही है कि इन गरीब लोगोंको भारत जाना पड़ा है। हम मानते हैं कि जल्दी कार्रवाई की गई होती तो इन गरीब लोगोंका नेटालमें रहना सम्भव हो सकता था।

अब हमारी दृष्टिमें एक उपाय आता है — नेटाल सरकारसे पूछा जाये कि उसने इन लोगोंको भारतमें किस तरह उतारनेका प्रबन्ध किया है, इसके साथ ही दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिको तार दिया जाना चाहिए कि वह पूछताछ करे कि ब्रिटिश सरकार इस सम्बन्धमें क्या कार्रवाई करनेवाली है। यदि भारतमें उनकी कुछ भी व्यवस्था होगी तो उनको राहत मिलेगी, और इससे समस्त जातिका हित होगा। जिन लोगोंमें बोलनेकी — कृतज्ञता प्रकट करनेकी — शक्ति नहीं है, उनकी सहायता जो पहले करें उन्हींको इस संसारमें कृतार्थ मानना चाहिए। यह नियम जैसे व्यक्तियोंपर लागू होता है वैसे ही संस्थाओंपर भी लागू होता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–४–१९०८

१०७. नेटालके खेत-मालिक

नेटालके गोरे खेत-मालिकोंमें गिरमिटके अन्तर्गत भारतीयोंका आना बन्द करनेके सम्बन्धमें बहुत चर्चा चल रही है। डर्बनमें बहुत-से गोरे गिरमिटके अन्तर्गत भारतीयोंको लानेके विरुद्ध हैं, इससे गोरे खेत-मालिक घबरा रहे हैं। उन्होंने अपनी सभामें यह प्रस्ताव पास किया है कि जबतक काफिर लोग काम न करने लगें तबतक भारतीय मजदूरोंका आना बन्द नहीं करना चाहिए। इस प्रकारकी खींचतानमें नेटालकी सरकार क्या करती है, यह देखनेकी बात है। हमें सावधानी यह रखनी है कि डर्बनके गोरे व्यापारी-रूपी भैंसे और उक्त गोरे खेत-मालिक-रूपी भैंसेकी लड़ाईमें भारतीय समाजरूपी वृक्षका उन्मूलन न हो जाये।

इस सभामें भी एक खेत-मालिकने कहा कि डर्बनके गोरोंका द्वेष कोई गिरमिटियोंसे नहीं है। वे तो केवल भारतीय व्यापारियोंको रोकना चाहते हैं। किन्तु उन्हें गिरमिटियों और व्यापारियोंके बीचका भेद नहीं दिखता। ऐसी बातोंसे प्रकट होता है कि गोरे खेत-मालिक भारतीय मजदूरोंको इसलिए नहीं चाहते कि वे उनसे प्रेम करते हैं। उनका सम्बन्ध केवल स्वार्थजनित है। अपने समान स्वार्थोंकी सिद्धिके प्रयत्नमें गोरे व्यापारी और गोरे खेत-मालिक,

१. देखिए "नेटाल कांग्रेसका कर्तव्य", पृष्ठ १८६ और खण्ड ६, पृष्ठ ४०३, खण्ड ७, पृष्ठ १११।

दोनों भारतीय व्यापारियोंको आघात पहुँचानेमें पीछे नहीं रहेंगे, यह हमें समझ लेना चाहिए। भारतीय जाति गिरमिटके विरुद्ध जूझेगी तो उससे व्यापारी सुखी होंगे और गिरमिटियोंकी गुलामी मिटेगी। भारतीय गुलामके रूपमें काम करनेके लिए आयें, इसमें हमारे लिए तनिक भी प्रसन्न होनेकी बात नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–४–१९०८

१०८. केपमें प्रवासी कानून[1]

हम गत सप्ताह केपके मुकदमेके सम्बन्धमें लिख चुके हैं। अब उसी मुकदमेका पूरा हाल हमें मिला है। इसे हम अपने अंग्रेजीके स्तम्भोंमें छाप रहे हैं। प्रवासी कानूनसे सम्बन्धित एक दूसरा फैसला इसी न्यायालयमें दिया गया है; वह अधिक महत्त्वपूर्ण है। पहले मामलेमें न्यायालयने कानूनकी व्याख्या नहीं की थी। दूसरे मामलेमें उसने कानूनकी व्याख्या की है और यह फैसला केपके समस्त भारतीयोंपर लागू होता है। इसका सार इस प्रकार है:

एक भारतीय[2] को जहाजसे न उतरनेकी आज्ञा दी गई। उसने सर्वोच्च न्यायालयमें मुकदमा चलाया। १९०२ के प्रवासी कानूनके अनुसार दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीयोंको केपमें जानेकी अनुमति प्राप्त थी। वह भारतीय ऐसा ही था। १९०६ के कानूनके अनुसार जो केपके निवासी हों वे ही भारतीय वहाँ रह सकते हैं। गोरोंको, चाहे वे दक्षिण आफ्रिकाके किसी भी भागके हों, [आनेकी] छूट है। किन्तु १९०६ के कानूनमें ऐसी गुंजाइश है कि जो भारतीय केपसे बाहर जाये, उसको यदि वापस आनेका अधिकार हो तो उसे केपसे जानेका और वापस आनेका पास ले जाना चाहिए।[3] ऐसा पास उक्त भारतीयने नहीं लिया; इसलिए उसका अधिकार रद हो गया। यह सरकारी तर्क था और इसे सर्वोच्च न्यायालयने स्वीकार कर लिया। न्यायालयने निर्णय देते समय प्रार्थी भारतीयके प्रति सहानुभूति प्रकट की और यह सलाह दी कि सरकारको इस व्यक्तिपर दया करनी चाहिए और इसे रहनेकी अनुमति दे देनी चाहिए। ऐसी सलाह देनेका कारण उसने यह बताया कि उस व्यक्तिने अनजानमें वापस आनेका पास नहीं लिया, इसलिए उसे माफी मिलनी चाहिए।[4] न्यायालयमें दयाभाव है, यह ठीक है। किन्तु भारतीय यह नहीं चाहते कि उन्हें एक अनुचित कानूनकी अधीनतामें रखा जाये और फिर दयाभाव दिखाया जाये। दयाभाव कानूनमें ही होना चाहिए। किन्तु [हमारी] कौम तो दयाभावसे पूर्ण कानून नहीं चाहती। केवल न्यायसंगत कानून मिल जाये, तो उसीको वह पर्याप्त मानेगी।

१. देखिए "केपमें महत्त्वपूर्ण मुकदमा", पृष्ठ १८७।

२. बापन।

३. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ३६६।

४. मूल फैसलेमें कहा गया था: "लेकिन यह एक ऐसा मामला जान पड़ता है जिसमें मंत्री यह सोच सकता था कि प्रार्थीको कुछ गलतफहमी हो गई होगी या उसने बीमारीके कारण कुछ लापरवाही कर दी होगी। क्या इस आधारपर प्रार्थीके प्रति कुछ दयाभाव नहीं दिखाया जा सकता है।"

कानूनमें परिवर्तन करनेकी पूरी आवश्यकता है। और केपके नेताओंको इस भावनासे कार्य करना चाहिए। हम मानते हैं कि यदि वहाँके नेता इंग्लैंडकी दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिको लिखेंगे तो वहाँसे भी बहुत अच्छी सहायता मिलेगी। उस समितिका काम यहाँसे पत्र गये बिना भली-भाँति नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँकी अनुमतिपर उस समितिकी शक्ति निर्भर है। हमें आशा है कि इस सम्बन्धमें केपके भारतीय जोरदार कार्रवाई करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-४-१९०८

१०९. केपके भारतीयोंको सूचना

'साउथ आफ्रिकन न्यूज' में केप टाउन ब्रिटिश भारतीय समितिकी बैठकका विवरण[1] प्रकाशित हुआ है। किसीने उसकी कतरन अंग्रेजीमें प्रकाशित करनेके लिए हमारे पास भेजी है। हमने निश्चय किया है कि हम उसे अंग्रेजीमें प्रकाशित नहीं करेंगे, क्योंकि हमें उसमें किसी भी प्रकार समाजका फायदा नजर नहीं आता। जहाँतक हम जानते हैं, 'इंडियन ओपिनियन' का अंग्रेजी भाग बहुत-से गोरे पढ़ते हैं। उनके मनपर इस विवरणकी कोई अच्छी छाप पड़ना सम्भव नहीं है। 'साउथ आफ्रिकन न्यूज' ने समितिकी बैठकका जो विवरण प्रकाशित किया है उसके ऊपर लिखा हुआ है कि यह विवरण उनका अपना नहीं है, किसीका भेजा हुआ है, इसलिए प्रकाशित किया जा रहा है। उस विवरणमें मुख्य बात दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय संघके विरोधमें लिखी गई है। समितिका कारोबार कैसे चलता है, उसमें दोष है अथवा नहीं, इसकी हमें कोई खबर नहीं है। सम्भव है समितिमें जो बातचीत हुई वह सच हो; अथवा हो सकता है वह निराधार हो। हमारे लिखनेका इतना ही तात्पर्य है कि इस प्रकारकी बातोंके विषयमें अंग्रेजी अखबारोंमें लिखनेसे समाजका हित-साधन नहीं होता और मन निरर्थक खट्टे होते हैं। इसके सिवा उसका भारतीयोंसे ईर्ष्या रखनेवालोंके ऊपर प्रतिकूल प्रभाव होता है और उनकी ईर्ष्याको आधार मिल जाता है। यह समय भारतीय समाजके आपसमें लड़नेका बिलकुल नहीं है। किसी भी समाजका काम वास्तविक शत्रुके विरुद्ध लड़ना है। उसीमें जितना बने उतना श्रम किया जाना चाहिए।

समिति प्रवासी अधिनियमसे सम्बन्धित उपायोंपर विचार कर रही है, यह प्रशंसनीय है। उसके बारेमें जो-कुछ करना योग्य हो, सो करना उसका कर्तव्य है। किन्तु ऐसा करनेके लिए प्रकट रूपसे संघ अथवा किसी और संस्थाके विरुद्ध लिखा जाये, यह मैं ठीक नहीं समझता।

हमें समितिकी बैठकका विशेष गुजराती विवरण[2] मिला है। हम उसे दूसरी जगह दे रहे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-४-१९०८

१. कानमके कुछ मुसलमान दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय संघकी कुछ बातोंसे असन्तुष्ट थे। १२ अप्रैलको उनकी शिकायतोंपर विचार करनेके लिए समितिने यह बैठक बुलाई थी। केपके प्रवासी अधिनियमकी हदतक संघने भाषाओंमें केवल उर्दूको मान्यता देनेकी माँग की थी। यह मदरासी, बंगाली और गुजरातियोंके प्रति अन्याय होता। समितिने इस कामके लिए चारों भाषाओंको मान्यता देनेकी सिफारिश की।

२. यह यहाँ नहीं दिया गया है।

११०. कैनडाके भारतीय

कैनडाके भारतीयोंकी स्थिति जानने योग्य है। वहाँ कोई ऐसा खास कानून नहीं है कि भारतीयोंको निकाला जा सके। वहाँ ज्यादा भारतीय पंजाबके हैं। वे सब सिखके नामसे प्रसिद्ध हैं।[1] किन्तु हम अपने यहाँके अनुभवसे जान सकते हैं कि सब भारतीयोंका सिख होना सम्भव नहीं है। उस देशमें आबाद भारतीय प्रायः मजदूरी करते हैं। अभी हालमें कानूनमें एक छोटा-सा बहाना ढूँढ़कर उन लोगोंको, जो हाँगकाँगसे आये थे, उतरने नहीं दिया गया। अधिकारियोंने कहा कि यदि ये भारतीय भारतसे सीधे आये होते तो कोई बाधा न होती।[2] कैनडावालोंने जापानी लोगोंको आने दिया फिर भारतीयोंसे वे ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं? इसका रहस्य क्या है? एक बात तो यह है कि कैनडाके जापानी वीर थे। जो गोरे उनको डराने गये उन्हें मार खानी पड़ी।[3] जापान सरकार स्वतन्त्र है और वह अपने लोगोंके अधिकारोंकी रक्षा करती है। वह सरकार स्वतन्त्र है, क्योंकि लोग स्वयं स्वतन्त्र विचारके हैं। भारतीय तो जब कैनडामें हुल्लड़ हुआ तब घरोंमें छुप गये। भारत कोई उपाय नहीं कर सकता और उसकी सरकार ऐसी नहीं है जो भारतीयोंके अधिकारोंके लिए लड़े। भारतीय परतन्त्र हैं। इसका कारण अंग्रेजी राज्य या अंग्रेजी झंडा नहीं है। किन्तु इस राज्यके कारण हम हैं। इस राज्यको हटानेमें कोई लाभ नहीं दिखाई देता, किन्तु हम इसी राज्यको सुधार सकते हैं। हममें स्वतन्त्रताकी भावना नहीं है, इसलिए हम परतन्त्र हैं। यदि वह भावना हममें फिर आ जाये और हम न्यायकी माँग करें तो वह हमें मिलेगा। इतने भारतीय कैनडामें हैं फिर भी उनमें अच्छी तरह शिक्षा पाया हुआ एक भी व्यक्ति दिखाई नहीं देता।

इतनी कठिनाइयाँ होनेपर भी कैनडा और अन्य भागोंमें काले लोगोंके विरुद्ध जो आन्दोलन चल रहा है उससे लाभ ही मानना चाहिए। हम सीखते जा रहे हैं और अंग्रेजोंकी आँखें भी खुलती जा रही हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–४–१९०८

१. उन्हीं दिनों भारतीय प्रवासियोंके प्रश्नकी चर्चा करते हुए रुडयाड किपलिंगने एक लेखमें लिखा था कि ये लोग ज्यादातर पंजाबसे आये हुए मजहबी और जाट सिख हैं। वे चिराई मिलोंमें काम करते हैं और बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

२. जनवरी ८ को ४६ हिन्दू पूर्वसे **मांटईगल** जहाजमें आये थे। इन्हें उपनिवेशकी सरकारने एक आज्ञा निकालकर निर्वासित करनेका निर्देश दिया। उसका कहना था कि ये अपनी जन्मभूमिसे सीधे सामान्य रास्तेसे नहीं आये हैं। किन्तु सर्वोच्च न्यायालयमें मामला ले जानेपर वे २४ मार्चको रिहा कर दिये गये क्योंकि न्यायालयने उनके निर्वासनको गैरकानूनी ठहराया था।

३. उपनिवेशियोंकी आपत्ति वस्तुतः जापानियोंके विरुद्ध थी जिन्होंने वैंकूवरके मछली-व्यवसायपर एकाधिकार कर लिया था। किपलिंगने लिखा है: जापानियोंपर जब हमला किया जाता है तब वे रोषमें भरकर अपना बचाव करते हैं।...भारतीयोंके सम्बन्धमें सचमुच गलतफहमी है; किन्तु उनसे कोई घृणा नहीं करता . . .। इस अवसरपर जापानियोंने अपने मुहल्लेपर बाड़ खड़ी कर ली और बाहर इकट्ठे हो गये। उन्होंने टूटी बोतलें दोनों हाथोंमें लेकर उनसे प्रदर्शनकारियोंके मुँहपर प्रहार किया। याद्ध (जापान) के लोगोंको डराकर भगानेकी अपेक्षा भौंचक्के हिन्दुओं और तमिलोंको घबराहटमें डाल देना और मार-पीटकर सीमाके पार कर देना, जैसा कि वहाँ किया जा रहा है, ज्यादा आसान है।

१११. सर हेनरी कैम्बेल-बैनरमैन

अखबारोंमें इंग्लैंडके भूतपूर्व प्रधानमन्त्री सर हेनरी कैम्बेल-बैनरमैनके देहान्तका समाचार प्रकाशित हुआ है। कुछ ही दिन पहले खबर मिली थी कि उक्त महोदयने अपने पदसे इस्तीफा दिया है। इस्तीफेका कारण उनकी बीमारी ही थी और वे उस बीमारीसे उठ नहीं सके।

सर हेनरी ग्लासगोके एक बड़े व्यापारी थे। किन्तु व्यापारके साथ उन्होंने विद्योपार्जन भी किया था। उनके मनमें देशकी सेवाका उत्साह था और इसलिए व्यापारमें ही अपना सारा समय न देकर उन्होंने राजनीतिमें भी हिस्सा लिया। हम देखते हैं कि ऐसा बहुत-से अंग्रेजोंने किया है। श्री चैम्बरलेन भी व्यापारी थे और अभीतक हैं।

सर हेनरी स्वभावसे बड़े स्नेही और मनके उदार थे। ऐसा नहीं कि उन्हें केवल अपने ही समाजसे प्रेम रहा हो; उनका मन जहाँ-जहाँ अत्याचार होता, वहाँ-वहाँ दौड़ता और उपाय करनेके लिए व्याकुल हो जाता। वे स्वयं प्रधानमन्त्रीके पदपर थे, किन्तु वे रूसकी जनताके पक्षमें और जारके विपक्षमें अपनी उत्कट भावना प्रदर्शित करनेमें पीछे नहीं रहे।

वे बड़े नीतिनिष्ठ थे। जब उन्होंने बोअरोंपर नाहक ही हमला होते देखा तब उन्होंने अपने समाजका विरोध करनेमें भी आगापीछा नहीं किया। उस समय उन्होंने ब्रिटिश सिपाहियोंके समक्ष बहुत ही कड़ा भाषण किया और जब स्वयं मंत्री बने, तब तुरन्त ट्रान्सवालको स्वराज्य सौंप दिया।

जब अधिनियमसे सम्बन्धित संघर्षके बारेमें भारतीय शिष्टमण्डल विलायत गया, तब उन्होंने अपनी सहानुभूतिका अच्छा परिचय दिया। कहा जाता है कि लॉर्ड एलगिनपर प्रभाव डालनेमें उन्होंने बहुत हाथ बँटाया।[1]

सर हेनरी ७२ वर्षके हो रहे थे। इतनी अधिक उम्रके बावजूद उनका शरीर और मन दुर्बल नहीं हुआ था। इतनी वृद्धावस्थामें भी राज्यका कारोबार चलाना और देशकी सेवा करना वे ठीक समझते थे। इस बातसे हम लोगोंको शिक्षा लेनी चाहिए। भारतीय समाजके लोग एक तो इतने दीर्घायु हो नहीं पाते, और यदि हो भी पाते हैं तो पूरा समय देशसेवामें नहीं लगाते। हम ४० वर्षकी उम्रमें ही शिथिल हो जाते हैं और यदि इस अवधिमें कुछ काम कर लिया तो गंगा नहाये ऐसा समझकर मिथ्याभिमानमें पड़कर शेष समय, अगर पैसा बचाया हो तो उसके बलपर, ऐश-आराममें गुजार देते हैं। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं; और तिसपर भी हम कई बार नाराजी जाहिर करते हैं कि हमें स्वराज्य नहीं मिलता। यदि भारतमें सैकड़ों सर हेनरी पैदा हो जायें तो भारत अविलम्ब स्वतन्त्र हो जाये क्योंकि तब उसके राजभवनपर कौन-सा झंडा फहराता है, इसकी चिन्ता नहीं रहेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–४–१९०८

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २७३।

११२. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

स्वर्ण-कानून

स्वर्ण-कानूनके विषयमें संघकी ओरसे उपनिवेश-सचिवके नाम निम्नानुसार पत्र[१] भेजा गया है :

संसदकी आगामी बैठकमें सोनेके कानूनका विधेयक पेश किया जायेगा। इसलिए परिस्थिति यह है कि पहलेसे ही उस कानूनको लेकर भारतीयोंपर बहुत अत्याचार किया जाने लगा है। मेरी समितिको आशा थी और उसे अब भी ऐसी आशा है कि इस सम्बन्धमें भारतीय समाजकी परेशानियाँ बढ़नेके बजाय घटेंगी। मेरी समिति निम्नलिखित बातोंपर सरकारका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित करना चाहती है :

प्रस्तुत विधेयकके मसविदेमें 'रंगदार' शब्दकी व्याख्यामें 'कुली' शब्दका समावेश किया गया है। यह शब्द ट्रान्सवालके भारतीय समाजकी भावनाको दुखानेवाला है, क्योंकि ट्रान्सवालके भारतीय समाजमें जो लोग 'कुली' कहे जाते हैं शायद उनकी संख्या कम ही होगी। इसके सिवाय काफिरों और एशियाइयोंको तथा ब्रिटिश प्रजा और परकीय प्रजाको एक वर्गमें रखनेका यह अर्थ है कि भारतीयोंके ब्रिटिश प्रजा होनेकी बात भुला दी जाती है।

रंगदार लोगोंपर नये कानूनकी धाराएँ लागू होनेके साथ पुराने कानूनकी कच्चे सोनेसे सम्बन्धित धाराएँ भी लागू की जाती हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि कच्चे सोनेके मामलेमें रंगदार समाज बड़ा कसूरवार है। किन्तु इस मामलेमें मेरे संघके विचारानुसार तथ्य उलटे हैं, क्योंकि भारतीयोंके बारेमें तो ऐसा नहीं कहा जा सकता।

'कच्चा सोना' शब्दकी व्याख्या भी सदोष हो सकती है। उसका ऐसा अर्थ भी निकाला जा सकता है जिससे भारतीय सुनारों द्वारा विलायतकी बनी और वहाँसे आई हुई सोनेकी छड़ोंसे गहने बनानेपर रोकटोक की जा सकती है।

मसविदेके खण्ड १२७ का अर्थ स्पष्ट नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि कानूनका मंशा उस खण्डके द्वारा रंगदार लोगोंको किसी भी अधिकारकी प्राप्तिसे रोकनेका है। यह सूचना भी उस खण्डमें शामिल है कि नया नियम बननेके पहले जिन्हें कोई अधिकार प्राप्त हो चुका है ऐसे लोग अपना अधिकार अथवा उसका कोई भाग रंगदार लोगोंको नहीं दे सकते। कानून जिस दिन बन चुकता है उसी दिनसे लागू हुआ करता है; किन्तु ऊपरके खण्डके द्वारा यह कानून तो पास होनेके पहले ही लागू किया जा रहा है।

अन्तमें खण्ड १२८ में कहा गया है कि स्वर्ण-कानूनके द्वारा खानोंकी जो सीमा निश्चित की गई हो, उससे रंगदार लोगोंको हटाकर बस्तियोंमें रखा जाये। संघ इसका विरोध करता है। यदि वह खण्ड स्वीकृत हो गया, तो बहुत-से भारतीय शहरोंमें रह ही नहीं सकेंगे। इस बारेमें मेरी समिति सरकारको याद दिलाती है कि भारतीय

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ १९३-९४।

समाजके लोग सभ्य वर्गके हैं। भारतीय और अन्य धन्धे करनेवाले भारतीयोंकी बड़ी संख्याको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाजको बस्तियोंमें खदेड़नेके कारण उनकी परेशानी और बढ़ जायेगी, क्योंकि इस वर्गके लोग न बाजार, बस्ती अथवा बाड़ोंमें रह सकते हैं और न व्यापार कर सकते हैं।

मेरी समिति सरकारको इस बातका भी विशेष स्मरण दिलाती है कि ट्रान्सवालमें रहनेवाले भारतीय समाजमें से अधिकांश खानोंकी सीमामें रहनेवाले हैं। इसलिए मेरी समितिको पूरा विश्वास है कि प्रस्तुत मसविदेमें रखी गई धाराओंको सरकार वापस ले लेगी अथवा उसमें ऐसा संशोधन करेगी जिनसे ट्रान्सवालमें रहनेवाली भारतीय कौमको योग्य राहत मिल सके।

स्वेच्छया [पंजीयन] क्या है?

आजकल स्वेच्छया और अनिवार्यकी दुविधा कुछ भारतीयोंके मनमें चलती रहती है। इसमें अनुमतिपत्र कार्यालयका भी थोड़ा हाथ है। एक संवाददाता कहता है कि कर्मचारी १८[1] अँगुलियाँ जबरदस्ती माँगते हैं। मेरी सलाह तो सबको यही है कि देनी चाहिए, क्योंकि स्वेच्छापूर्वक होनेके कारण मैं उसमें कोई बुराई नहीं मानता। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जो बुराई मानते हों वे भी दें। वैसे लोग अभी भी 'ना' कह सकते हैं। जब अनिवार्य था, तब ऐसे लोगोंपर बाकायदा मामला चलाया जा सकता था। अब स्वेच्छापूर्वक है; यदि अमलदार अर्जी लेना मंजूर न करे, तो उसकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। जिन्हें १० अँगुलियोंपर आपत्ति है, वे देनेके लिए वचनबद्ध नहीं हैं। कर्मचारी जो कहें, उसपर ध्यान देना आवश्यक नहीं है। स्वेच्छया प्रार्थनापत्र देना हमारा फर्ज है। किन्तु यदि वह फर्ज पूरा करते समय आपत्ति उठाई जाये, तो फिर कानून हमपर लागू नहीं होता। कानून पहले लागू हो सकता था। फिलहाल तो जिनके तथ्य झूठे हैं अथवा जिनका अनुमतिपत्र झूठा है, डर उन्हें है; और वह डर भी अनुमतिपत्र न मिलनेका है, उनपर मामला चलनेका नहीं। सबसे अच्छा उपाय यह है कि जिन्हें दस अँगुलियोंके बारेमें आपत्ति हो वे व्यक्ति दस अँगुलियाँ न दें और संघके मन्त्रीको लिख दें और स्वयं उस सम्बन्धमें निर्भय रहें। डरके मारे बादमें १० अँगुलियोंकी छाप देने न चले जायें। सत्याग्रहकी लड़ाईमें अन्तमें वही जीतता है जो बकरा न बनकर सिंह बनता है।

रूडीपूर्टका व्यापार-संघ

रूडीपूर्टके व्यापार-संघका विचार है कि भारतीयोंकी जमीन गोरोंके नामपर हो जाती है, यह ठीक नहीं है। भारतीयोंको बस्तियोंमें भेज देना चाहिए और उन्हें परवाने देने, न देनेकी सत्ता नगरपालिकाको सौंप दी जानी चाहिए। संघने श्री स्मट्सको इस अभिप्रायका लम्बा पत्र लिखा है। ऐसा कोई गोरा दक्षिण आफ्रिकामें नहीं है जो भारतीयोंको सुखकी नींद सोने दे। उन्होंने निश्चय कर लिया है कि वे हमें जाग्रत रखेंगे। मैं इसे बड़ी अच्छी तालीम मानता हूँ। जो मनुष्य अपने शत्रुसे घबराता नहीं है और उसपर गुस्सा नहीं करता, उसके लिए शत्रु भी मित्र ही समझिए, क्योंकि शत्रु उसे सावधान रखकर मित्रका काम ही करता है। हम

१. दायें हाथके पाँच और बायें हाथके पाँच निशान अलग-अलग एवं दायें और बायें हाथोंकी केवल अँगुलियोंके आठ निशान एक साथ। देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४९४, अनुसूची ख।

सावधान रहें, तो सारे भारतको उसका लाभ मिलेगा। किन्तु सावधान होनेके लिए हमें रूडीपूर्टके-जैसे गोरोंका उपकार मानना चाहिए।

भारतीय-विरोधी नया दल

जोहानिसबर्गमें एक नया दल पैदा हुआ है जिसका नाम "दक्षिण आफ्रिकाका अग्रगामी (फॉरवर्ड) दल" रखा गया है। उस दलने अपने विचार प्रकाशित किये हैं। उसका उद्देश्य दक्षिण आफ्रिकामें केवल गोरोंको बसानेका है। यह पक्ष चाहता है कि इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सारी काली जातियोंको राजनीति और निवासके मामलेमें अलग रखा जाये। काले लोगोंको कभी भी मताधिकार न दिये जायें, यह भी उसका उद्देश्य है। उसकी यह इच्छा भी है कि काले लोग दक्षिण आफ्रिकामें बिलकुल ही आने न दिये जायें और जो यहाँ हैं उन्हें धीरे-धीरे निकाल बाहर किया जाये। यह दल कुछ भी कर सकेगा, ऐसा माननेका कारण नहीं है। फिर भी इस प्रकारके लोग काली जातियोंके विरुद्ध खयाल फैला सकते हैं। गोरे हमारा जितना विरोध करते हैं हमें उससे अधिक ताकत लगाकर दक्षिण आफ्रिकामें आगे बढ़नेके लिए पूरी तरह खबरदार रहना चाहिए।

स्वार्थकी सीमा

एक तरफ तो गोरे लोग इस प्रकार भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकासे निकाल बाहर करनेकी बात कह रहे हैं, दूसरी तरफ वे भारतीयोंसे जितना बने उतना लाभ उठाना चाहते हैं। यहाँके रेलवेके प्रधान इंजीनियर श्री वॉलकी मान्यता है कि ट्रान्सवालमें काफी कोयला है और उनका सुझाव है कि वह कोयला भारतमें खपाया जाये। इन भाई साहबके मनमें यह खयाल भी नहीं उठता कि ट्रान्सवालका कोयला लेनेके लिए शायद भारत कुछ शर्तें पेश करे। वे शायद यही समझते हैं कि भारतीय समाज डरपोक है; वह क्या कर सकता है? उनकी समझमें भारतीय तो बोझा ढोने-भरके लिए पैदा हुए हैं।

घातक सभ्यता

स्वार्थकी जिस सीमाकी ओर मैंने ऊपर इशारा किया है, आस्ट्रेलियासे उसका एक मौलिक उदाहरण प्राप्त हुआ है। वहाँ चीनियोंके विरुद्ध काफी सख्ती बरती जा रही है। चीनी कई बार जहाजके तलघरमें छिपकर आस्ट्रेलिया तक पहुँच जाते हैं। जहाज एक छोटा-बड़ा गाँव ही होता है। उसके तहखानेमें आदमी छिप जाये, तो सम्भव है कई बार खोजनेपर भी न मिले। कोई निगाह बचाकर उसमें रह न सके, इस विचारसे आस्ट्रेलियाकी सरकारने यह हुक्म दिया है कि जहाजके तहखानेमें गन्धकका धुआँ भर देना चाहिए जिससे अगर उसमें कोई चीनी छुपा हो तो धुएँसे परेशान होकर बाहर निकल आये या उसमें घुटकर मर जाये। इस प्रकार कई लोग मौतके घाट उतर भी चुके हैं। निर्लज्ज, निर्दय और स्वार्थके कारण अन्धे कर्मचारियोंको इस बातपर करुणा उत्पन्न होनी तो दूर रही, वे बड़े घमण्डके साथ चीनियोंको चालाकीसे खोज निकालनेकी बात करते हैं। अगर कोई गन्धकका धुआँ भरना बन्द करनेकी बात पेश करता है तो वह निर्दोष मनुष्योंकी जान बचानेके लिए नहीं, बल्कि केवल इस विचारसे कि तहखानेमें पड़े हुए मालका नुकसान न हो, अथवा वह खराब न हो जाये। पश्चिमकी ऐसी कितनी ही बातोंको सभ्यता कहना कठिन है। बहुत-से गोरे भी इस प्रकारके उदाहरणोंसे विचारमें पड़ गये हैं और वे अपने मनमें पूछते हैं कि क्या

पश्चिमके लोग पूर्वके लोगोंकी अपेक्षा सचमुच सभ्य हैं। उन्हें इस बातपर विचार करना लाजिम है और हमें यह लाजिम है कि हम ऐसी बातोंको देखकर पश्चिमकी सभ्यतापर मोहित न हो जायें। किन्तु इसके साथ-साथ यह भी याद रखना चाहिए कि पूर्वके लोग भी ऐसे निर्दय कामोंसे मुक्त नहीं रहे, और न आज हैं। आज भी पूर्वमें बहुत-से घातक आचारोंका उदाहरण मिल जाता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि पूर्व हो चाहे पश्चिम, फेर केवल नामोंका है, घर-घर मिट्टीके चूल्हे हैं। जो रखेगा, उसीकी लाज रहेगी। सदाचारके पालनका पट्टा कोई विशिष्ट जाति लिखाकर नहीं लाई है। इसका आधार व्यक्ति है और यदि कोई उसे पालना चाहे तो प्रत्येक स्थान और वातावरण तथा स्थितिमें उसका पालन कर सकता है।

सर पर्सी फ़िट्ज़पैट्रिक[1]

उक्त महाशय प्रगतिशील दलके एक मुखिया हैं। उन्होंने अपने भाषणमें कहा है कि दक्षिण आफ्रिका गोरोंकी सम्पत्ति है, इसलिए उसमें एशियाइयोंको कुछ भाग नहीं मिलना चाहिए। इन महाशयकी मान्यता है कि यदि यहाँके काफिरोंपर भी पाबन्दी लगाई जा सके, तो बहुत अच्छा हो। यदि सर पर्सीसे पूछा जाये कि भारत किसकी सम्पत्ति है तो कौन जाने इसका क्या जवाब मिले। किन्तु सर पर्सीसे पूछनेके बजाय प्रत्येक भारतीय अपने मनमें यह सवाल करे, तो तमाम कष्ट बहुत जल्द दूर हो जायें। गत वर्षका संघर्ष हमारे पानीका माप-दंड था; यदि हममें पानी है तो सर पर्सी चाहे कुछ भी कहें, हम अन्ततोगत्वा स्वतन्त्रता और सम्मानपूर्वक रह सकते हैं। इसके बारेमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। हम सत्यका आचरण करें और सच ही बोलें, तभी यह स्वतन्त्रता और सम्मान प्राप्त हो सकता है। चाहे जिस ढंगसे, जितने बने उतने भारतीय दक्षिण आफ्रिकामें दाखिल करानेका विचार करनेका अर्थ मान-सम्मानको नमस्कार कर लेना है।

चीनी बहिष्कार

यहाँके समाचारपत्रोंसे विदित होता है कि जापानके विरुद्ध चीनी बहिष्कारका शस्त्र काममें लाना चाहते हैं। कोरियामें जापानी कर्मचारी चीनियोंपर जुल्म करते जान पड़ते हैं। चीनियोंकी मान्यता है कि हथियारसे लड़नेके योग्य ताक़त उनमें बहुत नहीं है। किन्तु वे जबतक स्वयं उनकी मदद नहीं करते, तबतक जापानी कोरियामें अथवा चीनमें अथवा किसी अन्य भागमें टिक नहीं सकते। चीनके साथ जापानका बड़ा जबरदस्त व्यापार है, इसलिए चीनियोंके हाथमें बड़ी भारी ताकत है। उस ताकतको देखते हुए उन्होंने निश्चय किया है कि जापान यदि सीधे ढंगसे न माने, तो जापानका माल बन्द कर दिया जाये। वे इस निश्चयपर अमल कर रहे हैं। इसलिए जापान भयभीत हो गया है। ऐसा प्रबल है बहिष्कारका अस्त्र। और बहिष्कार सत्याग्रहकी केवल एक शाखा है। जब एक बहिष्कार ही सैकड़ों तोपोंके मुकाबलेमें बलवान ठहर सकता है, तो सत्याग्रहकी क्या बात की जाये। हिन्दुस्तानमें भी फिलहाल अच्छे बहिष्कारका एक उदाहरण देखा गया है। वहाँ तार-घरमें काम करनेवाले तमाम लोगोंने हड़ताल कर दी और एक ही दिनमें हाहाकार मच गया। लॉर्ड मिंटोका तार छूटा कि तार-

१. सर जेम्स पर्सी फिट्ज़पैट्रिक (१८६२–१९३१); अध्यक्ष, खान-मण्डल विटवाटर्स रैंड; संघीय संसदमें पूर्वी प्रिटोरियाके सदस्य, १९१०–२०; दक्षिण आफ्रिकापर अनेक पुस्तकोंके लेखक।

कर्मचारियोंके साथ समझौता किया जाये। कुछ अविचारी लोगोंने अकेले गोरे कर्मचारियोंको रखना तय किया था, किन्तु वे यह नहीं समझ सके कि हजारों मनुष्य एक क्षणमें हटाये नहीं जा सकते।

रंगदार लोगोंको बस्तियोंमें भेजनेकी चर्चा

जनरल स्मट्सने ट्रान्सवालमें हॅटफोक डच-मण्डलकी वार्षिक बैठकके अवसरपर कहा कि संसदके अगले सत्रमें एक नगरपालिका-विधेयक पेश किया जायेगा। उन्होंने आशा प्रकट की कि उसमें गोरों और रंगदार लोगोंके साथ रहनेके विषयमें निर्णय हो जायेगा। इसके बाद जनरल स्मट्स अधिक नहीं बोले। दूसरे लोगोंने भी बहुत चर्चा नहीं की। सच्चे सत्याग्रहियोंको इससे या इसके समान दूसरी हलचलोंसे नहीं डरना चाहिए। इसके अलावा उन्हें जाग्रत रहना है। इससे ऐसे लोगोंको सावधान होनेकी जरूरत है जो एक बार सत्याग्रह करना काफी मानते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–४–१९०८

११३. एक सत्यवीरकी कथा [४]

"इसलिए अब मुझे मेलीटसके आरोपके सम्बन्धमें अधिक कुछ नहीं कहना है। मैं इसके अतिरिक्त यह मानता हूँ कि यहाँ उपस्थित लोगोंमें से बहुत-से लोग मेरे विरुद्ध हैं। मेलीटस आदि जो-कुछ कहते हैं, उसके कारण आप मुझे अपराधी न ठहरायेंगे, बल्कि जनसाधारणकी ईर्ष्या और उनके लगाये हुए आरोपोंके कारण मैं अपराधी ठहराया जाऊँगा। किन्तु इस रीतिसे बहुत-से अच्छे लोगोंपर संकट आये हैं और आगे भी आयेंगे।

"शायद कोई कहे, 'जिस अध्ययनके कारण आपको मृत्यु-दण्ड भुगतने तक की नौबत आ पड़े उसमें रत रहना आपको लज्जाजनक नहीं लगता?' मैं उचितरूपमें ऐसे लोगोंसे कह सकता हूँ, आपका कहना ठीक नहीं है। एक छोटे आदमीको भी अपने मनसे मृत्युका भय हटा देना चाहिए। कोई भी काम करते समय उसको एक ही विचार करना चाहिए और वह यह है कि वह काम उचित है या अनुचित और वह भले आदमीको शोभा देता है या नहीं। आपके कथनानुसार जिसमें मृत्यु-भय है वह काम बुरा होता है; तब तो ट्रॉयके वे सभी महान योद्धा, जो अपने कर्तव्यका पालन करते हुए युद्धमें मारे गये, बहुत बुरे लोग माने जाने चाहिए। पेट्रोक्लससे[1] उसकी माँने कहा, यदि तू हेक्टरको मारेगा तो तुझे भी तुरन्त मरना होगा। तब पेट्रोक्लसने उत्तर दिया, हेक्टरको मारकर मुझे मरना पड़े तो यह स्थिति कायर बनकर जीवित रहनेकी अपेक्षा हजार गुनी अच्छी कही जायेगी। पेट्रोक्लस मृत्युसे नहीं डरा। उचित है कि जब किसी व्यक्तिने अच्छा समझकर कोई मार्ग ग्रहण कर लिया हो अथवा किसी व्यक्तिको उससे ऊँचे लोगोंने किसी मार्गपर नियुक्त किया हो तब उसको उस मार्गसे मृत्यु-भय अथवा किसी ऐसे अन्य भयसे हटना नहीं चाहिए।

१. यह चेतावनी पेट्रोक्लसको नहीं, उसके सहयोगीको दी गई थी जो पेट्रोक्लसकी मृत्युका बदला लेनेके लिए हेक्टरको मार डालनेको आतुर था।

"इसके अतिरिक्त देखिए, जब मैं इस राज्यका कर्मचारी था तब मेरे अधिकारीने मुझे जिस स्थानपर नियुक्त किया था उसमें मृत्युका भय था; फिर भी मैं उसपर दृढ़ रहा। अब जब मेरा अन्तःकरण मुझे एक ज्ञानको ग्रहण करनेके लिए कहे, तब यदि उसको मैं मृत्युके भयसे ग्रहण न करूँ या उसके सम्बन्धमें कुछ न कहूँ तो यह बात कितनी अजीब मानी जायेगी? यदि मैं मृत्युसे भय करूँ तो मैं अज्ञानी हूँ, मेरी इस मान्यतामें दोष आता है। और यदि अज्ञानी होते हुए मैं ज्ञानका दम्भ करूँ तो निस्सन्देह मुझपर अभियोग चलाया जाना चाहिए। मृत्यु-भय रखना ज्ञानका दम्भ करनेके समान है, क्योंकि क्या कोई यह जान सका है कि मृत्युमें भय करने योग्य कोई बात है? हम यह क्यों न मानें कि मृत्यु मनुष्यके लिए सबसे अधिक लाभप्रद वस्तु है; जो मनुष्य मृत्युसे डरते हैं शायद वे यह समझते हैं कि वह सबसे बुरी वस्तु है। इस प्रकार हम जिसे जानते नहीं हैं, उसे जाननेका दम्भ करें तो इससे बड़ा अज्ञान अन्य क्या होगा? इन विषयोंमें अन्य व्यक्तियोंसे मेरा विचार भिन्न है। यदि मुझमें कोई बुद्धिमत्ता है तो वह यह माननेमें है कि मुझे मृत्युके सम्बन्धमें कोई ज्ञान नहीं है। इसलिए मैं अपने उस विषयके अज्ञानको नहीं ढँकता। किन्तु मैं अनीतिके मार्गपर चलना या वरिष्ठोंके उचित आदेशोंके विपरीत चलना बुरा मानता हूँ। इसलिए जिस बातको मैं उचित मानता हूँ उसको किसी प्रकारकी कायरताके कारण कभी छोड़ूँगा नहीं। इससे कदाचित् आप मेरे अभियोक्ताओंकी बात न मानकर यह कहें, 'सुकरात, इस समय हम तुमको दण्ड नहीं देते; किन्तु इसकी शर्त यह है कि जो कार्य तुम इस समय कर रहे हो उसको छोड़ दो। इसके बाद यदि तुम ऐसा करोगे तो तुमको निश्चित रूपसे मृत्यु-दण्ड दिया जायेगा।' तो मैं आपसे कहूँगा, 'हे एथेंसके लोगो! मैं आपका सम्मान करता हूँ। आपसे मुझे प्रेम है; किन्तु मुझे आपकी अधीनताकी अपेक्षा परमात्माकी अधीनता अधिक प्रिय है। और जबतक मुझमें प्राण और बल हैं, तबतक मैं अपना तत्त्वज्ञानका अभ्यास जारी रखूँगा और जो मुझे मिलेंगे एवं मेरी बात सुनेंगे, उनको इस प्रकारका बोध दूँगा: 'हे एथेन्सके श्रेष्ठ लोगो! आप इस प्रसिद्ध नगरके निवासी हैं। आप शक्तिशाली माने जाते हैं। आपकी गणना बुद्धिमानोंमें होती है। फिर भी आप धनिक बनना चाहते हैं। आप यह नहीं देखते कि धन प्राप्त करनेके लिए आप क्या-क्या करते हैं। आप पद और प्रतिष्ठा पानेके लिए चिन्तित रहते हैं। क्या इसमें आपको लज्जा नहीं आती? आपको अपनी आत्मा, अपने ज्ञान और सत्यकी परवाह नहीं है। आप यह विचार नहीं करते कि आपकी आत्मोन्नति कैसे होगी।' यदि मेरे इस कथनपर कोई मुझसे यह कहे कि वे स्वयं तो अपनी आत्माकी परवाह करते हैं और सत्यकी सेवा करते हैं तो मैं उनको छोड़ूँगा नहीं। मैं फिर पूछूँगा कि वे यह सब किस प्रकार करते हैं? मैं उनकी परीक्षा लूँगा और तब उनको छोड़ूँगा। उनकी परीक्षा लेते समय यदि मुझे ऐसा प्रतीत होगा कि वे सत्यका दम्भ करते हैं, और वास्तवमें उनमें सत्य है नहीं तो मैं उन्हें दोषी ठहराऊँगा और स्पष्ट रूपसे कहूँगा कि जो वस्तु संसारमें बहुत ही मूल्यवान है, उसका मूल्य उनके मनमें कुछ नहीं है और जिसका वास्तवमें कोई मूल्य नहीं है उसको वे मूल्यवान मानते हैं। मैं सभी लोगोंसे ऐसा ही व्यवहार करूँगा; फिर वे चाहे इस नगरके निवासी हों, या विदेशी, युवा हों या वृद्ध। आपसे तो मैं और भी जोर देकर यह बात कहूँगा, क्योंकि आप मुझे अधिक अच्छी तरह जानते हैं। आपके साथ मेरा सम्बन्ध अधिक है। आप विश्वास रखें कि मैं जो कुछ कहता हूँ वह प्रभुका आदेश है। मैं तो यह भी

कहता हूँ कि प्रभुका आदेश मुझे अत्यन्त प्यारा है और इसमें ही इस नगरका महान् हित निहित है।[1] मेरा धन्धा एक ही है। मैं छोटे-बड़े सभीको एक ही बात समझाता रहता हूँ। और वह यह है: प्राणोंकी और धनकी चिन्ता कम करो; आत्माकी सँभाल अच्छी तरह करो। उसका उत्थान जिन उपायोंसे हो उन उपायोंका प्रयोग करो। सद्गुणोंका जन्म सम्पत्तिसे नहीं होता, किन्तु सद्गुण होंगे तो सम्पत्ति और अन्य सांसारिक वस्तुएँ अवश्य उपलब्ध हो जायेंगी। यदि कोई कहे कि मैं यह शिक्षा देकर इस नगरके लोगोंको बिगाड़ता हूँ तो इसका यह अर्थ हुआ कि सद्गुण दुर्गुण हैं। यदि कोई व्यक्ति कहे कि मैं इसके अतिरिक्त कोई अन्य बात कहता हूँ तो वह व्यक्ति आपको गुमराह करता है।"

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–४–१९०८

११४. नेटालके परवाने

नेटाल परवाना कानूनके सम्बन्धमें भारतीय व्यापारियोंमें चर्चा चल रही है। सबका यही कहना है कि कुछ-न-कुछ करना चाहिए। सभी मानते हैं कि यदि कोई कारगर उपाय न किया गया तो भारतीय व्यापारीके पाँव नेटालसे उखड़ जायेंगे। गोरे भारतीयोंके पीछे पड़ गये हैं और धीरे-धीरे उनको जड़से उखाड़ देना चाहते हैं।

सभी भारतीय इसे समझते हैं। समझनेकी आवश्यकता भी है। किन्तु उपाय खोज निकालना अधिक कठिन है। हमें तो एक ही उपाय सूझ पड़ता है। भारतीय समाजपर आनेवाले दुःखोंका मुख्य कारण यह है कि इस समाजकी प्रतिष्ठा घट गई है। इसे अपनी वीरता प्रकट करनी चाहिए। तभी सरकार उसको गिनेगी। तब किया क्या जाये? दो उपाय हैं। एक तो यह है कि तलवारसे लड़ें। हमारी इस्पातकी तलवार जंग खा गई है। हम चाहते हैं कि उसमें सदा जंग लगा रहे, क्योंकि तलवारसे ली हुई चीज तलवारसे ही टिकती है।[2] दूसरा उपाय यह है कि सत्याग्रह रूपी तलवारसे लड़ें। यह तलवार कभी जंग नहीं खाती। इसे तेज करनेके लिए पत्थरकी सान नहीं चाहिए। वह तो मनकी सानपर चढ़ाई जाती है और उसीसे चमकती है। बाहरी अग्निमें तपाकर उसपर पानी नहीं चढ़ाया जाता। सत्याग्रहकी तलवारको सत्यरूपी अग्निमें डालकर उसपर पानी चढ़ाया जाता है। उसका पानी ऐसा होता है कि कभी उतरता नहीं। उसको जितना काममें लें वह उतनी ही तेज होती है। हम ऐसी तलवारसे लड़ें, यह सच्चा और दूसरा उपाय है।

इस उपायका प्रयोग कैसे किया जाये? यह बहुत सुगम है। एक सच्चे व्यापारीको अन्यायपूर्वक परवाना न दिया जाये तो उसके पीछे सब लोग परवाने लेनेसे इनकार कर दें और अपना यह निर्णय सरकारको छतपरसे पुकार-पुकार कर बता दें। व्यापारियोंको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि "साथ तरेंगे, साथ डूबेंगे।"

१. इसके एक अंग्रेजी अनुवादका अर्थ इस प्रकार है: "और मेरा खयाल है, मेरी ईश्वर-सेवासे बड़ा सौभाग्य एथेंसवासियोंको कभी प्राप्त नहीं हुआ"।

२. यही विचार "सत्याग्रहका भेद", पृष्ठ ८८-८९ में अधिक विस्तारसे व्यक्त किया गया है।

यदि इतना हुआ तो हम निर्भय होकर कह सकते हैं कि परवाना कानून रद कर दिया जायेगा अथवा उसमें उचित फेरफार होगा।

एस्टकोर्टके मामलेको[1] हम मजबूत मानते हैं। स्टैंगरमें श्री काजीका मुकदमा[2] भी वैसा ही है। हम यह मानते हैं कि इन मामलोंको लेकर पूरी तरह लड़ाई लड़ी जा सकती है। किन्तु उसके लिए त्याग करना पड़ेगा। हमने जो चूड़ियाँ पहन रखी हैं, उन्हें चूर-चूर करना होगा, और मर्दानगीसे कमर कसनी पड़ेगी। नेटालके लोग यह काम करेंगे? जैसी करनी वैसी भरनी। इसपर अधिक विचार फिर करेंगे। तबतक हम भारतके हितैषियोंको सलाह देते हैं कि इन बातोंपर अच्छी तरह विचार करें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–५–१९०८

११५. भारतीयोंमें शिक्षा

प्रसन्नताकी बात है कि भारतीय समाजमें शिक्षाके प्रति उत्साह बढ़ता दिखाई दे रहा है। इस बार यह सूचित करते हुए हमें खुशी तो होती है कि श्री हसन मियाँकी[3] तरह विलायत जानेके लिए एक और तरुण तैयार हुआ है; किन्तु हम माता-पिताओंको सावधान करना चाहते हैं कि सारे भारतीयोंको बैरिस्टर या वकील बनानेमें लाभ नहीं समझना चाहिए। अनेक धन्धे हैं और भारतीय समाजके अलग-अलग तरुणोंको उन सारे धन्धोंमें कुशल होना चाहिए। बैरिस्टर बहुत हो गये हैं। हम हुनर और फनपर बहुत कम ध्यान देते हैं। हमारी समझमें इस ओर ध्यान देनेकी बड़ी ही आवश्यकता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–५–१९०८

११६. डेलागोआ-बेमें गिरमिटिया

डलागोआ-बे और मोज़ाम्बिक प्रान्तके अन्य भागोंमें भारतीय गिरमिटियोंको बुलवानेका प्रयत्न किया जा रहा है। इस प्रयत्नका विरोध बहुत जरूरी है। डेलागोआ-बेके भारतीयोंको जाग्रत रहना चाहिए, नहीं तो सम्भव है, वहाँ भारतीयोंकी हालत बहुत खराब हो जाये। डेलागोआ-बेमें एक ऐसी संस्थाकी जरूरत है जो ऐसे कामोंको करनेमें समर्थ होनेके साथ-साथ उन्हें करे भी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–५–१९०८

१. देखिए "एस्टकोर्टके परवाने", पृष्ठ १३२-३३।
२. देखिए "नेटालमें परवाने", पृष्ठ ८४-८५।
३. देखिए "हसन मियाँकी विदाई", पृष्ठ १६४।

११७. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सावधान नर सदा सुखी

उपर्युक्त कहावत भारतीयोंपर बहुत लागू होती है। व्यापार-संघकी एक बैठकमें यह प्रस्ताव पेश किया गया कि भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकासे निकालकर पूर्व आफ्रिकाके उस भागमें भेज दिया जाये जो गोरोंके बसने योग्य नहीं है। थोड़ी-बहुत बहसके बाद बात जहाँकी तहाँ रह गई। किन्तु ऐसी बातें सदा उठती रहती हैं; इसलिए हमको खूब होशियार रहना चाहिए। विलायतके कुछ अखबार भी ऐसी बातोंसे भ्रमित होते रहते हैं। हमें उन्हें भी समझाना चाहिए। मैं देखता हूँ कि श्री रिच इस ओर बहुत सावधान हैं। किसी भी अखबारमें ऐसी बात प्रकाशित होनेपर वे उसे यों ही नहीं जाने देते।

यह ठीक है

एक डर्बन निवासी भारतीय सूचित करते हैं कि ब्रिटिश भारतीय संघके हिसाबमें नेटालकी ओरसे ५० पौंडकी रकम देखनेमें आती है। बाहर रहनेवाले लोग उसका ऐसा अर्थ कर सकते हैं कि नेटालकी ओरसे केवल ५० पौंडकी मदद ही मिली है। यह नेटालके लिए नामूसीकी बात होगी। वही सज्जन आगे चलकर कहते हैं कि नेटालसे ब्रिटिश भारतीय समितिको बादमें २५० पौंड भेजे गये थे, यह बात भी ध्यानमें रहनी चाहिए और इसे प्रकट करना चाहिए। यह ठीक बात है। सत्याग्रहके लिए भी नेटालने अपार मदद की। यह कैसे भुलाया जा सकता है कि उसने समितिको पैसा भेजा और उसके बाद तारों आदिमें पानीकी तरह धन खर्च किया?

पंजीयन

स्वेच्छया पंजीयनका काम अभी चल रहा है। क्रूगर्सडॉर्प और स्टैंडर्टनमें कुछ झंझट पैदा हो गई है। वहाँ दस अँगुलियोंकी छाप माँगते हैं, जिससे लोग क्षुब्ध हो उठे हैं। क्षुब्ध होनेकी कोई बात नहीं है। जो व्यक्ति कारण बताकर दस अँगुलियोंकी छाप देनेसे मुक्त होना चाहते हैं, वे हो सकते हैं। इसके कारण वे आपत्तिमें नहीं पड़ेंगे। इसलिए इस बारेमें तो निश्चिन्त रहना है। कोई ऐसा न समझे कि कारण बताये बगैर और अँगुलियोंकी छाप दिये बिना काम चल जायेगा। धर्म, शिक्षा अथवा सम्पन्नता — कोई कारण बताना ही चाहिए।

इसके सिवा कुछ तो दो अँगूठोंकी छाप देनेमें भी आनाकानी करते हैं। यह ठीक बात नहीं है। अँगूठोंकी छाप माँगी जाये, तो मेरी मान्यता है कि देनी चाहिए। जो वाजिबी तौरपर दस अँगुलियोंपर आपत्ति उठाते हों, उन्हें मैं सावधान रहनेकी सलाह देता हूँ।

गोरे फेरीवालोंका अधिकार

जर्मिस्टनमें एक गोरा फेरीवाला रहता था और फेरी लगाता था। जर्मिस्टनके उप-नियमके मुताबिक कोई भी गोरा उस बस्तीमें न रह सकता है और न फेरी लगा सकता है। उक्त गोरेने इस धाराका विरोध किया। मामला न्यायाधीशके सामने पेश हुआ। न्याया-

धीशने उसे दण्ड दिया। इसलिए सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की गई। सर्वोच्च न्यायालयने निर्णय दिया कि नगरपालिकाको तदनुसार विनियम बनानेका हक है; और इसलिए सजा बहाल रखी गई। यह महत्त्वपूर्ण निर्णय है। इससे कुछ सीखा जा सकता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–५–१९०८

११८. एक सत्यवीरकी कथा [५]

"इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आप मेरे विरुद्ध कही बातोंको मानें या न मानें, मुझे छोड़ें या न छोड़ें और चाहे मुझे अनेक बार मृत्युका सामना करना पड़े तो भी मैं अपना तरीका न छोडूँगा।

"मैं जो-कुछ कहता हूँ उससे आप नाराज न हों। मेरी बातको आप ध्यान देकर सुनें, क्योंकि मेरी समझसे मेरी बात सुननेमें आपका लाभ है। अब मैं जो कहनेवाला हूँ, उससे आपको कदाचित् रोष आ जाये। किन्तु आप रोष न करके ध्यानसे सुनें। यदि आप मुझे मृत्य-दण्ड देंगे तो मैं जैसा हूँ उसके कारण उससे मेरा उतना नुकसान नहीं होगा जितना कि आपका होगा। मुझे मेलीटस या अन्य व्यक्ति हानि नहीं पहुँचा सकते। उनमें मुझे हानि पहुँचानेकी शक्ति नहीं है। **एक अच्छे आदमीको उससे उतरता आदमी नुकसान पहुँचा सके, यह सम्भव नहीं हो सकता।** उसके आरोपके परिणामस्वरूप मुझे कदाचित् मृत्यु-दण्ड मिले, मेरा निर्वासन किया जाये या मेरे अधिकार छीन लिये जायें। आपको लगता है कि यदि ऐसा हुआ तो मेरी भारी हानि होगी। किन्तु मैं इसमें हानि नहीं मानता। किन्तु जो व्यक्ति अन्यायसे अन्य व्यक्तिको मरवानेका प्रयत्न करता है वह उस प्रयत्नसे अपनी ही हानि करता है। इसलिए आप यह न मानें कि मैं अपनी सफाई दे रहा हूँ। आपके समीप खड़ा होकर मैं जो पुकार कर रहा हूँ वह आपके हितार्थ है। आप प्रभुकी आज्ञाका उल्लंघन करके जो बुरा काम करेंगे मैं आपको उसमें से उबारना चाहता हूँ। आप मुझे मारनेकी आज्ञा दे देंगे तो आपको मेरे जैसा काम करनेवाला दूसरा व्यक्ति पाना कठिन होगा, यह कहना शोभाजनक नहीं है; किन्तु कहे बिना काम नहीं चलता। जैसे शक्तिमान् घोड़ेके लिए लगामकी[1] आवश्यकता होती है, वैसे ही आप शक्तिमान हैं, इसलिए आपके लिए लगामकी आवश्यकता है। मैं लगाम बनकर रहूँ, इसे मैं प्रभुका आदेश समझता हूँ। इसलिए यदि आप मेरी सम्मति मानें तो आप मेरे प्राण न लें। किन्तु सम्भावना यह है कि जैसे कोई किसी निद्रालु पुरुषको उसकी नींदसे जगाये तो वह चिढ़कर उसे मारने दौड़ता है, वैसे ही आप मुझपर चिढ़कर विचार किये बिना मुझे मारनेकी आज्ञा दे देंगे। उसके बाद आपको मुझ जैसा दूसरा व्यक्ति न मिलेगा तो आप फिर सो जायेंगे। मैं आपका हित-साधक हूँ और मुझे प्रभुने आपके पास भेजा है। आप यह देख सकते हैं कि मैं अपना निजी काम एक ओर रख देता हूँ, सदा

१. एक अंग्रेजी अनुवादमें भिन्न उपमा दी गई है। सुकरात कहता है: "एथेन्स एक सुस्त घोड़ा है जिसे सावधान बनानेके लिए डुड़मक्खीकी जरूरत होती है, और मैं वह डुड़मक्खी हूँ जिसे भगवानने इसीलिए भेजा है कि मैं नगरको डंक मारता रहकर सचेत रखूँ"।

आपकी हित-चिन्ता करता हूँ, मैं पिता या बड़े भाईकी भाँति आपमें से प्रत्येक व्यक्तिको शिक्षा देता हूँ और सन्मार्ग दिखानेका प्रयत्न करता हूँ। मैंने यदि इसका प्रतिफल माँगा होता और उससे बहुत-बड़ी सम्पत्ति संचित कर ली होती तो मुझपर आपका सन्देह करना सकारण होता; किन्तु मेरे वादियोंने मुझपर धन लेनेका आरोप नहीं लगाया है। मैंने कभी धन लिया या माँगा नहीं है, मेरी जबरदस्त गरीबी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

"कदाचित् आप यह पूछेंगे कि जहाँ मैं लोगोंको गुणी बननेकी सम्मति देता रहता हूँ और उसके लिए घर-घर भटकता फिरता हूँ, वहाँ मैं नगरका हित-साधन करनेके लिए राजनीतिक कार्योंमें भाग क्यों नहीं लेता। मैं इसका कारण बहुत बार बता चुका हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे कानोंमें सदा दिव्य-वाणी सुनाई देती रहती है। यह वाणी मुझे निर्देश देती है कि मैं राजनीतिक कार्योंमें न पड़ूँ। मेरी भी यही मान्यता है कि जो-कुछ हुआ है, वह ठीक ही हुआ है। यदि मैं राजनीतिक झगड़ोंमें पड़ा होता तो मैं संकटमें फँस गया होता; उससे आपको या मुझे लाभ न होता। मैं जो सत्य है वही कहता हूँ; इससे आप रुष्ट न हों। जो व्यक्ति नगरमें होनेवाली अन्धाधुन्धीका विरोध करे और अन्यायपूर्ण कामोंकी राहमें विघ्न डाले, उसका जीवन सुरक्षित नहीं है। इसलिए जो व्यक्ति यह चाहता है कि सब-कुछ न्यायानुसार ही हो, उसको इस झंझटमें नहीं फँसना चाहिए।

"मैं आपको इस बातका प्रमाण दूँगा। उससे आप देखेंगे कि मैं जिस बातको अनुचित मानूँगा उसको मौतके डरसे भी नहीं करूँगा। किन्तु आप मेरे उदाहरणसे यह भी देखेंगे कि यदि मैं राजनीतिक झगड़ोंमें फँसा रहता तो कभीका नष्ट हो गया होता। मैं जो-कुछ कहनेवाला हूँ वह आपको बुरा लगेगा। किन्तु वह सत्य है। एक बार मैं आपकी सभाका सदस्य था।[१] उस समय सभाने दस सरदारोंको मृत्यु-दण्ड देनेका निर्णय किया। समस्त सदस्योंमें[२] से केवल मैंने उस निर्णयका विरोध किया। उस समय सभी मुझे मार डालनेके लिए तैयार हो गये। किन्तु मैं अपनी टेकपर दृढ़ रहा। मुझे लगा कि आपके अन्यायपूर्ण कार्योंमें सम्मिलित होनेसे मेरा मर जाना या कैद भोगना अच्छा है। यह बात उस समयकी है जब हमारे यहाँ जनतन्त्र था।

"फिर जब जनतन्त्रके स्थानमें कुलीन तन्त्र आ गया तब लीसन[३] नामके व्यक्तिको मृत्यु-दण्ड दिया गया और उसे कार्यरूप देनेके लिए उसको पकड़कर लानेकी आज्ञा दी गई। मुझे भी वह आज्ञा मिली। मैं जानता था कि लीसनको दिया गया मृत्यु-दण्ड अनुचित है[४]; उसे पकड़ने न जानेमें मेरी मृत्युकी सम्भावना थी। मैंने अपनी मृत्युकी परवाह नहीं की; मैं लीसनको पकड़ने नहीं गया। और इस बीच यदि वह राज्य-व्यवस्था भंग न हो गई होती[५] तो मेरी मृत्यु निश्चित थी।

"अब आप देख सकते हैं कि यदि मैं शासनिक कार्योंमें दीर्घकाल तक रहा होता और न्यायबुद्धिपर आरूढ़ रहता (और न्याय मेरा जीवनाधार होनेके कारण अन्यथा मुझसे होता

१. सुकरात "तीस सदस्यीय आयोग" के एक सदस्य थे।
२. एक अंग्रेजी अनुवादमें 'अध्यक्षों' शब्द है।
३. एक अंग्रेजी अनुवादमें यहाँ "लिअन" है।
४. इसी घटनाके साथ प्लेटोकी भ्रम-निवृत्ति प्रारम्भ हुई। घटनाकी चर्चा उसने अपने "सातवें चिट्ठे" में की है।
५. यहाँ एथेंसमें कुछ अल्पतान्त्रिक सरकारोंके बाद जनतान्त्रिक व्यवस्थाकी पुनः स्थापनाकी ओर संकेत है।

नहीं) तो मैं इतने वर्ष जीवित न रहा होता। मैंने अपने समस्त जीवनमें किसीके साथ अन्याय नहीं किया है, मैंने अपने सार्वजनिक या व्यक्तिगत जीवनमें कभी न्याय-विरुद्ध कार्रवाई नहीं की है। मैंने शिक्षकका दम्भ नहीं किया, किन्तु यदि मेरे पास कोई कुछ पूछने आया तो मैंने उसे उत्तर देनेसे इनकार नहीं किया। इसके अतिरिक्त मैं धनी और निर्धन सबको समान भावसे उत्तर देता हूँ। तिसपर भी यदि मेरे उपदेशोंसे कोई सुधरा न हो तो इसमें मेरा दोष नहीं माना जाना चाहिए। यदि कोई यह कहे कि मैंने एकको एक बात बताई और दूसरेको दूसरी तो यही मानना चाहिए कि वह सत्य नहीं है।

"आप जानते हैं, यह प्रश्न भी किया गया है कि इतने अधिक लोग अपना समय मेरे साथ क्यों बिताना चाहते हैं। जो ज्ञानी नहीं हैं, किन्तु ज्ञानका दम्भ करते हैं, उनसे जब प्रश्न पूछे जाते हैं तब अन्य लोग सदा सुननेके लिए आतुर रहते हैं। इसमें उन्हें बड़ा मजा आता है। मैं प्रश्न पूछना अपना देवप्रदत्त कर्तव्य समझता हूँ। मैंने इसमें कुछ बुरा नहीं किया। यदि मैंने अपनी शिक्षासे युवकोंको बिगाड़ा हो तो उनमें से जो अब बड़े हो गये हैं और अपना हित समझ सकते हैं वे आपके सम्मुख आकर मुझपर आरोप लगायें। यदि वे आपके सामने न आयें तो उनके सगे-सम्बन्धी आयें और शिकायत करें। मुझे इस सभामें वे युवक और उनके सगे-सम्बन्धी दिखाई पड़ रहे हैं। मेलीटसने उनमें से किसीको साक्षीकी तरह क्यों पेश नहीं किया? यदि मेलीटस और अन्य वादी इस बातको भूल गये हों तो मैं उनको अब भी इसकी अनुमति देता हूँ। वे अवश्य उन लोगोंकी साक्षी लें। वे मेरे विरुद्ध कुछ कहनेके बजाय यह कहेंगे कि मेरी संगतिसे उनके बच्चोंको लाभ पहुँचा है और इस प्रकार मेरे पक्षमें बोलनेमें उनका हेतु न्यायके अतिरिक्त अन्य कुछ लाभ प्राप्त करना न होगा।

"मुझे अपनी सफाईमें जो-कुछ कहना था उसमें से बहुत-कुछ तो मैं कह चुका। हम लोगोंमें यह प्रथा है कि जिसपर मुकदमा चलता है उसके सगे-सम्बन्धी न्यायालयमें आकर फरियाद करते हैं, दयाकी भीख माँगते हैं और कैदी स्वयं रोते-धोते हैं। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है, न करना ही चाहता हूँ। इससे भी कदाचित् आपमें से कुछ लोग नाराज हों। मेरे सगे-सम्बन्धी हैं — तीन बेटे हैं, एक बड़ा और दो छोटे। किन्तु मैं उनमें से किसीको उपस्थित करना नहीं चाहता। मैं इससे आपका अपमान नहीं करता। मैं इसमें आपका अपमान नहीं मानता। आप इसे मेरी अशिष्टता न मानें। हम इस बातको एक ओर रखेंगे कि मैं मृत्युसे नहीं डरता। किन्तु मुझे लगता है कि इतनी आयु तक पहुँचकर और अपनी अच्छी या बुरी प्रतिष्ठाको ध्यानमें रखकर मेरे द्वारा अपने सगे-सम्बन्धियोंको लाकर आपके सम्मुख रुलाना आपकी और मेरी हीनता है। मुझे यह शोभा नहीं देता। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि सुकरातमें सामान्य मनुष्योंसे कुछ विशेषता है। यदि आपमें से कोई ऐसा विशिष्ट व्यक्ति हो और उसपर ऐसा मुकदमा चलाया जाये जैसा मुझपर चलाया जा रहा है तो उस व्यक्तिका मृत्युके भयसे ऐसा रोना-धोना कराना लज्जाजनक माना जायेगा। यदि मृत्यु होनेमें कोई दुःख हो और मृत्युसे एक बार बचनेपर अमर हो जाते हों तो कदाचित् सगे-सम्बन्धियोंको लाकर दयाभाव उत्पन्न करनेका बचाव किया जा सके। किन्तु जब कोई ऊँचा व्यक्ति गुणसम्पन्न होनेपर भी इस प्रकार मृत्युसे भयभीत हो तब तो विदेशी हमारी हँसी ही करेंगे। वे कहेंगे, 'एथेन्सके ऐसे लोग भी, जिन्हें उनके सद्गुणोंके कारण बड़ा मानकर बड़ा पद दिया जाता है, स्त्रियोंसे अधिक ऊँचे नहीं हैं, तब एथेन्सके अन्य लोग तो कितने

हीन होने चाहिए।' इसलिए मैं मानता हूँ कि किसी अच्छे मनुष्यको ऐसा नाटक न करना चाहिए। और यदि वह करना चाहे तो इस नगरकी सम्मान-रक्षाके लिए उसको उससे रोकना उचित है। जन-साधारणका कर्तव्य तो यह है कि आप जो दण्ड दें वे उसे धैर्यसे भोगें। और आपका कर्तव्य यह है कि जो रोने-धोनेका नाटक करना चाहें आप उनको धिक्कारें।

"फिर प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठाका प्रश्न छोड़ देनेपर भी मुझे लगता है कि प्रतिवादीका काम दया माँगना नहीं है। उसका काम न्याय माँगना है। और उसके लिए उसे सचाईको प्रस्तुत करके उसपर तर्क करना चाहिए। न्यायाधीशका काम दया दिखाना नहीं है; बल्कि पक्षपात किये बिना न्याय करना है। इसलिए मुझको और आपको दोनोंको यह उचित है कि हम वैसा काम न करें जिससे मेरी और आपकी प्रतिज्ञामें बाधा आये।

"यदि मैं आपके सम्मुख गिड़गिड़ाकर आपकी प्रतिज्ञाको तुड़वानेका प्रयत्न करूँ तो मुझपर मेलीटस नास्तिकताका जो आरोप लगाता है, वह सिद्ध होनेके समान माना जायेगा। जो मनुष्य ईश्वरको मानता है वह दूसरेकी प्रतिज्ञाको तुड़वाये तो यह माना जायेगा कि उसने ईश्वरका विरोध किया; अर्थात्, यह कहा जायेगा कि वह ईश्वरको नहीं मानता। किन्तु मैं तो इतनी दृढ़तासे ईश्वरको मानता हूँ जितना आपमें से कोई न मानता होगा। इसलिए मैं उसपर भरोसा रखकर मेरे सम्बन्धमें जो ठीक हो सो करनेका अधिकार आपके हाथमें निर्भयतापूर्वक देता हूँ।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–५–१९०८

११९. नेटालके विधेयक

वे 'भारतीय' विधेयक, जिनका पूर्वाभास उपनिवेश सचिवसे पहले ही मिल चुका था, अब 'गजट'में प्रकाशित हो गये हैं। अगर ये विधेयक स्वीकृत हो गये, तो ३० जून १९११के पश्चात् नेटालमें कोई भी गिरमिटिया भारतीय मजदूर प्रवेश न पा सकेगा। दूसरे विधेयक के अनुसार ३१ दिसम्बर १९०८ के पश्चात् भारतीयों या अरबोंको कोई नये परवाने न दिये जायेंगे। तीसरे विधेयकके अनुसार १० वर्षके पश्चात् भारतीय परवाने बिलकुल बन्द हो जायेंगे, बशर्ते कि व्यापारके मुनाफेपर तीन वर्ष तक के लाभके बराबरकी रकम मुआवजेके रूपमें अदा कर दी जाये।

उपनिवेशका प्रत्येक भारतीय पहले विधेयकका स्वागत करेगा। और हमें विश्वास है कि उसे संसदके दोनों सदन एकमत होकर स्वीकार कर लेंगे। यह दुःखकी बात है कि गिरमिट प्रथा कुछ और पहले ही बन्द नहीं की जा सकती। शेष दो विधेयकोंसे भारतीय व्यापारियोंमें आतंक फैलेगा। ये विधेयक जितने अत्याचारपूर्ण हैं उतने ही मूर्खतापूर्ण भी हैं। जिन लोगोंने इन विधेयकोंको तैयार किया है, वे अब भी "भारतीय या अरबों"की बात करते हैं। परन्तु वे यह बात भूल जाते हैं कि नेटालमें ऐसे कोई "अरब" नहीं हैं जो भारतीय भी न हों, और उनके ध्यानसे यह बात भी उतर जाती है कि, जहाँतक भारतवासियोंसे तात्पर्य है "अरब" एक ऐसा शब्द है, जिसकी असत्यता सिद्ध हो चुकी है। यदि इन दो विधेयकोंमें से पहला विधेयक कानून बन जाता है और उसपर सम्राट्की स्वीकृति मिल जाती है तो इस

बातको साधारण बुद्धिवाला आदमी भी समझ सकता है कि फिर दूसरे विधेयककी जरूरत ही नहीं रह जाती। दस वर्षकी समाप्तिपर मुआवजा लेनेके लिए कोई भारतीय व्यापारी रहेगा ही नहीं; क्योंकि हमारा खयाल है कि नये व्यापारिक परवानोंमें एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिको और, इसी तरह, एक स्थानसे दूसरे स्थानको हस्तान्तरित किये जानेकी बात शामिल है। ऐसे भारतीय, जो पैदाइशी व्यापारी हैं, या जो पहले व्यापारी रह चुके हैं लेकिन जो आज या तो किन्हीं दूसरे भारतीयोंके साथ साझा किये हुए हैं या उनकी नौकरीमें हैं, क्या करेंगे? दूसरे भारतीयोंकी तरह उनको भी व्यापारी परवाने क्यों नहीं दिये जाने चाहिए? महज इस बातसे कि एक भारतीयने व्यापारी परवाना अपने नाम जारी करवा लिया है और दूसरा उसकी नौकरीमें है, और, वास्तवमें, व्यापार चला रहा है — दूसरा आदमी स्वतन्त्र-रूपसे अपना व्यापार चलानेसे वंचित क्यों रखा जाये? और दस वर्ष पश्चात् क्या भारतीयोंके बीच भी व्यापार करनेके लिए कोई भारतीय व्यापारी न रहेगा? हम परवानोंके अन्धाधुन्ध जारी किये जानेकी हिमायत नहीं करते; लेकिन हमारा यह खयाल जरूर है कि उन लोगोंको, जो स्वभावतः व्यापारी हैं, अपना कारोबार चलानेके लिए हर प्रकारकी सुविधा दी जानी चाहिए और यही एक तरीका है जिसके अनुसरणसे कोई देश अपने निवासियोंसे अधिकसे-अधिक लाभ उठा सकता है। बहुत-से भारतीयोंके सामने केवल दो ही मार्ग हैं — ईमानदारीका व्यापार या दगाबाजी और बेईमानी। निश्चय ही नेटालके मन्त्रिगण उपनिवेशमें धोखेबाजी और बेईमानीको जन्म नहीं देना चाहते। खैर, हमारा खयाल है कि यदि वे ऐसा समझते हैं कि भारतीय समाजको इस मामलेमें कुछ कहना है ही नहीं, या वह महाप्रयास किये बिना ही अपने आपको मिट जाने देगा, तो वे गलतीपर हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–५–१९०८

१२०. ट्रान्सवालमें स्वेच्छया पंजीयन

ट्रान्सवालमें एशियाइयोंके स्वेच्छया पंजीयनकी अवधि आज[1] समाप्त हो रही है। मोटे तौरपर, प्रायः प्रत्येक एशियाईने स्वेच्छया पंजीयनकी अर्जी दे दी है। दूसरे शब्दोंमें, उसने अपनी नई शिनाख्त कराना मंजूर कर लिया है। लगभग आठ हजार अर्जियाँ दी गई हैं। उनमें से छः हजार ठीक मानी जाकर मंजूर हो चुकी हैं। यह दोनों पक्षोंके लिए श्रेयकी बात है। इस तरह एशियाइयोंने अपना दायित्व, भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियोंसे, पूर्ण कर दिया है। अब सरकारको अपना कर्तव्य पूरा करना है; अर्थात् उसे एशियाई अधिनियमको रद करने और स्वेच्छया पंजीयनको ऐसे ढंगसे वैध ठहराना है कि वह एशियाइयोंको भी स्वीकार हो और औपनिवेशिक दृष्टिसे भी सन्तोषजनक हो जिसका मतलब हुआ नवागन्तुकोंकी अनधिकृत बाढ़को रोका जाये। भारतीय समाजने औपनिवेशिक सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है। अतः अब संघर्षका कोई और कारण नहीं रहना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–५–१९०८

१. मई ९; देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २१८-१९।

१२१. नेटालमें तीन विधेयक

डॉक्टर गबिन्सने अपनी बात पूरी कर दिखाई है। सरकारी 'गजट' में तीन विधेयक प्रकाशित किये गये हैं। एक विधेयकका मंशा ३० जून १९११से भारतीय गिरमिटियोंको लाना बन्द कर देना है। प्रत्येक भारतीयको इसका स्वागत करना चाहिए। गिरमिट और गुलामीमें बहुत अन्तर नहीं है। भारतीयोंके ऐसी स्थितिमें आनेकी अपेक्षा हम उनका न आना अधिक अच्छा समझते हैं।

दूसरे दो विधेयक भारतीय व्यापारियोंके विरुद्ध हैं। एक विधेयकके अनुसार अगले सालसे ही किसी भी भारतीय व्यापारीको नया परवाना नहीं दिया जायेगा और दूसरे विधेयकके अनुसार दस सालके बाद किसी भी भारतीयको परवाना मिलेगा ही नहीं; और दस सालके बाद जो बाकी बचेंगे उनको तीन वर्षके लाभके बराबर हर्जाना दिया जायेगा।

वास्तवमें इन दोनोंमें से पहला विधेयक अधिक बुरा है, क्योंकि उसका अर्थ यह है कि कोई भी भारतीय अगले सालसे अपना धन्धा दूसरेको नहीं दे सकेगा और न एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जा सकेगा। यदि ऐसा हुआ तो दस वर्षमें कितने व्यापारी ऐसे बच रहेंगे जिन्हें हर्जाना देना पड़े? और फिर हर्जानेमें तीन वर्षका लाभ देना तो कुछ भी न देनेके बराबर है। भारतीय व्यापार नष्ट हो जायेगा और भारतीय व्यापारीका नामोनिशान मिट जायेगा।

ऐसे विधेयकोंके स्वीकृत होनेकी सम्भावना नहीं है; किन्तु यह मानकर चुप भी नहीं बैठ जाना है। प्रयत्नपूर्वक नेटालकी सरकारपर इस तरहका दबाव डाला जाना चाहिए कि वह ऐसे प्रस्तावको आश्रय ही न दे।

उपाय[1] हम बता चुके हैं और आगे इस सम्बन्धमें अधिक लिखेंगे। प्रत्येक भारतीयको इसपर भली-भाँति विचार करनेकी आवश्यकता है।

जो व्यापार करता रहा है उससे एकाएक दूसरा काम न होगा। यदि व्यापार छिन गया तो बेईमानी बढ़ेगी। ऐसे मार्गको बन्द करना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–५–१९०८

१. देखिए "नेटालमें परवाने", पृष्ठ ८४-८५ । और "नेटालके परवाने", पृष्ठ २०७-८ ।

१२२. भारतमें संघर्ष

जान पड़ता है, इस समय भारतमें बड़ी उथल-पुथल मची हुई है। हम प्राप्त तारोंके अनुवाद दे रहे हैं। इनसे प्रकट हो जायेगा कि भारतकी सीमापर जो विद्रोह हो रहा है वह ऐसा-वैसा नहीं है। २०,००० अफगान निकल पड़े हैं। दूसरी ओर, भारतमें अशान्ति फैलती जा रही है। बम फटनेसे एक गोरी औरतकी मृत्यु हो गई। तारसे विदित होता है कि उक्त बम फेंकनेका उद्देश्य न्यायाधीशको मारना था। फेंकनेवालेको धोखा हो जानेसे एक निर्दोष स्त्रीकी[२] मृत्यु [तत्काल] हुई।

[बादमें अन्य] दो व्यक्तियोंकी मृत्यु [भी हुई।] यह काण्ड दिलमें कँपकँपी पैदा करनेवाला है। किन्तु भारतके इतिहासमें यह कोई बड़ी बात नहीं है। इसका निष्कर्ष भयंकर है। रूसकी पद्धति भारतमें आ गई, यह हमारे लिए प्रसन्न होनेकी बात नहीं है। ऐसी पद्धतिको स्थान देकर भारतीय अपनी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। जो रूसमें हो सकता है, वह भातरके भी अनुकूल होगा, यह नहीं मानना चाहिए।

सम्भव यह है कि ऐसी घटनाओंसे लोग अपना कर्तव्य भूल जायेंगे। अधिकार प्राप्त करनेका जो सरल और सीधा रास्ता है, वे उसे भूल जायेंगे और अन्तमें हम विदेशियोंके विरोधमें जिन उपायोंका इस्तेमाल मान्य करते हैं, वही उपाय हमारे विरुद्ध काममें लाये जायेंगे। सदा यही होता आया है।

इसलिए इस परिस्थितिमें भारतीयोंके प्रसन्न होनेकी कोई बात नहीं है। किन्तु हम सरकारको दोषसे मुक्त नहीं मान सकते। यदि सरकार अत्याचार न करती, तो लोगोंको विस्फोटकोंका उपयोग करनेकी बात ही न सूझती।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-५-१९०८

२. अप्रैल ३०, १९०८ को मुजफ्फरपुरमें खुदीराम बोसने जिला न्यायाधीश श्री किंग्सफोर्डकी हत्याके इरादेसे एक घोड़ा-गाड़ीपर बम फेंका था। इस घोड़ा-गाड़ीमें श्री किंग्सफोर्ड नहीं थे। उसमें बैठे हुए लोग, श्रीमती और कुमारी केनेडी और उनका कोचवान भयानक रूपसे जख्मी हुए। श्रीमती केनेडीकी तत्काल और अन्य दोनोंकी बादमें मृत्यु हो गई। खुदीरामको बादमें फांसी दे दी गई।

१२३. कैनडाके भारतीय[1]

कैनडामें भारतीयोंने जो आवाज उठाई है वह ज्ञातव्य है। हमें विनीपेगके एक मित्रने एक विशेष पत्र भेजा है। उससे मालूम होता है कि संसारके विभिन्न भागोंमें रहनेवाले भारतीयोंमें राष्ट्रीय भावनाका उदय हो रहा है। जिन लोगोंने सभा की, कष्ट उनके ऊपर नहीं आया था। कुछ भारतीय हाँगकांगसे [कैनडा] आये थे। कैनडाकी सरकारने उनको उतरनेकी स्वीकृति नहीं दी; इसलिए कैनडाके भारतीयोंने सभा की। सभामें जो लोग आये उनमें बहुत बड़ी संख्या सिक्खोंकी[2] थी। उन्होंने गुरुद्वारेमें सभा की और उसमें बहुत उत्साह प्रकट किया। सभामें एक प्रस्ताव यह स्वीकार किया गया कि यदि कैनडा आये हुए भारतीयोंको वापस जाना पड़ा तो उससे अंग्रेजी राज्यको धक्का लगेगा। लोगोंने यह भी कहा कि उससे [भारतमें] अंग्रेजी राज्यके विरोधियोंको उत्तेजन मिलेगा तथा [बादमें इस आशयका] प्रस्ताव पास किया गया। अखबारके संवाददाताने आगे यह भी बताया है कि सभामें बहुत जोशीले भाषण दिये गये।[3]

ऐसी सभाएँ और [प्रवासी] भारतीयोंमें आती हुई इस प्रकार एकता भारतीयोंके उज्ज्वल भविष्यके लक्षण माने जा सकते हैं।

ब्रिटिश सरकारका कर्तव्य बहुत कठिन हो गया है। उसको बहुत सावधानी बरतनी होगी। उसे एक ओर उपनिवेशोंको प्रसन्न रखना है और दूसरी ओर भारतीय लोगोंके हितोंकी रक्षा करनी है। श्री मॉर्लेकी पूरी परीक्षा है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–५–१९०८

१२४. केपका प्रवासी कानून

केपमें एक गोरेके मामलेमें सर्वोच्च न्यायालयने निर्णय दिया है कि केपके कानूनमें किसीको निर्वासित करनेका विधान नहीं है। इसलिए गोरेको निर्वासित करनेकी जो आज्ञा दी गई थी, वह रद कर दी गई और उसे छोड़ दिया गया। यह निर्णय बहुत महत्त्वका नहीं है, फिर भी जानने योग्य है। न्यायाधीशके निर्णयसे ऐसा लगता है कि अब दूसरा कानून बनाया जायेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–५–१९०८

१. देखिए "कैनडाके भारतीय", पृष्ठ १९९ और "रोडेशियाके भारतीय", पृष्ठ २५७-८ भी।

२. विनीपेगके फ्री प्रेसकी रिपोर्टके अनुसार जिन ५०० व्यक्तियोंने सभा की वे हिन्दू थे।

३. सभाने भारत-मन्त्री जॉन मॉर्लेको तार भी भेजा था, जिसमें बड़ी सरकारसे संरक्षणकी प्रार्थना की गई थी और इशारा किया गया था कि इस समस्याकी अवहेलनासे भारतमें क्षोभ फैलेगा।

१२५. हमीद गुल

जान पड़ता है केपटाउनके श्री यूसुफ गुलके पुत्र श्री हमीद गुलने, जो कुछ दिनोंसे विलायतमें चिकित्साशास्त्रका अध्ययन कर रहे हैं, अपने समयका बहुत अच्छा उपयोग किया है। श्री हमीद गुलके हालके पत्रोंसे ज्ञात होता है कि उन्होंने अपनी परीक्षामें सम्मानित स्थान प्राप्त किया है और उन्हें १० पौंड पारितोषिक दिया गया है। हम गुल महोदयोंको बधाई देते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–५–१९०८

१२६. डेलागोआ-बेमें पंजीयन जारी करनेका सुझाव[1]

हमें खबर मिली है कि मोजाम्बिकके पोर्तुगीज इलाकेमें एशियाइयोंसे सम्बन्धित जो अस्थायी विनियम प्रकाशित किये गये थे, उन्हें पोर्तुगीज सरकारने वापस ले लिया है। ऐसा भी अनुमान है कि एशियाइयोंका पंजीयन करनेके इरादेसे एक नया कानून पेश किया जायेगा, जिसमें वार्षिक शुल्क लेनेकी बात भी रखी जायेगी। जैसे हम पहले कई बार कह चुके हैं, उसी तरह हम फिर डेलागोआ-बेके भारतीयोंको सावधान रहनेकी चेतावनी देते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–५–१९०८

१२७. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

पंजीयन

यह स्वेच्छया पंजीयनका आखिरी हफ्ता है। ९ तारीखके पहले जिन्हें अर्जी देनी थी वे दे चुके होंगे। इसके बाद प्रार्थनापत्रोंके स्वीकार किये जानेकी सम्भावना नहीं है। जान पड़ता है कि पंजीयन अधिकारीने ऐसी सूचना हर जगह भेज भी दी है। इसलिए जो भारतीय अपनेको अधिकारी मानते हों उन्हें तुरन्त प्रार्थनापत्र दे देना चाहिए। यह अखबार ट्रान्सवालके पाठकोंके हाथमें तो शायद सोमवार तक ही पहुँचेगा। तबतक अवधि बीत चुकेगी; किन्तु सच पूछिए तो सोमवारको अन्तिम दिन माना जा सकता है, ऐसा सोचकर मैं यह चेतावनी दे रहा हूँ।

पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्रोंकी संख्या लगभग ८,७०० हो चुकी है और उनपर ६,००० से अधिक प्रमाणपत्र दिये जा चुके हैं। शेष अर्जियोंकी जाँच अभी जारी है। अनुमान है

१. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४४७ और ४५० और "डेलागोआ-बेके भारतीय", पृष्ठ १८५।

कि ये अर्जियाँ बच्चोंकी, डचोंके समयमें जिन्हें पंजीयन प्रमाणपत्र मिल चुके थे उनकी, तथा जिनके अँगूठोंके विषयमें सन्देह है, ऐसे लोगोंकी होंगी। डच पंजीयन प्रमाणपत्रवालोंके मामले संदिग्ध अँगूठेवालोंकी संख्यापर निर्भर होंगे। इन शेष २,००० लोगोंमें अभी ऐसे बहुत-से अनुमतिपत्रवाले हैं जो सबूत दे सकते हैं। एक-दो हफ्तोंमें अधिक समाचार मिलनेकी सम्भावना है।

अन्तर-औपनिवेशिक सम्मेलन

इस नामसे दक्षिण आफ्रिकाके सभी उपनिवेशोंका सम्मेलन आजकल प्रिटोरियामें हो रहा है। नेटालके मन्त्री श्री मूअर उसके अध्यक्ष हैं।[1] सम्मेलनमें विचारार्थ उपस्थित प्रश्नोंमें एशियाइयोंके प्रश्न भी शामिल हैं। वहाँ इस प्रश्नपर बहुत चर्चा होनेकी सम्भावना है। सुना गया है कि सम्मेलनकी कार्यवाही गुप्त रखी जायेगी।

इस अन्तर-औपनिवेशिक परिषदमें एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ है। प्रस्ताव श्री स्मट्सने पेश किया था और उसका समर्थन किया था श्री मेरीमैनने[2]। इसमें कहा गया है कि सब उपनिवेशोंको एक करनेकी दिशामें सभी उपनिवेशोंको प्रयत्न करना चाहिए। इसपर टिप्पणी करते हुए प्रगतिशील पत्रोंने लिखा है कि चूँकि उपनिवेशोंमें डच लोगोंका प्रभुत्व है — विशेषतः ऑरेंज रिवर कालोनी, ट्रान्सवाल और केपमें उनकी सत्ता है — इसलिए एक होनेकी बात करनेमें उन्होंने लाभ देखा है। ऐसा करनेमें उनका मंशा यह है कि अंग्रेजोंका जोर कम हो जाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–५–१९०८

१. नेटालके प्रधानमन्त्री।

२. परममाननीय जॉन जेवियर मैरीमैन (१८४१–१९२६); प्रिवीकौंसिलके सदस्य, सर्वेक्षक और फार्ममालिक; केप-संसदके सदस्य; माल्टिनो मन्त्रि-मण्डलके मन्त्री १८७५–७८; प्रधान मन्त्री और प्रधान कोषाध्यक्ष १९०८–१०; संघ-विधानसभाके सदस्य १९१०–१९; **इंडियन ओपिनियन**में "भारतीयोंके प्रति न्यायके सतत समर्थक"के रूपमें उल्लेख।

१२८. एक सत्यवीरकी कथा [६]

पिछले सप्ताह गलतीसे सूचित कर दिया गया था कि यह लेखमाला पूरी हो गई है, किन्तु वहाँ सुकरातने अपना बचावका भाषण पूरा किया था और उसे बहुमतसे अपराधी माना गया था। इसके बाद सुकरातने इस विषयपर बोलना शुरू किया कि उसे क्या सजा दी जानी चाहिए।[1] उसने कहा :

> आपने मुझे अपराधी ठहराया है, इससे मैं दुःखी नहीं होता। फिर आपका निर्णय अकल्पित नहीं है। मुझे आश्चर्य तो यह होता है कि इतने अधिक लोगोंने मेरे पक्षमें मत दिया। मैं मानता था कि मेरे विरुद्ध बहुत अधिक मत दिये जायेंगे। लेकिन उसके बजाय मैं देखता हूँ वे बहुत कम हैं। यदि तीन[2] और व्यक्ति मेरे पक्षमें मत दे देते तो मैं छूट ही जाता। फिर मैं देखता हूँ कि मुझपर देवताओंको न माननेका जो आरोप लगाया गया था उससे मैं मुक्त कर दिया गया हूँ।
>
> अब आप मुझे मृत्यु-दण्ड दे सकते हैं। इस सम्बन्धमें मैं क्या कहूँ? मैं चुप नहीं रह सका, मैंने नौकरियाँ छोड़ीं, पदकी परवाह नहीं की और घर-घर घूमकर लोगोंको गुणी बननेका उपदेश दिया उसके लिए क्या मुझपर जुर्माना होना चाहिए या मुझे कोई और सजा मिलनी चाहिए? यदि कोई मनुष्य व्यायामशालामें आपका मनोरंजन करे और आपके मनमें यह भाव उत्पन्न करे कि आप सुखी हैं, तो आप उसको विश्रान्ति-भवनमें रखेंगे। मैंने आपको सुखी दिखाई देनेका ही नहीं, बल्कि सचमुच सुखी होनेका मार्ग बताया है; इसलिए यदि मैं कुछ माँग सकता हूँ तो यही कहूँगा कि आपको मुझे बुढ़ापेमें विश्रान्ति-भवनमें रखना चाहिए।
>
> मैं आपके सम्मुख अपराधी ठहराये जानेके बाद ऐसी बात करता हूँ। इससे आप यह मानेंगे कि मैं उद्धत हूँ और दण्डके बजाय पुरस्कार माँग रहा हूँ। किन्तु ऐसी कोई बात नहीं है। आपने मुझे दोषी ठहराया है, फिर भी मैं अपने आपको निर्दोष मानता हूँ। मैंने किसीका बुरा नहीं किया है। आप इस बातको नहीं समझ सके, क्योंकि मेरा मुकदमा कुल एक ही दिन चला। मैं इस अल्पकालमें आपको कितना समझा सकता हूँ? यदि मैं आपके सम्पर्कमें अधिक दिन रहा होता तो कदाचित् आपको समझा सकता। मैं निर्दोष हूँ, इसलिए मैं स्वयं सजा नहीं माँगता। तब मुझे जेलमें भेजा जाये? यह उचित नहीं है। मुझपर जुर्माना किया जाये? उसके लिए

१. "यदि अपराध ऐसा होता था जिसके लिए कानूनमें कोई निश्चित दण्ड-विधान न हो तब. . . अभियोक्ता, मुकदमा जीत जानेकी दशामें, एक दण्डका प्रस्ताव करता था और अभियुक्त एक विकल्प रखता था तथा पंचोंको [सभाके ही एक भागको, क्योंकि कोई न्यायाधीश नहीं होते थे] उन दोनोंमें से एक चुनना पड़ता था। . . . जब सुकरातको दण्ड दिया गया तब अभियोक्ताने उसके लिए मृत्यु दण्डकी माँग की। परन्तु, सुकरातने पहले विकल्पके रूपमें नगरकी स्वतन्त्रताका सुझाव दिया और फिर औपचारिक रूपसे, निर्वासनका नहीं, जिसे पंच सहर्ष स्वीकार कर लेते, एक मामूली जुर्मानेका प्रस्ताव किया।" एच० डी० एफ० कीटो, **द ग्रीक्स**। प्लेटोने इस जुर्मानेकी रकम १ माइना (लगभग ४ पौंड) से ३० माइना करनेके लिए सुकरातको राजी किया था।

२. यह संख्या "तीस" होनी चाहिए।

तो मेरे पास पैसे ही नहीं। मैं निर्वासन माँगूँ? यह मैं कैसे माँग सकता हूँ? मुझे अपने प्राण इतने अधिक प्रिय नहीं हैं कि मैं भयत्रस्त जहाँ-तहाँ मारा-मारा फिर कर अपने जीवनके शेष दिवस पूरे करूँ।

कदाचित् कोई कहेगा कि अब मुझे मौन धारण कर एकान्तमें बैठना चाहिए, यह भी मुझसे नहीं होगा। मेरा विश्वास है, मुझे प्रभुका आदेश है कि मैं जिन्हें सद्गुण मानता हूँ उनके सम्बन्धमें अपने लोगोंके सामने विवेचन करूँ। फिर मुझे आदेश है कि मैं बराबर सदाचारके नियमोंकी खोजमें रहूँ। मेरा खयाल है कि आप इस बातको नहीं समझ सकते, किन्तु इस कारण मुझसे तो चुप नहीं रहा जा सकता।

इसके पश्चात् न्यायालयने सुकरातको मृत्युदण्ड देनेका निर्णय किया। इसपर महान सुकरातने निर्भय होकर तत्काल यह कहा:

मृत्यु-दण्ड न दिया जाता तो भी मुझे अब कुछ ही दिन जीवित रहना था। इतने अल्पकालके लिए आप निर्दोष व्यक्तिको मृत्यु-दण्ड देकर अपयशके भागी बने हैं। यदि आप कुछ समय और रुके होते तो मेरी मृत्यु अपने-आप ही हो जाती, क्योंकि मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। मैंने आपके सम्मुख ओछे तर्क दिये होते और दूसरे सामान्य उपाय बरते होते तो मैं मृत्यु-दण्डसे बच जाता। किन्तु वह मेरा धर्म न था। मैं मानता हूँ कि स्वतन्त्र मनुष्य मृत्यु-भय या ऐसे किसी अन्य भयसे बचनेके लिए कभी अनुचित काम नहीं करता। मृत्युसे बचनेके लिए बुरे-भले सब उपाय करना मनुष्यका कर्तव्य नहीं है। लड़ाईमें मनुष्य शस्त्र डालकर शत्रुकी शरणमें जाता है तो बच जाता है। किन्तु हम उसे कायर मानते हैं। वैसे ही जो मनुष्य मृत्युसे बचनेके लिए अनीतिमय उपायोंका आश्रय लेता है वह अधम माना जाता है। मैं मानता हूँ कि अधमतासे बचना मृत्युसे बचनेकी अपेक्षा अधिक कठिन है, क्योंकि अधमता मृत्युकी अपेक्षा अधिक तेज दौड़ती है। आप उतावले और उच्छृंखल हैं, इसलिए आपने विचार किये बिना तेजीसे दौड़ते हुए यह अनीतिमय कदम उठाया है। आपने मुझे मृत्यु-दण्ड दिया है। मैं अब इस संसारका त्याग करूँगा। यह माना जायेगा कि मेरे विरोधी पक्षने सत्यका त्याग किया और अन्याय बटोरा। मैं अपना दण्ड भोगूँगा, तो उनको अपनी करनीका दण्ड भोगना होगा, ऐसा ही हुआ करता है। इस दृष्टिसे देखें तो यह ठीक ही है।

अब मुझे अपनी मृत्युसे पहले दो बातें कहनी हैं। मैं मानता हूँ कि मेरे कारण आपको बड़ी अड़चन होती थी; लेकिन यह नहीं मानना चाहिए कि मुझे दूर करके आप अनीति चला ही सकेंगे। आप यह न समझें कि कोई आपको दोष न देगा। मृत्यु-स्थानमें ले जाये जानेसे पहले मैं उन लोगोंसे, जिन्हें मेरी बातोंपर विश्वास है, दो शब्द कहूँगा। इसलिए जिन्हें मेरी बातें सुननी हों, वे ठहर जायें। मृत्युका अर्थ क्या है, यह मैं जैसा समझता हूँ वैसा आपको बताना चाहता हूँ। आप ऐसा मानें कि मुझपर जो कुछ घटित होनेवाला है वह अच्छा ही है। जो मृत्युको दुःखरूप मानते हैं वे भूल करते हैं। मृत्युके दो परिणाम माने जा सकते हैं: एक तो यह कि जो मनुष्य मर गया उसका कोई अंश शेष नहीं रहता और उसका चेतन [आत्मा] भी नष्ट हो जाता है; दूसरा, आत्मा एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चली जाती है। अब यदि पहला परिणाम सत्य हो और चेतन मात्रका नाश होता हो तो यह स्थिति एक

महानिद्राके समान हुई। हम निद्राको सुखरूप मानते हैं। तब मृत्यु, जो बड़ी निद्रा है, अधिक सुखरूप होनी चाहिए। अब यदि यह मानें कि मृत्युके बाद जीव एक स्थानसे दूसरेमें चला जाता है तब तो जहाँ मुझसे पूर्व मनुष्य मर कर गये हैं मुझे भी वहीं जाना होगा। उनकी संगतिमें मुझे शुद्ध न्याय मिलेगा। इसमें क्या बुराई है? जहाँ होमर गये हैं, जहाँ अन्य महात्मा गये हैं वहाँ यदि मुझे भी जाना पड़े तो मैं बहुत ही भाग्यशाली माना जाऊँगा। जहाँ अनुचित दण्ड-प्राप्त जीव गये हैं वहाँ पहुँचना मैं अपना सम्मान समझता हूँ।

यह तो आपको स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि नीतिमान मनुष्यको जीने या मरनेमें दुःख होता ही नहीं। ईश्वर उस मनुष्यका त्याग नहीं करता। सत्यवादीको सदा सुखी समझिए। इसलिए मुझे आज मरने और शरीरके जंजालसे छूटनेमें कुछ भी दुःख नहीं है। इसी कारण मुझे अपने दण्डदाताओं और आरोपकर्ताओंपर कोई रोष नहीं है। उन्होंने मेरा बुरा चाहा हो तो वे दोषके पात्र हैं; किन्तु मुझपर उनकी इच्छाका बुरा प्रभाव नहीं हो सकता।

अब मेरी अन्तिम माँग यह है कि जब मेरे बच्चे वयस्क हों तब यदि वे नीतिका मार्ग छोड़ें और सद्‌गुणोंकी अपेक्षा सम्पत्ति अथवा अन्य वस्तुओंको अधिक प्रिय मानें और उनमें से कोई अपने भीतर कोई सद्‌गुण न होनेपर भी अपने आपको बड़ा मानें तो जैसे मैंने आपको ऐसी बातोंके लिए उलाहना दिया है और सावधान किया है वैसे ही आप उन्हें दण्ड दें। यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं यह मानूँगा कि आपने मुझपर और मेरी सन्तानपर कृपाका हाथ रखा है।

अब समय हो गया — मेरे मरनेका और आपके इस संसारमें रहनेका। किन्तु दोनोंमें से किसकी स्थिति अधिक अच्छी है, यह तो ईश्वर ही कह सकता है।

यह ऐतिहासिक घटना है अर्थात् सचमुच ऐसा हुआ था। जैसे सुकरातने अन्ततक नीतिका पालन किया और जैसे प्रेमी प्रेमिकाका आलिंगन करता है उस प्रकार मृत्युका आलिंगन किया, वैसा नीति-बल हमें और हमारे पाठकोंको प्राप्त हो, यही हम प्रभुसे प्रार्थना करते हैं। हम चाहते हैं कि पाठक भी प्रभुसे ऐसी ही प्रार्थना करें। हम सबसे कहना चाहते हैं कि वे सुकरातके वचन और जीवनपर बार-बार विचार करें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–५–१९०८

१२९. पत्र: जनरल स्मट्सको[1]

जोहानिसबर्ग
मई १२, १९०८

प्रिय श्री स्मट्स,

श्री चैमनेके पाससे मुझे जो तार मिला है उसके सम्बन्धमें मैंने आपको एक टेलीफोन-सन्देश भेजा है। उस तारमें यह कहा गया है कि जो एशियाई समझौतेके समय उपनिवेशसे बाहर थे और जो अब आ रहे हैं तथा जो इस मासको ९ तारीखके बाद यहाँ आये हैं, उन्हें अधिनियमके अन्तर्गत प्रार्थनापत्र देने चाहिए। जेलसे लिखे गये मेरे पत्रके असंदिग्ध वक्तव्यको देखते हुए[2] मुझे विश्वास है, कि आपका यह आशय कदापि नहीं है। इससे लगभग आतंक छा गया है। मैं आशा करता हूँ कि आवश्यक हिदायतें भेज दी जायेंगी और जो लोग अब आयें उनका स्वेच्छया पंजीयन स्वीकार कर लिया जायेगा।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

जनरल जे० सी० स्मट्स
कलोनियल ऑफिस
प्रिटोरिया

[अंग्रेजीसे]

इंडिया आफिस ज्युडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स २८९६/०८; तथा टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८११) भी।

१३०. पत्र: ए० कार्टराइटको

[जोहानिसबर्ग]
मई १४, १९०८

व्यक्तिगत

प्रिय श्री कार्टराइट,

शायद शान्तिके देवदूतका फिरसे आवाहन करना पड़ेगा। साथकी नकलें[3] अपनी कहानी आप कहेंगी। आप अभी कोई कार्रवाई करें, ऐसा मैं आवश्यक नहीं समझता। किन्तु जो स्थिति पैदा हो गई है उससे संदिग्ध विश्वासका खतरा जाहिर होता है। आप

१. यह पत्र **इंडियन ओपिनियन**में ४–७–१९०८ को प्रकाशित किया गया था और इसकी एक नकल रिचने उपनिवेश कार्यालयको अपने २७ जुलाई १९०८ को प्रेषित पत्रके साथ संलग्न की थी।

२. जान पड़ता है कि 'देखते हुए' शब्द पत्रमें बादमें जोड़े गये थे; दफ्तरी प्रतिमें ये नहीं हैं।

३. जनरल स्मट्सको भेजे गये और उनसे मिले पत्रोंकी नकलें।

जो पत्र[1] लाये थे वह डेल्फीके[2] भविष्यवक्ताओंकी शैलीमें लिखा गया है। आपको याद होगा, मैंने अपने विचार उसी समय व्यक्त कर दिये थे, और आपसे कहा था कि मैं इस तरहके कागजपर केवल इसलिए हस्ताक्षर कर सकता हूँ कि आप उससे सम्बद्ध हैं।

हृदयसे आपका,

श्री ए० कार्टराइट
जोहानिसबर्ग

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८१४) से।

१३१. पत्र: ई० एफ० सी० लेनको[3]

[जोहानिसबर्ग]
मई १४, १९०८

[प्रिय सी० लेन,]

मुझे आपका इस मासकी १३ तारीखका पत्र मिला, जिसके लिए मैं श्री स्मट्सको धन्यवाद देना चाहता हूँ। मेरी समझमें इस पत्रसे एक जबर्दस्त सवाल उठता है और एक बहुत-बड़ी गलतफहमी पैदा होती है। जब बातचीत चल रही थी उस समय मैं ऐसा समझौता स्वीकार करनेकी कल्पना भी नहीं कर सकता था, जिसका मतलब तीन मासके बाद प्रवेश करनेवाले एशियाइयोंके साथ भेदभावपूर्ण बरताव करना हो।[4] यदि इस प्रकारकी कोई बात हुई होती तो निश्चित रूपसे भारत-स्थित भारतीयोंको भी सूचना देनेके उपाय किये जाते और ऐसा केवल तार भेजकर कर सकते थे, ताकि वे लोग तीन मासके अन्दर ट्रान्सवाल वापस आ सकें। और ऐसा करनेपर भी, मेरी समझमें, भारतीयोंसे यह आशा करना सर्वथा न्यायसंगत न होता कि वे अपने कागजात बदलनेके लिए इस अवधिके अन्दर यहाँ आ जायेंगे। यह पाबन्दी केवल उन लोगोंपर लागू होती थी जो ट्रान्सवालके अधिवासी थे। श्री कार्टराइटके लाये हुए जिस पत्रपर मैंने और मेरे साथी कैदियोंने हस्ताक्षर किये थे उसे पढ़नेपर जनरल स्मट्स देखेंगे कि उसमें यह वाक्य तथा कुछ और शब्द मैंने जोड़े थे कि "इस प्रकारका पंजीयन उन लोगोंपर भी लागू होना चाहिए जो उपनिवेशसे बाहर होनेके कारण लौटकर आयें, और जिन्हें अन्य तरहसे प्रवेश करनेका अधिकार हो।" इस प्रकारके एशियाइयोंपर तीन मासकी आजमायशी अवधि

१. देखिए "पत्र: "उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ ३९-४१।

२. प्राचीन यूनानका एक स्थान; जहाँके प्रसिद्ध अपोलो मन्दिरके पुरोहित द्वयर्थी भाषामें भविष्यवाणी किया करते थे।

३. यह पत्र **इंडियन ओपिनियन**में ४-७-१९०८ को प्रकाशित किया गया था और इसकी एक नकल रिचने अपने २७ जुलाई १९०८ के, उपनिवेश कार्यालयको प्रेषित, पत्रके साथ संलग्न की थी।

४. लेनके १३ मई १९०८ के पत्रमें जनरल स्मट्सने कहा था कि इस श्रेणीके लोगोंपर भी "उसी तरहका पंजीयन" लागू होगा जैसा तीन महीनेकी अवधिके भीतर स्वेच्छया पंजीयन करानेवाले ट्रान्सवालवासी एशियाइयोंपर; अर्थात् कानूनके अन्तर्गत ९ मईके बाद उपनिवेश वापस आनेवाले लोगोंसे वैसा ही बर्ताव किया जायेगा जैसा ट्रान्सवालके स्वेच्छया पंजीयनसे इनकार करनेवाले एशियाइयोंसे किया जायेगा। देखिए एस० एन० ४८१२।

लागू करनेका इरादा कभी नहीं रहा; और न मैंने कभी यह सोचा कि दूसरा मार्ग स्वेच्छया पंजीयनको अनिश्चित काल तक के लिए खुला रखना है। और मैं आज भी इस तरहके किसी उपायका सुझाव नहीं देता। समझौतेका सारांश यह है कि भारतीय समाजका दायित्व पूरा हो जानेपर, और मेरा दावा है कि वह पूरा हो गया है, अधिनियमको रद कर देना चाहिए। अधिनियमके रद होनेतक आगे आनेवाले लोगोंका स्वेच्छया पंजीयन होता रहे। जैसा कि मेरे द्वारा प्रस्तुत मसविदे से मालूम होगा, भविष्यमें आनेवाले लोगोंकी शिनाख्तके लिए अनुबन्ध रख दिया गया है। इसलिए स्वेच्छया पंजीयनके अनिश्चित काल तक खुले रहनेका कोई सवाल ही नहीं है।

निःसन्देह, यदि जनरल स्मट्स चाहते हैं कि अब पंजीयन नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे नया विधान पास होनेतक रोक देना चाहिए, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन अब जो भारतीय प्रवेश करें उनपर अधिनियम लागू करनेसे मेरे कुछ देशवासियोंके मनमें जो शक अबतक छिपा हुआ है वह बढ़ जायेगा। अपने वचनका पालन करने और सरकारको सहायता करनेमें, जनरल जानते हैं कि, मैंने अपनी जान ही खो दी होती; और यह इसलिए हुआ कि, अपने कुछ देशवासियोंके मतानुसार, मैंने १० अँगुलियोंके निशान देनेके सिद्धान्तको स्वीकार कर उन देशवासियोंको बेच दिया है। यदि अधिनियमके अन्तर्गत नये आनेवाले लोगोंके प्रस्तावित पंजीयनपर जोर दिया गया तो न केवल सन्देहको प्रोत्साहन मिलेगा, बल्कि वह सन्देह उचित भी होगा। और मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि जो लोग मुझपर क्षुब्ध हों, उनको मेरा जीवन लेनेका अधिकार होगा। यदि मैंने कभी इस बातकी स्वीकृति दी हो कि अधिनियम नये आगन्तुकोंपर लागू हो तो, जो विश्वास मेरे देशवासियोंने मुझपर किया है, और जिस पदपर उन्होंने मुझे इतने लम्बे अर्से तक आसीन रहने दिया है, उसके लिए मुझे सर्वथा अयोग्य समझा जाना चाहिए। यदि अधिनियम बुरा था, और मैं सादर जोर देकर कहता हूँ कि वह था, तो वह सभीके लिए बुरा था। केवल वे लोग, जो अपनी धूर्तता या अपने दुराग्रहके कारण अपनी शिनाख्तके लिए सरकारको स्वेच्छया सुविधा न देते हों, उसे बुरा नहीं समझते थे। इसलिए मुझे विश्वास है कि जनरल स्मट्स इस मामलेपर पुर्नविचार करेंगे और मुझे अपने उस थोड़े-बहुत प्रभावको, जो मैं अपने देशके लोगोंपर रखता हूँ, वे अपनी इच्छित दिशामें उपयोग करनेके लिए नहीं कहेंगे। इतना ही नहीं, वे नये आगन्तुकोंका स्वेच्छया पंजीयन स्वीकार करके या यह सूचना देकर कि जबतक कि विधान पास नहीं होता तबतक उन्हें शिनाख्त देनेकी आवश्यकता नहीं है, मुझे अपना वचन पूरा करनेमें मदद पहुँचायेंगे — खासकर जब समझौतेके अन्तर्गत शिनाख्तका उद्देश्य उसी तरह पूरा हो जाता है।

चूँकि मामला अत्यन्त आवश्यक है, मैं निवेदन करता हूँ कि उत्तर तार द्वारा दिया जाये।

आपका सच्चा,

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८

इंडिया ऑफिस, ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स : २८९६/०८; तथा टाइप की हुई दफ्तरी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८१३) से।

१३२. पत्र : मेघजीभाई गांधी और खुशालचन्द गांधीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १४, १९०८

आदरणीय मेघजीभाई[1] और खुशालभाई,[2]

आपका पत्र मिला। जो चिट्ठी मैं इस पत्रके साथ रलियातबहनके[3] नाम भेज रहा हूँ, उसमें मैंने अपने कुछ विचार व्यक्त किये हैं। आप खुद उसे पढ़ देखें, उसपर मनन करें और उनको भी सुना दें। यदि वे करसनदासके[4] यहाँ हों तो उनके नाम लिखे गये पत्रको उनके यहाँ पहुँचा दें और कृपया मुझे लिखें कि [इस विछोहके[5] बाद] उनके मनकी क्या हालत है।

गोकलदास नहीं रहा। हम निस्सहाय हैं। [हमारे] सम्बन्धके कारण स्वभावतः ही इस पत्रको लिखते समय भी मुझे रुलाई छूट रही है। परन्तु जो विचार मेरे मनमें बहुत अर्सेसे चक्कर काट रहे हैं अब बहुत प्रबल हो गये हैं। मुझे दीख पड़ रहा है कि हम सब बड़े जंजालमें पड़े हैं। मैं देखता हूँ कि यह दशा जैसे हमारे कुटुम्बकी है, वैसे ही सारे देशकी है। विचार बहुत हैं, मगर यहाँ सिर्फ उन्हें ही रख रहा हूँ जो इस समय मनमें प्रधान रूपसे हैं।

गलत लिहाज या शर्मके कारण अथवा गलत मोहमें फँसकर हम अपने बालकोंके शादी-ब्याह करनेकी जल्दी मचाते हैं। इस बखेड़ेके पीछे सैकड़ों रुपये बरबाद करते हैं और फिर विधवाओंके मुख देखते रहते हैं। ब्याह करना ही नहीं, ऐसा तो मैं कैसे कहूँ? पर कुछ हद तो कायम करें? बालकोंकी शादी कराकर उन्हें हम दुखी करते हैं। वे सन्तान पैदा करके झंझट में पड़ जाते हैं। हमारे नियमके अनुसार स्त्रीसंग तो केवल प्रजोत्पत्तिके लिए है। इसके अलावा तो वह विषय है।

हम लोग इसमें से कुछ करते हों ऐसा देखनमें नहीं आता। यदि मेरा यह कथन सही है तो मानना पड़ेगा कि अपनी ही तरह [छोटी उम्रमें] अपने बालकोंके शादी-ब्याह रचाकर हम उन्हें विषयी बना रहे हैं। इस प्रकार विषय-वृक्ष बढ़ता ही जाता है। इसे म तो धर्म नहीं कहता।

अधिक नहीं लिखूँगा। आपने वहाँके हालात लिख भेजे हैं; पर मैं और क्या उत्तर दूँ? अपने मनकी बात ही मैं लिख सकता हूँ। यद्यपि आप लोगोंसे छोटा हूँ फिर भी आपके द्वारा म अपने विचार सारे परिवारके सामने रख रहा हूँ। मेरी तो कुटुम्ब-सेवा यही है।

१. गांधीजीके फुफेरे भाई।
२. गांधीजीके चचेरे भाई।
३. गांधीजीकी बहन; इनके नाम लिखा उक्त पत्र उपलब्ध नहीं है।
४. गांधीजीके भाई।
५. उनके पुत्र गोकलदासकी मृत्युके कारण। गोकलदास कुछ दिनों तक गांधीजीके साथ दक्षिण आफ्रिकामें भी रहे थे। खण्ड १ भी देखिए।

अपराध होता हो तो क्षमा करें। चौदह वर्ष तक स्वाध्याय और मनन करनेके बाद और सात बरसके आचरणके बाद अपने इन विचारोंको, अवसर देखकर, आपके सामने रख रहा हूँ।

मोहनदासके दण्डवत् प्रणाम

[गुजराती और हिन्दीसे]

'महात्मा गांधीना पत्रो' (गुजराती); सम्पादक, डी० एम० पटेल, सेवक कार्यालय, अहमदाबाद १९२१; और प्रभुदास गांधीकृत **'जीवन-प्रभात'** (हिन्दी); सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९५४। पत्रका प्रथम पैराग्राफ तथा अन्तिम पैराग्राफ मूल गुजरातीमें कट-फट जानेके कारण हिन्दी पुस्तकसे लिये गये हैं।

१३३. भेंट : 'स्टार' को

[जोहानिसबर्ग
मई १६, १९०८के पूर्व]

जोहानिसबर्गके बैरिस्टर श्री मो० क० गांधी प्रस्तुत कानूनसे सर्वाधिक सम्बन्धित समाजके अग्रगण्य सदस्य हैं। इस कारण इस कानूनके विषयमें, जिसे नेटाल सरकार अपने यहाँके भारतीयोंके लिए बनानेवाली है, उनकी बात बहुत ध्यानसे सुनी जानी चाहिए। . . .

जहाँतक मुझे मालूम है, पहले विधेयकका, अर्थात् गिरमिटिया आव्रजन बन्द करनेके विधेयकका, प्रत्येक भारतीय स्वागत करेगा। दुःखकी बात केवल इतनी ही होगी कि वह इससे पहले बन्द नहीं किया गया और वह अब भी आगामी दो वर्षोंतक बन्द होनेवाला नहीं है। यदि भारतसे गिरमिटिया लोग न लाये गये होते, तो दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय प्रश्न ही न होता। हाँ, सम्भव है कि भारतीयोंके सन्तोषका कारण वही न हो — और न है ही — जो यूरोपीयोंके सन्तोषका है। भारतीयोंके विचारमें गिरमिटिया-प्रथा यदि सम्पूर्ण भारतीयों अथवा सम्बन्धित भारतीयोंके लिए लाभप्रद हो भी तो बहुत ही कम है। यह प्रथा गिरमिटिया लोगोंको उत्थान अथवा प्रगतिकी ओर नहीं ले जाती। भारतके सरकारी इतिहासकार स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटरके[1] शब्दोंमें यह अर्द्धदासत्वकी दशा है।

शेष दो विधेयकोंपर तो बहुत आपत्ति की जा सकती है। मैंने किसी भी ब्रिटिश उपनिवेशमें ऐसे कानून नहीं सुने। परवाने देनेवाले इन दो विधेयकोंमें से पहलेका मंशा यह है कि नेटालमें नये परवाने देना बन्द ही कर दिया जाये। उसका अर्थ यह हुआ कि कारोबारका एक जगहसे दूसरी जगह ले जा सकना समाप्त हो जायेगा; क्योंकि समझे,ं ही कोई व्यापारी अपने व्यापारको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाता है त्यों ही बन्धुओंके ारको नया समझा किये जाने

१. सर विलियम विल्सन हंटर (१८४०–१९००); भारत तथा ब्रि सम्बन्धी अनेक पुस्तकोंके लेखक; **इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ इंडिया**के १४ खण्डोंका संकलन और िकया; वाइसरॉयकी लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य, १८८१–८७; अवकाश ग्रहण करनेके बाद लंदन-स्थित ाय राष्ट्रीय कांग्रेसकी समितिके सदस्य बने, और १८९०से लंदनके प्रसिद्ध दैनिक **टाइम्स**में भारतीय प्रश्नोंपर लेखादि लिखते रहे।

जाता है और उसके लिए नया परवाना जरूरी हो जाता है। यह विधेयक यदि कानून बन गया तो निश्चय ही भारतीय व्यापारी लगभग बरबाद हो जायेंगे। अपने नामपर परवाना रखनेवाले व्यक्तिका साझेदार साझेदारी छोड़ते ही खुद अपने नामपर परवाना लेनेका अधिकारी क्यों नहीं हो सकता? किन्तु इस विधेयकका परिणाम व्यापारकी मनाही करना होगा। इस विधेयकमें और भी अनेक ऐसी बातें हैं जिनसे नेटालमें भारतीयोंके सभ्य अस्तित्वपर आघात पहुँचेगा।

कुछ भारतीय, जो जन्मतः व्यापारी हैं, किसी अन्य काम या धन्धेको नहीं अपना सकते। और अब नेटाल ही उनका घर है। यदि उन्हें व्यापार नहीं करने दिया गया तो वे और क्या करेंगे? यदि इस विधेयकको पास करानेका हठ किया गया, तो इससे केवल धोखेबाजीको प्रोत्साहन मिलेगा। यह बिलकुल सच है कि वर्तमान परवाना-कानूनमें भारतीय व्यापारीकी स्थिति अपेक्षाकृत विशेष अच्छी नहीं है। वह हमेशा डाँवाँडोल स्थितिमें रहा करता है; परन्तु इस कारण वर्तमान विधेयक न्याय-संगत नहीं ठहराया जा सकता। और फिर, मौजूदा परवाना कानूनकी स्थिति भी बहुत नाजुक हो गई है। अपनी पिछली नेटाल-यात्राके समय मैंने भारतीय व्यापारियोंको बहुत बेचैन पाया था और वे सोच रहे थे कि राहत पानेके लिए क्या किया जाये। हाल ही में विलायतसे प्राप्त तारसे भी प्रकट होता है कि उपनिवेश-कार्यालय नेटाल सरकारको अभीतक नेटालके व्यापारी परवाना कानूनको संशोधित या रद कर देनेकी बात समझा रहा है। सच तो यह है कि पहले विधेयकके अमलका पूरा परिणाम निकल चुकनेपर जो-कुछ अधिकार बच रहेंगे, यह दूसरा परवाना विधेयक उन सबका अपहरण कर डालेगा। इस प्रकार दूसरा अधिनियम भारतीय व्यापारियोंको दस वर्षमें आफ्रिका छोड़कर चले जानेकी सूचना है। यदि उस अवधिके बाद कुछ शेष रह गये तो उन्हें तीन वर्षोंके मुनाफेके आधारपर मुआवजा दे दिया जायेगा। यह हास्यास्पद है। नित्य बढ़नेवाले व्यापारको जब्त करनेका यह मुआवजा पर्याप्त कैसे हो सकता है? भारतीय व्यापारी इस मुआवजेकी रकमपर मिलनेवाले ब्याजसे आजीवन गुजर-बसर नहीं कर सकते। अलबत्ता मैंने यह मान लिया है कि ऐसे भारतीय, इक्के-दुक्के लोगोंको छोड़कर, अपना कारोबार अन्यत्र न चलायेंगे।

मुझे मालूम है कि इस दूसरे विधेयककी तुलना इंग्लैंडके मद्य परवाना कानूनके साथ करके उसको उचित ठहरानेका प्रयत्न किया जा रहा है। परन्तु इन दोनोंकी तुलना हो ही नहीं सकती। उस मामलेमें शराबके व्यापारपर प्रतिबन्धका लगाया जाना समस्त जातिके नैतिक कल्याणके लिए आवश्यक है। भारतीय व्यापारियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी कोई दलील पेश नहीं की जा सकती। उनमें चाहे जो दोष हो, कोई भी व्यक्ति उन्हें अन्य व्यापारियोंकी अपेक्षा अधिक बेईमान नहीं कह सका है। और भारतीय व्यापार अपने आपमें नुकसान पहुँचानेवाला नहीं है, जबकि शराबका व्यापार निःसन्देह वैसा है।

मैं ऐसी आशंका नहीं करता कि यह कानून पास हो जायेगा। लेकिन दक्षिण आफ्रिकाके उत्तरदायी मन्त्री इस प्रकारके कानूनको पास करा लेनेका विचार शान्त और निश्चिन्त भावसे कर सकते हैं, यह बात ही अत्यन्त शोचनीय है और साम्राज्य-संघ तथा साम्राज्य-सम्बन्धी राजनीतिज्ञताकी नींवको खोखली बनाये डाल रही है। इंग्लैंडके अनेक साम्राज्यवादी भारतको भी साम्राज्य-संघका अंग मानते हैं; और यह देखते हुए कि लॉर्ड कर्जनके कथनानुसार भारत साम्राज्यरूपी भवनका कलश है और भारत ही के कारण ब्रिटिश 'साम्राज्य' शब्द सम्भव हुआ

है, मैं नहीं जानता कि भारतको बाहर रखकर ब्रिटिश साम्राज्यका अस्तित्व सम्भव भी है या नहीं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–५–१९०८

१३४. नेटालके विधेयक

नेटाल परवाना विधेयकोंपर जितना अधिक विचार करते हैं, उनके प्रति उतना ही असंतोष उत्पन्न होता है। ये विधेयक साम्राज्य सरकारको खुली चुनौती हैं। ये स्पष्ट रूपसे और खुलकर भारतीयोंपर प्रहार करते हैं, न कि आम तौरसे एशियाइयोंपर। इनका वार रंगदार लोगोंपर नहीं, बल्कि केवल भारतीयोंपर है। इसलिए एक चीनी, सिवाय १८९६ के कानून १८ के अन्तर्गत आनेवाले प्रतिबन्धोंके, नेटालमें व्यापार करनेको स्वतंत्र है, परन्तु भारतीय ऐसा नहीं कर सकता। जूलू लोगोंपर किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं है, और हमारा खयाल है कि यह सर्वथा उचित ही है। परन्तु किसी भी भारतीयको, चाहे वह नेटालमें ही क्यों न जन्मा हो, एक नियत तारीखके पश्चात् अपना कारोबार हरगिज नहीं चलाने दिया जायेगा। 'मर्क्युरी' ठीक ही जानना चाहता है कि भारतीय नाईका पेशा कर सकता है या नहीं। और यदि कर सकता है, तो फिर केवल यूरोपीय परचूनियों या आम दूकानदारोंको ही संरक्षण क्यों दिया जाता है?

परन्तु प्रस्तावित विधेयककी तफसीलको देखना उसे समझ लेना नहीं है। उसे ठीक तरह समझनेके लिए यह आवश्यक है कि सतहके नीचे उतरकर नजर डाली जाये। अर्थ यह निकलता है कि नेटाल सरकार इस विधेयकको प्रस्तुत करके भारतीयोंके प्रति अपनी नीति व्यक्त कर रही है। उसकी रायमें उपनिवेशको पूरा हक है कि वह भारतीयोंको निकाल बाहर करे, उन्हें ब्रिटिश प्रजा न माने और अपने साम्राज्यीय दायित्वोंकी परवाह किये बिना उनके साथ चाहे जैसा व्यवहार करता रहे। किपलिंगके शब्दोंमें नौकर मालिक हो जानेवाला है। नेटाल उपनिवेश अपने घरका स्वामी हो जाये, इतना ही पर्याप्त नहीं है, वह तो साम्राज्य सरकारपर भी अपना हुक्म जताना चाहता है। क्योंकि हम इस बातसे बिलकुल असहमत हैं कि विधेयकमें भारतीयोंके साथ जैसे व्यवहारका प्रस्ताव किया गया है वह स्वशासित उपनिवेशोंके अधिकारोंका किसी भी हालतमें एक अंग बन सके। और नेटाल जो करना चाहता है सो आखिरकार वही है जिसकी अधिकांश ब्रिटिश उपनिवेश नकल करना चाहेंगे।

तब भारत क्या करेगा? यदि भारत सरकार अपनी जिम्मेदारीको सचाईके साथ निबाहना चाहती है तो उसका कर्तव्य स्पष्ट है। वह भारतीय प्रवासियोंको पूर्वग्रहकी वेदीपर चढ़ते और बरबाद होते नहीं देख सकती। भले ही वह अपना फर्ज न समझे, भारतकी जनताका यह स्पष्ट कर्तव्य है कि वह जागृत होकर अपने समुद्र-पारके बन्धुओंके हितोंकी रक्षा करे। भारतके गाँव-गाँवको उपनिवेशके अपने प्रवासी भाइयोंके साथ किये जानेवाले क्रूर अन्यायके विरुद्ध अपना तिरस्कार व्यक्त करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–५–१९०८

१३५. नेटालके नये कानून

नेटालकी सरकारने व्यापारी-परवानेके सम्बन्धमें जो विधेयक प्रकाशित किये हैं उनपर हम ज्यों-ज्यों विचार करते हैं, वे हमें अधिकाधिक अन्यायपूर्ण दिखाई देते हैं। वे इतने अन्यायपूर्ण हैं कि दक्षिण आफ्रिकाके बहुत-से अखबारोंने उनकी निन्दा की है। नेटालमें 'मर्क्युरी' और 'टाइम्स ऑफ नेटाल'ने इन विधेयकोंका विरोध किया है। जोहानिसबर्गके पत्रोंमें 'स्टार' भी इनके विरुद्ध कड़े लेख लिखता रहता है। 'लीडर' ने भी विरुद्ध मत प्रकट किया है। केवल 'रैंड डेली मेल' इनके पक्षमें है।

इन विधेयकोंकी ऐसी निंदा की गई है; इसलिए भारतीयोंको मौन धारण करके न बैठ रहना चाहिए। यद्यपि बहुत-से पत्रोंने विधेयकोंकी निन्दा की है, फिर भी वे उनके उद्देश्यको पसन्द करते हैं। भारतीयोंके व्यापारको धक्का लगे तो इससे इन पत्रोंको प्रसन्नता होगी। उनकी यह मान्यता है कि भारतीयोंकी उपस्थितिसे दक्षिण आफ्रिकाकी हानि होती है। वे केवल इतना कहते हैं कि ऐसे विधेयक ब्रिटिश राज्यमें पहले कभी नहीं बने और ब्रिटिश सरकार उन्हें मंजूरी नहीं देगी। इसका अर्थ यह है कि यदि ये गोरे लज्जाको त्याग सकें, अथवा इनको ब्रिटिश सरकारका भय न हो, तो ये सब भारतीयोंको पल-भरमें निकाल बाहर करनेके लिए तैयार ही बैठे हैं।

जबतक गोरे ऐसे विचार रखते हैं तबतक भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकामें या किसी भी उपनिवेशमें सन्तोषसे नहीं बैठना चाहिए। अर्थात, यहाँके अखबार हमारे पक्षमें लिखते हैं, इससे हमें भुलावेमें नहीं आ जाना चाहिए। पिंजरेमें पड़ा सिंह बकरेका कुछ बिगाड़ नहीं सकता, इससे बकरा कुछ निर्भय होकर नहीं रह सकता। उसको तो सदा सिंहका भय रखकर सावधान होकर ही चलना पड़ेगा। ऐसी ही अवस्था हमारी भी है। यहाँके सामान्य गोरे हमें चाहते हों, ऐसा नहीं है। किन्तु जिन मामलोंमें उनका वश नहीं चलता उनमें वे हमें हानि नहीं पहुँचाते, बस। वे सिंहरूप हैं। इसे छोड़ कर वे बकरे बन जायें, यह सम्भव नहीं है। हम बकरारूप हैं; इसे छोड़कर हमें अब सिंहरूप धारण करना है। जब हम वह रूप धारण करेंगे तब अपने-आप परस्पर प्रीति होगी। दुनियाका — ईश्वरीय नहीं — नियम यह है कि समान लोगोंमें ही प्रेम अथवा मैत्रीभाव देखा जाता है। राजा राजाओंके मित्र होते हैं। राजा और प्रजाके बीच तो केवल कृपा ही हो सकती है। इसीलिए कुछ लोग प्रजा-सत्तात्मक राज्य चाहते हैं। स्वामी और सेवकके बीच मैत्री नहीं होती। यह हम प्रत्येक स्थितिमें देखते हैं। जब इसके विरुद्ध बात दिखाई दे — एक समान न होनेपर भी प्रीति दिखाई दे — तब हमें समझना चाहिए कि प्रीति करनेवाला स्वामी या तो स्वार्थी है या साधु है। गोरे हमें अपनी अधीनस्थ जाति मानते हैं। जबतक उनका यह रुख है, कभी आपसमें प्रेम होनेवाला नहीं है। और जबतक प्रेम नहीं होता तबतक भारतीय लोगोंका सन्ताप बना ही रहेगा। इसलिए भारतीय सिंहरूप धारण करनेपर ही अपने अधिकारोंका उपयोग कर सकते हैं।

नेटालके विधेयकोंकी खूबी यह है कि वे चीनियोंपर लागू नहीं होते। काफिरोंपर तो लागू हों ही कैसे? इसलिए यदि वे विधेयक स्वीकृत हो जायें तो भारतीय सबसे गये-बीते साबित होंगे। नेटाल-सरकार द्वारा इन विधेयकोंको प्रस्तुत करनेका उद्देश्य हम यह मानते

हैं कि एक तो वह गोरोंका मत और दूसरे भारतीयोंका बल जान ले। यदि भारतीय चुप रहें या थोड़ा-सा ही जोर लगायें तो फिर आगे उनपर अधिक दबाव डाला जा सकता है। हमें तो नेटाल-सरकारका उद्देश्य यही जान पड़ता है।

इसका अर्थ यह है कि नेटालके भारतीयोंको न केवल इन विधेयकोंका विरोध करना है, बल्कि विधेयकोंमें निहित सिद्धान्तका भी विरोध करना है। अर्थात् बकरा न रहकर सिंह बनना है। अपनी नींद छोड़कर जागना है। व्यापारियों और अन्य लोगोंको केवल व्यापार कर लेनेसे ही सन्तोष नहीं मान लेना चाहिए; बल्कि सच्ची शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। उन्हें स्वयं शिक्षा लेकर अपने बच्चोंको भी तैयार करना है। इस प्रकार जब भारतीय सब दृष्टियोंसे कुशल हो जायेंगे तभी वे सावधान बनेंगे; और जब सावधान बनेंगे तभी शेर बनेंगे। उपाय हमारे हाथमें है, "जो बोलेगा, उसीके बेर बिकेंगे।"

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–५–१९०८

१३६. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

आन्तर-उपनिवेशीय परिषद[1]

कहा जाता है कि उक्त सभामें बहुत-से प्रस्ताव पास हुए हैं, किन्तु अभी उसकी कार्यवाही बिलकुल गुप्त रखी गई है। यह भी कहा जाता है कि इसमें नेटालके राजनीतिज्ञोंका हाथ है। उनका विचार यह था कि संघ (फेडरेशन) सम्बन्धी बातकी फिलहाल चर्चा नहीं की जानी चाहिए। परिषदके सभासदोंमें चुंगीके बाबत मतभेद होनेकी बात भी सुनी जाती है।

पंजीयन

स्वेच्छया पंजीयन ९ तारीखको समाप्त हो गया। अब नये प्रार्थनापत्र नहीं लिये जाते। इसलिए जिन्होंने प्रार्थनापत्र नहीं लिये, वे रह गये। अब ट्रान्सवालमें जो भारतीय अनुमतिपत्र लेकर दाखिल हो रहे हैं, उन्हें आने और स्वेच्छया पंजीयन करानेका हक है। फिर भी श्री चैमनेने यह आज्ञा निकाली है कि स्वेच्छया पंजीयनकी अवधि समाप्त हो गई, इसलिए अब जो आयेगा उसे कानूनकी रूसे अनिवार्य पंजीयन कराना पड़ेगा। यह आज्ञा दो बातें प्रकट करती है। एक तो यह कि स्वेच्छया लिया गया पंजीयन बड़ी मूल्यवान वस्तु है। दूसरा यह कि पंजीयन कार्यालय बहुत भूलें करता है और इस समय भी उसने उक्त हुक्म निकालकर भूल की है। इसके बारेमें जनरल स्मट्सको लिखा गया है और तार तथा टेलीफोन द्वारा बहुत-से सन्देश भी भेजे जा रहे हैं। अन्तिम रास्ता यही हो सकता है कि जो अब ट्रान्सवालमें दाखिल हों उन्हें स्वेच्छया पंजीयन करानेका हक हो और उनपर भी कानून लागू न किया जा सके। इसलिए हक रखनेवाले जो भारतीय अब ट्रान्सवालमें आयें उन्हें धैर्य रखना चाहिए और बिलकुल नहीं डरना चाहिए। यह लेख प्रकाशित होनेके पहले सम्भव है कि ऊपरका हुक्म वापस ले लिया जाये। किन्तु यदि ऐसा न हो तो यह सलाह याद

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २१८–१९।

रखनी चाहिए। यदि कर्मचारी कभी समझौतेके विरुद्ध गये तो उसका उपाय है। वे विरुद्ध जाते हैं, इसलिए समझौतेको दोष देना ठीक नहीं है।

"भारतीयोंको निकालो"

आज समस्त दक्षिण आफ्रिकामें "भारतीयोंको निकालो" का शोर मचता रहता है। जिन कैप्टन कुकने कुछ दिनों पहले प्रगतिवादी (प्रोग्रेसिव) सभामें भारतीयोंको बाहर निकालनेके बारेमें एक प्रस्ताव पेश किया था और जिनका प्रस्ताव रद्द हो गया था, उन्होंने अब 'स्टार' में पत्र लिखा है। पत्रमें कहा गया है कि नेटालमें ऐसा कानून बनानेकी जो कोशिश की जा रही है, वह निरर्थक है। और इसलिए कैप्टन कुक कहते हैं कि कानून बनानेके बदले किसी प्रकार भारतीयोंके लिए एक ऐसा देश खोज निकाला जाये जो गोरोंके रहने योग्य न हो। कैप्टन कुक साहब कहते हैं कि भारतीय उसमें भेज दिये जायें और यह भी प्रकट करते हैं कि ऐसा करना न्याय-संगत है। इस विचारका 'स्टार'ने भी कुछ समर्थन किया है; जबकि वही अखबार नेटालके कानूनके विरुद्ध बहुत सख्त टिप्पणियाँ लिखा करता है।[1]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-५-१९०८

१३७. सर्वोदय [१]

प्रस्तावना

पश्चिमी देशोंमें साधारण तौरपर यह माना जाता है कि मनुष्यका काम बहुसंख्यक लोगोंके सुखकी वृद्धि —— उदय —— करना है।[2] सुख अर्थात् केवल शारीरिक सुख, रुपये-पैसेका सुख ——ऐसा अर्थ किया जाता है। इस प्रकारके सुखको प्राप्त करनेमें नीतिके नियमोंका उल्लंघन होता है, इसकी खास परवाह नहीं की जाती। और चूँकि उद्देश्य अधिकांश लोगोंके सुखको बनाये रखनेका है, इसलिए थोड़े लोगोंको कष्ट पहुँचाकर ज्यादा लोगोंको यदि सुखी किया जा सकता हो तो ऐसा करनेमें पश्चिमके लोग दोष नहीं देखते। इसे दोषपूर्ण न माननेका परिणाम सभी पाश्चात्य देशोंमें दिखाई देता है।

अधिक लोगोंके शारीरिक और आर्थिक सुखकी ही खोज करते रहना ईश्वरीय नियमके अनुकूल नहीं है; और पश्चिमके कुछ समझदार व्यक्तियोंका कहना है कि यदि केवल उसीकी खोज की जाती रहे और नीतिके नियमोंका उल्लंघन होता हो तो वह ईश्वरीय नियमके विपरीत है। इनमें स्वर्गीय जॉन रस्किन[3] मुख्य था। वह अंग्रेज था और बड़ा विद्वान था। उसने

१. देखिए "लॉर्ड सेल्बोर्नके विचार", पृष्ठ १६२-६३ और "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २०९-१०।

२. संकेत बेन्थमके 'अधिकतम संख्याका अधिकतम हित' प्रतिपादित करनेवाले सिद्धान्तकी ओर है। गांधीजी नैतिक कारणोंसे हमेशा इस सिद्धान्तके विरोधी रहे। देखिए खण्ड ४, पृष्ठ २५६। रस्किनने भी अर्थ-व्यवस्थाका ऐसा यान्त्रिक 'शास्त्र' बनानेकी आलोचना की है, जिसमें समाजकी "पारस्परिक भावना" का खयाल बिलकुल न हो। रस्किनका तर्क यह था कि सबसे बड़ी कला या सबसे बड़ा विज्ञान वह है जिससे "अधिकतम संख्यामें महत्तम विचारों"का उदय हो।

३. (१८१९-१९००); स्कॉटलैंडके रहनेवाले थे; गांधीजी अपने जीवनमें जिन तीन व्यक्तियोंके विचारोंसे सबसे ज्यादा प्रभावित हुए, रस्किन उनमेंसे एक थे। देखिए **आत्मकथा,** भाग ४, अध्याय २८।

कारीगरी, कला, चित्रकारी इत्यादि विषयोंपर अनेक और बहुत सुन्दर पुस्तकोंकी रचना की है। नीतिके विषयपर भी उसने बहुत कुछ लिखा है। उन पुस्तकोंमें एक छोटी-सी पुस्तिका[1] है जिसे उसने अपनी समस्त कृतियोंमें उत्तम माना है। जहाँ-जहाँ अंग्रेजी बोली जाती है वहाँ-वहाँ यह पुस्तक खूब पढ़ी जाती है। उसने इस पुस्तिकामें उपर्युक्त विचारोंका भली प्रकार खण्डन किया है और यह दिखा दिया है कि नीतिके नियमोंका अनुसरण करनेमें जन-साधारणकी भारी बेहतरी है।

आजकल भारतमें हम लोग पश्चिमके लोगोंकी नकल खूब कर रहे हैं। यों कुछ विषयोंमें अनुकरणकी आवश्यकता भी हम मानते हैं, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पश्चिमके आचार-विचार खराब हैं। जो खराब है उससे दूर रहनेकी आवश्यकता सभी स्वीकार करेंगे।

दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी हालत बहुत दर्दनाक है। हम धनोपार्जनके हेतु दूर-दूरके देशोंकी यात्रा करते हैं। और उसकी धुनमें नीति और भगवानको भूल जाते हैं — स्वार्थमें फँस जाते हैं। और परिणाम यह होता है कि परदेश-गमनसे लाभके बजाय हानि अधिक होती है या परदेश जानेका पूरा लाभ नहीं मिलता। सभी धर्मोंमें नीतिका स्थान तो है ही लेकिन धर्मकी बात छोड़ दें और सामान्य बुद्धिसे सोचें तो भी नीतिका आचरण आवश्यक है। उसमें सुख है, ऐसा जॉन रस्किनने बतलाया है। उसने पश्चिमके लोगोंकी आँखें खोल दी हैं और आज बहुतेरे गोरे रस्किनकी शिक्षाका अनुसरण करते हैं। इस हेतुसे कि उसके विचार भारतीय जनताके लिए भी उपयोगी हों, हमने उपर्युक्त पुस्तिका [अन टु दिस लास्ट] का सारांश अंग्रेजी न जाननेवाले भारतीयोंको समझमें आ सकने योग्य भाषामें देनेका निश्चय किया है।

सुकरातने मनुष्यको क्या करना चाहिए, इसका कुछ दर्शन कराया है। उसने जैसा कहा वैसा ही किया। कहा जा सकता है कि रस्किनके विचार उसके विचारोंका विस्तार हैं। सुकरातके विचारोंके अनुसार चलनेकी इच्छा रखनेवालोंको विभिन्न धन्धोंमें किस प्रकार बरतना चाहिए, इस बातको रस्किनने स्पष्ट रूपसे समझाया है। उसके लेखोंका जो सार हम दे रहे हैं वह अनुवाद नहीं है। अनुवाद देनेसे, सम्भव है, बाइबिल [ईसाइयोंका धर्म-ग्रन्थ] इत्यादिमें से उद्धृत किये हुए दृष्टान्त पाठक न समझ पायें। इसलिए हमने रस्किनके लेखोंका सार ही दिया है। इस पुस्तिकाके नामका[2] शब्दानुवाद भी हमने नहीं किया क्योंकि जिसने अंग्रेजीमें बाइबिल पढ़ा हो वही उसे समझ सकता है। परन्तु पुस्तक लिखनेका हेतु सबका कल्याण — सर्वका उदय — (केवल ज्यादा लोगोंका नहीं) होनेके कारण, हमने इस लेखमालाका नाम 'सर्वोदय' रखा है।

सत्यकी जड़ें[3]

लोग अनेक भ्रमोंके शिकार हैं; परन्तु पारस्परिक भावनाके असरका विचार किये बिना — मानो वे यन्त्रवत् काम करनेवाले ही हों — उनके आचरणके लिए कायदे-कानून बनाने-जैसी बड़ी भूल और कोई दिखलाई नहीं पड़ती। और ऐसी भूल हमारे लिए लांछनकारी

१. पुस्तिकाका मूल अंग्रेजी नाम **अन टु दिस लास्ट** है।
२. **अन टु दिस लास्ट,** मुहावरेके लिए देखिए **सैंट मैथ्यू** पद १४, परिच्छेद २०।
३. गांधीजीका मतलब जिसे अंग्रेजीमें 'पोलिटिकल इकॉनामी' कहा जाता है उसके नियमोंसे है।

है। जिस तरह अन्य भूलोंमें, मोटे तौरसे देखनेपर, सत्यका कुछ आभास होता है, उसी प्रकार लौकिक नियमोंके बारेमें भी उसका कुछ आभास होता है। लौकिक नियमोंको रचनेवाले कहते हैं कि पारस्परिक भावनाको तो संयोग समझना चाहिए। और उस प्रकारकी भावनाको मनुष्यकी साधारण स्वाभाविक प्रवृत्तिको धक्का पहुँचानेवाली मानना चाहिए। किन्तु लोभ और प्रगति करनेकी इच्छा तो सदैव रहती है। अर्थात् संयोगको अलग रखकर और मनुष्यको धन-संचय करनेका यन्त्र मानकर इस बातका विचार करना है कि किस प्रकारके श्रम और किस प्रकारके लेन-देनसे व्यक्ति अधिकाधिक धनोपार्जन कर सकता है। ऐसे विचारके आधार-पर सिद्धान्त बनाकर बादमें जितनी चाहे उतनी पारस्परिक भावनाका उपयोग करते हुए लौकिक व्यवहार चलाया जा सकता है।

यदि पारस्परिक भावनाकी शक्ति लेन-देनके नियमसे मिलती-जुलती हो, तो ऊपरका तर्क ठीक माना जा सकता है। [किन्तु] व्यक्तिकी भावना आन्तरिक बल है और लेन-देनका नियम एक सांसारिक नियम है। इसलिए दोनोंका प्रकार समान नहीं है। कोई वस्तु अमुक दिशामें जा रही हो और उसपर एक ओरसे लगातार प्रवर्तमान शक्ति तथा दूसरी ओरसे आकस्मिक शक्ति लग रही हो तो हम पहले पहली शक्तिका और बादमें दूसरी शक्तिका माप करेंगे। दोनों शक्तियोंकी तुलनासे हम उस वस्तुकी गतिका निश्चय कर सकते हैं। हमारे ऐसा कर सकनेका कारण यह है कि यहाँ लगातार प्रवर्तमान और आकस्मिक शक्तियों-का प्रकार एक ही है। किन्तु मनुष्य-जातिके व्यवहारमें लेन-देनके स्थायी नियमोंकी शक्ति और पारस्परिक भावना-रूपी आकस्मिक शक्तिकी जाति जुदी-जुदी है। भावना मनुष्यपर अलग प्रकारका और अलग ढंगसे प्रभाव डालती है। इससे व्यक्तिका स्वरूप बदल जाता है। इसलिए जिस प्रकार अमुक वस्तुकी गतिपर पड़नेवाली विभिन्न शक्तियोंके असरकी जाँच हम जोड़-बाकीके नियमोंके द्वारा कर सकते हैं, उस प्रकार भावनाविषयक प्रभावकी जाँच नहीं कर सकते। लेन-देनके नियमोंका ज्ञान, मनुष्यकी भावनाके प्रभावकी जाँच करनेमें किसी काम नहीं आता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-५-१९०८

१३८. भाषण : ईसाई युवकसंघमें[1]

[जोहानिसबर्ग
मई १८, १९०८]

“क्या एशियाई और रंगदार जातियाँ साम्राज्यके लिए खतरा हैं?” एक वाद-विवादमें इस प्रश्नके नकारात्मक पक्षको प्रस्तुत करते हुए बैरिस्टर श्री मो० क० गांधीने जोहानिसबर्गके ईसाई युवक संघके समक्ष नीचे लिखा भाषण दिया :

रंगदार जातियाँ साम्राज्यके लिए खतरा हैं अथवा नहीं, इस तरहके प्रश्नका उठना या इस विषयपर विवाद किया जाना मुझे कुछ अजीब-सा लगता है। मेरा खयाल है कि इस तरहका प्रश्न केवल उपनिवेशोंमें अथवा, यह कहना अधिक ठीक होगा कि, केवल कुछ ही उपनिवेशोंमें खड़ा हो सकता है। एक सुव्यवस्थित समाजमें उद्यमशील और बुद्धिमान मनुष्य कदापि खतरनाक नहीं बन सकते। यदि उनमें कुछ दोष हों भी तो खुद समाज-व्यवस्था ही उन्हें ठीक कर लेगी। तथापि हम सब व्यावहारिक स्त्री-पुरुष हैं और इस अत्यन्त व्यावहारिक युगमें रहते हैं। हमें तो जैसी वस्तुस्थिति होती है उसका सामना करना ही पड़ता है। इसलिए जब उपनिवेशोंमें ऐसे प्रश्न उपस्थित हो ही जाते हैं तो निश्चय ही यह उचित है कि हम उनपर चर्चा और वादविवाद भी करें। और मेरे मतसे भविष्यके लिए यह एक शुभ चिह्न है कि ऐसे श्रोता-समुदायके समक्ष अपने विचार पेश करनेके लिए आप इस नम्र सेवकको बुला सकते हैं। दूसरा शुभ चिह्न यह है कि सभाभवन इतना अधिक भरा हुआ है। इससे प्रकट है कि प्रस्तुत विषयमें लोगोंको कितनी उत्कट दिलचस्पी है।

‘रंगदार लोगों’ में हम साधारणतया उन लोगोंको लेते हैं जो [गोरों और कालोंके] मिश्र विवाहोंसे पैदा हुए हैं। परन्तु आज हमारे सामने जो प्रश्न उपस्थित हैं उनमें ये शब्द अधिक व्यापक अर्थमें प्रयुक्त किये गये हैं; और यहाँ हम इन शब्दोंको विशुद्ध रंगदार लोगों अर्थात् एशियाई तथा आफ्रिकाके निवासियोंके अर्थमें ले रहे हैं। जैसा कि आप जानते हैं, मेरा अपना अवलोकन और अनुभव अधिकांशमें ब्रिटिश भारतीयों अथवा मेरे देश-भाइयोंतक सीमित है। परन्तु भारतीय प्रश्नका अध्ययन करते हुए, मैंने आफ्रिकियों और चीनियोंपर पड़नेवाले असरकी हदतक भी उसका अध्ययन करनेका प्रयत्न किया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि आफ्रिकियों और एशियाइयों — दोनोंने कुल मिलाकर साम्राज्यकी सेवा ही की है। आफ्रिकी जातियोंको छोड़ दें तो दक्षिण आफ्रिकाके बारेमें हम विचार भी नहीं कर सकते। और भारतको छोड़ दें तो ब्रिटिश साम्राज्यकी कल्पना कैसे की जा सकती है? आफ्रिकियोंके बगैर दक्षिण आफ्रिका कदाचित् एक भयानक जंगल ही बच रहेगा। मैं तो समझता हूँ कि यदि यहाँपर ये देशी कौमें नहीं होतीं तो गोरे यहाँ आते ही नहीं।

इस सिलसिलेमें मुझे किपलिंगके शब्द ‘गोरोंका बोझ’ याद आते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि उसकी कृतियोंको बहुत गलत तौरपर समझा गया है। अब तो हमें यह भी ज्ञात हो गया है कि अधिक अनुभवके बाद खुद उसने भी अपने विचारोंमें संशोधन कर लिया है

१. वाई० एम० सी० ए० (यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन)।

और वह अब ऐसा नहीं मानता कि रंगदार कौमें साम्राज्यके लिए खतरा हैं या गोरी कौमें रंगदार कौमोंके साथ जिन्दा नहीं रह सकतीं। कुछ भी हो, उसने कहीं-कहीं यह जरूर कहा है कि गोरी कौमोंपर और विशेष रूपसे ब्रिटिश राष्ट्रपर न्यासी (ट्रस्टी) की तरह रंगदार कौमोंको सँभालनेकी जिम्मेदारी नियतिने डाल रखी है। परन्तु क्या गोरी कौमोंने रंगदार कौमोंके न्यासीका काम किया है? क्या आप अपने ही रक्षितोंको अपने लिए भयकी वस्तु मानेंगे? दक्षिण आफ्रिका और अन्य उपनिवेशोंमें भी अधिकतर लोग रंगदार लोगोंसे बहुत चिढ़ने लग गये हैं। इसलिए प्रत्येक सुविचारशील स्त्री और पुरुषको चाहिए कि वह अच्छी तरह सोचे-समझे बिना यह विचार न बना ले कि रंगदार कौम कोई खतरेकी चीज हैं और इसलिए उनसे जितनी जल्दी बने पिंड छुड़ा लेना चाहिए।

इधर कुछ दिनोंसे हम दोनों कौमोंको अलग-अलग रखनेकी नीतिकी बात सुनने लगे हैं। मानो मनुष्य समाजोंके बीच लक्ष्मण-रेखा खींच रखना सम्भव हो। कैप्टन कुकने इस सम्बन्धमें अखबारोंमें[1] कुछ लेख लिखे हैं। उन्होंने मुझसे भी इस विषयमें चर्चा करनेका कष्ट किया है। वे कौमोंको अलग-अलग रखनेकी नीतिका प्रतिपादन करते हैं। मैंने उनसे निःसंकोच कह दिया कि पिछले १४ वर्षोंके अनुभव और अध्ययनके आधारपर मैं कह सकता हूँ कि अगर पूर्व आफ्रिकाके कुछ भागोंमें केवल रंगदार कौमोंको अथवा एशियाइयोंको बसानेकी बात हो तो वह सफल नहीं होगी। आप एशियाइयोंको संसारके केवल एक ही हिस्सेमें किस तरह कैद करके रख सकेंगे? जमीनके जो भाग आप उनके लिए नियत कर देंगे, और जो गोरी कौमोंके बसनेके लिए अनुकूल न होंगे, वहाँ रहनेको क्या रंगदार कौमें राजी हो जायेंगी? निःसन्देह इस तरहके रंग-भेदका मुझे तो कभी कोई औचित्य नहीं दिखाई दिया है। श्री चेम्बरलेनके शब्दोंमें शिक्षाके अभाव, अपराधवृत्ति अथवा ऐसे ही किसी अन्य आधारपर फर्क किया जा सकता है। तब भारतीयोंको अलग बसानेकी माँग नहीं उठेगी। परन्तु वर्तमान सभ्यतासे — बल्कि यह कहें कि पश्चिमी सभ्यतासे — दो विचारसूत्र निकले हैं, जो लगभग जीवन-सिद्धान्त बन गये हैं। मैं उन दोनोंको गलत मानता हूँ। वे हैं — "जिसकी लाठी उसकी भैंस" और "योग्यतम ही सुरक्षित रह सकता है।" जिन्होंने इन दोनों कहावतोंको चलाया है उन्होंने उनको एक अर्थ भी प्रदान कर दिया है। हमारे लेखे बल (लाठी) का क्या अर्थ हो सकता है सो मैं नहीं बताना चाहता; परन्तु निश्चय ही उनका तो यहाँ मतलब है कि शरीर-बल ही बल और वही सत्य और सर्वोपरि है। कुछ लोगोंने शरीर-बलके साथ बौद्धिक बलको भी जोड़ दिया है। परन्तु मैं इन दोनोंके स्थानपर हृदय-बलको रखूँगा, और कहूँगा कि जिसके पास हृदय-बल है उसकी बराबरी निरे शरीर-बल या बुद्धि-बलवाले कभी नहीं कर सकते। केवल बौद्धिक अथवा शारीरिक-बल, आत्मिक-बल अथवा, रस्किनकी भाषामें, 'पारस्परिक भावना' पर कभी विजय नहीं पा सकता। जागृत-चेतन मन तो केवल हृदयसे — आत्मिक-बलसे ही प्रभावित होता है।

पश्चिमी और पूर्वी सभ्यताके बीच यही तो अन्तर है। मैं जानता हूँ कि मैं बहुत नाजुक विषयपर बोल रहा हूँ जो शायद खतरनाक भी है। अभी-अभी लॉर्ड सेलबोर्न जैसे बड़े आदमीने हमारे सामने यह भेद रखा।[2] किन्तु अत्यन्त नम्रता और आदरके साथ मैं उनसे

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २३१–३२।
२. देखिए "लॉर्ड सेलबोर्नके विचार", पृष्ठ १६२–६३।

अपना मतभेद प्रकट करना चाहता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि पश्चिमी सभ्यता विनाशक है और पूर्वी सभ्यता विधायक है। पश्चिमी सभ्यता केन्द्रसे दूर ले जानेवाली और पूर्वी सभ्यता केन्द्रकी तरफ ले जानेवाली है। इसलिए पश्चिमी सभ्यता तोड़नेवाली और पूर्वी सभ्यता जोड़नेवाली है। मैं यह भी मानता हूँ कि पश्चिमी सभ्यताका कोई लक्ष्य नहीं है और पूर्वी सभ्यताके सामने सदा लक्ष्य रहा है। मैं पश्चिमी सभ्यता और ईसाई प्रगतिको एक नहीं मानता और न उन दोनोंका मिश्रण ही कर रहा हूँ। आज हमारे संसारमें तार-प्रणाली फैल गई है, बड़े-बड़े जहाज चल रहे हैं और फी घंटा पचास या साठ मीलकी गतिसे रेलगाड़ियाँ दौड़ रही हैं। इन्हें मैं ईसाई प्रगतिका प्रतीक नहीं मान सकता। परन्तु यह पश्चिमी सभ्यता जरूर है। मैं यह भी मानता हूँ कि पश्चिमी सभ्यता बेहद क्रियाशीलताका प्रतीक है। पूर्वी सभ्यता चिन्तन-मननका प्रतिनिधित्व करती है। पर वह कभी-कभी निष्क्रियताका प्रतिनिधित्व भी करती है। फिलहाल मैं जापानकी बात छोड़ देता हूँ। परन्तु भारतके और चीनके लोग चिन्तनमें इतने डूब गये कि वे असली तत्त्वको भूल गये। वे भूल गये कि एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रकी तरफ अपनी शक्ति लगानेमें उन्हें आलस्यसे, प्रमादसे, बचना चाहिए था। इसका परिणाम यह हुआ है कि ज्यों ही इनके सामने कोई विघ्न आकर खड़ा हुआ, वे हिम्मत छोड़कर बैठ गये। इसलिए यह जरूरी है कि वह सभ्यता पश्चिमकी सभ्यताके सम्पर्कमें आये। उसके अन्दर पश्चिमी सभ्यताका जोश और उत्साह आये। उसका एक लक्ष्य है, इसलिए ज्यों ही उसके अन्दर यह चीज आ जायेगी, मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि वह प्रमुखता प्राप्त कर लेगी। मेरा खयाल है और आप भी आसानीसे समझ लेंगे कि जिस सभ्यता या अवस्थामें सारी शक्तियाँ केन्द्रसे दूर भागती हैं उसके सामने कोई लक्ष्य नहीं हो सकता। इसके विपरीत जहाँ शक्तियाँ केन्द्रकी तरफ जाती हैं वहाँ लक्ष्य तो होता ही है। इसलिए यह जरूरी है कि ये दोनों सभ्यताएँ आपसमें मिलें। अगर ऐसा हुआ तो इससे एक नई शक्तिका जन्म होगा। और यह शक्ति निश्चय ही भयावह नहीं होगी, अलग-अलग करनेवाली नहीं होगी, जोड़नेवाली होगी। निःसन्देह ये दोनों शक्तियाँ एक दूसरेकी विरोधी हैं। परन्तु प्रकृतिकी योजनामें शायद दोनों जरूरी हैं। अब तो यह हम हृदय और आत्मावाले बुद्धि-सम्पन्न मनुष्योंका काम है कि हम देखें कि ये दोनों शक्तियाँ क्या हैं। और फिर इनका हमें उपयोग कर लेना चाहिए — आँखें मूँदकर नहीं, बल्कि बुद्धि और चतुराईके साथ। जैसे-तैसे नहीं, बल्कि एक लक्ष्यको सामने रखकर। इतना होते ही इन दोनों सभ्यताओंका मिलन होनेमें कोई कठिनाई नहीं रहेगी और यह मिलन कल्याणकारी होगा।

मैं कह चुका हूँ कि आफ्रिकाकी कौमोंने निश्चित रूपसे साम्राज्यकी सेवा की है। और मैं मानता हूँ कि इसी प्रकार एशियाकी कौमोंने, बल्कि ब्रिटिश भारतीयोंने भी, साम्राज्यकी सेवा की है। क्या ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके लिए अनेक युद्धोंमें नहीं लड़े हैं? इसके अतिरिक्त जिस कौमके जीवनका आधार ही धर्म है वह किसीके लिए खतरा नहीं हो सकती। और बेचारी आफ्रिकाकी कौमोंसे तो डरनेका कारण ही क्या हो सकता है? वे तो अभी बहुत पिछड़ी हुई हैं। संसारमें उन्हें तो अभी बहुत कुछ सीखना है। वे शरीरसे शक्तिशाली हैं और बुद्धिमान भी हैं, इसलिए साम्राज्यके लिए ये कौमें एक निधि ही हो सकती हैं। इस बातमें मैं श्री क्रेसवेलसे सहमत हूँ — कि उनकी रक्षा नहीं की जानी चाहिए। हम नहीं चाहते कि किसी भी प्रकार या किसी भी रूपमें उनकी रक्षा की जाये। परन्तु मैं यह जरूर

मानता हूँ कि वे न्याय और समानताके व्यवहारके अधिकारी हैं; उन्हें पक्षपात नहीं चाहिए। जैसे ही उन्हें न्याय मिला, कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। इसलिए यद्यपि एशियाई और रंगदार कौमोंसे किसीको डर नहीं हो सकता तथापि कमसे-कम कुछ उपनिवेशोंमें एशियाइयोंको सचमुच डरावना बना दिया गया है। हमें बताया गया है कि मॉरिशस और नेटालके उदाहरणको देखकर समस्त संसारकी गोरी कौमें डर गई हैं। मैं नहीं जानता कि ये देश ऐसे डरावने हैं या नहीं, परन्तु मैं यह तो मानता ही हूँ कि जो कुछ नेटालमें हुआ वह अगर वहाँ न हुआ होता तो आज नेटालकी शक्ल दूसरी ही होती। वह शक्ल अच्छी होती या बुरी, इसकी चर्चा हम अभी नहीं कर रहे हैं। परन्तु अगर ये देश बरबाद हो गये हैं, तो इनको गोरोंने जानबूझकर बरबाद किया है — और खासकर उन थोड़े-से गोरोंने जो जल्दीसे-जल्दी धनवान बन जाना चाहते थे। इसके बजाय यदि वे जरा धीरजसे काम लेते और उचित अवसरकी राह देखते तो ऐसा कुछ होनेकी जरूरत नहीं थी। उन्होंने भारतसे गिरमिटिया मजदूर लानेमें कोई आगा-पीछा नहीं किया और लगभग गुलामोंकी तरह उनसे काम लिया। इसीकी कीमत बादकी पीढ़ियोंको चुकानी पड़ रही है। इसलिए अगर नेटाल और मॉरिशसको कुछ सहना पड़ा है तो उसका कारण एशियाई नहीं हैं, बल्कि मजदूरीकी वह प्रथा है जिसमें एशियाई शामिल हो गये थे। यदि गोरी कौमोंमें से भी गिरमिटिया मजदूर लाये जाते तो भी उसका परिणाम यही होता। स्वतन्त्र भारतीयोंकी आबादीसे उपनिवेशोंको कभी कोई हानि पहुँचनेकी आशंका नहीं है।

परन्तु मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें की जानेवाली कुछ शिकायतें बुद्धिको जँचनेवाली हैं। तथापि मैं यह निवेदन करनेका साहस करता हूँ कि इन शिकायतोंका कोई ठोस आधार नहीं है। एक शिकायत यह है कि वे गन्दे झोंपड़ोंमें रहते हैं। हाँ, उनमें से कुछ जरूर रहते हैं। दूसरे, कहा जाता है कि उनका रहन-सहन बड़ा सस्ता है। परन्तु अगर आप इन शिकायतोंकी गहराईमें जायें तो मेरा खयाल है कि आप इसी नतीजेपर पहुँचेंगे कि इन्हें नगर-पालिकाओंके नियमोंके मातहत बड़ी आसानीसे और बहुत अच्छी तरह दूर किया जा सकता है। लन्दन शहरके पूर्वमें रहनेवालोंके खिलाफ पश्चिमी छोरपर रहनेवालोंको बहुत-सी शिकायतें हैं। परन्तु किसीने यह नहीं सुझाया है कि पूर्वी छोरके लोगोंको वहाँसे भगा दिया जाये। बुराईके कारणोंको हटा दीजिए तो पूर्वी छोरके मनुष्य भी उतने ही अच्छे बन जायेंगे जितने कि पश्चिमी छोरके लोग हैं। इसी प्रकार जिन परिस्थितियोंमें ब्रिटिश भारतीयोंको रहना पड़ रहा है उनको बदल दीजिए। आज वे जमीनका एक टुकड़ा भी नहीं रख सकते जिसे वे अपना कह सकें। दक्षिण आफ्रिकामें ईश्वरकी बनाई इस जमीनपर वे रह नहीं सकते, घूम नहीं सकते, और किसी भी प्रकार स्वतन्त्र, स्वाभिमानी और मनुष्यका-सा जीवन नहीं बिता सकते। यह स्थिति दूर कर दीजिए तो वे अपने-आप अनुभव करने लगेंगे कि रोममें तो रोमके निवासियोंकी भाँति ही रहना चाहिए। और फिर, उपनिवेशके गोरे निवासी जिस किसी उचित और जिम्मेवारीके व्यवहारकी अपेक्षा करेंगे उसे वे पूरा करेंगे। परन्तु मैं आपसे कहूँगा कि आप उनके साथ जरा धीरजसे काम लीजिए, जैसे कि आप अपने किसी साथीसे व्यवहार करते समय लेते हैं। उनके साथ आप एक सच्चे, चेतन मनुष्यके समान व्यवहार कीजिए, और फिर भारतीय प्रश्न जैसा कोई प्रश्न ही नहीं रह जायेगा। कहीं यह मत सोच लीजिए कि मैं भारतीयोंके अबाधित प्रवेशके लिए कह

रहा हूँ। इसके विपरीत मैं तो हमेशा कहता आया हूँ —— और ब्रिटिश भारतीय इसे स्वीकार करते हैं —— कि उपनिवेशमें प्रवेश सम्बन्धी नियन्त्रण भले ही रहें परन्तु वे रंगके आधारपर कभी न हों। और जिस किसीको भी उपनिवेशके अन्दर आनेकी आप इजाजत दें, उसे वे सब अधिकार होने चाहिए, जो इस देशके अन्दर रहनेवाले आदमीको होते हैं। उसे राजनीतिक अधिकार हों या नहीं, यह एक जुदा सवाल है। मैं आज यहाँ राजनीतिक प्रश्नकी चर्चा करनेके लिए नहीं आया हूँ। परन्तु वह स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकेगा या नहीं, स्वतन्त्रतापूर्वक घूम सकेगा या नहीं; अथवा जमीन रख सकेगा या नहीं; ईमानदारीके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार कर सकेगा या नहीं —— इन विषयोंमें दो रायें नहीं होनी चाहिए।[1] अंग्रेजों और भारतीयोंका एक साथ आ बसना एक ईश्वरीय योजना ही समझिए। मैं एक बात और कह दूँ —— और मैं इसे सच मानता हूँ कि अंग्रेजोंने भारतपर कोई परोपकारकी भावनासे अधिकार नहीं किया। उसमें उनका स्वार्थ था और उसमें अक्सर बेईमानीसे भी काम लिया गया। परन्तु प्रकृतिके नियमोंको हम समझ नहीं पाते। वह अक्सर मनुष्यके किये-धरेको उलट देती है और बुराईके अन्दरसे भलाई पैदा कर देती है। अंग्रेजों और भारतीयोंका जो साथ हुआ उसके बारेमें भी मेरी यही राय है। मैं मानता हूँ कि इन दोनों कौमोंको —— अंग्रेज और भारतीय —— केवल उनके अपने भलेके लिए नहीं बल्कि संसारके इतिहासपर कोई असर छोड़नेके लिए जोड़ा गया है। अपने इस विश्वासके कारण मैं यह भी मानता हूँ कि मेरी भलाई भी इसीमें है कि मैं साम्राज्यका एक वफादार प्रजाजन बनूँ, न कि किसी पराधीन कौमका सदस्य; क्योंकि मैं विश्वास करता हूँ कि अगर कहीं कोई जातियाँ पराधीन हों भी, तो उन्हें ऊपर उठाकर, स्वतन्त्र संस्थाएँ प्रदान करके, पूर्णतः स्वतन्त्र मनुष्य बनाकर अपने समान बना लेना अंग्रेज जातिका ध्येय है। अगर साम्राज्यका और अंग्रेज जातिका सचमुच यही ध्येय है तो क्या यह उचित नहीं कि करोड़ों मानव प्राणियोंको स्वशासनका शिक्षण दिया जाये? जरा भविष्यपर नजर डालकर देखिए कि विभिन्न जातियाँ एक दूसरेके अन्दर घुल-मिल रही हैं और एक ऐसी सभ्यताको जन्म दे रही हैं, जैसी संसारने अबतक कभी नहीं देखी है। क्या आनेवाली पुश्तोंके लिए हमें ऐसी ही विरासत नहीं छोड़ जाना है? निस्सन्देह कठिनाइयाँ और गलतफहमियाँ भी हैं। परन्तु इस पवित्र भजनके शब्दोंमें मेरा पूरा विश्वास है कि, "कुहरा छँट जानेपर हम एक-दूसरेको अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे।"

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६–६–१९०८
१३–६–१९०८

१. देखिए खण्ड ६ पृष्ठ २६७।

१३९. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

[मई १६, १९०८]

यह दगा तो नहीं है?

इस बारकी चिट्ठी बहुत ध्यान देने योग्य है। मैंने पिछले सप्ताह खबर दी थी कि यहाँकी सरकार अब वापस आनेवाले भारतीयोंका पंजीयन खूनी कानूनके[१] मुताबिक ही करना चाहती है। यह समाचार देते हुए मैंने सोचा था कि सरकार अपनी बात जल्दी वापस ले लेगी और अनुमतिपत्र अधिकारी भी ९ मईके बाद दाखिल होनेवाले भारतीयोंको स्वेच्छया पंजीयनकी सुविधा दे देंगे। जान पड़ता है, मेरा अनुमान ठीक नहीं था। श्री गांधी तथा जनरल स्मट्सके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ है उसके अन्तमें जनरल स्मट्स कहते हैं कि ९ मईके बाद आनेवाले भारतीयोंपर तो खूनी कानून लागू होगा ही।

यह खबर, कि खूनी कानून लागू करनेका इरादा है, श्री हाजी हबीबने प्रिटोरियासे भेजी थी। खबर मिलते ही तार भेजा गया। उसका निम्नलिखित उत्तर मिला:

जनरल स्मट्सका सन्देश

> सरकार आपको तारसे खबर देती है कि जो तीन महीनेके भीतर ट्रान्सवालके बाहरसे आये, उन्हें स्वेच्छया पंजीयन कराने दिया गया है। अर्थात् समझौतेकी शर्तका पालन हुआ है। जो लोग तीन महीनेकी इस अवधिके बाद आयेंगे उन्हें कानूनके मुताबिक अनिवार्य पंजीयन कराना पड़ेगा।[२]

श्री गांधीका पत्र

इसपर श्री गांधीने जनरल स्मट्सको निम्नानुसार पत्र[३] लिखा:

श्री चैमनेका तार[४] मिलनेपर मैंने आपको तार किया है। मुझे विश्वास है कि मेरे जेलसे लिखे पत्रके[५] आधारपर आप समझ सकेंगे कि जो बाहरसे आता है और जिसे आनेका हक है उसे चाहे जब स्वेच्छया पंजीयन प्राप्त हो सकता है।

श्री चैमनेने जो स्वेच्छया पंजीयन नहीं कराने दिया उसको लेकर लोगोंमें घबराहट पैदा हो गई है। मुझे आशा है कि आप तुरन्त योग्य आज्ञा निकालेंगे और बाहरसे आनेवालोंका स्वेच्छया पंजीयन प्रारम्भ करेंगे।

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २३१–३२।
२. यह उत्तर एशियाई पंजीयकके पाससे आया था।
३. सम्पूर्ण पाठके लिए देखिए "पत्र: श्री स्मट्सको", पृष्ठ २२३।
४. मूल अंग्रेजीमें "टेलीफोन" है।
५. देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ ३९–४१।

जनरल स्मट्सका जवाब

जनरल स्मट्सने इसका निम्नलिखित उत्तर[1] भिजवाया :

आपका पत्र मिला। जनरल स्मट्स कहते हैं कि आप समझौतेका जो अर्थ लगाते हैं वह ठीक नहीं है। इसके बाद आनेवाले भारतीयोंको अनिवार्य पंजीयन कराना चाहिए। इसलिए जनरल स्मट्सको आशा है कि आप अपने प्रभावका उपयोग करके अब आनेवाले भारतीयोंको पंजीयन करानेकी बात समझायेंगे।

श्री गांधीका जवाब

इसके जवाबमें श्री गांधीजीने निम्नानुसार[2] लिखा :

जनरल स्मट्सका प्रत्युत्तर

उत्तर नीचे लिखे अनुसार है :[3]

आपका पत्र मिला। पुर्नविचार करनेपर भी जनरल स्मट्स अपने निर्णयको बदलनेमें असमर्थ हैं।

इस उत्तरको हम भयंकर मानते हैं और इसके कारण हमें अपने साथ धोखा किये जानेका शक होता है। अभी जो दस-बीस भारतीय देशसे आये हैं, उनका स्वेच्छया पंजीयन न किया जाये, तो कोई बात नहीं है। उसके कारण घबरानेकी जरूरत नहीं है। किन्तु भय यह है कि इसकी जड़ कहीं और गहरी न हो। अभी खूनी कानूनका रद होना बाकी है; उसे रद किया जाना चाहिए। यदि वह कानून रद न किया गया, तो परिणाम खराब होगा। हम जिस हालतमें थे, उसीमें बने रहेंगे। श्री गांधीने जनरल स्मट्सको स्पष्ट लिखा था; उसके बदलेमें संक्षिप्त और टका-सा जवाब मिला कि माँग स्वीकार नहीं की जायेगी। कानून रद होगा या नहीं, आदि सब बातें छोड़ दी गई हैं।

कार्टराइटसे मुलाकात

सारे समझौतेमें श्री कार्टराइट मध्यस्थ हैं, इसलिए नुकसानका कोई अन्देशा नहीं है। श्री कार्टराइट विश्वसनीय व्यक्ति हैं, इसलिए ऐसा भरोसा किया जा सकता है कि वे पूरी कोशिश करेंगे। यदि जनरल स्मट्स तब भी न मानें तो क्या होगा, इस प्रश्नका जवाब ट्रान्सवालके भारतीयोंको साहसके साथ देना पड़ेगा। श्री कार्टराइटसे श्री गांधीने मुलाकत की है, और उन दोनोंने[4] जनरल स्मट्ससे मिलना तय किया है। बहुत-कुछ इसके नतीजेपर निर्भर है।

यह समझौता कैसा?

किन्तु यदि यही ठहरे कि सरकारने दगा की है तो फिर प्रश्न किया जा सकता है कि यह समझौता कैसा? फिर भी जो सत्याग्रह संघर्षको जानते हैं, वे प्रश्न नहीं करते।

१. और ३. ये पत्र जनरल स्मट्सके निजी सचिवने लिखे थे।

२. पत्रके पाठके लिए देखिए "पत्र : ई० एफ० सी० लेनको", पृष्ठ २२४-२५।

४. यहाँ मूल स्पष्ट नहीं है कि क्या कार्टराइट भी स्मट्ससे मिलनेवाले थे क्योंकि जब जून ६, १९०८ को गांधीजी जनरल स्मट्ससे मिले तब श्री कार्टराइट उनके साथ नहीं थे। देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २८८।

यदि समझौतेमें एक पक्ष दगा करता है तो फिर संघर्ष करना पड़ता है। इस तरह भारतीय समाजको फिर लड़ना पड़ेगा। फर्क केवल इतना ही है कि हमें तीन महीनेका समय मिल गया है और अब हम अधिक शक्तिसे, अधिक अच्छे तरीकेसे लड़ सकेंगे। मेरी यही मान्यता है। जिस सत्याग्रहसे समझौता हुआ, वही सत्याग्रह समझौतेको पार भी उतार सकेगा।

सत्याग्रहकी कसौटी

यदि यह संघर्ष फिर शुरू हुआ, तो उसमें सत्याग्रहकी कसौटी होगी। वह और भी अधिक चमकेगा और यदि भारतीय समाज दृढ़ रहा, तो ऐसा रंग जमेगा कि दुनिया देखेगी।

जरूरत कायरोंकी नहीं, शूरोंकी है। जान हथेलीपर रखकर लड़ना है। अपना लाभ न देखकर सार्वजनिक लाभ ही देखना चाहिए। हम क्या थे, क्या लाये थे, और क्या ले जायेंगे, ऐसा विचार कर सब-कुछ सत्यके चरणोंमें अर्पित करके म्यानमें रखी हुई तलवारें फिर निकालनी पड़ें, तो मैं बेधड़क होकर कहूँगा कि निकाली जायें। हमें ऐसा सोचना है, समझौतेके दोष नहीं ढूँढ़ने हैं। लोग जब किये हुए करारसे मुकर जाते हैं, तब आपसमें झगड़ा खड़ा हो जाता है, ऐसा ही यहाँ भी समझना चाहिए। धोखेके खिलाफ कोई जमानत नहीं दी जा सकती। लोग धोखा देते हैं, इसलिए विश्वास ही न किया जाये, यह भी नहीं कहा जा सकता।

इसके सिवा जब जेलके दरवाजे खोले गये, उस समय जो-कुछ हुआ, उससे कुछ अधिक होनेकी सम्भावना भी नहीं थी।

यह सारा विचार मैं 'इंडियन ओपिनियन' के पाठकोंके समक्ष इसलिए प्रस्तुत करता हूँ कि सब सावधान हो जायें। कैसी-कैसी मुश्किलें आती हैं, यह भी जान लें और स्वेच्छया पंजीयन करानेका क्या मूल्य है, यह भी समझें। मैं सोचता हूँ कि फिर संघर्ष शुरू नहीं करना पड़ेगा। जनरल स्मट्स अपनी भूल सुधार लेंगे और कानून रद हो जायेगा। किन्तु यदि कानून रद न किया गया, तो हमें तैयार रहना है। ध्यान रहे कि इसकी पहली चेतावनी हमें जनरल स्मट्ससे ही मिली है।

ऊपरका अंश मैंने शनिवारको लिखा था। अगले बुधवार तक जो-कुछ घटेगा मैं उसे भी इसी संवादपत्रमें दे सकनेकी आशा करता हूँ।

[मई २०, १९०८ के पूर्व]

दुःखकी बात

दुःखकी बात इतनी ही है कि देशसे कुछ भारतीय अभी-अभी आये हैं। उन्होंने यह कानून स्वीकार कर लिया है और उसके मुताबिक पंजीयन करा लिया है। ऐसी उतावली नहीं करनी चाहिए थी। यह बड़ी निराशाकी बात है कि इतना जबरदस्त संघर्ष करनेके बाद भी ऐसे भारतीय पड़े हैं जो अपना कर्त्तव्य नहीं समझ पाते।

चेतावनी

किन्तु मुझे आशा है कि अब कोई भी भारतीय पंजीयन कार्यालयमें जाकर कानूनके मुताबिक पंजीयन नहीं करायेगा।

नगरपालिका विधेयक

नगरपालिकाका कच्चा विधेयक 'गजट' में प्रकाशित हुआ है। उस विधेयकके मुताबिक नगरपालिकाको नीचे लिखे अनुसार सत्ता प्राप्त होती है:

१. एशियाइयोंके लिए बस्ती बनाना, और उनके लिए जो जगह आवश्यक समझी जाये उनका वहाँ तबादला करना। यदि ऐसे तबादले हों तो मकानकी क्षतिका मुआवजा देना है।

२. नगरपालिका जो परवाना देती है उसे वैसा परवाना देने अथवा न देनेका अधिकार मिले। यदि वह परवानेको अस्वीकृत कर दे, तो प्रार्थी मजिस्ट्रेटके सामने अपील कर सके। मकान खराब हो अथवा प्रार्थीने पहले [तीन सालके भीतर तीन बार][1] अपराध किया हो, तो उसका परवाना बन्द किया जा सके।

३. फेरीवालोंको परवाना दिया जाये या नहीं, यह केवल नगरपालिकाकी मर्जीपर निर्भर हो और यदि नगरपालिका अस्वीकार कर दे, तो उसके विरुद्ध अपील न हो सके। इसका यह अर्थ हुआ कि फेरीवालोंको नगरपालिकापर निर्भर रहना पड़ेगा।

४. पैदल पटरीपर चलनेकी मनाही करनेकी धारा बनानेकी छूट भी हो।

इसका यह अर्थ हुआ कि यदि ऊपरका विधेयक मंजूर हो गया तो ट्रान्सवालसे भारतीयोंके पाँव उखड़ जायेंगे। संघ इस विषयमें प्रार्थना करेगा। आशा है, अगले सप्ताह प्रार्थनापत्रका अनुवाद दिया जा सकेगा।[2]

ईसप मियाँपर सख्त प्रहार

ब्रिटिश भारतीय संघके प्रमुख श्री ईसप मियाँ रविवारके दोपहरको दो बजे बस्तीमें एक भोजमें जा रहे थे, उस समय पीछेसे किसी एक पठानने उनपर लाठीका सख्त वार किया। जब उन्होंने पीछे देखा तो दूसरी लाठी उनके मुँहपर पड़ी। नाककी हड्डी टूट गई और खूनकी धार बह निकली। श्री ईसप मियाँ चक्कर खाकर गिर पड़े। जब श्री मूसा इब्राहीम पटेल तथा श्री काछलिया उस पठानको पकड़ने बढ़े, तब श्री मूसा इब्राहीमपर भी वार किया गया। इस बीच श्री ईसप मियाँने उठकर हमला करनेवालेको पकड़ लिया। तबतक श्री कामा आ पहुँचे। उन्होंने सीटी बजाई और एक सिपाही आया तथा मारनेवालेको पकड़ लिया गया। दूसरे पठान, जिन्होंने अपनेको छुड़ा लिया था, भाग गये।

श्री ईसप मियाँको बहुत कष्ट था। खून बह रहा था, किन्तु फिर भी वे सीधे पुलिस थानेपर गये और वहाँसे डॉक्टर गिलक्रिस्टके पास गये। डॉक्टर गिलक्रिस्टने पट्टी बाँधी। नाककी हड्डी ठीक बैठा दी गई है। आशा है, हड्डी जुड़ जायेगी। पीठपर भी सख्त चोट आई है और सामनेके दाँत हिल गये हैं। लेकिन दाँत चले ही जायेंगे, ऐसा भय नहीं है। श्री ईसप मियाँने बड़ी बहादुरीसे कष्टको सहन किया है। नाकपर चोट लगनेके कारण चेहरेके ऊपरी भागपर पट्टी बँधी है। मुँह खुला हुआ है, इसलिए थोड़ा-बहुत बोल सकते हैं। इतवारको बहुत-से लोग उनकी तबीयतका हाल जानने गये थे।

हमलेके कारणका समझौतेसे सम्बन्ध जान पड़ता है। श्री ईसप मियाँने समझौतेमें बहुत भाग लिया। कहा जाता है कि इसलिए पठानोंने उन्हें मारनेका निश्चय किया। यह भी

१. विधेयकका मसविदा २३-५-१९०८के **इंडियन ओपिनियन** में देखिये।

२. कदाचित् ऐसा नहीं किया गया।

कहा जाता है कि श्री ईसप मियाँने श्री गांधीपर किये गये हमलेके बारेमें गवाही दी, इस-लिए पठानोंने उसका बदला लेनेका भी निश्चय किया और लिया भी।

यदि ऐसा ही हो तो बड़े दुःखकी बात है। उकसानेवाले जो खास-खास पठान हैं वे स्वयं सामने नहीं आते और दूसरोंको भेज देते हैं। इसे मैं कायरताकी निशानी मानता हूँ। यदि कोई आदमी न्यायकी दृष्टिसे सच्ची गवाही दे, तो उसे मारना नामर्दी कहलायेगी।

मैं आशा करता हूँ कि सभी पठान इसी विचारके नहीं हैं। उनमें से जो लोग चतुर हैं उन्हें चाहिए कि वे उपद्रवी तत्त्वोंको शान्त करें। मैं निर्दोष मनुष्यके ऊपर हाथ उठानेमें बहादुरी नहीं देखता।

पठान लड़नेवाले कहे जाते हैं। वे शरीरसे मजबूत होते हैं। लड़नेवाले मजबूत आदमीका काम निःशस्त्र और कमजोर व्यक्तिको मारना नहीं है, बचाना है। इस बातको समझना कठिन नहीं है। बराबरीवालेसे दो-दो हाथ करनेमें तो कुछ बहादुरी है, किन्तु किसी व्यक्तिको पीछेसे मारना बहादुरी नहीं है, सो तो कोई भी कहेगा।

यदि पठान यही सोचते हों कि वे इस तरह गरीब भारतीयोंको त्रस्त कर सकेंगे, तो यह उनकी भूल है। आज नहीं, तो कल भारतीय समाजका साहस बढ़ जायेगा और वह अपना बचाव करेगा। बचाव दो रीतियोंसे हो सकता है। उत्तमसे उत्तम बचाव तो यही है कि बिलकुल बचाव न किया जाये और हिम्मतसे हमलेको सहन किया जाये। हम सदा यह देखते हैं कि जिसके विरुद्ध हम जोर करते हैं, उसकी ओरसे यदि तनिक भी जोर न लगाया जाये तो हमारा जोर व्यर्थ हो जाता है। हम सब जानते हैं कि हवामें मुक्का मारनेवालेका हाथ झटका खा जाता है। रस्सीको झुकानेमें कोई ताकत नहीं लगानी पड़ती। यदि हम उसे लकड़ी समझकर लकड़ी झुकानेके बराबर जोर लगायें, तो हाथपर कुछ-न-कुछ चोट पहुँचेगी। जो मुझे गाली देता है, यदि मैं उसको उलटकर गाली न दूँ तो वह चुप रह जायेगा; उसका मुँह थक जायेगा। इसी प्रकार मारनेवालेके बारेमें भी समझिए। किन्तु मेरी मान्यता है कि ऐसे विचार और ऐसी सहनशक्ति व्यक्तिमें एकदम नहीं आ सकती। मार खाकर चुप बैठनेके लिए मेरी समझमें अधिक साहस चाहिए।

इसके पहले कि ऐसी शक्ति प्राप्त हो, मनुष्यमें अपना बचाव करनेकी ताकत होना आवश्यक है। लाठी अथवा किसी दूसरे उपायसे बचाव करना सीख लेना मुश्किल नहीं है। मुख्य बात तो निर्भयता है। मारसे भय न मानना और यदि कोई हमें लाठीसे मारे, तो उसे रोकने योग्य लाठी उठानेकी ताकत हममें होनी चाहिए। इसमें बलकी अपेक्षा कलकी अधिक जरूरत है। भारतमें भी हमारी ऐसी ही स्थिति है; हम कायर हो बैठे हैं। कायरताके मारे मार खाकर बैठनेकी हिम्मत नहीं है; और लाठी उठानेसे भी डरते हैं। ये दोनों बातें ठीक नहीं हैं। जबतक इस प्रकारकी कायरता नहीं जाती, तबतक हम साहसी नहीं बन सकते। इसलिए मेरी साग्रह सलाह है कि सच्ची हिम्मत पैदा की जाये; और फिर जो हमले होते हैं उन्हें बिलकुल निडर होकर सहन किया जाये। मारके डरसे अपना कर्त्तव्य करनेमें डरना नहीं चाहिए। किन्तु यदि ऐसा साहस उत्पन्न न हो, तो लाठी पास रखें और अपना बचाव करनेके लिए तैयार रहें।

यह भी सत्याग्रहका एक अंग है। सत्याग्रही मृत्यु तक अपने सत्यको नहीं छोड़ता। यदि हम सत्याग्रही होना चाहते हैं तो हमें जरूरत पड़नेपर सरकार अथवा अपने समाजके

विरोधमें संघर्ष करनेका साहस रखना चाहिए। और साहस तो निर्भयतामें ही है। हर बातमें निर्भय होना चाहिए। हमें शरीर, धन अथवा कीर्तिकी हानिसे भयभीत नहीं होना चाहिए। सब चला जाये, किन्तु सत्य न जाये। ऐसा होना ही निर्भय होना है।

बहुत-से पठान मार-पीटको ठीक नहीं समझते। मैं इस बातको अच्छी तरह जानता हूँ। किन्तु वे सामने नहीं आते, क्योंकि वे मारके डरसे दबे बैठे हैं। यदि ऐसे पठान मेरा यह लेख पढ़ें तो मैं उन्हें सलाह देता हूँ कि वे भी खरी बहादुरी दिखायें और यह जाहिर कर दें कि वे इस बातको पसन्द नहीं करते।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–५–१९०८

१४०. पत्र : एशियाई पंजीयकको

[जोहानिसबर्ग]
मई २१, १९०८

एशियाई पंजीयक
प्रिटोरिया

महोदय,

बाबत : मुहम्मद बालिम —— ई/७५१२

ये कागजात मेरे पास श्री मुहम्मद बालिमने भेजे हैं। देखता हूँ कि आपने १९०७ के कानून २ और १५ की बिनापर मामलेपर विचार करनेसे इनकार कर दिया है। लेकिन क्या मैं आपके समक्ष इस मामलेकी विशेष परिस्थिति रखनेका साहस कर सकता हूँ। श्री मुहम्मद बालिम लगभग १९०५ से ही उपनिवेशमें प्रवेशकी आज्ञा पानेकी कोशिश करते आ रहे हैं। १८८५ के कानून ३ में संशोधन होनेके पहले जिन बहुत ही थोड़े भारतीयोंने अपने निवासका २५ पौंड शुल्क चुकाया था, वे उनमें से एक हैं। ट्रान्सवालमें उन्हें बहुत लोग जानते हैं और वे अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी साक्षी दे सकते हैं। इस परिस्थितिमें, मैं आपसे इस अत्यन्त विशिष्ट मामलेपर पुनर्विचार करनेकी प्रार्थना करता हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५५६१) से।

४१. पत्र : जनरल स्मट्सको

[जोहानिसबर्ग]
मई २१, १९०८

प्रिय श्री स्मट्स,

मुझे मालूम हुआ है कि आप शनिवारको केप टाउन जा रहे हैं। जहाँतक भारतीय समाजका सम्बन्ध है, मैं समझता हूँ, आप स्थितिकी गम्भीरताका अनुभव नहीं करते हैं। आपके इस निर्णयने[1] कि इस मासकी ९ तारीखके बाद प्रामाणिक अनुमतिपत्रोंके साथ उपनिवेशमें प्रवेश करनेवाले भारतीयोंका पंजीयन समझौतेके अन्तर्गत नहीं होगा, भारतीयोंको विक्षुब्ध कर दिया है। मैं मानता हूँ, आप सुन चुके हैं कि संघके अध्यक्षपर पहले ही आक्रमण हो चुका है।[2] निकट भविष्यमें और भी बहुतसे लोगोंपर आक्रमणकी सम्भावना है। मुझे प्रतिदिन रोष-भरे पत्र मिलते हैं, जिनमें लिखा रहता है कि मैंने समझौतेके सम्बन्धमें लोगोंको पूरी तरह गुमराह किया है और कानून किसी तरह भी रद नहीं होगा। क्या उन लोगोंके लिए, जिन्होंने सरकारको सहायता पहुँचाई है, मैं आपसे यह साधारण-सी बात करनेके लिए नहीं कह सकता कि आप तुरन्त घोषणा कर दें कि अधिनियम रद कर दिया जायेगा तथा नये आगन्तुक स्वेच्छया पंजीयन करा सकेंगे?[3]

पठान समाजका सर्वाधिक उग्र स्वभाववाला सदस्य, जो कि इस कार्यवाहीमें पीछे रहा है, लेकिन जिसने आक्रमणोंमें सक्रिय भाग लिया है, आज गिरफ्तार कर लिया गया है। उसपर यह अपराध लगाया गया है कि वह लोगोंको मारपीटके लिए उकसा रहा था। मेरा निश्चित विचार है कि यदि तनिक भी सम्भव हो तो इस व्यक्तिको निष्कासित कर देना चाहिए।[4] मेरे विचारमें वह न्यूनाधिक रूपमें विक्षिप्त है और बहुत-से असन्तुष्ट भारतीय उसे घेरे रहते हैं। अधिनियमको रद कर देनेकी घोषणामें तथा स्वेच्छया पंजीयनको स्वीकार करनेके निर्णयमें देरी करनेसे इन लोगोंके हाथ मजबूत ही हुए हैं। यदि आप अधिनियमके बारेमें विश्वास दिला दें, नये आगन्तुकोंका स्वेच्छया पंजीयन स्वीकार कर लें तथा उक्त कट्टर व्यक्तिको या तो निष्कासित कर दें या उसे प्रवासी पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत निषिद्ध प्रवासी घोषित कर दें तो इससे आप शिष्ट भारतीयोंके मनकी व्यग्रता कम करेंगे। मेरा खयाल है, उक्त व्यक्तिके पास कोई भी कागजपत्र नहीं है।

१. लेनने कहा था कि गांधीजीकी १४ मई के पत्रमें की गई प्रार्थनापर पूरा विचार करनेके बाद, स्मट्स उसको स्वीकार नहीं कर सके। " . . . तीन महीने की जो मीयाद स्वेच्छया पंजीयनके लिए दी गई थी वह गुजर गई। उसके बाद प्रार्थनापत्र अधिनियमके अन्तर्गत ही लिये जा सकते हैं।" देखिए, एस० एन० ४८१५।

२. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २४३ और "ईसप मियाँ", पृष्ठ २४९।

३. जनरल स्मट्सने इसे स्वीकार नहीं किया। देखिए एस० एन० ४८१७।

४. लेनने अपने उत्तरमें (एस० एन० ४८१७) कहा था, "... श्री चैमनेने आपको जो कारण बताये हैं; उन कारणोंसे, उसके साथ आपके सुझावके अनुसार व्यवहार करना सम्भव नहीं है।" उन्होंने यह भी कहा था कि जनरल स्मट्स हृदयसे यह आशा करते हैं कि यदि गांधीजीको अपने लिए खतरा है तो उन्हें तुरन्त पुलिसका संरक्षण प्राप्त करना चाहिए।

मैंने इस पत्रको अत्यन्त व्यक्तिगत बनाकर इसमें अत्यन्त स्पष्टवादितासे काम लेनेका साहस किया है। क्या मैं आपसे प्रार्थना करूँ कि आप भी उसी स्पष्टवादितासे काम लें? अबतक मैं स्वभावतः श्री कार्टराइटसे, जिन्होंने एक मध्यस्थका काम किया है और जो सन्देशोंको इधरसे उधर भेजते रहे हैं, बात करता रहा हूँ; किन्तु स्थितिकी गम्भीरताका तकाजा है कि मैं यह अत्यन्त व्यक्तिगत अपील सीधी आपसे करूँ।

आपका, आदि,

श्री जे० सी० स्मट्स
उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८१६) से।

१४२. पत्र : मगनलाल गांधीको

[जोहानिसबर्ग]
मई २१, १९०८

चि० मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे विषयमें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। मेरा खयाल है कि मुझे अपनी बलि देनी ही होगी। (जनरल) स्मट्स अन्त तक दगा दे सकेंगे, ऐसा मैं नहीं मानता। जो लोग अधीर होकर मेरी जान लेनेके लिए व्याकुल हो रहे हैं, उन्हें इससे अवसर मिल जाता है। यदि ऐसा ही हो जाये तो सन्तोष मानना चाहिए। मैं जिस बातको कल्याणकारी मानता हूँ यदि उसके लिए जान देनी पड़े तो उससे अच्छी मौत कौन-सी हो सकती है?

यदि गोकुलदासकी मौत उचित थी तो फिर मरनेमें उदासीकी क्या बात है? यह संसार नश्वर है। यदि मेरा शरीर छूट जाये तो इसमें आत्मीयोंके चिन्ता करनेकी बात किस तरह शोभनीय है? मरणपर्यन्त मेरे हाथसे कोई अयोग्य काम न बन पड़े बस इतनी इच्छा है। गलतीसे भी वैसा न हो जाये, इसकी सावधानी रखनी चाहिए। मोक्ष पा सकनेकी मेरी स्थिति अभी तो नहीं है; किन्तु मेरा विश्वास है कि आज मेरे विचार जिस पथपर बढ़ रहे हैं यदि उसपर आरूढ़ रहकर मैं शरीर छोड़ूँ तो मेरा पुनर्जन्म ऐसा होगा कि उसके बाद मुझे सद्यःमोक्ष मिल जायेगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महात्मा गांधीना पत्रो, सम्पादक, डाह्याभाई मनोरलाल पटेल, सेवक कार्यालय, अहमदाबाद; १९२१।

१४३. ट्रान्सवाल नगरपालिका एकीकरण अधिनियम

ट्रान्सवाल सरकारने ट्रान्सवालकी नगरपालिकाओंको नियंत्रित करनेवाले एक विधेयकका मसविदा प्रकाशित किया है। जनरल स्मट्सने अभी हाल ही में बुलाई गई एक सभामें किये गये इस वादेको पूरा कर दिया है कि नगरपालिकाओंको एशियाई व्यापारियोंके मामले निपटानेके लिए अधिक सत्ता दी जायेगी। इसका उल्लेख हम अपने पिछले अंकोंमें कर चुके हैं। इस विधेयकमें कुछ खण्ड व्यापारियोंके सम्बन्धमें हैं। एक खण्ड नगरपालिकाओंको गन्दगी, हातोंकी अनुपयुक्तता तथा अन्य ऐसे ही आधारोंपर व्यापारिक परवाने देनेसे इनकार कर देनेका अधिकार देता है। नगरपालिकाओंके फैसलेके विरुद्ध आवासी मजिस्ट्रेटसे अपील की जा सकती है। इस विधेयकका दूसरा खण्ड नगरनिगमोंको, अन्य अधिकारोंके साथ-साथ, फेरीवालोंको परवाने देने-न-देनेका अधिकार प्रदान करता है। परवाने देना या न देना सर्वथा नगरपालिकाओंकी मर्जीपर निर्भर होगा और उनके निर्णयके विरुद्ध किसी प्रकारकी अपील न करने दी जायेगी। प्रथम खण्डके विषयमें बहुत आपत्ति नहीं हो सकती। एशियाइयोंके विरुद्ध जो विद्वेष फैला हुआ है उन्हें उसका परिणाम भुगतना ही पड़ेगा। अलबत्ता वे उसके विरोधमें मजिस्ट्रेटसे अपील कर सकते हैं। परन्तु दूसरा खण्ड, जो एशियाई फेरीवालोंकी एक बड़ी संख्यासे सम्बन्धित है, सर्वथा अन्यायपूर्ण है। समझमें नहीं आता कि इस खण्डके अन्तर्गत जारी होनेवाले परवानोंके सम्बन्धमें मजिस्ट्रेटके सामने अपील क्यों नहीं हो सकती। लॉर्ड एलगिनने उपनिवेश-सचिवका पद ग्रहण करते समय कहा था कि वे एशियाइयोंके वर्तमान अधिकारोंका अपहरण न होने देंगे। किन्तु यदि विधेयकका मसविदा पास कर दिया गया और उसपर सम्राट्की मुहर लग गई तो एशियाइयोंका व्यापार चौपट ही हो जायेगा। याद रखना चाहिए कि ५००० एशियाई फेरीवालों और ५०० एशियाई दूकानदारोंकी जीविका खतरेमें पड़ गई है। एक अन्य खण्डके द्वारा नगरपालिकाओंको एशियाइयोंके लिए बाड़े या बस्तियाँ बनवानेका अधिकार दिया गया है। समय-समयपर इनकी जगह भी वहाँके निवासियोंके द्वारा की गई तामीरका मुआवजा अदा करके बदली जा सकती है। एक अन्य धारा नगरपालिकाओंको पैदल-पटरियोंपर चलनेके सम्बन्धमें भी नियन्त्रण करनेका अधिकार देती है। इस प्रकार यह विधेयक नगरपालिकाओंको तिहरे अधिकार देना चाहता है। परिणाम-स्वरूप एशियाई लोगोंको बस्तियोंमें जाकर बसना होगा, वे पैदल-पटरियोंपर कहीं नहीं चल सकेंगे और अपना व्यापार निर्विघ्न रूपसे नहीं कर पायेंगे। हम भरोसा करते हैं कि पिछले सोलह महीनोंसे काफी अनुभव प्राप्त कर चुकनेके बाद अब सम्राट्की सरकार ट्रान्सवालकी नगरपालिकाओंके हाथोंमें ऐसे अन्धाधुन्ध अधिकार नहीं सौंपेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–५–१९०८

१४४. ईसप मियाँ

श्री ईसप मियाँपर जो क्रूर हमला हुआ है उससे समस्त आफ्रिकाका भारतीय समाज थर्रा जायेगा। इस हमलेका कारण ढूँढ़ने बैठें तो कुछ भी नहीं है। मारपीट करनेवाला व्यक्ति स्वयं तो बिलकुल अपढ़ जान पड़ता है। इस मारपीटसे भारतीय समाजको लांछन लगता है। उससे प्रकट होता है कि हम राजनीति भली-भाँति नहीं समझते। मारपीटके जरिये वैर निकालना तो जंगलीपनका सूचक है।

हम श्री ईसप मियाँके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। उन्होंने जातिकी बहुत बड़ी सेवा की है; अब मारको सहन करके उन्होंने अपनी उस सेवामें वृद्धि की है। इस घटनासे आश्चर्य नहीं होता; हम अभी सीख रहे हैं। जातिकी खातिर — सत्यकी खातिर — मार खाना सीखनेकी आवश्यकता है। उसके लिए मरना भी आना चाहिए। समाजमें हत्याएँ भी होंगी। यह सब हुए बिना उसमें तेज उत्पन्न न होगा। उसके बिना समाजका उत्थान न होगा। रक्तकी गाँठ मजबूत होती है। सत्यकी खातिर मरनेवाला व्यक्ति मरते हुए भी सेवा करना नहीं छोड़ता; हमारा दृढ़ विश्वास है कि उसकी आत्मा मृत्युके बाद भी सेवा करती है। इन विचारोंका अनुसरण करते हुए हम श्री ईसप मियाँको उनकी वीरतापर बधाई देते हैं।

पठानोंमें अभीतक नासमझी चल रही है। हम उनको बताते हैं कि अब तो उन्होंने अति कर दी है। यह नासमझी अधिक न चले तो अच्छा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–५–१९०८

१४५. सर्वोदय [२]

सत्यकी जड़ें

लौकिक शास्त्रके नियम गलत हैं ऐसा कहनेका कोई कारण नहीं है [बशर्ते कि उसके आधारभूत सिद्धान्त मान लिये जायें]। व्यायाम-शिक्षक यदि सोचे कि मनुष्यके शरीरमें केवल मांस-ही-मांस है, अस्थि-पंजर नहीं है और फिर नियम बनाये तो उसके नियम सही भले ही हों, किन्तु वे अस्थि-पंजरवाले मनुष्यपर लागू नहीं होंगे। उसी प्रकार लौकिक शास्त्रके नियम सही होनेपर भी, भावनाशील व्यक्तिपर लागू नहीं हो सकते। कोई व्यायाम-विशारद यदि ऐसा कहे कि मनुष्यके मांसको अलग निकालकर उसकी गेंद बनाई जाये, उसको लम्बा करके उसकी डोरी बनाई जाये और फिर ऐसा भी कहे कि (अब) यदि उसमें अस्थि-पंजर डाला जाये तो कितनी अड़चन पैदा होगी! हम ऐसा कहनेवालेको मूर्ख कहेंगे, क्योंकि अस्थि-पंजरको मांससे अलग करके व्यायामके नियम नहीं गढ़े जा सकते। इसी प्रकार लौकिक शास्त्रके नियम मनुष्यकी भावनाको अलग रखकर रचे जायें तो वे मनुष्यके

उपयोगके नहीं हो सकते। तथापि आजके लौकिक व्यवहार चलानेवाले शास्त्री[1] उपर्युक्त व्यायाम-विशारदके जैसा ही करते हैं। उनके हिसाबसे मनुष्य केवल शरीर — यन्त्र — मात्र है और वे ऐसा मानकर नियम बनाते हैं। उसमें जीव है, सो वे जानते हैं; फिर भी उसकी गिनती नहीं करते। ऐसा शास्त्र, ऐसे मनुष्यपर भला कैसे लागू हो सकता है, जिसमें जीव, आत्मा या रूह प्रधान है?

अर्थशास्त्र कोई शास्त्र नहीं है। जब हड़तालें होती हैं तब वह बेकार साबित होता है, यह हम स्पष्ट रूपसे देख सकते हैं। वैसे अवसरोंपर मालिक एक तरहसे सोचते हैं और मजदूर दूसरी तरहसे। लेन-देनका एक भी नियम लागू नहीं किया जा सकता। लोग माथा-पच्ची करके यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मालिक और मजदूरके स्वार्थकी दिशा एक ही है। [लेकिन] वे इस विषयमें कुछ नहीं समझते। हकीकत यह है कि एक-दूसरेका, दुनियादारीका, रुपये-पैसेका स्वार्थ एक ही न होते हुए भी लोगोंको आपसमें विरोधी बनने या वैसे बने रहनेकी जरूरत नहीं है। किसी घरमें भुखमरी हो, और यदि उस घरमें माँ और उसके बच्चे हों, उनके पास रोटीका एक टुकड़ा ही हो, और दोनोंको भूख लगी हो, तो इसमें माँ और बच्चोंका स्वार्थ परस्पर प्रतिकूल है। माँ खाती है तो बच्चे भूखों मरते हैं और बच्चे खाते हैं तो माँ भूखी रह जाती है। फिर भी माँ और बच्चोंमें कोई अन्तर नहीं है। माँ अधिक ताकतवर है इसलिए ऐसा नहीं होता कि वह रोटीका टुकड़ा खुद खा ले। इसी प्रकार मनुष्योंके पारस्परिक सम्बन्धोंके बारेमें भी समझना चाहिए।

यदि ऐसा मान लें कि मनुष्यों और पशुओंमें कोई अन्तर नहीं है, हमें पशुओंकी तरह अपने स्वार्थके[2] लिए लड़ना ही चाहिए तो भी हम नियमके तौरपर ऐसा नहीं कह सकते कि मालिक और मजदूरमें सदा विरोध रहेगा या सदा विरोध नहीं रहेगा। स्थितिके अनुसार उस मनोवृत्तिमें अन्तर पड़ता रहता है। जैसे, काम अच्छा होना चाहिए और मजदूरी पूरी मिलनी चाहिए — इसमें तो दोनोंका स्वार्थ है। किन्तु लाभके भागकी जाँच करनेपर सम्भव है एक मुनाफेमें रहा हो और दूसरा घाटेमें। इतनी कम मजदूरी देनेसे कि नौकर बीमार और कमजोर हो जाये, मालिकका स्वार्थ नहीं सधता और यदि कारखाना ठीक ढंगसे न चल पा रहा हो और फिर भी नौकर अधिक मजदूरी माँगे तो इससे नौकरका स्वार्थ नहीं सधता। यदि मालिकके पास यन्त्रके पहिये दुरुस्त करवानेके लिए पैसे न हों तो नौकरका पूरा या कुछ भी वेतन माँगना स्पष्ट रूपसे अनुचित माना जायेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेन-देनके नियमोंके आधारपर यह शास्त्र लागू नहीं किया जा सकता। ईश्वरीय नियम ही ऐसा है कि आर्थिक हानि-लाभके नियमोंके द्वारा मनुष्यका व्यवहार संचालित नहीं होना चाहिए। उस व्यवहारका आधार तो न्यायके नियमोंपर है। अर्थात् मनुष्यको हवाका रुख देखकर नीतिसे अथवा अनीतिसे अपना काम निकालनेका विचार एकदम छोड़ देना चाहिए। अमुक रीतिसे चलनेपर आखिरमें क्या होगा, सो कोई सदा नहीं कह सकता। किन्तु इतना तो हम प्रायः सदा ही जान सकते हैं कि अमुक कार्य न्यायपूर्ण है अथवा अन्यायपूर्ण। फिर, हम यह भी कह सकते हैं कि नीतिके मार्गपर चलनेका परिणाम अच्छा ही होना चाहिए। यह परिणाम क्या होगा और कैसे निकलेगा, सो हम नहीं बतला सकते।

१. अर्थात् 'अर्थशास्त्री'।
२. मूलमें "सर्वसामान्य स्वार्थ" है।

नीति-न्यायके नियमोंमें पारस्परिक भावनाका समावेश हो जाता है और उस भावना-पर मालिक-नौकरके सम्बन्ध निर्भर रहा करते हैं। कल्पना कीजिए कि मालिक अपने नौकरोंसे यथासम्भव अधिक काम लेना चाहता है, अपने नौकरोंको एक घड़ीका अवकाश नहीं देता, उन्हें कम वेतन देता है और उन्हें दरबों जैसे घरोंमें रखता है। संक्षेपमें, नौकर अपनी देह और जीवको साथ रख सके इतना ही वेतन (मालिक) उसे देता है। कोई कहेगा कि ऐसा करनेमें मालिक अन्याय नहीं करता। नौकरने अमुक वेतनपर अपना पूरा समय मालिकको दिया है और वह उसे लेता है। कितना कठिन काम लिया जाये, इस बातका निर्णय मालिक दूसरोंका काम देखकर करता है। यदि नौकरको अन्यत्र अधिक अच्छा वेतन मिलता हो, तो उसे दूसरी नौकरी कर लेनेकी स्वतन्त्रता है। लेन-देनके नियम बनानेवाले इसे अर्थशास्त्र कहते हैं। वे यह भी कहते हैं कि इस तरह कमसे-कम पैसेमें ज्यादासे-ज्यादा काम निकालनेमें मालिकका लाभ है, इसलिए अन्ततोगत्वा पूरी कौमका लाभ है और इसलिए नौकरोंका भी है।

परन्तु विचार करनेपर ज्ञात होगा कि यह बात ठीक नहीं है। यदि नौकर यन्त्र या मशीन होता और उसे चलानेके लिए केवल अमुक प्रकारकी शक्तिका ही उपयोग किया जाता तब तो इस प्रकारका हिसाब लागू होता। लेकिन यहाँ नौकरको चलानेवाली शक्ति उसकी आत्मा है और आत्माका बल अर्थ-शास्त्रियोंके सभी नियमोंको उलट दिया करता है और गलत साबित करता है। मनुष्य-रूपी यन्त्रमें पैसा-रूपी कोयला डालनेसे अधिकसे-अधिक काम लिया जाना सम्भव नहीं। बढ़िया काम तो उसके द्वारा तभी होगा जब उसकी भावनाको जागृत किया जाये। मालिक-नौकरके बीचका गठ-बन्धन पैसेका नहीं, प्रीतिका होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–५–१९०८

१४६. पत्र : एम० चैमनेको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मई २३, १९०८

[श्री एम० चैमने
एशियाई पंजीयक
प्रिटोरिया]

महोदय,

मुझे नाबालिगोंके प्रवेशके सम्बन्धमें आपका इसी २२ तारीखका पत्र सं० ई० २६९८/७ प्राप्त हुआ। यदि आप कृपा करके उन लोगोंके नाम बता दें जो नाबालिगोंको लाये हैं, तो मेरा संघ सावधानीसे जाँच करेगा और सरकारको अधिकसे-अधिक सहायता देगा। किन्तु मैं विनयपूर्वक निवेदन करना चाहता हूँ कि जहाँतक ब्रिटिश भारतीय समाज और एशियाई अधिनियमका, जिसका हवाला आपने दिया है, सम्बन्ध है, सरकार और ब्रिटिश भारतीय

१. यह "पुनः पंजीयन अधिनियम : त्वरित खण्डन" शीर्षकसे **इंडियन ओपिनियन**में प्रकाशित हुआ था। इसका मसविदा कदाचित् गांधीजीका बनाया हुआ था।

समाजके बीच समझौतेका वह भाग जो ब्रिटिश भारतीय समाजपर लागू होता था, कार्यान्वित कर दिया गया है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए यह कानून रद माना जा रहा है; और यदि इसे लागू किया जायेगा तो ब्रिटिश भारतीय समाज इस कार्यको समझौता तोड़ना समझेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि जिन नाबालिग एशियाइयोंको देशमें आनेका कोई भी अधिकार नहीं है, उनके प्रवेशको मेरा समाज प्रोत्साहित करना चाहता है। मेरे संघका आदरपूर्वक केवल इतना ही निवेदन है कि १९०७ का अधिनियम २ ब्रिटिश भारतीय समाजपर लागू नहीं हो सकता। आपके पत्रमें जिस प्रकारके प्रयत्नोंका उल्लेख है, उस प्रकारके प्रयत्नोंपर तो कोई सर्वसामान्य नया अधिनियम लागू होना चाहिए।

[ईसप इस्माइल मियाँ]
अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ३०-५-१९०८

१४७. पत्र : उपनिवेश सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
मई २६, १९०८

परममाननीय उपनिवेश सचिव
प्रिटोरिया
महोदय,

श्री गांधीने मुझे अभी बताया है कि सरकारका इरादा स्वेच्छया पंजीयनको एशियाई कानूनके अन्तर्गत लानेका है। जब श्री गांधीने आपसे मुलाकात करनेके बाद समझौतेके बारेमें बताया था, तब उन्होंने बिलकुल दूसरी ही बात कही थी। उन्होंने एक बड़ी सभामें साफ-साफ कहा था कि यदि भारतीय कौम स्वेच्छया पंजीयन करायेगी तो वह कानून रद हो जायेगा। अब श्री गांधीने जो खबर दी है, उससे भारतीय समाजको दुःख और आश्चर्य हुआ है। आपके साथ श्री गांधीका जो पत्र-व्यवहार हुआ है, उससे भी श्री गांधीकी बात प्रमाणित होती है।

इस बारेमें सरकारसे मुझे यह कह देना चाहिए कि अपने ऊपर जोखिम उठाकर भारतीय समाजने पिछले तीन महीनोंमें सरकारकी बड़ी मदद की है। इसलिए मेरे संघको कमसे-कम इतना माननेका हक था कि सरकार अपनी बात पूरी तरह निभायेगी। किन्तु श्री गांधीके कहनेके मुताबिक तो आपका इरादा एशियाई अधिनियमको बनाये रखनेका जान पड़ता है।

अतएव मेरे संघका कर्त्तव्य है कि तीन महीने पहले जो स्थिति थी, उसे फिर शुरू किया जाये। भारतीय कौमको इसीलिए यह सलाह दी गई है कि वह स्वेच्छया पंजीयनके लिए दिये गये प्रार्थनापत्रोंको वापस ले ले और श्री चैमनेको जो दस्तावेज दिये गये हैं वे भी वापस ले लिये जायें। स्वेच्छया पंजीयन करानेकी बातमें तो कौमका केवल सौजन्य था

और वह समाजकी सच्चाई जाहिर करनेके लिए किया गया था। जो सलाह दी गई है उसके सिवाय कुछ और करना सम्भव नहीं है, क्योंकि समाज उस कानूनको न माननेके लिए शपथ-बद्ध है।

अन्तमें मुझे यह कहना चाहिए कि जो वचन श्री गांधी और उनके साथ हस्ताक्षर करनेवालोंकी मारफत सरकारने दिया था, उसे तोड़ना बड़े दुःखकी बात है और उससे एशियाई समाजकी शंकाएँ बढ़ेंगी। मैं ऐसा मानता हूँ कि मैं स्वयं इस देशका निवासी हूँ, इसलिए इस बातसे मुझे बड़ा दुःख होता है कि जो सत्ताधारी हैं और जो इस देशके ऊपर मेरे नामपर राज्य चलाते हैं, उन्हें अपने वचनोंकी परवाह नहीं है।

आपका आज्ञाकारी सेवक
ईसप इस्माइल मियाँ
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ३०–५–१९०८

१४८. पत्र: एम० चैमनेको

पो० ऑ० बॉक्स ४७३६
जोहानिसबर्ग
मई २६, १९०८

श्री एम० चैमने
उपनिवेश कार्यालय
प्रिटोरिया

प्रिय महोदय,

औपचारिक रूपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि मैं स्वेच्छया पंजीयनके लिए दिये गये अपने प्रार्थनापत्र तथा तत्सम्बन्धी अन्य कागजात, जो मैंने आपको दिये थे, वापस चाहता हूँ। उसके कारण निम्नलिखित हैं:

अभी-अभी मुझे पता चला है कि सरकारका निश्चित रूपसे यह इरादा है कि स्वेच्छया पंजीयनको एशियाई कानूनके अन्तर्गत कानून-सम्मत कर दिया जाये और यह कानून ऐसे एशियाईयोंपर हर प्रकारसे लागू किया जाये। इसे मैं सरकार तथा ट्रान्सवालकी एशियाई जातियोंके बीच किये गये समझौतेका साफ-साफ उल्लंघन समझता हूँ।

जनरल स्मट्सने उस मुलाकातके अवसरपर, जिसमें आप उपस्थित थे, मुझसे कहा था कि यदि एशियाई जातियाँ उक्त समझौतेका पालन करेंगी तो वे उस कानूनको रद कर देंगे। जैसा कि आप जानते हैं, यह बात उन्होंने गत १ फरवरीको लिखे मेरे उस पत्रके[1] उत्तरमें कही थी जिसमें मैंने इस सम्बन्धमें निश्चित आश्वासन दिया जानेकी माँग की थी। मेरा दावा है कि एशियाइयोंने समझौतेसे सम्बन्धित अपने दायित्वका पूर्ण रूपसे ही नहीं, बल्कि उससे आगे बढ़कर, पालन किया है। अतएव, उस कानूनको रद करनेका अपना इरादा

१. देखिए "पत्र: जनरल स्मट्सको", पृष्ठ ४९-५१।

घोषित करना सरकारका कर्त्तव्य था। और फिर, जनरल स्मट्स द्वारा स्वीकृत किया गया पत्र साफ तौरसे प्रकट करता है कि वह कानून उन लोगोंपर कदापि लागू नहीं किया जानेवाला था, जिन्होंने स्वेच्छया पंजीयन कराया हो। पत्रका जो मसविदा कैदियोंके हाथमें रखा गया था, उसमें ये शब्द थे: "जो लोग इस प्रकार पंजीयन करा लेंगे उन सबपर कानूनमें वर्णित दण्ड लागू न किया जायेगा।"[1] मैं क्या कर रहा हूँ इसे जानते हुए मैंने विचारपूर्वक "में वर्णित दण्ड" शब्द निकाल दिये थे। यह इसलिए किया था कि अगर एशियाई लोगोंका एक बहुत बड़ा भाग समझौतेको न भी माने, तो भी जो उसे मान लेंगे वे बहरहाल उससे[2] सर्वथा मुक्त रह सकें। अतएव, इस अधिनियमके अन्तर्गत स्वेच्छासे करवाये गये पंजीयनको कानूनी जामा पहनानेका प्रस्ताव करनेमें जनरल स्मट्स न केवल उस वचनको, जो उन्होंने मुझे दिया था, भंग करते हैं, बल्कि वे उपर्युक्त पत्रकी स्वीकृतिसे भी इनकार करते हैं।

जो अधिवासी एशियाई एशियासे अभी लौट रहे हैं, सरकारका उनके स्वेच्छया पंजीयनको स्वीकार न करनेका निर्णय भी, मेरी रायमें, उसके शब्दोंका नहीं तो उसके आशयका उल्लंघन है। इस दुर्भाग्यपूर्ण निर्णयसे प्रकट होता है कि जनरल महोदय गत संघर्षके तत्त्वको — और यह संघर्ष पुनः छेड़ा जानेवाला है — समझनेमें बिलकुल असफल रहे हैं। उस संघर्षका उद्देश्य व्यक्तिगत अधिकारोंको प्राप्त करना नहीं, बल्कि एशियाइयोंके जातीय स्वत्वों और स्वाभिमानको जताना और सुरक्षित करना था।

ऐसी परिस्थितिमें, मेरे लिए, मेरे द्वारा अपनाये हुए मार्गके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह गया है। एक राजभक्त नागरिकके रूपमें इस एशियाई अधिनियमके आगे सिर न झुकानेके परिणामस्वरूप जो भी दण्ड मुझे मिलेगा, मैं उसके लिए पुनः तैयार हूँ। वह समझौता मेरे अथवा मेरे सहयोगियों द्वारा व्यक्तिगत कठिनाइयोंसे बच निकलनेके लिए नहीं, बल्कि यह दिखानेके लिए स्वीकार किया गया था कि हमारा संघर्ष दुराग्रहपूर्ण नहीं है। मैं अपने साथी एशियाइयोंसे यही निवेदन करनेवाला हूँ कि वे मेरे द्वारा अख्तियार किये गये मार्गका ही अनुसरण करें।

मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि आप परिस्थितिकी गम्भीरताको समझेंगे और मेरी प्रार्थनाको शुक्रवार तक या उससे पूर्व स्वीकार कर लेंगे।[3] यदि आप चाहते हों तो इससे मेरे पत्रके सम्बन्धमें आपको जनरल स्मट्ससे तार द्वारा परामर्श करनेका समय भी प्राप्त हो जाता है। आपको वे दस्तावेज — जिनमें वह प्रार्थनापत्र भी था — रियायती तौरपर दिये गये थे, न कि किसी कानूनके अन्तर्गत। मुझे विश्वास है, आप यह समझ लेंगे कि आपको उन कागजोंको अपने पास रखे रहनेका कोई कानूनी हक नहीं है।

आपका विश्वस्त,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०–५–१९०८

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको" पृष्ठ ३९-४१।

२. अर्थात् १९०७के अधिनियम २ से।

३. श्री चैमनेने इस पत्रका उत्तर तुरन्त नहीं दिया। तब गांधीजीने अपने पंजीयन-सम्बन्धी कागजोंके तुरन्त वापस किये जानेकी माँग करते हुए उन्हें तार भेजा। परन्तु यह तार अप्राप्य है। देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २८८-९१।

१४९. पत्र : एम० चैमनेको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मई २६, १९०८

श्री एम० चैमने
उपनिवेश कार्यालय
प्रिटोरिया

प्रिय महोदय,

श्री गांधीने मुझे सूचित किया है कि सरकार स्वेच्छया पंजीयनको एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत वैध बनाना और उस अधिनियमको स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंपर पूरी तरह लागू करना चाहती है। इसमें केवल अपवाद यह होगा कि उसका अबतक पालन न करनेके कारण वे दण्डके पात्र न होंगे।

श्री गांधीने मुझे और मेरे संघको समझौतेका ऐसा अर्थ नहीं समझाया था। उन्होंने गत ३० जनवरी, गुरुवारकी रातको और गत ३ फरवरीको जनरल स्मट्सके पाससे लौटकर भारतीयोंकी एक विशाल सभामें जोर देकर यह आश्वासन दिया था कि यदि एशियाई समाज स्वेच्छया पंजीयन करानेसे सम्बन्धित समझौतेकी अपनी जिम्मेदारी पूरी करेगा तो एशियाई अधिनियम रद कर दिया जायेगा।[2] मैं स्वयं किसी भी अन्य आधारपर समझौता स्वीकार न करता; और एशियाई अधिनियमके सामने झुकनेके आधारपर तो कदापि नहीं। मैं समझौतेसे पहले इस अधिनियमको न माननेकी गम्भीर शपथसे वैसा ही बँधा था जैसा अब बँधा हूँ। मुझे यहाँ इसके कारण बतानेकी आवश्यकता नहीं है। केवल एक कारण बताना चाहता हूँ कि यदि कभी मैं उस अधिनियमको, जो तुर्कीके मुसलमानोंका अकारण अपमान करता है, मान लेता तो मैं हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्षके पदपर बने रहनेके सर्वथा अयोग्य होता।

इसलिए मैं आपसे यह प्रार्थना करनेपर मजबूर हूँ कि आप कृपा करके मेरे द्वारा भरा गया स्वेच्छया पंजीयनका प्रार्थनापत्र और अन्य कागजात, जो आपके पास हों, लौटा दें। मैंने आपके नाम श्री गांधीका पत्र[2] पढ़ा है और मैं उसमें लिखी बातोंसे पूर्णतः सहमत हूँ। यदि सरकारने कभी एशियाई समाजसे किये गये समझौतेका पालन, शब्दार्थ और भावार्थ, दोनोंकी दृष्टिसे किया तो मैं उन कागजोंको खुशीसे लौटा दूँगा।

तबतक मैं उनको अपने पास रखना चाहता हूँ।

आपका विश्वस्त,
इमाम अ० का० बावजीर
अध्यक्ष
हमीदिया इस्लामिया अंजुमन

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ३०–५–१९०८

१. इस पत्रका और विनकी ओरसे लिखे गये अगले पत्रोंका मसविदा कदाचित् गांधीजीने बनाया था।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

१५०. पत्र : एम० चैमनेको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मई २६, १९०८

श्री एम० चैमने
उपनिवेश कार्यालय
प्रिटोरिया

प्रिय महोदय,

मुझे श्री गांधीसे मालूम हुआ है कि सरकार उस समझौतेको, जो एशियाई समुदायोंके साथ किया गया है, पूरा नहीं करना चाहती। मैंने श्री गांधी और श्री नायडूके साथ जिस पत्रपर हस्ताक्षर किये हैं उसके तथ्य मुझे पूरी तरह ज्ञात हैं। यह भली-भाँति समझाकर बताया गया था कि जो स्वेच्छया पंजीयन करा लेंगे, उनपर अधिनियम कभी लागू नहीं किया जायेगा। हमने समझौतेको स्वीकार किया, इसका एकमात्र कारण एशियाई अधिनियमको रद करवाना था, और मुझे एवं मेरे साथी कैदियोंको इसका विश्वास था; क्योंकि मैं जिस समाजका सदस्य हूँ उसकी सचाईपर मुझे भरोसा था और इसलिए यह विश्वास भी था कि लोग स्वेच्छया पंजीयनको प्रसन्नतासे स्वीकार कर लेंगे।

अब मुझे आपसे यह प्रार्थना करनी है कि आप कृपा करके मेरा स्वेच्छया पंजीयन प्रार्थना-पत्र और अन्य कागजात, जो आपके पास हैं, लौटा दें। और यदि कभी सरकार उस समझौतेको पूरा करना चाहेगी, जो उसने जनरल स्मट्सकी मारफत एशियाई समुदायोंसे किया है, तो मैं इन कागजोंको प्रसन्नतापूर्वक लौटा दूंगा। मैंने वह पत्र पढ़ा है जो श्री गांधीने आपको भेजा है और मैं उसमें व्यक्त की गई भावनाओंसे पूर्णतः सहमत हूँ।

आपका विश्वस्त,
लिअंग क्विन
अध्यक्ष
ट्रान्सवाल चीनी संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-५-१९०८

1. हूबहू ऐसा ही एक पत्र उसी दिन श्री नायडूकी ओरसे श्री चैमनेको भेजा गया था। अनुमान है, इस पत्रका मसविदा भी गांधीजीने ही बनाया था।

१५१. रोडेशियाके भारतीय

रोडेशियाके श्री शकूर इस्माइलका जो पत्र[1] हमने गत सप्ताह छापा था उसपर पाठकोंको विचार करना चाहिए। रोडेशियामें सरकार ट्रान्सवालके समान कानून बनाना चाहती है। यदि ऐसा हो तो यह बहुत भयंकर बात होगी। वहाँके भारतीयोंको लड़ाई लड़नी पड़ेगी। यदि लड़ाई लड़नी पड़े तो वहाँके भारतीय दूसरोंसे जो सहायता माँगते हैं वह उचित ही है। और हमें विश्वास है कि यदि वे सत्याग्रहकी लड़ाई लड़ेंगे तो उनको भी चारों ओरसे सहायता मिल सकती है। हमें आशा है कि उनको इस हद तक न जाना पड़ेगा।

किन्तु नया कानून बने या न बने, उनको जिन बाधाओंका सामना करना पड़ता है वे विचार करने योग्य हैं। कोई व्यक्ति शिक्षित हो, किन्तु नौकरी न करता हो तो उसे प्रविष्ट नहीं होने दिया जाता। यदि नौकरी बताई जाये तो यह बहाना कर दिया जाता है कि वह ठीक नहीं है। इस प्रकार भारतीयोंको वर्तमान कानूनका जो लाभ मिलना चाहिए वह भी नहीं दिया जाता। इसके विरुद्ध कानूनके अनुसार लड़ाई की जा सकती है। उस लड़ाईको लड़नेके लिए उन्हें रोडेशियामें किसी अच्छे वकीलकी सहायता लेनी चाहिए।

व्यापारिक परवानोंके मिलनेमें भी बाधाएँ जान पड़ती हैं। यह तो याद रखना ही होगा कि भारतीय इस समय किसी भी उपनिवेशमें अधिक संख्यामें प्रविष्ट नहीं हो सकते। परवाने भी खुले हाथों नहीं दिये जायेंगे। हाँ, आखिर भारतीय सब उपनिवेशोंमें जा सकेंगे और व्यापार भी कर सकेंगे। यह बात कितनी जल्दी होगी, यह उन भारतीयोंपर निर्भर है जो इस समय प्रवास कर रहे हैं। इसके लिए जरूरी है कि भारतीय अपनी साख बनाये रखें। उन्हें सफाई आदिके नियमोंका पालन करना चाहिए; और ऐसा मानकर कि वे स्वतन्त्र हैं, जहाँ नामर्दीकी बात आये वहाँ उसे हरगिज स्वीकार न करना चाहिए। 'फ्री हिन्दुस्तान' नामका एक पत्र प्रकाशित हुआ है। हम उससे कुछ अनुवाद[2] दे रहे हैं। वह इस प्रसंगमें देखने योग्य है। जिस प्रकार यहाँ हमारे सम्मुख बाधाएँ आती हैं, वैसी ही, जान पड़ता है,

१. ब्रिटिश भारतीय संघको लिखित अपने पत्रमें शकूर इस्माइलने, जो रोडेशियाके भारतीय संघके अध्यक्ष थे, सहायताकी माँग की थी। पत्रमें दक्षिण रोडेशियाके भारतीयोंकी इन निर्योग्यताओंका उल्लेख था: (१) यद्यपि आव्रजन नियम उन शिक्षित भारतीयोंको, जो अपनी नौकरीका सन्तोषजनक प्रमाण दे सकते हैं, उपनिवेशमें प्रवेश करनेका अधिकार देते हैं, व्यवहारमें होता यह है कि उनकी उक्त नौकरीको असन्तोषप्रद ठहराकर उनका वह अधिकार उनसे छीन लिया जाता है। (२) जो लोग रोडेशियामें रह रहे हैं या जो अस्थायी अनुपस्थितिके बाद वहाँ वापस आना चाहते हैं उनके अधिकारोंकी सुरक्षाकी कोई कानूनी व्यवस्था नहीं है। इस सम्बन्धमें भारतीयोंका एक प्रतिनिधि मण्डल सैलिसबरीके प्रशासक (ऐडमिनिस्ट्रेटर) से मिला था, किन्तु राहत पानेका उसका प्रयत्न निष्फल रहा। एक अध्यादेशका मसविदा, जिसका उद्देश्य एशियाई आव्रजनको नियन्त्रित करना था और जो ट्रान्सवालके तत्सम्बन्धी कानूनसे बहुत मिलता-जुलता था, **गजटमें** प्रकाशित किया गया था। इसी समय, सामान्य विक्रेताओं और फेरीवालोंके व्यापारका नियन्त्रण करनेके लिए एक दूसरा अध्यादेश भी प्रकाशित किया गया था। इससे परवाने देनेका अधिकार नगरपालिकाओं और स्वास्थ्य-निकायों (सैनिटरी बोर्डों) को दे दिया गया था। परवाने केवल उन्हें ही दिये जा सकते थे जिनके पास पंजीयन अध्यादेशके अन्तर्गत प्रमाणपत्र हों।

२. यह यहाँ नहीं दिया गया।

कैनडाके भारतीयोंके सम्मुख भी आती हैं। कैनडामें भारतीय ज्यादातर पंजाबसे जाकर बसे हैं। उन्होंने अपने कष्टोंके निवारणार्थ अभी हालमें ही यह अखबार निकाला है। उनके लेख साहससे पूर्ण दिखाई देते हैं।

इस प्रकार पृथ्वीके विभिन्न भागोंमें भारतीयोंमें जागृति दिखाई देती है। उनमें एकता, सच्चा साहस और सत्य आयेगा तो उन्हें स्वभावतः जीत मिलेगी। उतावली करनेसे आम नहीं पकते।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, ३०–५–१९०८

१५२. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सत्याग्रहके संघर्षका श्रीगणेश

मैं पिछले हफ्ते लिख चुका हूँ कि कदाचित् जनरल स्मट्स दगा देंगे। अब दगा तो प्रमाणित हो गई है। यह पक्की तरह मालूम हो गया है कि उनका इरादा खूनी कानून रद करनेका नहीं है। अभी यह समाचार सरकारने जाहिर नहीं किया है, किन्तु भारतीय समाजमें खबर फैल चुकी है और सब लोगोंको जोश आ गया है। जान पड़ता है कि संघर्षका प्रारम्भ बहुत अच्छी तरह हुआ है और अब स्वेच्छया तथा अनिवार्य पंजीयनके अन्तरकी सारी जानकारी हमें निश्चय ही आसानीसे हो जायेगी। श्री ईसप मियाँने सरकारको नीचे लिखे अनुसार पत्र[१] दिया है:

चैमनेके नाम गांधीका पत्र

श्री गांधीने निम्नलिखित पत्र श्री चैमनेको लिखा है:[२]

इमाम अब्दुल कादिरका पत्र

श्री इमाम अब्दुल कादिर बावजीरने श्री चैमनेको निम्नलिखित पत्र भेजा है:[३]

> श्री गांधीने खबर दी है कि सरकारका विचार स्वेच्छया पंजीयनको एशियाई कानूनके अन्तर्गत लेनेका है। श्री गांधीने जब समझौतेकी बात की थी तब साफ कह दिया था कि यदि भारतीय कौम स्वेच्छया पंजीयन करायेगी तो सरकार कानून रद कर देगी। अब यदि कानून रद नहीं होता, तो मैं उसे नहीं मान सकूँगा। जिस कानूनका विरोध करनेके लिए मैंने शपथ ली है और जो कानून तुर्कीके मुसलमानोंका अपमान करता है, यदि उस कानूनको मानूँ तो मैं जिस पदपर बैठा हूँ उस पदके योग्य नहीं माना जा सकता। इसलिए मेरा प्रार्थनापत्र तथा मेरे कागजात मुझे तुरन्त वापस भेज दीजिए। मैंने श्री गांधी द्वारा लिखा हुआ पत्र[४] भी पढ़ा है और मैं उसमें व्यक्त विचारोंसे पूरी तरह सहमत हूँ।

१. मूल अंग्रेजी पत्रके अनुवादके लिए देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ २५२-५३।
२. मूल अंग्रेजी पत्रके अनुवादके लिए देखिए "पत्र: एम० चैमनेको", पृष्ठ २५३-५४।
३. देखिए "पत्र: एम० चैमनेको", पृष्ठ २५५।
४. देखिए "पत्र: एम० चैमनेको", पृष्ठ २५३-५४।

इसके अलावा श्री नायडू तथा श्री क्विनने श्री गांधीके समझौते सम्बन्धी लेखका समर्थन किया है और दस्तावेज वापस माँगे हैं। और भी लगभग १०० भारतीयोंने अपने प्रार्थनापत्र आदि कागजात संघके मन्त्रीको वापस भेज देनेकी बाबत श्री चैमनेको लिखा है।

इसका अर्थ

इस प्रकार स्वेच्छया दिये गये प्रार्थनापत्रोंको वापस लेनेका जो निश्चय हुआ है वह बहुत ठीक जान पड़ता है। श्री स्मट्सपर उसका बड़ा असर होनेकी सम्भावना है। यदि सरकार उन दस्तावेजोंको वापस करनेसे इनकार करे तो मेरा खयाल है, कानूनके मुताबिक उपाय किया जा सकता है। दस्तावेज वापस करना जनरल स्मट्सको भारी पड़ेगा, किन्तु दिये बिना चारा नहीं है। यदि वापस करते हैं तो नाक कटती है। किन्तु इस बातसे सबको यह मालूम हो जायेगा कि स्वेच्छया पंजीयनका क्या अर्थ होता है। यदि पंजीयन अनिवार्य होता, तो प्रार्थनापत्र वापस माँगनेकी बात ही नहीं उठाई जा सकती थी।

मुझे लगता है कि कुछ ही दिनोंमें संघर्ष समाप्त हो जायेगा; इस बीच कोई भारतीय फिर अनुमतिपत्र कार्यालयका नाम भी न ले।

जो ट्रान्सवालमें प्रविष्ट होना चाहते हों उन्हें फिलहाल इसका विचार छोड़ देना चाहिए। यदि जरूरत हुई तो दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे भागोंमें बसे भारतीयोंको ट्रान्सवालके भारतीयोंकी मदद करनेके लिए सभाएँ करनी पड़ेंगी।

सर जॉर्ज फेरार तथा अन्य सज्जनोंसे सहायता लेनेकी चर्चा हो रही है। अंग्रेजी समाचारपत्रोंमें अगले हफ्ते यह बातचीत प्रकाशित होनेकी सम्भावना है। प्रकाशित होनेके पहले ऊपरके नोटिसोंके जवाबकी राह देखी जायेगी। संघर्ष फिरसे छिड़ गया है, इसलिए सब भारतीयोंको समझ लेना चाहिए कि संघर्ष उस कानूनके सम्बन्धमें है और इसपर बहुत शक्ति लगानी चाहिए। हम दलीलमें अँगुली और अँगूठेकी बात तर्करूपमें उठाते हैं, किन्तु कानूनको आगे रखकर ही। फिलहाल तो कानूनकी रूसे हमें हस्ताक्षर भी नहीं देने हैं।

अब हमारी माँग क्या हो?

यदि ऊपरके नोटिसोंका बिना बंदिशका जवाब देकर सरकार स्वेच्छया पंजीयनपर पानी फेर दे और भारतीय फिरसे कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह करें तो इसके बाद जो समझौता होगा उसमें हम पहलेकी शर्तोंसे बँधे हुए नहीं रहेंगे। पहले हम स्वेच्छया पंजीयनके लिए वचनबद्ध थे। हम सच्चे हैं, यह जाहिर करनेके लिए हमने स्वेच्छया पंजीयनकी बात की थी। अब हमारी ईमानदारी अधिकांश रूपमें साबित हो चुकी है। इसलिए जब फिर समझौता होगा, तब हम अधिक माँगें रख सकते हैं। मेरे विचारसे हमारे लिए नीचे लिखे अनुसार माँगें रखना ठीक होगा :

(१) जिनके पास डच कालके वैध पंजीयन पत्र हैं उन्हें स्वेच्छया पंजीयनकी सुविधा मिले।
(२) जो खुले तौरपर, किन्तु अनुमतिपत्रके बलपर आये हैं, और कुछ अवधिसे यहाँ रहते हैं, उनको पंजीयन पत्र दिये जायें।
(३) जो अदालतमें यह साबित कर सकें कि वे शरणार्थी हैं, उन्हें आनेकी छूट मिलनी चाहिए।

(४) चमड़ीके भेदके आधारपर ही लोगोंकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता छीननेका कानून न बनाया जाये।

(५) शिक्षित भारतीय नवागन्तुकोंको भी आनेकी छूट दी जाये।

मैं नहीं सोचता कि संघर्ष इस हद तक जा पहुँचेगा जब ऊपरकी माँगें कर सकनेका अवसर आयेगा। वैसा हो या न हो, अब तो संघर्ष फिर शुरू हो गया है और उसका परिणाम भारतीय कौमके लिए लाभके सिवा और कुछ नहीं है।

ब्रिटिश भारतीय संघकी समितिकी बैठक

समितिकी बैठक बुधवारको हुई। श्री गांधीका कार्यालय खचाखच भरा हुआ था। श्री ईसप मियाँकी नाकपर पट्टी बँधी थी, फिर भी वे उपस्थित हुए और उन्होंने अध्यक्षता की। श्री गांधीने सारी परिस्थिति समझाई[1] और ऊपरके मुताबिक जो कदम उठाये गये, उन्हें लोगोंने पसन्द किया। सबने फिरसे सत्याग्रह छेड़ना स्वीकार किया।

गश्ती चिट्ठी

नीचेका पत्र ट्रान्सवालमें सभी जगह भेजा गया है:

स्वेच्छया पंजीयन और नये कानूनकी बाबत सरकार दगा देगी, यह बात अब स्पष्ट हो गई है। अपना लिखित वचन होते हुए भी जनरल स्मट्स कहते हैं कि स्वेच्छया पंजीयनका नये कानूनसे सिर्फ इतना ही सम्बन्ध होगा कि उसमें पंजीयनका समावेश हो जायेगा। स्वेच्छया कराये गये पंजीयनका ऐसा उपयोग करना साफ दगा देना है। जनरल स्मट्सने जो लिखित वचन दिया है उसका उलटा अर्थ करके वे हमें भ्रमित करना चाहते हैं।

ऐसी दगाके कारण हमें घबरानेकी जरूरत नहीं है। हम सच्चे हैं; इसलिए दगाका नतीजा हमारे लिए लाभदायक ही होगा, यह माननेका कारण है।

अब सत्याग्रहकी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। उसका पहला कदम यह है कि प्रत्येक भारतीय स्वेच्छया पंजीयनको वापस लेनेका पत्र लिखे। वह प्रार्थनापत्र तथा दूसरे दस्तावेज वापस माँगे अथवा उन्हें संघके पास भेज देनेके लिए कहे। जो पत्र[2] लिखा जाये उसकी नकल इसके साथ संलग्न है।

यहाँ सभी दृढ़ हैं और लड़नेके लिए तैयार हैं।

अपनी तरफ सबको हिम्मत बँधाइए। फिलहाल अनुमतिपत्र कार्यालयसे कोई पत्र-व्यवहार नहीं करना है और न पंजीयनपत्र[3] आदिकी माँग ही करनी है। जो बिना परवाने हों, उन्हें परवानेका पैसा भरकर बेधड़क व्यापार करना चाहिए।

नये कानूनकी रूसे जिनके ऊपर मामला चलेगा, श्री गांधी पहलेकी तरह उनकी ओरसे निःशुल्क पैरवी करेंगे।[4]

हम सब फिरसे बिना पंजीयनके हैं, यही समझना चाहिए।

१. यह भाषण उपलब्ध नहीं है।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

३. हो सकता है, यहाँ स्वेच्छया पंजीयनके प्रार्थनापत्रकी ओर संकेत हो।

४. सत्याग्रहियोंके निःशुल्क बचावकी बात गांधीजीने पहली बार सितम्बर १९०६ में कही थी। देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४८७।

ईसप मियाँ

श्री ईसप मियाँकी तबीयत ठीक होती जा रही है। अब वे कुर्सीपर बैठ सकते हैं। नाकपर अभीतक पट्टी की जाती है और वहाँ थोड़ा दर्द है। हाथ आदिपर जहाँ चोटें लगी थीं वहाँ भी अभीतक कुछ दर्द बाकी है। बहुतसे लोग अभीतक उनकी तबीयत पूछने जाते हैं। वे उनसे अच्छी तरह बातचीत कर पाते हैं। श्री फिलिप्स तथा श्री डोक कितनी ही बार उनसे मिलने गये हैं। विभिन्न स्थानोंसे सहानुभूतिके पत्र आते रहते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०–५–१९०८

१५३. सर्वोदय [३]

सत्यकी जड़ें

सामान्यतः ऐसा होता है कि मालिक होशियार और उत्साही हो तो प्रायः दबावके कारण नौकर अपना काम करता है। और ऐसा भी होता है कि जब मालिक आलसी और कमजोर होता है तब नौकरका काम जितना चाहिए उतना नहीं होता। परन्तु सही नियम तो यह है कि होशियारीमें समान श्रेणीके दो मालिक लें और समान श्रेणीके दो नौकर लें तो भावनायुक्त मालिकका नौकर भावनाहीन मालिकके नौकरकी अपेक्षा अधिक और बढ़िया काम करेगा।

कोई कहेगा कि यह नियम ठीक नहीं है, क्योंकि स्नेह और दयालुताका बदला प्रायः उलटा ही मिला करता है और नौकर मालिकके सिरपर चढ़ बैठता है। परन्तु ऐसा तर्क उचित नहीं है। जो नौकर स्नेहके बदलेमें लापरवाही दिखाता है उसपर सख्ती की जाये तो उसके मनमें बैर और प्रतिहिंसा पैदा होगी। उदार हृदयके मालिकके प्रति जो नौकर बेईमान होगा वह अन्यायी मालिकको हानि पहुँचायेगा।

इसलिए हर समय और प्रत्येक मनुष्यके प्रति परोपकारी दृष्टि रखनेसे नतीजा अच्छा ही निकलता है। यहाँ हम भावनापर, उसे एक प्रकारकी शक्ति मानकर, विचार कर रहे हैं। स्नेह एक अच्छी वस्तु है इसलिए हमेशा स्नेहका व्यवहार करना चाहिए, यह एक अलग बात है। उसका विचार हम नहीं कर रहे हैं। हम तो यहाँ केवल इतना ही कह रहे हैं कि अर्थ-शास्त्रके साधारण नियमोंको, जिनपर हम विचार कर चुके हैं, स्नेहकी –– भावनाकी –– शक्ति तोड़ डालती है। इतना ही नहीं, भावना एक भिन्न प्रकारकी शक्ति होनेके कारण अर्थ-शास्त्रके अन्य नियमोंके साथ नहीं टिकती बल्कि उन नियमोंको हटाकर ही टिक सकती है। यदि मालिक तराजूवाला हिसाब लगाता है और बदला पानेके इरादेसे ही दयालुता दिखाता है तो सम्भवतः उसे निराश होना पड़ेगा। दयालुता तो दयालुताके खातिर ही दिखाई जानी चाहिए और बदला अपने-आप बिना माँगे ही मिल जाता है। कहा जाता है कि अपनेको पानेके लिए अपनेको ही मिटाना चाहिए और अपनेको रखनेसे आप जाता है।[1]

१. सेंट मैथ्यू, प्रकरण १०, पद ३९।

पल्टन और उसके सरदारकी मिसाल लीजिए। अगर कोई सरदार अर्थ-शास्त्रके नियम लागू करके अपनी पल्टनके सिपाहियोंसे काम लेना चाहेगा तो वह उनसे मनचाहा काम न ले पायेगा। अनेक मिसालोंमें ऐसा देखनेमें आता है कि जो सरदार अपनी पल्टनके सिपाहियोंके सम्पर्कमें आता रहता है, उनके साथ दयालुताका बरताव करता है, उनका भला होनेसे प्रसन्न होता है, उनके दुःखमें भाग लेता है, उनकी रक्षा करता है, संक्षेपमें उनके प्रति सहानुभूति रखता है —— ऐसा सरदार अपने सिपाहियोंसे चाहे जैसा मुश्किल काम ले सकता है। ऐतिहासिक मिसालोंसे पता चलता है कि जहाँ सिपाही अपने सरदारको नहीं चाहते वहाँ लड़ाई शायद ही जीती गई है। इस प्रकार सिपाहियों और उनके सरदारके बीच सहानुभूतिकी शक्ति ही सच्ची शक्ति है। उसी प्रकार डाकुओंके गरोहमें भी सरदारके प्रति डाकुओंका दल पूरा प्रेम-भाव रखता है। फिर भी मिल इत्यादि कारखानोंमें मालिक और नौकरोंके बीच इतना प्रगाढ़ सम्बन्ध देखनेमें नहीं आता। इसका एक कारण तो यह है कि इस प्रकारके कारखानोंमें नौकरोंके वेतनका आधार लेन-देनके नियमोंपर रहा करता है। इसलिए मालिक नौकरके बीच स्नेहके व्यवहारके स्थानपर द्वेषका व्यवहार चलता है। और सहानुभूतिके स्थानपर उनके बीचका सम्बन्ध विरोधका —— प्रतिस्पर्धाका-सा देखनेमें आता है। तब, अब हमें दो प्रश्नोंपर विचार करना है। एक तो यह कि लेन-देनका हिसाब किये बिना नौकरका वेतन किस दर्जे तक निश्चित किया जा सकता है। दूसरा यह कि जिस तरह पुराने ढंगके कुटुम्बोंमें नौकर हुआ करते हैं और मालिक तथा नौकरोंके बीच जैसा सम्बन्ध रहता है, अथवा पल्टनमें सरदार और सिपाहियोंमें जैसा सम्बन्ध रहता है, उसी तरह कारखानोंमें नौकरोंकी अमुक संख्या —— चाहे जैसा गाढ़ा समय आ पड़े —— कम ज्यादा किये बिना कैसे कायम रखी जा सकती है।

पहले प्रश्नका विचार करें। यह अजीब-सी बात है कि कारखानोंमें मजदूरोंके वेतनकी सीमा निर्धारित कर सकनेकी दिशामें अर्थशास्त्री लोग कोई प्रयत्न ही नहीं करते। दूसरी तरफ, हम देखते हैं कि इंग्लैंडके प्रधानमन्त्रीके पदका नीलामके द्वारा विक्रय नहीं किया जाता; वह चाहे जैसा भी मनुष्य क्यों न हो उसे एक-जैसा वेतन ही मिलता है। उसी प्रकार कमसे-कम वेतन लेनेवालेको पादरी नहीं बनाया जाता। चिकित्सकों और वकीलोंके साथ भी साधारणतया ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता। अर्थात् हम देखते हैं कि उपर्युक्त दृष्टान्तोंमें हम अमुक सीमाके अनुसार ही मजदूरी देते हैं। तब कोई पूछेगा कि क्या अच्छे और खराब मजदूरकी मजदूरी समान हो? वास्तवमें ऐसा ही होना उचित है। इसका परिणाम यह निकलेगा कि जिस प्रकार चिकित्सकों और वकीलोंकी फीस एक-सी होनेके कारण हम अच्छे वकील अथवा चिकित्सकके पास ही जायेंगे, वैसे ही मजदूरोंकी दर एक-सी होनेके फलस्वरूप हम अच्छे राज या बढ़ईके पास ही जायेंगे। अच्छे मजदूरका इनाम यही है कि उसे पसन्द किया जायेगा। इसलिए कुदरती और सही नियम यही हुआ कि सब वर्गोंमें उस-उस वर्गके कामके अनुसार वेतन नियत करना चाहिए। जहाँ अपने धन्धेका ज्ञान न रखनेवाला व्यक्ति कम पारिश्रमिक लेकर मालिकको धोखेमें डाल सकता है वहाँ अन्तमें नतीजा बुरा ही निकला करता है।

अब दूसरा प्रश्न लीजिए। वह यह है कि व्यापारकी स्थिति चाहे जैसी हो फिर भी कारखानेमें जितने मजदूरोंको शुरूमें रखा गया हो उतनोंको कायम रखना ही चाहिए। जब

मजदूरोंको अपनी नौकरीके स्थायी होनेका निश्चय नहीं होता, तब अधिक मजदूरी माँगना उनके लिए आवश्यक हो ही जाता है; परन्तु यदि किसी प्रकार उन्हें यह भरोसा हो जाये कि उनकी नौकरी आजीवन बरकरार रहेगी तो वे बहुत ही कम मजदूरीपर काम करेंगे। इसलिए यह स्पष्ट है कि जो मालिक अपने मजदूरोंको हमेशाके लिए रखता है उसे अन्तमें लाभ ही हुआ करता है। और जो नौकर मुस्तकिल ढंगसे नौकरी करते हैं उनको भी फायदा होता है। ऐसे कारखानोंमें लम्बे मुनाफे नहीं हो सकते, भारी जोखिम नहीं उठाई जा सकती और बड़ी होड़ नहीं लगाई जा सकती। सैनिक अपने सरदारके लिए मरने-खपनेको तैयार हो जाता है और इसी कारण सिपाहीका पेशा साधारण मजदूरके पेशेकी अपेक्षा अधिक सम्मान योग्य माना गया है। दरअसल सैनिकका धन्धा कत्ल करना नहीं है, बल्कि दूसरेकी रक्षा करते हुए स्वयं कत्ल हो जाना है। जो सिपाही बनता है वह अपनी जान राज्यके हाथमें सौंप देता है। वकील, चिकित्सक और पादरीके बारेमें भी यही बात है। इसी कारण तो हम उनके प्रति सम्मानका भाव रखते हैं। अपनी जानका खतरा मोल लेकर भी वकीलको न्याय कराना उचित है। अनेक संकटोंको सहन करके भी चिकित्सकको अपने रोगीकी सार-सँभाल करनी चाहिए और पादरीको, चाहे जो भी हो, अपने समाजको सदुपदेश देते और सही मार्ग दिखाते रहना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०–५–१९०८

१५४. पत्र : 'इंडियन ओपिनियन' को[1]

[जोहानिसबर्ग]

सम्पादक
'इंडियन ओपिनियन'

महोदय,

यद्यपि मैं इस समाचारपत्रके गुजराती विभागमें बहुत लिखता हूँ और इसे सब लोग जानते हैं, फिर भी मेरे दस्तखतोंसे कदाचित् ही कभी कोई लेख प्रकाशित होता है। देखता हूँ, फिर[2] अपने नामसे लिखनेका मौका आ गया है।

गत शनिवारको श्री कार्टराइटसे जब मेरी मुलाकात हुई, उन्होंने मुझे श्री स्मट्सका पत्र दिखाया। उसमें कहा गया है कि जो नया विधेयक आनेवाला है, वह स्वेच्छया पंजीयनको बाकायदा मान्यता देनेके लिए ही है। उस विधेयकके मुताबिक स्वेच्छया पंजीयन करानेवाले भारतीयोंको पंजीयनकी धाराओंका उल्लंघन करनेकी सजासे मुक्त किया जायेगा। अन्य बातोंमें तो उनपर भी नया कानून ही लागू होगा। इसका अर्थ स्पष्ट विश्वासघात हुआ। यह तो; "मरे नहीं, गुजर गये" जैसी बात हुई। फिर भी यदि हम सच्चे होंगे तो वैसा कुछ भी नहीं है।

१. यह "एक संवाददाता द्वारा प्रेषित : श्री गांधीका पत्र", शीर्षकसे छपा था।

२. इसी तरहके इससे पहलेके पत्रके लिए देखिए "संक्षेपमें स्पष्टीकरण", पृष्ठ ९६-९७।

कानून रद करनेकी बात थी; उसका क्या हुआ? श्री गांधीके शब्द कहाँ गये? अब वे क्या जवाब देंगे? वे भारतीयोंको क्या मुँह दिखायेंगे? ऐसी बातोंकी भनक मेरे कानोंमें पड़ती रहती है।

कानून रद होगा, यह तो मैं अब भी कहता हूँ। किन्तु शर्त यह है कि भारतीय समाज अपना सत्याग्रह पूरा करे। मेरे शब्द जैसे थे, वैसे ही हैं। यह भी नहीं कि अपने भाइयोंको मुँह दिखाते हुए मुझे शर्म आती है। जिस दिन मैं स्वयं दगा दूँगा, शर्मकी बात उसी दिन होगी। दगा किसीका सगा नहीं होता। फिर वह श्री स्मट्सका सगा भी नहीं होगा। मैंने कहा था कि लिखा हुआ कागज है,[1] इसमें भी कोई शक नहीं है। अब श्री स्मट्स यदि उस कागजका कोई उलटा जवाब दें, तो उसके लिए मैं दोषी नहीं ठहरता।

उस समय बहुत-से भारतीयों और गोरोंने जो चेतावनी दी थी वह याद आती है। वे कहते थे, "जनरल स्मट्सपर भरोसा मत करना।" मैंने कुछ हद तक विश्वास किया। उसके बिना काम ही नहीं चल सकता। राजकाजसे सम्बन्धित काम इसी तरह चले हैं, और चलेंगे। जब समझौता करनेवाले दोनों पक्षोंको अपनी शक्तिकी प्रतीति होती है, तब एक-दूसरेके साथ किया हुआ धोखा काम नहीं आता। मैं मानता हूँ कि भारतीय समाजकी शक्ति है — सत्य। सचके सामने जनरल स्मट्सका झूठ नहीं टिकेगा।

जो मुझे दोष देते थे उनसे मेरा इतना ही कहना है कि "यदि आपका दोषारोपण ठीक था, तो आप फिर सत्याग्रहमें शामिल हों। मैंने तो विश्वास रखकर ही स्वेच्छया पंजीयन करानेकी सलाह दी थी। कानून रद होना ही चाहिए, यह तो हमारा प्रण था; और उसे सत्य करनेके लिए आप और मैं लड़े, और लड़ेंगे। यदि आपने इतना किया तो काफी है। आपका सन्देह ठीक निकला। यह आपके लिए शाबाशीकी बात हुई। मेरा विश्वास झूठा निकला, मैं इसके लिए अपनेको अपराधी नहीं मानता, क्योंकि मेरे सामने दूसरा कोई उपाय नहीं था। यदि आप ऐसा मानें कि उपाय था तो भी भारतीय कौमने विश्वास रखकर कुछ खोया नहीं है। यदि हम सब साथ रहें तो और भी चीजें प्राप्त करेंगे।"

समझौतेके बारेमें जो मेरे अनुकूल रहे और जिन्होंने समझौता पसन्द किया था, उनसे मेरा यह कहना है कि "जनरल स्मट्स दगा देनेपर उतारू हुए हैं, इससे समझौतेको दोष देना ठीक नहीं। समझौतेसे फायदा ही हुआ है। यदि हममें सच्चा सामर्थ्य होगा, तो हम अँगुलभर भी पीछे न हटेंगे और विरोधी जैसे-जैसे दगा करेंगे वैसे-वैसे हमारा सत्य और चमकेगा। जब हीरा कंकड़ोंके बीचमें पड़ जाता है, तब उसका तेज और अधिक खिलता है। सत्यके बारेमें भी यही समझना चाहिए।" मुझसे नाराज होनेवाले और मेरे कामको पसन्द करनेवाले, दोनों ही, इस समय सत्याग्रहमें सम्मिलित रहें या न रहें, मेरा निश्चय तो जो पहले था, वही है। मैं कभी खूनी कानूनको नहीं मानूँगा और अकेला रह गया, तो भी मरते दम तक जूझूँगा। मैं आशा करता हूँ कि खुदा — ईश्वर — सभी भारतीयोंको ऐसे ही विचार देगा।

मैं हूँ सत्याग्रही,

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०–५–१९०८

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ ३९-४१।

१५५. पत्र : ई० एफ० सी० लेनको

जोहानिसबर्ग
मई ३०, १९०८

प्रिय श्री लेन,

क्या आप कृपया मुझे बतायेंगे कि मैं गत १ और २२ फरवरीके अपने पत्रों तथा तत्सम्बन्धी उत्तरोंको प्रकाशित कर सकता हूँ अथवा नहीं?

आपके पिछले नोटके संदर्भमें मैं कहना चाहता हूँ कि मैंने कभी सरकारसे अपने लिए संरक्षणकी याचना नहीं की; न उसकी इच्छा ही कभी की है। अब भी मेरी ऐसी कोई ख्वाहिश नहीं है।[1]

आपका सच्चा

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८१८) से।

१५६. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

[मई ३०, १९०८ के पूर्व]

फेरीवाले सावधान!

जोहानिसबर्गमें 'डी ट्रान्सवालर' नामक एक समाचारपत्र अंग्रेजी और डच भाषामें निकलता है। उसने शाक-सब्जी बेचनेवाले भारतीय फेरीवालोंपर हमला किया है। उसके कुछ अंश नीचे दे रहा हूँ। वह अखबार लिखता है:

> शाक-सब्जी बेचनेवाले भारतीय फेरीवालोंको गोरी स्त्रियाँ अब भी प्रोत्साहन देती हैं। यह गोरोंके लिए हानिकारक है। फरवरी महीनेमें सात भारतीयोंको सजा हुई थी, क्योंकि उन्होंने सोनेके कमरेमें शाक-सब्जी रख छोड़ी थी। नगरपालिकाको ऐसी सब्जी जब्त कर लेनेका हक था, किन्तु उसने जब्त नहीं की। जुबिली स्ट्रीटमें नेथनसनके घरके सामने तीन पाखाने हैं; जिनमें एक गुसलखानेकी तरह, एक पाखानेकी तरह और एक शाक-सब्जी रखनेकी कोठरीकी तरह काममें लाया जाता है। यह जाननेके बाद कौन भली औरत ऐसी शाक-सब्जी खरीद सकती है? इनके अलावा नगरपालिकाके दो अस्तबल हैं, जिनमें कुछ "कुली" सोते हैं और अपनी शाक-सब्जी भी रखते हैं। इस बातकी जाँच करनेके लिए रातको निरीक्षकोंको निकलना चाहिए। आदि, आदि।

इसमें बहुत अतिशयोक्ति है, इसमें कोई सन्देह नहीं। फिर भी, कुछ फेरीवाले गन्दी जगहमें रहते हैं, खुद गन्दे रहते हैं और शाक-सब्जी गन्दी जगहमें रखते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। यह तय

१. देखिए "पत्र : जनरल स्मट्सको", पृष्ठ २४६-४७ और उसी पृष्ठपर पाद-टिप्पणी ४

है कि यदि वे आवश्यक सुधार नहीं करेंगे, तो अन्तमें इस देशमें भारतीय फेरीवालोंका नाम-निशान न रह जायेगा। एक तरफसे बात उठाई जाती है कि फेरीवालोंके लिए परवाना कानून बनना चाहिए; दूसरी तरफ हमारी गन्दगीके समाचार प्रकाशित होते हैं। इसलिए मैंने सलाह दी है कि यदि परवाने छिन जायें तो फेरीवाले सत्याग्रह करके जीत सकते हैं; किन्तु सत्याग्रहकी लड़ाईमें एक बात याद रखनी है कि उसमें सत्यका कभी त्याग नहीं किया जा सकता। गन्दा रहना या गन्दगीमें शाक-सब्जी रखना न्याय-विरुद्ध है, ऐसा मैं समझता हूँ, और जो न्याय-विरुद्ध है उसे सत्यके भी विरुद्ध समझना चाहिए।

सोमवार [जून १, १९०८]

सत्याग्रहकी लड़ाई

यह संघर्ष अभी सचमुचमें शुरू हुआ नहीं माना जा सकता, किन्तु कहा जा सकता है कि उसकी नींव पड़ गई है। श्री गांधीके नोटिसका[1] श्री चैमनेने यह जवाब दिया है कि जनरल स्मट्स जब केपसे वापस आ जायेंगे तब अर्जियाँ इत्यादि वापस लेनेके बारेमें जवाब दिया जायेगा। इसपर श्री गांधीने तार[2] किया कि यह ऐसी बात नहीं है जो रोकी जा सके, और कागज-पत्र तुरन्त वापस मिलने चाहिए। यह तार गत शुक्रवारको किया गया था। शनिवारको तार मिला कि श्री गांधीने नये कानूनका जो मसविदा[3] भेजा था वह गुम हो गया है, इसलिए फिर भेजा जाये। श्री गांधीने इसपर २२ फरवरीको पत्र[4] तथा नये बिलका मसविदा भेज दिया है। सोमवारको टेलिफोन मिला कि जनरल स्मट्सने मन्त्रिमण्डलकी बैठक बुलाई है और मंगलवारको जवाब दिया जायेगा। यह 'चिट्ठी' मैं सोमवारकी रातको लिख रहा हूँ। इस समयतक परिस्थिति ऊपरके मुताबिक है।

कार्टराइटके प्रयत्न

इस बीच श्री कार्टराइट बड़ी कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने सर पर्सी फ़िट्ज़पैट्रिक, श्री चैपलिन तथा श्री लिंड्ज़ेसे मुलाकात कराई है। इन सभी सज्जनोंने कहा कि जिन लोगोंने स्वेच्छया पंजीयन कराया है, या जो बादमें करायेंगे, उनपर यह अत्याचारी कानून लागू नहीं होना चाहिए। इस सम्बन्धमें पहल भारतीय समाजके हाथमें है।

जबतक खानगी सलाहकी बात चल रही है और पूरी नहीं हुई, तबतक और कोई कदम उठाना जरूरी नहीं है। इसलिए सार्वजनिक सभा नहीं की गई। यदि संघर्ष करना पड़ा, तो सार्वजनिक सभा बुलानी पड़ेगी।

सरकारको जो पत्र लिखे गये हैं, उन्हें प्रकाशित करनेका कोई विचार नहीं था। फिर भी वे 'इंडियन ओपिनियन' से 'प्रिटोरिया न्यूज़' में उद्धृत हो चुके हैं।

प्रार्थनापत्र वापस करनेके नोटिस श्री चैमनेके नाम पहुँच रहे हैं। सुलह होनेकी आशासे काम कुछ ढीला चल रहा है। ब्रिटिश भारतीय संघकी ओरसे प्रत्येक शहरको गश्ती पत्र भेजे गये हैं। लोग नोटिस भेजेंगे।[5]

१. देखिए "पत्र: एम० चैमनेको", पृष्ठ २५३-५४।
२. यह तार उपलब्ध नहीं है।
३. देखिए "पत्र: जनरल स्मट्सको", के साथ संलग्न पत्र, पृष्ठ १००-०१।
४. देखिए "पत्र: जनरल स्मट्सको", पृष्ठ ९८-९९।
५. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २५८-६१।

मंगलवार [जून २, १९०८]

श्री हॉस्केन, श्री डोक, श्री फिलिप्स, श्री पोलक, श्री पेरी इत्यादिकी एक बैठक श्री हॉस्केनके दफ्तरमें हुई। उन्होंने उसमें भी भारतीय समाजको मदद करनेका प्रस्ताव किया। प्रिटोरियासे अभीतक कोई खबर नहीं आई।

कब्रिस्तान

कुछ समय हुआ कब्रिस्तानके मुस्लिम हिस्सेपर यहाँकी नगरपालिकाने कृपादृष्टि की है। वह हिस्सा देखनेमें बहुत बड़ा है, किसी समय वह मुसलमानोंका कब्रिस्तान माना जाता था, इसलिए मौलवियोंका मत है कि उसका उपयोग दूसरे मुर्दे गाड़नेके लिए नहीं किया जा सकता। फलतः हमीदिया इस्लामिया अंजुमनने एक पत्र लिखा कि कब्रिस्तानमें और मुर्दे नहीं गाड़े जा सकते। एक प्रतिनिधिमण्डल, जिसमें मौलवी अहमद मुखत्यार, इमाम कमाली, इमाम अब्दुल कादिर, श्री अब्दुल गनी,[1] श्री शहाबुद्दीन तथा श्री गांधी थे, पार्क कमेटीके अध्यक्षसे कब्रिस्तानके मामलेमें मिला। इसके बाद फिर सोमवारको साढ़े तीन बजे एक प्रतिनिधि-मण्डल पार्क कमेटीसे मिला। उसमें श्री अब्दुल गनी, इमाम कमाली, इमाम अब्दुल कादिर तथा श्री गांधी थे। उसने सारी बात कमेटीको समझाई और कमेटीने विचार करनेका वचन दिया।

भेंटका सदुपयोग

श्री पोलकको ब्रिटिश भारतीय संघकी तरफसे पिछले संघर्षमें ५० पौंड भेंटमें दिये गये थे तथा श्री आइजकको १० पौंड। श्री पोलक तथा श्री आइज़कने वह पैसा अपने लिए काममें लानेका विचार न करके भारतीय समाजके लिए ही उसका उपयोग करना निश्चित किया है। श्री पोलकने, उन्हें जो पैसा मिला था, श्री जोजेफ रायप्पनकी[2] मददके लिए भेज दिया है। श्री जोज़ेफ रायप्पन फिलहाल विलायतमें बीमार पड़े हैं और गरीबीके कारण उनका काम अटक गया है। श्री आइज़कने अपना पैसा भारतीयोंके शिक्षणमें लगानेका विचार करके उसीमें लगाया। श्री डोक तथा श्री डेविड पोलकको[3] जो पैसा मिला था, उसके विषयमें मैं पहले लिख चुका हूँ। उन्होंने उक्त रकम एशियाई शिक्षणके लिए निकाल रखी है। अपनेको मिलनेवाली भेंटका ऐसा उपयोग करना बहुत प्रशंसा तथा अनुकरणके योग्य है।

बुधवार [जून ३, १९०८]

आज खबर मिली है कि बहुत करके जनरल स्मट्स कानून रद कर देंगे। अभीतक सरकारकी तरफसे कोई भी खबर नहीं है। फिर भी सभी गोरे नेता इसीके बारेमें चर्चा कर रहे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६–६–१९०८

१. एक भारतीय व्यापारी, जो कुछ समयके लिए ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष भी रहे थे।

२. जोज़ेफ रायप्पन; इनका जन्म नेटालमें हुआ था और इनके माता-पिता गिरमिटिया भारतीय थे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयके स्नातक और बैरिस्टर। इनके छात्र-कालमें ट्रान्सवाल भारतीयोंका जो प्रतिनिधिमण्डल इंग्लैंड गया था, उसकी थोड़ी-बहुत सहायता की। बादमें वे सत्याग्रही बने और बिना परवाना फेरी लगा कर जेल गये। देखिए '**दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास**', अध्याय ३०।

३. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ १५५-५८।

१५७. पत्र : ई० एफ० सी० लेनको

जोहानिसबर्ग,
जून ३, १९०८

प्रिय श्री लेन,

मैंने आपको अपने और जनरल स्मट्सके बीच एशियाई अधिनियमके सम्बन्धमें हुए उस पत्र-व्यवहारको, जिसे गुप्त रखनेकी बात थी, प्रकाशित करनेके लिए उनकी अनुमति[1] माँगते हुए शनिवारको एक पत्र[2] लिखा था। क्या अब मैं उसके उत्तरकी आशा कर सकता हूँ ?

आपका सच्चा,

श्री अर्नेस्ट एफ० सी० लेन
प्रिटोरिया

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८१९) से।

१५८. पत्र : जनरल स्मट्सको[3]

[जोहानिसबर्ग]
जून ६, १९०८

[प्रिय श्री स्मट्स]

आशा है, आज आपके और मेरे बीच जो मुलाकात[4] हुई उसके बारेमें यह पत्र लिखनेके लिए मुझे क्षमा करेंगे। यद्यपि समझौतेका पालन करनेकी आपकी इच्छाको मैं मान्य करता हूँ, फिर भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मुलाकात सन्तोषजनक नहीं थी। अधिनियम रद करनेके बारेमें आप अब भी हिचकते हैं; और इस बातपर जोर देते हैं कि यदि अधिनियम रद नहीं हुआ तो जो एशियाई गत माहकी ९ तारीखके बाद आये हैं और जिन्हें देशमें प्रवेश करनेका अधिकार है, उन्हें इसी अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन कराना

१. लेनने गांधीजीको ४ जूनको इसका उत्तर भेजा, जिसमें पत्रोंके प्रकाशनकी अनुमति नहीं दी गई। कारण यह बताया गया कि चूँकि ये पत्र गुप्त तथा व्यक्तिगत थे इसलिए जनरल स्मट्सने गांधीजीके पत्रोंमें दिये गये वक्तव्योंके न विस्तारसे उत्तर दिये थे और न उनका खण्डन ही किया था। "अतः पत्र-व्यवहारका प्रकाशन सारी बातोंपर गलत रोशनी ही डालेगा"। एस० एन० ४८२१।

२. देखिए "पत्र: ई० एफ० सी० लेनको", पृष्ठ २६५।

३. इस पत्रकी एक नकल श्री रिचने उपनिवेश कार्यालयको लिखे गये अपने २७ जुलाई, १९०८ के पत्रके साथ संलग्न करके भेजी थी।

४. श्री लेनने जनरल स्मट्सकी ओरसे ४ जून, १९०८ को गांधीजीको मुलाकातके लिए लिखा था। पत्रमें मुलाकातका उद्देश्य पहले कराये जा चुके स्वेच्छया पंजीयनको कानूनी रूप देनेके लिए "एशियाई विधेयक मसविदे" पर विचार करना बताया गया था। देखिए एस० एन० ४८२२।

पड़ेगा। जैसा कि मैंने सदैव कहा है, एशियाइयोंका लक्ष्य अधिनियमको रद कराना है, और इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए उन्होंने बहुत-कुछ किया, बहुत-कुछ त्यागा। मुझे भी लगा है कि आप यह मानते हैं कि एशियाई अधिनियम पूर्णतया खराब है, और प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमका संशोधन समस्याके समाधानका कोई अवांछनीय मार्ग नहीं है। मैं आपको एक बार फिर याद दिलाता हूँ कि मुलाकातोंमें आपने इस विषयपर मुझसे क्या कहा था। आपने कहा था, यदि एशियाई समझौते-सम्बन्धी अपनी जिम्मेदारियाँ पूरी कर देंगे तो मैं एशियाई अधिनियमको रद कर दूँगा। मैं जानता हूँ कि आपने यह भी कहा था, यदि एक भी ऐसा अड़ियल एशियाई हुआ जो हठपूर्वक स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र लेनेसे इनकार करता है तो मैं उसपर एशियाई अधिनियम जबरन लागू करूँगा। मेरी जानकारीमें, वस्तुतः ऐसा कोई अड़ियल एशियाई नहीं बचा है। किन्तु यदि ऐसे एशियाई हों, तब भी मैंने तो उपर्युक्त अभिव्यक्तिको एक शुद्ध दिखावटी अभिव्यक्ति माना है, जिसका उद्देश्य इस तथ्यपर जोर देना है कि उपनिवेशके तत्कालीन अधिवासियोंके बहुत बड़े बहुमतको समझौतेका पालन करना चाहिए। वैसा उन्होंने किया है।

इस वक्त समझौतेके लिए समयका बहुत महत्त्व है, और मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे इस आशयका एक निश्चित बयान देनेकी अनुमति देंगे कि अधिनियम रद कर दिया जायेगा; अन्यथा मैं प्रार्थनापत्रके फार्मकी वापसीके सिलसिलेमें श्री चैमनेको लिखे गये अपने पत्रका[1] सहारा लेनेको अनिच्छापूर्वक विवश होऊँगा। मैं ऐसी किसी भी स्थितिको टालनेके लिए अत्यधिक उत्सुक हूँ, किन्तु आश्वासनके लिए संसदका अधिवेशन प्रारम्भ होनेके प्रथम सप्ताह तक प्रतीक्षा करना असम्भव है। अतः, यदि आप आश्वासन नहीं दे सकते, और यदि आप उन लोगोंको[2] प्रार्थनापत्रके फार्म नहीं लौटा सकते जिन्होंने उनकी वापसीके लिए लिखा है, तो हमें सर्वोच्च न्यायालयमें इस आशयकी अर्जी देनी पड़ेगी कि वह अपने आदेश द्वारा जबरन कागजोंकी वापसी करवाये।[3]

जहाँतक प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियममें किसी संशोधनकी बात है, मैं यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि यदि लोगोंके देशमें रहने या प्रवेश करनेका प्रश्न एक प्रशासनिक अधिकारीकी मर्जीपर छोड़ दिया गया तो ऐसा कोई संशोधन एशियाइयोंको बिलकुल सन्तुष्ट नहीं करेगा। यह प्रश्न, अन्य सब उपनिवेशोंकी भाँति, यहाँ भी अदालतमें ही तय होना चाहिए।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जो लोग पुरानी डच सरकारको ३ पौंडी शुल्क दे चुके हैं, उनके अधिकारोंकी रक्षा की जानी चाहिए। ऐसे बहुत-से लोग पहलेसे ही ट्रान्सवालमें वर्तमान हैं जिनके यहाँ निहित स्वार्थ हैं। उन लोगोंने भी प्रार्थनापत्र दिये हैं। मुझे विश्वास है कि श्री पैट्रिक डंकनने[4] जब पहली बार यह विधेयक पेश किया था, तब उनके बारेमें विचार कर लिया होगा, और मेरी रायमें उनके दावोंकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

१. देखिए "पत्र: एम० चैमनेको", पृष्ठ २५३-५४ ।

२. बावजीर, क्विन और नायडूको; देखिए "पत्र: एम० चैमनेको", पृष्ठ २५३-५४, २५५ और २५६ । और "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २५८-६१ ।

३. यह अर्जी २३ जून, १९०८ को दी गई थी ।

४. ट्रान्सवाल सरकारके भूतपूर्व उपनिवेश-सचिव; विधान परिषद्के सदस्य ।

श्री लेनने शुक्रवारको[1] मुझे लिखा था कि आपको लिखे गये मेरे १ और २२ फरवरीके पत्र गोपनीय होनेके नाते प्रकाशित नहीं किये जाने चाहिए। चूँकि वे मेरे इस दावेके साक्षात प्रमाण हैं कि आपने अधिनियमको रद करनेका वादा किया था, अतः यदि आप उस वादेसे हटेंगे, और यदि आप मेरे दिये हुए वक्तव्यका खण्डन करेंगे, तो, वैसी दशामें, आशा करता हूँ, आप मुझे एकतरफा गोपनीयतासे बद्ध नहीं मानेंगे।

[आपका, आदि,
मो० क० गांधी]

[जनरल जे० सी० स्मट्स
उपनिवेश कार्यालय
प्रिटोरिया]

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८

इंडिया ऑफिस, ज्युडिशियल तथा पब्लिक रेकर्ड्स (२८९६/०८) से भी।

१५९. पत्र : अल्बर्ट कार्टराइटको

[जोहानिसबर्ग]
जून ६, १९०८

प्रिय श्री कार्टराइट,

आपने मुझे जिस पूर्वोदाहरणको अपनानेकी अनुमति दे रखी है, उसके अनुसार मैं जनरल स्मट्सको लिखे गये अपने पत्रकी[2] एक नकल आपको भेजता हूँ। मुलाकात सन्तोषजनक भी रही और असन्तोषजनक भी। असन्तोषजनक इस दृष्टिसे रही कि स्थितिपर नये सिरेसे विचार करनेकी आवश्यकता थी; इसलिए मुझे [कानून] रद किये जानेका निश्चित आश्वासन लिये बिना ही लौटना पड़ा। किन्तु मुझे जहाँतक पता चला है प्रगतिशील दल रास्तेमें कोई बाधा न डाले तो अधिनियम रद कर दिया जायेगा। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि यदि हम अपने प्रतिरोधके सिद्धान्तपर अटल रहे तो इससे बचनेका कोई उपाय नहीं है। वे यह समझते हैं कि कानूनकी पुस्तकमें एक ही मतलबके लिए दो कानून नहीं रखे जा सकते। वे इस स्थितिसे, कि स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंके दर्जेकी एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत व्याख्या होनी चाहिए, बिलकुल हट गये हैं। इसलिए यदि हम दृढ़ न रहे और प्रगतिशील दलने इसतरह रोड़े अटकाये तो, कहना जरूरी नहीं है कि हम सम्भवतः ६–७ हजार एशियाइयोंको लगभग कानून-विहीनकी हास्यास्पद स्थितिमें डाल देंगे।

१. वास्तवमें लेनने गांधीजीको यह पत्र ४ जून, १९०८ को लिखा था, और उस दिन बृहस्पतिवार था।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

मैं आपसे यथाशीघ्र मिलूँगा। इस बीच, मुझे भरोसा है कि आप शान्तिके देवदूतका कार्य जारी रखेंगे और न्याय तथा औचित्यके पक्षमें प्रगतिशील दलके मनको समुचित रूपसे बदलनेकी कोशिश करते रहेंगे।

आपका सच्चा,

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८२३/ए) से।

१६०. नेटालमें हत्याएँ

नेटालमें आजकल भारतीयोंकी हत्याएँ की जा रही हैं। एक लेखक उसकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। वह सूचित करता है कि दो सप्ताहमें सात खून हुए हैं। एक टोंगाटमें, दो केटोमेनरमें, एक स्प्रिंगफील्डमें, एक नॉर्थडीनमें और दो डर्बनमें। इसके सिवा, वही लेखक यह भी सूचित करता है कि इन सात खूनोंमें केवल एक ही खूनीको अभीतक पुलिस गिरफ्तार कर पाई है और वह भी इसलिए कि अपराधी स्वयं उपस्थित हो गया था। चोरीका अपराध भी बढ़ गया है, यह भी इस लेखकने सूचित किया है।

ऊपरकी बात विचारके योग्य है। जो समाज स्वतन्त्रताका अधिकार पाना चाहता है, उस समाजमें अपना रक्षण करनेकी शक्ति भी होनी चाहिए। इसके दो उपाय हैं। एक आसान और सरल होते हुए भी कठिन है; और वह है अपने आपको सुधारना। खून किये जानेका अवसर ही नहीं आने देना चाहिए; अपने पास धन-संग्रह नहीं करना चाहिए और जो खून करते हैं उनको सुधारना चाहिए। जबतक न सुधरें तबतक उन्हें मनमाने खून करने देना चाहिए। जब ये लोग थक जायेंगे, तब स्वयं खून करना बन्द कर देंगे। यह ईश्वरीय और प्राकृतिक नियम है। एक समाजके तौरपर फिलहाल हममें ऐसा करनेकी शक्ति नहीं है। हमारे समाजमें ऐसी बहादुरी आ जाये और हम जान-मालसे निःसंग होकर रहें ऐसा समय कभी आयेगा ही नहीं, यह तो हम नहीं कह सकते; किन्तु ऐसा समय आना कठिन जरूर है। आजतक किसी भी समाजके ऐसा हो सकनेका इतिहासमें प्रमाण नहीं है। फिर भी, दुनियामें ऐसा करनेवाले व्यक्तियोंके उदाहरण मिलते हैं।

यदि हम ऊपरके अनुसार नहीं चल सकते, तो हमें स्वतन्त्र होनेकी इच्छा रखनेवाले समाजकी तरह दूसरा रास्ता जानना चाहिए। वह रास्ता है, बलके मुकाबलेमें बल आजमानेका। हममें जान और मालकी रक्षा करनेकी ताकत आनी चाहिए। यह ठीक है कि नेटालकी सरकार रक्षा करेगी; किन्तु, जहाँतक गोरोंका सम्बन्ध है [जब उनपर आक्रमण होता है,] वे हाथपर हाथ धरे बैठे नहीं रहते। वे अपने रक्षणके साधन स्वयं रखते हैं। यदि इसपर कोई यह कहे कि हमें हथियार रखनेका हक नहीं है अथवा जिसे चाहिए उसे हथियार नहीं मिलते तो यह इस बातका जवाब नहीं है। हम बिना हथियारके भी अपना रक्षण कर सकते हैं। यह तो शरीरको पुष्ट करने और कौशलकी बात है। अमेरिकामें जब गोरोंने हमपर हमला किया, तब हम लोग छिप गये। जब गोरे जापानियोंसे भिड़े तब जापानी लाठियाँ और बोतलें लेकर तैयार हो गये।[1] अनेक गोरे बिना पिस्तौलके अपना बचाव कर सकते हैं।

१. यह घटना कैनडामें हुई थी, अमेरिकामें नहीं; देखिए "कैनडाके भारतीय", पृष्ठ १९९।

भारतीयोंको भी यह सीखना पड़ेगा। यह बात एक दिनमें नहीं होती। आग लगी हो और तब यदि हम कुँआ खोदनेकी सयानी सीख दें तो वह किस कामकी? यह ताना ठीक होगा। किन्तु हम तत्काल उपयोगमें आ सकनेवाला इलाज भी बता रहे हैं; इसलिए यह ताना देनेकी जरूरत नहीं रहेगी। हमारा काम कारणोंकी गहराईमें जाना और मुख्यतया सबसे अच्छा उपाय बताना है। यदि हम फोड़ेका मूल खोजकर उसे नष्ट करनेकी दवा न दे सकें, और उसपर मरहम लगायें तो यह "नीम हकीमी" कहलायेगी।

जो उपाय तत्काल काममें आ सकता है, यह है कि भारतीय कौम सरकारको प्रार्थनापत्र दे और यह माँग करे कि जिन इलाकोंमें अधिक हत्याएँ हों वहाँ पुलिस अधिक चौकसी रखे। सरकार इस प्रकारकी चौकियाँ कोने-किनारेके हिस्सोंमें रख सकेगी, इसकी सम्भावना कम है। ऐसे स्थानोंमें हर इलाके और हिस्सेके लोगोंको मिलकर चौकीदार ढूँढ़ने चाहिए। यदि निर्जन हिस्सोंमें कुछ लोग ही रहते हैं, तो योग्य है कि वे आबादीके हिस्सोंमें जाकर बस जायें। एक साथ मिलकर यह सब करना सीखनेमें राष्ट्रीयता है। हम एक राष्ट्र बननेकी तैयारीमें हैं। हमें समझ लेना चाहिए कि इस युगके अर्थमें हम भारतीय एक राष्ट्र नहीं हैं। हम जो-कुछ नहीं हैं, यदि अपनेको वही मानें तो उससे हम वह हो नहीं जाते।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६–६–१९०८

१६१. सर्वोदय [४]

सत्यकी जड़ें

अगर उपर्युक्त व्यवसायोंके लिए यह सम्भव है तो व्यापार-वाणिज्यमें क्यों नहीं हो सकता? व्यापारके साथ हमेशा अनीतिकी कल्पना कर ली गई है, इसका कारण क्या होगा? सोचनेपर मालूम होगा कि व्यापारी हमेशा स्वार्थी ही होता है, ऐसा मान लिया गया है। यद्यपि व्यापारीका धन्धा भी लोगोंके लिए जरूरी होता है, तथापि हम ऐसा मान लिया करते हैं कि उसका हेतु तो अपनी तिजोरी भरना ही है। कायदे-कानून भी ऐसे बनाये जाते हैं जिनसे व्यापारी झटपट मालामाल हो जाये। नीति-रीति भी ऐसी चलाई है कि खरीदार व्यापारीको कमसे-कम दाम चुकाये और बेचनेवाला जैसे बने तैसे खरीदारसे अधिक दाम माँगे और ले। इस प्रकार व्यापारीको आदत डाल दी गई है और फिर लोग खुद ही व्यापारीको उसकी अप्रामाणिकताके लिए नीच मानते हैं। इस नीति-रीतिको बदलनेकी जरूरत है। व्यापारी स्वार्थ ही साधे और धन ही इकट्ठा किया करे, ऐसा कोई नियम नहीं है। ऐसे व्यापारको हम व्यापार नहीं, चोरी कहेंगे। जिस प्रकार सैनिक राज्यके लिए मरता है, उसी प्रकार व्यापारीको जनताके सुखके निमित्त धन खर्च करना चाहिए और जान भी गँवानी चाहिए। सभी राज्योंमें सिपाहीका काम प्रजाकी रक्षा करना है, पादरीका उसे शिक्षण देना है; चिकित्सकका लोगोंको स्वस्थ रखना है; और वकीलका लोगोंमें शुद्ध न्याय फैलाना है; और व्यापारीका काम लोगोंकी आवश्यकता-पूर्तिके लिए जैसा चाहिए वैसा माल जुटाना है। योग्य अवसर आनेपर अपनी जान देना भी इन सब लोगोंका कर्तव्य है। मतलब यह है कि अपनी

जगह छोड़नेके बजाय सिपाहीको वहीं मृत्यु स्वीकार करनी चाहिए। महामारीके समय, खुद महामारीका शिकार हो जानेका खतरा उठाकर भी चिकित्सकको भागना नहीं चाहिए, बल्कि वहाँ हाजिर रहकर अपने रोगियोंकी सेवा-सँभाल करनी चाहिए। सत्यका उपदेश करनेके कारण लोग मार डालें तो भी, मरनेका संकट उठाकर भी, पादरियोंको असत्यका नहीं सत्यका ही उपदेश करना चाहिए। वकीलको ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिए जिससे न्याय हो, फिर चाहे इस प्रयत्नमें उसके प्राण ही क्यों न चले जायें।[1]

हमने उपर्युक्त धन्धे करनेवालोंके लिए मरनेका उचित समय क्या होगा, इसकी चर्चा की। अब सोचें कि लोगोंके हितमें व्यापारीके लिए मरनेका उचित समय क्या हो सकता है। इस सवालपर व्यापारियोंको और दूसरे सब लोगोंको भी विचार करना चाहिए। जो व्यक्ति समय पर मरनेको तैयार नहीं होता वह जीना क्या चीज है सो जानता ही नहीं है। हम देख चुके हैं कि व्यापारीका धन्धा लोगोंको आवश्यक माल जुटाना है। जिस प्रकार पादरीका धन्धा वेतन पाना नहीं बल्कि शिक्षण देना है, उसी प्रकार व्यापारीका काम मुनाफा बटोरनेका नहीं, बल्कि जरूरी जिन्सोंको पूरी तरह जुटा देना है। शिक्षण देनेवाले पादरीको जैसे रोटी मिल ही जाती है वैसे ही व्यापारीको मुनाफा मिल ही जाता है। लेकिन दोनोंमें से किसीका धन्धा वेतन या मुनाफेपर दृष्टि लगाये रखना नहीं है। वेतन अथवा मुनाफा मिले या न मिले, इसका खयाल किये बिना दोनोंको अपना धन्धा — अपना फर्ज — पूरा करना है। यदि यह विचार सही हो तो व्यापारी उत्तम सम्मानके योग्य है, क्योंकि उसका काम अच्छा माल पैदा करना और जनताको पुसा सकनेवाले ढंगसे उसे जुटाना है। ऐसा करनेमें उसके हाथके नीचे जो सैकड़ों या हजारों व्यक्ति रहा करते हैं, उनका रक्षण करना, उनकी सार-सँभाल करना — यह भी उसका काम है। ऐसा करनेके लिए बहुत धैर्य, बहुत कृपालुता और बड़ी चतुराईकी जरूरत होती है। और भिन्न-भिन्न काम करते हुए उसे भी दूसरोंकी तरह जान देनेकी जरूरत आ जाये तो वह दे। ऐसा व्यापारी, उसके ऊपर चाहे जो संकट क्यों न पड़ें, भिखारी बन जानेकी नौबत क्यों न आ जाये, खराब माल नहीं बेचेगा और न किसीको ठगेगा। इतना ही नहीं — वह मातहत लोगोंके साथ बड़ी ममताके साथ व्यवहार करेगा। प्रायः बड़े-बड़े कारखानोंमें अथवा व्यापारमें जो युवक नौकरी करने जाते हैं वे कभी-कभी अपने घरबारसे दूर चले जाते हैं। इसलिए या तो मालिकको उनके माँ-बापका स्थान लेना पड़ता है, या मालिक उनकी ओरसे लापरवाह रहा तो ये युवक बिना माता-पिताके हो जाते हैं। इसलिए व्यापारीको या मालिकको खुदसे पग-पगपर एक ही प्रश्न पूछते रहना उचित है : "मैं जिस तरह अपने बेटोंको रखता हूँ, उसी प्रकार अपने इन नौकरोंके प्रति बरताव कर रहा हूँ या नहीं ?"

कल्पना कीजिए किसी जहाजके कप्तानके नीचे जो खलासी हैं उनमें उसका पुत्र भी भरती हो जाता है। कप्तानका फर्ज यह है कि सभी खलासियोंको अपने पुत्र जैसा ही माने। उसी प्रकार व्यापारीके नीचे काम करनेवाले अनेक नौकरोंमें उसका खुदका पुत्र भी हो, तो

१. **मॉडर्न पेंटर्स**, (खण्ड २, भाग ३, सेक्शन १, अध्याय ३) में रस्किनने प्राणियों द्वारा अपने कर्तव्योंके आनन्दपूर्वक किये जानेकी छबिको ही सौन्दर्य बताया है। उसने कहा है कि मनुष्यमें जीवनकी उचित और आनन्दमय अभिव्यक्ति विशेषरूपसे सौन्दर्यकी प्रतीक है। गांधीजीने भी सत्याग्रहके सौन्दर्य (खूबी) को "सत्यको व्यक्त करनेके लिए सहे गये कष्ट" कहा है। सत्यका साक्षात्कार उसे स्वीकार करनेमें है और इस प्रकार वह सामाजिक सम्बन्धोंको समन्वित करनेमें बुद्धिकी सहायता करता है।

उस व्यवसायमें वह जैसे अपने लड़केके साथ पेश आयेगा उसी प्रकार उसे अन्य नौकरोंके साथ पेश आना चाहिए। इसका नाम ही सच्चा अर्थशास्त्र है। और जिस प्रकार जहाज खतरेमें आ जाये तो कप्तानका फर्ज है कि वह स्वयं जहाजको सबसे आखिरमें छोड़े, उसी प्रकार अकाल इत्यादि अन्य संकटोंमें व्यापारीको चाहिए कि वह अपनेसे पहले अपने आदमियोंकी रक्षा करे। ऐसे विचार किसीको आश्चर्यजनक प्रतीत होंगे लेकिन ऐसा लगना ही इस जमानेकी विचित्रता है। क्योंकि विचार करनेपर सब यह समझ सकेंगे कि सच्ची नीति-रीति तो वही है जो हम अभी कह आये हैं। जिस जातिको ऊँचा उठना है उस जातिमें अन्य प्रकारकी नीति-रीति कदापि नहीं चल सकती। अंग्रेज जाति अबतक टिकी हुई है इसका कारण यह नहीं है कि उसने अर्थशास्त्रके नियमोंका पालन किया है; कारण यह है कि उनको अनेक श्रेष्ठ पुरुषोंने भंग किया है और ऊपर बताई हुई नीतिकी बातोंका पालन किया है। इसीसे वह जाति आजतक टिकी हुई है। नीतिके इन नियमोंको तोड़नेसे कैसी हानि होती है और किस प्रकार जातिको पीछे हटना पड़ता है, इसपर आगे चल कर विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६–६–१९०८

१६२. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

[सोमवार, जून ८, १९०८]

क्या समझौता लिखित है?

कई जगहोंसे यह सवाल पूछा गया है; इसलिए जिन पत्रोंके आधारपर समझौता हुआ है मैं फिर उनका अनुवाद दे रहा हूँ। फिर दे रहा हूँ — कहनेका कारण यह है कि फरवरीमें समझौतेसे सम्बन्धित पत्रोंका अनुवाद और अर्थ दिया जा चुका है।[1] जो पत्र जेलसे भेजा गया था, उसकी उत्पत्ति स्मरण रखने योग्य है। जेलमें सरकारकी तरफसे श्री कार्ट-राइट आये और उन्होंने श्री गांधीके सामने एक पत्र हस्ताक्षर करनेके लिए पेश किया। उसमें कुछ संशोधन किये गये और वह संशोधित पत्र जनरल स्मट्सको भेजा गया। उस पत्रका अनुवाद नीचेके अनुसार है।[2]

क्या-क्या परिवर्तन हुए?

ऊपरके मुताबिक पत्र भेजा गया। मूल मसविदेमें नीचे लिखे मुताबिक था:

(१) चीनियोंकी बात उसमें नहीं थी।

(२) १६ वर्षके भीतरके बालकोंका भी स्वेच्छया पंजीयन करानेकी बात थी।

(३) स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंको कानूनकी रूसे सजा न मिलनेकी बात थी।

(४) समझौतेकी तारीखके बाद वापस आनेवाले भारतीयोंके बारेमें स्पष्टीकरण नहीं था।

(५) पंजीयन-कार्यालय फिर खोलनेकी बात थी।

१. इनका संक्षिप्त अनुवाद किया गया था। देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ६४-७३।

२. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। मूल अंग्रेजीसे अनूदित पाठके लिए देखिए : "पत्र: उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ ३९-४१।

(६) उसमें धार्मिक भावनाके विषयमें कुछ नहीं था।

ऊपरके पत्रमें :

(१) चीनियोंका नाम दाखिल किया गया।

(२) यह निश्चित हुआ कि १६ वर्षके भीतरवालोंके लिए स्वेच्छया पंजीयन भी लागू न हो।

(३) स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंपर कानून लागू न हो, यह निश्चय हुआ। ('कानून लागू न होना' और 'सजा लागू न होना' इन दोनों वाक्यांशोंमें बड़ा अन्तर है। पाठक इस बातको याद रखें।)

(४) समझौतेकी तारीखके बाद आनेवालोंको भी स्वेच्छया पंजीयन करानेका हक रहे।

(५) पंजीयन-कार्यालय फिर खोलनेकी बातके दो अर्थ होते हैं, इसलिए पंजीयन 'स्वीकार करनेके लिए' लिखा गया।[1]

(६) धार्मिक भावनापर कोई चोट नहीं पहुँचनी चाहिए, यह स्पष्ट करनेकी बात जोड़ी गई।

इसमें यह याद रखना चाहिए कि यदि स्वेच्छया पंजीयन करानेवाले लोग अधिक हो गये तो फिर कानून नहीं रह सकेगा। अतः हम देख सकते हैं कि इसमें कानून रद हो जानेकी बात आ जाती है।

जनरल स्मट्सका जवाब

जनरल स्मट्सने इसका निम्नलिखित जवाब दिया।[2]

इसका अर्थ

इस पत्रके द्वारा जनरल स्मट्सने कैदियोंके पत्रको बिना किसी शर्तके स्वीकार किया है। इसलिए यह बात स्वीकृत हुई कि जो स्वेच्छया पंजीयन करायेंगे उनपर कानून लागू नहीं हो सकता और यदि स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंमें सब अथवा अधिकांश भारतीय आ जायें, तो यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कानून रद हो जाना चाहिए।

इसके बाद १ फरवरीको श्री गांधीने जनरल स्मट्ससे मुलाकात की और उन्हें पत्र लिखा। फिर, ३ तारीखको वे प्रिटोरिया बुलाये गये; और तब भी कानून रद करने आदिकी बात हुई। २२ फरवरीको उन्होंने तत्सम्बन्धी विधेयकका मसविदा[3] बनाकर जनरल स्मट्सको भेजा। ये सब बातें तो पाठकोंके ध्यानमें होंगी ही। इसलिए इसमें सन्देह नहीं है कि कानून रद होनेकी बातकी लिखा-पढ़ी हुई है। इस परसे अब आप देख सकते हैं कि जनरल स्मट्स इससे मुकरना चाहते थे; किन्तु वे मुकर नहीं सकते। वे नहीं मुकरेंगे यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, किन्तु इसका दारोमदार केवल हमारे साहसपर है।

१. गांधीजीने 'पंजीयन फिर खोलने' के स्थानपर 'पंजीयन स्वीकार' करना लिख दिया था। देखिए पादटिप्पणी ६, पृष्ठ ४०।

२. कार्यकारी सहायक उपनिवेश सचिव द्वारा लिखित इस पत्रका अनुवाद (पृष्ठ ६४ पर) पहले दिया जा चुका है, इसलिए यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

३. देखिए "पत्र: जनरल स्मट्सको", का संलग्न-पत्र, पृष्ठ १००-०१।

जनरल स्मट्ससे मुलाकात

प्रार्थनापत्र वापस लेनेके नोटिस भेजे जानेके तथा श्री कार्टराइट आदि मित्रोंकी मददके परिणामस्वरूप गत शुक्रवारको नये विधेयकपर चर्चा करनेके बारेमें जनरल स्मट्सका पत्र आया। उसपर तुरन्त समितिकी बैठक बुलाई गई। श्री ईसप मियाँ उसमें उपस्थित हुए और बैठकने प्रस्ताव किया कि जनरल स्मट्ससे पूछा जाये कि इस कानूनमें क्या होगा। श्री गांधी यह जाननेके लिए जायेंगे और समितिको तत्सम्बन्धी विवरण देंगे। श्री गांधीको सूचित किया गया कि वे जनरल स्मट्सके सामने किसी तरह न बँधे; केवल अत्याचारी कानून रद करनेकी बातपर अड़े रहें।

शनिवारको जनरल स्मट्ससे मुलाकात हुई। उस समय कानूनके रचयिता श्री मैथ्यूज, श्री गॉर्जेस[1] और श्री चैमने हाजिर थे। बातचीत करते हुए प्रवासी अधिनियममें फेरफार करने और कानून रद करनेकी चर्चा हुई। जनरल स्मट्सने स्वीकार किया कि एशियाई कानून निकम्मा है। श्री लेनने श्री कार्टराइटको जो पत्र लिखा उसे उन्होंने भूल बताया और कहा कि अन्तमें चाहे जो विधेयक पास किया जाये, किन्तु जिन्होंने स्वेच्छया पंजीयन करा लिया है उनपर कानून लागू नहीं होगा। जिन्होंने पंजीयन नहीं कराया है, उनकी हदतक कानून रद होगा या नहीं, इसके विषयमें पूरा आश्वासन न देते हुए उन्होंने कहा कि अब फिर नया विधेयक बनेगा। इसका यह अर्थ हुआ कि जनरल स्मट्स अपनी तीन बातोंमें से इस एकका पालन करेंगे कि जिन लोगोंने स्वेच्छया पंजीयन करा लिया है, कानून उनपर लागू नहीं होगा। इस वचनके पालनमें दूसरे दो वचन आ ही जाते हैं, क्योंकि यह नहीं हो सकता कि भारतीय समाजके आधे भागपर एक कानून और आधे भागपर दूसरा कानून लागू हो। अर्थात् कानून रद होगा। होना ही चाहिए। और बादमें आनेवालोंका समावेश नये कानूनमें होना चाहिए।

स्मट्सको पत्र

किन्तु जान पड़ता है कि जनरल स्मट्स सत्याग्रहके तथा स्वेच्छापूर्वक दिये गये प्रार्थना-पत्रोंको वापस माँगनेके भयसे ही न्याय करना चाहते हैं। इसलिए श्री गांधीने शनिवारको उन्हें निम्नलिखित पत्र[2] लिखा।

सोमवारकी शाम तक की परिस्थिति ऐसी है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–६–१९०८

१. ट्रान्सवालके कार्यकारी सहायक उपनिवेश सचिव।

२. यह यहाँ नहीं दिया जा रहा है; देखिए "पत्र: जनरल स्मट्सको", पृष्ठ २६८-७०।

१६३. पत्र : एच० एल० पॉलको

जोहानिसबर्ग,
जून ११, १९०८

प्रिय श्री पॉल,

श्री लुई जोज़ेफने[1] मुझे लिखा है कि अब आप जोज़ेफ रायप्पनमें दिलचस्पी ले रहे हैं। यदि आप कुछ रुपया इकट्ठा कर सकें तो यह अधिक अच्छा होगा, क्योंकि जोज़ेफको निश्चय ही कुछ और रुपयेकी आवश्यकता होगी। यहाँ अभीतक धन-संग्रह चल रहा है। इसके अलावा बात यह है कि यदि चन्दा हो जाये तो वह श्री पोलकको दिया जा सकता है, क्योंकि श्री पोलकने ५० पौंड बिलकुल दे नहीं दिये हैं।[2] वे आशा करते हैं कि जोज़ेफ उन्हें यह रकम लौटा देंगे। इससे यह रुपया फिर किसी उपयोगी कार्यके लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

बालिका ऐंजी[3], स्पष्टतः अपने संरक्षकको बिलकुल भूल गई है। शायद वह सोचती है कि उसे अब संरक्षणकी जरूरत नहीं रही है, किन्तु उससे कहें, वह इस बातको न भूले कि अभी बहुत दिन नहीं हुए, जब श्री आइज़क और मैं उसे हाथोंपर बहुत दूर तक उठाकर ले गये थे।

आपका, हृदयसे,
मो० क० गांधी

श्री एच० एल० पॉल[4]
मुख्य मजिस्ट्रेटका दफ्तर
डर्बन

मूल अंग्रेजी पत्रकी प्रतिलिपि (सी० डब्ल्यू० ४५४७) से। सौजन्य: यूजिन जोज़ेफ पॉल, पीटरमैरित्सबर्ग।

१. जोज़ेफ रायप्पनके सम्बन्धी।
२. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २६७।
३. श्री पॉलकी पुत्री।
४. दक्षिण आफ्रिकामें मजिस्ट्रेटकी अदालतोंमें एक भारतीय दुभाषिये।

१६४. नेटालका परवाना कानून

हमें आशा है कि श्री काजीकी अपीलकी[1] सफलतासे कोई भारतीय ऐसा न समझेगा कि अब परवाना-सम्बन्धी तकलीफ दूर हो गई। उनकी इस जीतका अर्थ इतना ही है कि अपीलकी सुनवाई उन्हीं लोगोंकी हो सकती है जिनका उसमें स्वार्थ हो। इस अपीलको वैसा ही समझना चाहिए जैसा कि सोमनाथ महाराजका मामला[2] था। जबतक परवाना कानून मौजूद है और [परवाना] अधिकारीको सर्वोपरि सत्ता प्राप्त है तबतक भारतीय व्यापारियोंके लिए पूरी जोखिम कायम है। फिर, नया कानून पास होनेका डर है, जो जलेपर नमक छिड़कने जैसा है।

जिस समय समाज ऐसे संकटमें है उस समय कुछ लोग मेन लाइनके भारतीयोंके अधिकारोंकी बात लेकर झगड़ते नजर आ रहे हैं। हम तो ऐसा मानते हैं कि मेन लाइनके और दूसरी लाइनके भारतीयोंके हित विरोधी नहीं हैं, इसलिए यह सवाल खड़ा ही नहीं होता कि न्यासी कौन है। जबतक कांग्रेसका काम ईमानदारीसे होता रहे तबतक कहने-जैसा अधिक कुछ रहता नहीं। मेन लाइनके कई भारतीय उपाध्यक्षके पदपर हैं ही, और यदि वे कभी-कभी डर्बनमें हाजिर हो सकें तो वे प्रबन्धकारिणी समितिमें भी लिये जा सकते हैं। समितिमें दाखिल होना कठिन नहीं है। लेकिन दाखिल होनेके बाद यदि समितिकी बैठकोंमें हाजिर न हों तो उससे समितिका काम रुकना नहीं चाहिए। इसका सरल रास्ता यह है कि मेन लाइनवाले [अपनी ओरसे] डर्बनके ही किसी ऐसे आदमीको नियुक्त कर दें जिसपर उनका भरोसा हो और उसे हमेशा हाजिर रहनेके लिए कहें।

किन्तु जो संकट [हमारे सामने] खड़ा हुआ है उसे देखते हुए यह सारी चर्चा निरर्थक मालूम होती है। हम सबको सरकारके मुकाबलेमें खड़ा होना है। एक भारी पूर बढ़ता जा रहा है; उसे रोकना है। इसमें जितने मिलें उतने हाथोंकी जरूरत है। यह कैसे होगा? व्यापारियोंसे सम्बन्धित जो कानून अभी हैं और जो बननेवाले हैं उनका सच्चा इलाज सत्याग्रह है, और सत्याग्रहमें एकताकी बहुत जरूरत है। इसलिए हरएक भारतीयको हमारी यह सलाह है कि अभी तो वह शत्रुसे लड़नेके लिए बख्तर पहने।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–६–१९०८

१. मापूमूलो डिवीजनके परवाना अधिकारीने श्री काजीका परवाना नया कर दिया था, किन्तु परवाना निकायने उसकी पुष्टि करनेसे इनकार कर दिया। श्री काजीकी ओरसे निकायके इस निर्णयके खिलाफ नेटालके सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की गई थी। अपीलका आधार यह था कि निकायके एक सदस्य श्री कार्टर उसी डिवीजनमें दूकान चलाते हैं इसलिए उक्त मामलेमें उनका स्वार्थ है, और फलतः वे उसपर विचार करनेके लिए योग्य व्यक्ति नहीं हैं। अपने निर्णयमें सर्वोच्च न्यायाधीशने यह राय व्यक्त की कि श्री कार्टरका उक्त मामलेमें ऐसा कोई स्वार्थ नहीं है, जिससे वे उस निकायके न्यायासनपर न बैठ सकें। श्री व्हिटकरके बारेमें, जो एक दूकानमें नौकर-मात्र था और जिसने निकायके समक्ष श्री काजीका परवाना नया करनेके खिलाफ अपील की थी, सर्वोच्च न्यायाधीशने कहा कि उसका स्वार्थ इस कोटिका नहीं है कि परवाना दिये जानेके बारेमें उसका विरोध न्याययुक्त माना जा सके। जबतक सम्बन्धित मामलेमें किसी व्यक्तिका सीधा, व्यक्तिगत और ठोस स्वार्थ न हो तबतक उसे अपील करनेका अधिकार नहीं है। अदालतने परवाना निकायकी कार्यवाहीको रद कर दिया।

२. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ४३७।

१६५. रोडेशियामें खूनी कानून

रोडेशियाके भारतीयोंपर काले बादल आते मालूम हो रहे हैं। वहाँ नया कानून गढ़नेकी तैयारी हो रही है। एक तरफ भारतीय व्यापारियोंको हैरान किया जायेगा और दूसरी तरफ ट्रान्सवाल जैसा पंजीयनका कानून बनाया जायेगा। यानी इरादा यह है कि भारतीयोंको चारों ओरसे घेर लिया जाये। रोडेशियामें भी अन्तमें भारतीयोंको सत्याग्रहकी लड़ाईका आश्रय लेना होगा। यह लड़ाई, वहाँ गोरोंके साथ उनके सम्बन्ध कैसे हैं, कितने और कैसे भारतीय वहाँ रहते हैं[1], इन और ऐसी ही दूसरी बातोंपर निर्भर करती है।

इसके सिवा, वहाँके भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिको लिखते रहना चाहिए और पैसे भेजते रहना चाहिए। यह तो सबने देख ही लिया है कि यह समिति कितना अमूल्य काम कर रही है।

रोडेशियामें ट्रान्सवाल जैसा जो कानून बननेवाला है उसकी नकल हमने देखी है। यह कानून ट्रान्सवालके कानूनसे भी ज्यादा बुरा है, क्योंकि वह स्त्रियोंपर भी लागू किया जायेगा। और उसमें कहा गया है कि उसके पास होनेके छः माहके अन्दर जो भारतीय अपना पंजीयन करा लेंगे, वे ही करा सकेंगे। हमें समाचार मिला है कि रोडेशियाके भारतीय इसका विरोध करेंगे। उनके हाथमें [इस आशयकी] अर्जी की प्रतियाँ भी तैयार हैं। यदि वे इस प्रयत्नमें अपनी पूरी ताकत लगायेंगे तो यह कानून कदापि पास न होगा। और अपनी पूरी ताकत लगाना उनका कर्तव्य है।

यह उदाहरण सिद्ध करता है कि ट्रान्सवालमें लड़ाई शुरू करके हमने ठीक ही किया है और यह कि लोगोंको अपना प्रयत्न बराबर जारी रखना होगा। दुनियाके हरएक हिस्सेमें एशियाइयों और यूरोपीयोंके बीच झगड़ा चल रहा है। उसमें जीत उसीकी होगी जिसके पक्षमें सत्य होगा। अभी तो सत्य एशियाइयोंके पक्षमें मालूम होता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–६–१९०८

१. इसी दिनके **इंडियन ओपिनियन**के सम्पादकीयके अनुसार ऐसे भारतीयोंकी संख्या अनुमानतः ५०० से कम थी।

१६६. सर्वोदय [५]

दौलतकी नसें

सत्यकी जड़ोंके विषयमें हम पहले जो कह आये हैं उसका जवाब अर्थशास्त्री शायद इस प्रकार देंगे : 'आपसकी स्नेहभावनासे कुछ लाभ होता है, यह सही है, किन्तु इस प्रकारके लाभका हिसाब अर्थशास्त्री नहीं किया करते। वे जिस शास्त्रका विचार करते हैं उसमें तो केवल इस बातका विचार होता है कि किस प्रकारसे धनाढ्य हो सकते हैं। ऐसा शास्त्र गलत नहीं है, केवल इतना ही नहीं, बल्कि अनुभवसे मालूम हो सकता है कि वही प्रभावकारी है। जो उस शास्त्रके अनुसार चलते हैं, वे जरूर दौलतमन्द हो जाते हैं। और जो उसके मुताबिक नहीं चलते हैं, वे निर्धन हो जाते हैं। यूरोपके सभी धनवान व्यक्तियोंने इस शास्त्रके नियमोंका अनुसरण करके धन-संग्रह किया है। इस बातके विरोधमें दलीलें पेश करना व्यर्थ है। प्रत्येक अनुभवी व्यक्ति यह जानता है कि पैसा कैसे मिलता है और कैसे जाता है।'

यह उत्तर ठीक नहीं है। व्यापारी लोग पैसा कमाते हैं, परन्तु उन्होंने उसे ठीक साधनोंसे कमाया है या नहीं और उससे समाजका भला हुआ है या नहीं, सो वे नहीं जान सकते। वे लोग बहुत बार "पैसेवाला" शब्दका अर्थ भी नहीं समझते। जहाँ अमीर होते हैं, वहाँ गरीब होते ही हैं, इस बातका भान उन्हें नहीं होता। अनेक बार लोग भूलसे ऐसा मान लेते हैं कि अमुक रास्ते चलनेसे सभी अमीर बन सकते हैं। वास्तवमें यह प्रकिया कुएँके रहट जैसी है, जिसमें एक (डिब्बा) खाली होता है तभी दूसरा भरता है। आपके पास यदि एक रुपया है तो उसकी सत्ता उसीपर चलती है जिसके पास उतना न हो। यदि दूसरेको उस रुपयेकी गरज न हो तो आपके पासका रुपया आपके लिए बेकार है। मेरे रुपयेकी सत्ता मेरे पड़ोसीकी तंगदस्तीपर निर्भर है। जहाँ पैसेकी किल्लत होती है, वहीं अमीरीकी दाल गल सकती है। इसलिए सार यह निकला कि एकको अगर धनवान होना है, तो दूसरेको तंगीमें रखना होगा।

सार्वजनिक अर्थशास्त्रका मतलब है — ठीक समयपर और ठीक जगहपर आवश्यक एवं आनन्ददायक वस्तुओंका उत्पादन करना, उनको सुरक्षित रखना और उनका लेन-देन करना। जो किसान समयपर फसल तैयार करता और काटता है, जो राज चिनाई ठीक ढंगसे करता है, जो बढ़ई बढ़ईगीरी सुचारु रूपसे करता है, जो स्त्री अपना रसोईघर व्यवस्थित रखती है — इन सबको सच्चा अर्थशास्त्री मानना चाहिए; ये सब जातिकी दौलतमें वृद्धि करनेवाले हैं। इससे विपरीत जो शास्त्र है, वह सार्वजनिक नहीं कहा जा सकता। उसमें तो एक व्यक्ति केवल धातु इकट्ठी करता है और दूसरेको उसकी तंगीमें रखकर उस धातुका उपयोग करता है। इस प्रकारका उपयोग करनेवाले यह हिसाब लगाकर कि उनके खेतों और मवेशियोंसे कितना धन मिलनेवाला है अपनेको उतना धनवान मानने लगते हैं। वे यह नहीं सोचते कि उनके रुपयेका मूल्य सिर्फ इतना ही है जितने पशु व खेत वे उससे जुटा सकते हैं। और फिर जो लोग धातुका — रुपयोंका — संग्रह करते हैं वे इस तरह विचार करते हैं कि वे कितने मजदूर लगा सकेंगे। अब मान लें कि अमुक व्यक्तिके पास सोना, चांदी,

अनाज इत्यादि हैं। ऐसे व्यक्तिको नौकरोंकी गरज होगी ही; परन्तु यदि पड़ोसमें रहनेवालोंमें से किसीको सोने-चाँदी या अनाजकी जरूरत न हो, तो उसे नौकर मिलना कठिन हो जायेगा। इसलिए उस धनाढ्य व्यक्तिको खुद ही अपनी रोटी पकानी पड़ेगी, खुद ही अपने कपड़े सीने पड़ेंगे, उसे खुद ही अपना खेत जोतना होगा। ऐसे व्यक्तिके लिए उसके सोनेका मूल्य उसके खेतकी एक पीली कंकड़ीके बराबर ही होगा। उसका अनाज सड़ेगा क्योंकि वह अपने पड़ौसीसे ज्यादा खानेवाला नहीं है। इसलिए उस व्यक्तिको दूसरोंकी भाँति कठिन परिश्रम करके ही अपना गुजारा करना होगा। ऐसी दशामें बहुत लोग सोना-चाँदी इकट्ठा करनेकी इच्छा न करेंगे। गहराईसे विचार करें तो देखेंगे कि पैसे संग्रह करनेका अर्थ है दूसरोंपर सत्ता प्राप्त करना — अपने सुखकी खातिर नौकरकी, व्यापारीकी अथवा कारीगरकी मजदूरी हासिल करना। ऐसी सत्ता हमें दूसरे लोगोंकी गरीबीके अनुपातसे ही मिल सकती है। एक बढ़ईको नौकर रखनेवाला यदि एक ही आदमी होगा तो बढ़ईको रोजाना मजदूरीके रूपमें जो-कुछ मिलेगा वही ले लेगा। यदि उसे रखनेवाले दो या चार व्यक्ति हुए, तो बढ़ई उसीके यहाँ [काम करने] जायेगा जो उसे ज्यादा [मजदूरी] देगा। निष्कर्ष यह निकला कि धनवान होनेका अर्थ है — जहाँतक बन सके उतने लोगोंको अपनेसे अधिक तंगीमें रखना। अर्थशास्त्री लोग बहुत बार मान लेते हैं कि इस प्रकार लोगोंको तंगीमें रखनेसे जातिको लाभ होता है। सब लोग एक जैसे ही हो जायें ऐसा तो होनेवाला नहीं है। लेकिन अनुचित ढंगसे लोगोंमें तंगी पैदा करनेसे जाति दुःखी होती है। कुदरती ढंगसे पैदा होनेवाली तंगी अथवा बहुतायतके रहनेसे जाति सुखी होती है और सन्तुष्ट रहती है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–६–१९०८

१६७. पत्र : जनरल स्मट्सको[1]

जोहानिसबर्ग,
जून १३, १९०८

प्रिय श्री स्मट्स,

मुझे विश्वास है कि आज आपसे मेरी जो भेंट हुई थी, उसकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करने और कुछ समय लेनेकी धृष्टताके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। जबतक एशियाई प्रश्न, जहाँतक उसका सम्बन्ध एशियाई अधिनियमसे है, हल नहीं हो जाता तबतक मैं आपको कष्ट देनेके लिए मजबूर हूँ।

आपको इसमें सन्देह है कि मैं समाजका पूर्ण रूपसे प्रतिनिधित्व करता हूँ, या दूसरे शब्दोंमें, मैंने जो विचार प्रस्तुत किये हैं वे पूरे समाजके विचार हैं। मैं इसे केवल उसी हदतक स्वीकार करता हूँ जहाँतक इसका सम्बन्ध उन लोगोंसे है जिन्होंने अनाक्रामक प्रतिरोध-संघर्षके दौरान एशियाई अधिनियमको मान लिया था। उन्हें भी मेरे विचारोंसे विरोध नहीं

१. यह पत्र ४–७–१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में दुबारा प्रकाशित हुआ था, और इसकी एक प्रति श्री रिचने उपनिवेश कार्यालयको लिखे गये अपने २७ जुलाई, १९०८ के पत्रके साथ संलग्न करके भेजी थी।

है, किन्तु राष्ट्रीय-चरोंके समान वे भी अब अपने मुँहकी लाज रखना चाहते हैं। किन्तु मुझे आशा है कि आपकी सहायता मिलनेपर मैं समाजके अन्य सदस्योंकी तरह उन्हें भी अपने पक्षमें कर लूँगा। मेरी स्पष्ट राय है कि उन्होंने जो गलती की वह भयवश की। फिर भी उन्हें अपने पक्षमें लानेकी हर कोशिश की जा रही है। और यदि वे न मानें, तो भी क्या? वे बहुत थोड़ेसे लोगोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें से कुछ लोगोंने मेरे साथ कई बार बातचीत की है; और एशियाई अधिनियम रद किया जाये, इसके लिए वे भी असंदिग्ध रूपसे उतने ही उत्सुक हैं जितना कि शेष समाज।

जहाँतक प्रवासी अधिनियमके संशोधनका प्रश्न है, मैं निम्नलिखित बातोंके सम्बन्धमें एशियाइयोंकी स्थिति बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहता हूँ:

१. एशियाई समाज ऐसी कोई स्थिति कभी स्वीकार नहीं करेगा, जिसके अधीन उन लोगोंको, जो अभीतक देशमें प्रविष्ट नहीं हुए हैं, किन्तु जिन्हें प्रवेश करनेका अधिकार है, स्वेच्छया पंजीयन करा लेनेवाले एशियाइयोंसे भिन्न स्तरपर रखा जाये। अतः वे संशोधित अधिनियमके अनुसार ही अपने दस्तावेज बदलेंगे और स्वेच्छया पंजीयनकी अर्जीके फार्मपर ही प्रमाणपत्र लेंगे।

२. जिन शरणार्थियोंको शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अन्तर्गत अभीतक अनुमतिपत्र नहीं मिले हैं उन्हें संरक्षण मिलना चाहिए। शरणार्थी किन्हें कहा जाये, इसकी परिभाषापर कोई आपत्ति नहीं की जायेगी। मेरा सुझाव है कि ११ अक्तूबर, १८९९ से पूर्व जो यहाँ दो वर्षतक रहे हों उन्हें शरणार्थी माना जाये, और एक वर्ष या कुछ ऐसी ही अवधि निश्चित कर दी जाये, जिसके भीतर उनके प्रार्थनापत्र स्वीकार किये जायें। उन्हें यह अधिकार भी होना चाहिए कि वे अपने दावेको किसी न्यायालयमें सिद्ध कर सकें।

३. जिन लोगोंके पास ३ पौंडी डच पंजीयन प्रमाणपत्र हों उन्हें भी संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए; यह सिद्ध करनेकी जिम्मेदारी उन्हींपर हो कि प्रमाणपत्र वास्तवमें उन्हींके हैं।

४. जिन लोगोंके पास शान्ति-रक्षा अध्यादेशवाले अनुमतिपत्र या एशियाई अधिकारियों द्वारा दिये गये अनुमतिपत्र हैं उन्हें भी संरक्षण मिलना चाहिए।

५. [इससे कोई बहस नहीं कि] परीक्षा कैसी हो, किन्तु जिन लोगोंमें अपेक्षित शैक्षणिक योग्यता है, उन्हें यूरोपीय प्रवासियोंकी भाँति ही स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

६. कुछ ऐसे प्रार्थनापत्र भी दिये जा रहे हैं जिनका निर्णय श्री चैमनेने अभी नहीं किया है, या जिन्हें उन्होंने नामंजूर कर दिया है। इनका अन्तिम निर्णय न्यायालयमें होना चाहिए।

आपने मुझसे कहा था कि एशियाई अधिनियममें अधिवासके जो अधिकार दिये गये हैं उनसे अधिक आप नहीं देना चाहते। आप देखेंगे कि उपर्युक्त मामलोंमें केवल उन लोगोंको छोड़कर जिनके पास ३ पौंडी डच पंजीयन प्रमाणपत्र हैं, अन्य सभीके लिए एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत व्यवस्था की गई है, और मेरे विचारमें तथा श्री डंकनके भाषणोंके अनुसार भी, डच पंजीयन प्रमाणपत्र रखनेवालोंको भी मर्जी-सम्बन्धी धाराके अन्तर्गत संरक्षण प्राप्त है। मेरा सुझाव तो सिर्फ यह है कि इस संरक्षणको उनका अधिकार मान लिया जाये, बशर्ते कि वे अपनी प्रामाणिकता सिद्ध कर दें।

मुझे यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत शरणार्थियों-को संरक्षण प्राप्त है, क्योंकि शान्तिरक्षा अध्यादेशके अनुसार उन्हें अनुमतिपत्र अभीतक नहीं दिये गये हैं। आपकी हिदायतों, तथा प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके कारण हाल ही में अनुमति पत्रोंका दिया जाना बन्द किया गया है। लेकिन मुझे विश्वास है कि आपका मंशा यह कभी नहीं रहा होगा कि जो लोग अब भी उपनिवेशसे बाहर हैं और जिन्हें निर्विवाद रूपसे पुराना अधिवासी सिद्ध किया जा सकता है, उनके दावोंपर विचार न किया जाये। शरणार्थियोंकी परिभाषा तथा अवधि-निर्धारण हो जानेसे सम्भावित जालसाजीका भय दूर हो जाता है।

मेरा आपसे अनुरोध है कि आप भारतीयोंकी उस महान सेवाको स्वीकार करें जो उन्होंने भीषण कठिनाइयोंके बावजूद अपनी अँगुलियोंके निशान देकर की है। आप कृपया यह भी स्वीकार करें कि समाजके उस भागने, जो यहाँका अधिवासी है, शैक्षणिक तथा सम्पत्ति-विषयक योग्यताओंके मामलेमें समझौतेकी मर्जी सम्बन्धी-धाराका लाभ नहीं उठाया। इसके पीछे मंशा यह था कि भविष्यमें आनेवाले थोड़े-से लोगोंको संरक्षण मिल सके और यह प्रकट हो सके कि एशियाइयोंमें शालीनताकी, यदि इस शब्दका प्रयोग कर सकूँ तो, कितनी क्षमता है। लेकिन मैं यह भी कह दूँ कि जहाँतक मैं समझता हूँ, जब उनकी दूसरी तरहसे पूरी शिनाख्त हो सकती है, तब वे बाध्य करनेवाली कोई शर्त स्वीकार नहीं करेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि अज्ञान या इसी प्रकारकी कोई और वस्तु अयोग्यताका आधार भले हो, किन्तु जाति या रंग न हो।

उपनिवेशियों द्वारा स्थापित यह महान सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है कि भविष्यमें एशियाई प्रवासको उन्हीं लोगोंतक सीमित रखा जाये जिनके पास ऊँचे दर्जेकी शैक्षणिक योग्यता हो। किन्तु जो लोग देशमें रहनेके अधिकारी हैं वे इस कुटिल प्रतिबन्धको स्वीकार नहीं करेंगे।[1] और यदि यह समस्या उपर्युक्त आधारपर, जिसे मैं बहुत मुनासिब आधार समझता हूँ, नहीं हल होती तो बेहतर यही है कि वह कभी हल ही न की जाये।

जैसा कि आपने वचन दिया है, मुझे विश्वास है कि आप विधेयकके मसविदेको प्रकाशित करनेसे पहले मुझे दिखा देंगे।

मैंने ब्रिटिश भारतीय संघकी समितिको सूचित कर दिया है कि आपने मामलेको आगामी सप्ताहमें तय करनेका निश्चित रूपसे वचन दिया है। अतः समितिने मुझे अधिकार दिया है कि मैं इस बीच हलफनामोंका[2] दाखिल करना स्थगित रखूँ।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

जनरल जे० सी० स्मट्स
प्रिटोरिया

इंडिया ऑफिस, ज्यूडिशियल और पब्लिक रेकर्ड्स (२८९६/०८); हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८२७/अ) से भी।

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २२८, २३६।
२. ये हलफनामे २३ जून, १९०८ को दाखिल किये गये थे।

१६८. प्रार्थनापत्र : ट्रान्सवाल विधानसभाको[1]

जोहानिसबर्ग,
जून १५, १९०८

सेवामें
माननीय अध्यक्ष महोदय तथा सदस्यगण
ट्रान्सवालकी सम्मान्य विधानसभा
प्रिटोरिया

ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षकी हैसियतसे ईसप मियाँका प्रार्थनापत्र

सविनय निवेदन है कि :

(१) प्रार्थीने उपनिवेशके स्वर्ण कानूनका संशोधन चाहनेवाले विधेयकके[2], जो अभी हालमें सरकारी 'गजट' में प्रकाशित किया गया है, खण्ड ३, १०४, ११३, ११४, १२७ और १२८ को, आतंककी भावनासे पढ़ा है।

(२) प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करता है कि उपर्युक्त खण्डोंके परिणामस्वरूप —यदि वे इस सम्मान्य सदन द्वारा स्वीकृत कर लिये गये — ट्रान्सवालमें बसे हुए ब्रिटिश भारतीयों-पर वर्तमान स्वर्ण कानूनके अन्तर्गत अपेक्षित निर्योग्यताओंसे अधिक गम्भीर निर्योग्यताएँ लग जायेंगी और इस प्रकार एक शान्तिप्रिय और विधिचारी समझे जानेवाले समाजके लिए भारी क्षति और विनाशका खतरा आ जायेगा।

(३) प्रार्थी इस सम्मान्य सदनका ध्यान इस उपनिवेशमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंकी नीचे लिखी हुई कुछ खास आपत्तियोंकी[3] ओर आकृष्ट करनेका साहस करता है :

(क) अधिनियम "रंगदार व्यक्ति" की व्याख्यामें "कुली" शब्द बरकरार रखता है। और जैसा कि इस सम्मान्य सदनको निःसन्देह ज्ञात है, यह शब्द उप-निवेशकी मौजूदा ब्रिटिश भारतीय आबादीके सम्बन्धमें प्रयुक्त किया जाता है तो भावनाओंको आघात पहुँचानेवाला बन जाता है; क्योंकि ट्रान्सवालमें, सही अर्थोंमें, "कुली" यदि हैं भी तो बहुत ही थोड़े हैं। इसके अतिरिक्त, एशियाइयों और आफ्रिकाके आदिवासियोंको, तथा ब्रिटिश प्रजाजन और गैर-ब्रिटिश प्रजाजनोंको एक ही कोष्ठकमें रखना सम्राट्के ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंकी विशेष स्थितिकी उपेक्षा करना है।

(ख) प्रार्थीकी विनम्र सम्मतिके अनुसार "अनगढ़ सोने" की परिभाषाका मंशा भारतीय सुनारोंको विलायतमें तैयार किये गये तथा वहाँसे आयात किये गये

१. यह २०–६–१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में "ट्रान्सवाल स्वर्ण कानून : ब्रिटिश भारतीयोंका विरोध" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

२. कच्चे स्वर्ण कानूनके तत्सम्बन्धी खण्डोंके लिए देखिए परिशिष्ट २।

३. देखिए "पत्र : उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ १९३-९४ भी।

सोनेकी छड़से भी बर्तन या आभूषणादि निर्मित करनेका धन्धा चलानेसे रोकनेका है। निवेदन है कि सम्बद्ध सुनारोंके हकमें यह एक दारुण कठिनाई सिद्ध होगी।

(ग) रंगदार लोगोंपर कानूनकी सामान्य निषेधक धाराएँ तो लागू होती ही हैं, उनकी सीमातक, कच्चे सोनेके व्यापारके सम्बन्धमें मूल कानूनको भी यथावत् रहने दिया गया है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि इस प्रकारके अपराधोंमें रंगदार लोगोंकी प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक है, जबकि प्रार्थी संघकी विनम्र सम्मतिमें, जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका मामला है, वस्तुस्थिति इसके विपरीत है।

(घ) प्रार्थी यह दावा करनेका साहस करता है कि अधिनियमका खण्ड १२७ अस्पष्ट रूपसे लिखा गया है और ऐसा प्रतीत होता है कि उसका मंशा इस अधिनियमके अन्तर्गत ब्रिटिश भारतीयों द्वारा कोई भी अधिकार प्राप्त करनेपर पूरा निषेध लगाना है। उसी खण्डके अन्तर्गत यह व्यवस्था भी की गई है कि विधेयकके पूर्व जिन लोगोंको जो-कुछ अधिकार प्राप्त थे, उनको वे किसी रंगदार व्यक्तिके नाम हस्तान्तरित नहीं कर सकते और न उन्हें शिकमी तौरपर ही दे सकते हैं। यह निषेध प्रस्तावित अधिनियमको प्रभावतः भूतलक्षी बनाता है।

(ङ) खण्ड १२८ का मंशा यह है कि कुछ घोषित क्षेत्रोंमें, उदाहरणार्थ पूरे विटवाटर्सरैंड जिलेमें, बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंको अनिवार्य रूपसे पृथक् रखा जाये; और यदि उसे इस सम्मान्य सदनकी स्वीकृति मिल गई, तो ब्रिटिश भारतीयोंके एक बहुत बड़े भागका उपनिवेशमें रहना तक असम्भव हो जायेगा। प्रार्थी इस सम्मान्य सदनको स्मरण कराना चाहता है कि ट्रान्सवालमें रहनेवाले अधिकांश ब्रिटिश भारतीय उपर्युक्त क्षेत्रोंमें ही हैं, जबकि ब्रिटिश भारतीयोंको अनिवार्य रूपसे पृथक् रखे जाने और चूक हो जानेपर उनपर जुर्माना ठोंके जानेका सिद्धान्त वर्तमान निर्योग्यताओंको अप्रत्यक्ष साधनों द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे कायम रखना है। प्रार्थी संघ इस निर्योग्यताका बराबर विरोध करता आया है।

(४) प्रार्थी यह दावा करनेका साहस करता है कि चूँकि ये धाराएँ जाति और वर्ग-भेदपर आधारित हैं, इसलिए उनसे ब्रिटिश भारतीय समाजको कभी भी सन्तोष प्राप्त नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, इस प्रकारके भेदभाव उस समाजपर, जिसका प्रतिनिधित्व करनेका सौभाग्य प्रार्थीको मिला है, अकारण ही लांछन आरोपित करते हैं, क्योंकि वे ट्रान्सवालके गोरे उपनिवेशियोंके दिलमें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति घृणा और तिरस्कारके भाव अनिवार्य रूपसे भरे बिना नहीं रह सकते, और इस प्रकारसे इन दोनों जातियोंके बीच अधिक सद्भाव स्थापित होनेके मार्गमें दुर्भाग्यवश जो कठिनाइयाँ मौजूद हैं, उनमें वृद्धि होती है।

(५) प्रार्थीकी विनम्र सम्मतिमें उपर्युक्त प्रतिबन्धोंके फलस्वरूप स्पष्टतया ब्रिटिश भारतीयोंको किसी भी प्रकारकी विशेष सुविधा तो प्राप्त नहीं ही होती, उलटे वे अपने अनेक वर्तमान अधिकारों और सम्मानसे वंचित हो जाते हैं।

(६) प्रार्थी सम्मान्य सदनको इस बातका भी स्मरण कराता है कि ट्रान्सवालमें बसी हुई ब्रिटिश भारतीय जनतापर और अधिक निर्योग्यताएँ लादनेका फल यह होगा कि भारतमें रहनेवाले सम्राट्के करोड़ों प्रजाजनोंके मनमें भरे कटुता और सन्तापके भाव और भी उग्र हो उठेंगे।

(७) अतएव, प्रार्थी नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता है कि यह सम्मान्य सदन उपर्युक्त तजवीजों को अस्वीकृत कर देनेकी अथवा अन्य किसी प्रकारकी राहत, जिसे सदन उचित समझे, देनेकी कृपा करे। और इस अनुकम्पाके लिए . . . इत्यादि, इत्यादि।

ईसप इस्माइल मियाँ
[अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ]

प्रिटोरिया विधानसभा आर्काइव्ज़ तथा कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स २९१/१३२ से।

१६९. प्रार्थनापत्र : ट्रान्सवाल विधानसभाको[1]

जोहानिसबर्ग
जून १५, १९०८

सेवामें
माननीय अध्यक्ष और सदस्यगण
ट्रान्सवाल विधानसभा
प्रिटोरिया,

ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षकी हैसियतसे ईसप इस्माइल मियाँका प्रार्थनापत्र

सविनय निवेदन है कि

१. इस उपनिवेशके सरकारी 'गज़ट' में हाल ही में प्रकाशित नगरपालिका प्रशासनसे सम्बन्धित कानूनका एकीकरण और संशोधन करनेकी दृष्टिसे प्रस्तुत विधेयकके खण्ड ६८, ९३, ९४, और १७२ को आपके प्रार्थीने गहरी चिन्तासे पढ़ा है।

२. आपके प्रार्थीकी नम्र रायमें यदि यह सम्मान्य सदन विधेयकके उन खण्डोंको मान्यता प्रदान करता है, तो वे ट्रान्सवाल निवासी ब्रिटिश भारतीय समाजको भारी कठिनाई और हानिमें डाल देंगे, अनेक शान्तिप्रिय और विधिचारी नागरिकोंको बरबाद कर डालेंगे और कितने ही भारतीय परिवारोंको छिन्न-भिन्न कर देंगे।

३. आपका प्रार्थी दृढ़तापूर्वक यह कहनेका साहस करता है कि चूँकि विधेयकके ये खण्ड प्रजाति और वर्गके भेदोंपर आधारित हैं, इसलिए ये ब्रिटिश भारतीय समाजको कभी सन्तोष नहीं दे सकते। इसके सिवा, यह भेदभाव उस समाजपर, जिसका प्रतिनिधित्व करनेका आपके प्रार्थीको सम्मान प्राप्त हुआ है, ऐसा लांछन लगाता है जिसका वह समाज पात्र नहीं है। कारण, इन भेदोंसे ट्रान्सवालके गोरे उपनिवेशियोंके मनमें अनिवार्य रूपसे ब्रिटिश भारतीयोंके

१. यह **इंडियन ओपिनियन**में "ट्रान्सवाल नगरपालिका एकीकरण विधेयक : ब्रिटिश भारतीयोंका विरोध" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

प्रति घृणा और उपहासके भाव पैदा होंगे और इस तरह इन दोनों समाजोंके बीचमें सद्भावके निर्माणके रास्तेमें दुर्भाग्यवश जो कठिनाइयाँ मौजूद हैं वे बढ़ेंगी।

४. आपके प्रार्थीकी नम्र रायमें विधेयकके पूर्वोक्त नियमोंपर इस आधारपर गम्भीर आपत्ति की जा सकती है कि वे उनकी स्वतन्त्रतापर, जिनपर कि वे लागू किये जायेंगे, बन्धन लगाते हैं। कारण, इन नियमोंके द्वारा नगरपालिकाओंको निम्नलिखित कार्य करनेकी सत्ता देनेका प्रयत्न किया जा रहा है :

(क) एशियाइयोंके पृथक्करणकी, और इस तरह, ब्रिटिश भारतीयोंको अलग बसानेके उस सिद्धान्तकी पुनःस्थापनाकी, जिसका यह संघ लगातार विरोध करता आया है।

(ख) जो प्रभावित होंगे, उनकी सुविधाका विचार किये बिना और उन्हें उतनी ही कीमती तथा सुविधाजनक दूसरी जगह देनेका आश्वासन दिये बिना एशियाइयोंके मौजूदा बाजार बन्द करनेकी (जैसा कि सम्मान्य सदन आसानीसे देख सकता है, भूस्वामित्वकी यह अनिश्चितता ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थायी और भद्रोचित जीवन-पद्धतिमें तथा उनके द्वारा स्थायी और पक्के निवास-गृह खड़े करनेमें भी निःसन्देह गम्भीर बाधा उपस्थित करेगी)।

(ग) अमुक प्रकारके परवाने — जिनमें फेरीवालों और खोमचेवालोंके परवाने भी शामिल हैं — देनेसे मनमाने तौरपर इनकार करनेकी। जिन्हें परवाना देनेसे इनकार किया जायेगा उन्हें नगरपालिकाओंके निर्णयके खिलाफ अपील करनेका भी अधिकार नहीं होगा। इस तरह व्यापारियों, छोटे व्यवसायियों, फेरीवालों, खोमचेवालों और दूसरोंके धन्धोंपर ये नियम घातक प्रहार करते हैं और उनके लिए आसन्न विनाशका खतरा पैदा करते हैं। जो परवाने इस अन्तिम नियमके अन्तर्गत आते हैं, उन्हें इस विधेयकके अनुसार उन लोगोंको भी देनेसे इनकार किया जा सकता है जिन्हें आज नगरपालिकाओंके प्रतिकूल निर्णयोंके खिलाफ अपील करनेका अधिकार प्राप्त है।

(घ) ऐसे धन्धों और व्यवसायोंका निर्देश करनेकी, जिनसे ब्रिटिश भारतीय सर्वथा बहिष्कृत होंगे। उन्हें न तो इनके लिए परवाने दिये जायेंगे और न नौकरी ही दी जायेगी। इस तरह उनके प्रामाणिक जीविका कमानेके साधन सीमित कर दिये जायेंगे।

(ङ) सभ्य वेश-भूषा और भद्र आचरणवाले ब्रिटिश भारतीयोंको भी नगर-पालिकाकी ट्राम-गाड़ियोंमें यात्रा करनेका निषेध करनेवाले विनियमोंकी रचना करनेकी और इस तरह एक अत्यन्त सभ्य जातिका अपमान करने और उसे इस देशके आदि-वासी वतनीके स्तरपर उतारनेकी।

(५) आपके प्रार्थीकी नम्र रायमें, पूर्वोक्त प्रकारके बन्धन स्पष्टतः ब्रिटिश भारतीयोंको कतई कोई अधिकार प्रदान नहीं करते; उलटे, वे उन्हें उनके अनेक विद्यमान अधिकारों और प्राप्त सम्मानसे वंचित करते हैं।

(६) आपका प्रार्थी इस सम्मान्य सदनको इस बातकी याद दिलानेका साहस करता है कि ट्रान्सवालकी भारतीय आबादीपर और अधिक निर्योग्यताओंका लादा जाना सम्राट्की भारतवासी प्रजाके लाखों लोगोंके मनमें विद्यमान क्षोभ और कटुताके भावको बहुत ज्यादा उग्र कर देगा।

(७) इसलिए आपका प्रार्थी सविनय प्रार्थना करता है कि यह सम्मान्य सदन विधेयककी उपर्युक्त धाराओंको अस्वीकार करनेकी या कोई दूसरी राहत, जो उसे उचित प्रतीत हो, देनेकी कृपा करे। और उसके इस कार्यके लिए, आदि।

ईसप इस्माइल मियाँ
[अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय संघ]

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २०–६–१९०८

१७०. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

रविवार [जून १४, १९०८]

जनरल स्मट्स

समझौतेका अन्त रोज-रोज नजदीक आता हुआ जान पड़ता है। फिर भी परिस्थिति ऐसी मजेदार हो गई है कि मैं आज जो कुछ लिख रहा हूँ छपनेतक वह सबका-सब रद हो जाये या सबका-सब सही उतरे यह सम्भव है।

श्री गांधीके जनरल स्मट्सको पत्र[1] लिखनेके बाद श्री लेनर्डसे मिलनेकी कोशिश की गई, किन्तु श्री लेनर्ड मिल नहीं सके। उक्त महोदय एक बड़े आयोगमें व्यस्त होनेके कारण फिलहाल किसीसे मिलते नहीं जान पड़ते। इस तरह प्रतीक्षा करनेके बाद और जनरल स्मट्ससे कोई जवाब न पाकर श्री लेनर्डसे कुछ कम किन्तु खासे अच्छे बैरिस्टर श्री वार्डसे श्री गांधीने शुक्रवार तारीख १२ को भेंट की। श्री वार्डकी राय भी श्री लेनर्ड जैसी ही जान पड़ी कि सरकारको प्रार्थनापत्र वापस करनेके सिवा चारा नहीं है। अतएव श्री गांधीने श्री स्मट्सको तार[2] किया कि यदि वे जवाब नहीं देते, तो एक बड़े वकीलकी यह सलाह है कि मामला सर्वोच्च न्यायालयमें जाना ही चाहिए। एक तरफ तार गया और दूसरी तरफ श्री इब्राहीम इस्माइल अस्वात, श्री ईसप मियाँ और श्री गांधीने एक हलफनामा[3] बनाया और मामलेकी तैयारी शुरू हो गई। इस बीच श्री स्मट्सका तार आया कि शनिवार तारीख १३ को सुबह ९.४५ पर विंचेस्टर हाउसमें मुलाकात की जाये। तदुपरान्त इसको देखते हुए हलफनामेका प्रिटोरिया भेजा जाना रोक दिया गया।

जनरल स्मट्सने मुलाकातमें कहा कि नया कानून तो रद होगा और प्रवासी प्रतिबन्धक कानूनमें फेरफार किया जायेगा, किन्तु फिलहाल उन्हें अपने कानून बनानेवालोंसे मिलना है। इसलिए उन्होंने एक सप्ताह तक रुकनेकी सलाह दी और कहा कि ब्रिटिश भारतीय संघ समस्त भारतीयोंकी ओरसे नहीं बोल सकता; उन्हें कुछ भारतीयों द्वारा कानून बनाये रखनेके लिए प्रार्थनापत्र मिला है।

१. देखिए "पत्र: जनरल स्मट्सको", पृष्ठ २६८-७०।
२. यह उपलब्ध नहीं है।
३. देखिए "प्रार्थनापत्र: ट्रान्सवाल सर्वोच्च न्यायालयको", पृष्ठ ३०३-०४ और ईसप मियाँ तथा गांधीजीके हलफनामोंके लिए देखिए पृष्ठ ३०५ और ३०६-०७।

उसी दिन ११ बजे [ब्रिटिश भारतीय संघकी] समितिकी बैठक हुई। उसमें यह प्रस्ताव हुआ कि एक हफ्ते तक प्रतीक्षा की जाये। बैठकमें अध्यक्ष श्री ईसप मियाँ और अन्य बहुत-से भारतीय उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त यह प्रस्ताव हुआ कि यदि जनरल स्मट्सकी ओरसे अन्तिम जवाब न मिले तो रविवारको सारे भारतीय बाहरके नगरोंसे भी बुलाये जायें और सभा करके यह सबपर जाहिर कर दिया जाये।

स्मट्सको पत्र

बैठकके बाद जनरल स्मट्सको श्री गांधीने निम्नलिखित पत्र लिखा।[1]

ऊपरके पत्रमें जनरल स्मट्ससे जो कहा गया है, उसमेंसे कितना मिल सकेगा, यह समाजकी हिम्मतपर निर्भर है।

बुधवार [जून १६, १९०८]

विलायतमें कानूनपर चर्चा

आजके अखबारमें तारकी खबर है कि विलायतमें इस सवालपर चर्चा हो रही है। इसके सिवा ऐसा तार भी है कि खूनी कानून रद करनेकी बात तय हो गई है और भारतमें समितियाँ बनाई गई हैं, जिनका काम प्रवासी भारतीयोंके अधिकारोंकी रक्षा करना है। इस विषयमें सर रिचर्ड सालोमनने [एक प्रश्नका] अधूरा जवाब दिया और कहा कि एशियाई कानूनमें सुधार होगा। इसलिए कानून रद नहीं किया जायेगा। मैं स्वयं इस जवाबको महत्त्वपूर्ण नहीं मानता।

ऊपरके तारका सारांश तो यह है कि सत्याग्रहकी लड़ाईकी जड़ें गहरी चली गई हैं और उसका रंग दिनोंदिन निखरता जा रहा है। इसके सिवाय यह अर्थ भी स्पष्ट होता है कि श्री रिच विलायतमें जरा भी चैन नहीं लेते और अपना काम करते चले जाते हैं।

'प्रिटोरिया न्यूज़'

'प्रिटोरिया न्यूज़' ने लिखा है:

> हमें खबर मिली है कि जनरल स्मट्सने श्री गांधी को जो वचन दिया है उसके मुताबिक कानून रद हो जायेगा और स्वेच्छया पंजीयन, प्रवासी कानूनके अन्तर्गत वैध बना दिया जायेगा। इसके साथ अदालतमें अपील करनेकी शर्त भी शामिल कर ली जायेगी। इस प्रकारके ये सुधार बड़ी सरकारकी सूचनापर किये जायेंगे।
>
> उपर्युक्त समाचार पत्रोंमें छपा है। इसपर टिप्पणी देते हुए पत्रके सम्पादक लिखते हैं:
>
> गवर्नरके भाषणमें एशियाइयोंके बारेमें थोड़ा कहकर चतुराईकी गई है। हम दूसरी जगह जो कह चुके हैं उसके मुताबिक सरकार पूरी तरह हार गई है। स्वेच्छया पंजीयन वैध किया जायेगा, केवल इतना ही नहीं, बल्कि एशियाई कानून रद होगा और प्रवासी अधिनियममें परिवर्तन होगा। उपनिवेश-सचिव इस तरह कानून रद

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। मूल अंग्रेजी पत्रके अनुवादके लिए देखिए "पत्र: जनरल स्मट्सको", पृष्ठ २८१-८३।

करना चाहते हैं, इसलिए हम श्री गांधीको सलाह देते हैं कि वे फिरसे सत्याग्रहकी लड़ाई शुरू न करें। यह स्पष्ट है कि उदार दलमें भारतीय समाजके अच्छे मित्र हैं।

सर जॉर्ज फेरार

संसदमें भाषण करते हुए सर जॉर्ज फेरार इस तरह बोले:

> प्रगतिवादी दल सरकारसे कहता है कि वह हमारे साथ समझौता कर ले। ऐसा करनेके लिए उदाहरण हैं। जब एशियाई कायदेके बारेमें सरकारको कष्ट हुआ था, तब उसने प्रगतिवादी दलकी मदद ली थी[1] . . . । भारतीय समाजके बारेमें जो-कुछ हुआ है, सो हम जानते हैं। सरकारने भारतीय समाजके बारेमें जो कुछ किया वैसा पुलिसके सिपाहियोंके प्रति क्यों नहीं करती? क्या वह पुलिसके प्रति भारतीयोंसे भी बुरा बरताव करेगी?

इस तरह सभी स्थानोंपर सत्याग्रहियोंका उदाहरण दिया जाता है। इसी तरह मंगलवारकी रातको 'नेटिव अफेयर्स-सोसाइटी' में बात निकली और भारतीय सत्याग्रहका उदाहरण दिया गया।

कब्रिस्तान[2]

फिलहाल यह झगड़ा खत्म हुआ जान पड़ता है। टाउन क्लार्ककी ओरसे टेलिफोन-पर खबर मिली है कि कब्रिस्तानमें मुसलमानोंके सिवा अन्य मुर्दे नहीं दफनाये जायेंगे। नगर परिषद्की ओरसे अभीतक लिखित जवाब नहीं मिला है।

शाहजीका मामला

शाहजी तथा मौला बख्शका मामला शुक्रवारको था। किन्तु श्री जॉर्डनकी अदालतमें अन्य व्यस्तताओंके कारण वह २४ जूनतक मुल्तवी कर दिया गया है। श्री जॉर्डनने इस मामलेके बारेमें कहा कि उनके पास गुमनाम धमकीका पत्र[3] आया है और ऐसे पत्रोंका उनपर कोई असर होनेवाला नहीं है। उक्त महोदयने कहा कि गुमनाम पत्र लिखनेवालेको हमारी चुनौती है। शाहजीके वकील श्री वान डिगेलेनने कहा कि निस्सन्देह वह पत्र उनके मुवक्किलकी तरफसे नहीं लिखा गया है। सम्भावना यह है कि पत्र लिखनेवाला पठानोंमें से ही कोई जालिम होगा। कुछ भी हो, गुमनाम पत्र लिखना बहुत खराब बात है और वह कमजोर समाजकी निशानी है। यदि यह टिप्पणी गुमनाम पत्र लिखनेवालेको दिखे, तो उसे स्मरण रखना चाहिए कि इससे भारतीय समाजपर कलंक लगता है।

फोक्सरस्टमें एक ज्यादती

सैयद मुहम्मद नामक एक भारतीय पिछले हफ्ते डर्बनसे वापस आये। उनके पास स्वेच्छया पंजीयनके प्रार्थनापत्रकी पहुँच थी। उसपर अंगूठेकी छाप न होनेके कारण उन्हें

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ६८-९।

२. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २६५-६७।

३. शाहजीपर मजिस्ट्रेट जॉर्डनकी अदालतमें गहरी शारीरिक चोट पहुँचानेकी उत्तेजना देने और दूसरे व्यक्तिपर ईसप मियाँपर हमला करनेका अभियोग लगाया गया था। गुमनाम चिट्ठी एक पठानकी मानी गई थी; उसने मजिस्ट्रेटको धमकी दी थी कि यदि वह अभियुक्तोंके खिलाफ निर्णय देगा तो उसकी हत्या कर डाली जायेगी।

फोक्सरस्टमें उतार दिया गया। कार्पोरल केमेराननें १० पौंडकी जमानत तय की, किन्तु सार्जेंटके पास ले जानेपर जमानतपर छोड़नेसे इनकार कर दिया गया। छुट्टियाँ होनेके कारण उन्हें तीन दिन तक जेलमें रहना पड़ा और बादमें छुटकारा मिला। किन्तु तीन दिन व्यर्थ परेशानी हुई, इसके लिए कौन जिम्मेदार है? यह प्रश्न सभी भारतीयोंपर लागू होता है। इसका सीधा और सरल रास्ता तो यह है कि भारतीयोंको शक्तिशाली बनना चाहिए और प्रत्येक आनेवाली अड़चनके खिलाफ आवाज उठानी चाहिए। कहा जाता है कि श्री सैयद मुहम्मदके ऊपर जो अत्याचार हुआ उसमें किसी भारतीयका हाथ है। यदि ऐसा हो, तो यह कहावत सच्ची उतरती है कि कुल्हाड़ीमें लकड़ीका बेंट लगे बिना लकड़ी नहीं कटती।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–६–१९०८

१७१. तार: उपनिवेश सचिवके निजी सचिवको[1]

[जोहानिसबर्ग
जून १९, १९०८]

[उपनिवेश सचिवके
निजी सचिव
प्रिटोरिया]

हाँ

[गांधी]

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें लिखे मूल अंग्रेजी मसविदेकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८२८) से।

१७२. नेटालमें हत्याओंका कारण क्या है?

भारतीयोंकी हत्याके विषयमें हमारे लेखकी[2] बाबत एक लेखकने सूचित किया है कि इन हत्याओंका कारण है भारतीयोंमें फैला हुआ व्यभिचार। उस लेखकका कहना है कि अधिकांश हत्याओंके मूलमें स्त्रियाँ हैं। यदि यह बात ठीक हो तो बहुत दुःखदायक है। यह सम्भव नहीं है कि हमारा यह लेख, जो खून करनेमें लगे हैं अथवा जो खूनके कारण बने हैं, उनके हाथमें पहुँच सके। उन्हें अखबार पढ़नेका भान भी कैसे हो सकता है। किन्तु फिर भी जो इस अखबारको पढ़ते हैं उन्हें विचार करना चाहिए। प्रत्येक समझदार व्यक्ति समस्याके हलमें सहायक बन सकता है। यदि यह बात ठीक हो कि भारतीय तरुणोंमें व्यभिचार बढ़ गया है, तो यह हमारी अवनतिका लक्षण है।

१. यह तार उपनिवेश-सचिवके निजी सचिव, प्रिटोरियाके नाम निम्नलिखित तारके उत्तरमें ७–४० बजे शामको भेजा गया था: "क्या आप कृपा करके श्री स्मट्ससे चन्द मिनटोंके लिए मुलाकात करने कल ९–४० बजे रेल्वे दफ्तरमें आ सकेंगे?"

२. देखिए "नेटालमें हत्याएँ", पृष्ठ २७१-७२।

हम अपने अवगुणोंकी तुलना कई बार गोरोंके अवगुणोंके साथ करते हैं और जब हमें यह मालूम होता है कि गोरोंमें वैसे ही अवगुण हैं तो हम अपने अवगुणोंकी परवाह नहीं करते। इस बातसे हमारी हीनता प्रदर्शित होती है। इसका तो यह अर्थ हुआ कि हम गोरोंको अपनेसे बढ़कर मानते हैं और यह सोचते हैं कि उनमें सद्गुण सीमापर पहुँच गये हैं। वास्तवमें गोरे हमसे बढ़कर हैं ऐसा विशेष रूपसे देखनेमें नहीं आता और हममें उनकी अपेक्षा अधिक गुण नहीं आ सकते, सो भी नहीं है।

चूँकि गोरे व्यभिचारी हैं, इसलिए हम भी हों, इससे अधिक बुरा विचार दूसरा नहीं हो सकता। उनमें कुछ और तरहका व्यभिचार है तथा उनके धर्म-शिक्षक तथा अन्य सुधारक उनमेंसे यह दुर्गुण भी हटानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

गोरे जो-कुछ करते हैं, सो करें। परन्तु यह हमारे लिए सम्भव नहीं है। हम बहुत गिरी हुई हालतमें हैं। हमें उससे ऊपर उठना है। इसलिए हमें बहुत अधिक साहसकी जरूरत है। यह तो स्पष्ट नियम प्रतीत होता है कि जिस समाजमें व्यभिचार बढ़ जाता है वह समाज दिनोदिन क्षीण होता जाता है। इसलिए तरुण भारतीयोंको यह बात अच्छी तरह ध्यानमें रखनी चाहिए।

गोरोंकी बराबरी करते समय हम यह देखते हैं कि उनमें ब्रह्मचर्य-मण्डलोंकी स्थापना होती है। उनके पादरी तरुणोंको भटकनेसे रोकनेका प्रयत्न करते हैं। बम्बईमें मुक्ति-सेना (साल्वेशन आर्मी) इसका बड़ा प्रयत्न कर रही है, यह बात हम जानते हैं। केपमें, आरेंज रिवर उपनिवेशमें तथा ट्रान्सवालमें रेवरेंड श्री मायर अंग्रेज युवकोंको यह सब ज्ञान दे रहे हैं। इन मण्डलोंमें पैसेकी जरूरत नहीं होती। केवल निष्ठावान्, सद्विचारी और सदाचारी मनुष्य उनमें लिये जाते हैं। याद रखना चाहिए कि रोम, ग्रीस और अन्य राज्योंका नाश मुख्यतया व्यभिचारके कारण ही हुआ।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–६–१९०८

१७३. केपके भारतीयोंके सम्बन्धमें कानून

केपकी संसदका अधिवेशन हो रहा है। केपमें प्रवास सम्बन्धी कानून और व्यापार सम्बन्धी कानून अन्यायपूर्ण हैं। इस सम्बन्धमें केपके भारतीयोंको न्याय प्राप्त करना जितना आसान है अन्य उपनिवेशोंके भारतीयोंको वह उतना आसान नहीं है, क्योंकि केपके भारतीयोंको मताधिकार प्राप्त है। काफी प्रयत्न किया जाये तो इन दोनों कानूनोंमें परिवर्तन करवाया जा सकता है। प्रवास-सम्बन्धी कानून फिर 'गजट' में प्रकाशित हुआ है। उसकी कई शर्तें ऐसी हैं जिन्हें पूरा करना मुश्किल होगा। उसका विरोध करना केपके भारतीयोंका कर्त्तव्य है। वही बात व्यापारिक परवानोंसे सम्बन्धित कानूनके बारेमें है। यदि भारतीय समाज दक्षिण आफ्रिकामें आदर-सम्मानके साथ रहना चाहता है तो उसको बहुत कष्ट उठाने होंगे। राजकीय कष्ट दूर करनेके लिए [स्वेच्छासे][1] कष्ट सहना होगा। और यदि हम ऐसी ही अज्ञानपूर्ण अधम

१. मूलमें यहाँ एक शब्द ठीक पढ़ा नहीं जाता।

स्थितिमें रहना चाहते हों तो हमें राजकीय अत्याचार सहने होंगे। जीवित रहनेके लिए मरना आवश्यक है। अधिकार प्राप्त करनेके लिए कर्तव्य पूरा करना होता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–६–१९०८

१७४. जोहानिसबर्गमें एक कीर्ति-स्तम्भ

हमने अपने आजके अंकके साथ जोहानिसबर्गमें निर्मित एक कीर्ति-स्तम्भके चित्र परिशिष्टके रूपमें दिये हैं। यह स्तम्भ बोअर युद्धके अन्तमें सार्वजनिक चन्देसे बनाया गया था। सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी कीर्तिकी स्मृतिकी फिलहाल यह एक ही निशानी है।

स्तम्भका पहला चित्र नजदीकसे लिया गया है और उसमें स्तम्भके ऊपर लिखा हुआ लेख दिखाई देता है। दूसरा चित्र स्तम्भ तथा उसके आसपासकी जगहके दृश्यको स्पष्ट करता है। उससे यह भी जाहिर हो जाता है कि स्तम्भकी स्थापना कुछ ऊँची जगहपर की गई है। उससे दूर जो सरहद दिखाई पड़ती है वह सर जॉर्ज फेरारके खेतोंकी है।

स्तम्भका निर्माण छाँटे हुए पत्थरोंको सीमेंटसे जोड़कर किया गया है। उसके आसपास लोहेकी छड़ोंसे बाड़ बना दी गई है, जिससे उसपर लगे हुए संगमरमरपर अंकित लेखको कोई खराब न करे। यह स्तम्भ जोहानिसबर्गकी ऑब्जरवेटरी (हवाकी स्थिति आदिके शास्त्रसे सम्बन्धित बातोंकी जाँच करनेवाले विभाग) के पास बनाया गया है। इस प्रकार वह जोहानिसबर्गके सबसे ऊँचे टीलेपर बना हुआ है। यह सब लोगोंके संगठित प्रयत्नोंका परिणाम है।

स्तम्भकी पूर्वी बाजूपर एक सफेद संगमरमरकी बड़ी पटियापर निम्नलिखित लेख है:

> १८९९ से १९०२ की अवधिमें दक्षिण आफ्रिकाकी युद्ध-भूमिपर वीरगति पानेवाले ब्रिटिश अमलदारों, अन्य पदाधिकारियों, अधिकारियों तथा भारतीय सिपाहियोंकी पवित्र स्मृतिमें।

उपर्युक्त लेख हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेजी भाषामें खुदा हुआ है। इस स्तम्भकी अन्य तीन बाजुओंपर एक-एक संगमरमरका टुकड़ा लगाया गया है और उनपर क्रमशः नीचेके शब्द खुदे हुए हैं: मुसलमान; ईसाई-पारसी; हिन्दू-सिक्ख।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २०–६–१९०८

१७५. सर्वोदय [६]

दौलतकी नसें

इस प्रकार अमुक जातिमें पैसेका घूमना शरीरमें रक्तके घूमने जैसा है। रक्त वेगसे दौड़ रहा है; वह या तो स्वास्थ्य अथवा व्यायामका चिह्न है या लाज पैदा होनेका अथवा ज्वरका सूचक है। शरीरपर रहनेवाली एक प्रकारकी लाली स्वास्थ्यका लक्षण है, दूसरे प्रकारकी लाली क्षय रोगका चिह्न हो सकती है। और जिस प्रकार रक्तका जमाव एक स्थानपर हो जानेसे शरीरको हानि पहुँचती है, उसी प्रकार एक ही जगह धनका जमा हो जाना जातिकी हानिका कारण हो जाया करता है।

कल्पना कीजिए कि दो मल्लाह नावके टूट जानेके कारण एक वीरान तटपर आ पड़े हैं। वहाँ उन्हें अपने परिश्रमसे अन्न इत्यादि उपजाना पड़ता है। अगर वे दोनों स्वस्थ रहते हुए साथ-साथ काम करें तो अच्छा घर बनायेंगे, खेत जोतेंगे और भविष्यके लिए कुछ बचा लेंगे। हम इसे सच्ची दौलत कह सकते हैं। और यदि वे दोनों अच्छी तरह काम करें तो उसमें दोनोंका हिस्सा बराबरका होगा। अर्थात् उनपर जो शास्त्र लागू हुआ, वह यह है कि अपने परिश्रमका फल बाँट लेनेका हक उन्हें प्राप्त हुआ। अब मान लीजिए कि कुछ समय पश्चात् उनमें से एकको असन्तोष हुआ। इसलिए उन्होंने जमीनका हिस्सा-बाँट कर लिया और हरएक अपने-अपने हिसाबसे अपना-अपना काम करने लगा। अब यह फर्ज कीजिए कि ऐन मौकेपर उनमें से एक अस्वस्थ हो गया। ऐसी स्थितिमें वह दूसरेको अपनी सहायताके लिए बुलायेगा। उस अवसरपर वह दूसरा व्यक्ति कह सकता है कि 'मैं आपका इतना काम कर देनेके लिए तैयार तो हूँ लेकिन शर्त यह है कि जब जरूरत पड़े तब मेरे लिए आप भी इतना ही करें। आपको मुझे यह लिखित रूपमें देना होगा कि जितने घंटे मैं आपका काम करूँ उतने घंटे मेरी जमीनपर, जरूरत पड़नेपर, आप काम करेंगे।' अब मान लीजिए कि इस रोगीका रोग बहुत दिन चला और उसे हर अवसरपर उस स्वस्थ व्यक्तिके नाम ऊपरके अनुसार वचन लिखकर देना पड़ा। अब उस समय जब कि रोगग्रस्त व्यक्ति अच्छा होगा, उनमें से प्रत्येककी स्थिति क्या होगी? दोनों व्यक्ति गरीब हुए माने जायेंगे। क्योंकि बीमार आदमी रोगशय्यापर पड़ा रहा, उस बीच उसके कामका लाभ प्राप्त नहीं हुआ। स्वस्थ व्यक्ति बहुत ज्यादा काम करनेवाला है, ऐसा भी मान लिया जाये तो भी उसने जितना समय उस रोगीकी जमीनपर लगाया, उतना उसकी अपनी जमीनपरसे चला गया इतना तो ठीक ही है। इसलिए दोनोंकी जो पूँजी होनी चाहिए उसमें कमी हुई।

इतना ही नहीं, बल्कि दोनोंका पारस्परिक सम्बन्ध भी बदल गया। अस्वस्थ व्यक्ति स्वस्थ व्यक्तिका ऋणी हो गया और वह अपना श्रम देकर ही अपना अनाज पा सकता है। अब फर्ज कीजिए कि उस स्वस्थ व्यक्तिने उस अस्वस्थ साथीसे मिले हुए दस्तावेजोंको काममें लानेका विचार किया। यदि वह ऐसा करे तो वह पूरी तौरसे आराम कर सकता है — आलसी बन सकता है। उसकी मरजीमें आये तो बीमारीसे छुटकारा पानेवाले व्यक्तिसे कोई दूसरा

लिखित वचन[1] भी ले सकता है। इसमें कुछ गैरकानूनी हुआ, ऐसा कोई नहीं कह सकता। अब अगर कोई परदेशी वहाँ पहुँचे तो वह देखेगा कि एक व्यक्ति धनवान हो गया है और दूसरा बीमार पड़ा है। वह यह भी देखेगा कि एक ऐश-आराम करता हुआ आलस्यमें पड़ा रहता है और दूसरा मजदूरी करते हुए भी तकलीफ उठा रहा है। पाठक इससे समझ सकेंगे कि दूसरेसे मजदूरी करानेके हकका नतीजा यह होता है कि वास्तविक धनमें कमी होती है।

अब दूसरी मिसाल लीजिए: तीन व्यक्तियोंने एक राज्य[2] स्थापित किया और तीनों अलग-अलग रहने लगे। प्रत्येकने पृथक्-पृथक् फसल तैयार की जिसका उपयोग सब कर सकते थे। तब कल्पना कीजिए कि उनमें से एकने सबका समय बचानेके लिए अपनी खेती छोड़कर एकका माल दूसरेको पहुँचानेका उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और बदलेमें अनाज लेना निश्चित किया। यदि यह व्यक्ति नियमित रूपसे माल[3] लाया और ले जाया करे तो सबका फायदा हो। लेकिन मान लीजिए कि यह व्यक्ति मालके लेन-देनमें चोरी करता है और बादमें जब तंगीका जमाना आ जाता है, उस समय यह दलाल अपने चुराये हुए अनाजको ऊँचे दामों बेचता है। इस तरह आगे चलकर यह व्यक्ति दोनों किसानोंको भिखारी बना सकता है और अन्तमें उन्हें अपना मजदूर बना सकता है।

ऊपरका दृष्टान्त निरा अन्याय बताता है। लेकिन आजके व्यापारियोंका कारोबार इसी प्रकार चल रहा है। इसके अतिरिक्त हम यह भी देख सकेंगे कि इस प्रकार चोरीकी घटना घटित होनेके पश्चात् यदि तीनोंकी मिल्कियत इकट्ठी की जाये तो, उस व्यक्तिके प्रामाणिक होने और रहनेपर वह जितनी होती उसकी अपेक्षा कम बैठेगी। उन दो किसानोंका काम कम हुआ। उनकी जरूरतकी चीजें न मिलनेके कारण वे अपने परिश्रमका पूरा फल नहीं पा सके। और उस चोर दलालके हाथमें चोरीका जो माल[4] आया था, उसका पूरा और अच्छा उपयोग नहीं हो सका।

इसलिए हम गणितका-सा [सूक्ष्म] हिसाब लगाकर कह सकते हैं कि अमुक जातिको धनवान मानने या न माननेका आधार यह है कि उस जातिके धनकी जाँच करके यह मालूम किया जाये कि वह दौलत उसे किस प्रकार मिली है। जातिके पास इतना धन है इसलिए वह उतनी धनवान है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अमुक व्यक्तिके हाथमें अमुक धनका होना या तो लगन, होशियारी और खुशहालीका चिह्न हो सकता है या विनाशकारक मौज-मजा, अत्याचार और धोखेबाजीका सूचक हो सकता है। और इस प्रकार हिसाब करनेकी रीति केवल नीति ही नहीं प्रकट करती, बल्कि अंकगणितसे गिना जा सकनेवाला धन [भी] सूचित करती है। एक धन ऐसा होता है जिसके उत्पन्न होते समय और दसगुना धन पैदा होता है; दूसरा ऐसा जिसके किसी आदमीके हाथमें आनेसे दस-गुने धनका नाश हो जाता है।

इसलिए नीति-अनीतिका खयाल किये बिना धन एकत्रित करनेके नियम गढ़नेकी बातसे मनुष्यका सिर्फ अहंकार प्रकट होता है। सस्तेसे-सस्ते दामोंमें खरीदने और महँगेसे-महँगे दामोंमें बेचनेकी जो पद्धति है उसके बराबर इनसानको लांछन लगानेवाली और कोई चीज

१. ऋणी व्यक्तिका तात्कालिक जरूरतको पूरा करनेके बदलेमें गुलामके रूपमें काम करनेका वचन।
२. जनतन्त्र (रिपब्लिक) जिसका उल्लेख **अन्टु दिस लास्टमें है।**
३. खेतीके औजार, बीज आदि।
४. अन्न और खेतीके औजार जो दलालने चुरा लिये थे।

नहीं है। सस्तेसे-सस्ते दामोंमें लेना सो बात तो समझमें आई। लेकिन भाव घटा कैसे? आग लगनेके पश्चात् कड़ियोंके जल जानेपर उनसे बने हुए कोयले सस्ते हो सकते हैं; भूचालसे ढहे हुए मकानोंकी ईंटें सस्ती हो सकती हैं। परन्तु इससे यह कहनेका किसीका साहस नहीं होगा कि आग और भूचाल लोगोंके लाभके लिए थे। 'महँगेसे-महँगा बेचना' तो समझमें आ गया, परन्तु महँगाई आई कैसे? रोटीका मूल्य आज आपको अच्छा मिला, लेकिन वह दाम क्या आपने मरते हुए आदमीकी अन्तिम कौड़ी लेकर प्राप्त किया? या यह रोटी आपने किसी ऐसे महाजनको दी जो कल आपका सब हड़प कर लेगा? या किसी डाकूको सौंपी जो आपका बैंक लूटने जा रहा है? यह सम्भव है कि शायद आप इन प्रश्नोंमें से एकका भी उत्तर न दे सकें क्योंकि आप जानते ही नहीं हैं। परन्तु इतना तो आप बतला ही सकते हैं कि आपने रोटी उचित मूल्यपर और नीतिके मार्गसे बेची थी या नहीं। उचित न्यायकी ही फिक्र रखनेकी जरूरत है। आपके कामसे किसीको दुःख न पहुँचे, इतना ही जान लेना और उसीके अनुसार व्यवहार करना आपका कर्तव्य है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–६–१९०८

१७६. तार: जोहानिसबर्ग कार्यालयको

प्रिटोरिया,
जून २२, १९०८

सेवामें
गांधी
जोहानिसबर्ग

मुलाकात असन्तोषजनक। प्रवास-सम्बन्धी संशोधन कठोर। उससे शैक्षणिक कसौटी तथा पुराने डच प्रमाणपत्र अस्वीकृत। पाँच बजे शामको बैठक बुलायें। अस्वात ईसप मियाँके हलफनामोंपर हस्ताक्षर करवा लें। मेरा स्टेशन ले आयें।

गांधी

भेजे गये तारकी मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८२९) से।

१७७. पत्र : अखबारोंको[1]

जोहानिसबर्ग,
जून २२, १९०८

एशियाई जातियों और सरकारके बीच होनेवाले समझौतेके उपनिवेश-सचिव द्वारा भंग किये जानेके आरोपके सम्बन्धमें समाचार-पत्रोंमें विविध वक्तव्य प्रकाशित हुए हैं। सरकार और एशियाई जातियोंके बीच इस सिलसिलेमें होनेवाली वार्ताओंके नाजुक होनेके कारण अबतक मामलेको जन-साधारणके समक्ष रखना सम्भव नहीं हुआ।

खेदके साथ कहना पड़ता है कि वह बातचीत आज एकाएक और असन्तोषजनक ढंगसे समाप्त हो गई। मैं "असंतोषजनक" शब्दका प्रयोग उसे केवल एशियाई लोगोंपर ही नहीं, बल्कि समस्त साम्राज्यपर लागू समझकर कर रहा हूँ। जनरल स्मट्स उस सन्तापजनक एशियाई अधिनियमको, जिसके कारण एशियाई लोगोंको विपुल धनराशिकी हानि सहनी पड़ी है और बहुत ज्यादा मुसीबतें — इनमें दो सौसे ऊपर निर्दोष एशियाइयोंका, मुख्यतः ब्रिटिश एशियाई लोगोंका कारावास भी सम्मिलित है — उठानी पड़ी हैं, रद करनेके लिए राजी थे। इससे प्रकट होता है कि जनरल स्मट्स इस अधिनियमको रद करनेका वचन दे चुके थे और उसी वचनसे अब भी बँधे हुए हैं।

परन्तु वे समझौतेका बाह्य रूपसे पालन करनेको राजी थे तो साथ ही उसकी वास्तविक भावनाको तोड़ना भी चाहते थे, क्योंकि ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि समझौतेके अन्तर्गत और उसके बाद एशियाइयोंकी स्थिति उससे भी बदतर हो जानेको थी, जैसी एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत है। लेकिन जनरल स्मट्सका मसविदा — जिसे मैंने आज अत्यन्त खेदके साथ पढ़ा है और जहाँतक मेरा सम्बन्ध है अस्वीकार कर दिया है — ऐसा ही था।

उस समझौतेके मसविदेका मंशा यह था कि निम्नलिखित श्रेणियोंमें आनेवाले लोग प्रतिबन्धित प्रवासी माने जायें :

(क) ऐसे एशियाई जिनमें प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके द्वारा निर्धारित शैक्षणिक योग्यताएँ हों।

(ख) ऐसे एशियाई, चाहे वे उपनिवेशके भीतर अथवा बाहर रहते हों, जिनके पास १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत ऐसे डच पंजीयन प्रमाणपत्र हों, जिनके लिए वे ३ पौंड अदा कर चुके हैं।

(ग) अन्य एशियाई जो लड़ाईके पूर्व ट्रान्सवालके निवासी थे, और जो किसी अदालतके सामने अपने पिछले निवासको सिद्ध कर सकें।

१. यह २७-६-१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में "श्री गांधीका वक्तव्य" शीर्षकसे छपा था। यह **स्टार**के साथ-साथ अन्य अखबारोंमें भी प्रकाशित हुआ था। लेकिन, **स्टार**वाला पाठ उपलब्ध नहीं है। रिचने इस पत्रकी एक नकल इंडिया ऑफिसको भेज दी थी। रिचने उसका वर्णन "ब्रिटिश भारतीयों और ट्रान्सवाल सरकारके बीच चल रहे झगड़ेके मुद्दों"को स्पष्ट करनेवाला "परिपत्र" कह कर किया था।

(घ) वे एशियाई जिनके दावे श्री चैमने द्वारा अस्वीकृत कर दिये गये हैं। (इन एशियाइयोंके पक्षमें सिर्फ इतना ही कहा गया है कि उन्हें अपने उन दावोंकी जाँच न्यायाधिकरण द्वारा करानेके हक प्राप्त होने चाहिए और ऐसे दावोंका आखिरी फैसला किसी प्रशासकीय अधिकारी द्वारा न कराया जाये)।

इन दावोंपर विचार करने और उन्हें न्यायाधिकरणके सुपुर्द करने, न कि ज्योंका-त्यों मान लेने, की माँगको ठुकराकर जनरल स्मट्सने प्रकट कर दिया है कि उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोधका आशय गलत समझा है। यह आन्दोलन किसी व्यक्तिगत स्वार्थके कारण नहीं, बल्कि सभी एशियाइयोंके, मैं तो कहना चाहूँगा कि साम्राज्यके भी, फायदेके लिए चलाया गया था। इसके अतिरिक्त, उपनिवेशकी एशियाई आबादीमें ज्यादासे-ज्यादा दो हजार एशियाइयोंकी सम्भाव्य वृद्धिको घटित न होने देनेकी गरजसे, उन्होंने पूरे समझौतेका ध्वंस कर दिया है। मैंने इन लोगोंके वर्णनमें "वृद्धि" शब्दका उपयोग किया है। किन्तु वास्तवमें तो ये उपनिवेशके अधिवासी ही हैं, यद्यपि जनरल स्मट्सके मसविदेमें उनके अधिकारोंकी उपेक्षा की गई है।

एशियाई लोगोंकी स्थिति सीधी है। इस मामलेमें उन्हें वही परिस्थिति पुनः स्वीकार कर लेनी चाहिए, जो गत जनवरी मासमें उपस्थित थी और उन्हें यह परामर्श दिया गया है कि वे अपने स्वेच्छया पंजीयन-सम्बन्धी प्रार्थनापत्र वापस ले लें।[1] जनरल स्मट्सने उन्हें वापस देनेसे इनकार कर दिया है। अगर उनमें सत्याग्रहियोंका मुकाबिला करनेका साहस होता, तो वे प्रार्थनापत्रोंको बिना किसी कठिनाईके वापस कर देते।

भारतीय लोग गत जनवरी तक शंकाओंके शिकार बने रहे। श्री डंकनने यह अभियोग लगाया था और बड़ी-बड़ी जगहोंमें वह दुहराया गया कि एशियाई लोग संगठित रूपसे अवैध प्रवेश कर रहे हैं।[2] इस तथ्यसे कि ९,००० में से ७,६०० से ऊपर एशियाइयोंने अपने प्रवेशकी प्रामाणिकताको सिद्ध कर दिया है, उपर्युक्त आरोपकी निरर्थकता प्रकट होती है। इस गर्हित आरोपका खण्डन करनेके लिए ही, न कि अन्य किसी कारणसे, स्वेच्छया पंजीयनका प्रस्ताव सामने लाया गया था। अतएव, एशियाई लोगोंके मनमें यह खयाल ही नहीं है कि उनसे कोई दोष हो गया है और वे जनताके सामने निःसंकोच भावसे पेश हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त, कष्टोंको सहन करके उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि उन्हें सहृदय जनतासे सहानुभूति पानेका अधिकार है।

अन्तमें, उनके कुछ नेताओंका उनके देशवासियोंके ही द्वारा बुरी तरह मारा-पीटा जाना, यह सिद्ध करता है कि वे सरकारकी सेवाके लिए उतने ही उत्सुक हैं जितने अपने देशवासियोंकी सेवाके लिए।

जनरल स्मट्सका यह अधिनियम सरकारका अधिनियम होगा और सरकारका अधिनियम गोरे लोगोंका — अधिकांशतः ब्रिटिश लोगोंका — अधिनियम होगा। जब मैंने अपने देशवासियोंको समझौतेका स्वरूप समझाया, तब उनमें से कम विचारशील व्यक्तियोंने कहा: "गोरोंका विश्वास मत करो। उस अधिनियमका रद किया जाना स्वेच्छया पंजीयनके पूर्व होना चाहिए, न कि बादको।" मैंने उनसे कहा कि ऐसा करना हमारे लिए गौरवपूर्ण न होगा।

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २५८-६१।
२. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २२१-२२।

जनरल स्मट्सने समझौतेमें अनुचित उलट-फेर किया है और मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि वे यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। क्या उपनिवेशमें रहनेवाले अंग्रेज, जबकि उनका यह मुख्य मंशा कि भविष्यमें एशियाइयोंके आव्रजनपर प्रभावशाली नियन्त्रण रखा जाये, पूरा किया जा रहा है, इस स्थितिको गवारा करेंगे?

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस: ज्युडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, २८९६/०८

१७८. द० आ० ब्रि० भा० समितिको लिखे पत्रका अंश[1]

जून २२, १९०८

...स्मट्स अधिनियमको रद कर देंगे, किन्तु उन शर्तोंपर जिन्हें मैं स्वीकार नहीं कर सकता। उन्होंने जो शर्तें रखी हैं वे हैं:

डच प्रमाणपत्र मान्य न किये जायेंगे।

युद्धसे पहलेके शरणार्थी, जिनके पास शान्ति-रक्षाअध्यादेशके अन्तर्गत दिये गये प्रमाण-पत्र नहीं हैं, प्रविष्ट नहीं हो सकते।

जो ऐच्छिक प्रार्थनापत्र रद कर दिये गये हैं, उनपर न्यायालयमें विचार न किया जायेगा।

जिनमें शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता है, उनको मान्य न किया जायेगा (स्मट्सका खयाल है कि वे वर्तमान अधिनियमके अन्तर्गत अयोग्य करार दिये गये हैं। मेरा खयाल है कि बात ऐसी नहीं है)।

उक्त शर्तोंको मानना सम्भव नहीं है, क्योंकि मेरे खयालसे इनमें समझौतेकी भावना नहीं आती...

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ३७२२/०८

१. यह पत्र श्री रिच द्वारा उपनिवेश कार्यालयको लिखे गये उनके ६ अक्तूबर, १९०८ के पत्रके साथ संलग्न ट्रान्सवालमें घटित होनेवाली घटनाओंके सार-संक्षेपसे लिया गया है।

१७९. भेंट 'स्टार'को[1]

[प्रिटोरिया,
जून २२, १९०८]

हमें यह घोषणा करते हुए खेद होता है कि गत जनवरीमें सरकार और ट्रान्सवाल-वासी एशियाइयोंके बीच जो समझौता हुआ था, उसको भंग होनेसे बचानेके सब प्रयत्न असफल सिद्ध हुए हैं . . . ।

उपनिवेश-सचिवके अनुरोधपर, श्री गांधी आज प्रातः उनसे मिले और उन्होंने श्री गांधीको सरकार द्वारा प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियममें प्रस्तावित संशोधनका मसविदा पढ़नेकी अनुमति दे दी। जनरल स्मट्सने सूचना दी कि सरकार एशियाई पंजीयन अधिनियमको रद करना चाहती है।

श्री गांधीने अधिनियमको पढ़नेके बाद उपनिवेश-सचिवसे भेंट की और निम्न मुद्दे उठाये : (क) उन एशियाइयोंकी स्थिति, जिन्होंने अपनी अँगुलियोंकी छाप देनेके बाद पंजीयनका स्वेच्छया प्रार्थनापत्र दिया था और जिन्हें किसी-न-किसी कारणसे उनका अनुमतिपत्र नहीं मिला। श्री गांधीने माँगकी कि जिन लोगोंको अनुमतिपत्र देनेसे इनकार कर दिया गया है, उनको एशियाई पंजीयकके निर्णयपर किसी न्यायाधिकारीके यहाँ अपील करनेका अधिकार होना चाहिए। (ख) उन्होंने यह माँग भी की कि दक्षिण आफ्रिकाके बाहरके उन भारतीयोंको, जिनके पास ३ पौंडी पंजीयन शुल्कके बदले गणतन्त्री सरकार द्वारा जारी किये गये अधिवासके प्रमाणपत्र हैं, भारतसे लौटनेपर स्वेच्छया पंजीयन करानेकी अनुमति दे दी जानी चाहिए। (ग) शिक्षा-सम्बन्धी छूट पुराने कानूनकी तरह नये कानूनमें भी कायम रखी जानी चाहिए। (घ) युद्धसे पहले ट्रान्सवालमें रहनेवाले वास्तविक शरणार्थियोंको, जो अब भारतमें या अन्यत्र हैं और जिनके पास गणतन्त्री सरकारके प्रमाणपत्र हैं या नहीं हैं, प्रमाण देनेके पश्चात् वापस लौटने और स्वेच्छया पंजीयन करानेकी अनुमति दे दी जाये।

शिक्षा-सम्बन्धी छूटके बारेमें, जनरल स्मट्सका तर्क यह था कि उनको मूल कानूनके अन्तर्गत कोई छूट प्राप्त नहीं है। उन्होंने उन मामलोंमें, जिनमें स्वेच्छया पंजीयनसे इनकार कर दिया गया था, एशियाई पंजीयकके निर्णयके विरुद्ध अपीलकी व्यवस्था करना अस्वीकृत कर दिया। उन्होंने उन एशियाइयोंको, जो इस समय देशसे बाहर हैं, जो वास्तविक शरणार्थी हैं या जिनके पास गणतन्त्रके अधिवास-सम्बन्धी प्रमाणपत्र हैं, लौटनेकी सुविधाएँ देनेसे भी इनकार कर दिया।

यह भेंट संक्षिप्त भेंट थी और हमें मालूम हुआ है कि उपनिवेश-सचिवने श्री गांधीको यह सूचित किया है कि यदि वे भारतीय समाजके नेताके रूपमें प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकमें

१. यह इंडियन ओपिनियनमें प्रकाशित किया गया था और इसका शीर्षक था: "ट्रान्सवालका संकट: जनरल स्मट्स द्वारा धोखेबाजी"।

प्रस्तावित संशोधनको स्वीकार करनेके लिए तैयार हों तो एशियाई संशोधन अधिनियम वापस ले लिया जायेगा। उपनिवेश-सचिव वर्तमान पंजीयन अधिनियममें पंजीयनको कानूनी बनानेके लिए एक विधेयक प्रस्तुत करेंगे।[1]

श्री गांधी तब चले आये; और उन्होंने एक भेंटमें इस पत्रके प्रतिनिधिको उक्त वक्तव्य प्रकाशित करनेका अधिकार दे दिया। उन्होंने कहा कि वे तुरन्त सर्वोच्च न्यायालयके सम्मुख एक ऐसी आज्ञाके लिए प्रार्थनापत्र देंगे जिसमें श्री चैमने (पंजीयक) से कहा जायेगा कि वे एशियाइयों द्वारा स्वेच्छया दिये गये अँगुलियोंके निशानों और दूसरे कागजों को लौटा दें।[2]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–६–१९०८

१८०. भेंट : 'ट्रान्सवाल लीडर' को

[जोहानिसबर्ग
जून २२, १९०८]

कल रात्रिको श्री गांधीसे 'ट्रान्सवाल लीडर' के एक प्रतिनिधिने मुलाकात की। श्री गांधीने, यह पूछा जानेपर कि अब किस मार्गका अनुसरण करनेका इरादा है, कहा :

समझौतेकी बातचीतके दौरान भारतीय समाजके नेताओं तथा निस्सन्देह भारतीय समाजको भी, जो-कुछ होता रहा है, उससे बराबर अवगत कराया जाता रहा है। इसलिए जनरल स्मट्सका फैसला यद्यपि उनके सामने एक दुःखद आश्चर्यके रूपमें आया है, तथापि बिलकुल अचानक आया हो, सो बात नहीं है। जब यह बात पहले-पहल ज्ञात हुई कि अधिनियमके रद किये जानेकी कोई सम्भावना नहीं है, तब बहुत-से भारतीयोंने श्री चैमनेको लिखा कि वे

१. **इंडियन ओपिनियन**में जनरल स्मट्सके वक्तव्यका निम्न विवरण प्रकाशित हुआ था: "श्री गांधीके वक्तव्यके सम्बन्धमें, हमें उपनिवेश-सचिवका इस आशयका वक्तव्य मिला है कि एशियाई कानून संशोधन अधिनियमकी वापसी इस समझौतेका अंग नहीं है, जैसाकि उन पत्रोंसे, जिनमें समझौता दिया गया है, प्रत्यक्ष है। उपनिवेश-सचिव भारतीय समाजकी बात मानने और १९०७ के अधिनियम २ को वापस लेने और भविष्यमें ट्रान्सवाल आनेवाले भारतीयोंको प्रवासी-अधिनियमके अन्तर्गत निषिद्ध भारतीय माननेके लिए तैयार हैं, बशर्ते कि एशियाई समाजके नेता अधिनियमके उस संशोधनको, जिसे उपनिवेश-सचिव करना चाहते हैं, स्वीकार कर लें। ये प्रस्तावित संशोधन श्री गांधीके सम्मुख प्रस्तुत किये गये थे और उन्हें उनसे, विविध कारणोंसे, जो उन्होंने बताये, बिलकुल सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए उन्हें सूचित कर दिया गया कि समझौतेकी सम्मत शर्तोंको माननेके सिवा अब कुछ करना बाकी नहीं रहा, क्योंकि उपनिवेश-सचिव १९०७ के अधिनियम २ को रद करने और फिर प्रवासी-अधिनियमके विरुद्ध नया आन्दोलन आरम्भ होता देखनेके लिए तैयार नहीं हैं। समझौतेके अनुसार स्वेच्छया पंजीयन १९०७ के अधिनियम २ के अन्तर्गत वैध नहीं किया जायेगा, बल्कि एक पृथक् कानूनके अन्तर्गत किया जायेगा।"

२. **इंडियन ओपिनियन**के इसी अंकमें यह खबर दी गई थी कि श्री इब्राहीम अस्वातने सर्वोच्च न्यायालयमें स्वेच्छया पंजीयनके प्रार्थनापत्रको लौटानेकी दरख्वास्त दी है और ईसप इस्माइल मियाँ और श्री मो० क० गांधीके हलफिया बयानोंसे (पृष्ठ ३०५-०७) उसका समर्थन किया है। दरख्वास्तकी सुनवाई शुक्रवार ३ जुलाईको ११ बजे होनी निश्चित हुई है।

उन्हें उनकी अर्जियाँ और वे सारे दस्तावेज लौटा दें, जो उनके द्वारा उनके समक्ष स्वेच्छा-पूर्वक प्रस्तुत किये गये थे। ये दस्तावेज वापस नहीं किये गये हैं। सर्वोच्च न्यायालयके पास फौरन ही आवेदनपत्र भेजा जायेगा, और अगर वे दस्तावेज लौटा दिये गये तो भारतीय समाज तत्क्षण उसी स्थितिमें पहुँच जायेगा जो समझौतेके पूर्व थी। दूसरे शब्दोंमें, एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन न करानेके अपराधमें प्रत्येक भारतीयपर मुकदमा चलाया जा सकेगा। परन्तु यदि यह कदम असफल रहा, तो भी, जहाँतक मुझे मालूम है, एशियाइयोंका यह मंशा नहीं है कि वे स्वेच्छया पंजीयनको मनमाने ढंगसे कानूनी रूप दे देने दें।

प्रिटोरियासे मेरी वापसीके शीघ्र बाद समितिकी एक बैठक हुई थी। उसमें सदस्योंने बहुत उत्साह प्रदर्शित किया। उनकी समझमें आ गया कि अनाक्रामक प्रतिरोधका आन्दोलन आदिसे अन्ततक फिरसे दोहराना होगा, और वे मुझे इसके लिए तैयार दीख पड़ रहे हैं।

हम लोग अगले बुधवारको ३ बजे दिनके समय हमीदिया मस्जिदके सामने समस्त उपनिवेशमें बसनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंकी आम सभा करने जा रहे हैं।[१] प्रतिनिधियोंको उपनिवेशके प्रत्येक भागसे तार द्वारा निमन्त्रित किया गया है। सभामें अनेक प्रस्ताव पास किये जायेंगे।

मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि कानूनको रद करनेकी बात मान लेनेके बाद मेरे उन सुझावोंको माननेसे इनकार करके, जिन्हें मैं बहुत ही नरम और न्यायसंगत मानता हूँ, जनरल स्मट्सने बड़ा अनुचित कार्य किया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–६–१९०८

१८१. पत्र: एम० चैमनेको

जोहानिसबर्ग,
[जून २३, १९०८ के पूर्व][२]

श्री एम० चैमने
उपनिवेश-कार्यालय
प्रिटोरिया

प्रिय महोदय,

मुझे ब्रिटिश भारतीय संघने सूचित किया है कि मैंने जो स्वेच्छया पंजीयनपत्र लिया है, सरकार १९०७ के एशियाई अधिनियम सं० २ के अन्तर्गत उसका वैधीकरण करना चाहती है। चूँकि, मैंने जब सरकारके साथ किये गये समझौतेको स्वीकार किया था, तब मेरा इरादा एशियाई कानूनके अन्तर्गत इसके वैधीकरणको स्वीकार करनेका कदापि न था,

१. देखिए "भाषण: सार्वजनिक सभामें", पृष्ठ ३११-१४।

२. स्पष्ट है कि यह पत्र अगले शीर्षकसे पूर्व लिखा गया था, क्योंकि उसमें इस पत्रका जिक्र है। यह सम्भव है कि गांधीजीने इस पत्र और सर्वोच्च न्यायालयको श्री अस्वातकी ओरसे दिये गये प्रार्थनापत्र — दोनोंका मसविदा लिखा हो। श्री अस्वात कुछ समय तक ब्रिटिश भारतीय संघके पदाधिकारी रहे थे।

इसलिए मैं, आपके पास जो मेरा प्रार्थनापत्र और अन्य कागज हैं, उनकी वापसीका आवेदन करना चाहता हूँ। मैंने जो कागजात माँगे हैं वे मन्त्री, ब्रिटिश भारतीय संघ, पो० ऑ० बॉक्स ६५२२, जोहानिसबर्गको भेजे जा सकते हैं।

आपका, आदि,
इब्राहीम इस्माइल अस्वात

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

१८२. प्रार्थनापत्र : ट्रान्सवाल सर्वोच्च न्यायालयको[1]

[जोहानिसबर्ग,
जून २३, १९०८]

वेरीनिगिंगके इब्राहीम इस्माइल अस्वातकी अर्जी
प्रिटोरियाके मॉंटफोर्ड चैमनेको दिये गये कागजों और दस्तावेजोंकी वापसीकी माँगके लिए

मैं वेरीनिगिंगका इब्राहीम इस्माइल अस्वात सर्वोच्च न्यायालयके माननीय न्यायाधीशोंके समक्ष नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूँ कि :

(१) मैं वेरीनिगिंगमें थोक और फुटकर व्यापार करनेवाला भारतीय हूँ।

(२) मैं ट्रान्सवालमें पिछले १९ वर्षसे रह रहा हूँ।

(३) विगत जनवरी और फरवरीमें जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघकी जो सभाएँ[2] हुईं उनमें से कुछमें मैं हाजिर था।

(४) उनमें बताया गया था कि एशियाई कानूनके खिलाफ चल रही लड़ाईके बारेमें भारतीय समाज और सरकारके बीच समझौता हो गया है।

(५) ब्रिटिश भारतीय संघके मन्त्री श्री मो० क० गांधीने इस समझौतेकी शर्तोंको इस तरह समझाया था :

(क) ट्रान्सवालके निवासी भारतीय समाजके नेताओं और सरकार, दोनोंकी सहमतिसे निश्चित फार्मके अनुसार, तीन माहके अन्दर स्वेच्छया पंजीयन करा लेंगे।

(ख) जो ट्रान्सवालके बाहर हों किन्तु यहाँ रह चुकनेके कारण वापस आनेके हकदार हों उन्हें भी स्वेच्छया पंजीयनका अधिकार होगा।

१. इसका मसविदा भी गांधीजी और ईसप मियाँके हलफनामोंके साथ ही तैयार किया गया था। देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २८८। सम्भवत: बैरिस्टर वार्डकी सलाह लेकर इसका मसविदा गांधीजीने ही बनाया था। जो भी हो, यह न्यायालयमें गांधीजीके हलफनामेके पहले पेश किया गया। गांधीजीने अपने हलफनामेमें इसका उल्लेख किया है; देखिए गांधीजीका "हलफनामा", पृष्ठ ३०६-७। यह **इंडियन ओपिनियन**में "विशेष रिपोर्ट" के रूपमें छपा था।

२. देखिए "भाषण : ब्रिटिश भारतीय संघकी सभामें", पृष्ठ ४५-७ और ५५-६।

(ग) एशियाइयोंके समझौतेके अनुसार अपना कर्तव्य पूरा करते ही सरकार एशियाई अधिनियमको रद कर देगी, और स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंपर एशियाई पंजीयन अधिनियम किसी भी तरह लागू न होगा।

(६) जहाँतक मैं जानता हूँ, अधिकांश भारतीयोंने स्वेच्छया पंजीयनकी अर्जी दे दी है।

(७) उपर्युक्त आश्वासनोंके आधारपर मैंने श्री चैमनेको साथ भेजे जा रहे फार्मके[1] अनुसार, मार्च, १९०८ में अर्जी दी थी। इस अर्जीमें मैंने अपनी सही की थी और अपनी अँगुलियोंकी छाप लगाई थी।

(८) मैंने तथा दूसरे सैकड़ों भारतीयोंने इस तरह अर्जीकी सारी शर्तें पूरी कीं और समझौता होनेपर कुछ भारतीयोंमें जो असन्तोष पैदा हुआ था उसके कारण ऐसा करनेमें निहित जोखिमकी परवाह नहीं की।

(९) समझौतेका भारतीयोंसे सम्बन्धित हिस्सा कार्यान्वित करनेमें मैंने सरकारकी भरसक सहायता की।

(१०) अब ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षने मुझे सूचित किया है कि उक्त कानूनको रद करनेवाला विधेयक पेश करनेका सरकारका कोई इरादा नहीं है, और न वह उपनिवेशके बाहरके एशियाइयोंको स्वेच्छया पंजीयन करानेकी सुविधा ही देना चाहती है।

(११) इन कारणोंसे अब स्वेच्छया पंजीयनका प्रमाणपत्र लेनेका मेरा इरादा नहीं है और मैंने श्री चैमनेसे यह माँग की है कि वे मेरी उपर्युक्त अर्जी तथा शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अनुसार प्राप्त मेरा अनुमतिपत्र और १८८५ के कानूनके अनुसार प्राप्त पंजीयन प्रमाणपत्र, जो अर्जी करते समय मैंने उन्हें दिये थे, मुझे वापस कर दें।

(१२) श्री चैमनेने मेरी उपर्युक्त अर्जी और दूसरे दस्तावेज वापस नहीं किये हैं।

(१३) मैंने पंजीयनके लिए जो अर्जी की थी वह एशियाई अधिनियम संशोधन कानूनके अन्तर्गत नहीं की थी; बल्कि स्वेच्छासे की थी।

(१४) अर्जियाँ लेनेका सरकार द्वारा नियत किया गया अन्तिम दिन ३० नवम्बर, १९०७ था। यह बात १ नवम्बरका सरकारी 'गजट' देखनेसे मालूम हो जायेगी।

(१५) उपर्युक्त अर्जीके अनुसार मुझे जो पंजीयन प्रमाणपत्र मिलना चाहिए था, वह मुझे मिला नहीं है और ऊपर वर्णित परिस्थितिमें अब पंजीयन प्रमाणपत्र लेनेकी मेरी इच्छा भी नहीं है।

(१६) इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि न्यायालय श्री चैमनेको मेरी अर्जी वापस करनेका हुक्म दे; या उसे जो उचित जान पड़े, दूसरी राहत दिलवाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

१८३. ईसप मियाँका हलफनामा[1]

जोहानिसबर्ग
जून २३, १९०८

मैं, जोहानिसबर्गका ईसप इस्माइल मियाँ, व्यापारी, शपथपूर्वक और ईमानदारीके साथ घोषित करता हूँ :

१. मैं जोहानिसबर्गकी सुलेमान इस्माइल मियाँ व कम्पनीकी पेढ़ीका व्यवस्थापक साझेदार और ब्रिटिश भारतीय संघका अध्यक्ष हूँ।

२. मैंने वेरीनिगिंगके इब्राहीम इस्माइल अस्वातकी २३ जून, १९०८ की अर्जी[2] पढ़ ली है।

३. उक्त अर्जीमें ब्रिटिश भारतीय संघकी जिन बहुतेरी सभाओंका उल्लेख हुआ है, उनकी अध्यक्षता मैंने की थी और उनमें से कुछमें कई हजार भारतीय उपस्थित थे।

४. संघके अवैतनिक मन्त्री जोहानिसबर्गके श्री मो० क० गांधीने संघको यह सूचना दी है कि शायद सरकार १९०७ के एशियाई अधिनियम २ को रद नहीं करेगी, इसलिए संघने सारे ब्रिटिश भारतीयोंको पंजीयन करानेके लिए स्वेच्छया दी गई अपनी अर्जियाँ और प्रिटोरियाके मॉटफोर्ड चैमनेको सौंपे गये दूसरे दस्तावेज वापस ले लेनेकी सलाह देनेका निर्णय किया है।

५. मैंने भी अपनी दरख्वास्त और दस्तावेज लौटानेके लिए अर्जी की है, लेकिन वे अभीतक लौटाये नहीं गये हैं।

६. उक्त अर्जीमें उल्लिखित समझौतेकी शर्तोंके भारतीयोंसे सम्बन्धित हिस्सेका पालन करानेमें मैंने और मेरे देशवासियोंने काफी व्यक्तिगत जोखिम उठाकर सरकारकी मदद की थी।

७. ऐसा करनेके कारण पिछली मईकी १७ तारीखको कुछ लोगोंने मेरे ऊपर हमला किया और मुझे काफी मारा-पीटा। यह मार-पीट इतनी ज्यादा थी कि करीब १५ दिनतक मुझे बिस्तरपर पड़े रहना पड़ा और मेरी नाक टूटते-टूटते बच गई।

[ईसप इस्माइल मियाँ]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

१. सम्भवतः इसका मसविदा गांधीजीने ही बनाया था।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

१८४. हलफनामा

जोहानिसबर्ग
जून २३, १९०८

मैं, जोहानिसबर्गका मो० क० गांधी, न्यायवादी [तथा] ब्रिटिश भारतीय संघका अवैतनिक मन्त्री, इसके द्वारा शपथपूर्वक और ईमानदारीसे निम्नलिखित घोषणा करता हूँ :

१. मैंने फ्रेनिखन (वेरीनिगिंग) के इब्राहीम इस्माइल अस्वातकी २३ जून १९०८ की याचिका[1] तथा ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष ईसप इस्माइल मियाँका २३ जून १९०८ का हलफनामा[2] पढ़ा है।

२. इब्राहीम इस्माइल अस्वातने अपनी याचिकामें समझौतेके सम्बन्धमें जो वक्तव्य दिया है, वह सही है।

३. मुझे कई अन्य भारतीयोंके साथ १९०७ के एशियाई कानून संशोधन अधिनियम, संख्या २ पर अमल न करनेके कारण जेलकी सजा मिली थी। मेरा विश्वास था, और अब भी है कि उक्त अधिनियम स्वतन्त्र व्यक्तिकी हैसियतसे मेरी स्वतन्त्रता तथा मेरी अन्तरात्माके विपरीत है।

४. १९०८ के जनवरी मासमें, जिस समय मैं जेलकी सजा काट रहा था, मेरा विश्वास है कि सरकारने भारतीय समाजके साथ समझौता करनेके लिए बातचीत चलाई ।

५. मेरे सामने हस्ताक्षर करनेके लिए एक पत्र[3] रखा गया था जिसकी एक नकल यहाँ नत्थी की जा रही है।

६. चूँकि मैंने उस पत्रको संतोषजनक नहीं समझा और चूँकि इसमें स्वेच्छया पंजीयन करानेवाले लोगोंपर एशियाई अधिनियमके लागू न होनेका सवाल अनिर्णीत ही छोड़ दिया गया था, इसलिए मैंने उसमें कुछ परिवर्तन किये। पत्रके[4] उस परिवर्तित रूपकी भी एक नकल साथमें नत्थी की जाती है। इसके बाद चीनी संघके अध्यक्ष लिअंग क्विन तथा एक ब्रिटिश भारतीय थम्बी नायडूने और मैंने पूर्वोक्त पत्रपर हस्ताक्षर किये। उक्त दोनों सज्जन मेरे साथ ही बन्दी थे।

७. बृहस्पतिवार, ३० जनवरीको उपनिवेश-सचिवसे मिलनेके लिए मुझे पहरेमें प्रिटोरिया ले जाया गया।

८. उपनिवेश-सचिवके साथ हुई मेरी उस मुलाकातमें एशियाई कानून संशोधन अधिनियमको रद करनेके सम्बन्धमें बातचीत हुई और उसी समय पक्के तौरपर यह वचन दिया गया कि यदि एशियाई स्वेच्छया पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र दे दें तो अधिनियम रद कर

१. देखिए "प्रार्थनापत्र: ट्रान्सवाल सर्वोच्च न्यायालयको", पृष्ठ ३०३-४ ।

२. देखिए पिछला शीर्षक ।

३. और ४. कार्टराइट द्वारा लाये गये मसविदे और उसमें गांधीजी द्वारा किये गये परिवर्तनोंके लिए देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ ३९-४१ ।

दिया जायेगा। उसी समय पूर्वोक्त पत्रका एक औपचारिक उत्तर मुझे दिया गया जिसकी एक नकल साथमें नत्थी की जाती है।

९. उक्त मुलाकातके बाद मुझे और मेरे साथी बन्दियोंको रिहा कर दिया गया।

१०. फरवरी ३ को उपनिवेश-सचिवसे मेरी फिर मुलाकात हुई जिसमें अधिनियम रद करनेके सम्बन्धमें तथा अन्य विषयोंपर बातचीत हुई और मुझे दिया गया पूर्वोक्त वचन दुहराया गया। हाँ, उक्त मुलाकातके समाप्त होनेपर जब मैं चलनेको हुआ तब उपनिवेश-सचिवने यह, या कुछ इसी आशयकी बात कही थी कि "याद रखिए यदि एक भी अड़ियल एशियाई ऐसा हुआ जिसने स्वेच्छया पंजीयन नहीं कराया तो मैं उस व्यक्तिपर अधिनियम लागू कर दूँगा।" मैंने इन शब्दोंका यह मतलब समझा कि अधिनियम रद करानेके लिए उपनिवेशके तत्कालीन अधिवासी एशियाइयोंकी बहुत बड़ी संख्याको स्वेच्छया पंजीयन कराना पड़ेगा।

११. उसके बाद उपनिवेश-सचिव और मेरे बीच पत्र-व्यवहार हुआ और उसमें अधिनियमको रद करनेकी बात पक्की हुई।

१२. किन्तु मुझे उपनिवेश-सचिवके निजी-सचिवके हस्ताक्षरोंसे युक्त इस आशयका एक पत्र[1] देखकर आश्चर्य हुआ जिसमें लिखा था कि स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंपर भी उक्त अधिनियम लागू किया जायेगा।

१३. उसके बाद मैंने इस बातका निश्चित पता लगा लिया है कि सरकारका इरादा उक्त अधिनियमको उन लोगोंपर लागू करनेका नहीं है जिन्होंने स्वेच्छया पंजीयन करा लिया है। किन्तु वह अधिनियमको रद करनेके सम्बन्धमें कोई आश्वासन देनेसे इनकार करती है।

१४. इस समाचारसे एशियाइयोंमें बड़ी खलबली मच गई है और उन्होंने माँग की है कि पंजीयनके लिए प्रिटोरियाके मॉंटफोर्ड चैमनेको उन्होंने स्वेच्छापूर्वक जो प्रार्थनापत्र और कागजात दिये थे वे वापस कर दिये जायें।

१५. जब समझौतेकी विधि पूरी हुई तो भारतीय समाजका एक वर्ग-विशेष इस कारण असन्तुष्ट हो गया था कि मैंने उस कालमें हुई सार्वजनिक सभाओंमें प्राप्त अधिकारके अन्तर्गत अँगुलियोंके निशान द्वारा अपनी शिनाख्त देनेके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया था। और जब सरकारके साथ हुए समझौतेपर अमल करनेकी इच्छासे अपना प्रार्थनापत्र देनेके लिए मैं गत फरवरी १० (सोमवार) को मॉंटफोर्ड चैमनेके पास गया उस समय समझौतेसे असन्तुष्ट लोगोंने मुझे बुरी तरह मारा।

१६. मैं जानता हूँ कि समझौतेपर अमल करने तथा सरकारको सहायता पहुँचानेके प्रयत्नमें बहुत-से भारतीयोंको बड़ी असुविधाएँ और जबर्दस्त खतरे झेलने पड़े।

१७. एशियाइयोंकी बहुत बड़ी संख्याने स्वेच्छया पंजीयनको स्वीकार किया है।

[मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

१. लेनका १३ मई, १९०८ का पत्र; देखिए (एस० एन० ४८१२)।

१८५. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

मंगलवार [जून २३, १९०८]

समझौता?

"सोचना आदमीका, करना ईश्वरका काम है", यह बात सभी मनुष्योंके मनमें अंकित रहनी चाहिए। हमने सोचा था कि कानून सोमवारको खत्म हो जायेगा; और उसी दिन हुआ यह कि कमसे-कम फिलहाल कानून बना रहेगा।

शनिवारको श्री स्मट्सने श्री गांधीसे कहा: "सोमवारको मिलना। एक-दो मामूली बातें रह गई हैं, उनपर विचार करना है; शेष सब तैयार है।" '[ट्रान्सवाल] लीडर' नामक समाचारपत्रने सोमवारको सम्पादकीय लेखमें सूचित किया कि कानून रद करनेकी बात पक्की हो गई है।

सोमवारको श्री गांधी श्री स्मट्ससे मिले। कानून रद करनेको जो विधेयक बनकर छप गया था वह दिखलाया गया और [कहा गया कि] यदि भारतीय समाजको पसन्द हो, तो यह विधेयक पास किया जायेगा और कानून रद होगा। लालच तो जबर्दस्त था। स्वेच्छया पंजीयन करा लेनेवाले लोगों और आगे चलकर इस प्रकार पंजीयन करानेवाले लोगोंकी दृष्टिसे नया विधेयक बहुत अच्छा था। खूनी कानूनकी कोई भी आपत्तिजनक शर्त उसमें दिखाई नहीं पड़ी। लेकिन, इस विधेयकमें "किन्तु" लगा हुआ था। इस प्रकारका विधेयक स्वीकार करनेसे नीचेके अधिकार जाते थे:

(१) शिक्षित लोग नहीं आ सकते।

(२) तीन पौंडी डच पंजीयनवाले लोग नहीं आ सकते।

(३) दूसरे शरणार्थी नहीं आ सकते।

(४) इस समय श्री चैमने जिनके प्रार्थनापत्रोंकी जाँच कर रहे हैं, उनके प्रार्थनापत्र यदि मंजूर न हों तो उनके [प्रशासनिक][1] निर्णयके खिलाफ कोई दाद-फरियाद नहीं की जा सकती।

अर्थात् यदि इतने लोगोंके अधिकार छोड़ दें तो प्रवासी कानूनमें परिवर्तन किया जायेगा और खूनी कानून खत्म होगा।

खूनी कानून खत्म हो अथवा न हो, किन्तु भला जो सचमुच हकदार हैं उनका हक छोड़ा ही कैसे जा सकता है? इसलिए श्री गांधीने उसे स्वीकार नहीं किया और समझौतेकी

१. दरअसल, गांधीजीने, स्मट्सको लिखे गये, अपने १३ जूनके पत्रमें जो मुद्दे उठाये थे वे स्वीकार नहीं किये गये। जून २४ की सार्वजनिक सभामें भाषण देते हुए अध्यक्ष ईसप मियाँने निम्नलिखित बातोंपर जोर दिया था: (क) ट्रान्सवालमें अधिवासके दावेके सम्बन्धमें पंजीयनके प्रार्थीसे गवाही खुले और अदालती तौरपर ली जाये, ताकि किसी भी सरकारी निर्णयका कारण गुप्त नहीं रह सके; और (ख) उपनिवेशमें पहलेसे ही रहनेवाले थोड़े-से भारतीयोंको प्राप्त होनेवाली शंकास्पद सुविधाओंकी कीमतपर वे भावी शिक्षित भारतीयोंके अधिकारोंको बेच नहीं देंगे।

सारी कार्रवाई बन्द हो गई। जनरल स्मट्स कहते हैं, "चूँकि आप यह विधेयक पसन्द नहीं करते, इसलिए यह कानून रद नहीं किया जा सकता। और, हमें जिस तरह ठीक लगेगा हम स्वेच्छया पंजीयनको वैध करेंगे।" श्री गांधीने फिरसे अपना स्वेच्छया पंजीयनका प्रार्थनापत्र वापस माँगा। श्री स्मट्सने कहा, "उसके लिए अदालतमें लड़िए।" प्रिटोरियाके भारतीयोंको तुरन्त ही यह बात बताई गई और जोहानिसबर्गमें समितिकी बैठक बुलानेके लिए तार[1] किया गया।

सोमवारकी शामको पाँच बजे सभा हुई। सभामें बड़ा उत्साह दिखाया गया। सभीने 'मारेंगे या मरेंगे'-वाला साहस दिखाया और संघर्ष शुरू करनेका निश्चय किया। प्रार्थनापत्र वापस लेनेके बारेमें मुकदमा चलाना तय हुआ। बुधवारके दिन सार्वजनिक सभा[2] करना निश्चित हुआ और मंगलवारको सार्वजनिक सभाके बारेमें तार दिये गये।

गोरे मित्र

सर्वश्री हॉस्केन, कार्टराइट, स्टेंट आदिने मदद करनेका वचन दिया। 'लीडर' में श्री गांधीके साथ की गई एक भेंट[3] भी छपी। और सारे समाचारपत्रोंको श्री गांधीने एक पत्र लिखा। यह पत्र आजके अखबारोंमें प्रकाशित हुआ है। वह नीचे लिखे अनुसार है:[4]

रायटरने अपना तार विलायत भेजा है। और कौम यदि ऐसा ही जोर लगाती रही, तो कानून जरूर टूटेगा और ऊपरके चार अधिकार जरूर मिलेंगे; हम इन दोनों बातोंके हकदार हैं। हमारा हक सच्चा है। सच्चा पार उतरता है, यह जगतका न्याय है।

अस्वातका हलफनामा

प्रार्थनापत्र वापस लेनेके बारेमें सर्वोच्च न्यायालयमें मामला श्री अस्वातकी ओरसे दायर किया जायेगा। यदि श्री अस्वात और श्री सोराबजी दोनोंके मामले सफल हुए तो संघर्ष संक्षिप्त हो जायेगा।

नहीं तो फिर क्या?

यदि ये दोनों मुकदमे अनुकूल नहीं निकलते तो भी क्या हुआ? उससे भी हार नहीं माननी चाहिए। सच्चा सर्वोच्च न्यायालय तो अपना हृदय है। सबका सच्चा न्यायाधीश खुदा है। उसपर भरोसा रखकर तदबीर करें, तो तकदीर भी साथ नहीं छोड़ेगी। इसलिए यदि इन दोनों मामलोंका फल उलटा निकले, तो उससे किसीको तनिक भी डरनेकी जरूरत नहीं है। जबतक हमारी हिम्मत बनी है, तबतक सब ठीक ही होगा। सत्याग्रहके संघर्षका आधार सत्याग्रहीके ऊपर होता है, न कि दूसरे व्यक्तियोंके ऊपर।

परीक्षात्मक मुकदमा

जनरल स्मट्स कहते हैं कि शिक्षितोंके अधिकारकी रक्षा प्रवासी अधिनियममें भी नहीं होती। यदि यह बात ठीक हो, तो हमें कुछ भी कहनेको नहीं बच रहता और हम जीत नहीं

१. देखिए "तार: जोहानिसबर्ग कार्यालयको", पृष्ठ २९६।

२. गांधीजीके भाषणके लिए देखिए "भाषण: सार्वजनिक सभामें", पृष्ठ ३११-४; सभामें जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए उनके लिए देखिए परिशिष्ट ५।

३. देखिए "भेंट: 'ट्रान्सवाल लीडर' को", पृष्ठ ३०१-०२।

४. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। मूलके लिए देखिए "पत्र: अखबारोंको", पृष्ठ २९७-९९।

सकते। श्री गांधीने यह बात सर्वोच्च न्यायालयपर छोड़नेको कहा, किन्तु श्री स्मट्स सहमत नहीं हुए। अब परीक्षणात्मक मुकदमा अवश्य करना होगा। श्री सोराबजी शापुरजीने, जो बम्बईकी अनेक अंग्रेजी परिक्षाओंमें उत्तीर्ण हुए हैं और जो चार्ल्सटाउनमें हैं, अपना मुकदमा दायर करवाना स्वीकार किया है और वे फोक्सरस्टमें बुधवारको स्वयं दाखिल होंगे। श्री चैमनेको इस विषयमें तार भी भेजा गया है कि यदि वे उन्हें गिरफ्तार करना चाहें, तो खुशीसे करें। यह लेख छपनेतक कदाचित् न्यायाधीशकी अदालतमें इसके विषयमें फैसला भी हो चुकेगा।

बुधवार [जून २४, १९०८]

श्री सोराबजी बुधवारको ट्रान्सवालमें दाखिल हुए। अनुमानके विपरीत उन्हें सीमापर रोका नहीं गया। इसलिए वे जोहानिसबर्ग पहुँच गये हैं। पुलिस उनपर नजर रख रही है और अन्दाज यह है कि थोड़े समय तक यही स्थिति रहेगी। इससे जाहिर होता है कि सरकारके खेमेमें कुछ मतभेद है। उसके कानूनी सलाहकारोंकी मान्यता है कि प्रवासी कानूनकी रूसे श्री सोराबजीपर हाथ नहीं लगाया जा सकता। फिर भी सम्भव है कि श्री सोराबजी जल्दी ही पकड़ लिये जायें।

ट्रान्सवालके कानून बनानेवाले!

जनरल स्मट्सने संसदमें ट्रान्सवाल नगरपालिका [एकीकरण] विधेयक वापस लेनेकी सूचना दी है। 'ओपिनियन' के पाठकोंको स्मरण होगा कि उस विधेयकका भारतीय समाजने सख्त विरोध किया था।[1] अभी-अभी 'ट्रान्सवाल लीडर' में खबर प्रकाशित हुई है कि सरकारका विचार स्वर्ण-कानून सम्बन्धी विधेयकको भी रद करनेका है। उस विधेयकके बदले एक दूसरा छोटा विधेयक पेश किया जायेगा। किन्तु ट्रान्सवाल सरकारने इस विधेयक सम्बन्धी खबरको सच नहीं बताया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७-६-१९०८

१. देखिए "प्रार्थनापत्र: ट्रान्सवाल विधानसभाको", पृष्ठ २८६-८८।

१८६. भाषण : सार्वजनिक सभामें[1]

[जोहानिसबर्ग
जून २४, १९०८]

इतने अधिक तारोंका आना जाहिर करता है कि इस सभाके उद्देश्यपर सब एकमत हैं। यद्यपि मैंने ये तार आपको पढ़कर सुनाये हैं तथापि मुझे इस सभा, ब्रिटिश भारतीय संघकी कार्य-समिति और ट्रान्सवालकी जनताको बता देना चाहिए कि इस सभाकी हवामें एक सनसनी है और इन तारोंसे निश्चय ही सम्पूर्ण सत्य व्यक्त नहीं होता। सम्पूर्ण सत्य यह है कि इस सभामें भी कुछ ऐसे भारतीय हैं जिन्हें समझौतेके बारेमें नेताओंकी, और खासकर स्वयं मेरी कार्रवाईपर क्षोभ है। जैसा कि अध्यक्षने अपने भाषणमें कहा है, इस सभामें ऐसे अनेक भारतीय उपस्थित हैं जो सोचते हैं कि सम्पूर्ण भारतीय समाज स्वार्थपूर्ण उद्देश्योंके लिए बेच दिया गया है। अध्यक्षने इस अभियोगका खण्डन किया है।[2] मैं भी इसका खण्डन करता हूँ। परन्तु मेरे जो देशवासी खासकर मेरे विरुद्ध यह अभियोग लगाते हैं, मैं उनको दोष नहीं देता।

मेरे कुछ देशवासी मुझसे कहते हैं, और कदाचित् उनके इस कथनमें कुछ औचित्य भी है, कि जब जेलमें दिखाये गये पत्रके बलपर मैं जनरल स्मट्ससे मिलने गया, तब मैंने उनसे सम्मति क्यों नहीं ली। यह अच्छा होगा कि मैं स्वयं उनकी शिकायतोंको पेश करूँ। मेरा विश्वास है कि जनरल स्मट्ससे मिलकर मैंने ठीक किया और अपनी अन्तरात्माके अनुसार किया। परन्तु समयने यह सिद्ध कर दिया है कि उनका कहना सही है और मुझे जनरल स्मट्सके पास जानेकी आवश्यकता नहीं थी। मैंने केवल इतना ही किया कि सम्पूर्ण भारतीय समाजने उनके सामने, एक वर्षसे ऊपर हुआ, स्वेच्छया पंजीयनका जो प्रस्ताव रखा था, उसे मान लिया। उस समय मैंने सोचा कि मैं, इस स्वेच्छया पंजीयनको स्वीकार करके, कुछ नहीं खो रहा हूँ, न कोई नया सिद्धान्त, न कोई रियायत। मुझे विश्वास था कि मेरे देशवासियोंकी ओरसे मुझे ऐसा करनेका पूर्ण आदेश है। परन्तु मैंने बहुत अधिक विश्वास किया। मुझे इसके आगे आनेवाले परिणामकी खबर नहीं थी। मैं नहीं जानता था कि अधिनियमके रद किये जानेके बारेमें दिये गये पक्के वादेका खण्डन कर दिया जायेगा। अब मैं समझ गया हूँ कि सरकार समझौतेका पालन नहीं करेगी।

१. इस सभाका आयोजन ट्रान्सवाल सरकार द्वारा ३० जनवरी १९०८ के "समझौतेके तत्त्वतः तोड़े जाने" से उत्पन्न स्थितिपर विचार करनेके लिए ब्रिटिश भारतीय संघके तत्त्वावधानमें शामको ३ बजकर ४५ मिनटपर हुआ था। उसमें सारे ट्रान्सवालके प्रतिनिधि उपस्थित थे। सभामें पास किये गये प्रस्तावोंके लिए देखिए, परिशिष्ट ५।

२. अध्यक्षने कहा था: "अध्यक्ष और मन्त्रीको पीटनेवाले लोग सरकारका विश्वास नहीं करते थे। उनके विचारमें, हमने उन्हें भरमाया, और जब समय आया तो समाजको सरकारके हाथों बेच दिया। मैं ऐसी किसी भी बातसे जोरदार ढंगसे इनकार करता हूँ, लेकिन यह बात अस्वीकार नहीं कर सकता कि अपने हालके आचरण द्वारा सरकारने उनकी शंकाओं और अविश्वासको सिद्ध कर दिया है।"

जनरल स्मट्स कहते हैं कि अधिनियमको रद करनेके बारेमें उन्होंने कभी कोई वादा नहीं किया। परन्तु संसारके सामने ऐसे कागजात आयेंगे, जिनसे कमसे-कम इतना तो अवश्य प्रकट होगा कि अधिनियमके रद करनेके बारेमें कुछ वार्तालाप, कुछ परामर्श हुआ था। इस बातके गवाह भी हैं, परन्तु, अध्यक्ष महोदयने ठीक ही कहा है कि इसके निर्णयका काम वकीलोंका है।[1] भारतीय समाज केवल इतना जानता है कि अधिनियमका रद होना लक्ष्य था और स्वेच्छया पंजीयनके द्वारा इसे प्राप्त करना ही उनका उद्देश्य था। परन्तु आज भारतीय समाज देखता है कि स्वेच्छया पंजीयनसे उद्देश्यकी पूर्ति नहीं हुई। समाज यह भी देखता है कि फिरसे यह महती सभा बुलाना आवश्यक हो गया है; और कदाचित् यह भी आवश्यक हो गया है कि यदि ईश्वरकी यही इच्छा है, तो फिरसे उन्हीं या उनसे भी अधिक तीव्र कष्टोंके बीचसे गुजरा जाये।

इसलिए यदि हवामें सनसनी जान पड़ती है तो मैं स्वीकार करता हूँ कि अपराधी मैं हूँ। इसका उत्तरदायित्व मुझपर है, क्योंकि मैंने जनरल स्मट्सकी राजनीतिज्ञता, उनकी ईमानदारी और खरेपनपर बहुत-बड़ा भरोसा किया था। यदि आज मेरे देशवासी सोचते हैं कि मैंने उन्हें बेच दिया तो उनके पास ऐसा विश्वास करनेका खासा कारण है; यद्यपि स्वयं मेरी रायमें इसका कोई औचित्य नहीं है। वे तो जो परिणाम निकले हैं, उन्हींसे मुझे परख सकते हैं। आजका संसार ऐसा ही बना है कि उसमें लोगोंकी परख उनके अपने अंगीकृत इरादोंसे नहीं, बल्कि उनके कामोंके परिणामसे की जाती है। और वे मेरी परख मेरे कार्योंके परिणामसे, सम्पूर्ण भारतीय समुदायपर अकारण समझौता लाद देनेके परिणामसे, करते हैं। इसमें मैं चीनी समुदायको भी शामिल करता हूँ, क्योंकि यद्यपि जनरल स्मट्सको जो पत्र भेजा गया था उसपर हस्ताक्षर करनेवाले दो और सज्जन थे, परन्तु उन्होंने स्वयं मेरी नेकनीयतीपर पूरा भरोसा करते हुए ऐसा किया था। उन्हें पूरा विश्वास था कि मैं जो कर रहा हूँ, वह वही है, जिसके लिए वे सब प्रयत्नशील हैं। अर्थात्, केवल शब्दोंमें ही नहीं बल्कि व्यवहारमें अधिनियम रद किया जाना, और निश्चय ही उसका संशोधित संस्करण प्राप्त करना नहीं, बल्कि उस कानूनको तथा उसके समस्त परिणामोंको समाप्त करवाना — बशर्ते कि भारतीय समुदाय और चीनी समुदाय स्वेच्छया पंजीयनके द्वारा यह सिद्ध कर दें कि इनपर बिना किसी कानूनी प्रतिबन्धके विश्वास किया जा सकता है। निस्सन्देह उनका विश्वास था कि यदि वे यह सिद्ध कर सकें कि एशियाइयोंका भारी बहुमत ट्रान्सवालमें पूर्ण अधिकारके साथ आया है, उसके पास जो कागजात हैं वे सही हैं, समुचित रूपसे प्राप्त किये गये हैं और जाली नहीं हैं, तो यह अधिनियम रद हो जायेगा; और उनकी स्थिति एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत जैसी रही है उससे कहीं अधिक अच्छी हो जायेगी। उनका यह भी विश्वास था कि उन्होंने १६ महीनों तक अधिनियमकी नाममात्रकी वापसीके लिए संघर्ष नहीं किया, बल्कि इसलिए किया था कि वे भी मानव-प्राणी समझे जायें, स्वयं उनके

१. अध्यक्षका कथन था: "हम जेल गये थे आत्माकी स्वतन्त्रता प्राप्त करने, अत्याचार और प्रतिबन्धोंसे आजादी हासिल करनेके लिए, और हम जेलसे लौटकर इसलिए नहीं आये हैं कि एक ऐसे कानून या उसके संशोधित रूपके सामने घुटने टेक दें जिसका उद्देश्य हमसे वह अमूल्य थाती छीन लेना है। हम कानूनी मुहावरों और वकीलोंकी बारीकियोंके जंजालमें पड़ना नहीं चाहते। हम आम लोग अपने सम्मानकी रक्षा चाहते हैं और यह वृहद सभा इसी उद्देश्यसे बुलाई गई है।"

अपने मामलोंकी व्यवस्थामें उनकी आवाज हो, उनसे सम्बन्धित जो विधान बनें, उसमें उनकी सुनाई हो। वे केवल मतदान-पत्र नहीं चाहते। क्योंकि भारतीयों और एशियाइयोंके लिए मतदान-पत्रका मूल्य उस कागजके इतना भी न होगा जिसपर हस्ताक्षर किया जायेगा। वे वास्तविक मतदान-पत्र चाहते हैं — वे चाहते हैं कि कोई विधान पास किये जानेसे पहले उनसे भी सलाह ली जाये।

और उन्होंने पाया क्या? उन्होंने देखा कि एक स्वर्ण-कानून सामने है, एक नगरपालिका-विधेयक हमारे लिए तैयार है। ये दोनों विधेयक उनके अधिकारोंकी और भी काँट-छाँट करनेवाले हैं, जिन्हें इस देशमें रहनेका अधिकार है। क्या उनके पास यह विश्वास करनेके लिए पूरा कारण नहीं है कि गांधीने उन्हें गुमराह किया? क्या उनके पास यह विश्वास करनेके लिए पूरा कारण नहीं है कि अब गांधीके कहनेसे उन्हें कष्ट सहन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है?

मैं अपने सामने एक योद्धा, एक सैनिकको देखता हूँ। वे मेरे जेलके साथी रहे हैं। वे कहते हैं, "मैं आपका विश्वास कैसे करूँ? आपने अपने देशवासियोंको गुमराह किया है। आपने अठारह अँगुलियोंके निशान दिये हैं। मैंने नहीं दिये। मैं अपने तमगे धारण करता हूँ और वही मेरा पंजीयन है।"

उनके ही एक दूसरे धर्म-बन्धु या एक पठान बन्धुने मेरे ऊपर आक्रमण किया है। मेरे ऊपर आक्रमण करनेके लिए उनको जितना धन्यवाद दिया जाये थोड़ा है, क्योंकि उनका विश्वास था कि मैं समाजको बेचे दे रहा हूँ। उनको मेरे विरुद्ध कोई शिकायत न थी। वे मेरे मुवक्किल थे। उन्होंने जो किया उसको करनेका उन्हें पूरा अधिकार था। और इस बातको मैं उन परिणामोंसे समझ रहा हूँ जो समूचे एशियाई समुदायपर थोप दिये गये हैं।

सज्जनो! जो यहाँ उपस्थित हैं और जिनका प्रभाव इस इमारतकी चारदीवारीके बाहर दूर तक पड़ता है, इस सभासे, इस बातको पूरी तरह समझ कर जायें कि जनरल स्मट्सके कार्यका, जो गोरे समुदायोंके नामपर किया गया है, क्या परिणाम होगा। मैं समझ सकता हूँ, मैं फर्क कर सकता हूँ, परन्तु जैसे मेरे देशवासी फर्क नहीं कर सकते और उनके पास केवल एक ही इलाज है : मुझपर आक्रमण करना, एक दूसरे भाईका इलाज है मुझे बताना कि मैंने अपने देशवासियोंको बेच दिया, उसी प्रकार उनके लिए सम्भव नहीं है कि वे एक गोरेके शब्दोंमें और दूसरे गोरेके शब्दोंमें फर्क कर सकें और विशेषकर उस अवस्थामें जब यह शब्द राज्यके लगभग सर्वोच्च पुरुषका शब्द हो।

मैं पूरे जोर और निश्चयके साथ कहता हूँ कि जनरल स्मट्सने एशियाइयोंके पंजीयककी उपस्थितिमें वादा किया था कि वे इस अधिनियमको रद करने जा रहे हैं बशर्ते कि एशियाई समुदाय समझौतेकी शर्तोंका पूर्ण रूपसे, बिना किसी हिचकके और मुक्त रूपसे पालन करें, एशियाई समुदाय देशमें प्रत्येक एशियाईकी शिनाख्त करनेमें जनरल स्मट्सको समर्थ बनायें, और एशियाई समुदाय जनरल स्मट्सको यह देखनेमें समर्थ बनायें कि ऐसा कोई भी एशियाई नहीं है जो देशमें चोरीसे घुस आये और पुलिस उसको पा न सके। इन शर्तोंको एशियाई समुदायोंने पूरा कर दिया है और इतनेपर भी हम आज देखते हैं, यहाँ इस तीसरे पहर हम यही मालूम करनेके लिए एकत्रित हुए हैं कि यह अधिनियम उस तरह रद नहीं किया जानेवाला है, जैसा कि इसे रद किया जाना चाहिए और इसे रद करनेके वादेको चारों ओरसे ऐसे

प्रतिबन्धोंसे घेर दिया गया है कि जिन्हें कोई भी स्वाभिमानी पुरुष स्वीकार नहीं कर सकता।

अनाक्रामक प्रतिरोध आन्दोलन उन समस्त एशियाइयोंके, जिन्हें इस देशमें बने रहनेका हक है, अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए चलाया गया है, न कि थोड़े-से चुने हुए लोगोंके लिए। और यदि मेरी दृष्टिमें ऐसा एक आदमी मौजूद है जो लेडीस्मिथमें रहता है, जो इस देशमें १८८५ में आया और जिसने यहाँ रहनेके लिए बोअर सरकारको २५ पौंड दे दिये हैं, जो यहाँ व्यापार करता है और जिसके पास यूरोपीयों द्वारा दिये गये परिचयपत्र हैं और तब भी वह इस देशमें प्रवेश नहीं कर सकता, तो कमसे-कम मैं यहाँ नहीं रहूँगा, बशर्ते कि लोग मेरे जानेके पहले ही मेरे इस सिरको जिसने उन्हें भारी हानि पहुँचायी जान पड़ती है उतार न लें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८

१८७. पुनः अनाक्रामक प्रतिरोध

बहुत खेदकी बात है कि यद्यपि जनरल स्मट्स एशियाई अधिनियमको रद करनेके लिए राजी हो गये हैं, किन्तु ऐसी बातोंपर, जो महज तफसीलकी हैं, या औपनिवेशिक दृष्टिसे जिनका कोई महत्त्व नहीं है, उन्होंने कठोर रुख अख्तियार कर लिया है। जनरल स्मट्सका यह रुख बहुत-कुछ गुड़ खाने और गुलगुलोंसे परहेज करने-जैसा है। उक्त अधिनियमको रद करनेके अपने प्रस्तावको ट्रान्सवालके एशियाइयोंको होनेवाले सारे लाभोंसे रिक्त करके उन्होंने उसकी सारी शोभा नष्ट कर दी है। और इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि ब्रिटिश भारतीयोंने इस प्रस्तावको, जो परिणामतः उन्हें एक समुदायके रूपमें उनकी लड़ाईसे पहलेकी हालतकी अपेक्षा कहीं अधिक बुरी हालतमें डाल देता है, तुरन्त अस्वीकार कर दिया। यह सच है कि जनरल स्मट्सने उन लोगोंकी स्थितिको अधिक सुविधाजनक बनाकर, जिन्हें कि उन्होंने उक्त अधिनियमको रद करनेके लिए तैयार किये गये विधेयकमें शामिल किया है, एक आकर्षक प्रलोभन दिया था। हमारे लोगोंकी प्रशंसामें यह तो कहना ही चाहिए कि वे इस प्रलोभनमें नहीं फँसे। अनाक्रामक प्रतिरोधियोंके नाते वे अपने लाभके लिए उन दूसरे लोगोंके अधिकारोंको नहीं बेच सकते थे जिन्हें ट्रान्सवालमें रहने या प्रवेश करनेका उतना ही अधिकार है जितना उन्हें। सार्वजनिक सभाकी कार्रवाईसे यह बात असन्दिग्ध रूपमें प्रकट हो गई है कि भारतीय लड़ाईको अन्ततक चलानेके लिए सदाकी तरह कृत-निश्चय हैं और इस बार उन्हें पहलेसे ज्यादा सहानुभूति तथा सहायता मिलेगी और यदि जनरल स्मट्सके मनमें, वे जिस साम्राज्यके नागरिक हैं, उसके प्रति कुछ भी आदर-भाव है, तो वे अभी भी, समय रहते, भारतीयोंकी भावनाको ठेस पहुँचानेसे हाथ खींच लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–६–१९०८

१८८. फिर सत्याग्रहकी लड़ाई

जनरल स्मट्स कहते हैं कि वे कानूनको रद कर देंगे, किन्तु एक खास शर्तपर। इससे ट्रान्सवालके भारतीय युद्धमें जो एक और लड़ाई बाकी रह गई थी, वह अब घोषित हो गई है। जो बड़े युद्ध होते हैं उनमें एकसे अधिक लड़ाइयाँ होती हैं। रूस और जापानका युद्ध एक वर्षसे अधिक चला। उसमें पोर्ट आर्थरकी लड़ाई और मुकडेनकी लड़ाई आदि चार-पाँच जानने लायक लड़ाइयाँ हुईं। बोअर-युद्ध दो-तीन वर्ष चला। उसका अन्त भी कई लड़ाइयाँ होनेके बाद हुआ। ट्रान्सवालके भारतीयोंका युद्ध ऊपर बताये गये युद्धोंकी भाँति शस्त्र-युद्ध नहीं है। तथापि वह भी एक युद्ध तो है ही; क्योंकि परिणामकी बात देखें तो यह सत्याग्रहका युद्ध ऊपर बताये गये गोला-बारूदके युद्धोंसे कम नहीं है। [दूसरे] उपनिवेशोंमें भारतीयोंकी — एशियाइयोंकी — क्या दशा होगी, यह बहुत-कुछ वर्तमान मामलेकी हार-जीतपर निर्भर है। दूसरा कोई भी परिणाम इस परिणामसे अधिक महत्त्वका नहीं हो सकता। इस दृष्टिसे देखते हुए ट्रान्सवालके मुट्ठी-भर भारतीयोंके झगड़ेकी तुलना उक्त बड़े शस्त्र-युद्धोंसे करनेमें हम झिझकते नहीं।

युद्धमें अनेक लड़ाइयाँ जीती जायें किन्तु अन्तिम लड़ाईमें हार हो जाये तो सारी जीत व्यर्थ हो जाती है। ट्रान्सवालके भारतीयोंके सत्याग्रहपर भी यह बात लागू होती है। पहली लड़ाई १९०६ में हुई।[1] वह इंग्लैंडके राजनीतिक क्षेत्रके मैदानोंमें लड़ी गई और शिष्टमण्डल विजय प्राप्त करके लौटा। उसके बाद एकसे अधिक लड़ाइयाँ हुईं, और उनमें भारतीय जातिने अपनी तेजस्विता भली-भाँति प्रकट की और दुनियामें यह ख्याति प्राप्त की कि मुट्ठी-भर वीर भारतीयोंने साहस और सत्यके आधारपर बोअरोंको हरा दिया। फिर भी समझौतेसे कितने ही भारतीयोंमें असन्तोष फैला, क्योंकि, उनके कहनेके अनुसार, लड़ाई पूरी तरह नहीं लड़ी गई। इस प्रकार जो काम अधूरा रह गया था उसको पूरा करनेका अवसर अब जनरल स्मट्सने दिया है। इसीलिए हम यह मानते हैं कि प्रत्येक सत्याग्रही भारतीय फिर युद्ध आरम्भ होनेसे अप्रसन्न न होगा और हुंकार भरकर खड़ा हो जायेगा। लड़ाईके पूरा होनेसे पहले ही उसे बन्द करनेसे जो लोग नेताओंसे नाराज हुए थे उनको अब यह सिद्ध करनेका अवसर मिला है कि उनकी वह भावना सच्ची है। उनको अन्य लोगोंके साथ तुरन्त खड़ा होकर पुकारना चाहिए कि भारतीयोंके सम्मान और अधिकारोंकी रक्षाके लिए वे अपने प्राणों और धनकी आहुति देनेके लिए तैयार हैं। यदि ट्रान्सवालकी भारतीय जाति इस बार — अब तो यह अन्तिम बार ही है — यह उत्साह दिखायेगी तो उसकी जीतका डंका अवश्य बजेगा; इसमें हमें कोई सन्देह नहीं है।

यह लड़ाई ऊपर बताये गये युद्धकी अन्तिम लड़ाई है और इसमें विजय प्राप्त करना विशेष रूपसे आवश्यक है। इसके परिणामपर विशेषतः दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थिति बहुत कुछ निर्भर है। एक ओर नेटालमें घटाएँ घनी हो रही हैं।[2] दूसरी ओर रोडेशियामें

१. तात्पर्य ट्रान्सवाल भारतीयोंके शिष्टमण्डलसे है, जो इंग्लैंड गया था। देखिए खण्ड ६।

२. देखिए "नेटालका परवाना कानून", पृष्ठ २७८।

पंजीयनका कानून पास हो चुका है।[1] वहाँकी संसदमें एक सदस्य कह चुका है कि ट्रान्सवालमें कानून कहाँ रद हुआ है। इससे प्रकट होता है कि ट्रान्सवालके भारतीयोंको इस मुर्दा कानूनको श्मशानमें पहुँचाकर ठिकाने लगाना होगा। उनको अपने लिए और वैसे ही समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके लिए फिर कमर कसनी चाहिए। और सार्वजनिक सभाकी रिपोर्टसे जान पड़ता है कि वे तैयार हो ही चुके हैं। हम इसके लिए उन्हें बधाई देते हैं और सलाह देते हैं कि वे एक बार जबर्दस्त धावा बोलकर शत्रुको अपनी पूरी शक्ति दिखा दें। सत्याग्रहकी तलवार इस्पातकी तलवारको भी निस्तेज करनेवाली है। उसकी धार सत्य और न्यायकी है; और उसमें मूठ ईश्वरीय सहायताकी लगी है। उससे जो लड़ता है उसको हारनेका डर रहता ही नहीं। इसलिए हे वीर भारतीयो! उठो, और बाट न जोहकर सत्याग्रहकी तलवारको धारण करके विजय प्राप्त करो। जबसे जापानी वीरोंने मंचूरियाके मैदानमें रूसियोंको धूल चटाई है, तबसे पूर्वमें सूर्योदय हो चुका है। यह प्रकाश आज समस्त एशियाई लोगोंपर पड़ने लगा है। अब पूर्वके लोग घमण्डी गोरोंके द्वारा किये गये अपमानको अधिक समय तक हर्गिज सहन न करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–६–१९०८

१८९. सर्वोदय [७]

दौलतकी नसें

हम देख चुके हैं कि धनका मूल्य उसके द्वारा लोगोंकी मजदूरी ले सकनेपर आधारित है। यदि मजदूरी मुफ्तमें मिल जाये तो पैसेकी गरज नहीं रहती। और पैसेके बिना मनुष्योंकी मजदूरी मिल सकनेकी मिसालें देखनेमें आया करती हैं। धनबलकी अपेक्षा दूसरा बल — नीतिबल — अधिक काम कर डालता है, ऐसी मिसालें भी हम देख चुके हैं। जहाँ धन-बलसे काम नहीं चल सकता, वहाँ सद्गुणसे चल जाता है, सो भी हम देख चुके हैं। इंग्लैंडमें कई स्थानोंपर लोगोंको पैसेसे बहकाया नहीं जा सकता।

फिर, अगर हम मानते हैं कि लोगोंसे काम लेनेकी शक्ति ही दौलत है, तो हम यह भी समझ सकते हैं कि मनुष्य जितना चतुर और नीतिवान होगा उतनी ही उसके धनमें वृद्धि होगी। इस प्रकार विचार करनेपर हम देखेंगे कि वास्तविक धन सोना-चाँदी नहीं बल्कि खुद इन्सान ही है। धनकी खोज पृथ्वीके गर्भमें नहीं करनी है, उसे तो मनुष्यके हृदयमें खोजना है। और अगर यह सही है तो अर्थ-शास्त्रका सही नियम यह ठहरा कि जहाँतक हो सके लोगोंको तनमें, मनमें और मानमें नीरोग रखना। ऐसा अवसर भी आ सकता है, जब इंग्लैंड गोलकुण्डाके हीरोंसे गुलामोंको सजा कर अपनी दौलतका दिखावा करनेके बदले अपने नीतिवान महापुरुषोंकी ओर इंगित करके (जैसा कि ग्रीसके एक सच्चे प्रख्यात पुरुषने कहा था) कह उठे "यह मेरी दौलत है"।

सही न्याय

ईसासे कुछ शताब्दी पूर्व एक यहूदी व्यापारी हो गया है। उसका नाम सॉलोमन था। उसने बहुत धन कमाया था और वह बहुत प्रसिद्ध हुआ था। उसकी कहावतें आज भी

१. देखिए "रोडेशियाके भारतीय", पृष्ठ २५७-८।

यूरोपमें प्रचलित हैं। वेनिसके लोग उसे इतना चाहते थे कि उन्होंने वहाँ उसकी मूर्ति खड़ी की थी। यद्यपि उसकी कहावतें इस जमानेमें कण्ठाग्र कर ली जाती हैं, तथापि उनके अनुसार व्यवहार करनेवाले लोग बहुत कम हैं। वह कहता है, "जो लोग झूठ बोल कर धन कमाते हैं वे अभिमानी हैं और वह उनकी मृत्युका चिह्न है।" एक दूसरी जगह उसने कहा है कि "हरामखोरोंका धन कुछ भी लाभ नहीं पहुँचाता। सत्य मौतसे बचाता है।" इन दोनों कहावतोंमें सॉलोमनने बतलाया है कि अन्यायसे कमाई हुई दौलतका नतीजा मौत है। इस जमानेमें झूठ और अन्याय ऐसी चतुराईसे बोला और किया जाता है कि साधारण तौरपर हमें उनका पता नहीं चल पाता। उदाहरणके लिए, झूठे विज्ञापन निकाले जाते हैं; वस्तुओंपर ऐसे नाम लगाये जाते हैं जिनसे आदमी भ्रमित हो जाये, इत्यादि।

वह बुद्धिमान मनुष्य फिर कहता है कि "जो लोग अपनी दौलत बढ़ानेकी खातिर गरीबोंको सताते हैं वे अन्तमें भीख माँगते फिरेंगे।" आगे वह कहता है कि "गरीबोंको मत सताओ क्योंकि वे गरीब हैं। व्यापारमें पीड़ितोंपर अत्याचार मत करो, क्योंकि जो गरीबोंको सतायेंगे उन्हें ईश्वर सतायेगा।" तिसपर भी आज तो व्यापारमें मरे हुएको ही ठोकर मारी जाती है। जो व्यक्ति मुसीबतमें फँस गया हो उससे हम अपना लाभ उठानेको उद्यत हो जाया करते हैं। डाकू तो धनवालोंको लूटते हैं, मगर व्यापारमें गरीबोंको लूटा जाता है।

आगे सॉलोमन कहता है कि "अमीर और गरीब दोनों समान हैं। ईश्वर उनका सिरजनहार है, ईश्वर उन्हें ज्ञान देता है।" अमीरका गरीबके बिना और गरीबका अमीरके बिना काम नहीं चलता —एकको दूसरेकी आवश्यकता सदा पड़ती ही रहती है। इसलिए कोई किसीको ऊँचा या नीचा नहीं कह सकता। लेकिन जब ये दोनों अपनी समानताको भूल जाते हैं और इस बातको भी विस्मृत कर देते हैं कि ईश्वर उनको समझ देनेवाला है, तब परिणाम विपरीत आता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–६–१९०८

१९०. मुस्तफा कामेल पाशाका भाषण[1]

अपनी मृत्युके कुछ ही माह पूर्व मुस्तफा कामेल पाशाने अलेक्जैंड्रियामें एक जोशीला भाषण दिया था। वह भाषण बहुत जानने योग्य है और उससे हम सभी कुछ-न-कुछ सीख सकते हैं। इसलिए हम उसका अनुवाद यहाँ दे रहे हैं।[2]

यह भाषण जीजीनिया थियेटरमें १९०७ की २२ अक्तूबरको दिया गया था। कहते हैं कि इस भाषणको सुननेके लिए ६,००० से ज्यादा लोग उपस्थित थे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–६–१९०८

१. मुस्तफा कामेल पाशाके संक्षिप्त जीवन-परिचयके लिए देखिए "मिस्रके प्रख्यात नेता", पृष्ठ १५९-६० और १६७-६९।

२. भाषण यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

१९१. एक पत्रका अंश[1]

[जून २९, १९०८ के पूर्व]

पूरी तरह सुधरनेमें अभी कुछ दिन लगेंगे। वहाँ तुम्हें कसरत आदिकी सुविधा और खुली हवा खूब मिलती है। इसलिए मुझे उसके बारेमें लिखनेकी जरूरत नहीं रह जाती।

श्रीमती और कुमारी पायवेलसे[2] खूब मिलते रहना। उनके साथ मिलने-जुलनेसे तुम्हारे मनमें जो विचार आयें उन्हें लिख भेजना।

श्मशानके बारेमें सरकारने बाधा उठाई है। इसे मैं हिन्दुओंका अपमान समझता हूँ। सब जगह इसकी बात करना और चर्चा चलाना। यह मुद्दा ऐसा है जिसपर अच्छी तरह लड़ा जा सकता है। उसमें अनेक गोरोंकी मदद भी मिलेगी। तुम सारी हकीकत मोतीलालसे[3] मिलकर जान लेना।

यहाँके बारेमें कोई चिन्ता न करना। सम्भव है, सारा मामला बिना किसी झगड़ेके निबट जायेगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजराती प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ६०८४) से।

१९२. इब्राहीम इस्माइल अस्वातका जवाबी हलफनामा[4]

[जोहानिसबर्ग
जून २९, १९०८]

मैं वेरीनिगिंग-निवासी इब्राहीम इस्माइल अस्वात गम्भीरतापूर्वक और सचाईके साथ नीचे लिखा बयान देता हूँ:

१. मैंने प्रिटोरियाके श्री मॉंटफोर्ड चैमनेके २५ जून और २६ जून, १९०८ के हलफनामे और प्रिटोरियाके श्री जे० सी० स्मट्स, उपनिवेश-सचिवका २६ जून, १९०८ का हलफनामा पढ़ा है।

२. मैं श्री मॉंटफोर्ड चैमनेको लिखी गई अपनी चिट्ठीकी[5], जिसमें कि उनसे उस चिट्ठीमें उल्लिखित दस्तावेज लौटानेके लिए कहा गया था, नकल साथमें नत्थी कर रहा हूँ।

१. पत्रके विषयसे जान पड़ता है कि यह या तो छगनलाल गांधी या मगनलाल गांधीको फीनिक्सके पतेपर भेजा गया था।

२. कुमारी एडा पायवेल तब हाल ही में दक्षिण आफ्रिका आई थीं, और जून २९, १९०८ को श्री वेस्टसे उनकी शादी हुई।

३. मोतीलाल एम० दीवान, डर्बन भारतीयोंके एक नेता।

४. यह जस्टिस ऑफ पीस हैरी एच० जॉर्डनके सामने पेश किया गया था। अनुमानतः इसका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था।

५. देखिए "पत्र: एम० चैमनेको", पृष्ठ ३०२-०३।

३. मॉंटफोर्ड चैमनेने उनके उक्त हलफनामेके अनुच्छेद ४में जिस अनुमतिपत्र और पंजीयन-प्रमाणपत्रका उल्लेख हुआ है, उन्हें लौटानेका प्रस्ताव कभी नहीं किया।

४. मैंने स्वेच्छापूर्वक जो अर्जी दी थी उसे अब मैं वापस ले लेना चाहता हूँ और जिस सरकारी कागजपर वह दी गई थी उसकी कीमत चुकानेके लिए राजी और तैयार हूँ।

इब्राहीम इस्माइल अस्वात

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

१९३. जवाबी हलफ़नामा[1]

[जोहानिसबर्ग,
२९ जून, १९०८]

मैं, जोहानिसबर्गका मोहनदास करमचन्द गांधी, शपथपूर्वक और ईमानदारीसे निम्न लिखित बयान देता हूँ:

१. मैंने प्रिटोरियाके श्री मॉंटफोर्ड चैमनेके, प्रिटोरिया, २५ जून और २६ जून, १९०८ के हलफनामे,[2] प्रिटोरियाके श्री जे० सी० स्मट्स, उपनिवेश-सचिवका २६ जून १९०८ का हलफनामा, और वेरीनिगिंगके श्री इब्राहीम इस्माइल अस्वातका जोहानिसबर्ग २९ जून, १९०८ का हलफनामा[3] और श्री चैमनेको लिखे गये पत्रकी नकल[4] पढ़ी है।

२. ब्रिटिश भारतीय संघके मन्त्रीकी हैसियतसे मुझे उपर्युक्त मॉंटफोर्ड चैमनेका ऐसा कोई पत्र नहीं प्राप्त हुआ जिसमें उपर्युक्त इब्राहीम इस्माइल अस्वातका अनुमतिपत्र और पंजीयन प्रमाणपत्र वापस करनेका प्रस्ताव किया गया हो।

३. मैं अपने इस वक्तव्यपर दृढ़ हूँ कि श्री स्मट्सने १९०७ के अधिनियम संख्या २ को रद करनेका वचन दिया था, किन्तु मुझे सलाह दी गई है कि अधिनियमको रद करनेका प्रश्न अदालतके विचाराधीन प्रश्नसे सम्बन्धित नहीं है। अतः मैं अपने वक्तव्यके समर्थनमें और प्रमाण नहीं दे रहा हूँ।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

१. यह हलफनामा जस्टिस ऑफ पीस हैरी एच. जॉर्डनकी अदालतमें दाखिल किया गया था।
२. देखिए परिशिष्ट ६
३. देखिए पिछला शीर्षक
४. देखिए "पत्र: एम० चैमनेको", पृष्ठ ३०२-०३।

१९४. पत्र: एच० एल० पॉलको

जोहानिसबर्ग,
जुलाई १, १९०८

प्रिय श्री पॉल,

मैं दरअसल इतना व्यस्त रहा कि आपके पत्रका उत्तर नहीं दे सका। मैं नहीं समझता कि इस समय श्री रुस्तमजीको कष्ट देनेकी आवश्यकता है क्योंकि मैंने जोज़ेफका मार्गव्यय[1] देने लायक काफी रुपया इकट्ठा कर लिया है और श्री रिचको वह रकम उन्हें दे देनेका अधिकार दे दिया है। अर्थात् मेरे पास २० पौंड हैं। यदि वे थोड़े-से पौंड, जो ब्रायन गैब्रियल[2] और लॉरेन्सने[3] अबतक इकट्ठे किये हैं, उनको भेजे जा सकें तो उन्हें अधिककी आवश्यकता न होगी। यदि आप थोड़ा रुपया और इकट्ठा कर सकें तो उससे उनकी दिक्कत थोड़ी कम हो जायेगी। बस इतनी ही बात है।

मुझे प्रसन्नता है कि मेरी संरक्षिता[4] मुझे बिलकुल भूली नहीं है। मुझे इस बातकी भी प्रसन्नता है कि वह संगीतमें बहुत अच्छी प्रगति कर रही है। मुझे उसने और आपने भी वचन दिया है कि वह अपनी प्रतिभाका उपयोग फीनिक्सके और फीनिक्सके द्वारा समस्त भारतीय समाजके लाभके लिए करेगी। इसलिए मेरी सम्मतिमें यह एक अच्छी पूँजी है।

मुझे आशा है कि आप सबका स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्थानीय संघर्ष लम्बा हो सकता है या कुछ दिनोंमें समाप्त हो सकता है। यदि लोग मजबूत रहें तो इसका एक ही परिणाम सम्भव है।

आपका हृदयसे,
मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ४५४८) से।
सौजन्य: इ० जे० पॉल, पीटरमैरित्सबर्ग।

१. जोज़ेफ़ रायप्पनका दक्षिण आफ्रिकाका मार्ग-व्यय; देखिए "पत्र: एच० एल० पॉलको", पृष्ठ २७७।
२. एक भारतीय, जिनका धन्धा फोटोग्राफीका था; ये कुछ समयतक फीनिक्स बस्तीके सदस्य रहे थे।
३. वी० लॉरेन्स; डर्बनके भारतीय समाजके एक नेता।
४. ऐंजी, एच० एल० पॉलकी पुत्री। देखिए "पत्र: एच० एल० पॉलको", पृष्ठ २७७ भी।

१९५. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

[जुलाई २, १९०८ के पूर्व][1]

सत्याग्रहका जोर

सत्याग्रहका संघर्ष फिर प्रारम्भ हो गया है। भारतीय हजारों तरहकी बातें कर रहे हैं। सभी साहसी जान पड़ते हैं।

यह संघर्ष किसलिए है?

यह सवाल ठीक तरह समझ लेना आवश्यक है। इस बार हमारा संघर्ष कानून रद करानेके लिए नहीं है, क्योंकि कानून रद करनेके लिए तो स्मट्स साहब तैयार थे, और वह रद होगा भी। जिन्हें कानून स्वीकार नहीं करना है उनके लेखे वह रद हुआ जैसा ही है।

फिर, यह संघर्ष अँगुलियोंकी छाप देनेके बारेमें भी नहीं है। अँगुलियोंकी छापका प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। रोडेशियामें अँगुलियोंकी छाप नहीं माँगी जाती,[2] लेकिन उससे शर्मिन्दगी कम नहीं होनेवाली है। जहाँ प्रतिष्ठाकी रक्षा करने और गुलामी खत्म करनेकी बात है, वहाँ अँगुलियोंकी छापके प्रश्नका क्या महत्व?

यह संघर्ष तो उनका है जिनके पास डचोंके वक्तके तीन पौंडी पंजीयनपत्र हैं। उनका है जो बाहर बैठे हैं, किन्तु जो यह सिद्ध कर सकते हैं कि वे स्वयं ट्रान्सवालके पुराने निवासी हैं, और यह शिक्षित भारतीयोंके लिए भी है। इतनी बात हरएक भारतीयको ठीक-ठीक समझ लेनी है।

जब समझौता हुआ, तब इसके बारेमें निर्णय होना सम्भव नहीं था। तब तो यही साबित करना था कि भारतीय समाज खरा है। तबतक सिर उठानेकी स्थिति नहीं थी। उस समय तीन पौंडी पासवालों, दूसरे शरणार्थियों तथा शिक्षितोंकी स्थिति डावाँडोल थी इसलिए उनके बारेमें कुछ निर्णय होना सम्भव नहीं था।

किन्तु अब, जब कानून रद करते समय जनरल स्मट्स उन लोगोंकी स्थितिके सम्बन्धमें निर्णय अहितकर रूपमें करना चाहते हैं और उनको अलग करनेका प्रयत्न करते हैं तब भारतीय समाज उसका खुलासा कर सकता है।

इससे किसीको समझौतेमें दोष निकालना नहीं चाहिए। समझौता हुआ — भारतीय समाजने अपनी शक्ति दिखाई — तभी तो हम इस दर्जे तक जानेमें समर्थ हुए हैं।

उपाय

उपाय एक ही है और वह हमारे हाथमें है। हमें सरकारी कानूनकी परवाह किये बिना नीचेके अनुसार बरतना चाहिए:

(१) जब जरूरत पड़े, स्वेच्छापूर्वक लिया गया पंजीयन प्रमाणपत्र जला दिया जाये।

(२) पुलिस अँगुलियोंकी छाप, हस्ताक्षर अथवा नाम माँगे तो वे न दिये जायें।

१. यह 'चिट्ठी' सर्वोच्च न्यायालय द्वारा श्री अस्वातके हलफनामेपर, जिसमें उन्होंने अपने स्वेच्छया पंजीयनके प्रार्थनापत्रकी वापसीकी माँग की थी, निर्णय देनेसे पूर्व लिखी गई थी। मुकदमेकी सुनवाई २ जुलाईको हुई थी।

२. देखिए "रोडेशियाके भारतीय", पृष्ठ २५७-५८।

(३) परवानेकी रकम दी जाये; किन्तु यदि परवाना न मिले, तो बिना परवानेके रोजगार किया जाये।

इन कामोंमें से किसीको करते हुए यदि जेलकी सजा मिले, तो उसे भोगना चाहिए। हम लोग जब ऐसा करेंगे, तब तुरन्त मुक्ति प्राप्त होगी। आजतक सब अपने-अपने लिए लड़ते थे। अब तो जिन्हें स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र प्राप्त हो चुके हैं, वे ऊपर बताये हुए विशिष्ट व्यक्तियोंके लिए लड़ेंगे।

यदि हम न लड़ें, तो हमारा सत्याग्रह सच्चा नहीं माना जायेगा। यह कोई ऐसी तलवार नहीं जो केवल एक बार काममें आये और फिर काममें न आये। यदि हमने उसके पानीको भली-भाँति समझ लिया है, तो वह हम जब लड़ेंगे, तभी काम देगी। यह फौलादकी तलवारसे अधिक शक्तिशाली है, केवल हममें दुःख सहन करनेकी सामर्थ्य होनी चाहिए। हमें जेलसे नहीं डरना चाहिए। हमें मकईका दलिया (पुपु) खानेमें कोई हर्ज न समझना चाहिए।

किन्तु हम बाहर कैसे जा सकते हैं?

यह सवाल बहुतसे लोगोंने किया है। यदि लोग अपने प्रमाणपत्र जला दें और ट्रान्सवालसे जानेके बाद फिर कभी दाखिल होना हो, तो उसके लिए अधिकारपत्र क्या होगा? इस सवालमें ही सत्यके आग्रहकी कमी निहित है। मेरा उत्तर यह है कि ट्रान्सवालवासी भारतीयोंको तभी अधिकारपत्रकी जरूरत होगी जब उन्हें भारत जानेके लिए उसकी आवश्यकता हो। ट्रान्सवालवासी भारतीय पंजीयन प्रमाणपत्रोंके बिना भी बेशक दाखिल हों। दाखिल होनेमें जोखिम यही रहता है कि सरकार जेल भेज देगी। वह भले ही जेल भेजे; किन्तु जमानत नहीं देनी है। जमानतपर नहीं छूटना है। जुर्माना नहीं देना है। बचाव नहीं करना है; उसके लिए वकीलकी जरूरत पड़ती है। यदि बचाव करनेकी जरूरत हुई, तो उसमें श्री गांधी पहलेकी तरह ही निःशुल्क बचाव करेंगे। शर्त यही है कि व्यक्ति सत्याग्रही हो, उसका मामला सच्चा हो, और उससे समाजका हित सिद्ध हो।

सर्वोच्च न्यायालय

ऊपरके विचारोंके अनुसार चलनेवालोंका सर्वोच्च न्यायालयके मुकदमेसे कोई ताल्लुक नहीं है। यदि इस मुकदमेके फलस्वरूप प्रार्थनापत्रोंके फार्म वापस मिल जायें तो ठीक है, तब अन्त जल्दी होगा। किन्तु यदि वे फार्म वापस न मिलें, तो उससे भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। हममें शक्ति चाहिए। यदि फार्म वापस मिलते हैं तो उसका अर्थ भी यही होता है कि पंजीयन प्रमाणपत्र अवैध हो जाते हैं। पंजीयन प्रमाणपत्रोंको जलानेका अर्थ भी यही होता है। यह मानना ठीक नहीं है कि फार्म वापस मिल जानेपर भी पंजीयन प्रमाणपत्रोंसे काम चलाया जा सकेगा। बिना फार्मोंके पंजीयन प्रमाणपत्र बिना कारतूसकी बन्दूक जैसे हैं। प्रार्थनापत्रोंके फार्म वापस माँगनेका हेतु इतना ही है कि पंजीयन प्रमाणपत्र तुरन्त अवैध हो जायेंगे। हम प्रमाणपत्रोंको जला दें तो इससे वे अवैध नहीं होते, क्योंकि सरकारके पास उनकी नकलें हैं और प्रार्थनापत्रोंमें सारी कैफियत मौजूद है।

हमारी आशंका यह है कि हम प्रमाणपत्र जला दें तो भी सरकार हमपर मुकदमा न चलायेगी। हम जेल जाना चाहते हैं। सरकार हमें जेल भेजना नहीं चाहती। इसलिए प्रार्थनापत्र वापस माँगना जेल जानेका सबसे अच्छा उपाय है।

सरकार स्वयं अनाक्रामक प्रतिरोधी बनना चाहती है, यह श्री स्मट्सने कहा है। मैं उसे सत्याग्रह नहीं कहूँगा, क्योंकि उसका हठ तो अनुचित कहा जायेगा। सरकार इसका उपाय खोज रही है कि वह हमको हमारे प्रार्थनापत्र वापस न दे और हमें जेल भी न भेजे। इसमें उसकी नीयत खराब है। ७,००० स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंका भय उसके मनमें समा गया है। वे साहसी हैं और फिर संघर्ष कर सकते हैं, इसलिए उन्हें न छेड़ना ही अच्छा है। वह इसी विचारपर अमल करना चाहती है।

ये सब बातें बहुत आसानीसे समझमें आ सकती हैं। प्रत्येक व्यक्तिको इसपर विचार कर लेना चाहिए और फिर अपने मनमें प्रश्न करना चाहिए: "क्या ऐसा संघर्ष तीन महीने पहले सम्भव था?

क्या उस समय सरकार हमसे भय मानती थी? यदि हम लड़ेंगे तो जीतेंगे — क्या इसमें कोई शक है?"

झूठे पंजीयन प्रमाणपत्र

समाजके बैरी अनुचित काम करते रहते हैं। जयमल नामका एक नाई है। वह बनावटी अनुमतिपत्र बेचनेके कारण पकड़ा गया है। कहा जाता है कि उसने एक खोजेको[1] बनावटी अनुमतिपत्र बेचा। उस खोजेने उसे उसके लिए २० पौंड दिये। वह खोजा श्री अली खमीसाके हाथमें पड़ा और उन्होंने उसे गिरफ्तार करा दिया। खोजेको शाही गवाह (जो खास गवाहके रूपमें सरकारको खबरें देकर हकीकतको जाहिर करता है, उसे अंग्रेजीमें 'किंग' का, अर्थात्, शाही गवाह कहते हैं) बनाया गया है। उस खोजेने जो गवाही दी उसीके आधारपर जयमल गिरफ्तार किया गया है। यदि मेरी यह खबर ठीक हो, तो मैं श्री अली खमीसाको बधाई देता हूँ। उन्होंने समाजकी सेवा की है। जयमल सरीखे भारतीय समाजके दुश्मन हैं। उन्हें दण्ड मिलना ही चाहिए। ऐसे व्यक्तियोंसे समाजका नुकसान हुआ है, और अभी होगा। जो ऐसे झूठे अनुमतिपत्र लेते हैं, वे नाहक फँस जाते हैं। यदि वे ऐसे काले काम करनेके बदले सत्याग्रहपर दृढ़ हो जायें तो, जल्दी या देरसे, प्रत्येक अधिकारी भारतीय अर्थात् सच्चा — लम्बी मुद्दत तक रहा हुआ — शरणार्थी इस देशमें आ सकेगा। जो एकदम नये हैं और आना चाहते हैं, उन्हें आनेका विचार भी नहीं करना चाहिए।

जनरल स्मट्सका हलफनामा

जनरल स्मट्स तथा श्री चैमनेने हलफिया बयान दिया है कि श्री स्मट्सने कानूनको रद करनेका वादा कभी नहीं किया। उन्होंने यह बयान मुकदमेकी पेशीके दिन दिया। यह पहले दिन बिलकुल नहीं दिया गया, इसीसे प्रकट हो जाता है कि यह झूठा है। इससे सम्बन्धित अनेक कागजात अंग्रेजी स्तम्भोंमें प्रकाशित हुए हैं। ये गुजराती स्तम्भोंमें अगले अंकमें प्रकाशित होंगे। इस दरम्यान अनेक गुल खिल रहे हैं।

सोराबजीका मामला

श्री सोराबजीके ऊपर अभी हाथ नहीं डाला गया। श्री वरनॉन उनको देखनेके लिए आते रहते हैं। उन्हें पुलिस स्टेशनपर उपस्थित होनेके लिए कहा गया, किन्तु उन्होंने उससे एकदम इनकार कर दिया है। श्री सोराबजी जेल जानेके लिए तैयार हैं; किन्तु वे ट्रान्सवाल नहीं

१. इस्माइली पंथके मुसलमानोंको 'खोजा' कहते हैं।

छोड़ेंगे और खूनी कानूनको स्वीकार नहीं करेंगे। उनके मामलेसे भारतीय समाजका बहुत लाभ होनेकी सम्भावना है। श्री सोराबजी सरकार द्वारा गिरफ्तार किये जानेकी प्रतीक्षामें हैं।

फेरीवाले

भारतीय फेरीवाले अक्सर पूछते हैं कि बिना परवानेके वे क्या करें। उनके पास अनुमति-पत्र है, किन्तु स्वेच्छापूर्वक लिया गया पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं है, क्योंकि वे सरकारसे झगड़ा शुरू होनेके बाद आये। वे अनिवार्य पंजीयन प्रमाणपत्र लेना नहीं चाहते। ऐसे दो भारतीयों, श्री इस्माइल अहमद तथा इब्राहीम मरोलियाने बिना परवानोंके व्यापार शुरू किया है। उन्होंने श्री गांधीको पत्र लिखा है कि संघकी सलाहसे वे बिना परवानोंके व्यापार कर रहे हैं। वे जेल जानेके लिए तैयार हैं और यदि वे पकड़े गये, तो श्री गांधी निःशुल्क उनकी ओरसे पैरवी करेंगे। हमें आशा है कि इसी प्रकार हिम्मतके साथ अन्य फेरीवाले भी संघर्ष करेंगे। किसीका व्यापारके बिना बैठे रहना आवश्यक नहीं है।

ईसप मियाँका पत्र

श्री ईसप मियाँने सरकारके नाम और नगरपालिकाके नाम पत्र लिखे हैं कि ऐसे भारतीय भूखों नहीं मरना चाहते, उन्हें व्यापार करनेकी जरूरत है, इसलिए, और चूँकि नगरपालिका परवाने नहीं देती इसलिए भी, वे बिना परवानोंके व्यापार करेंगे। यदि सरकार परवाने दे, तो वे अब भी परवाने लेनेके लिए तैयार हैं।

इस प्रकार इस समय चारों तरफसे स्वेच्छापूर्वक लिये गये पंजीयन प्रमाणपत्र जलानेका संघर्ष जम गया है। एक तरफ आन्दोलन चल रहा है, दूसरी तरफ बिना परवानोंके फेरीवाले व्यापार कर रहे हैं और तीसरी तरफ श्री सोराबजीका मामला चल रहा है। अब देखना है कि जनरल स्मट्स इसमें से किस तरह निकल पाते हैं। मैं नहीं मानता कि वे सत्याग्रहका तेज फीका कर सकेंगे। सारा दारोमदार भारतीयोंकी एकता और बहादुरीपर है।

केपका सम्मेलन

केप टाउनके सम्मेलनको हमीदिया इस्लामिया अंजुमनने तार दिया था। उसके जवाबमें धन्यवादका तार आया है और उसमें कहा गया है कि भारतीय संघोंको एक करनेका प्रस्ताव पास किया गया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८

१९६. पत्र : अखबारोंको

जोहानिसबर्ग
जुलाई २, १९०८

महोदय,

सर्वोच्च न्यायालयने फैसला दिया है कि एशियाइयोंको स्वेच्छया पंजीयन प्रार्थनापत्रोंको वापस लेनेका कोई अधिकार नहीं है।[1] स्वेच्छासे पंजीकृत एशियाइयोंका न्यायालयमें जानेका उद्देश्य यह था कि वे उसी स्थितिमें रहना चाहते हैं जिसमें उनके अ-पंजीकृत भाई हैं। उनका कहना है कि इन अ-पंजीकृत लोगोंको उनके साथ समान स्तरपर रखे जानेका अधिकार है; किन्तु जनरल स्मट्सका कहना है कि उनको देशसे निर्वासित कर देना चाहिए या अनुपस्थित होनेपर अपने अधिवासके देशमें वापस न आने देना चाहिए।

जनरल स्मट्सको कानूनके अत्यन्त सूक्ष्म तकनीकी मुद्देपर जो संदिग्ध विजय प्राप्त हुई है उससे एशियाइयोंका अपने पंजीयनको वापस लेनेका उद्देश्य विफल न होगा, बशर्ते कि उनमें पर्याप्त साहस और आत्मत्यागका भाव हो।

सर्वोच्च न्यायालयको दिये गये प्रार्थनापत्रका आधार कानूनी और नैतिक रखना पड़ा था। कानूनी आधार यह था कि दोनोंमें से प्रत्येक पक्ष सर्वोच्च न्यायालयसे कोई राहत प्राप्त किये बिना समझौतेको रद कर सकता है। नैतिक आधारपर यह दिखाना था कि एशियाई इसको रद मान कर चलना चाहते हैं, क्योंकि जनरल स्मट्सने इसे तोड़ दिया है।

समझौता दो तरहसे तोड़ा गया है। जनरल स्मट्स स्वीकार न करने योग्य शर्तें लगाये बिना अधिनियमको रद करना नहीं चाहते और वे समझौतेके अन्तर्गत उन लोगोंका स्वेच्छया पंजीयन स्वीकार नहीं करते जो अब देशमें प्रवेश कर रहे हैं और जिनको इसका अधिकार है। जनरल स्मट्स इस बातसे इनकार करते हैं कि उन्होंने कानूनको रद करनेका वचन दिया था और समझौतेका यह अर्थ लगाते हैं कि जो लोग समझौते की तारीखके बाद तीन महीने बीत जानेपर देशमें आये हैं वे अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन करायें। लोग निम्नलिखित शब्दोंके अर्थका निर्णय स्वयं करें :

> **इन स्थितियोंमें, हम सरकारसे सम्मानपूर्वक एक बार फिर कहेंगे कि १६ वर्षसे अधिक आयुके समस्त एशियाई लोगोंको एक निश्चित अवधिके भीतर —— जैसे तीन महीनेमें —— पंजीयन करानेकी अनुमति दी जाये और उन सबपर, जो इस प्रकार पंजीकृत हो जायें, अधिनियम लागू न किया जाये और सरकार ऐसे पंजीयनको वैध करनेके लिए जो कदम उठाना उचित समझे, उठाये। 'पंजीयनका ऐसा तरीका' उन लोगोंपर भी लागू हो जो उपनिवेशसे बाहर हों और लौट सकते हों तथा जिनको अन्यथा पुनः प्रवेशका अधिकार प्राप्त हो।**[2]

जनरल स्मट्स कहते हैं कि जो लोग उपनिवेशके बाहर थे उनको समझौतेके अन्तर्गत आनेका अधिकारी होनेके लिए तीन महीनेके भीतर लौट आना था। मैं पूछता हूँ कि क्या

१. अदालतके फैसलेके लिए देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ३४०-४३ ।
२. देखिए "पत्र : उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ ३९-४१ ।

संसार भरमें एशियाइयोंको इस समझौतेके अस्तित्वकी सूचना देना या उनके लिए उस अवधिके भीतर वापस आना कभी सम्भव था।

कानूनको रद करनेके वादेके बारेमें, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप कृपा करके साथका पत्र-व्यवहार[1] प्रकाशित कर दें और कानूनको रद करनेका वादा किया गया था या नहीं यह निर्णय लोगोंपर छोड़ दें। मैं इस बातकी ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि मैंने अपने २२ फरवरीके पत्रमें एशियाई कानूनको रद करने और उसकी जगह दूसरा कानून बनानेका उल्लेख किया था। इसके उत्तरमें उक्त कानूनको रद करनेके वादेका खण्डन करनेके लिए एक शब्द भी नहीं कहा गया है। सन्देह उत्पन्न होनेपर जो पत्र-व्यवहार हुआ उसमें मैंने इस वादेका उल्लेख किया है। उसका कोई खण्डन नहीं किया गया है। मेरे खास सवाल टाल दिये गये हैं। इसके साथ मैं इतना और कहता हूँ कि समझौतेको स्वीकार करनेके कारण मेरे ऊपर जो आक्रमण किया गया था उसके तुरन्त बाद श्री चैमने मुझसे श्री डोकके घर मिले थे और उन्होंने और मैंने एशियाई भाषाओंमें प्रकाशित करनेके लिए यह विज्ञप्ति तैयार की थी कि यदि एशियाई समझौतेका पालन करेंगे तो कानून रद कर दिया जायेगा। श्री चैमनेने कहा था कि वे इस विज्ञप्तिको जनरल स्मट्सके पास ले जायेंगे और तब यह प्रकाशित की जायेगी। वे दूसरे या तीसरे दिन लौटे थे, और उन्होंने मुझे सूचना दी थी कि एशियाई पंजीयन करा रहे हैं और मुझसे पूछा था कि इस बातको देखते हुए क्या विज्ञप्तिको प्रकाशित करना आवश्यक है। मुझे स्वप्नमें भी जनरल स्मट्स द्वारा वचनभंग किये जानेका खयाल नहीं था, इसलिए मैंने कहा था कि इसको प्रकाशित करनेकी जरूरत नहीं है। मैं उनको चुनौती देता हूँ कि यदि मूल मसविदा अब भी मौजूद हो तो वे उसको पेश करें। मैं यह भी कहता हूँ कि श्री चैमनेने, एक बार नहीं बल्कि अक्सर, मुझसे कहा था कि जनरल स्मट्स अपना वचन पूरा करेंगे और कानूनको रद कर देंगे, और यही कोई एक महीना पहले, मैं समय निश्चित करके उनसे विंचेस्टर भवनमें मिला था जहाँ उन्होंने मेरे प्रस्तुत किये हुए मसविदेपर बातचीत की थी और उसको मोटे तौरपर मंजूर किया था। उन्होंने शपथ-पूर्वक इस बातसे इनकार किया है कि जनरल स्मट्सने उनकी उपस्थितिमें कानूनको रद करनेका वचन दिया था। इसी प्रकार मैं जो कुछ कह रहा हूँ उससे भी वे इनकार कर सकते हैं। किन्तु जनरल स्मट्सके लिए, उनके लिए और मेरे लिए, सत्य सर्वोपरि है।

मेरे देशवासियोंके सामने रास्ता साफ है। उनको कष्ट उठानेके लिए फिर तैयार हो जाना चाहिए। उनके कष्टोंसे लोग देख लेंगे कि कौन सचाईपर है।

मैं विवादके मुख्य मुद्दोंको दुहरा दूँ। यद्यपि कानूनको रद करनेके वादेसे इनकार किया गया है, फिर भी जनरल स्मट्स कानूनको रद करनेके लिए तैयार हैं, बशर्ते कि हम अधि-वासी एशियाइयों और शिक्षित भारतीयोंके, जो प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत देशमें प्रवेशके अधिकारी हैं, अधिकारोंके अपहरणके सम्मुख झुक जायें।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

१. स्मट्स-गांधी पत्र-व्यवहार।

१९७. आत्म-बलिदान

ट्रान्सवालका संघर्ष प्रत्येक भारतीयको समझ लेना चाहिए। इससे पूर्व हम अनेक उदाहरणों द्वारा सत्याग्रहका अर्थ बतला चुके हैं।[1] उस अर्थको अब पूरी तौरपर कार्यान्वित करनेका अवसर आ पहुँचा है। सत्याग्रह और स्वार्थ एक साथ नहीं टिक सकते। सत्याग्रहमें सदा स्वयंका — आत्मका — बलिदान करना पड़ता है। अनुमतिपत्रवाले भारतीयोंको अधिकार प्राप्त हो चुके हैं; उनके हकमें सरकार खूनी कानूनको रद कर देनेके लिए राजी है। फिर भी डच सरकारको तीन पौंडी कर अदा करके पंजीयन करा चुकनेवालों तथा शिक्षितोंकी खातिर, अनुमतिपत्रवालोंके लिए आत्म-बलिदानका यही समय है। इस अवसरका हम विवाहोत्सवकी भाँति स्वागत करते हैं और यह चाहते हैं कि प्रत्येक भारतीय ऐसा ही करे। सत्याग्रहका वास्तविक रूप तो अब प्रकट होगा। कानूनको रद करना तो सरकार स्वीकार कर ही चुकी है। परन्तु चूँकि उसकी शर्तें भारतीय समाज माननेको तैयार नहीं है इसलिए मामला अटका पड़ा है। यह कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है। इस प्रकारसे भारतीय समाजको सरकारसे टक्कर लेनेकी क्षमता रखनेवाला वर्ग मान लिया गया है। कानून बनानेमें उसे भारतीयोंकी राय लेनी पड़ती है। ऐसा मौका सत्याग्रहके कारण ही उत्पन्न हुआ है।

इससे पहलेवाले संघर्षमें स्वार्थ घुसा हुआ था। ट्रान्सवालमें संघर्ष करनेवाला प्रत्येक भारतीय अपने तथा कौमके हकोंकी रक्षा किया करता था। अब प्रत्येक भारतीय अपने भाईके अधिकारोंकी रक्षा करेगा। इसीमें सच्ची खूबी है।

यदि भारतीय समाज ऐसा परोपकारका काम कर पायेगा तो अमर हो जायेगा। स्वयं सुखपूर्वक रहेगा और दूसरोंको सुख पहुँचायेगा। और समस्त भारतवर्ष समाजकी सराहना करेगा। अतएव, हम आशा करते हैं कि भारतीय समाज सजग रहेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८

१. देखिए "सत्याग्रहका भेद", पृष्ठ ८८-९० और "नेटालके परवाने", पृष्ठ २०७-०८।

१९८. रोडेशियाके भारतीय[1]

ट्रान्सवालमें जिस ढंगका कानून प्रचलित है उसी ढंगका कानून रोडेशियामें चालू किया गया है। देखना है कि इस कानूनपर विलायतमें हस्ताक्षर होते हैं या नहीं। सम्भावना इस बातकी है कि हस्ताक्षर न होंगे। इस विषयमें दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश समितिने डटकर संघर्ष किया है। और इसके बारेमें रायटरके तार भी आ चुके हैं। रोडेशियाके भारतीयोंने एक प्रार्थनापत्र दिया है, सो बुद्धिमानी की है। वहाँके हिन्दू इधर-उधर फैले हुए हैं, इसलिए वे अधिक करनेमें असमर्थ रहे हैं। लगता है कि श्री भीमजी नायकने अच्छा खासा परिश्रम किया है।

रोडेशियाके संघर्षमें एक ऐसी बात है, जिसे अवश्य ही जान लेना चाहिए। विलायतमें रायटरने चार्टर्ड कम्पनीसे[2] पूछा तो उसके एलचीने उत्तर दिया कि भारतीयोंका अपमान करनेका उनका इरादा नहीं है, परन्तु भारतीय समाजपर प्रतिबन्धकी आवश्यकता तो है ही। तथापि अँगुलियोंका कानून लागू नहीं किया जायेगा। मानो अँगुलियोंके निशान लेनेकी प्रथाके विरोधमें ही संघर्ष छेड़ा जानेवाला हो। कानून द्वारा जनतापर दासता लादनेके पश्चात् अँगुलियोंके निशान लिये जाना या न लिये जाना कोई माने नहीं रखता। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस कानूनको रद कर देना चाहिए। ऐसा न करके सरकार कानूनको बरकरार रखना चाहती है और यह कहना चाहती है कि अँगुलियोंके निशान लेनेका आग्रह न किया जायेगा।

पाठकोंको हमारा सुझाव है कि वे कानूनमें और अँगुलियोंके निशानोंमें जो अन्तर है उसे अंकित कर लें। हमें रोडेशियाके भारतीयोंको यह परामर्श देनेमें संकोच नहीं होता है कि यदि अँगुलियोंके निशान देनेसे इस कानूनको रद कराया जा सकता है तो वे दे दें। इस कानूनका अर्थ स्थायी दासता है। अँगुलियोंके निशान देना उस दासताके निवारणका एक साधन हो सकता है। निश्चय ही हमारे कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि वे लोग अँगुलियोंके निशान देनेकी तत्परता अभीसे दिखाने लगें। उन्हें इंग्लैंडसे उत्तर प्राप्त होनेतक प्रतीक्षा करनी चाहिए। परन्तु हम आशा करते हैं कि यदि उत्तर हमारे पक्षमें न हुआ तो हम सत्याग्रह करेंगे और कानूनके अधीन होनेसे इनकार करेंगे। हाँ, उन्हें एक आवेदन पत्र इंग्लैण्ड भी भेजना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८

१. देखिए "रोडेशियाके भारतीय", पृष्ठ २५७-५८।

२. ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिका कम्पनीने अपना अधिकार-पत्र अक्तूबर १८८९ में प्राप्त किया था और सितम्बर १९२३ तक रोडेशियाका शासन भार सम्हाला था। सन् १९२३ में यह उपनिवेश औपचारिक रूपसे ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया। सेसिल रोड्स इस उपनिवेशके मार्गदर्शक और मुख्य व्यवस्थापक थे।

१९९. सर्वोदय [८]

धन नदीकी भाँति है। जिस तरह नदी हमेशा समुद्रकी ओर, अर्थात् नीचेकी ओर बहा करती है, उसी प्रकार धनको जहाँ जरूरत हो, उस जगह जाना चाहिए — ऐसा नियम है। परन्तु जिस तरह नदीकी गतिमें परिवर्तन हो सकता है, उसी प्रकार धनकी गतिमें भी परिवर्तन हो सकता है। अनेक नदियाँ जहाँ-तहाँ बहा करती हैं और उनके आसपास बहुत पानी जमा हो जानेके कारण विषाक्त वायु उत्पन्न होती है। अगर उन्हीं नदियोंपर बाँध बाँधकर उनका पानी, जहाँ जरूरत समझी जाये, वहाँ ले जाया जाये तो वह पानी जमीनको उपजाऊ बनाता है, और आसपासकी हवाको भी शुद्ध करता है। इसी प्रकार, धनका यदि मनमाना उपयोग किया जाये तो लोगोंमें दुष्टता बढ़ेगी और भुखमरी फैलेगी। संक्षेपमें वह धन विषरूप हो जायेगा। परन्तु यदि उसी धनकी गतिपर नियन्त्रण कर लिया जाये, उसका उपयोग नियमानुसार किया जाये तो बाँधी हुई नदीकी भाँति वह धन सुख-समृद्धि फैलायेगा।

अर्थशास्त्री लोग धनकी गतिकी रोकथामका नियम बिलकुल ही भूल जाते हैं। उनका शास्त्र केवल धन पानेका शास्त्र है, परन्तु धन तो अनेक प्रकारसे प्राप्त किया जाता है। एक जमाना था, जब यूरोपमें लोग धनवान व्यक्तिको विष देकर उसका धन खुद लेकर धनाढच बन जाते थे। आजकल निर्धन लोगोंके लिए जो खूराक तैयार की जाती है, उसमें व्यापारी लोग मिलावट कर दिया करते हैं — जैसे दूधमें सुहागा, आटेमें आलू, काफीमें चिकोरी, मक्खनमें चरबी इत्यादि। यह भी जहर देकर धनवान बननेके समान है। क्या इसे हम धनवान बननेकी कला या शास्त्रका नाम दे सकते हैं?

लेकिन ऐसा नहीं मानना चाहिए कि अर्थ-शास्त्री बिलकुल ऐसा ही कहते हैं कि लूटके द्वारा धनवान बनना चाहिए। उन्हें कहना चाहिए कि उनका शास्त्र "कानून और न्यायके" रास्ते धनवान बननेका शास्त्र है। आजके जमानेमें ऐसा होता है कि बहुत-सी बातें कानूनके अनुकूल होनेपर भी न्याय-बुद्धिके प्रतिकूल होती हैं। इसलिए न्यायके रास्तेपर धन कमाना ही धन कमानेका सही रास्ता है। और यदि न्यायके रास्ते धन कमाना ही ठीक हो, तो मनुष्यका पहला काम न्याय-बुद्धिको सीखना है। केवल लेन-देनके नियमके अनुसार काम लेना या व्यापार करना ही काफी नहीं है। मछलियाँ, भेड़िए, चूहे इसी प्रकार रहते हैं। बड़ी मछली छोटी मछलीको खा डालती है, चूहे छोटे जन्तुओंको खा जाते हैं। भेड़िया मनुष्य तक को खाता है। उनका दस्तूर ही यही है। उनकी बुद्धिमें कुछ और आता ही नहीं है। परन्तु ईश्वरने मनुष्यको समझ दी है, न्याय-बुद्धि दी है। अतएव दूसरोंको खाकर, उन्हें ठगकर, उन्हें भिखारी बनाकर, मनुष्यको खुद धनवान नहीं होना है।

तो अब हमें यह देखना है कि मजदूरोंको मजदूरी देनेका नियम क्या है?

हम ऊपर कह आये हैं कि मजदूरकी वाजिब मजदूरी यह है कि वह आज हमारे लिए जितना श्रम करे उतना ही श्रम उसे, आवश्यकता पड़नेपर, हम दे दें। अगर उसे [उसके परिश्रमको देखते हुए] कम मजदूरी दी गई तो कम, और ज्यादा दी गई तो ज्यादा बदला मिला।

[मान लीजिए] एक व्यक्तिको मजदूरकी जरूरत है। दो आदमी मजदूरी करनेको तैयार होते हैं। अब, जो मजदूर कम मजदूरीपर काम करनेको तैयार है उसे काम दिया जाये तो उस मजदूरको कम मिलेगा। यदि मजदूर माँगनेवाले ज्यादा हों, और मजदूर एक ही हो तो उसे मुँह-माँगा पैसा मिलेगा और उस मजदूरको जितना चाहिए उसकी अपेक्षा अधिक मजदूरी मिलेगी। इन दोनों मजदूरोंकी मजदूरीकी औसत मजदूरी वाजिब मजदूरी मानी जायेगी।

मुझे कोई व्यक्ति कुछ रकम उधार दे और वह रकम मुझे अमुक समयके पश्चात् वापिस देनी हो तो मैं उस व्यक्तिको ब्याज दूँगा। उसी प्रकार अगर आज कोई मुझे अपना श्रम दे तो मुझे उचित है कि मैं उसे उतना श्रम और उससे कुछ अधिक ब्याजके रूपमें दूँ। आज अगर कोई व्यक्ति मेरे लिए एक घंटा काम करता है तो उसके लिए मुझे एक घंटा और पाँच मिनट अथवा उससे भी कुछ अधिक काम करनेका वचन देना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक मजदूरके विषयमें समझना चाहिए।

अब अगर मेरे पास दो मजदूर आयें और उनमें से जो कम मजदूरी लेता है, उसे मैं कामपर लगाता हूँ तो परिणाम यह होगा कि जिसे मैंने कामपर लगाया वह आधा भूखा रहेगा और जो कामके बिना रह गया है वह यों ही रह जायेगा। जिस मजदूरको मैं रखता हूँ उसे मैं पूरी मजदूरी चुकाऊँ तो भी दूसरा मजदूर तो बेकार रहेगा ही। लेकिन जिसे मैंने रख लिया है उसे भूखों नहीं मरना पड़ेगा और (तब) मैंने अपने धनका उचित उपयोग किया है, ऐसा माना जायेगा। सच्ची भुखमरी तब प्रारम्भ होती है, जब कम मजदूरी चुकाई जाती है। यदि मैं उचित मजदूरी देता रहूँ तो मेरे पास फालतू दौलत जमा न होगी, मैं गुलछर्रे नहीं उड़ाऊँगा और मैं गरीबी बढ़ानेका साधन न बनूँगा। जिसे मैं उचित दाम दूँगा वह दूसरोंको भी उचित दाम देना सीखेगा और इस प्रकार न्यायका झरना सूखनेके बजाय, जैसे-जैसे आगे बढ़ता जायेगा, और जोर पकड़ेगा। जिस प्रजामें इस प्रकारकी न्यायबुद्धि होगी, वह प्रजा सुख पायेगी और उचित रीतिसे खुशहाल होगी।

इस विचार-सरणीके अनुसार अर्थ-शास्त्री गलत ठहरते हैं। वे कहते हैं कि जैसे-जैसे स्पर्धा बढ़ेगी वैसे-वैसे प्रजा समृद्ध होगी। वास्तवमें यह बात गलत है। स्पर्धा — होड़ — का हेतु मजदूरीकी दर घटाना है; ऐसी दशामें धनवान अधिक धन जमा करता है, और गरीब ज्यादा गरीब होता जाता है। इस प्रकारकी स्पर्धासे अन्ततोगत्वा प्रजाके विनाशकी सम्भावना है। लेन-देनका सही नियम ऐसा होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्तिको उसकी योग्यताके अनुसार पारिश्रमिक मिले। स्पर्धा इसमें भी रहेगी, फिर भी परिणाम यह निकलेगा कि लोग सुखी होंगे और कुशल बनेंगे, क्योंकि तब मजदूरी प्राप्त करनेके लिए उन्हें अपनी दर घटानेकी जरूरत न रहेगी। तब उन्हें काम प्राप्त करनेके लिए कुशल होना पड़ेगा। ऐसे ही कारणोंसे लोग सरकारी नौकरी प्राप्त करनेके लिए तैयार हो जाते हैं। उसमें श्रेणीके अनुसार वेतन निश्चित किया हुआ रहता है। स्पर्धा केवल कुशलताकी ही होती है। प्रार्थी कम वेतन लेनेकी बात नहीं कहता, दूसरोंकी अपेक्षा अपनेमें अधिक कुशलता होनेकी बात कहता है। जल-सेनामें और सिपाहीकी नौकरीमें ऐसा ही नियम बरता जाता है। और इसीलिए ऐसे विभागोंमें अनीति और गड़बड़ी कम देखनेमें आती है। गलत होड़ व्यापारमें ही चल रही है और उसके परिणामस्वरूप छल, कपट, चोरी इत्यादि अनीति बढ़ गई है। दूसरी ओर जो माल तैयार होता है वह खराब और सड़ा हुआ होता है। व्यापारी सोचता है कि मैं

खाऊँ, मजदूर चाहता है कि मैं छलूँ और ग्राहकको लगता है कि मैं बीचमें कमा लूँ। इस तरह व्यवहार बिगड़ता है; लोगोंमें खटपट पैदा होती है, भुखमरी जड़ पकड़ती है, हड़तालोंमें वृद्धि होती है, साहूकार बेईमान बनते हैं और ग्राहक नीतिपर नहीं चलते। एक अन्यायसे अनेक अन्याय पैदा होते हैं और अन्तमें साहूकार, कारीगर तथा ग्राहक सब दुःखी होते हैं। जिस प्रजामें ऐसी प्रथा प्रचलित है वह प्रजा अन्तमें हैरान होती है। प्रजाका धन ही विष हो जाता है।

इसीलिए ज्ञानियोंने कहा है कि जहाँ पैसा ही परमेश्वर है वहाँ सच्चे परमेश्वरको कोई पूजता ही नहीं। धन और ईश्वरमें बनती नहीं। गरीबके घरमें ही प्रभु निवास करते हैं। अंग्रेज लोग यों जबानसे तो बोलते हैं, लेकिन व्यवहारमें पैसेको सबसे ऊँचा स्थान देते हैं, धनिकोंकी गिनती करके प्रजाकी सुख-समृद्धिका अन्दाजा लगाते हैं। और अर्थ-शास्त्री पैसा झटपट कमा लेनेके नियम गढ़ते हैं, जिन्हें सीखकर लोग पैसा कमायें। सच्चा अर्थ-शास्त्र तो न्यायबुद्धिपर आधारित अर्थ-शास्त्र है। प्रत्येक स्थितिमें रहकर न्याय किस प्रकार किया जाये, नीतिका पालन किस प्रकार हो — इस शास्त्रको जो समाज सीखता है, वही सुखी होता है। बाकी सब निस्सार है, "विनाशकाले विपरीतबुद्धि" के समान है। जनताको यह सिखाना कि वह किसी भी कीमतपर धनवान बने, उसे विपरीत बुद्धि सिखाने-जैसा है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८

२००. पत्र: 'स्टार' को[1]

[जोहानिसबर्ग]

[सम्पादक
'स्टार'
महोदय,]

श्री डंकनने एशियाइयोंके द्वारा संगठित अवैध प्रवेशके सम्बन्धमें अपने एक पत्रमें जो आरोप लगाया है उसे मैं, उनके प्रति पूर्ण आदरभाव रखते हुए, अब भी 'अनुचित' कहूँगा। उनके इस पत्रसे मुझे जनताकी स्थिति अधिक पूर्णतासे बतानेका अवसर मिला है।

संगठित अवैध प्रवेशका आरोप ऐसा है, जिसका एशियाइयोंने सदा खण्डन किया है। और केवल खण्डन करना ही उनके अधिकारमें था। एक कोयलके बोलनेसे बसन्त नहीं आता और न अवैध प्रवेशकी इक्की-दुक्की घटनाओंको पूरी जातिकी निन्दा करनेके लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। आरोपके तीन हिस्से हैं:

(१) एशियाई ऐसे अनुमतिपत्रोंके आधारपर, जो वैध रूपसे उनके न थे, प्रविष्ट होते हैं।

(२) वे छल-कपटसे लिये गये अनुमतिपत्रोंके आधारपर प्रविष्ट होते हैं।

(३) वे जाली अनुमतिपत्रोंके आधारपर प्रविष्ट होते हैं।

१. यह **इंडियन ओपिनियन**में 'श्री डंकनको प्रत्युत्तर' शीर्षकसे प्रकाशित किया गया था।

विधेयक इस बातकी जाँच करनेके लिए ही पेश किया गया था कि उस समय एशियाई वर्गोंके पास जो कागजात थे उनमें उपर्युक्त दोष मौजूद थे अथवा नहीं।

नौ हजार प्रार्थनापत्रोंके बारेमें गवर्नरके भाषणमें यह बात स्वीकार की गई है कि उपनिवेशके लगभग सभी एशियाइयोंने अपनी मर्जीसे पंजीयन करा लिया है।[1] इसलिए मैं मान लेता हूँ कि उपनिवेशमें गत जनवरीमें कुल मिलाकर ९,००० एशियाई थे। उन सबने अपने कागजात दाखिल कर दिये हैं और उन्हींकी बिनापर ७,६०० एशियाई ट्रान्सवालके वैध निवासी सिद्ध किये जा चुके हैं। हकीकत यह है कि शेष अर्जियाँ अभीतक अस्वीकृत नहीं की गई हैं; प्रत्युत उनमें से अधिकांशकी प्रामाणिकता कदाचित् सिद्ध की जा सकेगी। इन अर्जियोंके दावोंपर अभीतक केवल इसीलिए विचार किया जा रहा है कि एक अड़चन आ खड़ी हुई है, जो यह है कि इन एशियाइयोंके पास डचोंके दिये पंजीयन-प्रमाणपत्र हैं और इन प्रमाणपत्रोंको जनरल स्मट्सने उपनिवेशमें निवासका पर्याप्त अधिकारपत्र माननेसे इनकार कर दिया है।

मैं यह भी कह दूँ कि एशियाई पंजीयन द्वारा दिये गये आँकड़ोंके अनुसार १३,००० से ऊपर अनुमतिपत्र जारी किये जा चुके हैं और वे अब चालू हैं। इनमें से, स्वेच्छया पंजीयनके अन्तर्गत, ८,५०० व्यक्ति बुलाये गये हैं। इनमें से ५०० को डच पंजीयन प्रमाणपत्रधारी मान लेते हैं और यदि ८,५०० में से ७,००० ने अपना अधिकार प्रमाणित कर दिया है तो क्या श्री डंकन मुझे यह कहनेकी इजाजत देंगे कि संगठित अवैध प्रवेश हुआ ही नहीं है।

बकाया ४,५०० अनुमतिपत्रोंके सम्बन्धमें (ये 'बकाया' इसलिए हैं कि ये एशियाई उपनिवेशसे बाहर हैं), मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि इन अनुमतिपत्रोंमें से बहुत ही कम सदोष मिलेंगे।

भारतीय समाजने इस वक्तव्यका खण्डन करनेकी चेष्टा कभी नहीं की है कि एशियाई लोगोंका कुछ अवैध प्रवेश हुआ है। १९०६ में यही कहा गया था और मैं उसे दुहरानेका साहस करता हूँ कि जो प्रमाण प्रस्तुत किये गये थे वे छल-कपटसे थोक प्रवेशके आरोपको सिद्ध करनेके लिए न तब पर्याप्त थे और न अब हैं। शान्ति-रक्षा अध्यादेश इक्के-दुक्के मामलोंको निपटानेके लिए पर्याप्त था। लाजिमी कानून बनानेका कारण और आधार यह मान्यता थी कि एशियाई लोग स्वेच्छासे अपने दावोंकी जाँच न करने देंगे; क्योंकि उन दावोंमें जालसाजी बहुत ज्यादा है। इसीलिए स्वेच्छया पंजीयनका प्रस्ताव किया गया और इसीलिए मैंने यह बात कही कि स्वेच्छया पंजीयनके फलस्वरूप एशियाई लोगोंपर संगठित अवैध प्रवेशका अनुचित आरोप समाप्त हो चुका है।

[आपका, आदि,
मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–७–१९०८

१. गवर्नरने १५ जूनको संसद्का अधिवेशन फिर आरम्भ होनेके अवसरपर अपने भाषणमें कहा था: "इस उपनिवेशके ९,०७२ एशियाइयोंने, यानी लगभग सारी एशियाई आबादीने, अपना स्वेच्छया पंजीयन करा लिया है और ७,६१७ एशियाइयोंको अस्थायी पंजीयन प्रमाणपत्र जारी किये जा चुके हैं. . .।"

२०१. पत्र: 'इंडियन ओपिनियन'को

जोहानिसबर्ग
जुलाई ४, १९०८

सम्पादक
'इंडियन ओपिनियन'

महोदय,

श्री सोराबजीके खिलाफ, जो एक सुसंस्कृत और अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त पारसी सज्जन हैं और जिन्होंने प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत उपनिवेशमें प्रवेश किया है, दायर किये हुए परीक्षात्मक मुकदमेसे एशियाई संघर्षकी दूसरी मंजिल प्रारम्भ होती है। श्री सोराबजीके पास चार्ल्स टाउन नगर-निगमके अध्यक्ष तथा अन्य यूरोपीयों द्वारा दिये गये शानदार प्रमाण-पत्र हैं। अब उनके खिलाफ प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत नहीं, बल्कि एशियाई कानून संशोधन अधिनियमके अन्तर्गत इस कारण मुकदमा चलाया जानेवाला है कि वे ऐसे एशियाई हैं जिनका उस कानूनके अन्तर्गत पंजीयन नहीं हुआ है। मैं एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत चलाये जानेवाले मुकदमेके बारेमें कुछ नहीं कहता —— क्योंकि वह मामला अभी न्यायालयमें विचाराधीन है; परन्तु मुकदमा एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत दायर किया जानेवाला है, इस तथ्यसे मेरी वह बात प्रमाणित होती है, जिसे मैंने जनरल स्मट्सके सामने रखनेका साहस किया है, कि शिक्षित एशियाई प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत उपनिवेशमें प्रवेश करनेके लिए स्वतन्त्र है। यह बात सब जानते हैं कि यदि वे एशियाई अधिनियमको स्वीकार नहीं करते तो उन्हें निकाल दिये जानेका हुक्म जारी किया जा सकता है। इसी कारण प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके विरुद्ध दिये गये प्रार्थनापत्रमें[1] यह कहा गया था कि सरकारने एक हाथसे जो-कुछ दिया वह दूसरे हाथसे वापस ले लिया। यदि श्री सोराबजी एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत किये गये अपमानको सहन कर सकेंगे तो वे प्रतिबन्धित प्रवासी न होंगे। एशियाई अधिनियमको रद करनेके बदले जनरल स्मट्स एशियाई लोगोंसे जो दे देनेके लिए कहते हैं वह है सर मंचरजी भावनगरी जैसे लोगोंके अधिकारोंका बलिदान।

अब यह बात स्पष्ट रूपसे प्रकट हो जायेगी कि एशियाई लोग कोई ऐसी चीज नहीं माँग रहे हैं जिसे वे कानून द्वारा पानेके अधिकारी नहीं हैं। प्रिटोरियामें कथित जाली अनुमति-पत्र-निर्माताकी गिरफ्तारीको देखते हुए आज उपनिवेशके सामने जो कुढंगी स्थिति है वह यह है कि जो लोग अधिकारप्राप्त निवासी हैं और जिन्होंने सरकारकी सहायता की है, वे असुविधापूर्ण स्थितिमें रखे जा सकते हैं जब कि वे भारतीय, जो बेईमान हैं और जो देशमें जालसाजीसे या किसी और तरीकेसे घुस आते हैं उसमें बिना किसी छेड़छाड़के बने रह सकते हैं;

१. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ १८५।

क्योंकि वे शिनाख्तके लिए, परवानेके लिए या किसी अन्य कामके सम्बन्धमें सरकारी अफसरोंके पास कभी न जायेंगे।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

२०२. पत्र : उपनिवेश सचिवको[1]

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई ६, १९०८

उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय,

आठ सौसे अधिक ब्रिटिश भारतीयोंकी एक सार्वजनिक सभा[2] कल हमीदिया मस्जिदमें यह विचार करनेके लिए हुई थी कि स्वेच्छया पंजीयन सम्बन्धी प्रार्थनापत्रोंकी वापसीकी दरख्वास्तपर सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेसे भारतीयोंकी स्थितिपर क्या प्रभाव पड़ता है। मेरा संघ अब भी सम्मानपूर्वक विश्वास करता है कि ये फार्म वापस किये जा सकते हैं। सार्वजनिक सभामें निर्णय किया गया कि अगले रविवारको स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्रोंको जलानेके लिए एक और सार्वजनिक सभा की जाये, जिससे अधिवासी ब्रिटिश भारतीयों और अन्य लोगोंके दावोंपर सरकार द्वारा विचार न किये जानेकी अवस्थामें हम ऐसे भारतीयोंके साथ खड़े हो सकें और कष्ट भोग सकें। मेरा संघ अत्यन्त उत्सुक है कि उसको ऐसा कड़ा कदम न उठाना पड़े, और इसीलिए वह सरकारसे सहायताके लिए एक बार फिर नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता है।

मेरा संघ आपको उस भाषणका स्मरण दिलाता है जो आपने समझौतेके तुरन्त बाद रिचमंडमें[3] दिया था, और जिसकी खबर गत ६ फरवरीके 'स्टार' में छपी थी। उस भाषणमें आपने एशियाइयोंको यह कहा बताते हैं : "जबतक देशमें एक भी एशियाई ऐसा है जिसने पंजीयन न कराया हो, तबतक कानून रद न किया जायेगा।" और फिर, "जबतक देशमें प्रत्येक भारतीय पंजीयन नहीं करा लेता, तबतक कानून रद न किया जायेगा।" इससे प्रकट होता है कि इस कानूनको रद करनेकी एकमात्र शर्त पूर्ण पंजीयन थी। मेरे संघको यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उपनिवेशके लगभग प्रत्येक भारतीयने समझौतेके अनुसार स्वेच्छासे

१. यह **इंडियन ओपिनियन**में "अन्तिम चेतावनी" शीर्षकसे छपा था और उस संक्षिप्त लेखका भाग था, जिसे रिचने अपने २२ जुलाई १९०८के पत्रके साथ उपनिवेश कार्यालयको भेजा था।

२. इस सभामें सोराबजी शापुरजीने भी भाषण दिया था और पंजीयन अधिनियमके आगे न झुकनेका दृढ़ निश्चय घोषित किया था। उन्होंने शिक्षित व्यक्तिके रूपमें ट्रान्सवालमें प्रवेशके अधिकारका दावा भी किया था।

३. फरवरी ६, १९०८को।

प्रार्थनापत्र दे दिया है। किन्तु अब मेरे संघको मालूम हुआ है कि सरकार इसे रद करनेके बदले भारतीयोंको निम्न बातें माननेके लिए कहती है :

(क) यह कि जिन ब्रिटिश भारतीयोंके पास डच पंजीयन प्रमाणपत्र हैं, जिनके लिए उन्होंने ३ या २५ पौंड दिये हैं, वे चाहे उपनिवेशमें हों या बाहर हों, निषिद्ध प्रवासी हो जायें।

(ख) यह कि युद्धसे पहलेके भारतीय शरणार्थी, जो अभी ट्रान्सवालमें नहीं लौटे हैं, निषिद्ध प्रवासी हो जायें।

(ग) यह कि जो स्वेच्छया प्रार्थनापत्र इस समय एशियाई पंजीयकके विचाराधीन हैं, उनका अन्तिम निर्णय पंजीयक करे और उनके सम्बन्धमें सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलका अधिकार न हो।

(घ) यह कि वे ब्रिटिश भारतीय भी, जो प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत कड़ी परीक्षा पास कर सकते हैं, निषिद्ध प्रवासी माने जायें।

मेरा संघ आदरपूर्वक यह निवेदन करता है कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय समाजसे कुछ लोगोंको, जिनकी ओरसे समाज कुछ प्रभावकारी रूपमें बोल भी नहीं सकता है, अधिकारोंसे वंचित करनेकी स्वीकृति देनेके लिए कहना अत्यन्त अनुचित है। सरकार कोई कानून बना दे और उस समाजसे न पूछे जो उससे प्रभावित होता है तो यह एक बात होगी और उस समाजको ऐसे कानूनपर, जिससे उसके एक भागकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगता हो, मंजूरी देनेके लिए कहना दूसरी बात होगी।

(क) और (ख) के सम्बन्धमें मेरा संघ यह कहनेका साहस करता है कि उनके दावे विधिवत् विचार किये बिना कभी नामंजूर नहीं किये गये, जैसा अब प्रस्ताव है; बल्कि युद्धसे पहलेके शरणार्थियोंके मामलोंपर थोड़ा-बहुत विचार किया गया है और उनको वापसीके अनुमतिपत्र दिये गये हैं। ब्रिटेनका अधिकार होनेके बाद जिम्मेदार अधिकारियोंने बार-बार घोषणाएँ की हैं जिनमें यह बिलकुल साफ कर दिया गया है कि युद्धसे पहलेके एशियाई निवासियोंके अधिवास-सम्बन्धी अधिकारोंकी रक्षा की जायेगी। ऐसे लोगोंको अब निषिद्ध प्रवासी माननेकी इच्छाके कारण एक नई और ब्रिटिश भारतीयोंके लिए दुःखजनक स्थिति उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया जाता है। मेरा संघ इस बातके लिए बिलकुल तैयार है कि पंजीयन प्रमाणपत्रोंका कानूनी स्वामित्व सिद्ध करनेका भार उन लोगोंपर डाला जाये जिनके पास वे हैं; और यह कि युद्धसे पहलेके उन निवासियोंके, जिनके पास पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं हैं, अधिकार एक निश्चित अवधिके — जैसे दो वर्षके — निवास तक सीमित कर दिये जायें और यह निवास न्यायालयके सम्मुख सन्तोषप्रद रूपसे सिद्ध किया जाये; किन्तु सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलका अधिकार हर हालतमें रहे जिससे विभिन्न छोटे न्यायालयोंके निर्णयोंमें एकरूपता रहे। मेरा संघ इसके अलावा सम्भावित झूठी कार्रवाइयोंको रोकनेके लिए एक उचित अवधि स्वीकार करनेके लिए तैयार है जिसमें ये सब बाकी दावे पेश कर दिये जायें। मेरा संघ जानता है कि कमसे-कम एक भारतीय उपनिवेशसे बाहर है जिसने १८८५ में अपना अधिवास-अधिकार, संशोधन से पहले १८८५ के कानून ३ के अनुसार खरीदनेके लिए २५ पौंडकी रकम दी थी, और जिसके पास यूरोपीय प्रमाणपत्र हैं एवं जिसे अभीतक वापस आनेकी अनुमति नहीं दी गई है। ऐसे कई मामले हैं, यद्यपि वे २५ पौंड नहीं, ३ पौंड देनेके हैं। मेरा संघ आपका ध्यान १८८५ के कानून ३ की निम्न धाराकी ओर आकर्षित करता

है जिससे स्पष्ट रूपसे प्रकट होता है कि ३ पौंड शुल्क इसलिए लगाया गया था, ताकि शुल्कदाता देशमें बसनेका अधिकारी हो सके:

> **जो गणराज्यमें कोई व्यापार करनेके लिए या अन्यथा बसते हैं, उनको अपने नाम सरकार द्वारा निर्धारित एक फार्मके अनुसार एक पंजिकामें पंजीकृत कराने होंगे। यह पंजिका इसी उद्देश्यसे विभिन्न जिलोंमें न्यायाधीशोंके पास अलग रखी रहेगी। यह पंजीयन आनेके दिनसे आठ दिनके भीतर किया जायेगा, और उसके पश्चात् २५ पौंड (बादमें में ३ पौंड) की रकम दी जायेगी।**

(ग) के सम्बन्धमें उन भारतीयोंको वंचित करना स्पष्टतः अनुचित होगा जिन्होंने स्वेच्छया पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र दे दिये हैं और यह अधिकार भी माँगा है कि जो लोग वापस आनेके अधिकारी हैं उनके दावोंकी अदालती जाँच जब हो तब प्रार्थियोंके दावोंकी अदालती जाँच भी की जाये। मेरे संघको एक समान अधिकार रखनेवाले भारतीयोंके साथ व्यवहारमें ऐसा अन्तर करनेका कोई कारण नहीं दिखाई देता।

(घ) के सम्बन्धमें मेरा संघ इस प्रस्तावकी असाधारणता अनुभव किये बिना नहीं रह सकता कि ट्रान्सवालवासी भारतीय उच्च शिक्षा-प्राप्त भारतीयों और पेशेवर लोगोंको, जिनसे सहायता प्राप्त करनेके लिए ब्रिटिश भारतीय सदा इच्छुक रहते हैं, अधिकार-वंचित करनेके सम्बन्धमें अपनी सहमति दें। मेरा संघ सम्मानपूर्वक कहता है कि प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमकी व्याख्याके अनुसार यूरोपीय शिक्षा-प्राप्त भारतीयोंको देशमें प्रवेशका अधिकार रहता है, और श्री सोराबजीपर, जो इस व्याख्याकी परीक्षाके लिए ही देशमें प्रविष्ट हुए हैं, अब पंजीयन प्रमाणपत्र दिखानेमें असमर्थ होनेपर मुकदमा चलाया जानेवाला है। इस तथ्यसे मेरे संघका कथन पुष्ट होता है और यह प्रकट होता है कि सरकार प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमकी अपनी व्याख्यासे मुकर गई है। मेरे संघका खयाल है कि जहाँतक यूरोपीय उपनिवेशियोंका सम्बन्ध है, इस मामलेमें कोई महत्वपूर्ण मुद्दा नहीं आता, जबकि ब्रिटिश भारतीयोंके लिए यह गहरी पोषित भावनाका प्रश्न है। अमली तौरपर, शिक्षित भारतीयोंमें से भी बहुत बड़ी संख्या इस परीक्षाकी कड़ाईके कारण उपनिवेशमें न आ सकेगी। और मेरा संघ ऐसी किसी उचित कड़ाईपर वहाँतक आपत्ति नहीं करता, जहाँतक ठीक ढंगकी शिक्षा जितनी भारतीयोंमें उतनी ही यूरोपीयोंमें देखी जाती है और मान्य की जाती है। नेटालमें, जहाँ यह परीक्षा कदापि ट्रान्सवालके बराबर कड़ी नहीं है, पिछली प्रवासी रिपोर्टके अनुसार नई परीक्षाके अन्तर्गत केवल थोड़े-से भारतीय[1] प्रविष्ट हुए हैं।[2] आस्ट्रेलियामें, जहाँ ऐसी ही शिक्षा-सम्बन्धी परीक्षा है, एशियाई प्रवासियोंकी समस्या सफलतापूर्वक हल की जा चुकी है। इसलिए मेरा संघ यह विश्वास करनेका साहस करता है कि ट्रान्सवाल अपवाद न होगा और सरकार इस मामलेमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्वाभाविक भावनाओंको कृपा करके चोट न पहुँचायेगी।

मेरा संघ, अन्तमें, सम्मानपूर्वक विश्वास करता है कि सरकार उक्त आवेदनपर गम्भीरतासे विचार करेगी और एशियाई प्रश्नको, जहाँतक वह एशियाई कानून संशोधन-विधेयक द्वारा प्रभावित होता है, अन्तिम रूपसे समाप्त कर देगी और इस प्रकार समझौतेको अपनी ओरसे पूरा ही नहीं करेगी, बल्कि उपनिवेशके वैध एशियाई निवासियोंको विश्राम और

१. इंडिया ऑफिसके सूत्रोंके अनुसार उनकी संख्या ८१ थी।

२. देखिए परिशिष्ट ४, "नेटाल प्रवासी-विभागका विवरण"।

शान्ति देगी जिसका अधिकार वे अभी हालके संकटमें अपने आचरणसे प्राप्त कर चुके हैं। और अन्तिम किन्तु उतनी ही महत्वपूर्ण बात ब्रिटिश भारतीयोंको उस कदमसे बचाना है जिसके लिए वे सरकारका निर्णय विपरीत होनेकी अवस्थामें ऊपर बताये अनुसार वचनबद्ध हैं।

आपका, आदि,
ईसप इस्माइल मियाँ
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

इंडिया ऑफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, २८९६/०८ भी देखिए।

२०३. सोराबजी शापुरजीका मुकदमा — १

[जोहानिसबर्ग
जुलाई ८, १९०८]

सबसे पहले सोराबजीके मुकदमेकी पुकार हुई। उनपर सन् १९०७ के अधिनियम २ के अन्तर्गत बिना अनुमतिपत्रके उपनिवेशमें उपस्थित रहनेका अभियोग लगाया गया था।

न्यायाधीश: अभियोगके बारेमें आपका कहना क्या है?

अभियुक्त: [स्पष्ट आवाजमें] मैं निर्दोष हूँ।

सुपरिंटेंडेंट वरनॉनने बताया कि मैंने अभियुक्तको इस माहकी ४ तारीखको[1] गिरफ्तार किया था। मैंने उससे अधिनियमके[2] अन्तर्गत पंजीयन-प्रमाणपत्र, अथवा उपनिवेशमें प्रवेश या निवास करनेका अधिकारपत्र दिखानेको कहा। उसने जवाब दिया: "मेरे पास अधिकारपत्र या पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं है।" तब मैंने उसपर अधिनियमकी धारा ८ की उपधारा ३ के अन्तर्गत अभियोग लगाया। अभियुक्तने २४ जूनको शामके ६ बजकर ९ मिनटपर उपनिवेशमें प्रवेश किया था। मैं उसकी गिरफ्तारीके दिन तक उसे रोज देखता था।

[**सुपरिंटेंडेंट वरनॉन**:] **(श्री गांधीकी जिरहके उत्तरमें) अभियुक्त अंग्रेजी भाषा जानता है, और इतनी जानता है कि मैंने उससे जो कुछ कहा, उसे वह समझ सका।**

[गांधीजी:] और इतनी पर्याप्त जानता है कि वह प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमकी आवश्यकता पूरी कर सके?

[वरनॉन:] **इससे मेरा कोई वास्ता नहीं। मैं कोई राय नहीं दे सकता।**

१. **ट्रान्सवाल लीडर**में मुकदमेकी कार्यवाही जिस रूपमें छपी उसमें ३ जुलाई १९०८ की तारीख है। **इंडियन ओपिनियन**वाले पाठमें तारीख नहीं दी गई है।
२. १९०७ का अधिनियम २।

एशियाइयोंके पंजीयक श्री चैमनेने कहा, मैं अभियुक्तको नहीं जानता, किन्तु इसी नामके एक व्यक्तिने २८ अप्रैल, १९०८ को फोक्सरस्टमें मजिस्ट्रेटके कार्यालयकी मारफत अनुमतिपत्रके लिए प्रार्थनापत्र दिया था। उसने अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन प्रमाणपत्रके लिए नहीं बल्कि पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र दिया था। मैंने प्रार्थीके दावोंपर विचार किया और पाया कि वह पंजीयनका हकदार नहीं है, और मैंने फोक्सरस्टके मजिस्ट्रेटको तदनुसार सूचित कर दिया। मैंने अभियुक्तको गिरफ्तार करनेके निर्देशोंकी सूचना पुलिसको दे दी, हालाँकि ये निर्देश स्वयं मैंने जारी नहीं किये थे।

जिरहके उत्तरमें [उन्होंने कहा कि] स्वेच्छया पंजीयनके लिए अभियुक्तने जो प्रार्थनापत्र दिया था वह सरकारके साथ हुए समझौतेके अनुरूप था।

उन्होंने बताया, मुझे ज्ञात नहीं कि अभियुक्त फोक्सरस्टमें कैसे आ गया। समझौता उन व्यक्तियोंको ध्यानमें रखकर किया गया था जो उपनिवेशमें रह रहे थे या जिन्हें तीन माहके अन्दर लौटनेका अधिकार था। उक्त पंजीयन-प्रार्थनापत्रके साथ सच्चरित्रताके अनेक प्रमाणपत्र थे।

श्री गांधीने गवाहसे उन प्रमाणपत्रोंको पढ़नेको कहा। सरकारी वकीलने आपत्ति की।[1] श्री गांधीने दलील दी कि ये कागजात पूरे रेकर्डका एक अंश हैं।

न्यायाधीश : आप यह सफाई पेश करना चाहते हैं कि अभियुक्तको गलत अधिनियमके अन्तर्गत लाया गया है। आप उन्हें प्रवासी अध्यादेशके अन्तर्गत लाना चाहते हैं।

श्री गांधी : जी हाँ, बेशक।

न्यायाधीश : मैं भली-भाँति समझ गया।

सरकारी वकीलने दलील दी कि दस्तावेजोंको सामान्य ढंगसे सिद्ध करना चाहिए। श्री गांधीने जवाब दिया, यदि गवाह दस्तावेजोंको पेश नहीं करता तो मैं उन्हें सिद्ध नहीं कर सकता। दस्तावेज मेरे मुवक्किलकी सम्पत्ति हैं, और मैंने गवाहपर नोटिस जारी की थी कि वह उन्हें पेश करे। सरकारी वकीलने अपनी आपत्ति बरकरार रखी, और प्रसंगवश न्यायाधीशने उन दस्तावेजोंको देखा। उन्होंने कहा कि दस्तावेजोंपर 'साउथ आफ्रिकन कॉंस्टेबुलरी' शीर्षक पड़ा है, और प्रत्यक्षतः ये उन्हींकी सम्पत्ति हैं।

श्री गांधीने गवाहसे फिर जिरह शुरू की। जवाबमें गवाहने कहा कि मैं मुख्य प्रवासी अधिकारी भी हूँ। मुझे श्री गांधीका एक तार मिला था, जिसमें मुझे सूचित किया गया था कि अभियुक्त रेलगाड़ीपर सवार होनेवाला है; और यह भी कि प्रवासी अधिनियमके अन्तर्गत अपेक्षित सारी योग्यताएँ उसमें हैं और उसके पास पर्याप्त साधन हैं।

[गांधीजी :] क्या [फोक्सरस्टमें] आपके अधिकारियोंने अभियुक्तकी शैक्षणिक योग्यताकी जाँच की थी?

[चैमने :] नहीं।

१. यहाँ श्री चैमनेने सरकारी वकीलसे परामर्श किया, फिर सुपरिंटेंडेंट वरनॉनके जरिये भी बात की। इसपर गांधीजीने आपत्ति की।

क्या आप स्वीकार करेंगे कि उनकी शैक्षणिक योग्यताएँ पर्याप्त हैं?

मैं इस सम्बन्धमें कुछ नहीं जानता।

क्या आप स्वीकार करेंगे कि उनके पास पर्याप्त साधन हैं?

मैं इस सम्बन्धमें भी कुछ नहीं जानता। इस अभियोगका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

क्या आपने किसी अन्य एशियाईको जाने दिया है?

हाँ, जाने दिया है।

बिना पूछताछ किये?

नहीं, बिना पूछताछ किये नहीं; उन्हें [अभियुक्तको] बिना पूछताछ नहीं जाने दिया।[1]

उनके साथ क्या किया गया?

मैं कहनेमें असमर्थ हूँ। मैं इस प्रश्नका उत्तर देनेसे कतई इनकार करता हूँ। मैं कहता हूँ कि समय आनेपर आपको मालूम हो जायेगा।

उन्हें क्यों जाने दिया गया?

मैं इसका जवाब नहीं दूँगा। वह कानूनके विरुद्ध यहाँ आया, और फलस्वरूप आज वह यहाँ अभियुक्तके रूपमें उपस्थित है।

न्यायाधीशने फिर हस्तक्षेप किया और कहा, श्री गांधी प्रवासी अधिनियमका जिक्र कर रहे हैं जबकि अभियुक्तपर एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत अभियोग है।

श्री गांधी: आप मुझे बड़ी अड़चनकी स्थितिमें डाल रहे हैं। आपने मेरा पक्ष नहीं सुना है। मुख्य प्रवासी अधिकारीकी हैसियतसे क्या आप किसी ऐसे एशियाईको जाने देंगे जिसके पास प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत अपेक्षित सारी शैक्षणिक योग्यताएँ हों?

कदापि नहीं।

क्यों नहीं?

वह निषिद्ध प्रवासी है।[2]

इसके बाद सरकारी पक्षकी सुनवाई समाप्त हो गई।

एक कानूनी मुद्दा

धारा ८ की उप-धारा ३ के अन्तर्गत ही, जिसके अनुसार अभियुक्तपर अभियोग लगाया गया था, श्री गांधीने अपने मुवक्किलकी रिहाईकी माँग इस आधारपर की कि उप-धारामें कहा गया है: कोई एशियाई जो 'गजट' [आदि] में प्रकाशित होनेवाली तारीखके बाद उपनिवेशमें पाया जाये। इस नोटिसका प्रकाशन सिद्ध नहीं किया गया, और अदालतके पास जो 'गजट' था उसमें वह नोटिस नहीं था।[3]

१. इस मुकदमेकी गांधीजी द्वारा गुजरातीमें लिखी गई रिपोर्ट (देखिए **इंडियन ओपिनियन**, १८-७-१९०८) के अनुसार श्री चैमनेने स्वीकार किया था कि शिनाख्त पक्की करनेके लिए उन्होंने अभियुक्तके प्रवेश करते समय उसकी जाँच की थी।

२. १८-७-१९०८के **इंडियन ओपिनियन**में प्रकाशित गुजराती रिपोर्टके अनुसार, और जिरह करनेपर चैमनेने स्वीकार किया कि उन्होंने इस "निषिद्ध प्रवासी" को प्रवेश करनेकी अनुमति दी थी।

३. गुजराती रिपोर्टके अनुसार गांधीजीने यह तर्क भी रखा कि पंजीयनकी अवधि समाप्त हो गई है, यह सिद्ध करनेके लिए मौखिक प्रमाण पर्याप्त नहीं है।

बहसके बाद श्री गांधीने कहा कि मैं जानता हूँ कि यह एक कानूनी भूल है, किन्तु सफाई पक्षके लिए ऐसा कदम उठाना लाभदायक है।

न्यायाधीश: और उन्हें फिर लाइए, और जितनी तकलीफ सम्भव हो, दीजिए।

श्री गांधी: यही मुद्दा है।

न्यायाधीशने कहा कि मैं कुछ दूसरे मामले देखूँगा, और अपना निर्णय कल सुबह दूँगा।[1]

[अंग्रेजीसे]

स्टार, ८–७–१९०८

२०४. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

मंगलवार [जुलाई ७, १९०८]

संघर्ष

हम सर्वोच्च न्यायालयमें हार गये। न्यायाधीश सॉलोमनने कहा कि समझौतेके साथ श्री स्मट्सको दी गई अर्जी [उन्हींके शब्दोंमें] का सम्बन्ध नहीं है।[2] उन्होंने यह भी कहा कि जेलसे [स्मट्सको] लिखे गये पत्र तथा श्री स्मट्सके जवाबसे कानून रद करनेका वचन प्रकट नहीं होता। स्वेच्छया पंजीयनके प्रार्थनापत्र वापस नहीं लिये जा सकते, क्योंकि वे पत्रोंके समान हैं। कानून यह है कि यदि किसीको पत्र लिखा जाये, तो उसका मालिक पानेवाला होता है। इसी प्रकार वे प्रार्थनापत्र भी सरकारके हैं। किन्तु न्यायाधीशने यह भी कहा कि भारतीयोंको

१. ११–७–१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में निम्नलिखित समाचार प्रकाशित हुआ था जिसपर ९ जुलाईकी तारीख पड़ी थी:

"श्री सोराबजी शापुरजीका मुकदमा सुनवाईके लिए आज अदालतमें पेश हुआ। न्यायाधीशने श्री गांधीके तर्कको ठीक माना और अभियुक्तको निर्दोष पाकर रिहा कर दिया। तुरन्त बाद ही श्री सोराबजीको न्यायाधीशके निर्देशपर कल (शुक्रवारको) अदालतमें हाजिर होकर उसी प्रकारके एक अभियोगकी सफ़ाई देनेका आदेश दिया गया . . .।"

२. निर्णयकी जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई, उसके अनुसार न्यायाधीश सॉलोमनने कहा था:

". . . निश्चय ही ऐसा कोई वादा [कानून रद करनेके सम्बन्धमें] उन पत्रोंमें नहीं किया गया है और न कोई ऐसी बात उनमें कही गई है जिससे यह प्रकट हो कि उपनिवेश-सचिवका इरादा ऐसा है। उपनिवेश-सचिवने अधिनियमको रद करना मंजूर कर लिया हो, यह अत्यन्त असम्भव प्रतीत होता है; और एशियाइयोंकी ओरसे उपनिवेश-सचिवको लिखे गये एक पत्रमें एशियाइयोंने कहा है: 'हम मानते हैं कि संसदके कार्यावकाश-कालमें कानूनको रद करना सम्भव नहीं है और आपकी बार-बार की गई इस सार्वजनिक घोषणाकी ओर भी हमारा ध्यान गया है कि कानूनके रद होनेकी कोई सम्भावना नहीं है' [पृष्ठ ४०]। इससे प्रतीत होता है कि यह अधिनियम रद न किया जायेगा, यह स्थिति उन्होंने स्वीकार कर ली थी. . . .किन्तु जब प्रार्थी प्रार्थनापत्रको इस इरादेसे एशियाई पंजीयकको दे देता है कि वह उसके पास रहेगा तब वह प्रार्थीकी सम्पत्ति नहीं रहता, एशियाई पंजीयककी सम्पत्ति हो जाता है . . . इसलिए यह अर्जी खर्चेके साथ नामंजूर की जाती है।" **इंडियन ओपिनियन**, ११–७–१९०८।

अपनी प्रार्थना वापस लेनेका हक है। प्रार्थना जिस प्रार्थनापत्रमें की गई हो वह वापस नहीं दिया जायेगा। यदि प्रार्थना वापस लेनी हो, तो न्यायाधीशने कहा कि प्रमाणपत्र नहीं लेने चाहिए। सरकार अनुमतिपत्र तथा पुराने पंजीयन प्रमाणपत्र लौटानेके लिए बाध्य है। किन्तु उन्होंने निर्णय दिया कि चूँकि स्वेच्छया पंजीयनके प्रार्थनापत्रोंकी वापसीके लिए ही मुकदमा चलाया गया है, इसलिए उसका खर्च भी भारतीय समाज दे। श्री स्मट्सने हलफिया बयान दिया कि उन्होंने कानून रद करनेका वचन दिया ही नहीं। श्री चैमनेने भी वैसा ही हलफिया बयान दिया। श्री वॉर्डने बहुत प्रयत्न किया और बहुत-सी अच्छी-अच्छी दलीलें दीं, किन्तु न्यायाधीशके मनमें यह बात बैठी हुई थी कि प्रार्थनापत्र तो पत्र ही माना जायेगा।

ऐसे परिणामसे बहुत-से भारतीयोंको निराशा हुई है। सत्याग्रहीको निराश होनेका कोई कारण नहीं है। सत्याग्रहीकी अन्तिम अपील-अदालत खुदा है, और उसमें कोई भी झूठी गवाही काम नहीं दे सकती। इसके अतिरिक्त प्रार्थनापत्र वापस माँगनेका हेतु यह था कि हम जल्दी जेल जा सकें। उस हेतुको पंजीयन प्रमाणपत्र जलाकर पूरा करना है। इस काममें कुछ कठिनाई प्रतीत होगी, फिर भी यह काम आसान है। समझदार समझ सकेंगे कि प्रार्थनापत्र वापस लेनेकी अपेक्षा पंजीयन प्रमाणपत्र जलाना अधिक अच्छा है।

कानून तो रद हुआ जैसा ही जान पड़ता है। जनरल स्मट्सने ६ फरवरीको जोहानिसबर्गमें भाषण[1] दिया था। उसमें उन्होंने कहा था: "मैंने एशियाइयोंको सूचित किया है कि यदि वे सब स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र ले लेंगे तो कानून रद हो जायेगा। वे जबतक स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र न लेंगे, तबतक कानून रद नहीं किया जायेगा।" कानूनको रद करनेका वचन इससे अधिक स्पष्ट शब्दोंमें नहीं दिया जा सकता।

जिस दिन सर्वोच्च न्यायालयने अपना निर्णय दिया, उसके दूसरे दिन [श्री स्मट्सका] श्री गांधीके साथ समस्त पत्र-व्यवहार अखबारोंमें प्रकाशित किया गया और उसके साथ-साथ श्री गांधीने २ जुलाईके अखबारोंमें पत्र[2] लिखा। इस पत्रका उत्तर [अभीतक] किसीने नहीं दिया है।

गोरोंसे प्राप्त सहायता

इस बीच उन गोरोंने[3], जो हमारी मदद करते रहे हैं, फिर [समझौतेके] प्रयत्न आरम्भ कर दिये हैं। अब जनरल स्मट्स कहते हैं कि वे तीन पौंडी प्रमाणपत्रधारी शरणार्थियोंका हक कबूल करनेके लिए तैयार हैं। वे श्री चैमनेके निर्णयोंके विरुद्ध अपीलकी इजाजत देनेके लिए भी तैयार हैं। वे भारतीयोंसे ऐसा वचन लेना चाहते हैं जिससे [उपनिवेशमें] शिक्षित लोग न आ सकें। भारतीय उनकी यह बात मानना नहीं चाहते। रविवारको इसीलिए सभा बुलाई गई थी। लगभग ८०० लोग हमीदिया मस्जिदमें इकट्ठे हुए थे। इस सभामें श्री ईसप मियाँ, श्री इमाम अब्दुल कादिर, श्री कामा, श्री गुलाब भाई, श्री काछलिया, श्री पोलक, श्री गांधी, श्री खुरशेदजी आदि व्यक्तियोंने भाषण किये[4] और अन्तमें निश्चय हुआ कि अगले रविवारको बड़ी सभा की जाये और उसमें [पंजीयन प्रमाणपत्र जलाये जायें]।

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको", पृष्ठ ३३४-३७।
२. देखिए "पत्र: अखबारोंको", पृष्ठ ३२५-२६।
३. कार्टराइट, हॉस्केन और चैपलिन।
४. जुलाई ५की सार्वजनिक सभा।

पंजीयनपत्र जलाये जायें

ये तभी जलाये जायेंगे जब [इस बीच] सरकार हमारी चार माँगोंको स्वीकार न करेगी।

ईसप मियाँका पत्र

इस सभाके आधारपर श्री ईसप मियाँने श्री स्मट्सको पत्र लिखा है। इसमें बताया गया है कि यदि सरकारका इरादा भारतीय समाजकी माँगें पूरी करनेका न हो, तो यह सूचित कर दिया जाये; क्योंकि अन्यथा हमने अगले रविवारको सार्वजनिक सभा करके प्रमाणपत्रोंको जलानेका निश्चय किया है।[१] (यह पूरा पत्र इस अंकमें दूसरी जगह देखा जा सकता है।) यदि इस पत्रका उत्तर सीधा आया और सरकारने बिना किसी शर्तके कानून रद कर दिया, तो फिर शिकायतकी कोई बात नहीं रहेगी और पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं जलाने पड़ेंगे।

डोकका पत्र

'ट्रान्सवाल लीडर' में श्री डोकका पत्र[२] प्रकाशित हुआ है। वह जानने लायक और जोशीला है। उन्होंने इस पत्रमें भारतीय समाजके संघर्षके औचित्यको अच्छी तरह स्पष्ट किया है। इस पत्रसे बहुत-से गोरे हमारे पक्षमें हो गये हैं। और बहुतसे दिन-प्रतिदिन होते जाते हैं।

ब्लूमफॉंटीनका 'फ्रेंड'

ब्लूमफॉंटीनके 'फ्रेंड' पत्रने भी फिर हमारे पक्षमें लिखना आरम्भ कर दिया है। उसने श्री स्मट्सको सलाह दी है कि अब वे झगड़ेको आगे न बढ़ायें।

इस प्रकार श्री स्मट्सका किला चारों तरफसे घिर गया है। उनके पापका घड़ा फूटनेपर आ गया है। इसलिए सम्भव है कि अब अन्त आनेमें बहुत समय न लगे। किन्तु सत्याग्रहीको बहुत या कम समयका विचार नहीं करना चाहिए। उसके लिए तो उसका सत्य ही सबसे अधिक प्रिय होता है।

सोराबजीका मामला

श्री सोराबजी गिरफ्तार कर लिये गये हैं और बिना जमानत छोड़ दिये गये हैं। शनिवारको उनके मुकदमेकी पेशी थी, किन्तु वह बुधवारके लिए मुल्तवी कर दिया गया। अब श्री सोराबजीपर आरोप प्रवासी कानूनके अन्तर्गत नहीं है, बल्कि खूनी कानूनके अन्तर्गत है। इससे जाहिर होता है कि प्रवासी कानूनकी रूसे श्री सोराबजीके ऊपर कोई मामला नहीं चलाया जा सकता। श्री सोराबजी खूनी कानूनको स्वीकार नहीं करना चाहते और वे ट्रान्सवाल नहीं छोड़ेंगे। इसलिए यदि उन्हें निर्वासनकी सूचना दी गई, तो वे उसे अमान्य करेंगे और जेल जायेंगे। श्री सोराबजी इतवारकी सभामें भी बोले थे और उनके जेल जानेके निर्णयसे सबको खुशी हुई थी।[३] श्री सोराबजीके मामलेपर श्री गांधीने अखबारोंको पत्र लिखा है।

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ ३३४-३७।
२. देखिए परिशिष्ट ७।
३. देखिए पाद-टिप्पणी २, पृष्ठ ३३४।

अखबारोंको पत्र

तारीख ४ को ट्रान्सवालके अखबारोंमें श्री गांधीका निम्नलिखित पत्र[1] प्रकाशित हुआ है :

जयमलका मुकदमा

जयमलके मुकदमेके बाद ऐसे और भी बहुत-से मुकदममे चलाये जानेकी सम्भावना है। जयमलका दिया हुआ अनुमतिपत्र लेकर डाह्या नामका एक दर्जी जोहानिसबर्गमें आया था। वह गिरफ्तार कर लिया गया है। जान पड़ता है कि उसने निर्दोष भावसे अनुमतिपत्र लिया था; इसलिए उसके छूट जानेकी सम्भावना है। इस मुकदमेसे भारतीयोंको यह चेतावनी लेनी चाहिए कि टेढ़े तरीकेसे अनुमतिपत्र लेनेका इरादा करनेमें उनका अपना नुकसान है और उससे समाजका भी नुकसान होता है।

बुधवार [जुलाई ८, १९०८]

सोराबजीका मुकदमा

श्री सोराबजीका मुकदमा[2] बुधवारको श्री जॉर्डनके सामने सुना गया। श्री चैमनेने गवाही दी। उसमें उन्होंने स्वीकार किया कि श्री सोराबजी प्रवासी कानूनके अन्तर्गत गिरफ्तार नहीं किये गये हैं और न वे उसके अन्तर्गत गिरफ्तार किये ही जा सकते हैं। उन्होंने कहा, श्री सोराबजीको [इससे पहले] गिरफ्तार न करनेका खास कारण है। अदालतमें खूब गर्मा-गरम बहस हुई। अदालत भारतीयोंसे खचाखच भरी थी। श्री गांधीने एक कानूनी मुद्देपर श्री सोराबजीको छोड़ देनेकी माँग की। न्यायाधीशने कहा कि वे इस विषयमें अपना निर्णय गुरुवारको देंगे। उनका निर्णय जो भी हो, उससे असली मुकदमेका फैसला नहीं होता। किन्तु इस विषयमें अन्य कानूनी मुद्दोंसे लाभ उठाना अधिक ठीक जान पड़ता है।

शोक

४ जुलाई शनिवारको श्री ईसप मियाँके छोटे भाई श्री सुलेमान मियाँका बच्चा, जो लगभग १० महीनेसे ज्यादाका था, गुजर गया। इस खेदजनक घटनापर हमें दुःख है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। अनुवादके लिए देखें, "पत्र : इंडियन ओपिनियनको", पृष्ठ ३३३-३४ ।
२. देखिए "सोराबजी शापुरजीका मुकदमा — १", पृष्ठ ३३७-४० ।

२०५. पत्र: उपनिवेश-सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई ९, १९०८

माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय,

एशियाई अनुमतिपत्रोंके सम्बन्धमें इसी १ तारीखके मेरे पत्रके[1] उत्तरमें आपका ६ तारीखका पत्र[2] प्राप्त हुआ। मेरे संघने यह उग्र कदम बहुत अधिक और उचित सोच-विचारके बाद और दु:खके साथ एवं केवल तब उठाया है जब कोई दूसरा रास्ता सम्भव नहीं रहा है। मेरा संघ अब भी इस कदमसे, जो बहुत तीव्र संघर्षका रूप ले सकता है, और हम जिस देशमें रहते हैं उसके कानूनोंके विरोधसे, बचनेके लिए अत्यन्त चिन्तित है; किन्तु जब कानूनके प्रति आदर और अन्तरात्माकी आवाज — इन दोनोंमें से एकको चुननेका प्रश्न आता है, तब मेरी नम्र रायमें इनमें से कौन-सी चीज चुनी जाये इस बारेमें कोई हिचकिचाहट नहीं हो सकती। मेरा संघ अब भी लोगोंको परवाना-शुल्क चुकानेकी सलाह देनेके लिए अत्यन्त इच्छुक है।

मेरे संघको मालूम हुआ है कि जिन एशियाइयोंने परवानोंके लिए प्रार्थनापत्र दिये हैं उनसे एशियाई विधेयकके अन्तर्गत अँगूठोंके निशान माँगे जा रहे हैं। मेरी नम्र रायमें इससे भी समझौता इस अर्थके अन्तर्गत भंग होता है, जो मेरे संघने लगाया है; और वह अर्थ यह है कि विधेयक उन लोगोंपर लागू नहीं होना चाहिए जिन्होंने पंजीयनके लिए स्वेच्छया प्रार्थनापत्र दिये हों।

मेरे संघके इसी ६ तारीखके पत्रके[3] बारेमें बहुत-से यूरोपीय मित्रोंने सलाह दी है कि जबतक सरकारका अन्तिम निर्णय प्राप्त नहीं हो जाता, तबतक स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्रोंको जलानेके लिए की जानेवाली सार्वजनिक सभा स्थगित रखनी चाहिए। मेरे संघने यह भी सुना है कि सरकार मेरे पत्रमें उल्लिखित पहले तीन मुद्दोंको छोड़नेके लिए तैयार है, किन्तु शिक्षाकी कसौटी प्रधान बाधा है। यदि ऐसी बात है और यदि अभी समय है तो मेरा संघ ऐसी आशा करता है कि शिक्षाकी कसौटीको पर्याप्त कठिन बनाकर इस बाधापर विजय प्राप्त की जा सकती है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
ईसप इस्माइल मियाँ
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १८–७–१९०८

१. अनुपलब्ध।

२. इसमें सहायक उपनिवेश-सचिव श्री गॉर्जेसने कहा था कि जो एशियाई पंजीयन प्रमाणपत्र न दिखा सकेंगे वे परवाना लेनेके अधिकारी नहीं हैं। उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंको कानूनके विरुद्ध व्यापार करनेकी सलाह देनेकी ब्रिटिश भारतीय संघकी उग्र कार्रवाईपर खेद प्रकट किया था।

३. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ ३३४-३७।

२०६. पत्र : ए० कार्टराइटको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई ९, १९०८

प्रिय श्री कार्टराइट,

आपके पत्र तथा आपकी उस दिलचस्पीके लिए जो आप मेरे देशवासियोंकी मुसीबतोंमें ले रहे हैं, मैं आपका अत्यन्त अभारी हूँ। ट्रान्सवालके लोकनायकोंकी सद्‌भावना खोनेके बजाय मैं अन्य बहुत-कुछ खोना ज्यादा पसन्द करूँगा। इसलिए आगामी रविवारको प्रमाणपत्रोंका जलाना मुल्तवी कर दिया जायेगा। मेरा विश्वास है कि आप संघर्षकी प्रगतिको बराबर देखते चल रहे हैं।

जैसा कि आप जानते हैं, श्री सोराबजीपर अब प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत मुकदमा कतई नहीं चलाया जायेगा।[1] मुझे यकीन है कि किसी शिक्षित एशियाईको इस अधिनियमके अन्तर्गत एशियाई अधिनियमका सहारा लिए बिना सजा दिलाना निस्सन्देह असम्भव है। इससे मेरी बात ही सिद्ध होती है। इस्तगासेकी मूर्खता तथा श्री चैमनेकी उससे भी अधिक मूर्खताके कारण सरकारकी ओरसे पेश की गई गवाहीकी एक त्रुटिका मैं लाभ उठा सका और श्री सोराबजी छोड़ दिये गये। किन्तु वे तुरन्त ही फिर गिरफ्तार कर लिये गये। इससे सुपरिंटेंडेंट श्री वरनॉन तथा श्री चैमनेकी प्रतिशोधकी भावना प्रकट होती है। श्री वरनॉनका कहना था कि श्री चैमनेसे प्राप्त आदेशके अनुसार ही वे पुनः गिरफ्तार किये जा रहे हैं। सौभाग्यसे मैं श्री सोराबजीके साथ मार्शल स्क्वेयर पुलिस थाने तक गया और मैंने डिप्टी कमिश्नर पॉटरसे मुलाकात की। उन्होंने, विश्वास है, जो गलती की गई थी उसे समझा और मेरी मुलाकातके प्रायः तुरन्त बाद ही श्री सोराबजीको हवालातसे मुक्त कर देनेका आदेश दे दिया। मैं नहीं जानता कि कल क्या होगा। मुझे कुछ-कुछ ऐसा लगता है कि ये लोग फिरसे गड़बड़ी करेंगे। यदि ऐसा हुआ तो मेरा इरादा इसका लाभ उठाकर उन्हें फिरसे छुड़ा लेनेका है। यदि कोई निपटारा नहीं हुआ तो निस्सन्देह अन्तमें श्री सोराबजीको अपनी काली चमड़ीका दण्ड भुगतना ही पड़ेगा और उन्हें जेल होगी। वे मुझे एक दृढ़ निश्चयवाले नवयुवक मालूम पड़ते हैं और अपने शिक्षित भाइयोंके लिए अपनेको कुर्बान कर देना चाहते हैं।

मैं आपके पढ़नेके लिए एक पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ, जिसपर श्री हॉस्केन, श्री फिलिप्स, श्री डोक, श्री पेरी, श्री डेविड पोलक तथा श्री कैलनबैकके हस्ताक्षर हैं। यह आज जनरल स्मट्सकी सेवामें भेज दिया जायेगा। सम्भवतः आप ईसप मियाँ द्वारा लिखा गया पत्र[2] देख चुके हैं। उन्हें सार्वजनिक सभाके मुल्तवी किये जानेकी सूचना देते हुए आज दूसरा पत्र[3] लिखा जा रहा है। उसकी भी एक नकल साथमें भेजी जा रही है।

१. देखिए "सोराबजी शापुरजीका मुकदमा — १", पृष्ठ ३३७-४०।
२. देखिए "पत्र : उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ ३३४-३७।
३. देखिए पिछला शीर्षक।

मुझे आशा है कि आप यह कष्ट देनेके लिए मुझे क्षमा करेंगे। परन्तु चूँकि आप वहाँ मौजूद हैं और अपने बहुत-से काम-धन्धोंके साथ एशियाइयोंसे सम्बन्धित कार्य भी कर रहे हैं, इसलिए मैंने सोचा कि मेरे पास जो कुछ भी जानकारी है वह सब आपको भेज दूँ।

आपका हृदयसे,

श्री ए० कार्टराइट
प्रिटोरिया क्लब
प्रिटोरिया

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८३२) से।

२०७. पत्र : 'ट्रान्सवाल लीडर'को[1]

[जोहानिसबर्ग,]
जुलाई १०, १९०८

[सम्पादक
'ट्रान्सवाल लीडर'
महोदय,]

आपने एशियाइयोंको सलाह दी है कि वे आवेशमें आकर कुछ न करें और एशियाई संघर्षको फिरसे प्रारम्भ करनेके सम्बन्धमें परिस्थितियोंके रुझानका रास्ता देखें। अतएव बहुत दुःखके साथ आपका ध्यान एक परिपत्रकी ओर आकर्षित करता हूँ जो एशियाई पंजीयन अधिकारीके हस्ताक्षरोंसे, अभी-अभी तारीख ७ को ट्रान्सवालके टाउन क्लार्कके नाम जारी किया गया है। परिपत्र नीचे दिया जा रहा है :

> **मुझे यह सूचना देनेका गौरव प्राप्त हुआ है कि १९०७ के विधेयक संख्या २ को कानूनकी किताबमें बनाये रखना निश्चित हुआ है; फलस्वरूप विधेयकके अन्तर्गत व्यापारिक परवानोंके लिए प्रार्थनापत्र देनेवाले सभी एशियाइयोंको पंजीयन प्रमाणपत्र अथवा साथ दिये हुए फार्ममें स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने पड़ेंगे और दफ्तरकी जाँचके लिए अपने दाहिने हाथके अँगूठेके साफ-साफ निशान भी देने पड़ेंगे।**

१. यह **लीडर**के १० जुलाई, १९०८ के अग्रलेखके उत्तरमें लिखा गया था जो १८-७-१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में "ट्रान्सवालका झगड़ा : सरकारी वादे कैसे पूरे किये जाते हैं" शीर्षकसे उद्धृत किया गया था। **लीडरने** यह आशा व्यक्त की है कि एशियाई सरकारके साथ अपने झगड़ेके सिलसिलेमें कोई सनसनीदार कदम न उठायेंगे, क्योंकि उससे संसद, जिसका तब अधिवेशन हो रहा होगा, "भारी गड़बड़ी" में फँस जायेगी। **ब्लूमफॉंटीन फ्रेंड**की एक टिप्पणीका उल्लेख करते हुए **लीडरने** आगे कहा है कि "दोनों पक्षोंको" यही सलाह दी जा सकती है कि समझौतेका पालन किया जाना चाहिए। किन्तु, उसने एशियाइयोंसे यह स्वीकार कर लेनेका अनुरोध किया है कि उपनिवेशके यूरोपीय किन्हीं भी स्थितियोंमें नये प्रवासके लिए द्वार न खोलेंगे।

जो एशियाई इन आवश्यकताओंको पूरा नहीं करता, वह कोई भी व्यापारिक परवाना पाने अथवा नया करानेका अधिकारी नहीं है।

अँगूठेका निशान, प्रार्थीके नाम और उसके पंजीयन प्रमाणपत्रकी संख्याके साथ इस दफ्तरमें जल्दीसे-जल्दी भेज दिया जाना चाहिए।

आप देखेंगे कि यह परिपत्र कानूनकी किताबमें १९०७ के अधिनियम २ को बरकरार रखने और स्पष्ट ही स्वेच्छया पंजीयनको कानूनी रूप देनेके विषयमें सरकारके निर्णयको व्यक्त करता है। यदि ऐसा है तो क्या एशियाई धीरज रखे रह सकते हैं और क्या वे सरकारके किसी भी लिखित या मौखिक वचनमें विश्वास कर सकते हैं? यदि यह परिपत्र सरकारके निर्णयको ठीक रूपमें व्यक्त करता है, तो यह एक जबर्दस्त आँख खोलनेवाला परिपत्र है। फिर भी पंजीयन प्रमाणपत्रको जलानेके लिए जिस सार्वजनिक सभाका ऐलान किया गया था वह स्थगित रहेगी और हर एशियाई सरकारकी घोषणाओंके प्रकाशनकी राह देखेगा। मैं जिस परिपत्रको पा सका हूँ, उसकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित करनेका उद्देश्य केवल यह दिखाना है कि एशियाई कोई ऐसा कदम, जो वापस न लिया जा सके, बहुत गम्भीर चोट पहुँचनेकी स्थितिमें ही उठायेंगे।

[आपका, आदि,
मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १८-७-१९०८

२०८. सोराबजी शापुरजीका मुकदमा — २

[जोहानिसबर्ग
जुलाई १०, १९०८]

इसी शुक्रवार, १० तारीखको पारसी सज्जन श्री सोराबजी शापुरजीपर श्री जॉर्डनकी "बी" अदालतमें १९०७ के दूसरे अधिनियमकी धारा ८, उपधारा ३ के अनुसार यह आरोप लगाया गया था कि इसी ९ तारीखको सुपरिंटेंडेंट वरनॉनने उनसे अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन प्रमाणपत्र दिखानेको कहा और वे ऐसा प्रमाणपत्र नहीं दिखा सके। श्री सोराबजी इसके पहले ऐसे ही एक आरोपमें बरी किये जा चुके हैं।[1] राज्यकी ओरसे श्री कैमरने अभियोग प्रस्तुत किया और प्रतिवादीकी ओरसे श्री गांधीने पैरवी की।

आरोपका सर्व-सामान्य रूपसे उत्तर देनेसे पहले श्री गांधीने "पूर्व निर्दोष सिद्धि" की दलील पेश की और कहा कि अभियुक्त इस आरोपमें पहले ही दोष-मुक्त किया जा चुका है।

न्यायाधीश : अपराध अभी जारी है।

श्री गांधीने उत्तर दिया कि उन्हें यह बात मालूम है; किन्तु उनकी माँग है कि यद्यपि अभियोगपत्रपर ९ जुलाईकी तारीख दी गई है, फिर भी अभियुक्तको उसी अपराधमें अदालतके

१. पहले निर्णयके लिए देखिए "सोराबजी शापुरजीका मुकदमा — १" की पाद-टिप्पणी १, पृष्ठ ३४० ।

सामने फिर पेश करनेसे पहले पूरे आठ दिनका समय देना उचित था। यदि अभियुक्तके लिए दोष-मुक्तिका कोई मूल्य है, तो उसे एक हफ्ते तक और अदालतमें पेश होनेके लिए नहीं बुलाना चाहिए। मेरे इस कथनका अर्थ एक क्षणके लिए भी यह नहीं है कि इस मामलेके खयालसे उन्हें पूरे आठ दिनोंकी आवश्यकता है, किन्तु फिर भी यह कानूनी बचाव तो है ही और उसको छोड़ना मेरे लिए उचित नहीं है। मेरी माँग यह है कि कानूनके मुताबिक अभियुक्तको विगत कालसे नया अवसर देना उचित था। किन्तु वास्तविकता यह है कि वह अदालतसे ही निर्दयतापूर्वक ले जाया गया। उसके साथ असभ्यताका व्यवहार किया गया और उसे यह अवसर भी नहीं दिया गया कि यदि वह चाहता तो कलके दिन उपनिवेशसे चला जाता।

न्यायाधीशने इस तर्कको अमान्य कर दिया और कहा कि वे इसको अंकित कर रखेंगे।

सुपरिंटेंडेंट वरनॉनने गिरफ्तारीके विषयमें औपचारिक गवाही दी। उन्होंने सरकारी 'गजट' में प्रकाशित नोटिसें पेश कीं, जिनमें उपनिवेश-सचिवकी ये सरकारी विज्ञप्तियाँ थीं कि कानूनके अन्तर्गत पंजीयनकी अवधि ३१ अक्तूबर १९०७ को और उसके बाद बढ़ाई हुई अवधि ३० नवम्बर १९०७ को समाप्त होती है।

जिरह

[गवाहने कहा:] कल जब अभियुक्त बरी किया गया तब मैं अदालतमें था। मैंने अभियुक्तको इशारेसे बाहर बुलाया था और अदालतके बाहर गिरफ्तार किया था। यह सच है कि अभियुक्तको बरी होने और दुबारा अदालतमें पेश किये जानेके बीच अधिक समय नहीं मिला।

मॉंटफोर्ड चैमनेने कहा, मैं एशियाई पंजीयन अधिकारी हूँ। अभियुक्तने १९०७ के अधिनियम २ के अन्तर्गत पंजीयन प्रमाणपत्रके लिए अर्जी नहीं दी है और उसे ऐसा प्रमाणपत्र नहीं दिया गया है। अधिनियमकी धाराओंके बाहर पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र दिया गया था, किन्तु मैंने विचार करनेपर देखा कि अभियुक्त पंजीयनका अधिकारी नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि अभियुक्त प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत ऐसे पंजीयन प्रमाणपत्र पानेका अधिकारी नहीं है।

श्री गांधीने इस आधारपर इस बयानका विरोध किया कि धाराकी व्याख्याके विषयमें गवाहका अभिमत कुछ मानी नहीं रखता; क्योंकि वह न्यायाधिकारी नहीं है, बल्कि केवल एक प्रशासनाधिकारी है। न्यायाधीशने इस आपत्तिको मान्य किया।

जिरहमें गवाहने कहा कि उन्होंने अभियुक्तसे उसकी शिक्षा-सम्बन्धी योग्यताके बारेमें पूछताछ नहीं की।

इसके बाद इस्तगासेकी दलीलें खत्म हो गईं।

श्री गांधीने तुरन्त अभियुक्तको बरी करनेकी प्रार्थना की, क्योंकि यद्यपि नोटिसें सिद्ध कर दी गई थीं, किन्तु नियमित नोटिस सिद्ध नहीं की गई थी। अदालतके सामने इस नोटिसको सिद्ध करनेकी आवश्यकता थी, जिसमें विज्ञापित किया गया हो कि जो व्यक्ति अमुक तारीखके बाद उपनिवेशमें मिलेगा उसे पंजीयन प्रमाणपत्र पेश करना पड़ेगा। जो नोटिसें अदालतमें पेश की गई हैं उनमें केवल पंजीयनके प्रार्थनापत्रोंका उल्लेख है; इस मामलेसे

उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। आखिर ३० नवम्बर निकल चुका है और मेरे मुवक्किलने पंजीयनके लिए कभी प्रार्थनापत्र नहीं दिया है। कानूनकी जिस धाराके अन्तर्गत यह आरोप लगाया गया है उसीमें उस नोटिसका विधान है जिसके द्वारा पुलिसको पंजीयन प्रमाणपत्र माँगनेका अधिकार प्राप्त होता है और केवल इस नोटिसके अन्तर्गत ही पंजीयन प्रमाणपत्र माँगा जा सकता है। यह नोटिस सिद्ध नहीं की गई है।

इसपर एक लम्बी बहस हुई, जिसके फलस्वरूप श्री गांधीने सम्बन्धित-नोटिस पेश की। उन्होंने कहा कि मैं अभियुक्तपर तीसरा मुकदमा चलनेके सम्बन्धमें इस हदतक सहायता करना चाहता हूँ, लेकिन वर्तमान मुकदमेके सम्बन्धमें नहीं; क्योंकि मैं मानता हूँ कि राज्यके लिए इस मामलेमें सजा कराना सम्भव नहीं है। उन्होंने नोटिस पढ़ी। उसमें कहा गया था कि सरकारने ३० नवम्बर १९०७ ऐसी अन्तिम तिथि निर्धारित की है जिसके बाद १६ वर्षकी अवस्थासे ऊपरका कोई एशियाई यदि उपनिवेशमें मिलेगा और अपना पंजीयन प्रमाणपत्र जिसपर उसका वैध अधिकार हो, किसी उचित रूपसे अधिकार दिये गये व्यक्तिके माँगनेपर प्रस्तुत करनेमें असमर्थ रहेगा तो वह गिरफ्तार किया जा सकता है और उसके विरुद्ध कानूनके अनुसार कार्रवाई की जा सकती है। उन्होंने कहा कि यह सूचना कभी पेश नहीं की गई है।

न्यायाधीश: प्रश्न यह है कि क्या गज़ट पेश करना स्वतः पर्याप्त सूचना नहीं है?

श्री गांधीने कहा कि मुझे यह बात बहुत खटकती है कि मैंने अपने तर्ककी सत्यता सिद्ध कर दी है इसके बाद भी इस तरहका तर्क दिया जाता है। मेरा तर्क अब भी यही है कि इस्तगासेकी ओरसे जो दो नोटिसें पेश की गई हैं वे इस मामलेमें लागू नहीं होतीं। इसमें मेरा दोष नहीं है कि मैंने इस मामलेमें बहुत बहस की है। राज्यने सम्बन्धित नोटिस पेश नहीं की है और न अभियोगपत्रमें ही उसका उल्लेख किया गया है।

इसके बाद श्री जॉर्डनने अदालतको भोजनके लिए स्थगित कर दिया और सूचित किया कि वे फिर अदालत लगनेपर अपना फैसला सुनायेंगे।

जब अदालत फिर शुरू हुई तो सरकारी वकीलने कहा कि जिस 'गज़ट' में वह नोटिस है उसे अदालतमें पेश करना नितान्त आवश्यक जान पड़ता है। श्री गांधीने एक विशुद्ध प्राविधिक मुद्देका फायदा उठाया है और अपनी दृष्टिसे उन्होंने ठीक ही किया है। सरकारी वकीलने न्यायाधीश महोदयसे प्रार्थना की कि उनको भी एक विशुद्ध प्राविधिक मुद्देका फायदा उठानेका मौका दिया जाये। उन्होंने न्यायाधीशसे यह मान्य करनेकी प्रार्थना की कि 'गज़ट' पेश करना और उसमेंसे श्री गांधी द्वारा नोटिसोंको पढ़ लेना इस मुकदमेके उद्देश्यसे उनका पर्याप्त प्रकाशन है।

उत्तरमें श्री गांधीने कहा कि उन्होंने 'गज़ट' पेश नहीं किया है। नोटिस कतई पेश नहीं की गई है। उन्होंने उसको केवल उसी तरह पेश किया है जिस तरह वे कानूनकी किसी किताबको, अदालतको भरोसा दिलानेके लिए, इस दृष्टिसे पेश करते कि उनकी स्थिति ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण है कि इसके बिना वे अपनी बात समझानेमें असमर्थ हैं। उन्हें अदालतकी मदद करनेके बदलेमें सजा देना अनुचित होगा। वास्तवमें जहाँतक गवाहीका ताल्लुक है कानून द्वारा विहित नोटिस कानूनकी दृष्टिसे अदालतकी मान्यतामें नहीं आती।

न्यायाधीशने कहा कि वे श्री गांधीके तर्कोंपर न्यायकी दृष्टिसे विचार करेंगे, किन्तु उन्होंने उनके तर्कको अमान्य कर दिया।

इसके बाद अभियुक्तकी पेशी हुई और जिरहकी जानेपर उसने कहा कि मैं दक्षिण आफ्रिकामें ६ वर्षोंसे रहता हूँ, जिसमें से डर्बनमें डेढ़ वर्ष और चार्ल्सटाउनमें साढ़े चार वर्ष रहा हूँ। मैं नेटालके अन्तर्गत चार्ल्सटाउन नगरमें श्री हाजी हासिमकी दूकानमें मुनीम और प्रबन्धक रहा हूँ, मैंने बम्बई प्रदेशके सूरत हाई स्कूलमें अंग्रेजी पढ़ी है और सात साल अंग्रेजी भाषाके माध्यमसे और उससे पहले सात साल देशी भाषाके माध्यमसे शिक्षा प्राप्त की है। मैं ट्रान्सवालमें प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत आया हूँ।

न्यायाधीश: ये उसके अन्तर्गत कैसे आ सकते हैं?

श्री गांधीने कहा: यह बताना मेरा काम है। जब मैं अदालतके सामने तथ्य पेश कर चुकूँगा, तब यह बहस करना मेरा कर्तव्य होगा कि अभियुक्तको प्रवेशका अधिकार था। किन्तु जबतक अदालतमें तथ्य पेश नहीं कर दिये जाते और उचित अवसर आनेपर उनपर ठीक बहस नहीं हो जाती, तबतक इस प्रश्नपर निर्णय देना अदालतके लिए सम्भव नहीं है।

न्यायाधीशने कहा: श्री गांधीको यह सिद्ध करना पड़ेगा कि उनका मुवक्किल उन व्यक्तियोंमें से है जो पंजीयन प्रमाणपत्रकी पाबन्दीसे मुक्त हैं।

श्री गांधीने दलील दी कि उनका मुवक्किल प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत प्रवेशका अधिकारी है; क्योंकि वह शिक्षित और साधन-सम्पन्न है।

न्यायाधीशने कहा: क्या आपके कहनेका यह अर्थ है कि ऐसा प्रत्येक एशियाई, जो कोई यूरोपीय भाषा लिख और पढ़ सकता है, इस उपनिवेशमें आनेका अधिकारी है?

श्री गांधीने कहा: 'जी हाँ, मेरे कहनेका यही अर्थ है और यदि मुझे अवसर प्रदान किया जायेगा तो मैं अदालतके सामने यही सिद्ध करनेका प्रयत्न करूँगा और बहस करूँगा।

गवाहने आगे कहा: जब मैं इस देशमें आया तब मैं काफी साधन-सम्पन्न था। दक्षिण आफ्रिकी पुलिस दलके सार्जेन्ट मैन्सफील्डने, जो फोक्सरस्टके प्रवासी विभागके अधिकारी थे, मुझसे पूछा था कि मेरे पास कितना पैसा है। मैंने पिछली २२ अप्रैलको सार्जेन्ट मैन्सफील्डसे उपनिवेशमें प्रवेश करने और प्रार्थनापत्र देनेकी लिखित अनुमति पाकर स्वेच्छया पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र दिया था। मेरे पास कई प्रमुख नागरिकोंके प्रमाणपत्र हैं और मैंने उनमें से कुछ अपने प्रार्थनापत्रके सम्बन्धमें श्री चैमनेको भेजे हैं। मैं कल ही इसी प्रकारके अभियोगसे मुक्त किया गया था, जिस प्रकारके अभियोगमें अब फिर अदालतके सामने पेश हूँ। मेरा १९०७ के पंजीयन अधिनियम संख्या २ के अनुसार प्रार्थनापत्र देनेका कोई इरादा नहीं है।[1]

जिरह

जिरहमें उन्होंने कहा: मुझे अधिनियमकी धाराओंकी पूरी-पूरी जानकारी है। मैं जानता हूँ कि पंजीयन प्रमाणपत्र पानेके लिए क्या कदम उठाना चाहिए। मैंने अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयनके लिए कोई प्रार्थनापत्र नहीं दिया है और न कोई प्रार्थनापत्र देनेकी मेरी इच्छा

१. देखिए "सोराबजी शापुरजीका मुकदमा — १", पृष्ठ ३३७-४०।

है। मैं न तो कभी प्रार्थनापत्र दूँगा और न ऐसे अ-ब्रिटिश और अपमानजनक अधिनियमसे कोई सम्बन्ध रखूँगा। मैं इस अधिनियमके विरोधमें अपने भाइयोंके साथ भी हूँ। मैं यहाँ केवल इसे परीक्षात्मक मुकदमा बनानेकी दृष्टिसे ही नहीं आया हूँ, बल्कि ट्रान्सवालको अपना देश बनानेके लिए और उसमें रहनेके लिए आया हूँ। मैं इससे पहले चार्ल्सटाउनमें था और ट्रान्सवालमें इसके पहले कभी नहीं रहा। मेरा ट्रान्सवालमें आनेका अपना इरादा था; मैं किसीकी सलाहसे नहीं आया, बल्कि स्वयं अपनी मर्जीसे आया हूँ। अलबत्ता, मैंने श्री गांधीसे वकीलकी हैसियतमें पहले सलाह माँगी थी। मैंने फोक्सरस्टके न्यायाधीशके दफ्तरकी मार्फत जो प्रार्थनापत्र दिया था, वह अस्वीकृत कर दिया गया था। जबसे मैं जोहानिसबर्गमें आया हूँ, तबसे श्री कामाके साथ मलायी बस्तीमें रहता हूँ। यह सच नहीं है कि ट्रान्सवालमें आनेसे पहले मैं ब्रिटिश भारतीय संघके निरन्तर सम्पर्कमें रहा हूँ।

दुबारा जिरह की जानेपर उन्होंने कहा कि मैं ब्रिटिश प्रजा हूँ और पारसी हूँ।

यहाँ प्रतिवादी पक्षकी बहस समाप्त हो गई।

श्री गांधीने विस्तारसे मुकदमेपर बहस की। पहले उन्होंने यह निवेदन किया कि उनका मुवक्किल प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत वर्जित प्रवासी नहीं है, क्योंकि उसने यह साबित कर दिया है कि वह पर्याप्त साधन-सम्पन्न और शिक्षित है; और यदि वह एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत प्रार्थनापत्र देना चाहता तो वर्जित प्रवासी न माना जाता। उन्होंने आगे कहा कि एशियाई अधिनियम केवल उन एशियाइयोंसे सम्बन्धित है जो उपनिवेशमें हैं और जो उपनिवेशमें अधिनियम पास होनेके पहलेसे रहते हैं; प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके निर्माताओंका इरादा चाहे जो रहा हो, उसके द्वारा, निःसन्देह एक बहुत ही परिवर्तित रूपमें, एशियाई प्रवासका मार्ग खुला रहता है।

न्यायाधीशने श्री गांधीके तर्कोंको बहुत सूक्ष्म और योग्यतापूर्ण बताया। उन्होंने उन तर्कोंमें जो मुद्दे उठाये गये थे उनका जिक्र किया और कहा कि अभियुक्तने पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र नहीं दिया है, बल्कि वह इस बातमें शान समझता है; और सरकारको चुनौती देता है। उन्होंने अभियुक्तको सात दिनके भीतर उपनिवेशसे चले जानेकी आज्ञा दी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–७–१९०८

२०९. हिन्दू श्मशान

हिन्दू लोग मुर्दोंको जला देते हैं, यह बात जगत-प्रसिद्ध है। मृतकोंके दाह-संस्कार सम्बन्धी जैसी सुविधा डर्बनमें है, वैसी सुविधा पूरे उपनिवेशमें दी जाये — इस आशयकी प्रार्थनापर सरकारकी ओरसे श्री दीवानको मिलनेवाला उत्तर निराशाजनक है। किसी प्रकारका कारण बताये बिना सरकार कहती है कि इस प्रकारकी व्यवस्था नहीं की जा सकती। यह ठीक है कि बहुत-से हिन्दुओंके मुर्दे गाड़ दिये जाया करते हैं, परन्तु धार्मिक प्रथापर अनिवार्यतः प्रतिबन्ध लगाया जाना हमें सहन नहीं हो सकता। हिन्दू लोग असुविधाके कारण अथवा अन्य कारणोंसे मुर्दे नहीं जलाते रहे। इसमें उनका दोष निकालना हो तो भले ही निकाला जाये। परन्तु ऐसा करना या न करना उनकी मर्जीकी बात थी। अब जबकि सरकार उसपर प्रतिबन्ध लगाना चाहती है, उसका विरोध करनेकी पूरी आवश्यकता है।

प्रत्येक हिन्दूके हस्ताक्षरके साथ एक प्रार्थनापत्र सरकारके पास भेजा जाना चाहिए। अगर उसपर हजारों व्यक्तियोंके हस्ताक्षर होंगे, तो मुमकिन है सुनवाई हो।

इस सम्बन्धमें मुसलमान, ईसाई, पारसी — सभी मदद कर सकते हैं। आज एक धर्मपर आक्रमण किया जा रहा है तो कल दूसरेपर होगा। इसलिए, हमें आशा है कि हिन्दू लोग इस कामको हाथमें उठा लेंगे, इतना ही नहीं, बल्कि अन्य भारतीय समाज भी उसे प्रोत्साहन देंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

२१०. सीडेनहममें खून

सीडेनहममें श्री बनु और उनकी पत्नीका जो खून हुआ है, उससे जो आलोचना हम कर चुके हैं,[१] उसे समर्थन मिलता है। हमें अभीतक इस खूनका कारण मालूम नहीं हुआ है। सीडेनहम आदि जगहोंके पुलिस प्रबन्धके बारेमें सरकारको लिखना आवश्यक है; फिर भी वास्तविक उपाय हमारे ही हाथमें है। इसके अलावा श्री बनुकी लाशको दफनाने आदिके बारेमें जो कठिनाई हुई, वह सरकारके लिए लज्जाजनक है। यह अच्छी बात नहीं हुई कि दो दिनोंतक लाश दफन नहीं की जा सकी। इसमें सरकारी अमलदारोंका दोष दिखाई पड़ता है। इस विषयमें भी कांग्रेसने सरकारको लिखा, यह ठीक हुआ है। कांग्रेसको चाहिए कि ऐसे मामलोंमें वह सरकारको पूरे जोरके साथ लिखे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

१. देखिए "नेटालमें हत्याएँ", पृष्ठ २७१-७२ और "नेटालमें हत्याओंका कारण क्या है", पृष्ठ २९१-९२।



मोहनदास करमचन्द गांधी (१९०८?)



सँपेरा (जनरल स्मट्स) और भारतीय समाज

(देखिए पृष्ठ ३५३)

२११. नेटालके फलवालोंको सूचना

नेटालके जो फल-व्यापारी ट्रान्सवालसे ताल्लुक रखते हैं उन्हें नाचीज[१] आदि फल भेजनेमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। यदि एक पेटीमें पाँच प्रतिशतसे अधिक दागी नाचीजें हों, तो ट्रान्सवालके अधिकारी उसे रद कर देते हैं और पूरा लदान बेकार करार दे दिया जाता है। सीधा रास्ता तो यह है कि फलोंको जाँच कर लादा जाये। यदि ऐसा न किया जायेगा तो नुकसानकी सम्भावना है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

२१२. स्त्री-कैदियोंके बाल

कांग्रेसने नेटालकी सरकारको स्त्री-कैदियोंके बाल काटे जानेके बारेमें जो-कुछ लिखा था, उसका सन्तोषजनक उत्तर मिला है।

सरकारने स्त्रियोंके बाल न काटनेका हुक्म दे दिया है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

२१३. आजका व्यंग्य-चित्र

तारीख २५ के 'रैंड डेली मेल' में संघर्षसे सम्बन्धित एक व्यंग्य-चित्र प्रकाशित हुआ है। हम इस अंकके अंग्रेजी संस्करणमें वह चित्र दे रहे हैं।[२] उसमें जनरल स्मट्सको सँपेरे और भारतीय कौमको नागके रूपमें दिखाया गया है। 'डेली मेल' के चित्रकारने चित्रके नीचे अंग्रेजीमें जो परिचय लिखा है, उसका अर्थ यह है कि सँपेरा बीन बजाकर नागको वशमें करनेकी कोशिशमें लगा है, किन्तु नाग नहीं फँसता।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–७–१९०८

१. नीबूकी जातिका कड़े छिलकेवाला एक फल।

२. देखिए चित्र सामने।

२१४. पत्र : ए० कार्टराइटको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई ११, १९०८

प्रिय श्री कार्टराइट,

मैं अपने वचनके अनुसार प्रश्न भेज रहा हूँ।[1] मैं आगे और प्रश्न बिलकुल तैयार नहीं करूँगा। आपसे बिदाई लेनेके बाद मैं श्री हॉस्केनसे मिला। श्री हॉस्केनने भी जनरल स्मट्ससे मिलनेका वचन दिया है, क्योंकि श्री हॉस्केनको लिखे गये एक पत्रमें कहा गया है कि जिन लोगोंने स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र [लिये][2] उनके प्रमाणपत्र अधिनियमके अन्तर्गत वैध नहीं किये जायेंगे। यह पत्र जनरल स्मट्सने अपने हाथसे लिखा है, इसलिए इसमें भ्रमकी गुंजाइश नहीं हो सकती। फिर भी, शायद आपको और श्री हॉस्केनको —— दोनोंको —— सोमवारको निश्चित सूचना मिल सकेगी। यदि आपको सूचना मिल जाये तो क्या मैं आपसे कृपापूर्वक टेलीफोन करनेकी प्रार्थना कर सकता हूँ? मेरा नम्बर १६३५ है।

आपका सच्चा,

[संलग्न]

श्री ए० कार्टराइट
जोहानिसबर्ग

[संलग्न]

एशियाई पंजीयन अधिनियमके सम्बन्धमें प्रश्नोंका मसविदा

[जुलाई ११, १९०८]

१. समझौतेके बारेमें जेलसे लिखे गये पत्रको अलग पढ़नेसे मालूम होता है कि अधिनियम उन लोगोंपर लागू नहीं होगा, जिन्होंने अपना स्वेच्छया पंजीयन कराया है। तब उस परिपत्रका[3], जो श्री चैमने द्वारा इसी ७ तारीखको नगरपालिकाओंके नाम भेजा गया है और जो 'लीडर' में छपा है, क्या अर्थ है?

२. क्या इस अफवाहमें कोई सचाई है कि सरकार उन लोगोंका अधिवास-अधिकार स्वीकार करनेके लिए तैयार है, जिनके पास वैध ३ पौंडी पंजीयन प्रमाणपत्र हैं, फिर वे चाहे उपनिवेशके भीतर हों या बाहर हों और ऐसे शरणार्थी, जिनके पास प्रमाणपत्र तो नहीं हैं, किन्तु जो अपना युद्धसे पूर्वका यहाँका अधिवास सिद्ध कर सकते हैं।

१. देखिए संलग्न कागज।

२. अस्पष्ट।

३. देखिए पृष्ठ ३४६-४७।

३. इधर बराबर कहा जा रहा है कि सरकार उन लोगोंको सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार देनेको तैयार है जिनके स्वेच्छया पंजीयनके प्रार्थनापत्र श्री चैमनेने नामंजूर कर दिये हैं। क्या इस बातमें कोई सचाई है?

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८३५ और ४८३६) से।

२१५. पत्र: ए० कार्टराइटको[1]

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई १४, १९०८

प्रिय श्री कार्टराइट,

आज सुबह टेलीफोनपर मेरी आपसे जो बातचीत हुई उससे मैंने जो-कुछ समझा है, वह निम्नलिखित है। जनरल स्मट्स ३ पौंडी डच पंजीयन प्रमाणपत्रोंकी वैधता स्वीकार करनेके लिए राजी हैं, बशर्ते कि ऐसे प्रमाणपत्रोंके वास्तविक स्वामित्वको सिद्ध करनेके लिए कोई प्रमाण दिया जाये, और यथासम्भव यह प्रमाण यूरोपीय होना चाहिए। जनरल स्मट्स सोचते हैं कि शायद १५,००० पंजीयन प्रमाणपत्र होंगे। उनके प्रस्तुत कर दिये जानेसे ही उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस मामलेपर मैंने हमेशा यह कहा है कि स्वामित्वको सिद्ध करनेका भार प्रमाणपत्र पेश करनेवाले व्यक्तिपर होना चाहिए। यदि पंजीयक उससे सन्तुष्ट नहीं होता तो कानूनी अदालतमें जाकर ऐसा प्रमाण पेश करना पड़ेगा जिससे अदालत सन्तुष्ट हो सके। यही बात उन लोगोंपर भी लागू होगी जिनके पास पंजीयन-प्रमाणपत्र नहीं है, किन्तु जो वैध और प्रतिष्ठित शरणार्थी हैं। हर मामलेमें यूरोपीय प्रमाण देना असम्भव है। मुझे पूरा इत्मीनान है कि बाहर १५,०००[2] पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं हैं। यदि हों, तो भी इस तरहकी बाढ़को रोकनेके लिए जनरल स्मट्स नया विधान बनानेको स्वतन्त्र होंगे। जिनके पास प्रमाणपत्र नहीं हैं उन शरणार्थियोंको तथा जिनके पास प्रमाणपत्र हैं उन्हें मिलाकर भी मेरी समझमें बाहर एक हजारसे अधिक प्रवासी नहीं हो सकते। खीरका स्वाद तो खानेपर ही मिलेगा। मैंने सुझाव दिया है कि एक सीमित अवधि निर्धारित कर दी जाये जिसके अन्दर इस प्रकारके सब प्रार्थनापत्र दिये जायें, ताकि इस सम्बन्धमें तनिक भी कठिनाई न हो। ऐसे किन्हीं व्यक्तियोंसे सम्बन्धित अपीलका अधिकार मजिस्ट्रेटकी अदालत तक सीमित है . . .।[3] मेरी जनरल स्मट्ससे बातचीत हुई थी . . .[4] वैसा ही बरताव . . .[5] हिन्दू, मुसलमान, ईसाई . . .[6]।

अब मैं इस प्रश्नपर आता हूँ . . .।[7] मुद्दा जहाँतक मैं समझ सकता हूँ, सरकारके दृष्टिकोणसे सर्वथा महत्त्वहीन है; किन्तु भारतीयोंके दृष्टिकोणसे यह सर्वोपरि महत्त्वका

१. यह पत्र कई स्थानोंमें फटा-फटा और अस्पष्ट है।
२. मूलमें यह संख्या १५,०० है जो गलत जान पड़ती है।
३. यहाँ मूलमें एक शब्द अस्पष्ट है।
४. यहाँ एक पूरी पंक्ति अस्पष्ट है।
५. और ६. इन स्थानोंमें कुछ शब्द लुप्त हो गये हैं।
७. यहाँ आधी पंक्ति लुप्त है।

है। जनरल स्मट्स चाहे जो विधान पास करें, मेरा उससे कुछ लेना-देना नहीं है; किन्तु भारतीयोंको उस प्रकारके विधानसे सहमत होनेवाला पक्ष बनानेका मैं जरूर प्रबल विरोध करता हूँ। उन्हें उसका विरोध तथा इस सम्बन्धमें चाहे जिस तरहका आन्दोलन करनेका अधिकार अवश्य मिलना चाहिए। यदि वे उपर्युक्त बातें स्वीकार करनेको राजी हैं, जैसा कि सुबह मुझे अन्दाज हुआ, तो प्रवासी-प्रतिबन्धक संशोधन विधेयक, जिसे उन्होंने मुझे दिखाया, आवश्यक परिवर्तनके साथ पेश किया जा सकता है। यदि वे चाहें तो इसमें शिक्षित एशियाइयोंके प्रवासको रोकनेवाली उपधारा भी जोड़ दें। परिणाम यह होगा कि इस उपधाराके खिलाफ संसदको तथा साम्राज्य सरकारको आवेदनपत्र भेजे जायेंगे, और यदि मैं अपने देशवासियोंको अपने साथ ले जा सका तो निःसन्देह अनाक्रामक प्रतिरोध शुरू हो जायेगा। मैं उन्हें अपने साथ ले जा सकूँगा या नहीं, इस बारेमें मैं अभी इस स्थितिमें नहीं हूँ कि आपको निश्चित तौरपर बता सकूँ। मेरा प्रयत्न निःसन्देह यही होगा, और होना भी अवश्य चाहिए, कि मैं उन्हें वैसा करनेके लिए रजामन्द करूँ। मैंने आपको टेलीफोनपर बताया था कि कल रात श्री यूसुफ मियाँ इस प्रश्नपर कमजोर जान पड़े। उनका खयाल था कि यदि वे तीन बातें स्वीकार कर ली जायें तो हमें सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। मेरा उनसे मतभेद था। जब आपका सन्देश पहुँचा उस समय वे कार्यालयमें थे और मैंने इस मुद्देपर उनसे बातचीत की। उन्हें अब अपने विचारोंपर आश्चर्य होता है। और वे सोचते हैं कि यदि ट्रान्सवालके मुट्ठीभर भारतीयोंने शैक्षणिक अयोग्यताको अपनी स्वीकृति दे दी तो वे सारे भारतके अभिशापके भाजन बन जायेंगे। मैं फिर इसे दोहराता हूँ: मुख्य रूपसे स्वीकृति ही सब कुछ [है]; न कि वह स्वतन्त्र विधान जिसे कि जनरल स्मट्स पास कराना चाहें। उन्हें हमारे सामने केवल [आना] और कहना ही नहीं चाहिए ....[1] अधिनियमको जो कि मेरे सामने रखा गया था रद करते हुए वे यह भी देखेंगे कि इस धारापर मुझे आपत्ति है। किन्तु मुझे बिलकुल निश्चय है कि सर्वोच्च न्यायालयमें अपील तथ्योंसे सम्बन्धित मामलोंपर नहीं, बल्कि कानूनी प्रश्नोंपर होनी चाहिए।

किन्तु मैंने जिस अपीलके विषयमें माँग की है वह विचाराधीन प्रार्थनापत्रोंके बारेमें श्री चैमनेके निर्णयसे सम्बन्धित है। उसीके बारेमें तो जनरल स्मट्सने भेंटके समय इनकार किया था। अब मैं समझता हूँ कि वे यह अधिकार देनेके लिए तैयार हैं। मेरे विचारसे यह मामला स्वयंसिद्ध है।

जनरल स्मट्सने कहा कि मैंने प्रत्येक स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्रपर मुसलमानोंसे २-२ पौंड लिये हैं। मैंने इसे निन्दनीय असत्य कहा और फिर कहता हूँ। स्पष्ट है कि यह बात भारतीय समाजके किसी शत्रुने उड़ाई है। मैंने जो किया है वह इतना ही है कि स्वेच्छया पंजीयन प्रार्थनापत्रोंके सम्बन्धमें की गई कानूनी कार्रवाईके लिए — हिन्दू हो चाहे मुसलमान — सबसे दो गिनी मेहनताना लिया है। मैंने मुनीमको अपने जरिये दिये गये प्रार्थनापत्रोंकी संख्या बतानेके लिए कहा, और उनकी संख्या २३५ से अधिक नहीं है। इन प्रार्थनापत्रोंके सम्बन्धमें किये गये कार्यका मेहनताना २ गिनीसे अधिक बैठता है। मुझे प्रत्येक प्रार्थीके मामलेकी जाँच अलग-अलग करनी पड़ती थी, फार्म भरने पड़ते थे और फिर एक क्लर्क, सम्बन्धित व्यक्तिके साथ भेजना पड़ता था। बहुत-से मामलोंमें तो मुझे पंजीयन कार्यालयके साथ

१. यहाँ तीन पंक्तियाँ लुप्त हैं।

लम्बा पत्र-व्यवहार करना पड़ता था। यह कार्य सर्वथा मेरे क्षेत्रमें आता है; और मैंने किसी भी अन्य न्यायवादीकी तरह काम किया है। चूँकि मैं ब्रिटिश भारतीय संघके मन्त्रीका कार्यभार भी सम्हाले हुए था, इसलिए मैंने श्री चैमनेको सूचना दी कि यदि कोई भारतीय व्यक्तिगत रूपसे मेरे पास आते हैं और चाहते हैं कि मैं उनके दावोंको आपके पास पेश करूँ तो मैं उनसे २ गिनी मेहनताना लेता हूँ, और उनसे निवेदन किया कि वे यह सूचना जनरल स्मट्सको भी दे दें। आप देखेंगे कि यह उनके इस वक्तव्यसे . . .[1] कि मैंने प्रत्येक मुसलमानसे स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्रपर २ पौंड लिये हैं, बिलकुल भिन्न है . . .[2] प्रार्थनापत्र सम्बन्धी प्रश्न, अनाक्रामक प्रतिरोध एक तमाशा सिद्ध हो जाये, [मूलवत्] किन्तु मैं तो अपने बारेमें ही बोल सकता हूँ, और कह सकता हूँ कि यदि मैं उदार शिक्षा प्राप्त एक बैरिस्टर होते हुए यह कहूँ कि भारतीय होनेके कारण मेरे साथी बैरिस्टरोंको ट्रान्सवाल या अन्य उपनिवेशमें प्रवेश नहीं करना चाहिए तो मैं जरूर इस योग्य हो जाऊँगा कि जनरल स्मट्स तथा मेरे सारे यूरोपीय मित्र भी मेरी तीव्रतम भर्त्सना करें। जनरल स्मट्स शैक्षणिक परीक्षाको चाहे जितना कठिन रखें। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है मैं आज श्री सोराबजीको बाहर भेजने और उनसे उस जाँचको स्वीकार करानेका जिम्मा लेता हूँ, जिसके बाद पेशेवर लोगोंको प्रवेश की अनुमति मिल सकती हो। किन्तु जातीय परीक्षाको मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता। मेरे देशवासी ट्रान्सवालमें क्या करेंगे, इसका पता कल या आगे चलकर लग जायेगा। आज ४.३० बजे तक स्थिति ऐसी है। मैंने इस प्रश्नपर प्रमुखतम एशियाइयोंके साथ चर्चा करनेके सिवा और कुछ नहीं किया है। मैं इस आशाके साथ यह पत्र समाप्त कर रहा हूँ कि जनरल स्मट्स इस मामलेको अड़ंगा न बनाकर पर्याप्त राजनयिकताका परिचय देंगे। एकताके सूत्रमें गुँथा दक्षिण आफ्रिका एक सुन्दर स्वप्न है; किन्तु मेरे विचारमें भारतके बिना . . .[3] साम्राज्य हेय वस्तु है। यदि किसी भी मूल्यपर दक्षिण आफ्रिकासे भारतीयोंको निकाल बाहर करनेकी नीति जारी रही तो इसका परिणाम केवल दुःखद होगा।

मैं आपसे इस पत्रको ध्यानपूर्वक पढ़नेकी प्रार्थना करता हूँ। यदि मेरी कोई भी बात अस्पष्ट हो तो कृपया मुझसे उसे स्पष्ट करनेके लिए कहें। यदि आप मेरी उपस्थिति आवश्यक समझें तो मुझे तार दें। मुझे विश्वास है कि आप और श्री हॉस्केन इस कठिन प्रश्नका सन्तोषजनक हल निकाल सकते हैं।

यदि मैं अपने आशयको बिलकुल स्पष्ट [कर] सका होऊँ तो मुझे अपने इस लम्बे [पत्र]के लिए क्षमा याचना करनेकी आवश्यकता नहीं है।

आपका सच्चा,

श्री ए० कार्टराइट
प्रिटोरिया क्लब
प्रिटोरिया

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४८४२) से।

१. यहाँ एक शब्द लुप्त है।
२. यहाँ दो पंक्तियाँ लुप्त हैं।
३. यहाँ कुछ शब्द लुप्त हैं।

२१६. 'स्टार' को उत्तर[1]

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई १६, १९०८

सम्पादक
'स्टार'

महोदय,

आपने कल अपनी टिप्पणियोंमें यह वक्तव्य प्रकाशित किया है कि एशियाई समस्याका हल सम्भव है और आपने बहुत उचित रूपसे कहा है कि यह बात (अर्थात् शिक्षा सम्बन्धी बात) यहाँ लागू होनेवाले सर्वसाधारण सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे अनिवार्य नहीं मानी जायेगी, क्योंकि शिक्षित भारतीय अपने समाजके बाहर आवश्यक जीविकोपार्जन नहीं कर सकते। मैं आशा करता हूँ कि आपने जो समाचार प्रकाशित किया है वह सही है।

तथापि परिस्थितिको जिस प्रकार मैंने समझा है, वह यह है कि यद्यपि अब सरकार इस अधिनियमको रद करने और युद्धके पहले उपनिवेशके निवासी एशियाइयोंके अधिकारोंको मान्य करनेके लिए तैयार है, फिर भी वह ब्रिटिश भारतीयोंको यह माननेके लिए बाध्य कर रही है कि भारतीयोंका, वे चाहे जितने शिक्षित क्यों न हों, प्रवेश पूर्णतः निषिद्ध रहेगा। आज यह बात कानूनमें नहीं है, जैसा कि श्री सोराबजीके मामलेसे स्पष्ट हो गया है। इसलिए हमसे उपर्युक्त अयोग्यता स्वीकार करनेके लिए कहकर सरकार हमें सामाजिक आत्महत्या करनेको कहती है। यदि यहाँ रहनेवाली एशियाई जनताको पूरा संरक्षण देना है, और यदि उसे इज्जतके साथ देशमें रहने देना है, तो उपनिवेशमें रहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि उसे अपने शिक्षित भाइयोंसे मार्ग-दर्शन और सहायता प्राप्त करनेकी आवश्यकता पड़ेगी। शिक्षासे मेरा अर्थ अंग्रेजी या किसी अन्य यूरोपीय भाषाका सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेना नहीं है, बल्कि उससे मेरा तात्पर्य एक बहुत ऊँचे दर्जेकी संस्कृति है। क्या कोई ऐसी कल्पना करता है कि उपनिवेशके निवासी भारतीय, जिनमें बहुसंख्यक व्यापारी हैं, उन लोगोंके बिना जरा भी आरामके साथ रह सकते हैं जिनका मैंने ऊपर उल्लेख किया है? संसारमें ऐसा कोई ब्रिटिश उपनिवेश नहीं है, जहाँ एशियाई जनताका अधिवास हो और जहाँ युद्धसे पहले रहनेवाले भारतीयोंको साधारण न्याय देनेके पूर्व ऐसे कानूनको स्वीकार करनेकी शर्त लगाई जाती हो। यदि सरकार सोचती है कि वह अलगावकी कठोर नीतिको निभा ले जा सकती है तो वह ऐसा करे; किन्तु साथ-ही-साथ वह दूसरे अधिकारोंको मान्य करे। यदि शिक्षाके प्रश्नपर न्याय हमारे पक्षमें है और हममें पर्याप्त शक्ति है, तो जीत हमारी होगी।

किन्तु आज जो परिस्थिति है उससे मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैंने और दूसरे भारतीयोंने स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्रों और वार्षिक परवानोंसे अपनेको सुरक्षित कर लिया है

१. इसका मसविदा सम्भवतः गांधीजीने तैयार किया था। यह २५-७-१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में "श्री ईसप मियाँकी सफाई" शीर्षकसे प्रकाशित किया गया था।

और अपने उन देशवासियोंके मुकाबलेमें अपनी परिस्थिति अधिक अच्छी बना ली है जिन्हें उपनिवेशमें रहने और व्यापार करनेका उतना ही अधिकार है। और चूँकि जनरल स्मट्स द्वारा गम्भीरतापूर्वक दिये गये अपने वचनोंकी बराबर अवहेलना करनेसे उनकी स्थिति खतरेमें है, मुझे लगता है कि मैंने अपना वार्षिक परवाना और स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र सबसे पहले लेकर गलती की है। मैंने और उन दूसरे ब्रिटिश भारतीयोंने, जिन्होंने अबतक अनाक्रामक प्रतिरोधमें प्रमुख रूपसे भाग लिया है और जिन्होंने समझौता होनेके बाद यथाशक्ति सरकारकी मदद की है, प्रतिकार और प्रायश्चित्तके रूपमें यह तय किया है कि हम स्वयं फेरीवाले बनें और बिना परवाना फेरी लगायें। इसलिए यदि जोहानिसबर्गकी जनताको फलों और सब्जियोंकी टोकरियाँ लिए हुए अनजाने भारतीय चेहरे दिखाई दें, तो वे समझ लें कि ये वे लोग हैं जो अन्यायका प्रतिकार करनेके लिए, बिना परवानोंके फेरीवाले बन गये हैं। सोच-विचार कर यह कदम लेनेमें मेरे सहयोगियोंकी इच्छा जान-बूझकर देशका कानून तोड़नेकी नहीं है। जहाँ रहते हैं उस देशके कानूनोंका हम इतना अधिक आदर करते हैं कि हमने उन कतिपय नियमोंको तोड़ना तय किया है जिन्हें गलत रूपमें कानून कहा गया है, जबकि उन्हें अत्याचारके हथियार कहना अधिक उपयुक्त है। अत्याचारके सामने झुकना किसीका कर्तव्य नहीं है, इसलिए मेरा विश्वास है कि इस समय जो कदम उठाया गया है, वह हर तरह कानूनी और न्यायपूर्ण है।

आपका, आदि,
ईसप इस्माइल मियाँ
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
स्टार, १८–७–१९०८

२१७. संघर्ष क्या था और क्या है?

ट्रान्सवालके संघर्षसे भारतीयोंको बहुत कुछ सीखनेको मिलेगा। कानून तोड़ना ही इस संघर्षका उद्देश्य नहीं था, और न है। कानून टूटनेके आसार तो नजर आ रहे हैं परन्तु उसमें कुछ ऐसी बातें हैं, जिनको लेकर कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। फलतः यद्यपि जनरल स्मट्स उसे रद करनेकी बात कह रहे हैं, तथापि हम लोग उसे स्वीकार नहीं कर सकते।

अँगुलियोंके सम्बन्धमें तो संघर्ष कभी था ही नहीं।[1] अब, जबकि कानूनके अनुसार व्यापारिक परवानोंपर अँगूठेके निशान माँगे जा रहे हैं, भारतीय समाज उन्हें देनेसे इनकार कर रहा है। वह सरकारसे कहता है, "जोर-जुल्मसे हमसे कुछ नहीं कराया जा सकता।" समाज इस खूनी कानूनके अन्तर्गत परवाना सम्बन्धी प्रार्थनापत्रोंपर हस्ताक्षर देनेसे भी इनकार करता है।

तब खूनी कानूनको न माननेका मतलब क्या है? यही समझना है। यह कानून रद हो और उसके स्थानपर दूसरा खराब कानून बने तो यही माना जायगा कि कुछ भी हाथ

१. देखिए "समझौतेके बारेमें प्रश्नोत्तरी", पृष्ठ ७७-८१।

न लगा। तात्पर्य यह है कि खूनी कानून हमारे लिए बेड़ीके समान है। इस बेड़ीको टूटना ही है। वह बेड़ी-रूप इस कारण है कि उसके आगे झुकनेपर सरकार हमारा जो भी हाल करे वह हमें सहन करना होगा। लेकिन वह बर्दाश्त कैसे होगा? बेड़ीको काट देनेका अर्थ यह हुआ कि सरकार हमारे ऊपर अनुचित कानून लागू करनेसे बाज आये और हम लोगोंकी रायका ध्यान रखे। क्या ऐसा करनेके लिए वह वचन-बद्ध है? [प्रश्नका उत्तर] हाँ भी है और ना भी। वह वचन-बद्ध होती है, और है, [किन्तु] तभीतक जबतक हम सरकारके विरुद्ध सत्याग्रहकी तलवार लेकर लड़नेको तैयार हैं। यदि हम सत्याग्रहकी लड़ाईको भूल जाते हैं तो वह वचन-बद्ध नहीं है।

सरकार तीन पौंडी पंजीयनवाले व्यक्तियोंके अधिकार सुरक्षित रखनेको राजी है। सर्वोच्च न्यायालयमें अपील दायर करनेका हक भी देनेको कहती है।

लेकिन वह शिक्षित भारतीयोंको नहीं आने दे रही है — इसका क्या मतलब हुआ? बहुतेरे समझते हैं कि शिक्षित भारतीयोंका अर्थ है कारकुन। यह भूल है। कारकुन आयें या न आयें, यह अलग बात है। परन्तु वकील, डॉक्टर न आ सकें, यह सहन नहीं किया जा सकता। इसका भेद तो कानून रद करके भारतीयोंको खुश करना और उसके उपरान्त उन्हें मौतके घाट उतार देना है।

व्यापारी या किसानकी अपेक्षा वकील या डॉक्टरका महत्त्व अधिक नहीं हैं। लेकिन व्यापारीका काम व्यापार करना है। वकीलका काम मुकदमा लड़ना और लड़वाना है। संसारमें एक भी देश ऐसा नहीं है जिसमें कोई समाज वकीलों और डॉक्टरोंके बिना उन्नति कर सका हो। व्यापारी, जागीरदार और कृषक धड़ हैं; वकील इत्यादि समाजके हाथ हैं। धड़ मुखिया तो है, परन्तु हाथके बिना अपंग हो बैठता है। इसलिए शिक्षित भारतीयोंके बारेमें बहुत-कुछ विचार करना है। ऐसा कहा जा सकता है कि वर्तमान संघर्ष उन्हींके लिए है — और बात है भी ऐसी ही। यदि शिक्षित भारतीयोंको पृथक् रखा जाता है तो भारतीय समाज सरकारको यह आश्वासन कैसे दे सकता है कि हम संघर्ष बन्द कर देंगे? यदि समाज ऐसी भूल करेगा तो भारत समाजकी भर्त्सना करेगा। परन्तु यदि वह इस मामलेको लेकर लड़ेगा, तो भारत उसका स्वागत करेगा।

इसलिए इस संघर्षका उद्देश्य कानूनको समाप्त कर देना ही नहीं है; यह तो गोरों और कालोंके बीचका संघर्ष है। गोरे हम लोगोंपर सवारी गाँठनेकी ख्वाहिश रखते हैं। हमें दासतामें ही जकड़े रहना चाहते हैं। परन्तु हम उनकी बराबरीका दर्जा चाहते हैं।

संघर्षका यह रहस्य प्रत्येक भारतीय अपने मनमें अंकित कर रखे तब ही सत्याग्रह सार्थक हुआ कहा जायेगा। सत्याग्रह जैसी तलवार मुट्ठी-भर भारतीयोंके ट्रान्सवालमें निवास करने रूपी घास काटनेमें नहीं चलानी है, बल्कि गोरे लोगोंमें पैठे हुए भारी तिरस्कार रूपी पत्थरको काटनेमें इस्तेमाल करनी है। यह काम वीरताके बिना होनेवाला नहीं है। यदि ट्रान्सवालमें थोड़े भी बहादुर भारतीय निकल आयें तो इतना प्राप्त हो ही जायेगा, और उनकी जयका घोष सदा गूँजता रहेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–७–१९०८

२१८. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

ज्वार-भाटा

संघर्षके मामलेमें ज्वार-भाटा आता ही रहता है। अभी खबर आती है कि जल्दी ही समझौता होनेवाला है। फिर खबर आती है कि नहीं, कुछ नहीं होगा। इस प्रकार शुभ और अशुभ समाचार आते रहते हैं। पिछले हफ्ते शुक्रवारके दिन यह खबर मिली कि सरकार खूनी कानूनको निश्चय ही अमलमें लायेगी। इसपर श्री गांधीने निम्नलिखित पत्र[1] 'लीडर' को लिखा।

श्री चैमनेके नोटिसके अनुसार तो बात यह हुई कि पंजीयन प्रमाणपत्रवालोंको भी सरकार कानूनके अन्तर्गत खींचना चाहती है।

यदि ऐसा हुआ, तो जो समझौता हुआ है, उसकी प्रत्येक शर्त टूट जाती है। सारे लिखित और जबानी समझौतेपर पानी फिर जाता है। इसीसे श्री कार्टराइट और श्री हॉस्केन चौंके हैं और उन्होंने श्री स्मट्ससे भेंट की है। उस भेंटसे यह जान पड़ता है कि तीन पौंडी [डच पंजीयन प्रमाणपत्र]धारियों और दूसरे शरणार्थियोंका[2] हक तो रह सकेगा; अपीलकी अनुमति मिलेगी; किन्तु शिक्षित लोगोंका बचाव नहीं होगा। खबर मिली है कि स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्रधारियोंपर खूनी कानून लागू नहीं किया जायेगा। किन्तु इस खबरपर भरोसा न किया जाये। भरोसा केवल अपनी शक्तिपर रखा जाये। सोमवारके 'लीडर' में यह खबर है कि चूँकि कानून अमलमें लाया जायेगा, इसलिए जो बिना परवानेके व्यापार अथवा फेरी करेंगे उनके नाम प्रत्येक नगरपालिका उपनिवेश-सचिवके पास भेजेगी, ताकि उनके ऊपर मुकदमा चलाया जा सके।

इस खबरसे भारतीय घबरा गये और उन्होंने टिड्डियोंकी तरह नगरपालिकाके दफ्तरको घेर लिया। अनेक लोग परवाने लेने गये और उन्होंने अँगूठेके निशान माँगे जानेपर खुशीसे अँगूठेके निशान दे दिये। उन्हें परवाने मिल गये तो उसे बहुत बड़ी बात मानकर वे खुश हुए। कानूनके अन्तर्गत न आनेकी जो कसम खाई थी, वे उसे भूल गये, क्योंकि उन्होंने अँगूठेके निशान तो कानूनकी रूसे दिये थे। कुछ लोग दरवाजेके सामने खड़े होकर समझाते थे तो वे उनको उत्तर देते थे: "गांधीने १८ अँगुलियोंकी छापें दिलाईं, तो फिर हम अगर दो अँगूठोंकी छाप देते हैं तो इसमें बुराई क्या है?" अर्थात् वे तो सोलह अँगुलियाँ कम दे रहे हैं। उन्हें बहुत लोगोंने इस फर्कको समझाया, लेकिन समझता कौन है। इस प्रकार सत्याग्रह संघर्षके सम्बन्धमें अज्ञान और सत्याग्रह की विशेषता, दोनोंका प्रदर्शन किया गया। अज्ञान यह है कि जो १८ अँगुलियोंकी छापें दी गईं वे स्वेच्छापूर्वक दी गई थीं, फिर भी लोगोंने कानूनके अन्तर्गत दिये गये दो अँगूठोंके निशानोंसे उनका मिलान किया। विशेषता यह है कि सत्याग्रह

१. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। देखिए "पत्र: ट्रान्सवाल लीडरको", पृष्ठ ३४६-४७।

२. अभिप्राय केवल उन्हीं लोगोंसे होना चाहिए जो बोअर युद्धके दौरान उपनिवेश छोड़ कर चले गये थे, और उसके बाद वापस लौटनेके इच्छुक थे। यह इसलिए कि तीन पौंडी डच पंजीयन प्रमाणपत्र रखनेवाले सभी व्यक्ति शरणार्थी नहीं थे।

तो हमेशा चलता ही रहता है। कुछ लोग सत्याग्रह छोड़ दें, तो जिन्होंने नहीं छोड़ा है उन्हें कोई बाधा नहीं पहुँचती। भले ही बहुत-से भारतीय इस प्रकार अँगूठोंके निशान दे आये हैं, फिर भी बहुत-से मजबूत बने हुए हैं। वे समझते हैं कि अँगूठोंके निशान देना बुरी बात है। कानूनके अन्तर्गत जिस प्रकार सही नहीं करनी चाहिए, उसी प्रकार यह निशान भी नहीं देने चाहिए। इसलिए अनेक लोग नगरपालिका तक जाकर वापस आ गये हैं। उनमेंसे अनेक बिना परवानेके व्यापार कर रहे हैं और डरते नहीं हैं। वे जेलमें जानेके लिए तैयार होकर बैठे हैं। जो इस प्रकार इस समय जेलमें जानेके लिए तैयार होकर बैठे हैं, वे सच्चे सत्याग्रही कहे जायेंगे, क्योंकि वे दूसरोंके हितके लिए सत्याग्रह करते हैं। ये दूसरे कौन हैं? पहले तो तीन पौंडी पंजीयन प्रमाणपत्रधारी लोग, दूसरे शरणार्थी, तीसरे वे जिनकी अर्जी इस समय चैमने साहब लिये बैठे हैं और चौथे शिक्षित भारतीय।

शिक्षित भारतीय

वास्तवमें इस समय तो केवल शिक्षित भारतीयोंके लिए ही लड़ना बच गया है और यही वास्तविक संघर्ष है। श्री स्मट्सका इरादा है कि शिक्षित भारतीयोंके आनेका दरवाजा बन्द करके अन्तमें भारतीयोंको गुलाम बना दिया जाये। किन्तु यह कैसे सम्भव हो सकता है? शिक्षितोंका अधिकार समाप्त कर देनेके लिए भारतीय समाज क्योंकर राजी हो सकता है? सभी इस बातपर विचार करने लगे हैं और सभी स्वीकार करते हैं कि यदि उन अधिकारोंको छोड़ दें, तो भारतीयोंकी लाज चली जायेगी।

इस समयके संघर्षमें यदि हजारों भारतीय शामिल न हों, तो भी संघर्ष होगा ही। परिस्थिति ऐसी है कि यदि ५०० खरे, उत्साही और जानको हथेलीपर रखकर चलनेवाले भारतीय रणमें शामिल हो जायें तो भारतीयोंकी लाज रह जायेगी। बैरिस्टर श्री जिन्नाको बुलानेकी बात चल रही है। क्या भारतीय समाज यह स्वीकार कर सकता है कि वे न आयें? श्री दाऊद मुहम्मदके पुत्र विलायतमें शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। क्या जब वे पढ़कर लौटेंगे, तो ट्रान्सवालमें नहीं आ सकेंगे? यदि आयेंगे तो क्या श्री स्मट्सकी मेहरबानीसे आयेंगे? श्री जोजेफ रायप्पन थोड़े ही दिनोंमें आनेवाले हैं। उनकी पैदाइश दक्षिण आफ्रिकाकी है। वे भी नहीं आ सकेंगे। भारतीय समाज इन सबको छोड़ दे, यह कैसे हो सकता है? यह याद रखना चाहिए कि इस पाबन्दीको लगानेमें भारतीय समाजकी स्वीकृति माँगी जाती है। गोरे स्वयं मिलकर ऐसा कानून बनायें, तो बात अलग है। हमें उसके विरोधमें लड़ना पड़ा, तो लड़ेंगे। किन्तु कौन भारतीय यह कह सकता है कि आप खुशीसे यह कानून बनायें; हम उसे मंजूर करेंगे।

भारतीयोंके शत्रु

किन्तु ऐसी तकलीफें हमें क्यों होती हैं? उत्तर यह है कि कुछ भारतीय ही हमारे शत्रु बने बैठे हैं। वे जनरल स्मट्ससे कहते हैं कि भारतीय समाजमें दम नहीं रहा, सब लोग कानूनको कबूल कर लेंगे; परवाने जलानेकी बात तो धमकी है; सब परवाने लेंगे और अँगूठेके निशान देंगे; ऊधम मचानेवालोंमें श्री गांधी और थोड़े-से भारतीय हैं और बाकी लोगोंको कोई कष्ट नहीं है। वे लोग इस तरहकी बातें करते हैं और जनरल स्मट्सको ये अच्छी लगती हैं। वे इन्हें सत्य मान लेते हैं और इस कारण भारतीय कष्ट उठाते हैं।

यदि सारे भारतीय कानून स्वीकार करनेके लिए राजी ही हों, तो फिर उनपर कानून लागू करना उचित ही है।

किन्तु मेरी मान्यता है कि कानूनको स्वीकार करनेके लिए थोड़े ही भारतीय राजी हैं। बारबर्टन, क्रिस्टिआना, फोक्सरस्ट, वेरीनिगिंग, नाइलस्ट्रूम, हाइडेलबर्ग, जर्मिस्टन, इत्यादि अनेक स्थानोंसे पत्र आये हैं कि भारतीय दृढ़ हैं और ऊपरके अधिकारोंके लिए लड़ेंगे। इन स्थानोंपर बहुत-से भारतीयोंने परवाने नहीं लिये हैं, और न लेंगे। जबतक ऐसा उत्साह है, तबतक भारतीय हार नहीं सकते, फिर कोई जनरल स्मट्‌ससे चाहे जो कहे।

सोराबजी

श्री सोराबजीने खूब किया। वे चार्ल्सटाउनसे खासतौरसे जेल जानेके लिए ही आये हैं। यह अंक लोगोंके हाथमें पहुँचने तक सम्भव है कि वे जेलमें जा विराजें। सभी लोग यह समझ लें कि उन्हें जेलमें भेजकर भारतीय समाजको ऊपरकी बातोंमें से एक भी बात नहीं छोड़नी चाहिए।

सार्वजनिक सभा

रविवारको सार्वजनिक सभा होगी। इसमें अभी पंजीयनपत्र नहीं जलाने हैं। अनेक अफवाहें उड़ रही हैं, इसलिए समझदारीका रास्ता यही है कि जनरल स्मट्‌स जो कानून बनानेवाले हैं उसको वे प्रकाशित कर दें तभी हम पंजीयन प्रमाणपत्र जलायें और इस बीच तैयारी करते रहें। ऐसा भय माननेका कारण नहीं है कि हम प्रतीक्षा करेंगे, तो वे धोखा देंगे। धोखा इस तरह नहीं दिया जा सकता। सत्याग्रही धोखा खाता ही नहीं, क्योंकि वह दूसरेके सहारे नहीं लड़ता। कानून प्रकाशित कर दिया जाये तब प्रमाणपत्रोंकी होली की जा सकती है। कानून 'गजट' में प्रकाशित होगा, संसदमें उसपर चर्चा होगी और विलायतमें उसपर मंजूरी मिलेगी, तभी वह अमलमें आयेगा। इस बीच हम लोग अपनी तैयारी करते रह सकते हैं। किन्तु ऐसे प्रत्येक भारतीयको, जिसे पूरा उत्साह है, लाजिम है कि वह अपना पंजीयन प्रमाणपत्र ब्रिटिश भारतीय संघको तुरन्त भेज दे।

पैसेकी कमी

इस संघर्षमें बहुत पैसेकी जरूरत नहीं है। किन्तु फिर भी थोड़ा-बहुत तो चाहिए ही। अबतक संघकी पूँजी लगभग समाप्त हो चुकी है। इसलिए जितने तार विलायत और भारत भेजे जाने चाहिए, उतने नहीं भेजे जाते। इसलिए प्रत्येक समिति और प्रत्येक भारतीयसे जितना बने, उतना पैसा संघको भेजना चाहिए। बारबर्टनके भारतीयोंने उत्साहके तार और पत्र भेजे; इतना ही नहीं, बल्कि १० पौंडकी हुंडी भी भेजी है।

ईसप मियाँ फेरीवालोंमें

मंगलवारकी रातको श्री गांधीको अलग रखकर श्री ईसप मियाँने स्वयं एक सभा बुलाई। उसमें लगभग २०० भारतीय उपस्थित थे। सभामें बड़े जोशके साथ निश्चय किया गया कि शिक्षित भारतीय ट्रान्सवालमें न आयें, इसकी स्वीकृति भारतीय कभी नहीं दे सकते। संघर्षको पूरी तत्परताके साथ चलानेके लिए श्री ईसप मियाँने स्वयं स्वेच्छापूर्वक पंजीयन प्रमाणपत्र लिया है। उन्हें व्यापारका परवाना मिल चुका है। किन्तु फिर भी उसके संरक्षणका लाभ न लेकर श्री ईसप मियाँने फेरीका परवाना माँगा। अँगूठोंकी छाप न देनेके कारण उन्हें परवाना नहीं दिया गया और अब श्री ईसप मियाँ बिना परवानेके फेरी लगायेंगे और बड़े-बड़े गोरोंके घर फल

बेचने जायेंगे। वे छोटी-सी टोकरी रखेंगे। ऐसा करके वे देखना चाहते हैं कि सरकार उन्हें किस तरह गिरफ्तार करती है। आज अनेक भारतीयोंमें बहुत जोश भर गया है। हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके प्रमुख तथा अन्य भारतीय नेता भी ऐसा ही करेंगे। जो शिक्षित भारतीय हैं, उन्होंने भी यही विचार किया है। यदि ऐसा उत्साह रहा, तो संघर्षका अन्त करीब ही है। जिस समाजमें ऐसे जोशीले व्यक्ति हों, वह समाज कभी पीछे नहीं हट सकता। समाजमें नई शक्ति आ गई है और वह संघर्षकी विशेषताको समझने लगा है।

धरनेदार फिर तैयार

लोग नगरपालिकाके दफ्तरमें अँगूठोंकी छाप देकर परवाना लेने न जायें, यह समझानेके लिए नीचे लिखे भारतीयोंने धरना देना तय किया है:

सर्वश्री भाईजी इब्राहीम, अली इस्माइल, मूलजी जी० पटेल, अली उमर, रणछोड़ मीठा और बगस बापू, वगैरह।

अन्तिम समाचार

'स्टार' लिखता है कि शिक्षितोंके बारेमें भी सरकार समझौता करेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–७–१९०८

२१९. सर्वोदय [९]

सही क्या है?

पिछले तीन अध्यायोंमें हम देख आये हैं कि अर्थ-शास्त्रके जो साधारण नियम माने जाते हैं, वे ठीक नहीं हैं। उन नियमोंके अनुसार चलनेसे व्यक्ति और राष्ट्र दुःखी होते हैं; गरीब अधिक गरीब बनते हैं और धनवान लोगोंके पास अधिक धन इकट्ठा हो जाता है। और तब भी इन दोनोंमें से एक भी सुखी नहीं होता और न सुखी रहता है।

अर्थ-शास्त्री लोगोंके आचरणपर विचार नहीं करते। वे मानते हैं कि जितना अधिक धन इकट्ठा हो, उतनी ही अधिक खुशहाली होती है। इसलिए वे प्रजाके सुखका आधार धनको ही मानते हैं। इस कारण वे यह समझाते हैं कि उद्योग-धन्धों आदिके विस्तारसे जितना धन इकट्ठा हो जाये, उतना अच्छा है। ऐसे विचारोंके फैलनेसे इंग्लैंड तथा अन्य देशोंमें कारखानोंकी भरमार हो गई है। बहुत-से लोग शहरोंमें आ बसते हैं और खेत छोड़ देते हैं। बाहरकी सुन्दर और स्वच्छ हवा छोड़कर कारखानोंमें सारे दिन दूषित वायुमें साँस लेनेमें वे सुख मानते हैं। इसके परिणाम-स्वरूप प्रजा निर्बल होती जाती है, लोभ बढ़ता जाता है, अनीति अधिक फैलती है और (जब हम) अनीतिको दूर करनेकी बात करने बैठते हैं, तब बुद्धिमान गिने जानेवाले लोग कहने लगते हैं कि अनीति दूर नहीं हो सकती। अज्ञानियोंमें एकदम ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, इसलिए जैसा चल रहा है, चलने दो। ऐसी दलील पेश करते हुए वे यह भूल जाते हैं कि गरीबोंकी अनीतिका कारण अमीर लोग हैं। उनकी खातिर — उनके मौज-शौक पूरे करनेकी खातिर गरीब मजदूर रात-दिन गुलामी करते हैं। उन्हें कुछ सीखनेके

लिए अथवा अच्छा काम करनेके लिए एक पल भी नहीं मिलता। अमीरोंको देखकर वे भी अमीर बनना चाहते हैं। अमीर नहीं बन पाते, इस कारण वे कुढ़ते हैं — क्रोधित होते हैं। फिर अपना होश गँवा देते हैं और जब देखते हैं कि ठीक रास्तेसे धन नहीं मिल सकता तो अन्तमें धोखेबाजीसे धनोपार्जन करनेका व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार श्रम और धन दोनों निष्फल जाते हैं अथवा धोखेबाजीके प्रसारमें प्रयुक्त होते हैं।

वास्तवमें सच्चा परिश्रम वह है जिससे उपयोगी वस्तु पैदा हो। उपयोगी वस्तु वह है जिससे मनुष्य-जातिका भरण-पोषण हो। भरण-पोषण वह है जिससे मनुष्यको पूरा खाने और पहनने-ओढ़नेको मिले, ताकि वह नीतिके मार्गका अनुसरण करता हुआ जीवित रहे और जबतक जिये सत्कर्म करता रहे। इस दृष्टिसे देखें तो जो बड़े बड़े कारखाने शुरू किये जा रहे हैं, उन्हें निकम्मा माना जाना चाहिए। कारखाने खोलकर धनवान बननेका रास्ता अख्तियार करना पाप-कर्म जैसा हो सकता है। धन पैदा करनेवाले बहुत मिलते हैं, परन्तु ठीक तरहसे उसका उपयोग करनेवाले थोड़े ही हैं। पैसा पैदा करनेसे यदि प्रजाका नाश होता हो, तो ऐसा पैसा किसी कामका नहीं है। परन्तु आज जो करोड़पति लोग हैं वे बड़ी-बड़ी और अनीतिपूर्ण लड़ाइयोंका कारण बन गये हैं। इस जमानेकी बहुतेरी लड़ाइयोंका कारण धनका लोभ मालूम होता है।

लोग ऐसा कहते पाये गये हैं कि दूसरोंको सुधारनेके लिए ज्ञान देना सम्भव नहीं है। इसलिए जैसा ठीक लगे वैसे रहें और धन इकट्ठा करें। ऐसा कहनेवाले नीतिका पालन नहीं करते हैं। क्योंकि जो व्यक्ति नीतिका अनुसरण करता है और लोभमें नहीं फँसता, वह अपना मन स्थिर रखता है, स्वयं ठीक मार्गसे विचलित नहीं होता और अपने कर्मके द्वारा ही दूसरोंपर प्रभाव डालता है। जिनको लेकर प्रजा बनती है, वे खुद जबतक नीतिके नियमोंका पालन न करेंगे, तबतक प्रजा नीतिवान कैसे हो सकती है? हम खुद अपना चलन मनमाने ढंगका रखें और अपने पड़ोसीकी अनीतिके लिए उसके दोष निकालें — इससे भला अच्छा परिणाम कैसे निकल सकता है?

इस तरह सोचनेसे स्पष्ट हो जाता है कि पैसा तो साधनमात्र है और उसके द्वारा सुख और दुःख दोनों प्राप्त होते हैं। अगर वह अच्छे आदमीके हाथ पड़ जाता है, तो उससे खेत जोते जाते हैं और अनाज उपजाया जाता है। किसान लोग निर्दोष मजदूरी करके सन्तोष पाते हैं और प्रजा सुखी रहती है। खराब आदमियोंके हाथमें धन आनेपर उससे गोला-बारूद जैसी चीजें बनती हैं और मनुष्योंका सत्यानाश होता है। गोला-बारूद बनानेवाले, और वे जिनपर वह काममें लाया जाता है — दोनों ही दुःखी होते हैं। जिस प्रजामें नीति है, वह प्रजा दौलतमन्द है। इसलिए हम देख सकते हैं कि सच्चे मनुष्य ही सच्ची दौलत हैं। यह जमाना मौज उड़ानेका जमाना नहीं है। प्रत्येक मनुष्यको यथाशक्ति मेहनत-मजदूरी करनी है। पहले दी हुई मिसालोंमें हम देख चुके हैं कि जहाँ एक आदमी बीमार और इसलिए बेकार रहता है, वहाँ दूसरेको दुगना श्रम करना पड़ता है।[1] इंग्लैंडमें जो भुखमरी फैली हुई है, उसका कारण यही है। चन्द लोगोंके हाथोंमें धन जमा हो जानेसे वे उपयोगी काम नहीं करते। इस कारण उनके वास्ते दूसरोंको मजदूरी करनी पड़ती है। यह मजदूरी उपयोगी न होनेके कारण मजदूरी करनेवालोंको कोई लाभ नहीं होता। ऐसा होनेसे प्रजाकी पूंजी घटती

१. देखिए "सर्वोदय [६]", पृष्ठ २९४-९६ ।

है। इसलिए यद्यपि ऊपरसे ऐसा मालूम होता है कि लोगोंको काम मिल रहा है, भीतरसे देखनेपर ज्ञात होता है कि बहुतोंको बेकार बैठे रहना पड़ता है। इतना ही नहीं; ईर्ष्या पैदा होती है, असन्तोषकी जड़ें जमती हैं और अन्तमें धनी और गरीब, मालिक और मजदूर, दोनों अपनी मर्यादा छोड़ देते हैं। जिस तरह बिल्ली और चूहेमें सदा अनबन रहती है, उसी तरह धनी और गरीबमें, मालिक और मजदूरमें वैर-भाव पैदा हो जाता है और मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता, पशु बन जाता है।

सारांश

महान रस्किनकी पुस्तकका सारांश अब हम पूरा कर चुके हैं। यह लेखमाला बहुत-से पाठकोंको शुष्क जान पड़ेगी, तो भी जिन्होंने इसे पढ़ा है, उनसे हम इसे पुनः पढ़ जानेकी सिफारिश करते हैं। 'इंडियन ओपिनियन' के सब पाठक उसपर विचार करके उसके मुताबिक चलने लग जायें, ऐसी आशा रखना तो ज्यादा माना जायेगा। लेकिन यदि थोड़ेसे पाठक भी उसको अच्छी तरह पढ़ कर उसका सार निकालेंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल मानूँगा। कदाचित् ऐसा न हो तो भी, जैसा कि रस्किनने अन्तिम प्रकरणमें सूचित किया है, मैंने अपना फर्ज अदा कर दिया; और उसीमें उसके फलका समावेश हो गया है। अतएव मुझे तो सदा सन्तोष ही है।

रस्किनने अपने बन्धुओं — अंग्रेजों — के लिए जो लिखा है, वह अंग्रेजोंपर जितना लागू होता है, उसकी अपेक्षा भारतीयोंपर हजार गुना अधिक लागू होता है। भारतमें नये विचार फैल रहे हैं। आजकलके पश्चिमी शिक्षा पाये हुए जवानोंमें जोश उमड़ा है, यह तो ठीक है। परन्तु यदि जोशका अच्छा उपयोग किया जायेगा तो परिणाम अच्छा निकलेगा और गलत उपयोग किया गया, तो परिणाम बुरा आये बिना न रहेगा। एक ओरसे यह आवाज आ रही है कि स्वराज्य प्राप्त करना चाहिए। दूसरी ओरसे यह आवाज आ रही है कि विलायतकी तरह कारखाने खोलकर झटपट पैसा जमा करना चाहिए।

स्वराज्य क्या है — यह हम शायद ही समझते होंगे। नेटालमें स्वराज्य है, फिर भी हम कहा करते हैं कि यदि हम नेटालके जैसा ही करनेकी इच्छा रखते हैं तो वह स्वराज्य नरक-राज्यके समान होगा। वे वतनियोंको कुचलते हैं, भारतीयोंको मिटाते हैं और स्वार्थमें अन्धे होकर स्वार्थ-राज्यका उपयोग कर रहे हैं। अगर वतनी और भारतीय नेटालसे चले जायें तो वे आपसमें लड़कर समाप्त हो जायेंगे।

तो क्या हम ट्रान्सवालकी तरहका स्वराज्य लेंगे? जनरल स्मट्स उनके अगुओंमें से एक हैं — वह अपने लिखित अथवा जबानी दिये हुए वचनोंका पालन नहीं करते। कहते कुछ हैं और करते कुछ। अंग्रेज उनसे ऊब उठे हैं। उन्होंने पैसे बचानेके बहाने अंग्रेज सिपाहियोंकी जीविकापर प्रहार किया है और वे उनके स्थानपर डचोंको रख रहे हैं। हम नहीं मानते कि इससे अन्तमें डच भी सुखी हो सकेंगे। जो लोग स्वार्थपर दृष्टि रखते हैं, वे पराई प्रजाको लूटनेके पश्चात् अपनी प्रजाको लूटनेके लिए आसानीसे तैयार हो जायेंगे।

दुनियापर चारों ओर दृष्टि डालनेसे हम देख सकेंगे कि स्वराज्यके नामसे पहचाना जानेवाला राज्य प्रजाकी खुशहाली या उसके सुखके लिए पर्याप्त नहीं है। एक आसान उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायेगी। लुटेरोंकी टोलीमें स्वराज्य हो तो क्या नतीजा आयेगा, इसकी कल्पना सब कर सकते हैं। वे तो अन्तमें तभी सुखी हो सकते हैं जब उनपर ऐसे

लोगोंका नियन्त्रण हो जो खुद लुटेरे नहीं हैं। अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैंड, ये सब बड़े राज्य हैं। लेकिन वे सचमुच सुखी हैं, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है।

स्वराज्यका सच्चा अर्थ है, अपनेको काबूमें रखना जानना। ऐसा तो वही मनुष्य कर सकता है जो स्वयं नीतिका पालन करता है; किसीको ठगता नहीं है, सत्यको छोड़ता नहीं है, अपने माता-पिता, अपनी पत्नी, अपने बाल-बच्चों, नौकरों और पड़ोसियों — सभीके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करता है। ऐसा व्यक्ति, चाहे जिस देशमें हो, स्वराज्य भोगता है। जिस समाजमें ऐसे मनुष्योंकी बहुलता हो, उस समाजके लिए सहज ही स्वराज्य है।

एक प्रजा दूसरीपर राज्य करे, यह बात सामान्यतया गलत है। अंग्रेज लोग हमपर राज्य करते हैं यह एक अवाञ्छनीय स्थिति है। लेकिन अंग्रेज लोग हिन्दुस्तान छोड़ जायें तो भारतीयोंने कुछ कमाई कर ली, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है। वे राज्य कर रहे हैं इसका कारण हम स्वयं हैं। वह कारण है — हमारी आपसी फूट, हमारी अनीति और हमारा अज्ञान।[1]

अगर ये तीनों चीजें दूर हो जायें, तो सिर्फ इतना ही नहीं कि हमें एक पत्ता भी हिलाना न पड़ेगा और अंग्रेज हिन्दुस्तान छोड़ देंगे, बल्कि हम सच्चा स्वराज्य भोगने लगेंगे।

बमका गोला छोड़नेसे बहुत लोगोंको प्रसन्नता होती है — ऐसा देखनेमें आ रहा है।[2] यह निरे अज्ञान और नासमझीकी निशानी है। यदि सब अंग्रेजोंको मार डाला जा सके तो जो मारनेवाले हैं वे ही हिन्दुस्तानके स्वामी बन बैठेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दुस्तान तो विधवाका विधवा ही रह जायेगा। अंग्रेजोंको मारनेवाला बम अंग्रेजोंके चले जानेके पश्चात् हिन्दुस्तानपर ही पड़ेगा। फ्रांसके प्रजातन्त्रके प्रेसीडेंटको मारनेवाला फ्रांस देशका निवासी ही था। अमरीकाके प्रेसीडेंट क्लीवलैंडकी हत्या करनेवाला एक अमरीकी ही था।[3] इसलिए हमें यही उचित है कि हम जल्दीमें आकर बिना सोचे-विचारे पश्चिमकी प्रजाकी नकल अन्धोंकी तरह न करें।

जिस प्रकार पाप-कर्म द्वारा — अंग्रेजोंको मारकर — सच्चा स्वराज्य नहीं मिल सकता, उसी प्रकार भारतमें कारखाने खोल देनेसे भी स्वराज्य मिलनेका नहीं। सोना-चाँदी इकट्ठा होनेसे कुछ स्वराज्य नहीं मिल जायेगा। इस बातको रस्किनने बड़ी स्पष्टताके साथ सिद्ध किया है।

याद रखना चाहिए कि पश्चिमी सभ्यताको अभी सौ ही साल हुए हैं। सच पूछा जाये तो केवल पचास। इतने समयमें पश्चिमकी प्रजा वर्ण-संकर जैसी दीख पड़ रही है। हमारी [ईश्वरसे] प्रार्थना है कि जैसी दशा यूरोपकी है वैसी हिन्दुस्तानकी कभी न हो। यूरोपकी प्रजाएँ एक-दूसरेपर घात लगाये बैठी हैं। केवल अपने-अपने गोले-बारूदकी तैयारीके कारण ही सब चुप्पी साधे हुए हैं। किसी समय बड़ा ही जबर्दस्त धड़ाका होगा और उस अवसरपर यूरोपमें नरकका दृश्य दिखाई पड़ेगा। यूरोपका प्रत्येक राज्य काले आदमियोंको अपना भक्ष्य मान बैठा है। जहाँ केवल धनका लोभ है, वहाँ अन्य बात हो ही नहीं सकती। उन्हें एक भी मुल्क नजरमें आ जाये तो वे उसपर उसी प्रकार टूट पड़ते हैं जिस प्रकार कौए मांसके टुकड़ेपर कूद पड़ते हैं। यह उनके कारखानोंके कारण होता है, ऐसा माननेके कारण भी हैं।

१. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४७४-७५ भी।

२. गांधीजी यहाँ मुजफ्फरपुर बम-काण्डकी याद करते मालूम होते हैं। देखिए "भारतमें संघर्ष", पृष्ठ २१६।

३. प्रेसीडेंट क्लीवलैंडकी मृत्यु स्वाभाविक रूपसे हुई थी। गांधीजीके मनमें प्रेसीडेंट लिंकनका नाम रहा होगा। देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ५६।

अन्तमें हिन्दुस्तानको स्वराज्य मिले, ऐसी सब भारतीयोंकी पुकार है और वह सही है। परन्तु उसको नीतिके मार्गसे हासिल करना है। वह सच्चा स्वराज्य होना चाहिए। और वह विनाशक उपायोंसे या कारखाने खोलनेसे नहीं मिलेगा। उद्योग चाहिए परन्तु सही मार्गसे। हिन्दुस्तानकी भूमि किसी जमानेमें सुवर्णभूमि मानी जाती थी, क्योंकि भारतीय लोग सुवर्ण-रूप थे; भूमि तो वहीकी-वही है, लेकिन लोग बदल गये हैं। इसलिए वह भूमि वीरान-सी हो गई है। उसे पुनः सुवर्ण बनानेके लिए हमें स्वयं अपने सद्‌गुणोंसे सुवर्ण बनना होगा। उसका पारस-मणि दो अक्षरोंमें रहा है और वह है "सत्य"। इसलिए अगर हरएक भारतीय सत्यका ही आग्रह रखेगा, तो भारतको घर बैठे स्वराज्य मिलेगा।

यही रस्किनके लिखनेका सारांश है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–७–१९०८

२२०. पत्र : 'स्टार'को[1]

जोहानिसबर्ग,
जुलाई १८, १९०८

सम्पादक
'स्टार'

महोदय,

आपके मुखबिरका कहना है कि ट्रान्सवालके मुसलमान एशियाई संघर्षको फिरसे शुरू करनेके लिए, अपने अन्य देशभाइयोंकी तरह, जो व्यापारिक परवाने जारी किये जा चुके हैं उनको नष्ट करने या काममें न लानेकी सम्भावित सलाह नहीं मानेंगे। जान पड़ता है, यह विचार उसकी इच्छासे उत्पन्न हुआ है।

मुझे ट्रान्सवालके हमीदिया इस्लामिया अंजुमनका प्रतिनिधित्व करनेका गौरव प्राप्त है, और मैं ऐसे एक भी मुसलमानको नहीं जानता जो इस विषयमें भिन्न मत रखता हो। उन्हें भी भारत और अपने शिक्षित देशभाइयोंकी प्रतिष्ठा उतनी ही प्यारी है, जितनी कि अन्य भारतीयोंको। सच तो यह है कि मेरे सहधर्मियोंको एशियाई कानूनके प्रति दूसरे भारतीयोंकी अपेक्षा अधिक प्रबल आपत्ति है। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि उक्त कानून इस्लामपर प्रत्यक्ष रूपसे आघात करता है, और मुसलमानोंके खलीफा तुर्कीके महामहिम सुलतानका जान-बूझकर अपमान करता है — उन तुर्कीके सुलतानका, जो आध्यात्मिक बातोंमें उसी तरह इस्लामके प्रधान हैं, जैसे दुनियावी मामलोंमें महामहिम सम्राट् ब्रिटिश साम्राज्यके नागरिकोंके मुखिया हैं।

तीन मुसलमानोंने परवाना-अधिकारीको अँगूठेके निशान दिये, उसका इसके सिवा कोई मतलब नहीं है कि उन्हें नहीं मालूम था कि वे क्या कर रहे हैं। भारतीय समाजने स्वेच्छासे

१. अनुमानतः इसका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था। यह पत्र २५–७–१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में "मुसलमानोंकी स्थिति" शीर्षकसे प्रकाशित किया गया था।

अँगुलियोंके निशान देकर कितना बड़ा उपकार किया, उसे सरकार ठीक-ठीक समझ नहीं पाई है; और अब लोगोंको यह समझनेमें देर लगती है कि परवाना अधिकारीको अँगूठेके निशान देना और स्वेच्छया पंजीयनके अन्तर्गत अँगुलियोंके निशान देना एक ही बात नहीं है। परवाना अधिकारीके सामने उन्होंने जो कुछ किया वह उस कामका प्रतीक है जिसके विरुद्ध हमने शपथ ली है। और मैं तथा मेरे अन्य देशवासियोंने — चाहे वे हिन्दू हों, चाहे मुसलमान या ईसाई — फेरीके पेशेके आदी न होनेपर भी अगर इसे अपनानेमें सुख माना है तो उसका कारण यह है कि हम अपने प्रति सरकारके बेईमानीके बरतावके विरुद्ध कोई ठोस आपत्ति प्रकट करना चाहते हैं।

आपका, आदि,

इमाम अ० का० बावजीर

अध्यक्ष,

हमीदिया इस्लामिया अंजुमन

[अंग्रेजीसे]

स्टार, १८–७–१९०८

२२१. चैपलिनके नाम पत्रका अंश[1]

जुलाई २०, १९०८

. . . भारतीयोंने प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत किसी भी नई चीजकी माँग बिलकुल नहीं की है। शैक्षणिक योग्यतावाले भारतीय औपचारिक रूपसे नहीं, वरन् अधिकार पूर्वक प्रवेश कर सकते हैं। अब जनरल स्मट्स ही भारतीयोंसे उस कानूनमें रद्दोबदल करनेपर रजामन्द होनेकी माँग करते हैं, जिससे ऐसे भारतीयोंको निषिद्ध बना दिया जाये . . .।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस, ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ३७२२/०८।

१. यह पत्रांश, ट्रान्सवालमें होनेवाली घटनाओंके उस संक्षिप्त विवरणसे लिया गया है जो श्री रिचने अपने ६ अक्टूबर १९०८ के पत्रके साथ उपनिवेश कार्यालयको भेजा था।

२२२. सोराबजी शापुरजीका मुकदमा — ३

[जोहानिसबर्ग,
जुलाई २०, १९०८]

गत सोमवार २० जुलाईको 'बी' अदालतमें श्री एच० एच० जॉर्डनके समक्ष श्री सोराबजी शापुरजी पेश हुए। न्यायाधीशने उन्हें शान्ति-रक्षा अध्यादेशकी धारा ७ के अन्तर्गत १० जुलाईसे सात दिनके अन्दर उपनिवेश छोड़कर चले जानेका हुक्म दिया था। इसे उन्होंने नहीं माना। यही उनपर अभियोग था। श्री क्रैमर अभियोग पक्षके और श्री गांधी बचाव पक्षके वकील थे। अभियुक्तने अपनेको निर्दोष बताया।

सुपरिंटेंडेंट जे० जी० वरनॉनने कहा कि उन्होंने अभियुक्तको इसी २० तारीखको ७ बजे प्रातः मलायी बस्तीमें गिरफ्तार किया। उन्होंने १० जुलाईको अदालत द्वारा सात दिनके भीतर उपनिवेशसे चले जानेकी चेतावनी दी जानेके बाद पंजीयन प्रमाणपत्र या उपनिवेशमें रहनेका अधिकारपत्र प्रस्तुत नहीं किया। अभियुक्तने उत्तर दिया कि वे जाना नहीं चाहते। गवाहने 'गज़ट' की कुछ प्रतियाँ दीं, जिनमें एशियाई कानून संशोधन विधेयक, उसके अन्तर्गत बनाये गये विनियम और उसको लागू करनेकी सूचना दी गई थी।

जिरहमें [श्री वरनॉनने कहा :] श्री गांधीने पुलिसके डिप्टी कमिश्नरको एक पत्र भेजा है। उसमें कहा गया है कि अभियुक्त जिस समय आवश्यक हो, उस समय अदालतमें हाजिर होनेके लिए तैयार है। तब वह क्यों गिरफ्तार किया गया, यह पूछनेपर उन्होंने कहा कि वे अपने वरिष्ठ अधिकारियोंके अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्तिका आदेश नहीं मानते। उन्हें अभियुक्तको गिरफ्तार करनेकी आज्ञा दी गई थी और उन्होंने उस दिन प्रातः ७ बजे उसे गिरफ्तार करनेमें अपने सदसद्विवेकका उपयोग किया है, क्योंकि वह समय उनके लिए अत्यन्त सुविधाजनक था। तबसे अभियुक्तको पुलिसकी हिरासतमें रखा गया है। यहाँ अभियोग पक्षकी कार्रवाई समाप्त हो गई।

अभियुक्तने अपनी ओरसे गवाही देते हुए कहा कि उपनिवेशसे जानेकी सूचना मिलनेके बाद वह उपनिवेशमें रहा और उसने सुपरिंटेंडेंट वरनॉनसे कहा कि वह जाना नहीं चाहता। अब उपनिवेशसे जानेकी उसकी इच्छा नहीं है और वह अदालतकी आज्ञा न माननेकी सजा भुगतनेके लिए आया है। वह ब्रिटिश प्रजाजन है और जबतक ब्रिटिश साम्राज्यके प्रजाजनके नाते वह अपनी पूरी जिम्मेदारी वहन कर रहा है तबतक उसे ट्रान्सवालमें रहनेका हर तरहसे अधिकार है।

जिरहमें [उसने कहा कि] उसने अदालतकी आज्ञा नहीं मानी है और वह निरन्तर उसका उल्लंघन करना चाहता है।

इसके साथ बचाव पक्षकी कार्रवाई समाप्त हो गई।

अदालतको सम्बोधित करते हुए श्री गांधीने कहा, मैं न्यायाधीश महोदयका ध्यान इस बातकी तरफ दिलाना चाहता हूँ कि ट्रान्सवालका यह संघर्ष ब्रिटिश भारतीयोंके लिए बहुत भीषण साबित होनेवाला है। और इस अभियोगके सम्बन्धमें बहुत-से भारतीय, जो अदालतके अन्दर आनेके लिए बाहर इन्तजार कर रहे हैं, बुरी तरह इधर-उधर ढकेले गये हैं और उनपर हमला भी किया गया है।[1]

न्यायाधीश: मैं इस बारेमें कुछ नहीं जानता और न मैं एकपक्षीय बातको स्वीकार-कर सकता हूँ। इस समय अदालतमें इतनी भीड़ है कि काम करनेमें कठिनाई हो रही है।

श्री गांधी: यह सही है, परन्तु बाहर बहुत अधिक लोग हैं।

न्यायाधीश: अदालतके कमरेमें तो कुछ ही लोग आ सकते हैं।

श्री गांधी: यह प्रश्न ठीक व्यवस्था करनेका है। अदालतकी इमारत आपके अधिकार-क्षेत्रमें है। और मैं समझता हूँ कि मुझे इस बारेमें अपनी बात कहने दी जायेगी।

न्यायाधीश: मैं तो यही कह सकता हूँ कि अदालतका कमरा बहुत अधिक भर गया है।

इसके बाद श्री गांधीने मामलेको लिया। उन्होंने कहा: यह मामला बहुत सीधा है। (न्यायाधीश: "बहुत सीधा।") मैं न्यायाधीशका ध्यान इस बातकी तरफ दिलाना चाहता हूँ कि मेरे मुवक्किल सही या गलत तौरपर मानते हैं कि उनके लिए उपनिवेशमें रहना एक सिद्धान्तका सवाल है। उनका दावा है कि उन्हें प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकके अन्तर्गत उपनिवेशमें रहनेका अधिकार है। वे उपनिवेशसे नहीं गये हैं और उन्होंने अदालतमें कहा है कि वे सम्भवतः उस निर्देशको नहीं मान सकते जो एशियाई संशोधन विधेयकके अन्तर्गत निकाला गया है। अभियुक्त सिद्धान्तके लिए कष्ट सहना चाहते हैं। अदालतकी आज्ञा और अपनी सदसद्-विवेक बुद्धि, इन दोनोंके बीच उन्होंने सदसद्विवेक बुद्धिका अनुसरण करना पसन्द किया है।

न्यायाधीश: एक महीनेकी कड़ी कैद।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–७–१९०८

१. **इंडियन ओपिनियन** (२५–७–१९०८) में छपे एक विशेष समाचारके अनुसार, जो भारतीय अदालतके अन्दर जाना चाहते थे, उनके साथ पुलिसने "किसी उत्तेजनाके बिना" पशुवत् व्यवहार किया था। श्री जी० के० देसाईको एक सिपाहीने, जिसका नाम वे लिख रहे थे, मुँहपर जोरसे घूँसा मारा था। पुलिस कमिश्नरको पुलिसके इस हमलेके सम्बन्धमें जिन लोगोंने हलफिया बयान दिये उनमें सर्वोच्च न्यायालयके न्यायवादी श्री एच० एस० एल० पोलक भी थे।

२२३. भाषण : जोहानिसबर्गमें

[जुलाई २०, १९०८]

. . . अदालतकी कार्यवाही[1] समाप्त होनेपर श्री गांधीने अपने कार्यालयके बाहर एकत्र भीड़के सामने भाषण किया।

उन्होंने कहा कि श्री सोराबजी एक सिद्धान्तके लिए जेल गये हैं, न कि एशियाई प्रवासियोंके अनियन्त्रित प्रवेशके लिए ट्रान्सवालके दरवाजे खोल देनेके ध्येयसे। वे प्रवासी कानूनके अन्तर्गत उस कानूनकी शैक्षणिक योग्यताकी परीक्षा पास करनेके लिए आये थे जिसमें जाति, वर्ग या रंगका भेदभाव नहीं है। उन्होंने सात वर्ष तक अंग्रेजी भाषाका अध्ययन किया था, किन्तु अब उन्होंने देखा कि यद्यपि प्रवासी कानून सबपर समान रूपसे लागू होता था, और यद्यपि वे एक ब्रिटिश उपनिवेशकी ब्रिटिश प्रजा थे, तथापि उनका अंग्रेजी भाषाका सारा ज्ञान व्यर्थ था।

श्री गांधीने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा कि [हमारा] अगला कदम यह है कि जिन लोगोंके पास परवाने हैं वे उन्हें लौटा दें और इसके परिणामस्वरूप बिना परवानेके व्यापार करनेके अपराधमें गिरफ्तार होना और जेल जाना स्वीकार करें। वे अपने प्रमाण-पत्र भी लौटा दें। हम वर्तमान सुविधाओंका लाभ न उठा कर पूरे [भारतीय] समाजके रूपमें कष्ट झेलनेको तैयार हैं, यह सिद्ध करनेपर ही यूरोपीय समाजको विश्वास दिला सकेंगे कि हम सिद्धान्तके लिए लड़ रहे हैं। उन्होंने यह बात दोहरा कर कही कि उपनिवेश-सचिवने वचन दिया था कि यदि एशियाई लोग स्वेच्छया पंजीयन करा लेंगे तो एशियाई अधिनियम बिना शर्त रद कर दिया जायेगा। किन्तु यह वचन पूरा नहीं किया गया।

भारतीयोंके विसर्जित होनेसे पहले कुछ लोगोंने अपने व्यापारिक परवाने, और अनेक व्यक्तियोंने अपने पंजीयन प्रमाणपत्र निकाल कर दे दिये; और ऐसी आशा है कि इस उदाहरणका बड़ी संख्यामें अनुसरण किया जायेगा। हमें ज्ञात हुआ है कि तीसरे पहर पुलिस-अदालतके प्रवेश द्वारके सामनेसे पुलिसने भारतीयोंको जिस ढंगसे हटाया था उससे, और श्री सोराबजीको जो सजा दी गई उससे, भारतीयोंमें बहुत रोष है। उनका कहना है कि राजनीतिक अपराधके लिए सख्त कैदकी सजा नहीं दी जानी चाहिए थी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–७–१९०८

१. तीसरे पहर हुए सोराबजी शापुरजीके मुकदमेके सम्बन्धमें।

२२४. तार: दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिको

जोहानिसबर्ग,
जुलाई २०, १९०८

[आफ्रिकालिया
लन्दन]

उपनिवेश छोड़नेकी आज्ञाके उल्लंघनपर सोराबजी शापुरजीको एक माह सख्त सजा। शैक्षणिक योग्यतासे सम्पन्न होनेके कारण प्रवासी अधिनियमके अनुसार आये थे। अभियोग एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन न करानेका। स्वेच्छया पंजीयनके लिए राजी थे। समाजके मतसे कार्यवाही कठोर, प्रतिक्रियावादी। फेरी-वाले बिना परवाना व्यापार करते गिरफ्तार। परवाने मिले नहीं क्योंकि एशियाई अधिनियम स्वीकार नहीं किया। विरोध-प्रदर्शनार्थ संघके अध्यक्ष अन्य प्रमुख भारतीय बिना परवाना फेरी लगा रहे हैं। समाज द्वारा केवल युद्ध-पूर्वके शरणार्थियोंका संरक्षण और उच्चतम शैक्षणिक योग्यताओंको मान्यता देनेकी माँग। सरकार कहती है कानूनके रद किये जानेके बदले हमें ये माँगें छोड़नी चाहिए। भारतीय शिकायतें दूर न होने तक हानि सहनेको कृत-संकल्प।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स: २९१/१३२।

२२५. पत्र: ए० कार्टराइटको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई २०, १९०८

प्रिय श्री कार्टराइट,

यह पत्र सिर्फ आपको यह जतानेके लिए लिखा जा रहा है कि अब मुकदमे शुरू हो गये हैं। श्री सोराबजीको वस्तुतः एशियाई अधिनियम स्वीकार न करनेके कारण १ मासके कठोर कारावासका दण्ड दिया गया है। बिना परवानेके फेरी लगानेके अपराधमें बहुतसे फेरीवाले गिरफ्तार कर लिये गये हैं। जहाँतक मुझे मालूम है, वे जेल जाना ही पसन्द करेंगे।

मुझे आशा है कि मैं पत्र लिखकर आपको जो कष्ट दिया करता हूँ उससे आप नाराज नहीं होंगे।

आपका हृदयसे,

श्री अल्बर्ट कार्टराइट
प्रिटोरिया क्लब,
प्रिटोरिया

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८४६)से।

२२६. इब्राहीम इस्माइल और सुलेमान बगसका मुकदमा[1]

[जोहानिसबर्ग,
जुलाई २०, १९०८]

पिछले सोमवारको इब्राहीम इस्माइल और सुलेमान बगसको बगैर परवानेके फेरी लगानेके अपराधमें जोहानिसबर्गकी 'डी' अदालतमें श्री पी० सी० डालमाहॉयके समक्ष पेश किया गया। श्री शॉ सरकारकी तरफसे और श्री गांधी अभियुक्तोंकी तरफसे पैरवी कर रहे थे।

पहला अभियुक्त हाजिर नहीं था; इसलिए उसकी जमानत रद कर दी गई, यद्यपि श्री गांधीने अदालतसे तारीख बढ़ानेके लिए विनती की थी ताकि अभियुक्त दूसरे दिन हाजिर हो सके।

सुलेमान बगसने कहा कि वह निरपराध है। पुलिसने इस आशयका सबूत पेश किया कि गत १८ जुलाईको दिनमें तीन बजे अभियुक्त विलेज मेन रीफवाली जगहपर बेचनेके लिए फल लेकर बैठा था। उसके आसपास बहुतसे वतनी थे। अभियुक्त टोकरीमें से फल बेच रहा था। गवाहने अभियुक्तको केले और सन्तरे बेचते देखा। वह अभियुक्तको २५ मिनट तक देखता रहा। उसने अभियुक्तसे अपना परवाना दिखानेके लिए कहा। अभियुक्तने परवाना निकाल कर दिखाया; परन्तु उसकी मीयाद ३० जूनको समाप्त हो चुकी थी। उसके पास चालू तिमाहीका कोई परवाना नहीं था। अभियुक्त नगरपालिकाकी सीमामें फेरी लगा रहा था।

जिरहमें गवाहने कहा कि उसे ऐसे तमाम लोगोंको गिरफ्तार करनेकी आज्ञा दी गई है। वह यह नहीं जानता कि अभियुक्तने परवानेके लिए दरखास्त दी है या नहीं।

सरकारकी तरफसे कार्रवाई यहीं समाप्त हो गई।

अभियुक्तने अपनी तरफका सबूत पेश करते हुए बताया कि उसने अपने परवानेको नया करनेके लिए दरखास्त दे रखी है; परन्तु उससे पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत अँगूठेकी छाप माँगी गई थी। और चूँकि उसने छाप देनेसे इनकार कर दिया, इसलिए उसे परवाना नहीं मिल सका है।

इसके बाद श्री गांधीने कहा कि मैं सबूत देना चाहता हूँ। यह राजनीतिक बात नहीं, बल्कि अदालतमें पेश मामलेसे पूर्णतया सम्बन्ध रखती है। मेरे मुवक्किलको परवाना इसलिए नहीं दिया गया है कि नगरपालिकाको परवानोंके लिए दरखास्त देनेवाले एशियाइयोंसे एशियाई कानून संशोधन विधेयकके अनुसार सारी विधियोंकी पूर्ति करानेके निर्देश दिये गये हैं। गत जनवरीमें सरकार और एशियाई जातियोंके बीच यह समझौता हुआ था कि जो लोग स्वेच्छया अपना पंजीयन करा लेंगे उनपर यह एशियाई कानून लागू नहीं होगा। मेरे मुवक्किलने स्वेच्छापूर्वक अपना नाम दर्ज करा लिया है। और चूँकि अब ब्रिटिश भारतीय संघके प्रस्तावके अनुसार उसे एशियाई कानूनको स्वीकार करनेके लिए कहा गया है, इसलिए

१. यह *इंडियन ओपिनियन*में "फेरीवाले गिरफ्तार : वे जेल गये" शीर्षकसे छपा था।

दूसरे भारतीयोंके साथ-साथ उसने भी परवानेका शुल्क तो दे दिया है, परन्तु कानूनकी विधियोंकी पूर्ति करनेसे इनकार कर दिया है।

न्यायाधीशने सरकारी वकीलसे पूछा कि क्या इन मामलोंके बारेमें उन्हें कोई हिदायतें मिली हैं? श्री शॉने कहा, नहीं; किन्तु उन्होंने बताया कि कुछ महीने पहले जरूर कुछ सूचनाएँ मिली थीं।

न्यायाधीशने हुक्म दिया कि मामला बुधवार तक मुल्तवी किया जाये और तबतक पूछताछ कर ली जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–७–१९०८

२२७. भाषण : सार्वजनिक सभामें

[जोहानिसबर्ग
जुलाई २०, १९०८]

श्री कार्टराइटसे समाचार मिला है, कि यदि हम शिक्षित [एशियाइयों] के अधिकारोंकी बात न उठायें, तो सरकार समझौता करेगी। परन्तु पिछली सभामें आप सबने यह प्रस्ताव पास किया था कि शिक्षितोंके लिए तो संघर्ष करना ही है; और आपका यह कदम प्रशंसनीय है; हमसे शिक्षितोंके अधिकार तो मारे ही नहीं जा सकते। समाचारपत्रोंमें सरकारने यह सूचना प्रकाशित कराई थी कि [एशियाई पंजीयन] कानून हमेशा बना ही रहेगा, और परवाने न लेनेवालोंको कानूनके अनुसार दण्ड भी दिया जायेगा। हम लोग फिलहाल परवाने हासिल कर लें —— ऐसा होनेवाला नहीं है। इसका कारण यह है कि सरकार कानूनके अनुसार अँगूठेकी छाप माँग रही है। यदि कानूनके बाहर यानी स्वेच्छया देनेकी बात होती, तो मैं स्वयं यह सलाह देता। परन्तु कानूनके अन्तर्गत तो मैं किसीको हस्ताक्षर तक करनेकी सलाह नहीं दे सकता। बहुत-से लोग कहते हैं कि मैंने हिन्दुओं और मुसलमानोंसे फी आदमी दो-दो गिन्नियाँ बतौर फीसके ली हैं। अब सभामें आये हुए सज्जन ही मुझे बतायें कि मैंने कितने लोगोंसे दो-दो गिन्नियाँ ली हैं। सरकार मुझपर यह तोहमत लगाती है कि मैं ही लोगोंको बिना कारण उकसाता हूँ। सरकार भले ही ऐसा कहे, परन्तु मैं तो अपने भाइयोंके सामने वही चीज रखूँगा जो सत्य होगी और इसी प्रकार मैं अपना फर्ज अदा करता हूँ। और मेरे ऐसा करते हुए सरकार भले मुझपर जो चाहे सो तोहमत लगाये। सरकार द्वारा प्रकाशित सूचनाओंसे घबरा जानेवाले बहुत-से सज्जनोंने परवाना ले लिया है। उनसे मैं यह कहना उचित समझता हूँ कि वे अपने परवाने काममें न लाकर अपनेको गिरफ्तार करा लें, और इस प्रकार जनवरी महीनेकी तरह ही फिर जेलोंको भर दें; यदि ऐसा होगा तो सरकारका गर्व भी मिट जायेगा। कुछ लोगोंने अध्यक्षको[1] फेरी लगानेके सम्बन्धमें सलाह दी है कि वे ऐसा न करें। परन्तु उनकी यह सलाह अनुचित है। जो लोग अपने स्वार्थकी

१. ईसप मियाँ।

खातिर नहीं, बल्कि दूसरोंके लिए फेरीवालोंका वेश धारण करते हैं, उन्हें शरमानेके बजाय गर्व करना चाहिए। हमें ऐसे अध्यक्ष प्राप्त हुए हैं इसे मैं अपना गौरव मानता हूँ। उसी प्रकार आप सब भी मानते होंगे। हमें तो अब जेल ही जाना है। समस्त समाजके नेताओंको उचित है कि वे परवाने और पंजीयन प्रमाणपत्र इकट्ठा करनेके लिए निकल पड़ें। पंजीयन-पत्रोंका जलाया जाना फिलहाल स्थगित रखना चाहिए, परन्तु उनका इकट्ठा किया जाना मुल्तवी नहीं करना है। शिक्षितोंके विषयमें हमें पुनः कहना चाहिए कि इस मामलेमें हमें लड़ना ही है। अगर हम बैरिस्टर श्री जिन्ना, न्यायमूर्ति अमीर अली, अथवा प्रिंस रणजीत-सिंह जैसे व्यक्तियों तथा ऐसे ही सुशिक्षित अन्य लोगोंके लिए न लड़े, तो हम लोगोंको श्री चैमनेकी ही मेहरबानीका मोहताज रहना होगा। अब इस विषयको मैं आपके ही विवेकपर छोड़ता हूँ। इस संघर्षमें साहसका ही काम है। और साहस ही विजयका चिह्न है। इसलिए अब तो हरएकको साहसपूर्वक ही मैदानमें आना है। और ऐसा करते हुए अपनी बहादुरी दिखा देनी है। अगर हम लोग बहादुरी दिखायेंगे, तो जो माँगा गया है वह अवश्य प्राप्त होगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-७-१९०८

२२८. इस्माइल आकूजी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा

[जोहानिसबर्ग
जुलाई २१, १९०८]

इस माहकी तारीख २१, मंगलवारको उसी अदालतमें [श्री पी० सी० डालमाहॉयके सामने 'डी' अदालतमें] इस्माइल आकूजीपर परवानेके बिना व्यापार करनेका आरोप लगाया गया। उन्होंने अपनेको निर्दोष बताया। उनकी ओरसे श्री गांधीने पैरवी की।

जे० बी० बैरेटने बताया कि मैं जोहानिसबर्ग नगरपालिकाके अधीन परवाना-निरीक्षक हूँ। कल नगरपालिकाके क्षेत्रके अन्दर, मार्केट स्क्वेयरमें, मैंने अभियुक्तको बिक्रीके लिए फल निकालते देखा था। मैंने अभियुक्तसे उसका परवाना माँगा था, पर उसने जवाब दिया कि उसके पास परवाना नहीं है।

जिरहके जवाबमें उन्होंने कहा कि मुझे सरकारी निर्देशोंकी कोई जानकारी नहीं है।

टी० एच० जेफर्सनने बताया कि मैं जोहानिसबर्ग नगरपालिकाका मुख्य परवाना-निरीक्षक हूँ। उन्होंने 'गवर्नमेंट गजट' पेश किया, जिसमें एशियाई अधिनियम संशोधन कानून, उसके अन्तर्गत बनाये गये विनियम तथा तदनुसार निकले वे नोटिस प्रकाशित हुए थे, जिनके अनुसार उन्हें मुकदमा चलानेका अधिकार प्रदान किया गया था। उन्होंने कहा कि मैंने एशियाई पंजी-यक द्वारा टाउन क्लार्कको इसी माहकी ७ तारीखको लिखा गया एक पत्र देखा था, जिसमें कहा गया था कि एशियाई अधिनियम संशोधन कानून विधि-पुस्तिकामें बरकरार रहेगा और इस कानूनके अधीन उन एशियाइयोंको छोड़कर, जिनके पास पंजीयन प्रमाणपत्र हैं और जो

अँगूठेके निशान देते हैं, किसी अन्यको परवाना न तो दिया जायेगा और न नया किया जायेगा।

जिरह करनेपर उन्होंने कहा, मुझे याद है कि गत जनवरीमें अनेक मुकदमे चलाये गये थे और उस समय एशियाइयोंको सजा दी गई थी।

फरवरीमें सरकारने मुझे निर्देश दिया था कि मैं उन सब एशियाइयोंको परवाना दे दूँ जो एशियाई पंजीयक द्वारा लिखा गया इस आशयका पत्र मुझे दिखा दें कि उन्हें स्वेच्छया पंजीयनके लिए उनका प्रार्थनापत्र प्राप्त हो गया है। ऐसे एशियाइयोंसे अँगूठेके निशान देनेके लिए कतई नहीं कहा जाता था। अतः मैं ३१ मार्चको समाप्त होनेवाली तिमाही अवधिके लिए परवाने दे सकता था। बादमें मुझे ३० जूनको समाप्त होनेवाली तिमाही अवधिके लिए भी परवाने देनेका अधिकार दिया गया। मेरा खयाल है कि मेरे विभागसे पूरे वर्षके लिए कोई परवाना नहीं दिया गया। इस माहकी ७ तारीखवाले पत्रमें जो निर्देश थे वे संशोधित और नवीनतम निर्देश थे। यह सही है कि अनेक एशियाइयोंने स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र तो दिखाये किन्तु अँगूठेके निशान देना अस्वीकार कर दिया।

[न्यायाधीश:] यदि अँगूठेके निशान देनेसे इनकार किया जाये तो?

जेफर्सन: मैं परवाना देनेसे इनकार कर देता हूँ। पंजीयन प्रमाणपत्र दिखाना आवश्यक है।

गवाहका खयाल ऐसा नहीं था कि किसीने पंजीयन प्रमाणपत्र दिखाना अस्वीकार किया होगा। केवल उन्हीं व्यापारियोंने पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं दिखाये जिन्हें वह मिला ही नहीं था।

न्यायाधीशके प्रश्नका उत्तर देते हुए उन्होंने बताया कि जूनके अन्ततक अँगूठेके निशान देना अनावश्यक था। तत्पश्चात्, इस आवश्यकताके सम्बन्धमें कोई सूचना उस समय तक नहीं थी, जबतक एशियाई लोग परवानेके लिए प्रार्थनापत्र देने नहीं आये। जून माहके अन्ततक अँगूठेके निशान न देनेके सम्बन्धमें 'गजट' में कोई चर्चा नहीं थी। लगता है, यह सरकारका अनुग्रहपूर्ण कार्य था।

इसके साथ ही सरकारी पक्षकी बहस समाप्त हो गई।

अभियुक्तने अपने ही सम्बन्धमें गवाही देते हुए कहा कि मैंने चालू महीनेमें परवानेके लिए प्रार्थनापत्र दिया था। मुझे परवाना देना अस्वीकार कर दिया गया था, क्योंकि मुझसे कानूनके अन्तर्गत अँगूठेके निशान देनेको कहा गया जो मैंने देनेसे इनकार कर दिया था। मेरे पास जून माहके अन्ततक के लिए परवाना था और स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र भी।

जिरहके उत्तरमें [अभियुक्तने कहा:] जिस समयका जिक्र है उस समय मैं बिना परवानेके व्यापार नहीं कर रहा था, बल्कि एक डलियामें फल लिए हुए फलोंकी दूकानकी ओर पैदल चला जा रहा था। मैं ग्राहकोंकी तलाशमें नहीं था। यह सही है कि मैं सुबह बिना परवानेके व्यापार कर रहा था। इसके साथ बचाव पक्षकी बहस समाप्त हुई।

श्री गांधीने अदालतको सम्बोधित करते हुए कहा कि कल अपराह्नमें गवाही देते हुए मैंने जो-कुछ कहा था उसके अलावा बहुत थोड़ी-सी बात ही कहनी है। ऐसा लगता है कि सरकारने पहले एक आशयके निर्देश जारी किये और बादमें दूसरे आशयके। और हालत यह

है कि भारतीयोंको मालूम ही नहीं कि उनकी स्थिति क्या है। यदि सरकारको कार्रवाई करनी है तो नेताओंके विरुद्ध करनी चाहिए, न कि अभियुक्त जैसे लोगोंके विरुद्ध।

अभियुक्तको १० शिलिंग जुर्माने अथवा ४ दिनके कठोर कारावासकी सजा दी गई।

मूसा ईसप, हरी भीखा, दया पराग, सालेजी बेमात, इस्माइल इब्राहीम, केशव गुलाब और नागर मोरारको[1] भी यही सजा सुनाई गई। इन लोगोंकी पैरवी भी श्री गांधीने की थी।

अहमद ईसप दाऊदपर भी उपर्युक्त अभियोग लगाये गये, किन्तु उनकी पुकार होनेपर कोई जवाब नहीं मिला। उनकी जमानत जब्त कर ली गई। कुछ मिनट बाद ही वे अदालतमें आये और बताया कि मैंने अपना नाम पुकारते नहीं सुना था। श्री गांधीने अदालतसे कहा कि उनकी जमानत वापस कर दी जाये, पर न्यायाधीशने कहा कि ऐसा कर सकना मेरे अधिकारमें नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–७–१९०८

२२९. तार: दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समितिको

[जोहानिसबर्ग,
जुलाई २१, १९०८][2]

['आफ्रिकालिया'
लन्दन]

चार मुसलमान, चार हिन्दू फेरीवालोंने बिना परवाना व्यापार करके जेलकी सख्त सजा भोगना पसन्द किया। उन्होंने परवाना-शुल्क दिया, पर एशियाई अधिनियमकी औपचारिकताएँ पूरी करनेसे इनकार कर दिया। हमीदिया अंजुमनके अध्यक्ष, पाँच अन्य प्रमुख भारतीय भी समान अभियोगमें गिरफ्तार। जमानतपर छूटना अस्वीकार। अध्यक्ष मुस्लिम मौलवी तबकेके हैं। जबर्दस्त सनसनी।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस, ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, २८९६/०८।

१. नागजी मोरार? देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ३८३।

२. इमाम बावजीर मंगलवार (२१ जुलाई, १९०८) को गिरफ्तार किये गये थे। यह तार रिच द्वारा इंडिया ऑफिसको लिखे गये २२ जुलाई, १९०८ के पत्रके साथ संलग्न किया गया था।

२३०. जनरल स्मट्सके नाम पत्रका सारांश[1]

जुलाई २१, १९०८

श्री गांधी जनरल स्मट्सको लिखे एक पत्रमें इस बातका संकेत करते हैं कि जब समाजके अनेकानेक साधारण लोग पंजीयन कानूनके अन्तर्गत कैदकी सजा भोग रहे हैं, तब वे स्वयं आजाद हैं —— हालाँकि उन्होंने भी प्रमाणपत्र नहीं लिया है, और जो कुछ भी उनके देशवासियोंने किया हो, उसके खुद वे ही मुख्य निमित्त हैं। वे पूछते हैं, "क्या मुझे अकेला छोड़ देना और गरीब भारतीयोंको सताना साहसका काम है?" वे फिर जोर देकर कहते हैं कि वे ट्रान्सवालकी आम जनताकी सेवा करनेको वैसे ही आतुर हैं, जैसे अपने देशवासियोंकी सेवा करनेके लिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस, ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ३७२२/०८।

२३१. पत्र : ए० कार्टराइटको

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई २१, १९०८

प्रिय श्री कार्टराइट,

बिना परवाना फेरी लगानेपर आठ भारतीय —— चार मुसलमान और चार हिन्दू —— आज चार दिनकी सजा भुगतनेके लिए जेल गये हैं।[2] कारावासकी सजा कठोर परिश्रम सहित दी गई है। हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्ष श्री इमाम अब्दुल कादिर, जेलसे भेजे गये पत्रपर मेरे साथ हस्ताक्षर करनेवाले श्री टी० नायडू, तथा चार अन्य लोग भी बिना परवाना फेरी लगानेपर गिरफ्तार कर लिये गये हैं। ये अन्तिम सभी भद्र पुरुष हैं, साधारण जीवनमें फेरी लगाना जिनका काम नहीं रहा; लेकिन उन्होंने विरोध प्रकट करनेके लिए ऐसा किया है। इमाम अब्दुल कादिरकी गिरफ्तारीसे दक्षिण आफ्रिकामें ही नहीं, सारे भारतमें तहलका मच जायेगा। 'इमाम' शब्दका अर्थ है 'पुरोहित'। मस्जिदमें पुरोहिताई करना उनका पेशा था और अक्सर अब भी रहता है। हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्षका पद भी बहुत जिम्मेदारीका है।

आपका हृदयसे,

श्री अल्बर्ट कार्टराइट
प्रिटोरिया

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८५३) से।

१. मूल पत्र उपलब्ध नहीं है। यह अंश उस सारांशमेंसे लिया गया है, जो रिचने ६ अक्तूबर, १९०८ को लिखे गये अपने पत्रके साथ उपनिवेश-कार्यालयको भेजा था।

२. "इस्माइल आकूजी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ३७६-७८।

२३२. बावजीर, नायडू तथा अन्य लोगोंका मुकदमा

[जोहानिसबर्ग,
जुलाई २२, १९०८]

मंगलवारको सुबह-सुबह ब्रिटिश भारतीय संघकी समितिके एक सदस्य श्री थम्बी नायडू और उसी दिन तीसरे पहर हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्ष श्री इमाम अब्दुल कादिर बावजीर, सर्वश्री जी० पी० व्यास, मुहम्मद इब्राहीम कुनके, एम० जी० पटेल तथा जी० के० देसाई परवानेके बिना फेरी लगानेके कारण गिरफ्तार कर लिये गये। उन्होंने जमानतपर छूटनेसे इनकार कर दिया और बुधवारको उन्हें अदालतमें पेश किया गया। उनपर उचित परवानेके बिना व्यापार करनेका अभियोग लगाया गया।

परवाना-निरीक्षक जे० बी० बार्नेटने[1] बताया कि मैंने अभियुक्तोंको कल[2] दिनमें २ बजकर ३० मिनटपर मार्केट स्ट्रीट और सिमंड्स स्ट्रीटके नुक्कड़पर गिरफ्तार किया था। अभियुक्तोंने मुझे बताया कि उन्होंने परवाने नहीं लिये हैं।

श्री गांधीने, जो सफाई पक्षकी पैरवी कर रहे थे, इमाम अब्दुल कादिर बावजीरको जिरहके लिए बुलाया। श्री बावजीरने उनके सवालके जवाबमें कहा, मैं हमीदिया इस्लामिया अंजुमनका अध्यक्ष और भारतीय मस्जिदका पेश इमाम हूँ। मैंने हालमें ही फेरीका काम शुरू किया है।

[गांधीजी :] क्या आप अदालतको इसकी वजह बतायेंगे?

[बावजीर :] क्योंकि जनरल स्मट्स और कुछ भारतीय नेताओंके बीच एक समझौता हुआ था . . . ।

सरकारी वकीलने टोककर पूछा कि क्या गवाहको यह बात स्वतः ज्ञात थी।

न्यायाधीश : क्या अभियुक्तने उपनिवेश-सचिवसे परवानाके बिना फेरी लगानेकी अनुमति ली है?

श्री गांधी : नहीं।

श्री गांधीने आगे कहा, गवाहसे तथ्य निकलवानेकी मेरी इच्छाका कारण वही है जो मैंने कल बताई थी। मेरी रायमें अदालतको यह जाननेका अधिकार है कि अभियुक्त-जैसी हैसियतके व्यक्तिने फेरीका काम क्यों अपनाया।

न्यायाधीशने कहा कि इस बातमें अदालतको कोई दिलचस्पी नहीं है।

श्री गांधीने कहा कि यह बात दिलचस्पीकी नहीं, न्यायकी है।

गवाहने आगे कहा, जब समझौता हो गया तब मैंने उसे पूरा करनेमें सहायता की थी, किन्तु अब मैं देखता हूँ कि जहाँतक सरकारका सम्बन्ध है, समझौतेको ठीक ढंगसे पूरा

१. "बैरेट"?

२. अर्थात्, मुक़दमेसे एक दिन पहले, जुलाई २१, १९०८ को।

नहीं किया जा रहा है और इसीके प्रति विरोध प्रदर्शित करनेके लिए मैंने बिना परवानेके फेरी लगानेका काम शुरू किया है।

न्यायाधीशने पूछा कि क्या गवाह उन चौदह लोगोंमें से एक है जिन्हें छूट दी गई है?

श्री गांधीने कहा कि मैं छूटके बारेमें कुछ नहीं जानता। यदि कुछ ऐसे लोग हैं जिन्हें छूट मिली है तो वे बहुत सौभाग्यपूर्ण स्थितिमें हैं।

सरकारी वकीलने कहा कि कुछ लोगोंको छूट मिली है और यदि अभियुक्तको मिली होती तो शायद उसे मालूम होता।

श्री गांधीने कहा, मुझे छूटके बारेमें तनिक भी सूचना नहीं है। मेरी स्थिति यह है कि मेरे मुवक्किलको दुःख हुआ और उन्होंने अपने अपेक्षाकृत गरीब देशवासियोंके साथ कष्ट झेलनेका फैसला किया है, क्योंकि स्वेच्छया पंजीयन करानेके बाद अब सहसा उनसे एशियाई अधिनियम स्वीकार करनेको कहा जा रहा है।

न्यायाधीश: आपने अपनेको फेरीवालोंकी स्थितिमें रखनेके लिए ही इधर फेरीका काम शुरू किया?

अभियुक्त: मैंने फेरीका काम अपने देशवासियोंकी रक्षाके लिए शुरू किया।

श्री गांधी: आप उन लोगोंमें से हैं जिन्होंने समझौता पूरा करनेमें सरकारकी सहायता की थी?

[अभियुक्त:] हाँ; मैंने अपने लोगोंको समझानेका प्रयास किया था कि समझौतेका अर्थ क्या है और उन्हें बताया कि यदि वे स्वेच्छया पंजीयन करा लेंगे तो उन्हें विवश नहीं किया जायेगा।

[गांधीजी:] और जिस समाजके आप प्रतिनिधि हैं उसके सदस्योंने आपकी सलाह मानी और स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र लिये?

[अभियुक्त:] हाँ।

आगे जिरह करनेपर गवाहने बताया कि मैंने उन फेरीवालोंके विषयमें एक परिपत्र देखा था जो अधिनियमका पालन नहीं करते। मैं विवाहित हूँ और मेरी पत्नी तथा बच्चे जोहानिसबर्गमें रहते हैं और मैं स्वयं तेरह वर्षतक वहाँ रहा हूँ।

छूट

परवानोंके मुख्य निरीक्षक, श्री टी० एच० जेफर्सनने श्री गांधीके प्रश्नके उत्तरमें बताया कि मेरे पास ऐसे व्यक्तियोंके नामकी एक सूची है जिन्हें अधिनियमकी शर्तें माननेसे छूट मिली हुई है। वे अँगूठोंके निशान देनेको विवश नहीं हैं। मुझे नाम स्मरण नहीं हैं और यह सूची मुझे कल ही मिली है। मुझे यह नहीं मालूम कि अभियुक्तोंमें से किसीको छूट मिली है, या नहीं।

श्री गांधीने अदालतको सम्बोधित करते हुए कहा कि मैं जिस एकमात्र प्रश्नकी चर्चा करूँगा वह है छूटका प्रश्न। मैं अदालतसे कहूँगा कि वह सरकारकी मनमानी कार्यवाहियोंपर ध्यान दे। मुझे इस बातकी कतई कोई जानकारी नहीं है कि कुछ लोगोंको छूट दी गई है,

पर मैं बताना चाहूँगा कि एशियाई अधिनियममें सरकारको छूट देनेका ऐसा कोई अधिकार कभी नहीं दिया गया था। क्या अदालत अधिनियमके मनमाने प्रयोगको प्रश्रय देगी?

न्यायाधीशने कहा कि अभियोग स्वीकार किया जा चुका है और मुझे केवल इतनी ही बातसे मतलब है। उन्होंने अभियुक्तको १० शिलिंग जुर्माने या चार दिनकी सख्त कैदकी सजा दी।

मुहम्मद इब्राहीम कुनके, मूसा बगस, मुहम्मद इब्राहीम, अहमद मुहम्मद, मोतारा और एस० बगसको भी औपचारिक गवाहियोंके बाद इसी प्रकारकी सजा दी गई।

थम्बी नायडूपर भी बिना परवाना फेरी लगानेका अभियोग लगाया गया और गिरफ्तारीके बारेमें औपचारिक गवाहीके बाद अभियुक्तने गवाही दी। उन्होंने कहा कि मैं ठेलोंका ठेकेदार हूँ और मैंने पिछले शुक्रवारसे फेरीका काम शुरू किया है। मैं विगत जनवरीमें पंजीयन अधिनियम न माननेके कारण जेल गया था। समझौतेके विषयमें जनरल स्मट्सको जो पत्र भेजा गया था उसपर हस्ताक्षर करनेवालोंमें मैं भी एक था और समझौतेके अन्तर्गत भारतीयोंकी जिम्मेदारीको पूरा करनेके प्रयासमें मैंने मार खाई थी।

अन्य लोगोंको भी उसी प्रकारकी सजा सुनाई गई।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–७–१९०८

२३३. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

[जुलाई २१, १९०८]

खरा खेल

श्री सोराबजी जेलमें हैं। उन्हें एक महीनेकी सख्त कैदकी सजा मिली है। अब तो प्रत्येक भारतीयके लिए जेल माँगना कर्तव्य हो गया है। श्री सोराबजीको सोमवारके सवेरे ७ बजे कड़ाकेकी सर्दीमें पकड़ा गया और जेल ले जाया गया। यह आवश्यक नहीं था। श्री गांधीने सूचना भेजी थी कि श्री सोराबजी जब जरूरत होगी तब हाजिर रहेंगे। अधिकारियोंने उसकी परवाह नहीं की। श्री सोराबजीका मामला सुननेके लिए सैकड़ों भारतीय उपस्थित थे। सिपाहियोंने धक्का-मुक्की की। बहुत थोड़े भारतीयोंको अन्दर जाने दिया। बहुत-से गोरोंको दाखिल कर लिया। बाकीके जो भारतीय अदालतके बाहर रहे, उनपर जुल्म किया गया। श्री गुलाबभाई कीकाभाई, श्री खुरशेदजी देसाई वगैरहको पीटा। बहुतसे लोगोंका अपमान किया। यह हकीकत न्यायाधीशके सामने पेश की गई। न्यायाधीशने इसपर ध्यान नहीं दिया।[1]

मुकदमेमें कोई खास प्रमाण नहीं दिये गये। श्री सोराबजीको दो बातोंमें से एक पसन्द कर लेनी थी — अपना और देशका मान अथवा न्यायालयका हुक्म। श्री सोराबजीने न्यायालयके हुक्मको नापसन्द, और देशाभिमानको पसन्द किया।

न्यायाधीशने सजा दी। श्री सोराबजीने, उस सजासे मान मिला है ऐसा मानकर, उसे स्वीकार कर लिया।

१. देखिए "सोराबजी शापुरजीका मुकदमा — ३", पृष्ठ ३७१।

न्यायाधीशको अपने अत्याचारका जवाब देना पड़ेगा। जिन पुलिसवालोंने भारतीयोंपर हमला किया है[1], उनके विरुद्ध [कार्रवाई करानेके लिए] संघने कदम उठाया है। पुलिस कमिश्नर अथवा अदालतसे न्याय मिले चाहे न मिले, उससे हमारा कम सम्बन्ध है।

इस सारे जुल्मका कारण यह है कि हम कमजोर माने जाते हैं। जब अधिकारी हमारी शक्ति देखेंगे, तब वे ही कमजोर होकर बैठ जायेंगे।

फेरीवालोंको सजा

श्री इस्माइल आकूजी, श्री मूसा ईसप, श्री डाह्या पराग, श्री हरी भीखा, श्री सालेजी बेमात, श्री इस्माइल इब्राहीम, श्री केशव गुलाब, श्री नागजी मोरार — इतने फेरीवाले पकड़े गये थे। मंगलवारको उनका मामला था।[2] उनके बारेमें प्रमाण पेश करके श्री गांधीने बताया कि इन लोगोंको पकड़ना गरीबोंपर डाका डालने जैसा है। वे कोई गुनाहगार नहीं हैं। भारतीय नेतागण खुल्लम-खुल्ला कानून तोड़ते हैं; उन्हें किस लिए छोड़ दिया जाता है? सरकारने फरवरीमें कानूनके बाहर परवाने दिये, तो फिर अब कानूनकी रूसे ही परवाने क्यों दिये जा रहे हैं?

न्यायाधीशने उपर्युक्त भारतीयोंपर १० शिलिंग जुर्माना किया और जुर्माना न देनेपर ४ दिनकी जेलकी सजा निश्चित की। बहादुर भारतीयोंने जेल जाना स्वीकार करके जुर्माना देनेसे इनकार किया है।

इमाम साहब गिरफ्तार

मंगलवारके दोपहरको इमाम अब्दुल कादिर बावजीर, श्री गौरीशंकर व्यास, श्री मूलजी पटेल, श्री गुलाबभाई कीकाभाई देसाई पकड़े गये। वे बाजारके चौकमें फेरी लगा रहे थे। श्री थम्बी नायडू मंगलवारकी सुबह पकड़े गये। उन्हें भी उसी अपराधमें पकड़ा गया है। श्री गौरीशंकर व्यास तथा श्री थम्बी नायडू जनवरीमें जेल जा चुके हैं। इन सभीने जमानतपर छूटनेसे इनकार किया है। यह सब पढ़कर ऐसा कौन भारतीय होगा जिसका मन रोता न होगा, हँसता न होगा। रोना इसलिए चाहिए कि ये कोमल भारतीय देशके लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं। हँसना इसलिए चाहिए कि भारतीय कौममें ऐसे बहादुर पड़े हैं और उनके द्वारा कौमको मुक्ति मिलेगी।

श्री अब्दुल कादिर बावजीर इमाम हैं। हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके वे प्रमुख हैं। मैं तो कहता हूँ कि जिस दिन उक्त महोदय जेल जायें उस दिन सारे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको एक दिनकी हड़ताल करनी चाहिए।

१. गुलाबभाई कीकाभाई देसाई, खुरशेदजी हुरमसजी देसाई और पोलकने पुलिस कमिश्नरके सामने इस घटनाके सम्बन्धमें हलफिया बयान दिये और यह माँग की कि सम्बन्धित सिपाहियोंपर मुकदमा चलाया जाना चाहिए। श्री पोलकने हलफिया बयानमें कहा: 'चूँकि अदालतके मोड़दार किवाड़ोंका दरवाजा केवल एक ओरसे खोला गया था, इसलिए भारतीयोंकी एक भीड़ भीतर आनेका प्रयत्न कर रही थी। " सिपाही बी० ९९ ने उत्तेजनाका कोई कारण न होनेपर भी अदालतके बाहरकी खुली जगहसे घूँसे मारते और कंधोंसे धकियाते हुए भीड़पर हमला किया। मैंने देखा कि गुलाबभाई कीकाभाई देसाईका मुँह दाईं ओर सूजा हुआ था और उनकी दाईं आँखमें खून झलझला रहा था। उन्होंने मुझे बताया कि सिपाही बी० ६० ने उन्हें जोरका घूँसा मारा है। यद्यपि उन्होंने सुपरिंटेंडेंट वरनोंनसे सख्त शिकायत की, किन्तु उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया . . . ।"

२. देखिए "इस्माइल आकूजी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ३७६-७८।

बुधवार, [जुलाई २२, १९०८]

कल जो खबर दे चुका हूँ, उसके बाद मालूम हुआ है कि श्री इब्राहीम कुनके गिरफ्तार कर लिये गये हैं।

श्री इमाम अब्दुल कादिर इत्यादि जिनके नाम ऊपर दे चुका हूँ, उन्होंने तथा श्री कुनकेने जमानत नहीं दी और वे सारी रात जेलमें रहे। जेलमें इन सभीको पर्याप्त भोजन पहुँचा दिया गया था। इनमें से प्रत्येकको सोनेके लिए तीन कम्बल मिले थे।

आज बुधवारको ११ बजे उनका मुकदमा हुआ।[1]

इमाम साहबने बयानमें कहा कि उन्होंने फेरी दूसरोंके भलेके लिए शुरू की थी। उन्होंने सरकारको समझौतेमें मदद दी थी। 'मेरे अन्य भाई जिन्हें व्यापारी परवाने लेने पड़ते हैं, जेलमें जायें और मैं बाहर रहूँ, यह मुझसे नहीं देखा गया, इसलिए मैंने बगैर परवानेके फेरी लगाना तय किया है।' यह कहा है इमाम साहबने।

उसी मुकदमेमें श्री ज़ोज़ेफने, जो परवाना निरीक्षक हैं, बयान देते हुए कहा कि सरकारने उन्हें १४ नाम भेजे हैं, जिनसे अँगूठोंके निशान न माँगे जायें।

इन सबको मजिस्ट्रेटने १०–१० शिलिंग जुर्माना अथवा चार दिनकी जेलकी सजा सुनाई। सबने जेल जाना पसन्द किया।

अन्य मुकदमे

इसके बाद श्री मूसा बगस, श्री सुलेमान बगस[2], श्री मुहम्मद इब्राहीम तथा श्री अहमद मुहम्मदका मुकदमा हुआ। उन्हें भी ऊपरके मुताबिक सजा दी गई और वे भी जेलवासी हो गये हैं। ये सब शनिवारको छूटकर वापस आ जायेंगे। मैं आशा करता हूँ कि सब फिरसे देशके लिए टोकरी लेकर निकल पड़ेंगे और फिर जेल जायेंगे।

श्री इमाम अब्दुल कादिर गये और उनके साथ श्री व्यास तथा श्री नायडू भी गये हैं। ये दोनों तो एक बार जेल काट आये हैं। इनकी सेवाओंका वर्णन करना आवश्यक नहीं जान पड़ता।

दूसरे व्यक्ति श्री इब्राहीम मुहम्मद कुनके हैं जो जेल गये हैं। उन्होंने अपनी दूकान छोड़कर फेरी शुरू की है। उनकी हिम्मतका पार नहीं है। उक्त महोदय कोंकणी हैं और उन्होंने इस प्रकार जेल जाकर अपने कोंकणी समाजका मुख उज्ज्वल किया है। श्री कुनकेने सभाओंमें भी अच्छा भाग लिया है और बहुत-से लोगोंको हिम्मत दी है।

श्री मूलजी पटेल अभी-अभी भारतसे आये हैं। उन्हें बम्बईकी सार्वजनिक सभाका अनुभव है और उन्होंने भी अपनी इच्छासे देशके लिए जेल स्वीकार की है।

श्री गुलाबभाई कीकाभाई देसाई जेल ही नहीं गये हैं; उन्होंने अदालतके दरवाजेके सामने मार भी सहन की थी।

इस प्रकार जिन लोगोंने कभी फेरी नहीं लगाई, वे फेरी करनेवाले बन गये; यह ऐसी-वैसी बात नहीं है। कहा जा सकता है कि इस सबका यश भी श्री ईसप मियाँको है। पहल श्री ईसप मियाँने की। वे अपने गलेमें दो टोकरियाँ लटकाकर फेरी करने निकले।

१. देखिए "बावजीर, नायडू और अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ३८०-८२।
२. देखिए "इब्राहीम इस्माइल और सुलेमान बगसका मुकदमा", पृष्ठ ३७४-७५।

श्री ईसप मियाँने गाढ़े समयपर बहुत ही अच्छे ढंगसे राष्ट्रकी सेवा की है। उनके पास धन है, बुद्धि है, बहादुरी है और वैसा ही कसा हुआ उनका शरीर है। इस सबका उपयोग इस समय वे समाजके लिए कर रहे हैं। उन्होंने अपना समय दिया, मार खाई; और अब समाजके लिए फेरी लगा रहे हैं। यदि थोड़े दिनोंमें वे भी जेलवासी बन जायें तो कोई आश्चर्य नहीं होगा।

बॉक्सबर्गके दो भारतीय

श्री आदम और श्री मंगलसिंह, दोनों बिना परवानेके फेरी करनेके अपराधमें पकड़े गये हैं। उनका बचाव करनेके लिए — मैं गलती कर रहा हूँ, उन्हें जेल भेजनेके लिए — श्री पोलक गये। श्री गांधी जोहानिसबर्गमें ऊपर कहे गये मुकदमोंके लिए रुक गये थे। श्री आदम मूसाको एक पौंड जुर्मानेकी अथवा सात दिनकी सादी कैदकी सजा दी गई। श्री आदम मूसाने जेल कबूल की। श्री मंगलसिंह अमंगली निकले। उन्होंने अदालतके बाहर बड़ी-बड़ी बातें कीं, जिससे लगा कि वे तो जेल जायेंगे। किन्तु अदालतमें बयान भी लँगड़ा दिया। इस कारण मजिस्ट्रेटने दो पौंड जुर्मानेकी अथवा आठ दिनकी सख्त कैदकी सजा सुनाई। श्री (अ) मंगलसिंहने जेल स्वीकार नहीं की, दो पौंड जुर्माना दे दिया।

दूकानें बन्द

श्री इमाम अब्दुल कादिरके जेलमें जानेके बाद अदालतके बाहर एक मैदानमें सैकड़ों भारतीयोंकी सभा हुई। उसमें प्रस्ताव हुआ कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें सभी दूकानें और काम शुक्रवार और गुरुवारको बन्द रहने चाहिए। हर जगह तार भेज दिये गये हैं कि सारे भारतीय दूकान, फेरी आदिका काम बन्द रखें।

रायटरका तार

रायटरने इस सम्बन्धमें अपना तार भेजा है और, वैसे ही, हमीदिया इस्लामिया अंजुमन तथा संघने भी तार भेजे हैं। हमीदिया इस्लामिया अंजुमनका तार निम्नलिखित है:[1]

> हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्ष तथा मस्जिदके इमाम और अन्य भारतीय नेताओंको कानूनके खिलाफ जानेके अपराधमें सख्त कैदकी सजा मिली है। भारतीयोंने दक्षिण आफ्रिकामें शोक मनानेके लिए हड़ताल की है। यदि हम बहुत पढ़े-लिखे भारतीयोंके आनेकी मनाही स्वीकार कर लें, तो कानून रद करनेकी बात कही जाती है। हम इसे बिलकुल स्वीकार नहीं करते।

इस प्रकारका तार कलकत्ता, मद्रास, पंजाब, बम्बई और लाहौरकी अंजुमनोंके नाम और उसी प्रकार अलीगढ़में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग तथा विलायतमें जस्टिस अमीर अलीके नाम भेजा गया है।[2]

१. मूल अंग्रेजी तारके लिए देखिए **इंडियन ओपिनियन**, २५-७-१९०८।

२. **इंडियन ओपिनियन** (अंग्रेजी संस्करण)में प्रकाशित एक खबरमें कहा गया है कि इस तारकी नकलें लाहौरकी मुस्लिम लीग और आगाखाँको भी भेजी गई थीं।

परवाना किन्होंने लिया?

आज मुझे (अधिकृत) खबर मिली है कि जोहानिसबर्गमें ८०० भारतीय फेरीवाले हैं। उनमें से ७०० ने परवाने लिये हैं। ३०० ने कानूनके बाहर लिये हैं। शेष लोगोंने अँगूठोंकी छाप देकर कानूनकी रूसे लिये हैं। मुझे आशा है कि जिन लोगोंने परवाने लिये हैं वे उन्हें जला डालेंगे अथवा सन्दूकमें बन्द कर देंगे और परवाने न दिखाकर जेल जायेंगे। जो शेष १०० रह गये, वे कभी परवाने नहीं लेंगे, ऐसी मुझे पूरी आशा है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–७–१९०८

२३४. भाषण: सार्वजनिक सभामें

[जोहानिसबर्ग
जुलाई २३, १९०८]

गत महीनेकी २३ तारीखको ट्रान्सवालके सारे भारतीयोंने एक दिनके लिए अपना कारोबार बन्द रखा। इस हड़तालका उद्देश्य हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्ष इमाम अब्दुल कादिर तथा उन अन्य भारतीयोंके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना था, जिन्हें ट्रान्सवाल सरकारके विश्वासघातके विरोधस्वरूप परवानेके बिना फेरी लगानेके लिए सपरिश्रम कारावास दिया गया था। भारतीय फेरीवालों और बिसातियोंने फेरी नहीं लगाई, जिससे उन यूरोपीय गृहिणियोंको बड़ी परेशानी हुई, जो इनकी सेवापर इतना अधिक निर्भर करती हैं।

फोर्ड्सबर्ग-स्थित हमीदिया मस्जिदके प्रांगणमें एक भारी सभा हुई, जिसमें १,५०० लोग उपस्थित थे।[१] लोगोंमें बड़ा उत्साह था और उन्होंने श्री गांधी तथा अन्य वक्ताओंके भाषण तन्मयताके साथ सुने। रीफ टाउनसे भी कुछ प्रतिनिधि आये थे, यद्यपि निमन्त्रण किसीको नहीं भेजा गया था। श्री ईसप इस्माइल मियाँने अध्यक्षता की . . .। श्री गांधीके भाषणका पूरा पाठ नीचे दिया जा रहा है:

मैं आपको दक्षिण आफ्रिकाके कई स्थानोंसे प्राप्त तार पढ़कर सुनाऊँगा। ये तार दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय संघ तथा हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके इस अनुरोधके उत्तरमें आये हैं कि हमारे समस्त दक्षिण आफ्रिकावासी भाई अंजुमनके अध्यक्षके सम्मानमें सारा भारतीय कारोबार — दूकानदारी भी और फेरी लगाना भी — बन्द रखें। आज, इस तीसरे पहर, हम जिस मस्जिदकी छायामें खड़े हैं, उक्त अध्यक्ष महोदय उसके पेश इमाम भी हैं। अनुरोधका बड़ा व्यापक स्वागत हुआ है और उससे प्रकट होता है कि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय समाजके विभिन्न अंग आपसमें कितने सुसंगठित हैं। मेरा विचार है, हम सरकारको इस बातके लिए बधाई और धन्यवाद दे सकते हैं कि उसने, शायद अनजाने ही, इतनी बड़ी

१. ट्रान्सवाल लीडरके विवरणके अनुसार सभामें उपस्थित लोगोंकी संख्या पत्रके सम्वाददाताके अनुमानसे ५०० थी। कुछ चीनी भी उपस्थित थे।

बात कर दिखानेमें हमारी सहायता की है। मैं समझता हूँ, आज सारे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय एक नई भावनासे अनुप्राणित हो उठे हैं, और यदि यह भावना कायम रही तो, मेरा खयाल है, हमें इसके लिए भी सरकारको धन्यवाद देना पड़ेगा। जब पिछली जनवरीमें हमने सच्चे रूपमें अनाक्रामक प्रतिरोधका संघर्ष प्रारम्भ किया था, तो उसकी तैयारी लगभग १६ महीनेसे होती आ रही थी। किन्तु, जनरल स्मट्स और उनके सहमन्त्री एशियाई अधिनियमके विरुद्ध, जिसे भारतीय, सही या गलत, अपने आत्मसम्मान, प्रतिष्ठा तथा धर्मपर एक आघात मानते थे, उनके आन्दोलनमें निहित भावनाकी सच्चाईकी परख गत जनवरी महीनेमें ही कर पाये। लेकिन, अभी सारी बातोंको अन्तिम पुट देना शेष ही था कि समझौतेके कारण कैदियोंको एकाएक छोड़ दिया गया। मैं समझता हूँ कि अब इस अवसरपर सारी बातोंको वही अन्तिम पुट दिया जा रहा है। स्पष्ट है, जनरल स्मट्सको हमारे शिविरमें रहनेवाले कुछ शत्रुओंने ही बताया है कि हमारा पिछले सालका और जनवरी महीनेका आन्दोलन अधिकांशतः बनावटी था, और उस अग्निको प्रज्वलित रखनेवाला मुख्य रूपसे मैं था। मेरा खयाल है कि अबतक जनरल स्मट्स समझ गये होंगे कि आन्दोलन बनावटी नहीं था। वह सर्वथा सच्चा तथा स्वयंस्फूर्त था, और यदि मेरा उसमें कोई हिस्सा था तो इतना ही कि मैंने सरकार तथा अपने देशभाइयोंके बीच एक नम्र दुभाषियेका काम किया। निःसन्देह, मैं पहला व्यक्ति था जिसने समाजको बताया कि कानूनका अर्थ क्या है। इसमें भी कोई शक नहीं कि सबसे पहले मैंने ही समाजका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि यह कानून धार्मिक तथा समाजके सम्मानसे सम्बन्धित आपत्तियोंसे भरा पड़ा है। परन्तु, इतना कुछ करनेके बाद मैं दावा करता हूँ कि मैंने अपना हर फर्ज पूरा कर लिया। मैंने भारतीयोंके सामने जो आपत्तियाँ रखीं, उनके महत्त्वको स्वयं उन्होंने ही पहचाना, और निष्ठापूर्वक तथा हृदयसे उस कानूनको न माननेका निश्चय किया। और आज हम यहाँ उन्हीं आपत्तियोंपर जोर देनेके लिए एकत्र हुए हैं और यह भी देखते हैं कि हमारे दक्षिण आफ्रिकावासी देशभाइयोंमें से एक श्रेष्ठ व्यक्तिने — हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके समादृत अध्यक्ष महोदयने — स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र लेनेके बदलेमें प्राप्त स्वतन्त्रताका उपभोग करनेके बजाय जेल जाना अच्छा समझा है। उन्होंने अपने निम्नतर देशभाइयों अर्थात् फेरीवालोंके साथ कष्ट झेलना पसन्द किया, और महसूस किया कि भारतके सम्मानके लिए, स्वयं फेरीवालोंकी खातिर, अपने-आपको उनके ही दर्जेमें रखकर जेलके दुःख भोगें, जिनको सरकार अपनी जकड़में लेना चाहती है। और आज हम अपने उस प्यारे देशभाई तथा उन लोगोंके प्रति सम्मान प्रकट करनेके लिए एकत्र हुए हैं, जो उनके साथ जेल-जीवनके कष्ट झेलने गये हैं। यह सच है कि कैद केवल चार दिनोंकी है, लेकिन बात इतनी ही तो नहीं है। भारतीय ऐसे जीवनके आदी नहीं हैं। वे [जेल] जीवनकी कठिनाइयोंके अनुकूल अपनेको कभी ढाल नहीं पाये हैं। उनके लिए एक दिनकी कैद भी बड़ी बात है। और फिर क्या इस तरहके मामलोंमें भावनाका भी बहुत महत्त्व नहीं होता? हम तथा यूरोपीय उपनिवेशी इस बातको सदासे जानते आये हैं कि भारतीय जेल जानेके बजाय जुर्मानेमें बड़ी-बड़ी रकमें दे देना पसन्द करते हैं। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंपर भी सर्वसामान्य रूपसे यही बात लागू होती है, और फिर भी यदि आज हम हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके समादृत अध्यक्ष महोदय तथा अन्य प्रमुख भारतीयोंको खुशी-खुशी जेल जाते देखते हैं, तो इसलिए नहीं कि कोई बनावटी आन्दोलन चल रहा है, बल्कि इसलिए कि वे सोचते

हैं, भारतका सम्मान खतरेमें है। अगर खड़े होकर उसका सही मुकाबला नहीं किया गया तो वे अपना आत्मसम्मान खो बैठेंगे — और वह मुकाबला भी किसी हथियारसे नहीं वरन् विशुद्धतम ढंगसे। अपनी आत्मरक्षाके लिए हमने जो विशुद्धतम अस्त्र ढूँढ़ निकाला है, वह है अनाक्रामक प्रतिरोधका अस्त्र। इसका अर्थ है, हम जिस कानूनको मनुष्य होनेके नाते मान्य नहीं कर सकते, उसको भंग करनेके लिए सरकार हमें जेलका दण्ड या जो भी दण्ड दे, उसे हम स्वीकार करेंगे। ब्रिटिश भारतीय संघ तथा हमीदिया इस्लामिया अंजुमनको जो तार प्राप्त हुए हैं वे प्रिटोरिया, डर्बन, फॉर्चूना, वॉर्मबाथ्स, फोक्सरस्ट, अरमीलो, पोचेफ्स्ट्रूम, जीरस्ट, क्लार्क्सडॉर्प, स्टैंडर्टन, मिडेलबर्ग, सैलिसबरी, क्रिश्चियाना, रस्टेनबर्ग, किम्बरले, नाइल्स्ट्रूम, रूडीपूर्ट, लिखतनबर्ग, लीडेनबर्ग, वेरीनिगिंग, पीटर्सबर्ग, वेंटर्सडॉर्प, हाइडेलबर्ग, केप टाउन तथा स्प्रिंग्ससे आये हैं। मेरा तो खयाल है कि कार्यालयमें अभी और भी तार होंगे। अब मैं कुछ तार पढ़कर सुनाऊँगा। सभी तारोंका आशय ब्रिटिश भारतीय संघके पक्षमें तथा उपर्युक्त सभी स्थानोंमें कारोबार बन्द रखनेके निर्णयके प्रति सहानुभूति और समर्थन प्रकट करना है।

[तब श्री गांधीने तार पढ़कर सुनाये।]

इन तारोंसे प्रकट होता है कि ट्रान्सवालमें भारतीय सर्वथा एकमत हैं। अध्यक्ष महोदयकी जेल-यात्रासे जाहिर होता है कि मुसलमानों तथा हिन्दुओंके बीच कोई मतभेद नहीं है, और यह देखते हुए कि जिस मुसीबतसे आज समाजका एक हिस्सा घिरा हुआ है उससे दूसरे हिस्से भी घिरे हुए हैं, दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाली भारतकी सभी जातियाँ आज एक सर्वसामान्य उद्देश्यके लिए संगठित, और भलीभाँति संगठित हो गई हैं। सज्जनो, हमारी अपनी स्थिति बिलकुल स्पष्ट है। हमारे मित्रोंने हमें सलाह दी है, हमसे अनुरोध किया है कि हम अभी प्रतीक्षा करें, कोई कड़ी कार्रवाई न करें, और कोई ऐसा कदम न उठायें जिसका निराकरण आगे चलकर नहीं हो सके। इस सलाहका मतलब मेरी समझमें कतई नहीं आता। मैं यह जानता हूँ कि जबतक हमें ठीक-ठीक यह नहीं मालूम हो जाता कि सरकार कौन-सा कानून पास करना चाहती है, तबतक पंजीयन प्रमाणपत्र जलानेके प्रश्नके बारेमें अन्तिम रूपसे निर्णय नहीं करना चाहिए। इससे आगे जाना समाजके लिए असम्भव है। सरकारने स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र लेनेवालों तथा उन लोगोंके बीच, जो अब इस देशको वापस आ रहे हैं और वापस आनेके हकदार हैं, भेद किया है। सरकार उनसे कानूनके आगे झुकनेको कहती है। इन लोगोंके लिए ऐसा-कुछ करना सर्वथा असम्भव है, और विशेषकर तब, जबकि समझौतेमें उनके अधिकारोंको सुरक्षा प्रदान की गई है। तब इन लोगोंको क्या करना है? क्या जबतक इन्हें पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं मिलते, ये व्यापार न करें? क्या इन्हें अपने साथी देशभाइयोंकी दयापर जीना है? मैं मानता हूँ कि यह सर्वथा असम्भव है। तब इन लोगोंको ईमानदारीसे अपनी जीविका अर्जित करनी है, और ब्रिटिश भारतीय संघके लिए इन लोगोंको जो एकमात्र सलाह देना सम्भव था वह यह है कि परवाना अधिकारी द्वारा परवाने देनेसे इनकार करनेपर भी ये व्यापार करें।[1] फेरीवालों और दूकानदारोंकी भी, जिनके परवानोंकी अवधि ३० जूनको समाप्त हो गई, यही दशा है। अब उनसे कहा जा रहा है कि, जहाँतक परवानोंका सवाल है, वे एशियाई अधिनियमको स्वीकार करेंगे तभी उन्हें, परवाने जारी किये जायेंगे। तब क्या उन्हें हाथपर हाथ धरे बैठे रहना है? क्या वे तबतक व्यापार नहीं करें, जबतक

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ३२१-२४।

कि सरकार इस सम्बन्धमें कोई कानून नहीं बना लेती? प्रतीक्षा हम नहीं कर रहे हैं और न कर ही सकते हैं। हमारे लिए ऐसा कोई रवैया अपनाना सर्वथा असम्भव है। हम ऐसा कोई कदम नहीं उठा रहे हैं, जो बदला न जा सके, लेकिन हम ऐसे हर उपायसे काम ले रहे हैं, जो हमारी आत्म-रक्षाके लिए अनिवार्य है। अगर हमें इस देशमें सच्चे नागरिकोंकी तरह रहना है, अगर हमें ईमानदारीसे अपनी जीविका अर्जित करनी है, तो यह कतई आवश्यक है कि हम अपने धन्धे चलाते रहें। इन धन्धोंके लिए जरूरत है परवानोंकी। अगर सरकार ये परवाने जारी नहीं करती तो हमारे लिए इनके बिना व्यापार करना जरूरी है। कुछ फेरीवाले परवाने ले चुके हैं। मैं समझता हूँ, ३०० लोगोंको एशियाई कानूनके आगे झुके बिना परवाने प्राप्त हुए हैं। चार सौ लोगोंने अँगूठेके निशान देकर परवाने लिये हैं। वे नहीं जानते थे कि वे क्या कर रहे हैं। वे नहीं जानते थे कि अँगूठेके निशान देकर वे एशियाई अधिनियमको स्वीकार कर रहे हैं। शेष लोगोंको अब यह ज्ञात हो गया है कि सरकारका मंशा क्या-कुछ करनेका है। मैं फिर पूछता हूँ, क्या वे हाथपर हाथ धरे बैठे रहेंगे और अपने धन्धे नहीं चलायेंगे? यह सर्वथा असम्भव है। कोई मुझसे पूछ सकता है कि गण्यमान्य भारतीयोंको फेरी लगाना प्रारम्भ करके बात क्यों बढ़ानी चाहिए। उत्तर स्पष्ट और सीधा-सादा है — जब ये देखते हैं कि फेरीवाले, जो शायद स्थितिको उतनी अच्छी तरह नहीं समझते जितनी ये नेतागण समझते हैं, मुसीबत उठा रहे हैं, तब इन लोगोंके लिए अपने घरोंमें चुपचाप बैठे रहना सम्भव नहीं है। यदि अपने गरीब देशभाइयोंको रास्ता दिखानेके लिए, उन्हें सही स्थिति बतानेके लिए, नेतागण आगे बढ़कर फेरी लगाना शुरू नहीं करते तो, मैं मानता हूँ, वे कर्तव्य-च्युत होंगे।

मुझे मालूम हुआ है, सुपरिंटेंडेंट वरनॉन और एक जासूस आज तीसरे पहर भारतीय समाजके कुछ तमिल लोगोंसे मिले थे। श्री वरनॉनने उन लोगोंसे अपने पंजीयन प्रमाणपत्र दिखानेको कहा, और मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि उन अधिकारियोंमें से किसी एकने सख्त गाली-गलौजसे भी काम लिया। पता चला है कि सुपरिंटेंडेंट वरनॉनने एक ऐसे भद्दे शब्दका प्रयोग किया जिसे मैं दुहरा भी नहीं सकता। और मैं उसे दुहराऊँगा भी नहीं। मैं तो कहता हूँ, अगर मेरे देशभाइयोंमें अपने विश्वासोंपर अमल करनेकी ताकत है, तो एक भी भारतीय अपना पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं दिखायेगा। ब्रिटिश भारतीय संघने ये सारे पंजीयन प्रमाणपत्र अपने पास जमा करनेको माँगे हैं, ताकि समाजके गरीब और निचले तबकेके लोगोंकी सुरक्षा हो सके, और अगर उन्हें पंजीयन प्रमाणपत्र न दिखानेके लिए जेल भी जाना पड़ा, तो वे जायेंगे और इस प्रकार पुलिसको शिष्टताका पाठ पढ़ायेंगे। जिस समय श्री सोराबजीको एक मासका सपरिश्रम कारावास दिया गया था, उस समय अदालतके सामने जो दृश्य उपस्थित हुआ था उसे मैं कभी नहीं भूलूँगा। अदालतके सामने, न्यायाधीशकी नजरोंके आगे जो धक्का-मुक्की और मारपीट हुई उसे मैं आसानीसे नहीं भूल सकता।[1] मैं नहीं भूल सकता कि सिपाहियोंने अकारण ही, ब्रिटिश भारतीयोंको बिना कोई चेतावनी दिये, किस बेरहमीसे उन्हें अदालत-घरके बरामदेसे जबरन निकाल बाहर किया। उससे स्पष्ट हो जाता है कि कैसा विकट संघर्ष हमारी राह देख रहा है। उससे यह भी प्रकट

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ३८२ और पाद-टिप्पणी १ पृष्ठ ३८३। साथ ही देखिए "सोराबजी शापुरजीका मुकदमा — ३", पृष्ठ ३७०-७१।

होता है कि, अगर ट्रान्सवाल तथा दक्षिण आफ्रिकाके नागरिकोंकी नजरोंमें नहीं तो, पुलिसकी नजरोंमें हम कितने तुच्छ हैं। तब ब्रिटिश भारतीयोंके लिए आवश्यक है कि शान्तिपूर्वक और शोभनीय ढंगसे, धैर्यपूर्वक तथा सर्वथा कानूनी तरीकेसे यह दिखा दें कि वे यहाँ ऐसे अपमान सहन करनेके लिए नहीं हैं, अपनी स्वतन्त्रताको पदमर्दित होते देखनेके लिए नहीं हैं। और यदि ये सारी बातें महामहिम सम्राट्के नामपर की जाती हैं तो हम भी यहाँ उनका विनम्र विरोध करनेके लिए, सारी दुनियाको यह दिखा देनेके लिए तैयार हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यमें भी, ब्रिटिश झंडेके नीचे भी, क्या-कुछ घटित होना सम्भव है। हमारा लालन-पालन ब्रिटिश परम्पराओंके बीच हुआ है। हमें बताया गया है कि ब्रिटिश साम्राज्यमें एक मेमना भी स्वतन्त्र है। "बाघ और बकरीको एक घाट पानी पिलाया जाता है", यह एक पद्यका शब्दानुवाद है जो मुझे बचपनमें ही, जब मैं स्कूल जानेकी उम्रका था, पढ़ाया गया था। मैं अबतक उस पद्यको नहीं भूल सका हूँ। मैं कहता हूँ, अब ऐसी बातें सम्भव नहीं हैं कि ब्रिटिश भारतीयोंपर कोई सिर्फ इसलिए थूके, उनके साथ मात्र इसलिए दुर्व्यवहार करे कि वे सीधे-सादे हैं, विनम्र हैं और किसी दूसरेके अधिकारपर हाथ नहीं डालते। और अब हमें उस एशियाई अध्यादेशके विरुद्ध लड़ना है, जिसका मंशा हमें अपनी रही-सही प्रतिष्ठासे भी वंचित कर देना है। हम इन बातोंको महसूस करते हैं, इसीलिए आज अपने जेल जानेवाले देशभाइयोंका सम्मान करने एकत्र हुए हैं ताकि यहाँ उपस्थित भाइयोंको भी इससे इतना साहस मिले, उनमें इतना अधिक आत्म-सम्मानका भाव जगे कि वे जेल जा सकें, वैसे ही कष्ट झेल सकें। और यदि आपने ऐसा किया तो [समझ लीजिए कि] जितनी निश्चित यह बात है कि मैं यहाँ खड़ा हूँ उतना ही निश्चित यह भी है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब हम अपनी स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करेंगे, जब ब्रिटिश नागरिकताके साथ जुड़े समस्त अधिकार हमें फिर मिलेंगे, जब ट्रान्सवालमें भी हम मनुष्यके रूपमें मनुष्यकी तरह सम्मानित होंगे, और हमारे साथ कुत्तोंका-सा बर्ताव नहीं किया जायेगा।[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-८-१९०८

१. इसके बाद गांधीजीने दूसरा भाषण गुजरातीमें किया जिसका पाठ उपलब्ध नहीं है।

२३५. पत्र : "इंडियन ओपिनियन" को[1]

जोहानिसबर्ग
जुलाई २४, १९०८

सम्पादक
"इंडियन ओपिनियन"

महोदय,

मैं अखबारोंमें प्रकाशित आर० लल्लू बनाम ताजके मुकदमेकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।[2] सौभाग्यसे सर्वोच्च न्यायालय इस मुकदमेपर अबतक विचार कर चुका है। इस मामलेसे स्पष्ट होता है कि जो एशियाई शैक्षणिक जाँचमें खरे उतर सकते हैं, प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमसे उनके प्रवेशपर रोक नहीं लगती। लल्लूके विरुद्ध जो सम्मन्स जारी किया गया था, उसमें उसपर प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके खण्ड २५ के उल्लंघनका आरोप लगाते हुए कहा गया था कि चूँकि वह किसी यूरोपीय लिपिमें नहीं लिख सकता, अपने भरण-पोषणके पर्याप्त साधन उसके पास नहीं हैं और वह एक निषिद्ध प्रवासीका नाबालिग बच्चा है, इसलिए वह खुद भी निषिद्ध प्रवासी है। अर्थात्, यदि उसके पास अपनी जीविका कमानेके साधन होते और वह शैक्षणिक कसौटीपर पूरा उतरता तो उसे देशमें प्रवेश करनेसे रोका नहीं जा सकता था। सर विलियम सॉलोमनने फैसला देते हुए कहा :

> **सार्जेंट मैन्सफील्डने गवाहीमें कहा है कि कैदी किसी यूरोपीय भाषामें कोई कागज नहीं लिख सकता, और इस तथ्यसे इनकार भी नहीं किया गया है। सार्जेंट मैन्सफील्ड अभियुक्तसे लिखनेके लिए कहकर अथवा उसके इतना कह देनेसे कि वह लिख नहीं सकता, यह सूचना प्राप्त कर सकता था। उस हालतमें उससे अंग्रेजी लिपिमें कोई दस्तावेज लिखनेके लिए कहना हास्यास्पद होता।**

अतएव यह स्पष्ट है कि विद्वान न्यायाधीशके अनुसार प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमसे उन एशियाइयोंके देशमें आनेपर प्रतिबन्ध नहीं लगता जो शैक्षणिक दृष्टिसे योग्य हैं। इस फैसलेको देखते हुए ब्रिटिश भारतीयोंका दावा पूरी तरह सिद्ध हो जाता है और श्री सोराबजीके जेल जानेसे वह और भी मजबूत हो जाता है। श्री सोराबजी प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत वैध रूपसे प्रविष्ट हुए थे, किन्तु एशियाई अधिनियमके आगे न झुकनेके कारण ही अपराधी माने गये थे।

इसलिए ब्रिटिश भारतीय समाज यदि प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत शिक्षित एशियाइयोंके प्रवेशके अधिकारको बनाये रखनेपर जोर देता है, तो उसकी इस माँगमें नई

१. यह "प्रवासका प्रश्न" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।
२. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ४०६।

बात नहीं है। जनरल स्मट्स यह चाहते हैं कि ब्रिटिश भारतीय उस अधिकारको रद करना स्वीकार कर लें। उनकी इस बातका विरोध करना भारतीयोंका पवित्र कर्तव्य है।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–८–१९०८

२३६. पत्र : जेल-निदेशकको[1]

[जोहानिसबर्ग]

जुलाई २४, १९०८

[जेल-निदेशक

प्रिटोरिया

महोदय,]

आठ ब्रिटिश भारतीय कैदी, जिन्हें बिना परवानाके फेरी लगानेके कारण कैदकी सजा हुई थी, आज रिहा किये गये। उन्होंने हमारे संघको बताया कि जोहानिसबर्ग कारागारमें सुबहके खानेमें उन्हें मकईका दलिया दिया जाता था जिसे वे बिलकुल नहीं खाते थे; क्योंकि उसे खानेकी उन्हें कभी भी आदत नहीं थी। फलस्वरूप उन्हें दोपहरको सिर्फ चावल तथा शामको सेमसे, यदि वह मिले तो, सन्तोष करना पड़ता था। इन लोगोंको सख्त कैदकी सजा हुई थी।

मेरा संघ सविनय आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करता है कि समग्रतः ब्रिटिश भारतीय मकईके दलियाके बिलकुल आदी नहीं हैं; और एकाएक उस भोजनको अपना-लेना उनके लिए बहुत ही कठिन है। एशियाई संघर्षके सम्बन्धमें और भी बहुत-से भारतीय कैद भोग रहे हैं। उनका ध्यान रखते हुए मेरे संघकी आपसे यह माँग समुचित ही है कि ब्रिटिश भारतीयोंकी खूराक बदल दी जाये। मेरा संघ किसी अनुग्रहकी माँग नहीं करता, वरन् बदलेमें केवल ऐसी खूराककी माँग करता है, जो ब्रिटिश भारतीयोंकी आदतके अनुकूल हो। यह विषय बहुत महत्त्वका है, इसलिए यदि आप इसपर तुरन्त ध्यान देनेकी कृपा करें तो मेरा संघ आभारी होगा।

[ईसप मियाँ

अध्यक्ष,

ब्रिटिश भारतीय संघ]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–८–१९०८

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, २९१/१३२ से भी।

१. अनुमानतः इसका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था।

२३७. सोराबजी शापुरजी अडाजानिया

श्री सोराबजी शापुरजी अडाजानियाको एक मासका सपरिश्रम कारावास मिला है।[1] इसे हम सोराबजीका सम्मान मानते हैं। ऐसा समय नजदीक आता चला जा रहा है जब यह जाननेके लिए कि अमुक भारतीयके पास कितनी उपाधियाँ हैं, यह पूछा जायेगा कि वह देशके लिए कितनी बार जेल गया है। अन्य मामलोंकी अपेक्षा श्री सोराबजीका मामला भिन्न है और उन्हें अधिक सम्मान देनेवाला है। जेल जानेवाले भारतीयोंके मामलोंमें दूसरोंके अधिकारोंके साथ-साथ उनके भी हकोंका समावेश रहा करता था। वे ट्रान्सवालके निवासी थे; श्री सोराबजी ट्रान्सवालके निवासी नहीं हैं। उन्हें अपना निजी कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं करना है। श्री सोराबजी केवल देशके ही लिए — विशेषतया शिक्षित भारतीयोंके लिए — जेल गये हैं। दूसरे भारतीयोंको कठिन कारावास नहीं दिया गया था; श्री सोराबजीको कठिन कारावासकी सजा हुई है। इन सब कारणोंसे श्री सोराबजी तथा उनके कुटुम्बीजनोंको साधुवाद देना उचित है। श्री सोराबजीको सच्चा मुबारकबाद देना तो यही होगा कि भारतीय दृढ़ बने रहें और वे जिस उद्देश्यको लेकर जेल गये हैं उसको सफल बनायें। उनके पीछे अन्य भारतीय भी जेल जायें। इसीका नाम सच्चा मुबारकबाद है।

श्री सोराबजीके तथा उनके कुटुम्बीजनोंके प्रति हम समवेदना प्रकट नहीं करते। कारावास हमारे नसीबमें है। उसमें हमारी स्वतन्त्रताका बीज है, इसलिए जेल जानेवालोंके प्रति समवेदना प्रकट करनेकी जरूरत नहीं रह जाती।

कारावासके कष्टको सुख मानना चाहिए। जब इस प्रकारका साहस और ऐसे विचार हममें भर जायेंगे तब ही जो करना है सो कर सकेंगे।

श्री सोराबजीका चित्र इस अंकके साथ दिया जा रहा है। श्री सोराबजीके साहसकी सराहना सभी करेंगे। मात्र संग्रामके [सुखके] लिए ही मैदानमें उतरनेवाले बिरले ही होते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–७–१९०८

१. देखिए "सोराबजी शापुरजीका मुकदमा — ३", पृष्ठ ३७०-७१

२३८. नेटालमें भारतीय व्यापारी

रिचमंडवाले श्री हाफिजीके मामलेमें हम जो-कुछ पहले लिख चुके हैं वैसा ही हुआ है।[1] परवाने देनेवाली अदालतने गोरोंकी बात सुनकर श्री हाफिजीका परवाना रद कर दिया है। नेटालके अथवा अन्य किसी उपनिवेशके भारतीयोंके सामने एक ही रास्ता है। वह है सत्याग्रही बन जाना। जबतक ऐसा न किया जाये तबतक नेटालके भारतीयोंको चैनसे नहीं बैठना है।

नेटालकी संसदमें हाल ही में होनेवाले वाद-विवादमें जिन सदस्योंने भाग लिया था, उनमेंसे अधिकतरने यह कहा कि भारतीय व्यापारियोंको निकाल बाहर करना चाहिए। श्री वाइलीने[2] भी इसी आशयकी बातें कही थीं। ऐसी संसदको आवेदनपत्र भेजना सौजन्यके रूपमें उचित ही माना जायेगा। परन्तु इस आवेदनपत्रको सत्याग्रह संघर्षका पहला कदम माना जाना चाहिए। वह कारगर तभी होगा जब उसके पीछे सत्याग्रह-रूपी तोप मौजूद हो।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–७–१९०८

२३९. पत्र : जे० जे० डोकको[3]

[जोहानिसबर्ग]

प्रिय श्री डोक,

आपने मुझसे जो प्रश्न किये हैं, वे बहुत ही उपयुक्त और उचित हैं। यदि जनताको एशियाई प्रश्नके विषयमें पर्याप्त दिलचस्पी लेकर यह समझनेके लिए प्रेरित किया जा सके कि हम क्या चाहते हैं तो, इतने भरसे आधी कठिनाई हल हो जायेगी।

ब्रिटिश भारतीयोंके दृष्टिकोणसे कहें, तो ब्रिटिश भारतीयोंने बहुत पहले यह परिस्थिति स्वीकार कर ली है कि एशियाई प्रवासपर कठोर नियन्त्रण होना चाहिए; किन्तु यदि उप-

१. देखिए, "नेटालमें परवाने", पृष्ठ ८४-८५ और "नेटालका परवाना कानून", पृष्ठ २८७।

२. श्री वाइली, के० सी०; न्यायवादी और विधानसभाके सदस्य। वे व्यापारिक परवाना अधिनियमके आंशिक रचयिता थे; उन्होंने नेटालके ज़ूलू उपद्रवका दमन करनेमें प्रमुख भाग लिया था। श्री गोगाके प्रमुख वकीलकी हैसियतसे उन्होंने उनकी ओरसे पैरवी करते हुए मुकदमेके दौरानमें अदालतसे कहा था कि "एक भारतीयको भी न्याय और समान व्यवहार पानेका अधिकार है।" देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ३६५।

३. पादरी जोज़ेफ़ डोकने अपने पत्रमें गांधीजीसे तीन प्रश्न पूछे थे : (१) अधिकतर उपनिवेशियोंको डर है कि एशियाइयोंपर प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम लागू हो जानेपर भी अनेक शिक्षित व्यक्ति उपनिवेशमें प्रवेश पा जायेंगे। क्या कोई ऐसा तरीका है जिससे आप इस आपत्तिका निवारण कर सकें? (२) क्या यह सच है कि आपकी मुख्य आपत्ति यह है . . . कि एशियाई अधिनियम संशोधन विधेयकको रद करनेसे पहले 'दरवाजा बन्द' कर देनेकी नीतिपर आपकी सम्मतिका आग्रह करके [जनरल स्मट्स] यह चाहते हैं कि आप अपने सभी शिक्षित भाइयोंके आनेपर प्रतिबन्ध लगानेके हामी हो जायें? (३) ". . . क्या सरकारके लिए यह आसान न होगा कि वह . . . दरवाजेको पूरी तरह बन्द करनेके लिए कानून पेश करे? यदि ऐसा हो तो एशियाई क्या कार्रवाई करेंगे?"

निवेशवासी यह माँग करें कि अधिक-से-अधिक उच्च शिक्षा प्राप्त भारतीयोंको भी उपनिवेशमें प्रवेश नहीं करना चाहिए, तो वे केवल प्रवेशपर कठोर नियन्त्रण ही नहीं, सम्पूर्ण निषेधकी आवश्यकता मानते हैं। ब्रिटिश भारतीयोंने जो प्रस्ताव रखा है वह परिणाममें सम्पूर्ण निषेधके समान ही है, और फिर भी वह एकदम सम्पूर्ण निषेध नहीं है। मेरी समझमें सम्पूर्ण निषेधमें यह इच्छा निहित है कि ब्रिटिश भारतीयोंकी व्यापारिक स्पर्धा उन्हीं लोगोंतक मर्यादित रहे जो उपनिवेशके निवासी हो चुके हैं। यदि ऐसा हो तो यह इच्छा, प्रवेशको केवल उन शिक्षित एशियाइयोंतक मर्यादित करके पूर्ण रूपसे पूरी हो जाती है, जो ऊँचे दर्जेका शिक्षण प्राप्त कर चुके हैं। दूसरे शब्दोंमें, वह शिक्षितोंके पेशे करनेवाले लोगोंतक मर्यादित किया जा सकता है। यह कहनेकी कदाचित आवश्यकता नहीं है कि ट्रान्सवालमें एशियाई समाज तबतक स्वतन्त्र और स्वस्थ नहीं रह सकता जबतक कि उसमें उसके अपने ही कुछ वकील, कुछ चिकित्सक, कुछ शिक्षक और कुछ धर्मोपदेशक जैसे लोग न हों। देशमें इनका प्रवेश किसी कृपाके कारण नहीं, किन्तु अधिकारके बलपर होना चाहिए। यूरोपीयोंसे इनकी किसी प्रकारकी स्पर्धा नहीं हो सकती। उलटे, यह मान्य कर लेनेपर कि वे वैसे ही लोग होंगे जैसे चाहिए, वे ट्रान्स-वालके भारतीय समाजके निरन्तर विकासमें सहयोग दे सकते हैं और उसके लिए बहुत अधिक उपयोगी बन सकते हैं। उपनिवेशियोंके लिए भी उनका उपयोग हो सकता है। इसे करनेका एकमात्र तर्कसंगत उपाय यही है कि प्रवासी अधिनियमको जैसेका तैसा रहने दिया जाये। शिक्षित मनुष्योंकी शिनाख्तकी कोई आवश्यकता नहीं हो सकती, इस साधारण कारणसे एशियाई विधेयकका सिद्धान्त ऐसे लोगोंपर लागू नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षित भारतीयोंके सम्पूर्ण निषेधका समावेश करके कानूनमें परिवर्तनपर हमारी स्वीकृति लेना एक अतिरिक्त आपत्ति-जनक बात तो है ही, वह मेरी रायमें अलंघ्य भी है। निश्चय ही उपनिवेशकी विधानसभा किसी भी समय बिना हमारी स्वीकृतिके निषेधका कानून प्रस्तुत कर सकती है। व्यक्तिगत रूपमें सम्पूर्ण निषेधका तो मैं हर तरह विरोध करूँगा और अपने देशवासियोंको ऐसे कानूनके विरुद्ध अनाक्रामक प्रतिरोध करनेको कहूँगा। मैं उन्हें अपने साथ लेकर चल सकूँगा या नहीं, यह फिलहाल कहना मेरे लिए कठिन है। ऐसे किसी भी कानूनके विरोधमें अनाक्रामक प्रतिरोधका अर्थ तो यह होगा कि भारतीयोंका मेरे द्वारा वर्णित शिक्षित व्यक्तियोंके स्वाभाविक सहयोगसे वंचित होकर रहनेकी अपेक्षा ऐसे देशमें न रहना अधिक अच्छा होगा। मेरी रायमें अनाक्रामक प्रतिरोधका अर्थ स्वयं अपने ऊपर एक तीव्र कष्ट ले लेना है। इसका मंशा यह सिद्ध करना है कि हेतु न्यायोचित है; और इस प्रकार उपनिवेशियोंके मनमें इस सत्यका साक्षात्कार कराना है। मैं आशा करता हूँ कि मैंने अपनी बात स्पष्ट कर दी है।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-७-१९०८

२४०. पत्र : खुशालचन्द गांधीको

जोहानिसबर्ग
जुलाई २६, १९०८

आदरणीय खुशालभाई,

यह पत्र आधी रातको लिख रहा हूँ। ज्यादा लिखनेके लिए समय नहीं है। आप मुझे "अपना" खयाल रखनेकी सीख देते हैं, लेकिन हमें यह शिक्षा दी गई है कि आत्मा मरती नहीं, मारती नहीं और न किसीको मरवाती है।[1] यदि "अपना" से आपका मतलब अपने शरीरका खयाल रखना है तो उसे श्री भगवान्ने मोह कहा है। तब बताइए मैं किसका खयाल रखूं? मैं तो आत्माका ही खयाल रखूँगा, अर्थात् आत्म-बोध प्राप्त करनेकी भरसक कोशिश करूँगा। ऐसा करनेमें शरीरका त्याग कर सकनेकी शक्ति तो हममें आनी ही चाहिए।

मुझे यह सब इसलिए लिखना पड़ रहा है कि बहुत सोचनेपर मैं देखता हूँ, हमारी कुछ कहावतें और प्रचलित सीख-सिखावन सर्वथा धर्म-विरुद्ध हैं। जिस पुस्तकको[2] हम सर्वोपरि मानते हैं उसीको व्यवहारमें बिलकुल किनारा कर देते हैं। अतः, मेरा विचार यह है कि मुझमें जितनी भी ताकत है, सब ऐसे आचरणके विरुद्ध लगा दूं।

मोहनदासके दण्डवत्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें पेंसिलसे लिखी मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ४८४०)से।
सौजन्य : छगनलाल गांधी।

२४१. भाषण : जोहानिसबर्गकी सार्वजनिक सभामें

[जुलाई २६, १९०८][3]

आज हम लोग यहाँ किस लिए एकत्रित हुए हैं, यह आपको अध्यक्ष महोदयने पूरी तौरसे समझा दिया है। हम लोग यहाँ जेलसे रिहा होकर वापस आनेवालोंका सम्मान करनेके हेतु एकत्रित हुए हैं। ये सज्जन दुबारा जेल जानेको तैयार हैं। अन्य सब सज्जनोंको भी ऐसी ही दृढ़ताका परिचय देना है। और यदि हम इतनी दृढ़ताका परिचय देकर एक बार जेलकी कोठरियोंको भर देंगे, तो सरकार स्वयं ही पराजित हो जायेगी। हम लोगोंके दुःख रूपी तालोंको खोलनेकी चाबी कारावास है। इसलिए प्रत्येक भारतीयको तैयार रहनेकी जरूरत है। यहाँ जो भाई एकत्रित हुए हैं उनमेंसे प्रत्येकमें पर्याप्त दृढ़ता नहीं है। आगे,

१. भगवद्गीता, २–१९, २०।

२. यह संकेत भी 'गीता' की ओर है।

३. यह सभा इमाम बावजीर तथा अन्य लोगोंके शनिवार (जुलाई २५, १९०८) को जेलसे छूटनेपर उनका सम्मान करनेके लिए आयोजित की गई थी। देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ४०२-०३।

शायद, ज्यादा लम्बी सजा हो सकती है, इसलिए हम लोगोंको उचित है कि साहस बनाये रहें। वेरीनिगिंगमें सभी व्यापारियोंने फेरी लगाना शुरू कर दिया है। उन्हें सरकारने लिखित रूपमें सूचित किया है कि यदि वे परवानोंके बिना फेरी लगायेंगे तो उन्हें गिरफ्तार किया जायेगा। हम लोगोंपर आनेवाले दुःखोंके निवारणका एकमात्र रास्ता जेल ही है। इसलिए हमें अपनी नजरोंके सामने सदा जेल ही रखना है। सरकार स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंपर कानून लागू न करके औरोंपर करना चाहती है — यह बात भी एक प्रकारका लालच प्रस्तुत कर रही है। भारतीय समाजको यह समझना चाहिए कि अब सरकार उसके भी दो वर्ग कर रही है। यह कितनी अनुचित बात है। मैं प्रत्येक भारतीयको सलाह दूँगा कि अगर एशियाई कानून बरकरार रह जाये, तो वह मरते दम तक संघर्ष करता रहे। अभीतक लोगोंसे परवाने और पंजीयन प्रमाणपत्र पर्याप्त संख्यामें प्राप्त नहीं हो पाये हैं। इसलिए इन सबका आ जाना जरूरी है। मैं यह सुझाव भी दूँगा कि फोक्सरस्टमें अँगूठोंके निशान न दिये जायें। अब हम तो जेलसे लौटकर आनेवालोंका सम्मान हुआ तभी मानेंगे जब हम सब भी जेल जायें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–८–१९०८

२४२. पत्र: ए० कार्टराइटको

[जोहानिसबर्ग
जुलाई २७, १९०८]

प्रिय श्री कार्टराइट,

श्री हॉस्केनने अत्यन्त कृपा करके मुझे वह एशियाई स्वेच्छया पंजीयन विधेयक दिखाया है, जिसे जनरल स्मट्स प्रस्तुत करना चाहते हैं। यदि मैं भारतीय समाजका स्वभाव अच्छी तरह जानता हूँ, तो मुझे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वह इसे कभी स्वीकार नहीं करेगा। यह स्वेच्छया पंजीयन करानेवालेको परोक्ष रूपसे उसी श्रेणीमें रखता है जिसमें अधिनियम स्वीकार कर चुकनेवाले लोग हैं। मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करता हूँ कि इसमें युद्धसे पहलेके शरणार्थियोंका खयाल ही नहीं किया गया है, चाहे उनके पास ३ पौंडी डच पंजीयन प्रमाणपत्र हों या न हों। यह उन लोगों तक के दावे अस्वीकार कर देता है जिनके पास शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अन्तर्गत अनुमतिपत्र हैं और जिन्हें इस बिनापर प्रवेशकी माँग करनेका अधिकार है; यह उन्हें एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन प्रमाणपत्र लेनेपर बाध्य करता है। मेरे विचारमें यह विधेयक एशियाइयोंकी बुद्धिका मनमाना अपमान है। स्पष्ट है कि यह एशियाइयोंको ऐसे बच्चोंका समूह समझता है जिन्हें गोलियोंपर तनिक-सी पन्नी लपेट देकर खुश किया जा सकता है।

मैं जानता हूँ कि प्रगतिवादी दलने इस विधेयकपर विचार करने तथा इसके बाद जनरल स्मट्ससे परामर्श करनेके लिए एक समिति नियुक्त की है। इसलिए स्पष्ट है कि तुरुपके पत्ते इस दलके पास हैं। क्या यह दल, जिसने अपनेको इस नामसे अलंकृत कर

रखा है, अपने नामके अनुरूप उन पत्तोंको खेलेगा या ब्रिटिश भारतीयोंको बेसहारा छोड़ देगा। जैसा कि आप जानते हैं, सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिक, श्री चैपलिन तथा श्री लिड्सेने उस बैठकमें, जिसमें आप भी उपस्थित थे, इस तर्कको उचित माना था कि जिन लोगोंने हालके समझौतेके बाद फिरसे प्रवेश किया है और जिन्हें वैसा करनेका अधिकार है, उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए जैसा उन लोगोंके साथ होता है जो उस तारीखको ट्रान्सवालमें थे, और यह भी कि युद्धसे पूर्वके निवासियोंके अधिकारोंको भी स्वीकार कर लेना चाहिए। अब मेरे सामने जो विधेयक है वह इन सब बातोंपर पानी फेर देता है। यह विधेयक बहुत चतुराई भरा है; किन्तु, यदि आप मुझे कहनेकी अनुमति दें तो, यह एक धोखेबाजीसे भरा हुआ विधेयक भी है। इसके बलपर जनरल स्मट्स यह कह सकेंगे कि वे उन अधिकारोंको नहीं छीनते जो, वे दावा करते हैं, एशियाई कानून द्वारा सुरक्षित कर दिये गये हैं। धोखा यहींपर है; क्योंकि वे बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि एशियाई उस अधिनियमके अन्तर्गत कोई लाभ प्राप्त करना नहीं चाहते।

मैं आपको उस पत्रकी[1] नकल भेज रहा हूँ जो मैं प्रगतिवादी दलके मुख्य सदस्योंको लिख रहा हूँ।

आपका सच्चा,

श्री अल्बर्ट कार्टराइट
प्रिटोरिया क्लब
प्रिटोरिया

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८५२) से।

२४३. चैपलिनके नाम पत्रका सारांश[2]

जुलाई २७, १९०८

. . .श्री गांधीने श्री चैपलिनको एक और पत्र लिखा है। उसमें वैधीकरण विधेयकके मसविदेके अपर्याप्त होनेकी शिकायत है। प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम संशोधन विधेयकका उल्लेख भी है जिसपर बातचीत करनेको वे प्रिटोरिया बुलाये गये थे और जिसे जनरल स्मट्सने प्रकाशित कराया है। वे अपने इस मूल सुझावको मान लेनेका आग्रह करते हैं कि वैधीकरण प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके संशोधनसे ही हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस, ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ३७२२/०८।

१. उपलब्ध नहीं है।

२. यह अंश ट्रान्सवालकी घटनाओंके उस संक्षिप्त विवरणमें से लिया गया है जो रिचने अपने ६ अक्तूबर, १९०८ के पत्रके साथ उपनिवेश-कार्यालयको भेजा था।

२४४. रामस्वामी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा

[जोहानिसबर्ग
जुलाई २७, १९०८]

कल "डी" अदालतमें श्री पी० सी० डालमाहॉयने भारतीयोंके एक अन्य जत्थेके मुकदमेका निपटारा किया। इन लोगोंपर परवानेके बिना फेरी लगानेका अभियोग था। श्री क्रैमरने सरकारी पक्ष, और श्री गांधीने सफाई पक्षकी ओरसे पैरवी की।

सबसे पहले रामस्वामी नामक एक भारतीयके मामलेकी सुनवाई हुई।

सरकारी पक्षकी ओरसे औपचारिक सबूत पेश किये जानेके बाद, श्री गांधीने जोहानिसबर्ग नगरपालिकाके मुख्य परवाना निरीक्षक श्री एल० एच० जेफर्सनको जिरहके लिए बुलाया।

श्री गांधी : क्या आपको छूट प्राप्त व्यक्तियोंकी सूची मिली है?

[जेफर्सन :] चौदह लोगोंकी।

श्री गांधी : क्या आप उसे पेश करेंगे?

न्यायाधीश और सरकारी वकील, दोनोंने हस्तक्षेप किया और सूचीके पेश किये जानेपर आपत्ति की।

श्री क्रैमर : यदि अभियुक्तका नाम सूचीमें हो तो मुझे श्री गांधीकी माँगपर कोई आपत्ति नहीं है।

श्री जेफर्सन : वह सूचीमें नहीं है।

श्री गांधी : क्या इसका अर्थ यह है कि मैं यह कागज नहीं देख सकता?

न्यायाधीश [श्री जेफर्सनसे] : क्या इस कागजको दिखानेकी अनुमति आपको है?

[जेफर्सन :] जी नहीं।

श्री गांधी : किन्तु यह कागज तो सार्वजनिक होना चाहिए? क्या आपको अधिकारियोंकी ओरसे मना किया गया है?

न्यायाधीश (बीचमें टोकते हुए) : मैं इसकी अनुमति नहीं दूंगा, श्री गांधी; यह मेरा निर्णय है।

श्री गांधी : क्या आपको अधिकारियोंने मना किया है?

न्यायाधीश : श्री गांधी, मैं अन्तिम बार कहता हूँ, मैं इसकी अनुमति नहीं दूंगा। क्या आप मेरे अधिकारको चुनौती दे रहे हैं?

श्री गांधी : मैं आपके अधिकारको अस्वीकार नहीं कर रहा हूँ; किन्तु मेरे मुवक्किल गरीब लोग हैं, और श्री जेफर्सनको अदालतमें बुलानेके अर्थ हैं कि हर बार मेरे मुवक्किलोंको १० शिलिंगकी हानि होती है।

न्यायाधीश : मैं आपकी आपत्तिको अंकित कर लूंगा।

न्यायाधीशके प्रश्नके उत्तरमें गवाहने कहा कि मुझे यह सूची टाउन क्लार्कसे प्राप्त हुई थी, और टाउन क्लार्कको एशियाई पंजीयकसे मिली थी।

श्री गांधीने फिर पूछा कि क्या गवाहको अधिकारियोंने सूची देनेसे मना किया है।

गवाह: मुझसे कहा गया है कि मैं सूचीको प्रकाशित न करूँ। ये मुझे दिये गये सामान्य निर्देश हैं।

श्री गांधीने अदालतको सम्बोधित करते हुए कहा कि मेरी रायमें यह बड़ी विचित्र स्थिति है कि यहाँ एक ऐसी सूची है जिसका सम्बन्ध समूचे [भारतीय] समाजसे है, किन्तु उसे पेश नहीं किया जा सकता। मेरी समझमें यह बड़ी अजीब बात है कि उसे देखनेकी हमें इजाजत नहीं है। मुझे हर मुकदमेमें अपने मुवक्किलोंके खर्चपर श्री जेफर्सनको अदालतमें हाजिर होनेका आज्ञापत्र जारी कराना पड़ता है, ताकि यह निश्चित किया जा सके कि मेरे मुवक्किलोंका नाम उस कागजमें है या नहीं। मैं समझना चाहता हूँ कि अदालतको यह तय करनेका अधिकार है अथवा नहीं कि श्री जेफर्सन उस कागजको पेश करें।

न्यायाधीश (अभियुक्तसे): आपको पर्याप्त चेतावनी दे दी गई थी कि आप परवाना ले लें, और इसके बावजूद आपने वैसा नहीं किया। आपको १ पौंड जुर्माना या सात दिनकी सख्त कैदकी सजा दी जाती है।

अन्य मामले

इसके बाद एक अन्य भारतीय फेरीवालेपर उसी प्रकारका अभियोग लगाया गया। श्री गांधीने श्री जेफर्सनको फिर जिरहके लिए बुलाया, और एक बार फिर उन्होंने इस बातका विफल प्रयास किया कि सूची पेश की जाये। उन्होंने न्यायाधीशसे कहा कि सूची पेश करने सम्बन्धी उनके अनुरोधको अदालत अंकित कर ले।

अभियुक्तको १ पौंड जुर्माने या सात दिनकी सख्त कैदकी सजा सुनाई गई।

इसके बाद एक तीसरे फेरीवालेको कठघरेमें खड़ा किया गया और श्री गांधीने श्री जेफर्सनको फिर जिरहके लिए बुलाया।

श्री गांधीने कहा कि मैं अदालतके प्रति असम्मानपूर्ण बात नहीं कहना चाहता, किन्तु प्रत्येक मामलेमें श्री जेफर्सनको बुलाना मेरे मुवक्किलोंके लिए बहुत गम्भीर महत्त्व और व्ययकी बात है।

सरकारी वकीलने सुझाव दिया कि श्री जेफर्सनको सरकारी पक्ष बुलवाये।

श्री गांधीने कहा, चाहे सरकारी पक्ष ही श्री जेफर्सनको बुलवाये, मेरे मुवक्किलोंके प्रति अनुचित ही होगा; क्योंकि एशियाइयोंके नामोंमें अक्सर गड़बड़ी हो जाती है। मैं इस तथ्यका भी उल्लेख करना चाहता हूँ कि दण्डमें बढ़ौती कर दी गई है हालाँकि ये मामले सभी दृष्टिसे पहलेवाले मामलों जैसे ही हैं।

न्यायाधीशने १ पौंड जुर्माने या सात दिनकी सख्त कैदकी सजा दी।

हर मामलेमें अभियुक्तोंने जेल जाना स्वीकार किया।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, २८–७–१९०८

२४५. हरिलाल गांधी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा

[जोहानिसबर्ग
जुलाई २८, १९०८]

कल (जुलाई २८ को) श्री पी० सी० डालमाहॉयके सामने 'डी' अदालतमें छः और भारतीय फेरीवाले[1] पेश हुए। उनपर परवानेके बिना फेरी लगानेका अभियोग लगाया गया था। इनमें थम्बी नायडू और हरिलाल गांधी भी शामिल थे। श्री नायडू पिछली जनवरीमें श्री गांधीके साथ जेल गये थे। उन्हें बिना परवाना फेरी लगानेके कारण पिछले सप्ताह मंगलवारको भी ४ दिनकी कैदकी सजा हुई थी। हरिलाल गांधी श्री मो० क० गांधीके सबसे बड़े पुत्र हैं। कुछ दिन पहले उन्हें [पंजीयन न करानेके कारण] फोक्सरस्टमें गिरफ्तार किया गया था और प्रिटोरियामें हाजिर होकर पंजीयन प्रमाणपत्रके[2] लिए दरख्वास्त करनेकी चेतावनी दी गई थी। इसके बाद युवा गांधी जोहानिसबर्ग गये और उन्होंने तुरन्त ही फलोंकी फेरी लगाना शुरू कर दिया। ऐसे मौकेपर वे गिरफ्तार कर लिये गये।

श्री क्रमर सरकारी वकील थे, और बचाव पक्षकी पैरवी श्री गांधीने की।

पहला व्यक्ति जिसपर अभियोग लगाया गया, हीरा मारीजी नामक एक भारतीय था।

अभियुक्तके नगरपालिका क्षेत्रमें बिना परवाना फेरी लगानेके सम्बन्धमें रस्मी गवाही दी गई। अभियुक्तने अपराध स्वीकार कर लिया और उसे एक पौंड जुर्माने या सात दिनकी सख्त कैदकी सजा दी गई। इसके बाद (श्री मो० क० गांधीके पुत्र) हरिलाल मोहनदास गांधी, थम्बी नायडू और गोविन्दस्वामी कृष्णस्वामीको कटघरेमें उपस्थित किया गया। उन सभीको भारतीय फेरीवाले बताया गया। उन्होंने अपराध स्वीकार किया।

पुलिसके एक सार्जेंटने बयान दिया कि उसने इन अभियुक्तोंको गिरफ्तार किया था। ये ईस्ट बेलव्यूमें बिना परवानाके फलोंकी फेरी लगा रहे थे।

श्री गांधीने कहा कि मैं गवाह नहीं बुलाना चाहता, लेकिन कुछ कहना चाहता हूँ। कल मैंने सजामें वृद्धिके विरुद्ध आपत्ति करनेकी कमजोरी दिखाई थी,[3] परन्तु इस बार जेलमें कैदियोंके साथ मेरा लम्बा वार्तालाप हुआ है और मुझसे कठोरतम दण्डकी माँग करनेका अनुरोध किया गया है। अभियुक्तोंने जो-कुछ किया है, वह जान-बूझकर किया है। नायडूको बिना परवाना फेरी लगानेके कारण चार दिनकी कैदकी सजा हुई थी और वे पिछले सप्ताह जेलमें रहे थे।

१. नायडू, हरिलाल गांधी, हीरा मारीजी (**इंडियन ओपिनियन**में "मावजी" छपा है), कृष्णस्वामी, पिल्ले और नायकर। **इंडियन ओपिनियन**में एक चार्ली सिंगलीका भी उल्लेख है, जिनपर इसी प्रकारका अभियोग लगाया गया था और सजा हुई थी।

२. २८-७-१९०८ के **ट्रान्सवाल लीडर**में इस बातका उल्लेख है कि गांधीजीने एशियाई पंजीयकको लिखा था कि उनका पुत्र प्रिटोरियामें पंजीयन प्रमाणपत्रके लिए दरख्वास्त करनेका इरादा नहीं रखता है। यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

३. देखिए "रामस्वामी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ३९९-४००।

मजिस्ट्रेट : नायडूको पहले भी सजा हो चुकी है।

श्री गांधी : इस कानूनके अन्तर्गत इससे पहले दो बार सज़ा पा चुके हैं; एक बार बिना परवानाके फेरी लगानेके कारण।

श्री गांधीने आगे कहा कि अन्य दोनों व्यक्तियोंने भी मुझसे कठोर दण्ड माँगनेको कहा है। अगर हलकी सजा दी गई तो जैसे ही वे बाहर आयेंगे, उनका इरादा फिर वही काम दुहरानेका है। उन्हें लम्बी सजा देनेसे समयकी बचत होगी और उनके स्वास्थ्यके लिए भी लगातार लम्बी कैद अच्छी होगी।

नायडूको २ पौंड जुर्माने या १४ दिनकी सख्त कैदकी सजा दी गई और (हरिलाल) गांधी तथा कृष्णस्वामीको एक-एक पौंड जुर्माने या बदलेमें सात-सात दिनकी सख्त कैदकी सजा हुई।

इसके बाद अन्य दो ब्रिटिश भारतीयोंपर जिनके नाम सिन्नप्पा रंगस्वामी पिल्ले तथा सूप वीरस्वामी नायकर हैं, अभियोग लगाया गया।

उन्होंने अपराध स्वीकार किया, और उन्हें १–१ पौंड जुर्माने या सात-सात दिनकी सख्त कैदकी सजा दी गई।

प्रत्येक अभियुक्तने जेल जाना पसन्द किया।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, २९–७–१९०८

२४६. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

जेल जानेवालोंका सम्मान

इमाम अब्दुल कादिर बावजीर तथा उन अन्य सत्याग्रहियोंमें से, जिन्हें चार दिनकी जेलकी सजा मिली थी, कुछ शुक्रवारको और शेष शनिवारको[1] छूट कर आ गये हैं। जो शुक्रवारको छूटकर आये, वे उस दिन नहीं छूटेंगे, इस भूलमें कोई उन्हें लेने नहीं गया।

जब शनिवारको छूटनेवालोंको लेने गये तब मालूम हुआ कि यद्यपि उन्हें नियमके मुताबिक ९ बजे रिहा किया जाना था, वे ७ बजे छोड़ दिये गये थे। मंशा यह था कि इनसे मिलनेके लिए जुलूस न आये। किन्तु श्री कुवाड़िया[2] जल्दी जेलकी तरफ घूमने निकल पड़े थे, इसलिए जेलसे छूटे हुए लोग उन्हें मिल गये। उन्होंने उनका स्वागत किया और वे उन्हें फिरसे जेलकी तरफ ले गये। तबतक अन्य भारतीय भी आ पहुँचे, जिनमें श्री ईसप मियाँ, मौलवी मुख्तियार साहब, श्री उस्मान अहमद एफेंदी, श्री कैलनबैक, श्री पोलक, श्री डोक वगैरह थे। इमाम साहब तथा अन्य लोगोंने फूलके हारोंसे उनका स्वागत किया और बादमें सब लोग श्री ईसप मियाँके यहाँ गये। वहाँ श्री ईसप मियाँने सबको चाय-बिस्कुटका नाश्ता

१. जुलाई २५, १९०८।

२. हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अवैतनिक कोषाध्यक्ष।

कराया। बधाईके भाषण भी हुए। इमाम साहब तथा जेलसे लौटे हुए अन्य लोगोंने जवाबमें कहा कि चार दिनकी कैद कोई चीज नहीं थी। दूसरी बार वे सब लम्बी अवधिके लिए जेल जानेको तैयार हैं।

रविवारको अधिक सम्मान

जेलसे लौटे हुए लोगोंके स्वागतमें रविवारको हमीदिया मस्जिदके सामने एक बड़ी सार्वजनिक सभा हुई। उसमें उनका और सम्मान किया गया, तथा बहुत-से भाषण[1] हुए और अनेक लोगोंने अपने पंजीयन प्रमाणपत्र संघको सौंप दिये। सबने भरपूर उत्साह प्रकट किया।

इसके बाद, कुछ हिन्दुओंने मिलकर जलपान और गायनका आयोजन किया; जेलसे छूटे हुए लोग तथा निमन्त्रित सज्जन उसमें गये। लगभग ५० व्यक्तियोंके लिए मेजें लगाई गई थीं। उनमें चीनी संघके अध्यक्ष भी थे। श्री ईसप मियाँने प्रमुख स्थान ग्रहण किया। उनकी एक ओर इमाम साहब और दूसरी ओर श्री क्विन थे। श्री ईसप मियाँने भाषण करते हुए कहा कि ऐसे आयोजनोंसे हिन्दू-मुसलमानोंके बीच भाईचारा बढ़ता है। जलपानमें तरह-तरहके हरे मेवे, केक, मेसुल, जेली, चिवड़ा और चाय आदि पदार्थ परोसे गये थे।

गुरुवारकी सार्वजनिक सभा

अब सार्वजनिक सभाओंका पार नहीं है। इमाम साहब बुधवारको जेल गये और गुरुवारको सार्वजनिक सभा हुई।[2] समस्त दक्षिण आफ्रिकामें सब भारतीय दूकानें तथा व्यापार बन्द रखनेके लिए तार किये गये। सब जगहोंसे तार आये कि दूकानें बन्द रहेंगी।

हीडेलबर्गसे खबर मिली है कि वहाँ श्री खोटा, श्री जीन तथा श्री अबूमियाँ कमरुद्दीनने, मिडेलबर्गमें श्री अबा वरींदे और क्रूगर्सडॉर्पमें बहुतेरे भारतीय व्यापारियोंने संघकी बात नहीं मानी। किन्तु ठेठ रोडेशियासे सैलिसबरी तकमें इमाम साहबके सम्मानमें दूकानें बन्द रहीं।

यह सम्मान श्री बावजीरका नहीं था, उनके पदका था। हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके प्रमुख और मस्जिदके [पेश] इमामका एक घंटेको भी अपने हकके लिए जेल जाना बहुत बड़ी बात कही जायेगी। जिन्होंने खूनी कानून स्वीकार किया है, उनमें से भी बहुत-से लोगोंने दूकानें बन्द रखी थीं। इससे समाजका पारस्परिक स्नेह प्रकट होता है।

उसी दिन एक बड़ी सार्वजनिक सभा हुई। उसमें जोशीले भाषण हुए।

पुलिसका अत्याचार

जिस दिन सोराबजीको जेल हुई, उस दिन पुलिसने अत्याचार किया था। वह मामला अभी चल ही रहा था कि वरनॉन साहबने तमिल लोगोंको गालियाँ दीं और धमकाया। इसकी सार्वजनिक सभामें[3] खूब आलोचना की गई। यदि भारतीय हिम्मत बाँधे रहें, तो यह स्पष्ट है कि पुलिसका जुल्म टिक नहीं सकता।

१. गांधीजीके भाषणके लिए देखिए "भाषण: जोहानिसबर्गकी सार्वजनिक सभामें", पृष्ठ ३९६-९७।
२. यह सार्वजनिक सभा जुलाई २३, १९०८ को हुई। देखिए, "भाषण : सार्वजनिक सभामें", पृष्ठ ३८६-९०।
३. देखिए "भाषण: सार्वजनिक सभामें", पृष्ठ ३८८।

फिरसे धर-पकड़

शनिवारको श्री रामस्वामी, श्री अली मियाँ, श्री गोर मियाँ तथा कानजी मोरार पकड़े गये थे। इन सबको सात-सात दिनकी कैदकी सजा मिली है।[1] न्यायाधीशने कुछ द्वेष-भाव भी प्रकट किया। इससे लोग हारे नहीं; बल्कि और उत्साहित हुए हैं।

ये १४ लोग कौन हैं?

पहलेके एक मामलेके[2] समय परवाना निरीक्षकने अपने बयानमें कहा था कि उन्हें १४ व्यक्तियोंसे अँगूठेकी छाप न लेनेका निर्देश है। श्री गांधीने उसी समय बताया था कि उन्हें ऐसे एक व्यक्तिकी भी खबर नहीं है; और उन लोगोंको जेल भेजते हुए सरकारको डरना नहीं चाहिए, बल्कि सबको जेल भेजना ही चाहिए। ये १४ व्यक्ति कौन हैं, यह खोजनेके लिए श्री जेफर्सनके नाम गवाहीका सम्मन्स निकाला गया था, किन्तु मजिस्ट्रेटने, जो भरमाया हुआ था, तुरन्त कहा कि वह पत्र बतानेकी जरूरत नहीं है।[3] इसपर मजिस्ट्रेट तथा श्री गांधीके बीचमें कुछ गर्मागर्मी हो गई और अन्तमें प्रत्येक मामलेके समय श्री जेफर्सनको बुलाना निश्चित हुआ। श्री जेफर्सनसे पूछा जाता है कि उनकी सूचीमें प्रतिवादियोंमें से कोई है अथवा नहीं। इस प्रकार मामला जमता जा रहा है।

नई गिरफ्तारियाँ

सोमवारको बहुत-से भारतीय, पकड़े जानेकी आशासे, टोकरियाँ लेकर निकल पड़े थे। उनमें से बहुतकी आशा व्यर्थ हुई। किसीने उन्हें नहीं पकड़ा। चीनी [संघ] के अध्यक्ष तथा अन्य कुछ चीनी भी निकले थे। उन्हें किसीने नहीं पकड़ा।

श्री थम्बी नायडू आज शनिवारको ही निकले। वे बादमें पकड़ लिये गये। एक जगह नहीं पकड़ा, तो वे दूसरी जगह गये। अन्तमें २ मीलकी दूरीपर गिरफ्तार हो गये। गिरफ्तार लोगोंमें वे स्वयं, चार्ली सिंगली, वीरासामी नायडू, कुरुमुतु पिल्ले तथा हरिलाल गांधी हैं। इन सबने जमानतपर छूटनेसे इनकार कर दिया है।

जेलके हालचाल

इमाम साहब इत्यादिने जेलके जो हालचाल सुनाये वे जानने योग्य हैं। सबको पहननेके लिए चप्पल तथा गर्म मोजे मिलते हैं। दो ऊनी और दो सूती कुर्ते मिलते हैं। रातको ओढ़नेके लिए तीन कम्बल तथा [सोनेके लिए] लकड़ीका तख्त मिलता है। इसपर गोने अर्थात् बोरे बिछे होते हैं; इससे ठण्ड बिलकुल नहीं लगती। खानेके लिए दोपहरको चावल, साँझको सेम और आलू और हफ्तेमें तीन बार पुपु। सवेरे सदा पुपु दी जाती है। भारतीय पुपु पसन्द नहीं करते इसलिए जेलके वरिष्ठ अधिकारियोंको पत्र[4] लिखे गये हैं और आशा की जा सकती है कि कुछ ही दिनोंमें खुराकका प्रबन्ध ठीक हो जायेगा। जेलमें जाते ही जूते, मोजे नहीं मिलते; इसलिए कुछ घंटों तक सर्दीमें पाँव खुले रखना पड़ा था और इस कारण

१. देखिए "रामस्वामी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ३९९-४०० ।
२. देखिए "बावज़ीर, नायडू तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ३८०-८२ ।
३. ऐसा एक दूसरे मुकदमेमें हुआ था। देखिए "रामस्वामी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ३९९-४०० ।
४. देखिए "पत्र: जेल-निदेशकको", पृष्ठ ३९२ ।

इमाम साहब वगैराके पाँव सुन्न पड़ गये थे। इसके सिवाय और सब आराम था। चावल अपने ही हाथों पकाया जाता था और यह काम श्री नायडू करते थे। शरीर-श्रम कुछ विशेष नहीं था। एक जगहसे उठाकर दूसरी जगह कंकड़ ले जानेका काम सौंपा जाता है। इसलिए लोगोंमें उत्साह बना हुआ है और वे जेलको कुछ नहीं गिनते। मेरी अपनी तो सलाह है कि पुपु खानेकी आदत डाल लेनी चाहिए। यह फायदेमन्द है। जिसे अपना शत्रु मानते हैं उससे दयाकी भीख माँगना बिलकुल शोभा नहीं देता। फिर भी जबतक भारतीयोंमें इतना सहन करनेकी शक्ति नहीं आती, तबतक हम माँग करते रहेंगे।

सोराबजीकी स्थिति

जेलसे लौटनेवाले समाचार लाये थे कि श्री सोराबजी पहले दो-चार दिन जरा उदास रहे। किन्तु संग-साथ मिल जानेके बाद अब वे प्रसन्न हैं। उनमें उत्साह है। श्री सोराबजीको कुर्तोंमें बटन लगानेका काम सौंपा गया है।

सारे कैदियोंपर जेलके निरीक्षक तथा हेड वॉर्डन काफी ममता रखते हैं।

गोरोंकी सहानुभूति

श्री लिटमन ब्राउनने पहले भी भारतीयोंको १० पौंडकी मदद दी थी। इस बार फिरसे उसी तरह सहानुभूतिका पत्र लिखकर उन्होंने १० गिनीका चेक संघर्षमें मदद करनेके खयाल से भेजा है और हमारी जीतकी कामना की है। हमें ऐसे गोरोंका आभार मानना चाहिए। संघकी ओरसे उनके नाम आभारपत्र गया है। श्री लिटमन ब्राउन जोहानिसबर्गके एक गोरे व्यापारी हैं। भारतीय कौम उनकी जितनी प्रशंसा करे, उतनी थोड़ी है।

वेरीनिगिंगसे २५ पौंड, यहाँके खत्री समाजकी तरफसे ९ पौंड १० शिलिंग, भारतीय बाजारकी तरफसे ७ पौंड १५ शिलिंग और रूडीपूर्टसे ५ पौंड मिले हैं। इस समय पैसेकी बहुत जरूरत है और आशा है कि सभी जगहोंसे संघको सहायता मिलेगी।

कोंकणी समाजकी सभा

गत रविवारको सार्वजनिक सभाके पहले कोंकणी समाजकी भी सभा हुई थी। उसमें बहुत-से कोंकणी बन्धु उपस्थित थे। श्री अब्दुल गनी अध्यक्ष थे। सबने बड़ा जोश प्रकट किया। बहुतसे कोंकणी भाई फेरीके लिए निकलनेको तैयार हुए और परवाने तथा पैसे इकट्ठा करनेका निश्चय हुआ।

कानमिया कौमने भी अपने समाजकी सभा करके बहुत उत्साह दिखाया है।

बड़े दुःखकी बात

मैं लिख चुका था कि बॉक्सबर्गके श्री आदम मूसा जेल गये हैं।[1] किन्तु बादमें खबर मिली कि उक्त भाई साहबने जुर्माना दे दिया है। अर्थात् यह भी (अ)मंगलसिंहकी[2] श्रेणीमें आ गये। ऐसे भारतीय तो समाजके दुश्मन हैं। यदि पहलेसे ही कह दिया जाये कि हमें जेल नहीं जाना है, तो यह सहा जा सकता है; किन्तु जानेकी बात कहकर न जाना तो बहुत बुरा है।

१–२. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ३८५।

रतनजी लल्लूका मामला

रतनजी लल्लू नामक एक भारतीय लड़का है। वह अपने चाचाके साथ आया।[1] उसके पिताके पास अनुमतिपत्र था; किन्तु वह मूर्ख था, इसलिए मोम्बासामें रुक गया। रतनजी अकेला दाखिल हुआ। वह पकड़ा गया और उसे सजा हुई। अपीलमें अदालतने फैसला दिया कि रतनजीको जो सजा दी गई सो ठीक थी। निश्चित हुआ कि लड़का बापके साथ ही आ सकता है। इसके अतिरिक्त मामलेके अन्य तथ्योंपर ध्यान देना इस समय आवश्यक नहीं है। किन्तु ऊपरके मामलेका यह अर्थ हुआ कि बापकी गैरहाजिरीमें लड़का अकेला नहीं आ सकता।

क्रूगर्सडॉर्पके भारतीय

यहाँके समाचारपत्रोंमें खबर है कि क्रूगर्सडॉर्पमें फेरीवालोंने बस्तीमें सभा की। उसमें यह प्रस्ताव किया गया कि सरकार जो करे, सो स्वीकार किया जाये। यह बड़े दुःखकी बात है कि समाजके ऐसे दुश्मन भी पड़े हुए हैं। श्री खुर्शेदजी देसाईने मुझे जो पत्र लिखा है उससे जान पड़ता है कि ऐसा कहनेवाले भारतीय अधिक नहीं हैं, तीन-चार व्यक्ति ही हैं। मुझे भी यह आशा है कि ऐसी नासमझीका बर्ताव करनेवाले भारतीय कहीं भी अधिक नहीं होंगे।

अब क्या होगा?

इस प्रश्नका उत्तर कठिन है। किन्तु यह तो कहा जा सकता है कि इसका उत्तर हमारे ही हाथमें है। यदि हमारी शक्ति कम हो तो संघर्ष लम्बा चल सकता है। इतना लम्बा चला, इसके कारण भी हम ही हैं। जोहानिसबर्गमें बहुत-से भारतीय परवाने ले आये और सरकारको परवाना शुल्क मिल गया। लगभग १०० व्यक्तियोंसे शुल्क नहीं मिला। इसलिए सरकार उतने परवानोंके शुल्कको जाने देकर सम्भव है ६ महीने तक कुछ न करे; सो इसलिए कि इस बीचमें भारतीय थक कर बैठ जायेंगे। मेरे विचारके अनुसार तो हमारी शक्ति बढ़नी चाहिए। यदि परवानोंके कारण किसीको गिरफ्तार न किया जाये, तो भी चिन्ताकी कोई बात नहीं है। किन्तु यह बात ऐसा ही व्यक्ति सोच सकता है जो सदा अत्याचारके मुकाबलेमें खड़ा होनेके लिए तत्पर हो, सदा कानूनका विरोध करनेके लिए तैयार हो।

यदि सरकार ऊपर लिखे अनुसार बरताव करे, तो उसके मनमें यह बात भी होनी चाहिए कि बाहरसे शरणार्थी आयेंगे ही नहीं और जो अनुमतिपत्रवाले बाहर हैं, वे आनेके बाद खूनी कानून स्वीकार कर लेंगे।

इसकी कुंजी

इसकी कुंजी हमारे पास है। फेरीवालोंको और दूकानदारोंको बिना परवानोंके काम चलाना चाहिए। परवाने पूछे जानेपर न दिखाये जायें। यदि सरकार कोई ऐसा कानून लागू करे, जो हमें पसन्द नहीं आता, तो प्रमाणपत्र और परवाने तुरन्त जलाये जायें और (१) जिनके पास डच कालके अपने नामसे अनुमतिपत्र मौजूद हैं; (२) जो इस बातके मजबूत प्रमाण दे सकते हैं कि वे युद्धके पहलेसे ट्रान्सवालके निवासी हैं; और (३) जिन्होंने अच्छी तरह अंग्रेजी

१. देखिए "पत्र: **इंडियन ओपिनियन**को", पृष्ठ ३९१-९२।

शिक्षा प्राप्त की है; वे सब एकदम ट्रान्सवालमें दाखिल हो जायें। यदि इस तरह सौ-पचास आदमी दाखिल हों, तो सरकारको उन्हें जेल भेजना ही पड़ेगा और हम जानते हैं कि इतने लोगोंको जेल भेजना कठिन है। उपर्युक्त उपाय उस समय ही काममें लाना चाहिए जब सरकारका इरादा निश्चित रूपसे मालूम हो जाये। इस बीच शिक्षित और अन्य भारतीयोंको खामोश बैठे रहना चाहिए।

इसी क्षणसे कोई भी भारतीय ट्रान्सवालमें दाखिल होते समय अँगूठेकी छाप न दे, बल्कि साफ इनकार कर दे। हममें इतनी हिम्मत होनी चाहिए कि हम कानूनको टूटा हुआ ही समझें।

ऊपर जिन नामोंका उल्लेख है, उनमें श्री अली मियाँ तथा श्री कानजी मोरारके पास परवाने थे; फिर भी उन्होंने परवाने नहीं दिखाये और जेल गये। यह सच्चा साहस कहलायेगा।

मंगलवार [जुलाई २८, १९०८]

और भी मुकदमे

श्री थम्बी नायडू इत्यादिके नाम ऊपर ले ही चुका हूँ। उनके बाद श्री हीरा मावजी नामक व्यक्ति भी गिरफ्तार हो गये हैं। आज इन सबपर मुकदमा चला।[1] श्री गांधीने स्वयं इन सबके लिए अधिकसे-अधिक जेलकी सजा माँगी। किन्तु न्यायाधीशने श्री थम्बी नायडूके सिवा शेष सभीको केवल ७ दिनकी कड़ी कैदकी सजा दी। श्री नायडू पिछले हफ्ते ही अपराध करनेके कारण जेल भोगकर आये हैं, इसलिए उन्हें १४ दिनकी सजा दी गई।

थम्बी नायडू

श्री थम्बी नायडूकी बहादुरीकी बराबरी बहुत थोड़े ही भारतीय कर सकते हैं। वे रोज कमाकर खाते हैं, ऐसी गरीबीकी हालतमें हैं। उनकी पत्नीको आजकलमें ही बच्चा होनेवाला है। वे इन सब बातोंकी परवाह न करते हुए जैसे ही जेलसे निकले, वैसे ही फिर वहाँ पहुँच गये हैं। उनका जेलके भीतरका व्यवहार भी इतना अच्छा है कि उससे सारे अधिकारी खुश हो गये हैं। किन्तु वे किसीकी खुशामद नहीं करते। धरना देनेवालोंमें प्रमुखकी हैसियतसे उन्होंने जो काम किया, वह भी बहुत सावधानीसे किया। कामना करता हूँ कि भारतीय समाजमें ऐसे बहुत-से व्यक्ति पैदा हों।

रूडीपूर्ट

रूडीपूर्टमें श्री फकीर रूपा गिरफ्तार हुए हैं। उनका मुकदमा कल (बुधवारको) होगा। श्री पोलक उन्हें जेल पहुँचाने जायेंगे।

जाली अनुमतिपत्र

प्रिटोरियामें एक इमूलियन नामक यहूदीपर जाली अनुमतिपत्र छापनेके बारेमें मुकदमा चल रहा है। यह जयमलके मुकदमेसे मिलता-जुलता है।

यहाँ डाह्या लालाके ऊपर मुकदमा[2] चल रहा है और पुलिसका कहना है कि वह झूठे पंजीयनपत्रके बलपर दाखिल हुए हैं। उनके पास इस बातका प्रमाण है कि पंजीयनपत्र १४

१. देखिए "हरिलाल गांधी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ४०१-०२।
२. देखिए "डाह्या लालाका मुकदमा", पृष्ठ ४०९-११।

पौंड देकर लिया गया है। फिलहाल तो यह मुकदमा प्रिटोरियामें जायेगा और उसके बाद फिरसे न्यायाधीशके पास आयेगा, ऐसा जान पड़ता है।

बुधवार [जुलाई २९, १९०८]

रूडीपूर्टमें जो व्यक्ति गिरफ्तार हुआ था, उसे सात दिनकी सादी कैदकी सजा हुई है। वह जेल चला गया है। श्री पोलक उसकी पैरवी करने गये थे।

क्रूगर्सडॉर्प

समाचार है कि क्रूगर्सडॉर्पमें आज एक भारतीय गिरफ्तार हुआ है। श्री पोलक उसे जेल भेजनेके लिए जायेंगे।

दोराबजी

श्री पारसी दोराबजी नेटालसे आ रहे थे। अँगूठेकी छाप न देनेके कारण उन्हें फोक्सरस्टमें उतार लिया गया। श्री दोराबजीने अँगूठेकी छाप नहीं दी यह हिम्मतका काम किया। इसके बारेमें यहाँके अखबारोंमें खासी चर्चा हुई है और उसपर अच्छी टीका की गई है।[1] श्री दोराबजी ट्रान्सवालके बड़े पुराने निवासी हैं; राष्ट्रपति क्रूगर भी उनकी इज्जत करते थे। ये सारी बातें प्रकाशित हुई हैं। श्री दोराबजीको अन्तमें ट्रान्सवाल जानेकी मंजूरी दे दी गई।

अन्य बारह भारतीय

बारह अन्य भारतीयोंको अँगूठेकी छाप न देनेके कारण पकड़ा गया है। ये भारतीय बहुत गरीब फेरीवाले हैं, किन्तु जान पड़ता है कि बहादुर हैं। सुना गया है कि अदालतमें उनपर मुकदमा चलेगा। कोई अधिकृत समाचार नहीं मिला।

चेतावनी

याद रखें कि नेटालसे ट्रान्सवाल आनेवाले किसी भी भारतीयको हर्गिज अँगूठेकी छाप नहीं देनी है। यह सच है कि ऐसा विरोध करनेसे उन भारतीयोंको जेल जाना पड़ेगा। किन्तु यह करना आवश्यक है। तभी सच्चा छुटकारा मिलेगा।

'डेली मेल' में व्यंग्य-चित्र

'रैंड डेली मेल' में एक चित्र प्रकाशित हुआ है। जनरल बोथाने कैनडाके प्रधानमंत्रीके नाम जो पत्र लिखा है, चित्रके नीचे उसका अंश उद्धृत किया गया है। जनरल बोथाने लिखा है कि "राज्य चलानेके दो रास्ते हैं। एक तो मित्रतासे, दूसरा दबावसे"। ऐसा लिखनेमें जनरल बोथाका उद्देश्य यह था कि वे तो लोगोंसे मिल-जुलकर राज्य चलाते हैं। 'डेली मेल' के चित्रकारने तीन चित्र बनाये हैं। सर जॉर्ज फेरार, श्री गांधी और पुलिस, तीनों अपनी ठुड्डीपर हाथ रखे हुए आश्चर्यसे सोच रहे हैं कि क्या जनरल बोथा, उनकी सरकारने

१. पारसी दोराबजी; सन् १८८१ में ट्रान्सवालमें आनेवाले प्रथम पारसी; उपनिवेशमें अनेक होटल और दूकानें खोलीं; शायद कुछ दिनोंकी अनुपस्थितिके बाद उपनिवेशमें वापस आते समय जब उन्हें फोक्सरस्टमें गाड़ीसे उतर जानेको कहा गया तो उन्होंने १९०७ के अधिनियम २ के अन्तर्गत अँगूठोंके निशान देनेसे इनकार कर दिया। एक समसामयिक पत्रके समाचारके अनुसार उन्होंने बताया कि क्रूगर साहबके शासन कालमें पारसियोंके साथ गोरों जैसा वर्ताव किया जाता था, अतः मेरे साथ अन्य एशियाइयोंसे भिन्न बर्ताव होना चाहिए।

खानोंपर, भारतीयोंपर और पुलिसपर मित्रतापूर्वक शासन किया है? तीनोंके मुखके भावका मतलब यही लगता है कि बोथा लिखते कुछ हैं, करते कुछ हैं। उनका कार्य तो केवल अत्याचारसे ही चल रहा है।

बाएसेंसमें गिरफ्तारी

अभी-अभी समाचार मिला है कि परवाना न होनेके कारण बाएसेंसमें तीन भारतीय गिरफ्तार किये गये हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–८–१९०८

२४७. डाह्या लालाका मुकदमा

[जोहानिसबर्ग
सोमवार-बुधवार, जुलाई २७–२९, १९०८]

कल "बी" अदालतमें श्री जार्डनके सामने डाह्या लाला नामक एक भारतीयके मुकदमेकी पेशी हुई। उसपर एक जाली पंजीयन प्रमाणपत्र लेकर उपनिवेशमें प्रवेश करनेका अभियोग लगाया गया था। इस मुकदमेके सिलसिलेमें सन् १९०७ के बहुचर्चित अधिनियम २ का भी उल्लेख हुआ, हालाँकि इस बार यह दूसरे वर्गके फौजदारीके अभियोगके प्रसंगमें था, जिसका अँगुलियोंके निशान देने सम्बन्धी सन्तापजनक धाराओंसे घनिष्ठ सम्बन्ध था।

श्री शूरमानने सरकारी पक्षकी ओरसे, और श्री गांधीने अभियुक्तकी ओरसे पैरवी की।

सुपरिंटेंडेंट जे० जी० वरनॉनने गवाही देते हुए कहा कि १९०७ के अधिनियम २ के अन्तर्गत मुझे अनुमतिपत्रोंका निरीक्षण करनेका अधिकार है। मैंने अभियुक्तको २ जुलाईको श्री गांधीके कार्यालयके सामने गिरफ्तार किया था। मैंने उससे १९०७ के अधिनियम २ के अन्तर्गत अपना पंजीयन प्रमाणपत्र दिखानेको कहा, और अभियुक्तने उत्तर दिया कि वह श्री गांधीके पास है। मैं श्री गांधीके कार्यालयमें गया और वहाँ मैंने श्री गांधीके एक कर्मचारी, श्री मैकिंटायरको देखा। मैंने श्री मैकिंटायरको अभियुक्तकी बात बताई और प्रमाणपत्र देखनेको माँगा। श्री मैकिंटायरने एक तिजोरी खोली, एक प्रमाणपत्र निकाला और मुझे दिखलाया। मैंने प्रमाणपत्र लेनेसे इनकार कर दिया और कहा: "यह जिस आदमीका है, उसे दीजिए।" मैकिंटायरने प्रमाणपत्र अभियुक्तको दे दिया और उसने मेरे हाथमें दिया। मैंने तब देखा कि वह कागज जाली है और मैंने अभियुक्तको गिरफ्तार कर लिया। मैं अभियुक्तको बग्घीपर बिठाकर उसके मकान, १६८, मार्केट स्क्वेयर ले गया। मकानकी तलाशी ली गई और हिन्दुस्तानीमें लिखे बहुत-से पत्र पकड़े गये। चार्ज ऑफिसकी ओर ले जाते समय अभियुक्तने कहा, "मैंने वह कागज (उसका इशारा प्रमाणपत्रकी ओर था) जयमलसे १४ पौंडमें खरीदा था। मैंने ७ पौंड डर्बनमें दिये थे और ७ पौंड यहाँ पहुँचनेके बाद। मैंने यह कागज गांधीको कल दिया था।" अभियुक्तपर तब मार्शल स्क्वेयरमें अभियोग लगाया गया।

इस जगह गवाहने १९०७ के अधिनियम २ के बारेमें जारी की जानेवाली अनेक सरकारी उद्घोषणाएँ और नोटिसें पेश कीं। गवाहने आगे बताया कि २९ जून और २ जुलाईके बीच में बराबर श्री गांधीके कार्यालयमें जाता रहा और मुझे या पुलिसके किसी अन्य आदमीको किसी जाली प्रमाणपत्रके विषयमें कुछ नहीं बताया गया।

श्री गांधी : आप यह स्वीकार करेंगे कि यह साफ जालसाजी है?

[वरनॉन :] हाँ, यह बहुत साफ जालसाजी है। जो लोग श्री चैमनेके हस्ताक्षर नहीं पहचानते, इसे सही मान लेंगे।

एशियाइयोंके पंजीयक श्री चैमनेने कहा कि मैं अभियुक्तको नहीं पहचानता। पंजीयन-प्रमाणपत्रपर जो हस्ताक्षर था वह मेरा नहीं था, बल्कि जाली था। सरकार द्वारा जारी होनेवाले पंजीयनप्रमाणपत्रकी तुलनामें [वह] जाली कागज छपाईमें, नम्बरमें और आकारमें थोड़ा भिन्न था। मुझे श्री गांधीसे ऐसी कोई सूचना नहीं मिली कि अभियुक्तके पास एक जाली प्रमाणपत्र है। मैंने जाली प्रमाणपत्रके अस्तित्वकी सूचना पुलिसको दी। सब पंजीयन प्रमाण-पत्रोंपर केवल मैं ही हस्ताक्षर करता हूँ। अनुमतिपत्र देनेका अधिकार नेटालमें किसीको नहीं है।

श्री गांधी : क्या जाली कागज सरकारी कागजकी काफी अच्छी नकल है?

[चैमने :] निश्चय ही यह कागज बहुत अच्छी नकल है। मेरे हस्ताक्षरकी नकल अच्छी नहीं है।

सुपरिंटेंडेंट वरनॉनने [जिरहके लिए] पुनः बुलाये जानेपर बताया कि चार्ज ऑफिसमें अभियुक्तकी तलाशी लेनेपर मुझे १९०३ के प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम संख्या १३ के अन्तर्गत जारी किया गया एक अधिवास-प्रमाणपत्र और व्यक्ति-करकी कई रसीदें भी मिलीं। अधिवास-प्रमाणपत्रपर दो अँगूठा-निशान थे और प्रमाणपत्र डाह्या लालाके नामपर था। अभियुक्तके घरकी तलाशीके समय पुलिसका सिपाही हेनरी उपस्थित था और [उसने] कागजात बरामद करते देखा था।

श्री शूरमानने मुकदमेके निमित्त माँग की कि अभियुक्तकी अँगुलियोंके निशान लिये जाने चाहिए। उन्होंने कहा कि इस मामलेमें मुझे विशेषज्ञ साक्षी बुलाना होगा।

श्री गांधीने कहा कि मैं कोई आपत्ति नहीं उठाऊँगा और मुकदमा स्थगित कर दिया गया।[1]

[मंगलवार, जुलाई २८, १९०८]

. . . मंगलवारको विलियम जेम्स मैकिंटायरने [डाह्या लालाके स्थगित कर दिये गये मुकदमेमें] बताया कि मैं श्री गांधीके यहाँ मुनीमकी हैसियतसे नौकर हूँ। अभियुक्त की गिरफ्तारी वाले दिन तीसरे पहर सुपरिंटेंडेंट वरनॉन श्री गांधीके कार्यालयमें आये थे और उन्होंने अभियुक्तका पंजीयन-प्रमाणपत्र माँगा था। मैंने कार्यालयकी तिजोरी खोली और प्रमाणपत्र उसके

१. पहले दिनकी मुकदमेकी रिपोर्ट **ट्रान्सवाल लीडरसे** और शेष दो दिनोंके मुकदमेकी रिपोर्ट **इंडियन ओपिनियनसे** ली गई है।

भीतर पाया। मैंने प्रमाणपत्र अभियुक्तको दे दिया और मेरा विश्वास है कि उसने वह सुपरिटेंडेंट वरनॉनके सुपुर्द कर दिया।

जिरह करनेपर [उन्होंने कहा कि] तिजोरी मेरी देखरेखमें है। एक चाभी मेरे पास है और एक श्री पोलकके पास। श्री पोलक एक अटर्नी हैं और श्री गांधीके यहाँ बहैसियत क्लार्कका काम करते हैं।

इसके बाद श्री गांधीको सरकारी वकीलने गवाही देनेके लिए बुलाया। उन्होंने बताया कि गिरफ्तारीसे एक दिन पहले, तीसरे पहर करीब ५ बजे अभियुक्त मेरे कार्यालयमें आया और बोला कि मेरे अनुमतिपत्रके कारण कुछ लोग मेरे पीछे पड़े हुए हैं। मैंने उससे अनुमतिपत्र लानेको कहा और उसे जाँचनेके बाद फौरन ही कहा, यह तो जाली है। मैंने अभियुक्तको भी यह बताया और वह आश्चर्य-चकित प्रतीत हुआ। मैंने प्रमाणपत्र तिजोरीमें रखनेके लिए श्री पोलकको दे दिया और अभियुक्तसे कहा कि उसे उपनिवेश छोड़नेकी जरूरत नहीं है। उस समय देर हो गई थी और मैं कार्यालय छोड़नेवाला था और अगली सुबह प्रिटोरिया जा रहा था। [मैंने कहा कि] लौटनेपर मैं पुलिस अधिकारियोंसे बातचीत करूँगा।

डब्ल्यू० एफ० पासमैनने[1] बताया कि मैं खुफिया विभागमें रेकर्ड क्लार्क हूँ और मैंने सुपरिटेंडेंट वरनॉन द्वारा दिये गये अँगुलियोंके इन निशानोंकी परीक्षा की है, जो अभियुक्तके बताये गये हैं।

मैंने इनमें अंकित दाहिने अँगूठेके निशानको नेटाल अधिवासी प्रमाणपत्र और तथाकथित जाली प्रमाणपत्रपर अंकित अँगूठा-निशानोंसे मिलाया है और उन्हें एक जैसा पाया है।

एल० एच० ब्रैडफोर्डने बताया कि मैं एक परीक्षाधीन नौसिखिया जासूस हूँ। मैंने कल सुबह अभियुक्तकी अँगुलियोंके निशान लिये थे। ये वही हैं जिन्हें पेश किया गया है। इसके साथ सरकारी पक्षकी बहस समाप्त हो गई।

श्री गांधीने [अदालतको] सूचित किया कि सफाई बादमें दी जायेगी। इसपर मुकदमेको अगले दिन सुबह तकके लिए स्थगित कर दिया गया, ताकि अभियुक्तको औपचारिक रूपसे गवाहियाँ पढ़कर सुनाई जायें।

[बुधवार, जुलाई २९, १९०८]

बुधवारको श्री जॉर्डनने फैसला दिया कि डाह्या लालाके मुकदमेकी तफसीलवार सुनवाई की जाये। जमानतकी रकम ९०० पौंड ही रहने दी गई।[2]

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, २८-७-१९०८

इंडियन ओपिनियन, ८-८-१९०८

१. ट्रान्सवाल लीडरमें यह नाम "पासमोर" लिखा गया है।

२. श्री जॉर्डनकी 'बी' अदालतमें होनेवाली मुकदमेकी फार्यवाही उपलब्ध नहीं है।

२४८. इमाम अब्दुल कादिर बावजीर

इस अंकके साथ [परिशिष्टके रूपमें] हम इमाम साहबकी तसवीर छाप रहे हैं। इमाम साहबके लिए दक्षिण आफ्रिका भरमें दूकानें बन्द हुईं,[१] इससे सारे भारतीय समाजका गौरव बढ़ा है। यह मान श्री बावजीरका नहीं है, बल्कि हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्षकी गद्दीका है, हमीदिया मस्जिदके पेश-इमामका है। हमीदिया अंजुमनने जो कीमती सेवाएँ की हैं, वे प्रसिद्ध हैं और श्री बावजीरने उसमें जो काम किया है उसे भी सब जानते हैं। अंजुमनके अध्यक्षकी गद्दी श्री बावजीरके हाथमें सत्याग्रहकी असली लड़ाई शुरू हुई तब गई। उसे उन्होंने कितनी कठिनाइयाँ उठाकर सँभाला है, इसे वही समझ सकता है जिसने लड़ाई जानी है। इसलिए श्री बावजीरको जो मान मिला है उसके वे हरएक दृष्टिसे लायक हैं। वे अभी फिर जेल जानेका विचार रखते हैं। हम कामना करते हैं कि उनकी यह इच्छा पूरी हो। हम यह नहीं मानते कि जेल जानेकी इच्छा करना बुरा है। हमारी निश्चित राय है कि जेल जाना ही सीधेसे-सीधा रास्ता है।

श्री बावजीर अरबके एक प्रतिष्ठित परिवारके हैं। उनके पिता अरब छोड़कर अनेक वर्षोंसे हिन्दुस्तानमें रह रहे हैं। वे बम्बईमें जुमा मस्जिदके पेश-इमाम हैं। श्री बावजीरकी माँ कोंकणी हैं। श्री बावजीर कई वर्षोंसे दक्षिण आफ्रिकामें हैं। उन्होंने अपना विवाह भी इसी देशमें किया है। हम खुदासे प्रार्थना करते हैं कि उनका मन हमेशा देश-प्रेमकी भावनासे रँगा रहे और वे हमेशा देश और कौमकी प्रतिष्ठाके लिए परिश्रम करते रहें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–८–१९०८

२४९. महान तिलकको सजा[२]

देशभक्त श्री तिलकको जो सजा दी गई है वह बहुत कष्ट पहुँचानेवाली है। हम ६ वर्षके देश-निकालेका विचार करते हैं, तो उसके सामने ट्रान्सवालके भारतीयोंका कुछ दिन जेल भोगकर चले आना कुछ भी नहीं जान पड़ता।

यह सजा जितनी दुःख पहुँचानेवाली है, उतनी आश्चर्यजनक नहीं। उससे दुःखी भी नहीं होना चाहिए।

१. हड़ताल २३ जुलाईको हुई थी। देखिए "भाषण: सार्वजनिक सभामें", पृष्ठ ३८६।

२. मुजफ़्फरपुर-कांड (देखिए पृष्ठ २१६) के थोड़े ही दिन बाद तिलकने अपनी पत्रिका **केसरी**में दो लेख लिखे, जिनमें उन्होंने बंगालके क्रान्तिकारी दलके उत्साहकी प्रशंसा की थी, यद्यपि हिंसात्मक तरीकोंसे सहमति नहीं प्रकट की थी। उन्होंने स्वराज्यको समस्याका एक मात्र समाधान बताया। उन्होंने सरकारको पत्रकारिता-कानूनके द्वारा जनमतको दबानेके विरुद्ध भी चेतावनी दी। २४ जूनको उन्हें अपने दोनों लेखोंके लिए दो अलग-अलग वारंटोंके अनुसार गिरफ्तार कर लिया गया और उनपर राजद्रोहका अभियोग लगाया गया। जूरीने उन्हें दोके मुकाबले सात मतोंसे दोषी ठहराया और न्यायालयने उन्हें छः सालकी देश-निकालेकी सजा दी। जूरीमें बहुमत एँग्लो-इंडियनोंका था और जिन दो सदस्योंने विरुद्ध मत दिया वे भारतीय थे।

हम जिस राज्यका मुकाबला करना चाहते हैं, वह हमारे ऊपर अत्याचार करे तो इसमें विचित्र कुछ भी नहीं है। श्री तिलक ऐसे महान पुरुष हैं, इतने विद्वान हैं कि उनके कार्यके बारेमें इस देशमें हमारा कुछ लिखना धृष्टता मानी जायेगी। उन्होंने देशके लिए जो कष्ट उठाया है उसके लिए वे पूजने योग्य हैं। उनकी सादगी बड़ी जबरदस्त है। उनकी विद्वत्ताका प्रकाश यूरोपमें भी खिल रहा है।

फिर भी हम जिन्हें बड़ा मानते हैं उनका पक्ष हमें आँख बन्द करके नहीं लेना है। श्री तिलकके लेखोंमें कटुता नहीं थी, ऐसा कहना अथवा ऐसा बचाव पेश करना तिलकके ऊपर कलंक लगाने जैसा है। तीखे, कड़वे और मर्मभेदी लेख लिखना उनका उद्देश्य था। अंग्रेजी राज्यके खिलाफ भारतीयोंको उकसाना उनकी सीख थी। उसे ढाँकना श्री तिलककी महानतामें त्रुटि दिखाने जैसी बात है।

ऐसे लेख लिखनेवालेको राज्यकर्ता सजा दें, यदि यह उनकी दृष्टिसे देखा जाये तो ठीक जान पड़ता है। यदि हम राज्य करनेवालोंके स्थानपर होते, तो अन्यथा न करते। इसे ध्यानमें रखते हुए राज्यकर्ताओंके ऊपर क्रोध करनेकी कोई बात नहीं बचती।

श्री तिलक मुबारकबादके योग्य हैं। उन्होंने जबरदस्त कष्ट उठाकर अमरत्व पाया है और भारतकी स्वतन्त्रताकी नींव डाली है।

श्री तिलककी सजासे प्रजा निराश होनेके बदले, डरनेके बदले, यदि आनन्द मानकर बहादुरीसे रहेगी, तो सजा लाभकारी होगी। हमें इतना ही विचार करना बाकी है कि श्री तिलक और उनके पक्षके विचार भारतीयोंके लिए मान्य करने योग्य हैं अथवा नहीं। हम बहुत विचारपूर्वक लिख रहे हैं कि श्री तिलकके विचार मान्य करने योग्य नहीं हैं।

अंग्रेजी राज्यको उखाड़नेमें ही भारतीयोंका भला नहीं है। अंग्रेजी राज्यको उखाड़नेमें शक्तिका उपयोग करना, हिंसा करना नुकसानदेह है और अनावश्यक है। हिंसासे मिली हुई मुक्ति टिकनेवाली नहीं और यूरोपकी प्रजा उससे जो नुकसान उठाती है, वह हमें भी उठाना पड़ेगा। लोग एक गुलामीमें से दूसरी गुलामीमें चले जायेंगे। परिणाम होगा, लाभ किसीको नहीं, और नुकसान सबको।

हमारी मान्यता है कि अंग्रेजी राज्यको अच्छा बनानेका सहज रास्ता सत्याग्रह है। और यदि वह राज्य अत्याचारी बन जाये, तो सत्याग्रहका मुकाबला करनेमें एकदम नष्ट हो जायेगा। जिन मजदूरोंने श्री तिलकको सजा होनेपर काम बन्द कर दिया है, वे ही मजदूर यदि सत्याग्रही बन जायें, तो उतने ही लोग सरकारसे उचित ढंगसे जो माँगें मिल सकता है।

इस स्थितिमें हमारा बरताव कैसा होना चाहिए? श्री तिलक और ऐसे अन्य महान भारतीयोंको अपनेसे अलग विचारके होनेके बावजूद हमें हीरा मानना चाहिए और उनके कष्ट सहन करनेकी शक्तिका अनुकरण करना चाहिए। वे देशभक्त हैं ऐसा समझकर उन्हें जितना मान दिया जाये, उतना थोड़ा है, यह भी मानना चाहिए और उसके अनुसार आचरण करना चाहिए। उनका और हमारा हेतु एक ही है; वह यह कि देशकी सेवा करें, देशको खुशहाल बनायें। ऐसा करनेके लिए वे जो कुछ करते हैं उससे मिलान करनेपर हमारा काम तनिक भी मुश्किल नहीं है। किन्तु हमारे कामका परिणाम उससे हजार दर्जे बढ़कर है यह हमारा दृढ़ निश्चय है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–८–१९०८

२५०. केपके भारतीयोंमें झगड़े[1]

केपमें दो मण्डल हैं। वे आपसमें झगड़ते रहते हैं। उनके इन झगड़ोंकी खबर समय-समयपर हम अंग्रेजी अखबारोंमें भी देखते हैं। हम इन दोनों मण्डलोंको यह सूचना देना चाहते हैं कि इस देशमें आपसमें लड़नेके लिए हमारे पास समय नहीं है। हम ऐसे ही लड़ते रहे तो कोई तीसरा हमें खा जायेगा और हमारी हालत ज्यादा दीन-हीन हो जायेगी। झगड़ोंका कारण शायद बिलकुल ही छोटा होगा। सारी भारतीय कौमके नेता कहे जानेके बजाय कौमके सेवक कहे जानेकी ही इच्छा करें तो इस स्थितिमें बहुत सुधार हो सकता है। सेवक अधिकारोंका आग्रह नहीं करता। उसका ध्यान तो अपने कर्तव्यपर ही होता है। इसी तरह हम भी भारतीय समाजके सेवक होकर अपना कर्तव्य पूरा कर सकते हैं। जो व्यक्ति केवल अपना कर्तव्य करते रहना चाहता है उसका किसीके साथ शायद ही झगड़ा होता है। इसी तरह, यदि केपके ये दोनों मण्डल कर्तव्य करनेमें लग जायें तो उनके झगड़े तुरन्त समाप्त हो जायें। मानकी अपेक्षा किये बिना दोनों मण्डलोंको कौमकी सेवा करनेका निश्चय कर लेना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-८-१९०८

२५१. तुर्किस्तान और संसद

अखबारोंमें खबरें देखनेको मिलती हैं कि तुर्किस्तानके युवक दल (यंग पार्टी) ने राज्यमें अनेक सुधार किये हैं। एक तारमें कहा गया है कि महामहिम सुल्तान द्वारा राज्य संविधानके नियम बनाये जानेसे प्रजा प्रसन्न हुई है और जगह-जगह उत्सव हो रहे हैं। तारमें यह भी कहा गया है कि कुछ ही समयमें तुर्किस्तानमें इंग्लैंडकी संसदकी तरह संसद बन जायेगी।

यदि यह खबर सच हो, तो इसे बहुत ही बड़ी खबर मानना चाहिए। यदि तुर्कीमें संसद बन जाये, तो वहाँ ऐसे व्यक्ति और उमराव हैं कि तुर्किस्तान यूरोपके बड़े राज्योंकी श्रेणीमें आ जायेगा और उसका नाम संसारमें रोशन होगा। तुर्किस्तान आज ऐसी जगह स्थित है कि वह सर्वोपरि बन सकता है।

संसारके प्रत्येक हिस्सेमें स्वराज्यका नारा सुनाई पड़ता रहता है। नारा लगानेवाले शायद ही समझते हों कि सच्चा स्वराज्य क्या है। ट्रान्सवालके संघर्षमें भारतीयोंका जितना सम्मान अन्तर्निहित है, उतना ही तुर्किस्तानका भी है। वह संघर्ष अन्ततक लड़ा जाये, यह मुसलमानोंका स्पष्ट कर्त्तव्य है। इसमें सहायता करना हिन्दुओंका भी कर्तव्य है, क्योंकि वे मुसलमानोंके सगे भाई हैं; एक ही भारतमाताके पुत्र हैं। दोनोंको मिलकर बिना मताधिकारके ट्रान्सवालमें स्वराज्य प्राप्त करना है और यह अवसर ऐसा है कि वह सहज ही प्राप्त हो सकता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-८-१९०८

१. देखिए "केपके भारतीयोंको सूचना", पृष्ठ १९८।

२५२. पत्र : एच० एल० पॉलको

जोहानिसबर्ग,
अगस्त ४, १९०८

प्रिय श्री पॉल,

आपका गत ३० तारीखका पत्र मिला। मैंने जोज़फको २० पौंड[1] भेजे हैं। और अधिक जमा करना या और भेजना मेरे लिए सम्भव नहीं है। अब एक-एक पैसेकी संघर्षके लिए आवश्यकता है।

सबके प्रति आदर सहित,

आपका हृदयसे,
मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ४५४९) से। सौजन्य : ई० जे० पॉल।

२५३. मूलजीभाई जी० पटेलका मुकदमा – १

[मंगलवार, अगस्त ४, १९०८]

सोमवारको तीसरे पहर श्री मूलजीभाई गिरधरलाल पटेल, जो ब्रिटिश भारतीय संघकी समितिके सदस्य हैं, ट्रान्सवालमें पंजीयन प्रमाणपत्रके बगैर होनेके कारण गिरफ्तार किये गये। उनसे १० पौंडकी जमानत माँगी गई, परन्तु जमानतपर छूटना उन्होंने अस्वीकार कर दिया और उन्हें हवालातमें रात-भर बन्द रखा गया। . . .

मंगलवारको तीसरे पहर वे अदालत "बी" में श्री एच० एच० जॉर्डनके सामने लाये गये और उनपर १९०७ के अधिनियम २ के खण्ड ८, उपखण्ड ३ के अन्तर्गत मुकदमा चलाया गया। उन्होंने अपराध स्वीकार किया। श्री गांधीने उनकी पैरवी की और श्री क्रैमरने अभियोग लगाया।

ट्रान्सवालके पुलिस अधीक्षक वरनॉनने बयान दिया कि उनकी नियुक्ति पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत एशियाइयोंसे उनके पंजीयन प्रमाणपत्र माँगनेके लिए निरीक्षकके पदपर हुई है। अभियुक्तने उनसे अपने बयानमें कहा था कि उसके पास कोई प्रमाणपत्र नहीं है, उसके संघने उससे पंजीयन न करानेके लिए कहा था, उसने इस अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन करानेसे इनकार किया था और आगे भी ऐसा ही करता रहेगा। उसने शान्ति-रक्षा अध्यादेशका एक अनुमतिपत्र और एक पंजीयन प्रमाणपत्र, जो उसने लॉर्ड मिलनरकी सलाहसे[2] लिया था, दिखाया।

१. देखिए "पत्र : एच० एल० पॉलको", पृष्ठ २७७ और ३२०।
२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३२८।

जिरहमें (अधीक्षक वरनॉनने कहा) इस गिरफ्तारीको अंजाम देनेके लिए मुझे बृहस्पतिवारको हिदायतें मिली थीं। इस अभियुक्तकी तरह ट्रान्सवालमें बहुत-से लोग हैं जो इस अधिनियमके अन्तर्गत पंजीकृत नहीं हैं -- कमसे-कम २०० होंगे। मुझे आशा है कि इनके बारेमें मुझे शीघ्रातिशीघ्र हिदायतें मिलेंगी।

सफाईमें अभियुक्तने बयान दिया कि मैं एक सामान्य आढ़तिया हूँ और ट्रान्सवालमें करीब नौ वर्षोंसे रह रहा हूँ। मैंने अपना अनुमतिपत्र और पंजीयन प्रमाणपत्र १९०३ में लिया था। गत वर्ष मैंने भारतकी यात्रा की और गत २५ मईको मैं ट्रान्सवाल वापस आया। पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत मैंने पंजीयन प्रमाणपत्रके लिए प्रार्थनापत्र नहीं भेजा और न मेरी ऐसी कोई इच्छा है। मेरे ऐसा करनेका कारण यह है कि गत जनवरीके समझौतेके अनुसार यह कानून रद हो जानेवाला है। मैं स्वेच्छया पंजीयनका प्रमाणपत्र लूँगा। परन्तु अनिवार्य पंजीयनका नहीं लूँगा।

जिरहमें [उसने कहा] समझौतेकी शर्तोंके बारेमें मुझे 'इंडियन ओपिनियन' के स्तम्भोंसे जानकारी हुई। मैं ब्रिटिश भारतीय संघका एक सदस्य हूँ।

अभियुक्तके विरुद्ध श्री कैमरने बिना परवानेके फेरी लगानेके कारण पहले दी गई एक सजाका उल्लेख किया। यह स्वीकार किया गया।

अदालतको सम्बोधित करते हुए श्री गांधीने कहा कि वास्तवमें मुझे इसके सिवा कुछ अधिक नहीं कहना है कि मुझे भय है, जबतक संघर्ष समाप्त न हो जायेगा तबतक ये बातें जारी रहेंगी। अभियुक्तको आज्ञा हुई है कि वह सात दिनके अन्दर यह देश छोड़ दे। वह इस आज्ञाको माननेसे इनकार करेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-८-१९०८

२५४. बारह फेरीवालोंका मुकदमा

[जोहानिसबर्ग,
अगस्त ४, १९०८]

अदालत "डी" में तीसरे पहर श्री एच० एच० हॉपकिन्सके समक्ष १२ ब्रिटिश भारतीय फेरीवालोंपर बिना परवाना व्यापार करने या उसके बदलेमें अपनी व्यापारिक पेटियोंपर अपना नाम न लिखवानेके कारण अभियोग लगाया गया।

श्री शॉने अभियोग लगाया। श्री गांधीने अभियुक्तोंकी ओरसे पैरवी की।

लगभग सभी अभियुक्तोंने बयान दिया कि उन्होंने परवानेके लिए प्रार्थनापत्र दिये थे, परन्तु उनके प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिये गये, क्योंकि वे अपने अँगूठोंके निशान देनेको राजी नहीं थे।

पहले मुकदमेमें श्री गांधीने परवाना निरीक्षक श्री बैरेटसे पूछा कि क्या अबतक आपने इस तथ्यपर कोई ध्यान दिया था कि फेरीवाले अपनी व्यापारिक पेटियोंपर अपना नाम नहीं देते।

गवाहने उत्तर दिया, उसने ध्यान नहीं दिया। उसने कहा कि अभियुक्तने उससे कहा था कि उसका परवाना श्री गांधीके पास है।

श्री शॉ: उसने यह नहीं बताया कि उसने अपना परवाना श्री गांधीको अपनी "अनुमतिसे दिया, किरायेपर दिया या उधार दिया था?"

[बैरेट:] नहीं

एकको छोड़कर बाकी समस्त अभियुक्तोंको सात दिनकी सख्त कैदके विकल्पके साथ १ पौण्डके जुर्मानेकी सजा दी गई। इस व्यक्तिके मामलेमें श्री गांधीने कहा कि अभियुक्तको इससे पहले दो बार सजा दी जा चुकी है।

श्री शॉने कहा कि यह अभियुक्त उनमें से एक है जिन्हें गत मासमें बिना परवानेके फेरी लगानेके लिए १ पौंडके जुर्मानेकी, या चार दिनकी जेलकी सख्त सजा दी गई थी।

श्री गांधीने कहा कि अभियुक्तको गत जनवरीमें भी सजा दी गई थी परन्तु समझौतेके कारण उसे छोड़ दिया गया था।

इस अपराधीको १४ दिनकी कैदके विकल्पके साथ २ पौंड जुर्मानेकी सजा दी गई।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, ४-८-१९०८

२५५. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

नायडूका आत्मत्याग

सोमवार [अगस्त ३, १९०८]

मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि श्री थम्बी नायडूकी पत्नीका गर्भपात हो गया और आज बच्चेको दफना दिया गया है। श्री थम्बी नायडूको यह हाल नहीं मालूम है; किन्तु समाजके ऊपर उनका उपकार बढ़ता जा रहा है। वे कठिन समयमें पत्नीको छोड़कर जान-बूझकर समाजके लिए जेल गये और इसी बीच यह घटना हुई। श्री नायडू अभी जेलमें हैं।

इस घटनाका कारण श्री नायडूका जेल जाना हो सकता है। श्री नायडू जिस दिन जेल गये थे, श्रीमती नायडूसे मैं उसी दिन मिला था। श्री डोकने जैसा लिखा, उनकी हालत वैसी ही करुणाजनक थी। ऐसी साहसी स्त्रियाँ बहुत कम होती हैं जो लगातार दो-दो बार अपने पतिको जेल जाते हुए देखें, और फिर भी हिम्मत बनाये रख सकें। फिर, श्रीमती नायडूकी स्थितिमें तो इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

इसमें सन्देह नहीं कि इस हत्याकी जिम्मेदारी ट्रान्सवाल सरकारके ऊपर ही है। उसके अन्यायके कारण समाजके व्यक्तियोंको ऐसे कष्ट उठाने पड़ रहे हैं।

नायडूके साथी बाहर निकले

श्री नायडूके साथ जो पाँच भारतीय जेल गये थे और जिनके नाम मैं पहले दे चुका हूँ, वे आज छूटकर आ गये हैं। उन्हें लेनेके लिए श्री ईसप मियाँ वगैरा बहुत-से नेता पहुँचे थे। बादमें श्री ईसप मियाँके घर चाय तथा बिस्कुटसे उनका स्वागत किया गया। उसी समय फलवालोंने केले-सन्तरे भेजे। श्री ईसप मियाँ, मौलवी साहब, इमाम साहब इत्यादिके भाषण हुए।

तिलकके कुटुम्बसे सहानुभूति

आजकी सभामें श्री तिलकके कुटुम्बको सहानुभूतिका तार भेजनेका प्रस्ताव पास किया गया।[1]

रिचका परिश्रम

श्री रिच विलायतमें परिश्रम कर रहे हैं। तार आया है कि लॉर्ड क्रूके साथ शिष्ट-मण्डलकी मुलाकात हुई। यह भी जान पड़ता है कि इस मुलाकातसे श्री रिचको सन्तोष हुआ; अर्थात् अब विलायतमें काम चल निकला है, ऐसा दिखाई पड़ रहा है।

लॉर्ड सेल्बोर्नका भाषण

लॉर्ड सेल्बोर्नने वेरीनिगिंगमें भाषण किया। उसमें उन्होंने कहा कि जिन एशियाइयोंको ट्रान्सवालमें रहनेका हक है, उन्हें तकलीफ नहीं होनी चाहिए और उनके अधिकारोंकी रक्षाके लिए इंग्लैंडकी सरकारको बीच-बचाव भी करना चाहिए। बाकी, नये लोगोंको आने दें या नहीं, यह उपनिवेशके अधिकारकी बात है। इससे यह जान पड़ता है कि शिक्षित लोगोंके अधिकारकी रक्षा करनेमें मुश्किलें दरपेश होंगी। इसका उपाय शिक्षितोंके हाथमें है। वह क्या है, इसपर उस समय विचार करेंगे जब केवल यही प्रश्न सामने रहेगा।

अन्त कब होगा?

परन्तु यह सवाल उठा ही करता है कि संघर्षका अन्त कब होगा? यहाँकी लोकसभा तारीख २१ को उठ जायेगी। माना जा सकता है कि यदि तबतक संघर्ष खत्म न हुआ, तो फिर आगामी जनवरी तक उसका अन्त न होगा। चाहे जो हो, इसमें हमें गाँठसे कुछ खोना नहीं पड़ेगा, ऐसा कह सकते हैं।

सोराबजीका सन्देश

श्री सोराबजी जेलमें सुखी हैं।[2] जो दुःख आता है उसे वे कौमकी खातिर सहते हैं। आज जेलसे जो कैदी निकले हैं, उनकी मारफत उन्होंने कहलवाया है कि जेलसे निकलनेके बाद वे फिर जेल जायेंगे, लेकिन ट्रान्सवाल नहीं छोड़ेंगे।

मंगलवार [अगस्त ४, १९०८]

मूलजी भाई गिरधरलाल पटेल

श्री पटेलको पकड़ लिया गया है। उनकी गिरफ्तारी कल हुई थी। गिरफ्तारीका कारण यह है कि उन्होंने बाकायदा पंजीयन नहीं कराया। श्री मूलजीभाई अभी-अभी

१. देखिए "महान तिलकको सजा", पृष्ठ ४१२-१३।
२. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ४०५।

[परवाने बिना][1] फेरी करनेके अपराधमें चार दिनकी सजा भोगकर आये हैं और अब फिरसे जेल जानेका अवसर उपस्थित है। श्री पटेलने जमानत देनेसे इनकार कर दिया, इसलिए उन्हें आज एक रात हवालातमें ही रहना पड़ा। श्री पटेलका मुकदमा पेश होनेपर उन्हें सात दिनके भीतर उपनिवेश छोड़नेकी हिदायत मिली है।[2]

पोलक फोक्सरस्टमें

फोक्सरस्टमें जो भारतीय आते हैं, उनकी मदद करनेके लिए तथा जिनपर अँगूठोंकी छाप न देनेके कारण मुकदमा चल रहा है, उनकी तरफसे पैरवीके लिए श्री पोलक फोक्सरस्ट गये हैं और वहीं रहेंगे। मैं आशा करता हूँ कि अनुमतिपत्रवाले बहुत-से भारतीय फोक्सरस्ट जायेंगे और वहाँ अँगूठेकी छाप देनेसे इनकार करके जेल जायेंगे। फोक्सरस्टमें श्री पोलकका पता होगा — द्वारा श्री ईसप सुलेमान, बॉक्स ४५। जिन्हें कुछ पूछना हो, वे उन्हें अंग्रेजीमें पत्र लिखें। श्री पोलकके वहाँ दो हफ्तेसे अधिक रहनेकी सम्भावना नहीं है।

पार्लकी[3] भारतीय समितिकी ओरसे

बुधवार [अगस्त ५, १९०८]

श्री एस० उस्मान और अन्य भारतीय सूचित करते हैं :

> जिस तरह आप सब महाशयोंने पहले हाथमें लिये हुए कामको एकतासे सम्पन्न किया उसी तरह इस समय भी एकताकी बड़ी जरूरत है। सत्याग्रहके संघर्षमें सत्यकी ही विजय होती है। यदि पहलेके उदाहरणोंसे देखा जाये, तो आजतक सदा सत्य ही विजयी होता आया है। मसलन हरिश्चन्द्र और हमान सरीखे सत्यवादियोंके नामको हम आज भी अमर मानते हैं। इसलिए यह समझकर कि दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारने हमें भी कीर्ति अर्जित करनेका यह अवसर दिया है, अपने देशभाइयोंके लिए किसी प्रामाणिक संघर्षमें भाग लेते हुए किसे दुःख होगा। इसलिए मुख्य आवश्यकता संगठित होनेकी है। जब हम एक हो जायेंगे, सरकार हमारे लक्ष्यको पूरा होने देगी और स्वयं ही दरवाजा खोल देगी। इसलिए हमारी समिति सिफारिश करती है कि धीरजके साथ कष्ट सहन करते हुए सत्यकी खातिर दृढ़ रहें।

श्री उस्मान आदिने जो निष्ठा व्यक्त की है वह सराहनीय है। वे हिम्मत बँधाते हैं, यह ठीक है। मेरा उनसे यह कहना है कि उनके लिए सच्ची श्रद्धा प्रकट करनेका यह मार्ग है कि वे संघकी पैसेसे मदद करें। संघर्षमें उसकी आवश्यकता है और बाहरके लोग कमसे-कम इतना तो कर ही सकते हैं।

'कुली' शब्दका उपयोग

यहाँकी संसदके सदस्य श्री नेसरने भाषण करते हुए भारतीयोंके लिए "कुली" शब्दका उपयोग किया; इसपर श्री पोलकने उनके नाम अप्रसन्नता प्रकट करते हुए पत्र लिखा।

१. देखिए "बावजीर, नायडू तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ३८०-८२।
२. देखिए "मूलजीभाई जी० पटेलका मुकदमा — १", पृष्ठ ४१५-१६।
३. केप टाउनके निकट एक स्थान।

श्री नेसरने उत्तरमें लिखा है कि "कुली" शब्दका उपयोग करनेमें उनका विचार अपमान करनेका नहीं था। साधारणतः उसका व्यवहार भारतीयोंके लिए होता है, इसलिए उन्होंने किया।

भारतीयोंको क्या करना चाहिए?

श्री अल्फ्रेड बार्कर नामक यहाँके एक गोरे वकील हैं। उन्होंने 'आफ्रिकन मंथली' नामक मासिक पत्रिकामें हमारे विषयमें कुछ लिखा है। उसमें वे कहते हैं कि भारतीयोंको बस्तियोंमें भेजा जाये और उनका व्यापार भी वहीं रहे। बस्तियोंके बाहर उन्हें जमीन न दी जाये और सारे दक्षिण आफ्रिकामें उनका पंजीयन कराया जाये। बार्कर साहब कहते हैं कि अन्ततोगत्वा ऐसा होनेपर ही भारतीय इस देशसे निर्मूल होंगे।

ये सब गोरोंके निरर्थक प्रयत्न हैं। सारे दक्षिण आफ्रिकामें इस हद तक बातें नहीं होतीं। किन्तु फिर भी हमें इससे यह सीख लेनी है कि जिस प्रकार गोरे किसी कामको हाथमें लेकर उसमें लगे रहते हैं, उसी प्रकार हमें अपने सम्मान और स्थितिकी रक्षा करनेके लिए जुटे रहना चाहिए।

शाबास स्टैंडर्टन!

स्टैंडर्टनसे श्री सी० एल० पटेल, श्री इस्माइल मुहम्मद दीनदार, और श्री इस्माइल भाभाके पकड़े जानेकी खबर मिली है।[1] उनपर बिना परवानेके दूकान चलानेका आरोप था। श्री पोलक उनकी पैरवीके लिए वहाँ जा पहुँचे थे। उन लोगोंको ३ पौंड जुर्माना और १४ दिनकी सख्त कैदकी सजा दी गई है। उन्होंने जुर्माना न देकर जेल जाना पसन्द किया है। श्री अब्दुल हकने टेलिफोनसे खबर दी कि बादमें १० और भारतीयोंको पकड़नेका हुक्म आया। ये भारतीय भी जेल चले गये।

स्टैंडर्टनके लोगोंने कमाल किया। वे कसौटीपर खरे उतरे। मेरे सुननेमें आया था कि स्टैंडर्टन, पॉचेफ्स्ट्रूम और क्लार्क्सडॉर्पको कमजोर मानना चाहिए। उन्हें गिने बिना संघर्ष चलाना पड़ेगा। अब स्टैंडर्टनने इस खबरको झूठा सिद्ध कर दिया है, इतना ही नहीं बल्कि जबरदस्त हिम्मत दिखाई है। मैं मानता हूँ कि समय आनेपर इसी प्रकार क्लार्क्सडॉर्प और पॉचेफ्स्ट्रूम भी अपना जौहर दिखायेंगे। इस संघर्षमें मेरा यह अनुभव हुआ है कि किसीको पहलेसे कमजोर मानकर छोड़ना और सबल मानकर किसीपर भरोसा करना ठीक नहीं है। इस काममें इतनी नवीनताएँ भरी हुई हैं कि किसीका मन काबूमें नहीं रहता। भगवान जिसके हृदयमें बैठकर हिम्मत बढ़ाये, वही बहादुरी दिखा सकता है।

हम सबको ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि सभीमें स्टैंडर्टन-जैसी हिम्मत आये।

तीन छूटे

श्री गोविन्द बेचर, श्री लल्लू घेला तथा श्री गोकल देवा पिछले हफ्ते समाजके लिए तथा अपने लिए जेल गये थे। वे आज छूट गये। उनके स्वागतके लिए श्री इमाम साहब अब्दुल कादिर बावजीर, श्री गांधी तथा दूसरे भाई गये थे। वे अपने वचनके अनुसार फिर जेल जानेके लिए तैयार हैं।

१. "स्टैंडर्टनके बहादुर भारतीय", पृष्ठ ४२५ भी देखिए।

किनके परवाने अवैध हैं?

कुछ भारतीय यहाँ रिक्शा रखते हैं। लगभग सत्तर रिक्शे भारतीयोंके पास होंगे। नगरपालिकाने ऐसे भारतीयोंके लिए अँगूठेकी छाप देना अनिवार्य किया था, इसलिए उनके नाम पिछले रविवारको नोटिस दिया गया कि गाड़ियोंका परवाना धन्धेका परवाना नहीं कहा जा सकता और इसलिए वह खूनी कानूनके अन्तर्गत नहीं आता। इसलिए यदि नगरपालिका बिना अँगूठेकी छाप माँगे रिक्शा आदिके परवाने न दे, तो नगरपालिकाको हर्जाना देना पड़ेगा। मैंने आज सुना है कि नगरपालिकाने उपर्युक्त शिकायत स्वीकार करके खूनी कानूनकी शर्तोंको पाले बिना रिक्शा आदिके लिए परवाने देना तय किया है। इस प्रकार जिन्हें परवाना मिल सकता हो, वे परवाना ले लें, किन्तु जेल जानेका कोई दूसरा उपाय सोचें। फिलहाल तो बिना परवाना लिये फेरी करना इसका उपाय है।

जेलमें खूराक

संघने पत्र लिखा था कि भारतीयोंको जेलमें पुपुकी जगह कोई दूसरी खूराक दी जाये,[१] उसका अभीतक उत्तर नहीं आया है। इससे सन्देह होता है कि सरकार हमें कायर बनाना चाहती है। सम्भव है सरकारको गलतफहमी हो जाये कि खूराकमें परिवर्तन न हुआ तो हम जेल नहीं जायेंगे। किन्तु मुझे भरोसा है कि वीरताके लिए कटिबद्ध भारतीय खूराकके डरसे कुछ पीछे हटनेवाले नहीं हैं। भूख, प्यास, सरदी, गरमी यह सभी कुछ सहन करना जरूरी है। एक बड़ा संघर्ष चल रहा है। उसमें सोनेके लिए फूलकी सेज अथवा खानेके लिए व्यंजनोंकी आशा नहीं करनी चाहिए। शत्रुसे मेहरबानी कैसी? उसकी नाराजी हमें हितकारक माननी है।

सोराबजी अडाजानिया

श्री सोराबजीको बधाई देनेके लिए बहुत-से लोग आतुर जान पड़ते हैं, इसलिए वे उनका जेलका पता माँगते हैं। पता तो जोहानिसबर्ग, फोर्ट है, किन्तु उन्हें पत्र अथवा कोई दूसरी वस्तु मिलेगी नहीं। उनके छूटनेके बाद यदि कोई कुछ भेजना चाहे, तो बॉक्स संख्या ६५२२ के पतेपर भेज सकता है। मेरी सलाह है कि सभी उनके आत्मीयोंके नाम मुबारकबादके पत्र भेजें। उनकी पत्नीका नाम कुँवरबाई सोराबजी है। उनके भाईका नाम है श्री कावसजी शापुरजी और बहनका नाम है माणकबाई शापुरजी। पता है, श्री पालनजी एदलजी प्लम्बरका मकान, खेतवाड़ी, छठी गली, बम्बई।

क्रीड़ापत्र 'स्टार' में व्यंग्य-चित्र

यहाँसे 'स्पोर्टिंग स्टार' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता है। उसमें संघर्षसे सम्बन्धित एक चित्र दिया गया है। एक कोनेमें लिखा हुआ है कि "जे० बी० का जेल, सुन्दर स्वास्थ्यप्रद उपाहारगृह"। उसके नीचे कुछ भारतीयोंके चित्र हैं। जेलका दरवाजा बनाया है और उसके नीचे लिखा है कि "श्री गांधीने मजिस्ट्रेटसे कैदियोंकी तन्दुरुस्तीके ध्यानसे अधिकसे-अधिक कारावासकी याचना की"।[२]

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, ८–८–१९०८

१. देखिए "पत्र: जेल-निदेशकको", पृष्ठ ३९२।
२. देखिए "हरिलाल गांधी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ४०१-०२।

२५६. पत्र : डब्ल्यू० हॉस्केनको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ५, १९०८

प्रिय श्री हॉस्केन,

आज स्टैंडर्टनमें १३ भारतीय बिना परवानेके व्यापार करनेके अपराधमें गिरफ्तार कर लिये गये। उन सबको ३—३ पौंड जुर्माने या १४ दिनके सपरिश्रम कारावासकी सजा दी गई। सभीने जेल जाना पसन्द किया।[1] वे सभी ट्रान्सवालके प्रामाणिक अधिवासी हैं और मेरा विश्वास है कि उनके पास गत ३० जून तक के परवाने हैं। परवानोंको नया करनेके लिए प्रार्थनापत्र देनेपर उन्हें एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत अँगूठोंके निशान देनेके लिए कहा गया, किन्तु उन्होंने वैसा करनेसे इनकार कर दिया। इसीलिए उन्होंने बिना परवानेके व्यापार किया और इसीलिए उनपर मुकदमे भी चलाये गये। प्रगतिवादी दल कुछ भी क्यों न करना चाहे, क्या आप यह नहीं सोचते कि एक स्वतन्त्र सदस्यकी हैसियतसे आपको विधानसभामें जनरल स्मट्ससे प्रश्न पूछना चाहिए?

एक बात और है। आप जानते ही हैं कि भारतीय कैदियोंको अधिक मानवोचित आहार देनेके सम्बन्धमें ब्रिटिश भारतीय संघने जेल-निदेशकसे निवेदन किया है।[2] यूरोपीयोंको उनके उपयुक्त भोजन मिलता है, केप ब्वायज़को यूरोपीय खाना मिलता है, और वतनियोंको उन्हींका राष्ट्रीय भोजन दिया जाता है। भारतीयोंको वतनियोंकी श्रेणीमें रखा गया है, और इसलिए उनकी सर्वथा उपेक्षा की जाती है। सिर्फ एक समयके भोजनमें उन्हें थोड़े परिमाणमें चावल और चर्बी मिलती है। इसलिए कलेवा करनेके समयसे भारतीयोंको भूखे ही रह जाना पड़ता है, क्योंकि उनसे मकईका दलिया नहीं खाया जाता। मुझे आशंका है कि अधिकारी-वर्ग, भले केवल बदलेकी भावनासे ही क्यों न हो, भारतीय बन्दियोंके भोजनकी मात्रामें फेर-फार नहीं करेंगे। मेरे विचारसे, मेरे देशवासी इस हालतमें भी दृढ़ रहेंगे और इस अति-रिक्त बर्बरताको बर्दाश्त कर लेंगे। किन्तु क्या आप सदनमें प्रश्न नहीं पूछ सकते अथवा किसी दूसरी तरहसे इस मामलेमें सक्रिय कदम उठाकर उचित सुधार नहीं करा सकते? जनरल स्मट्सने उस समय, जब कि वे भारतीयोंसे सब-कुछ हासिल कर लेना चाहते थे, मुझसे मुसकराते हुए कहा था कि वे ट्रान्सवाल जेलमें भारतीयोंकी खास कठिनाइयोंके बारेमें मेरी बात ध्यानसे सुनेंगे। वे दिन अब बीत गये हैं, लेकिन आशा है, वे दिन अभी नहीं बीते हैं, जबकि आप-जैसे व्यक्ति इस बातपर जोर देते रहेंगे कि शिष्टता बरती जानी चाहिए; या, कमसे-कम ट्रान्सवालकी जनताके नामपर जो बर्बरता हो रही है उससे अपनेको अलग रखे रहेंगे।

आपका सच्चा,

श्री डब्ल्यू० हॉस्केन
सदस्य, विधानसभा
विधानसभा-भवन,
प्रिटोरिया

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८५४)से।

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ४२० और "स्टैंडर्टनके बहादुर भारतीय", पृष्ठ ४२५।
२. देखिए "पत्र : जेल-निदेशकको", पृष्ठ ३९२।

२५७. पत्र : ए० कार्टराइटको[1]

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ५, १९०८

प्रिय श्री कार्टराइट,

मैं श्री [हॉस्केन]के[2] नाम अपने पत्रकी नकल साथ बन्द कर रहा हूँ। उसपर और कुछ कहना अनावश्यक है। मैंने उसमें तीखी [शब्दावली]का प्रयोग किया है, क्योंकि मैं और तीखे शब्दोंका प्रयोग करनेमें असमर्थ था। मैंने ठीक वैसा ही लिखा है जैसा मैं महसूस करता हूँ। मेरे इतने देशवासी जेल जा रहे हैं और अनावश्यक कठिनाइयाँ भी झेल रहे हैं, जहाँ इस [तथ्य]पर मुझे गर्व होता है, वहीं मैं इस परिस्थितिपर अत्यन्त तीव्रतासे महसूस किये बिना नहीं रह सकता; विशेषतः जब मुझपर, जो इन सब बातोंके लिए मुख्य रूपसे उत्तरदायी है, वार नहीं हो रहा है। मैं जरूर सोचता हूँ, और गलत हो तो आप मेरे खयालको सुधार सकते हैं, कि आपके सम्पादकीय कलम उठाने और ट्रान्सवालके अखबारोंका मार्गदर्शन करनेका समय आ पहुँचा है।[3]

आपका हृदयसे,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८५५)से।

२५८. शिक्षितोंका कर्तव्य

शिक्षित भारतीय अथवा जो भारतीय अपनेको शिक्षित मानते हैं, ट्रान्सवालमें दाखिल होकर श्री सोराबजीके साथ जेल भोगनेके लिए आतुर हैं। इससे उनकी स्वदेशभक्ति प्रकट होती है। किन्तु सदा अपनी इच्छानुसार भक्ति करना सम्भव नहीं होता। वह सच्ची भक्ति नहीं मानी जायेगी। यदि सभी लोग सिपाही बनकर रणमें मरना चाहें, तो यह सम्भव नहीं है। कुछका युद्धके बाहर रहना ही बड़ा कर्तव्य है। यही स्थिति शिक्षित भारतीयोंकी भी समझनी चाहिए। फिलहाल केवल श्री सोराबजी ही शिक्षितोंमें से प्रवासी अधिनियमके अन्तर्गत जेल जानेके लिए पर्याप्त हैं। इस बीच नेटाल और दूसरी जगहोंमें जो शिक्षित भारतीय हैं, उन्हें भगवा पहन लेना चाहिए; अर्थात् अपने दिलको भगवा बना लेना चाहिए। उन्हें अपनी शिक्षा देशको समर्पित कर देनी चाहिए और जिन लोगोंको ट्रान्सवालमें जानेका हक है ऐसोंको तैयार करनेके लिए उचित तालीम देनी चाहिए। ट्रान्सवालमें आनेका जिन्हें

१. यह पत्र कुछ फट-फट गया है और कहीं-कहीं पढ़ा नहीं जाता।

२. यहाँ कागज फटा है। यह "पत्र : डब्ल्यू० हॉस्केनको", पिछला शीर्षक होगा।

३. बादमें गांधीजीने स्वयं **ट्रान्सवाल लीडर**के सम्पादक (कार्टराइट) को एक पत्र लिखा। इस पत्रपर उसी दिन एक सम्पादकीय लेख भी प्रकाशित हुआ। देखिए पृष्ठ ४२७ पादटिप्पणी २।

हक है वे लोग हैं: डच-कालीन तीन पौंडी पंजीयनवाले; अपंजीकृत किन्तु जो युद्धके पहले लम्बी अवधि तक ट्रान्सवालमें रह चुके हैं; तथा वे लोग जिनके पास युद्धके बादके अनुमतिपत्र और पंजीयनपत्र हों। ये सारे भारतीय प्रामाणिक होने चाहिए — जाली लोगोंका काम नहीं है। यदि जाली लोगोंको तैयार किया जायेगा, तो हम हार जायेंगे। ऐसे भारतीयोंको और उनमें से अन्तिम वर्गवाले अर्थात् लड़ाईके बादके अनुमतिपत्र व पंजीयनपत्र प्राप्त लोगोंको ट्रान्सवालमें दाखिल होनेके लिए तैयार किया जाये। उनसे कहा जाये कि ट्रान्सवालकी हदमें दाखिल होते हुए उनसे अँगूठोंके निशान या हस्ताक्षर माँगे जायेंगे। वे उन्हें देनेसे इनकार करें। इनकार करनेपर वे उतार लिये जायेंगे। उतर जायें। जमानत न दें। और हवालातमें रहें। मुकदमा चले, तब उपस्थित हों। जुर्माना अथवा जेलकी सजा होगी। जुर्माना न दें, किन्तु हँसते-हँसते जेल जायें। प्रवेशके हकदार भारतीयोंको इस तरह समझाया जाये। जो भारतीय ये काम करनेको तैयार हों, वे ब्रिटिश भारतीय संघको अपने नाम भेजें। हकदार भारतीय [ट्रान्सवालके लिए] रेलपर सवार हों, तब संघको खबर दी जाये।

शिक्षित देशभक्त भारतीय रेलगाड़ियोंमें तलाश करें। उनमें कौन-से भारतीय जा रहे हैं सो देखें और उन्हें उपर्युक्त बातोंकी पूरी जानकारी दें, तथा संघको खबर दें।

सारे भारतीयोंको यह समझना चाहिए कि ट्रान्सवालकी लड़ाईमें समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका हित है। ट्रान्सवालके भारतीय हार गये, तो दूसरी जगहके भारतीयोंकी हार निश्चित होगी। आजतक ट्रान्सवालमें जो हुआ है, दुनियाके किसी अन्य भागमें भारतीयोंने वैसा नहीं किया। भारतमें भी ऐसा संग्राम नहीं हुआ है। ट्रान्सवालकी लड़ाई अत्यन्त सच्ची और पवित्र है। उसमें शासक-गण तथा प्रजा दोनोंके हितका समावेश है।

संघर्षका रहस्य यह है कि छोटे-बड़े समस्त भारतीय अपनी सच्ची स्वतन्त्रताको समझें, गुलामीसे छूटनेकी इच्छा रखें और जेलके अथवा दूसरे दुःखोंसे न डरें। यदि इतना हो जाये, तो उसका यह अर्थ होगा कि ऐसे भारतीयके लिए आज ही स्वराज्य है। वे आज ही स्वतन्त्र हैं। इसका परिणाम बादमें यह होगा कि कानून रद हो जायेंगे, गोरे अधिक मान देने लगेंगे और बस्ती आदिमें जाना खत्म हो जायेगा। ये विचार समझ-बूझकर हृदयंगम करने योग्य हैं।

जो भारतकी सेवा करना चाहते हों, उन्हें चाहिए कि वे अपना व्यक्तिगत स्वार्थ साधनेका विचार एकदम छोड़ दें।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–८–१९०८

२५९. स्टैंडर्टनके बहादुर भारतीय[1]

स्टैंडर्टनके १३ व्यापारी अपनी प्रतिष्ठा, अपनी प्रतिज्ञा और अपने समाजके लिए १४ दिनोंकी सख्त सजा भोगने जेल गये। इसके लिए हम उन्हें बधाई देते हैं। स्टैंडर्टनके भारतीयोंके लिए यह गौरवकी बात है। यह मामला अबतक जो मामले हुए, उनसे अलग तरहका है। यह सजा भी ज्यादा सख्त मानी जायेगी। इस द्वितीय संघर्षमें एक साथ १३ व्यक्तियोंके पकड़े जानेका यह उदाहरण स्टैंडर्टनमें ही देखा गया है। स्टैंडर्टनने जैसा जोर दिखाया है, वैसा ही जोर यदि सभी भारतीय दिखायें, तो छुटकारा होनेमें वक्त नहीं लगेगा। प्रत्येक भारतीयको याद रखना चाहिए कि ऐसे तमाम लोगोंको जेल भेजनेके बाद यदि भारतीय समाज बैठा रहे, अथवा सरकारकी शरणमें चला जाये, तो उसे बड़ा कलंक और जो जेल गये हैं, उनका अभिशाप लगेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–८–१९०८

२६०. नेटालका संघर्ष[2]

नेटालका परवाना कानून भयंकर है। भारतीय समाजको इस सम्बन्धमें तुरन्त उपाय करना बहुत जरूरी है। यह माननेका कोई कारण नहीं है कि इंग्लैंडकी सरकार उस कानूनको मंजूर कर लेगी। फिर भी "सच्चे नर सदा सुखी" इस कहावतके अनुसार यदि सुखी रहना हो, तो हमें आजसे सचेत हो जाना चाहिए। सम्भव है, इस बार कानून पास न हो, फिर भी उसका प्रभाव रह जायेगा। श्री टेलरने कहा है कि यदि विधेयक एक बार अस्वीकृत हो जायेगा, तो दूसरी बार विलायत भेजा जायेगा और जबतक मंजूर न होगा, तबतक यह प्रक्रिया जारी रहेगी। यदि परिस्थिति ऐसी हो, तो उसका एक ही इलाज है और वह है सत्याग्रहका युद्ध। प्रतिवर्ष परवानोंकी संख्या छीजती चली जाती है, यह सभी जानते हैं। यदि ऐसी परिस्थितिमें भारतीय शक्ति न लगायें, तो वे सुखसे नहीं रह सकते। इंग्लैंडकी सरकारका मुँह ताकते हुए बैठे रहना काफी नहीं है। इंग्लैंडकी सरकारके आगे दरख्वास्तका एक ही रास्ता है, वह है सत्याग्रह। इसके बाद प्रार्थनापत्र आदि हो सकता है। भारतीयोंमें इतनी हिम्मत है या नहीं, यह देखनेका समय अब आ रहा है। हम आशा करते हैं कि भारतीय व्यापारी उसकी तैयारी करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–८–१९०८

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ४२० ।
२. देखिए "नेटालके विधेयक", और "नेटालके नये कानून", पृष्ठ २२९ और २३०-३१ ।

२६१. पत्र : 'इंडियन ओपिनियन' को[1]

सम्पादक
'इंडियन ओपिनियन'
महोदय,

कुछ स्थानोंसे यह पूछा गया है कि अपने पुत्र हरिलालको जेल भेजनेमें मेरा क्या हेतु था।[2] इस विषयमें कुछ स्पष्टीकरण नीचे दे रहा हूँ :

(१) मैंने भारतीय समाजके सभी लोगोंको फेरी करनेकी सलाह दी है। मेरा खयाल है कि वकालतकी सनदके कारण मैं उसमें भाग नहीं ले सकता। इसलिए मैंने विचार किया कि यदि मैं अपने लड़केको फेरी लगानेकी सलाह दूँ, तो ठीक होगा। मैं जो-कुछ नहीं कर सकता, दूसरोंसे उसे करनेके लिए कहते हुए हिचकता हूँ। मैं ऐसा मानता हूँ कि यदि मेरा लड़का मेरी मर्जीसे कुछ करे, तो वह मेरे करनेके बराबर गिना जा सकता है।

(२) हरिलालको जो शिक्षा लेनी चाहिए उसका एक भाग है, अपने देशके लिए जेल जाना। यह उस शिक्षाका एक योग्य अवसर माना जा सकता है।

(३) मैं हमेशा यह कहता आया हूँ कि जो सत्याग्रहको ठीक रूपसे समझ सकता है, उसके लिए सत्याग्रह आसान है। मैं गिरफ्तार लोगोंकी तरफसे जो वकालत करने जाता हूँ, वह वास्तवमें बचाव नहीं है; मैं तो वहाँ उपस्थित रहकर उन्हें जेल भेजा करता हूँ। यदि किसीमें स्वयं सच्ची हिम्मत हो, तो मुझे अदालत जाना ही न पड़े। अपने लड़केके ऊपर ही इस बातका पहला प्रयोग करना मुझे ठीक लगा। इसलिए फोक्सरस्टमें उसके लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया और उसे उसकी हिम्मतपर ही छोड़ दया। जोहानिसबर्गमें वह दूसरे लोगोंके साथ था, इसलिए मैं अदालतमें गया। किन्तु उसके तथा उसके साथियोंके लिए मैंने अधिकसे-अधिक दिनोंकी जेल माँगी। उन्हें अधिक सजा नहीं मिली, यह उनकी कम-नसीबी थी।

(४) मैंने कई बार सलाह दी है कि किसीको भी फोक्सरस्ट पहुँचकर अँगूठेकी छाप नहीं देनी चाहिए। लोग उस सलाहके अनुसार नहीं चले। मैंने जोर नहीं दिया, किन्तु अब जोर देनेका समय आ गया है। अब फोक्सरस्टमें खूनी कानूनके अनुसार अँगूठोंके निशान माँगे जा रहे हैं; इसलिए अँगूठोंके निशान नहीं देने चाहिए। मुझे ऐसा लगा कि यह काम भी हरिलालकी मारफत सहज ही हो सकता है।

मैं चाहता हूँ कि हरिलालने जैसा किया है वैसा ही सब भारतीय करें। हरिलाल बालक कहा जा सकता है। उसे तो अपने पिताकी सलाह मान्य करनेके लिए भी ऊपरके मुताबिक करना चाहिए। इसी प्रकार हरएक भारतीयको अपनी ही हिम्मतसे ऐसा करना

१. यह **इंडियन ओपिनियन**में "अपने पुत्रको मैंने जेल क्यों भेजा : श्री गांधीका स्पष्टीकरण" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए "हरिलाल गांधी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ४०१-०२।

चाहिए। वे ऐसा करें, ऐसी मेरी इच्छा है। ऐसा करनेमें ही सत्याग्रहकी पूर्ण विजय समझनी चाहिए। मैं फिर कहता हूँ कि :

(१) जो जेल जानेके लिए तैयार हों, उन्हें वकील अथवा मेरे ऊपर निर्भर न रहकर जेल जाना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैंने कानूनके संघर्षमें गिरफ्तार भारतीय सत्याग्रहियोंके मुफ्त बचाव करनेकी जो बात लिखी थी, उसे मैं वापस ले रहा हूँ। जहाँ मेरी जरूरत महसूस होगी, मैं वहाँ पहुँचूँगा। किन्तु अच्छा तो यह है कि बिना वकीलके सजा हो और लोग उसे भोगनेके लिए सीधे जेल जायें।

(२) छोटे-बड़े भारतीयोंको बिना किसी अपवादके देशके लिए जेल जाना चाहिए।

(३) ट्रान्सवालमें प्रवेश करते हुए कोई भी भारतीय अँगूठा अथवा अँगुलियोंके निशान न दे। इसके लिए उन्हें जेल जाना पड़ेगा। जेल भोग लें, किन्तु कानूनके मुताबिक अँगूठा अथवा अँगुलियोंके निशान अथवा हस्ताक्षर जैसी कोई चीज न दी जाये।

मैं हूँ सत्याग्रही,
मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, ८-८-१९०८

२६२. पत्र : 'ट्रान्सवाल लीडर' को[1]

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ८, १९०८

[सम्पादक
'ट्रान्सवाल लीडर']

महोदय,

क्या मैं आपके स्तम्भों द्वारा एशियाई प्रश्नका एक पहलू आपके उन पाठकोंके सामने रख सकता हूँ जो ट्रान्सवालके समस्त निवासियोंके प्रति न्याय किये जानेमें दिलचस्पी रखते हैं?[2]

मैंने आपके आजके पत्रमें प्रकाशित जाली प्रमाणपत्रोंसे सम्बन्धित दो भारतीय मामलोंका कथित संक्षिप्त विवरण पढ़ा है। उनमेंसे एक व्यक्ति सरकारी गवाह बनकर अपनी मुक्ति पा गया। जिसके विरुद्ध वह सरकारी गवाह बना था, वह आदमी भी छूट गया है। लोग जानते

१. यह १५-८-१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में "ट्रान्सवालमें भारतीयोंका संघर्ष" शीर्षकसे उद्धृत किया गया था।

२. इस पत्रपर **ट्रान्सवाल लीडर**ने इस प्रकार सम्पादकीय टिप्पणी दी थी : "... उसके एक अंशकी ओर हम न केवल सम्बन्धित मन्त्री और अधिकारियोंका, बल्कि संसद-सदस्यों और सदाशयी और न्यायप्रिय लोगोंका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट करना चाहते हैं। हमारा तात्पर्य उस भागसे नहीं है जिसमें एक ओर एशियाई जाली अनुमतिपत्र बनानेवालों और उनके मित्रों और दूसरी ओर अधिकतर प्रतिष्ठित एशियाइयोंके साथ किये गये बहुत भिन्न व्यवहारका जिक्र है, यद्यपि श्री गांधीके उद्गार इस विषयमें यथेष्ट रूपसे तीखे हैं — विशेष रूपसे उनके सत्यके कारण। हमारा आशय उनके पत्रके उस भागसे है जिसमें वे जोर देकर कहते हैं कि जो एशियाई वर्तमान मूर्खतापूर्ण शासनके अन्तर्गत जेल भेजे जाते हैं वे अंशतः भूखे रखे जाते हैं क्योंकि उन्हें उस प्रकारका भोजन नहीं

हैं कि उनमेंसे एक स्वयं अपने कथनानुसार किस हदतक जाली कारसाजीमें फँसा हुआ था। समाचारपत्रोंके मुताबिक दूसरेके विरुद्ध गवाही निस्सन्देह इतनी कमजोर थी कि उसे सजा नहीं दी जा सकी। इस तरह जो लोग जालसाजीसे सम्बन्धित हैं, वे स्वच्छन्द घूम रहे हैं। एशियाई कानून संशोधन अधिनियम न तो उन्हें छूता है, और न उसने छुआ। उसके अन्तर्गत उनपर आरोप भी नहीं लगाया गया था और मैं स्पष्ट रूपसे स्वीकार करता हूँ कि कोई एशियाई अधिनियम ऐसे मामलोंसे संव्यवहार नहीं कर सकता। जहाँ कहीं भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर रोक लगती है, वहाँ ऐसे लोग मिल जायेंगे जो ऐसे प्रतिबन्धोंसे बचनेके लिए तरह तरहके उपायोंको बरतनेके लिए काफी तत्पर रहते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि भारतीय ही केवल ऐसे लोग नहीं हैं जो इस कारसाजीसे सम्बन्ध रखते हैं। यूरोपीयोंके बारेमें भी उससे सम्बन्धित रहनेका आरोप लगाया जाता है।

अब आपके पाठक तस्वीरका दूसरा रुख देखें। जो भारतीय उपनिवेशमें खुल्लमखुल्ला आये हैं, जिन्होंने अपना युद्ध-पूर्व निवास सिद्ध कर दिया है, जो हमेशा कानूनके मुताबिक चले हैं और जिन्होंने हालमें ऐसे लोगोंकी पूरी तरह शिनाख्त करके सरकारको सहायता पहुँचाई है और जिसे सबने माना है, उन्हें लॉर्ड मिलनरके ऐतिहासिक शब्दोंमें चारों ओरसे 'कोंचा' जा रहा है और तंग किया जा रहा है। निर्दोष भारतीय — बहुत-से उदाहरणोंमें ऐसे भारतीय जो अपने समाजके सर्वोच्च तबकेसे सम्बन्ध रखते हैं — कैदमें डाले जा रहे हैं; इसलिए नहीं कि उन्होंने कोई जघन्य अपराध किया है, बल्कि इसलिए कि उनकी आत्मा उस कानूनको स्वीकार नहीं करती, जिसे वे क्रोधोत्पादक और अपमानजनक मानते हैं। आज स्टैंडर्टन अपने प्रमुख भारतीय दूकानदारोंसे लगभग विहीन है क्योंकि वे १४ दिनोंका कठोर कारावास भुगत रहे हैं।

मानो इतनी परेशानी काफी नहीं थी, इसलिए इन भारतीय कैदियोंको अभीतक भोजनके विषयमें कोई राहत नहीं दी गई है। यूरोपीय कैदियोंको वही भोजन मिलता है जिसके वे साधारणतः आदी होते हैं; केप ब्वायज यूरोपीय भोजन पाते हैं; वतनियोंको वही भोजन मिलता है जिसकी उन्हें आदत है; भारतीय कैदियोंको लगभग वतनियोंका भोजन मिल रहा है और इसलिए वे आधे भूखे रहते हैं। उन्हें हर रोज नाश्तेमें मकईका दलिया मिलता है और हफ्तेमें तीन बार शामके भोजनमें भी मकईका दलिया दिया जाता

दिया जाता जिसकी उन्हें आदत है और जो उन्हें दिया जाता है उसे वे खा नहीं सकते। ये लोग राजनीतिक कैदी हैं। यदि इनसे सख्त मेहनत ली जाती है या इन्हें जेलका वस्त्र पहनाया जाता है तो यह अन्याय है। यह निन्दनीय रूपसे अन्याय है यदि खूराकके बारेमें उनके साथ वैसा व्यवहार किया जाता है जैसा कि श्री गांधी कहते हैं। हम समझते थे कि जो देश अपने आपको सभ्य घोषित करते हैं उन्होंने उत्पीड़नका अन्त कर दिया है। हम इसके अपवाद प्रतीत होते हैं। निश्चय ही जेलके स्वास्थ्य अधिकारी कैदियोंके लिए उसी भोजनकी सिफारिश करते हैं जो वे खा सकते हैं। क्या स्वास्थ्य अधिकारियोंकी हिदायतोंका पालन किया जाता है? क्योंकि जेल विभागसे सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्तिका, उपनिवेश-मन्त्रीसे लेकर नीचेके समस्त कर्मचारियों तक, यह कर्तव्य है कि उनका पालन करें। क्या स्वास्थ्य अधिकारियोंके विचारोंकी उपेक्षा की जाती है? ऐसी बात नहीं कि पकानेकी कोई कठिनाइयाँ हों। कोई भोजन इतनी सरलतासे नहीं तैयार किया जा सकता जितना कि चावल।

यदि श्री गांधीके आरोप अच्छी बुनियादपर हैं तो हम जो कुछ कर रहे हैं वह तुर्कीके किसी प्रान्तके लिए भी लज्जाजनक है, ब्रिटिश साम्राज्यीय राज्योंकी तो बात ही क्या है!"

है। मैं जानता हूँ कि मकईका दलिया उनके लिए बहुत अच्छी चीज है जिन्हें इसकी आदत है अथवा जो बहुत दिनोंतक उसे खाकर उसकी आदत डाल सकते हैं। दुर्भाग्यवश मेरे देशवासी मकईका दलिया नहीं खाते। फल यह है कि ट्रान्सवालकी जेलोंमें उन्हें बहुत हद तक भूखों मरना पड़ता है। अधिकारियोंसे राहतके लिए कहा गया है[1], किन्तु लिखनेके समय तक कोई उत्तर नहीं मिला है। यह अनुचित भले ही हो किन्तु मेरे देशवासी इसका यही अर्थ निकालते हैं कि भारतीय हैरान होकर झुक जायें, इस खयालसे राहत नहीं दी जा रही है। यदि ऐसा हो, तो उन्हें [अधिकारियोंको] सचेत हो जाना चाहिए कि वे कहीं सरकार और उसके कानूनोंके खिलाफ भारतीयोंको कड़ेसे-कड़ा विरोध करनेके लिए न भड़का दें।

एशियाई इकरारनामेके बारेमें अपना फर्ज अदा कर चुकनेके बाद अब यह कोशिश कर रहे हैं कि जनरल स्मट्स अपना फर्ज अदा करें। 'ट्रान्सवाल लीडर' के अनुसार इसको उन्होंने सार्वजनिक रूपसे इस तरहसे घोषित किया था : "उन्होंने उनसे (एशियाइयोंसे) कहा था कि जबतक देशमें एक भी एशियाई ऐसा बचेगा जिसने अपना पंजीयन न कराया हो, तबतक कानून रद नहीं किया जायेगा।"[2] और फिर, "जबतक देशका प्रत्येक भारतीय पंजीकृत नहीं हो जाता, कानून रद नहीं किया जायेगा।" यह स्वीकार कर लिया गया है कि जिन एशियाइयोंको स्वेच्छया पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र देनेका अवसर मिला, वे वैसा कर चुके हैं। अब एशियाई पूछते हैं, "फिर कानून अभीतक रद क्यों नहीं किया गया? और बिलकुल असम्भव परिस्थितियोंमें अधिनियमको रद करनेकी बात क्यों कही गई थी?"

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, १०–८–१९०८

२६३. हरिलाल गांधीका मुकदमा – २[3]

[जोहानिसबर्ग
अगस्त १०, १९०८]

तीसरे पहर "बी" अदालतमें भारतीयोंकी असाधारण भीड़ श्री हरिलाल मोहनदास गांधीके मामलेको सुननेके लिए एकत्र हुई थी। श्री हरिलाल श्री मो० क० गांधीके पुत्र हैं, अवस्था बीस वर्ष है, और उन्हें विद्यार्थी बताया गया है, तथा पंजीयनका प्रमाणपत्र नहीं होनेके कारण उन्हें श्री एच० एच० जॉर्डनके समक्ष एशियाई संशोधन अधिनियमका उल्लंघन करनेके अपराधमें पेश किया गया था।

१. देखिए "पत्र : जेल निदेशकको", पृष्ठ ३९२।

२. स्मट्सने जून ६, १९०८ को रिचमंडमें दिये गये अपने भाषणमें ऐसा कहा था; देखिए परिशिष्ट ८।

३. इससे पहले हरिलाल गांधीपर जुलाई २८, १९०८ को मुकदमा चलाया गया था। देखिए "हरिलाल गांधी तथा अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ४०१-०२।

अभियुक्तने अपराधको स्वीकार किया और उनके पिताने उनकी पैरवी की। श्री क्रैमर अभियोक्ता थे।

"बी" विभागके अधीक्षक वरनॉनने गिरफ्तारीका सबूत पेश करते हुए बताया कि उन्होंने अभियुक्तसे अपने पंजीयनका प्रमाणपत्र दिखानेके लिए कहा। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया और कहा कि उसके पास वह नहीं है।

श्री गांधीने अभियुक्तकी तरफसे कहा कि वह उपनिवेश छोड़कर जाना नहीं चाहता। परन्तु फिर भी उसकी इच्छा है कि अदालत २४ घंटेके अन्दर उपनिवेश छोड़कर चले जानेकी आज्ञा उसे दे दे। उन्होंने यह प्रार्थना इसलिए की कि जिन दो भारतीयोंकी मीयाद इस कानूनके मातहत बुधवारको समाप्त हो रही है वे जेल जाना चाहेंगे। श्री गांधीने आशा की कि न्यायाधीश महोदय इसी मार्गको ग्रहण करेंगे, क्योंकि अभियुक्तके मामले उन्हींके सामने हैं।

श्री जॉर्डनने हुक्म सुनाया कि अभियुक्त सात दिनके अन्दर उपनिवेश छोड़कर चला जाये।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर ११-८-१९०८

२६४. भाषण : सार्वजनिक सभामें

[जोहानिसबर्ग
अगस्त १०, १९०८]

हरिलाल गांधीपर उपनिवेशमें पंजीयन-प्रमाणपत्रके बिना होनेके अपराध-सम्बन्धी मुकदमेके एकदम बाद ही कल [अगस्त १०, १९०८ को] अदालतकी इमारतके पास एक खुले मैदानमें भारतीयोंकी सार्वजनिक सभा हुई। श्री मो० क० गांधीने अंग्रेजीमें भाषण दिया और कहा कि वेरीनिगिंगसे अभी-अभी इस आशयका तार मिला है कि बहुत-से भारतीय दूकानदारोंको, जो बिना परवानोंके फेरी लगाते या व्यापार करते हुए गिरफ्तार किये गये थे, मजिस्ट्रेटने कारावासका विकल्प नहीं दिया, बल्कि प्रत्येकपर २ पौंड ७ शिलिंग ६ पेंस जुर्माना किया। उन्हें २४ घंटेमें जुर्माना देना अथवा अदालतके द्वारा अपने मालकी नीलामी स्वीकार करना था। इससे संघर्षमें एक नया पहलू दाखिल हो गया है, किन्तु मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ब्रिटिश भारतीय इससे चकरायेंगे नहीं। मुझे नहीं मालूम कि मजिस्ट्रेटको कुछ असाधारण मामलोंमें कानून विभागसे कानूनकी धाराओंपर अमल करनेकी हिदायत मिली है अथवा उसने स्वयं अपनी मर्जीसे ऐसा किया है। किन्तु इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जनरल स्मट्ससे कोई रियायत नहीं मिलेगी और रियायत माँगना हमारे लिए शोभाकी बात भी नहीं है। हम लोग संघर्ष इसलिए चला रहे हैं कि जनरल स्मट्स अधिनियमको रद करनेके अपने वादेपर अमल करनेके लिए बाध्य हो जायें। रिचमंडकी सभाके विवरणमें यह वादा प्रकाशित हुआ था। इसमें उन्होंने कहा था कि जब सब पंजीयन

करा लेंगे, तब वे अधिनियम रद कर देंगे।[1] इस मामलेमें उन्होंने (श्री गांधीने) एक घटनाका उल्लेख करना चाहा। [उन्होंने बताया कि] जब मैं श्री डोकके यहाँ बीमार पड़ा हुआ था, तब एशियाई पंजीयक मेरे पास आया था और उसने कहा कि ऐसा जान पड़ता है कि चीनी और कुछ भारतीय सरकारकी सदाशयताके प्रति सन्दिग्ध हैं और इसलिए वे आगे नहीं बढ़ते। वे वादेकी पुष्टिमें कुछ लिखित बात चाहते हैं। तब वहाँ उसी समय एक सूचनाका मसविदा बनाया गया कि यदि एशियाई समुदाय अपने समझौतेकी शर्तें पूरी करेगा, तो अगले सत्रमें अधिनियम रद कर दिया जायेगा। यह सूचना सभी भारतीय भाषाओंमें और चीनी भाषामें भी प्रकाशित की जानेवाली थी।

"सौभाग्यवश"

दुर्भाग्यवश –– नहीं, मैं कहूँगा सौभाग्यवश, क्योंकि अब हम यह जानते हैं कि हम किनसे निपट रहे हैं। तो सौभाग्यवश, अगले दिन श्री चैमने यह समाचार लाये कि सभी एशियाई [पंजीयन करानेके लिए] तैयार हैं, और चीनियोंने अपनी आपत्तियाँ वापस ले ली हैं। उन्होंने [जनरल स्मट्सने] पूछा कि क्या मैं (श्री गांधी) अब भी उक्त नोटिसको प्रकाशित कराना जरूरी समझता हूँ। उस समय हमारे सामने श्री स्मट्स या श्री चैमनेकी ईमानदारीपर सन्देह करनेका कोई कारण नहीं था और [इसीलिए] मैंने जवाब दिया कि नोटिस प्रकाशित करनेकी कोई वजह नहीं है। मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि जब श्री स्मट्सने रिचमंडमें वक्तव्य दिया था उस समय उनके दिमागमें एशियाइयोंके सामने ऐसी कोई कठिनाई आनेकी बात रही होगी, जिसका जिक्र श्री चैमनेने मुझसे किया और यही कारण था कि उन्होंने उक्त स्पष्टीकरण दिया था। आज हम देखते हैं कि श्री स्मट्सने कुछ शर्तोंपर[2] अधिनियम रद करनेका प्रस्ताव किया है, जिन्हें हम स्वीकार नहीं कर सकते। ये ऐसी शर्तें हैं जो हमपर उस समय नहीं थोपी गई थीं जब हमने स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र लेना स्वीकार किया था।

शुद्ध प्रशासन और साम्राज्यकी शान्ति

एशियाई लोग अपने ही विरुद्ध सरकारकी सहायता कर रहे हैं, अपना वचन पूरा करनेमें श्री स्मट्सकी सहायता कर रहे हैं, और उपनिवेशके अन्दर प्रशासनकी शुद्धता तथा साम्राज्यके अन्दर शान्ति कायम रख रहे हैं। यदि हम देखें कि दक्षिण आफ्रिकी सरकारके कर्णधार राजनयिकोंमें मामूली ईमानदारी भी नहीं है और जब उनको सुविधाजनक लगे तभी वे अपने वादोंसे मुकर जाते हैं और वादा-खिलाफी करते हैं तो हम ब्रिटिश भारतीयोंको चाहिए कि उन्हें अपने वादे पूरे करनेपर मजबूर करें। ऐसा करके हम न केवल उपनिवेशकी, बल्कि पूरे साम्राज्यकी महत्वपूर्ण सेवा करेंगे। इसलिए [आज] जब हमारे सामने कारावास भोगने, करीब-करीब भूखों मरने और जेलमें नंगे पैरों चलनेकी सम्भावना खड़ी है तब हम विचलित नहीं हुए हैं। अपना माल जब्त होनेकी सम्भावनाके सामने भी हम अविचल हैं। मैं तो उसे संगठित राहजनी –– कानून-समर्थित डाका –– कहूँगा।

१. देखिए परिशिष्ट ८।

२. शर्तोंके लिए देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ३०८।

अब हमें एक ऐसे क़ानूनके खण्डके अन्तर्गत ले आया गया है जिसका निर्माण असाधारण मतलबोंसे किया गया है।

जुर्माना देनेसे इनकार कीजिए

मुझे आशा है कि मेरे देशभाइयोंमें इतनी त्याग-भावना है कि वे जुर्माना देनेसे इनकार कर दें और अपनी आँखोंके सामने ही अपना सामान बिक जाने दें। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि जब यूरोपीय लोग देखेंगे कि ब्रिटिश भारतीय इसे भी बर्दाश्त कर सकते हैं तब खुद वे ही लोग जनरल स्मट्ससे कहेंगे कि वे अपने हाथ रोकें और अपने वादे पूरे करें और जो शर्तें तय की थीं उन शर्तोंपर अधिनियमको रद करें। हमें कष्ट झेलना है, ताकि जनरल स्मट्सने हमारे साथ जो एक करार किया है उसको पूरी तरह व्यावहारिक रूप दिया जा सके। ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षकी नाक इसलिए तोड़ दी गई, क्योंकि उन्होंने सरकारके साथ अपने एक करारको पूरा करनेमें सरकारका साथ दिया था;[१] और सरकारने उन्हें इसका पुरस्कार वचन-भंग, विश्वासघातके रूपमें दिया। मैं कहीं भी बिना हिचक यह बात दुहरा सकता हूँ कि जनरल स्मट्सने गम्भीरतापूर्वक उक्त वचन दिया था। हम देखते हैं कि न केवल वह अधिनियम रद नहीं किया गया, बल्कि संसदमें तरह-तरहके क्लेशकारी विनियम पास किये जा रहे हैं, जो ब्रिटिश भारतसे आनेवालोंको प्रभावित करते हैं।

दक्षिण आफ्रिकामें साझी

उन्होंने कहा, यह देश जितना गोरोंका है उतना ही ब्रिटिश भारतीयोंका भी है। ये दोनों ही साझेदार हैं। गोरे अधिक शक्तिशाली साझेदार हैं, किन्तु हैं दोनों साझेदार ही। भारतीय केवल न्याय और ईमानदारीका व्यवहार चाहते हैं और यदि ये चीजें नहीं मिलतीं तो उन्हें दिखा देना चाहिए कि वे कष्ट झेलनेको तैयार हैं। मेरी राय है कि जो आदमी अपनेको बादशाह एडवर्डकी प्रजा कहता है उसे अपने अधिकारोंका छीना जाना बर्दाश्त नहीं करना चाहिए। इसके विपरीत, उनकी रक्षाके लिए उसे कष्ट झेलना चाहिए। चूँकि हमारी चमड़ी रंगदार है इसलिए इस देशमें हमें कुछ नहीं समझा जाता, हमारी अनुभूतियोंकी उपेक्षा होती है, हमारी भावनाओंकी अवमानना होती है और हमारी अन्तरात्माका तिरस्कार होता है। हमें दिखा देना चाहिए कि हममें इतनी त्यागकी भावना है कि अपनी सम्पत्तिका जब्त होना बर्दाश्त कर सकें, और इस तरह सरकारको मजबूर करें कि जिस समझौतेको एशियाइयोंने सम्मानजनक ढंगसे पूरा किया है, उसका अपना हिस्सा सरकार भी पूरा करे। श्री नायडू आज ही जेलसे आये हैं। मैं पहले भी कह चुका हूँ कि जिस चीनीने आत्मघात कर लिया था उसकी मृत्युके लिए श्री स्मट्स जिम्मेदार हैं। श्री स्मट्स उसके लिए तो जिम्मेदार हैं ही, अब वे शिशु नायडूकी हत्याके लिए भी जिम्मेदार हैं। जब श्री नायडू जेल गये, उस समय श्रीमती नायडू प्रसव-पीड़ामें थीं, और श्रीमती नायडूने एक मृत बालकको जन्म दिया। इसके लिए यदि श्री स्मट्स जिम्मेदार नहीं तो फिर कौन है? मेरा पक्का विश्वास है कि इन सब तकलीफोंकी कैफियत आज नहीं तो कल देनी होगी।

१. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २४३-४४ और "ईसप मियाँ", पृष्ठ २४९।

श्री स्मट्स ईसाई हैं और हम सबोंकी तरह ही परलोकमें विश्वास करते हैं और जिस प्रकार हमें अपने कर्मोंकी कैफियत देनी होगी, उसी तरह उन्हें भी उन सब बातोंकी कैफियत देनी होगी।

श्री गांधीने भाषण समाप्त करते हुए ब्रिटिश भारतीयोंसे एक बार फिर अपील की कि जिन चीजोंको वे सही और न्यायोचित समझते हैं उनके लिए हर कष्ट झेलें। इसके बाद उन्होंने गुजरातीमें भाषण[1] शुरू किया।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, ११–८–१९०८

२६५. तीन फेरीवालोंका मुकदमा

[जोहानिसबर्ग
अगस्त ११, १९०८]

... कल [११ अगस्त १९०८] सुबह "डी" अदालतमें श्री एच० एच० हॉपकिन्सके सामने तीन भारतीय फेरीवालोंपर बिना परवानोंके फेरी लगाने या परवाने माँगनेपर न दिखा सकनेका अभियोग लगाया गया। सरकारी पक्षकी ओरसे श्री शॉने और बचाव पक्षकी ओरसे श्री गांधीने पैरवी की।

एक मामलेमें गवाही देते समय, नगरपालिकाके परवाना निरीक्षक श्री फ्रेंचने कहा कि अभियुक्तोंमें से एकने उन्हें बताया था कि उसका परवाना श्री गांधीके पास है। गवाह श्री गांधीके दफ्तरमें गया और वहाँ उसे बताया गया कि उनके पास परवाना नहीं है।

श्री गांधी गवाहीके कठघरेमें गये और उन्होंने कहा कि उस अभियुक्तने कथित रूपसे जो-कुछ कहा है, उसके सम्बन्धमें यह कहना है कि मेरे पास बहुत-से परवाने, शायद दो-तीन सौ, तथा कोई एक हजार पंजीयन प्रमाणपत्र भी हैं। ये परवाने तथा प्रमाणपत्र मेरे पास उन ब्रिटिश भारतीयोंने जमा किये हैं जिन्होंने उनका इस्तेमाल न करनेका निश्चय कर लिया था। मैंने यह जाननेके लिए अपने कागजातकी छानबीन नहीं की कि मेरे पास यह परवाना-विशेष था या नहीं। कारण, निरीक्षकने मुझसे ऐसा करनेको नहीं कहा था।

अभियुक्तोंमें से दोने कहा कि उन्होंने परवाने नहीं लिये हैं, क्योंकि उन्हें परवाना देनेसे पहले अँगूठेके निशान देने पड़ते।

मजिस्ट्रेटको जवाब देते हुए श्री शॉने कहा कि इस जुर्मकी सबसे कड़ी सजा २० पौंड जुर्माना या तीन महीनेकी कैद है।

सभी अभियुक्त दोषी ठहराये गये और उन्हें १–१ पौंड जुर्माने या सात-सात दिनकी सख्त कैदकी सजा दी गई।

उन सबने जेल जाना पसन्द किया। ...

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, १२–८–१९०८

१. गुजराती भाषणकी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है।

२६६. काजी हसन और अन्य लोगोंका मुकदमा

[जोहानिसबर्ग
अगस्त ११, १९०८]

दोपहरके बादसे "सी" अदालतमें श्री क्रॉसके सम्मुख ५ अन्य भारतीयोंपर परवानेके बिना फेरी लगाने या पूछे जानेपर अपने परवाने न दिखानेके आरोपमें एवं व्यापार करनेके अपने टोकरों या पात्रोंपर अपने छपे नाम न लगानेपर भी मुकदमा चलाया गया।

श्री गांधीने अभियुक्तोंकी ओरसे पैरवी की।

सबसे पहले काजी हसनकी पेशी हुई। उन्होंने अपने आपको निर्दोष बताया और कहा कि उन्होंने अपना प्रमाणपत्र निरीक्षकको दिखा दिया था।

नगरपालिकाके परवाना निरीक्षक श्री फ्रेंचने गवाहीमें कहा कि उन्होंने अभियुक्तको बिक्रीके लिए माल लगाये हुए देखा। उन्होंने जब उनसे अपना परवाना दिखानेके लिए कहा तो उन्होंने परवाना नहीं दिखाया। बादमें चार्ज ऑफिसमें उन्होंने अपना परवाना दिखाया।

श्री गांधीने कहा कि मैं अब समझ गया कि अभियुक्तने अपने-आपको निर्दोष क्यों बताया है। उनके पास परवाना था; किन्तु जब निरीक्षकने उनसे कहा तो उन्होंने दूसरोंके साथ-साथ परवाना दिखानेसे इनकार कर दिया।

मजिस्ट्रेट: मुझे संतोष है कि उन्होंने अपना परवाना दिखा दिया है।

मजिस्ट्रेटने उनको पहले दो आरोपोंमें निर्दोष पाया, किन्तु अपनी टोकरीपर अपना छपा नाम न लगानेके सम्बन्धमें दोषी ठहराया। उनको चेतावनी दे दी गई और बरी कर दिया गया।

उसके बाद अहमद ईसपकी पेशी हुई। उन्होंने माँगे जानेपर अपना परवाना न दिखाने-सम्बन्धी अपना दोष स्वीकार किया।

श्री गांधीने कहा कि प्रत्यक्ष है कि अभियुक्तका परवाना किन्हीं अच्छे हाथोंमें है।

मजिस्ट्रेट: श्री गांधी, क्या वे हाथ आपके हैं?

श्री गांधी: मुझे डर तो ऐसा ही है, श्रीमन्!

अभियुक्तको १ पौंड जुर्मानेकी या सात दिनकी कड़ी कैदकी सजा दे दी गई।

इसके बाद फकीरी नामक एक फेरीवालेकी पेशी हुई और उसको भी १ पौंड जुर्मानेकी या सात दिनकी कड़ी कैदकी सजा दी गई।

सबसे पीछे इब्राहीम माराविन और इस्माइल अहमद पेश किये गये।

नगरपालिकाके परवाना निरीक्षक श्री बैरेटने गवाही देते हुए कहा कि मैं यह जिक्र करना चाहता हूँ कि श्री गांधीके पास फेरीवालोंके दो-तीन सौ परवाने हैं।

श्री गांधी: मैंने यह बात आज प्रातः गवाहीमें बता दी थी।[1]

१. देखिए पिछला शीर्षक।

गवाहने कहा कि जब फेरीवालोंको अपने परवाने दिखानेके लिए कहा गया तो उन्होंने बताया कि उनके परवाने श्री गांधीके अधिकारमें हैं।

मजिस्ट्रेट: यदि वे अपने परवाने श्री गांधीको दे देते हैं तो इसके लिए श्री गांधीको दोष नहीं दिया जा सकता।

श्री गांधीने कहा कि फेरीवालोंने अपने परवाने इसलिए दे दिये हैं कि उनका खयाल है कि उन्हें ऐसे परवानोंके प्रयोगका कोई अधिकार नहीं है जो दूसरोंको नहीं मिल सकते। जब सरकारने परवाने देनेके सम्बन्धमें गुप्त निर्देश निकाले तब वे परवानेदारोंके पास थे और चूँकि दूसरे भारतीयोंको परवाने नहीं मिल सके इसलिए जिन लोगोंके पास वे थे, उन्होंने उनको ब्रिटिश भारतीय संघको सौंप दिया।

अभियुक्तोंपर १–१ पौंड जुर्माना किया गया और जुर्माना न देनेपर विकल्पके रूपमें सात-सात दिनकी सख्त कैदकी सजा रखी गई।

उन्होंने जेल जाना पसन्द किया।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, १२–८–१९०८

२६७. मूलजीभाई जी० पटेलका मुकदमा–२

[जोहानिसबर्ग
अगस्त १२, १९०८]

कल [१२ अगस्त, १९०८ को] श्री एच० एच० जॉर्डनके सम्मुख "बी" न्यायालयमें एक भारतीय, मूलजी गिरधरलाल पटेलपर इस आरोपमें मुकदमा चलाया गया कि वे न्यायालय द्वारा उपनिवेशसे जानेकी आज्ञा देनेपर उपनिवेशसे नहीं गये। अभियुक्तपर इसी न्यायालयमें लगभग एक सप्ताह पहले पंजीयन प्रमाणपत्र न दिखानेके आरोपमें मुकदमा चलाया गया था और उनको सात दिनके भीतर उपनिवेशसे चले जानेकी आज्ञा दी गई थी।[1]

श्री क्रैमर अभियोक्ता-पक्षके वकील थे और श्री गांधी बचाव पक्षके। अभियुक्तने अपने आपको निर्दोष बताया।

अधीक्षक वरनॉनने गवाहीमें कहा कि उन्होंने अभियुक्तको, हुक्म देनेपर भी उपनिवेशसे न जाने और पंजीयन न करानेके आरोपमें, कल प्रातः ६ बजकर १० मिनटपर गिरफ्तार किया था।

श्री गांधीके प्रश्नका उत्तर देते हुए गवाहने कहा कि अभियुक्तको उपनिवेशमें रहनेका कोई अधिकार नहीं है।

श्री गांधी: आप कहते हैं कि उनको उपनिवेशमें रहनेका कोई अधिकार नहीं है। क्या ऐसी बात है?

[वरनॉन:] हाँ।

[गांधीजी:] क्या उनके पास शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अन्तर्गत अनुमतिपत्र नहीं हैं?

१. देखिए "मूलजीभाई जी० पटेलका मुकदमा — १", पृष्ठ ४१६।

[वरनॉन :] है।

[गांधीजी :] क्या इस अनुमतिपत्रके होनेसे किसीको देशमें प्रवेश करने और रहनेका अधिकार नहीं मिलता?

[वरनॉन :] मिलता है, किन्तु शान्ति-रक्षा अध्यादेश अब रद कर दिया गया है।

[गांधीजी :] क्या आपका तात्पर्य यह है कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशके रद होनेसे उसके अन्तर्गत जारी किये गये अनुमतिपत्र रद हो गये?

[वरनॉन :] हाँ।

[गांधीजी :] तब क्या आप यह मानते हैं कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अन्तर्गत दिये गये सब अनुमतिपत्र अवैध हो गये हैं?

[वरनॉन :] हाँ।

[गांधीजी :] मुझे भय है कि न्यायालय आपके तर्कको स्वीकार न करेगा।

अभियुक्तको एक मासकी कड़ी कैदकी सजा दे दी गई।

अभियुक्त ट्रान्सवालमें लगभग १० वर्षसे रहते हैं और शिक्षित व्यक्ति हैं; यहाँ उनका खासा असर है — मुख्यतः, बम्बईके हिन्दुओंके एक वर्गमें। उनके पास शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अन्तर्गत जारी किया गया प्रमाणपत्र है जो लॉर्ड मिलनरके साथ सम्पन्न समझौतेके अनुसार दिया गया था।[१]

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, १३–८–१९०८

२६८. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

सोमवार [अगस्त १०, १९०८]

नायडू छूटे

आज सवेरे ९ बजे श्री थम्बी नायडू जेलसे छूट गये। उन्हें लेनेके लिए श्री ईसप मियाँ, श्री इमाम अब्दुल कादिर बावजीर, श्री कुवाड़िया, श्री कुनके, कुछ चीनी और श्री गांधी आदि गये थे। श्री नायडूका शरीर कमजोर हो गया है। लेकिन उनका साहस दूना हो गया है और वे चौथी बार जेल जानेकी फिक्रमें हैं।

श्रीमती नायडूसे तुरन्त मिलना चाहिए यह सोचकर श्री नायडू और उनकी अगवानी करनेके लिए आये सभी भारतीय उनके घर गये। वहाँ श्री ईसप मियाँ तथा अन्य सज्जन कुछ बोले और श्री नायडूने जवाब दिया। उसके बाद बैठक समाप्त हो गई।

श्रीमती नायडूकी हालत ठीक है। बीचमें दो दिन उन्हें ज्वर आ गया था। आज शामको तमिल समाजकी ओरसे श्री नायडूके सम्मानमें सभा होनेवाली है। उनका सार्वजनिक सम्मान करनेकी भी कोशिश की जा रही है।

१. **इंडियन ओपिनियन** (१५–८–१९०८) में प्रकाशित रिपोर्टमें कहा गया है: "पटेल-जैसी स्थितिमें २०० से अधिक भारतीय हैं, जो ट्रान्सवालके युद्धसे पहलेके निवासी हैं और जिनके पास अनुमतिपत्र और पंजीयन प्रमाणपत्र हैं।"

हरिलाल गांधीका मामला

श्री हरिलाल गांधी आज लपेटमें आ गये हैं। पुलिसने उन्हें ट्रान्सवालमें बिना पंजीयनके रहनेके अपराधमें पकड़ लिया। २ बजे मुकदमा हुआ।[1] उपनिवेश छोड़नेके लिए साधारणतः ७ दिनकी मोहलत दी जाती है। श्री गांधीने उसके बदले २४ घंटेकी मोहलत माँगी; क्योंकि उन्हें कोई भी काम नहीं करना था और वे सीधे जेल जाना चाहते थे; किन्तु मजिस्ट्रेटने सात दिनकी मोहलत दी। मुझे उम्मीद है कि अब सात दिन बाद वे जेलमें सख्त सजा काटते हुए दीख पड़ेंगे। जो बुद्धिपूर्वक इस तरह जेल जाते हैं, वे वास्तवमें शिक्षित हैं। छुटपनसे ही अपने बच्चोंको दुःख सहन करनेकी शिक्षा देना बड़ा शिक्षण है।

जॉर्ज गॉडफ्रे

जिन श्री गॉडफ्रे महोदयने अभी-अभी वकालतका धन्धा शुरू किया है, उन्होंने समाजके मुकदमेकी पैरवी मुफ्त करनेकी घोषणा की है। यह कदम बहुत प्रशंसनीय है और कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी शिक्षाका सच्चा उपयोग किया है।

हॉस्केनकी टीका

श्री हॉस्केनने खबर दी है कि प्रगतिवादी दल [एशियाई] कानून रद करनेका विरोध करेगा। अब इस समाचारसे कोई भी घबराता नहीं। जनवरीमें उक्त दल तथा अन्य सभी हमारे विरुद्ध थे;[2] फिर भी हम लड़े और जीते। वैसा ही आज भी हो तो कुछ नई बात नहीं होगी। जब भारतीय अपने वास्तविक रूपमें प्रकट होंगे, तब सारे विरोधी फीके पड़ जायेंगे। जिस प्रकार सूरजके उजालेसे अन्धकार त्रस्त होकर एक कोनेमें जा छुपता है, उसी प्रकार भारतीय सत्य-रूपी सूरजके सामने स्मट्सकी धोखाधड़ी और प्रगतिवादी दलका विरोध भी सिमटकर रह जायेगा। भारतीयोंका सत्य निखरना चाहिए।

स्टेंटका भाषण

श्री स्टेंट प्रगतिवादी दलके हैं और 'प्रिटोरिया न्यूज' के सम्पादक हैं; उन्होंने प्रिटोरियामें निम्नलिखित भाषण दिया है:

> जनरल स्मट्सने एशियाई प्रश्नपर उपनिवेशका अपमान किया है। एशियाई कानून अन्यायपूर्ण है। उन्होंने उसे दाखिल किया। उपनिवेशके लोग चाहे इसे मानें या न मानें, फिर भी इतना तो जरूर कबूल करेंगे कि उन्होंने उस कानूनके अमलमें बहुत-सी भूलें की हैं। एक ओर उन्होंने गोरोंको भारतीयोंके विरुद्ध उकसाया, दूसरी ओर उन्होंने भारतीयोंके साथ समझौतेकी बातचीत चलाई। एक ओर उन्होंने भारतीयोंको धमकी दी, और दूसरी ओर भारतीयोंकी सारी शर्तें स्वीकार कर लीं।
>
> अब वे श्री गांधीके विरोधमें लड़ रहे हैं। उन्होंने कुछ नये आधार निकाले हैं। उनमें भी वे हारेंगे। एशियाई सदा निष्क्रिय प्रतिरोध ही नहीं करेंगे, वे आगे भी बढ़ेंगे

१. देखिए "हरिलाल गांधीका मुकदमा — २", पृष्ठ ४२९-३०।

२. समझौते तथा स्वेच्छया पंजीयनके प्रति प्रगतिवादी दलके रुखके लिए देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" (पृष्ठ ६८-७०) में दिया गया स्मट्स-फेरार पत्र-व्यवहारका सारांश। परन्तु उस समय गांधीजीका निष्कर्ष यह था कि "प्रगतिवादी दल हमारे विरुद्ध नहीं है"।

और गोरोंके बराबर हक माँगेंगे। उन्हें वे अधिकार दिये बिना हमारा छुटकारा नहीं है। आप उन्हें हकदार मानें या न मानें किन्तु हमें वे हक अपनी कमजोरीके कारण देने पड़ेंगे।

श्री स्टेंटका यह भाषण अच्छी तरह समझा जाने योग्य है। श्री स्टेंट समझते हैं कि श्री स्मट्सने दगा किया है। उनका पक्ष असत्य है और भारतीयोंका सत्य। असत्य सदा सत्यके सामने कमजोर पड़ता है। अतः भारतीय समाज यदि सत्यपर दृढ़ रहे तो विजय निश्चित है।

मंगलवार [अगस्त ११, १९०८]

नायडूका सम्मान

तमिल समाजने मार्केट स्ट्रीटमें श्री थम्बी नायडूके सम्मानमें कल शामको ६ बजे सभा की थी। उसमें श्री ईसप मियाँ, श्री इमाम अब्दुल कादिर, श्री कुवाड़िया आदि सज्जन उपस्थित थे। श्री नायडूकी बहादुरीपर अनेक भाषण हुए। श्री नायडूको जब पुष्पहार पहनाया गया तब लोगोंने तालियाँ बजाईं। सभा ९ बजे तक होती रही।

फेरीवाले पकड़े गये

श्री अहमद ईसप, श्री वली हसन,[1] श्री कारा ओधव, श्री इब्राहीम मारविआ, श्री इस्माइल अहमद, श्री जीवण भीखा, तथा श्री सुलेमान मूसा — ये भारतीय, बिना परवाना व्यापार करनेके कारण, गिरफ्तार किये गये। इनमें श्री वली हसनके पास परवाना था, तो भी उन्होंने परवाना नहीं दिखाया। बादमें साबित हुआ कि उनके पास परवाना है, इसलिए उन्हें छोड़ दिया गया। बाकी सभी लोगोंको एक-एक पौंड जुरमाने अथवा सात-सात दिन जेलकी सजा हुई। उन लोगोंने सजा मंजूर की और जुर्माना नहीं दिया। इस मुकदमेमें जेलकी सजा जरा मुश्किलसे मिली; भय यह था कि कहीं ऐन वक्तपर जमानतके पैसेपर नजर रखकर वेरीनिगिंगके समान केवल जुर्माना ही न कर दिया जाये। किन्तु जिनके विषयमें ऐसा किया जानेकी आशंका थी, श्री गांधीने मुकदमा चलनेके पहले ही उनकी जमानत वापस ले ली थी।

चेतावनी

इससे सावधान हो जाना चाहिए कि कोई जमानत न दे। यदि जमानत देनी ही पड़े, तो वह दूसरेके नामकी होनी चाहिए। पुलिस जबरदस्ती जमानत नहीं माँग सकती। जिनकी जेबमें पैसा हो उन्हें भी हिम्मतके साथ जमानतसे साफ इनकार करना चाहिए।

पटेल तथा नायडू

श्री पटेल तथा श्री पी० के० नायडू जिन्हें [आज उपनिवेश छोड़ देनेका] सात दिनका नोटिस मिला, अब किसी भी दिन पकड़े जा सकते हैं।[2]

सोराबजी

श्री सोराबजी आगामी बुधवार, तारीख १८ को छूटेंगे। मुझे आशा है कि उस समय सैकड़ों भारतीय उन्हें लेने जायेंगे। श्री सोराबजीका योग्य सम्मान करनेकी तैयारियाँ हो रही हैं।

१. काजी हसन? देखिए "काजी हसन और अन्य लोगोंका मुकदमा", पृष्ठ ४३४-३५।

२. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ४१८-१९।

बुधवार [अगस्त १२, १९०८]

मूलजीभाई पटेल

श्री पटेलको आज सवेरे ६ बजे पकड़ लिया गया। १० बजे उनपर मुकदमा चला।[1] श्री गांधी उपस्थित थे। श्री पटेलने कोई प्रमाण नहीं दिया, उलटे जिरहके वक्त श्री वरनॉनके साथ झड़प हो गई। श्री पटेलको एक महीनेकी सख्त सजा दी गई। श्री पटेल बड़े उत्साहमें हैं। वे बहुत ही प्रसन्न थे। जितने अधिक ऐसे व्यक्ति जेल जाते हैं, भारतीय समाजकी जिम्मेदारी उतनी अधिक बढ़ती जाती है। ऐसे लोगोंको जेल भेजनेके बाद समाज पीछे नहीं हट सकता।

दो फेरीवाले

श्री ओधव भीखा तथा श्री एस० शिवलिंगम् पिल्लेपर [बिना परवाना] व्यापार करनेका मुकदमा चला। उन्हें एक पौंड जुर्माने अथवा सात दिन जेलकी सजा दी गई। जुर्माना न देकर दोनों बहादुर भारतीय जेल चले गये।

जर्मिस्टनमें

नाना नामक एक भारतीय था। उसपर मुकदमा चला। वह [निश्चित समयपर] अदालतमें उपस्थित नहीं हुआ और उसकी जमानत जब्त हो गई। श्री गॉडफ्रे उसकी पैरवी करनेके लिए जानेवाले थे। इस प्रकारके व्यक्तियोंसे समाजका बहुत बड़ा नुकसान होता है।

क्लार्क्सडॉर्पमें

अब्दुल मुहम्मद नामक एक भारतीयके ऊपर भी ऐसा ही मुकदमा था। उसने साहसके साथ अपनी पैरवी की। उसने गवाही देते हुए कहा कि वह कदापि अँगूठेकी छाप नहीं देगा। उसे चार दिनकी जेल अथवा एक पौंडका जुर्माना किया गया। वे भाईसाहब जेल तो चले गये, किन्तु दूसरे दिन जुर्माना दे दिया। यहाँके समाचारपत्रमें यह मामला देखनेको मिला, नहीं तो खबर भी नहीं पड़ती।

संघर्ष किस तरह करना चाहिए?

श्री इमाम अब्दुल कादिर बावजीर, श्री फैन्सी, श्री इब्राहीम कुवाड़िया, श्री उमरजी साले, श्री दिलदार खाँ, श्री अहमद मूसाजी, तथा श्री मोहनलाल गोशलिया —— इतने भारतीय आज चार्ल्सटाउन रवाना हुए हैं। उक्त सज्जन चार्ल्सटाउनसे वापस आयेंगे। वे अँगूठेकी छाप नहीं देंगे, पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं दिखायेंगे और जेल जायेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–८–१९०८

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२६९. पत्र : 'स्टार' को[1]

[जोहानिसबर्ग
अगस्त १२, १९०८]

[सम्पादक
'स्टार']

महोदय,

मैं आशा करता हूँ कि आप मुझे शिक्षित भारतीयोंके प्रश्नके सम्बन्धमें, जिसकी एशियाई संघर्षपर लिखित अपने कलके सम्पादकीयमें आपने चर्चा की है, आपकी कुछ भूलोंको सुधारनेकी अनुमति देंगे।[2] ब्रिटिश भारतीयोंने शिक्षित भारतीयोंके लिए दरवाजा खोलनेकी माँग नहीं की है। वे इतना ही चाहते हैं कि प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत वह आज जितना खुला हुआ है, उतना खुला रहने दिया जाये। आपने यह मान लिया है कि अंग्रेजी-भाषी युवकोंको प्रवेश देनेकी माँग की जा रही है। सचाई यह है कि भारतीयोंने स्पष्ट कर दिया है कि जबतक उच्चतम शैक्षणिक योग्यताएँ रखनेवालोंके लिए परवाना खुला रखा जाता है — न कि खोल दिया जाता है — उन्हें उनकी शैक्षणिक योग्यताकी कसौटीपर, वह कितनी ही कड़ी क्यों न हो, कोई आपत्ति न होगी।

आप कहते हैं कि इस कथित नई माँगको देखते हुए जनरल स्मट्सका अपने दिये हुए किसी भी वचनसे फिर जाना अनुचित नहीं होगा। मैंने जो तथ्य पेश किये हैं उनसे आप खुद ही जान सकते हैं कि कोई नई माँग नहीं रखी गई है। लेकिन यदि रखी गई होती तो क्या एशियाइयों द्वारा स्वेच्छया पंजीयनकी उस शर्तके पूरा कर दिये जानेपर भी, जिसपर कि जनरल स्मट्सका वचन निर्भर था, उनका उसे तोड़ना उचित माना जा सकता है? इसके अलावा यदि एशियाई कोई नई माँग रखते हैं तो जनरल स्मट्सको यह अधिकार तो अवश्य है कि वे उसे देनेसे इनकार कर दें, लेकिन उसके कारण उन्हें अपना वचन तोड़नेका अधिकार तो निश्चय ही प्राप्त नहीं होता। एशियाइयोंको जिस बातका दुःख है वह यह है कि वे शैक्षणिक अयोग्यताकी स्वीकृतिको एशियाई अधिनियमको रद करनेकी शर्त बनाते हैं। क्या उनके लिए सम्मानका मार्ग यह नहीं होगा कि वे, उन्होंने जिस वस्तुको देनेका वचन दिया है, उसे दे दें और फिर उसे स्वीकार या अस्वीकार करनेका भार एशियाइयोंपर डाल दें?

१. यह **इंडियन ओपिनियन**में "ट्रान्सवालमें भारतीयोंका संघर्ष" शीर्षकसे पुनः प्रकाशित हुआ था।

२. **स्टार**ने ता. ११-८-१९०८ के अपने सम्पादकीयमें चर्चा करते हुए इस प्रकार लिखा था: ". . .श्री गांधी एशियाई अधिनियमको रद करनेसे इनकार करनेके कारण उपनिवेश-मंत्रीपर शर्मनाक वचन-भंगका दोषारोपण करते हैं जब कि दूसरी ओर श्री स्मट्स जोर देकर कहते हैं कि एशियाई नेता अब नई रियायतोंकी मांग कर रहे हैं. . .लेकिन उनके [श्री गांधीके] सुबूत. . .निश्चय ही अपूरे हैं. . .श्री गांधी, जब कि, श्री स्मट्सके लिए 'हत्या' और 'सुसंगठित डाके' की हदतक दोषारोपण करनेपर उतारू हो जाते हैं, तो वे लोग भी जो [एशियाइयोंके प्रति] असहिष्णु नहीं हैं — वस्तुस्थितिकी बाबत उनकी विश्वसनीयताके प्रति सशंकित हो उठते हैं. . .श्री स्मट्स संसदके सेवक हैं और इसलिए कोई अभिवचन, जो उन्होंने श्री गांधीको दिया हो, निश्चय ही, विधान-मण्डलकी स्वीकृतिकी अपेक्षा रखता है। . . .[श्री गांधीके प्रस्तावको स्वीकार करनेके मानी हैं] उन हजारों भारतीय लड़कोंका. . .अनियंत्रित प्रवेश जो नेटालकी [या भारतकी] पाठशालाओंमें शिक्षा पाते रहे हैं या पा रहे हैं। . . .एशियाइयोंने जो मुसीबतें बरदाश्त की हैं वे केवल अपने नेताओंकी हठधर्मी और मूर्खताके कारण उठाई हैं. . .और अब जबकि उन्हें इसके परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं उन्हें शिकायत क्यों करना चाहिए. . .।"

आप ऐसा सोचते मालूम होते हैं कि अधिनियमको रद करनेकी माँगसे एशियाइयोंका मंशा यह है कि एशियाई अधिनियम किसी भी रूपमें बाकी न रहे। यह बात सच्चाईसे इतनी दूर है कि अधिनियमको रद करनेकी दृष्टिसे प्रवासी विधेयकका जो मसविदा तैयार हुआ था और उपनिवेश-सचिव द्वारा मुझे दिखाया गया था उसमें एशियाई अधिनियमके ऐसे विधान, जो पहलेसे ही दे दिये गये प्रमाणपत्रों या ऐसी ही दूसरी चीजोंकी सम्यक जाँचके लिए जरूरी हैं, वहाँसे ही दिये गये थे। एशियाई लोग निरीक्षणका — जाँचका — विरोध नहीं करते, लेकिन वे उस अधिनियमका विरोध अवश्य करते हैं जो जालसाजीके आरोपोंपर आधारित है और जिसमें अनेक आपत्तिजनक धाराएं शामिल हैं।

उक्त अधिनियमको रद करनेके वचनकी बात लें तो आपकी रिपोर्टके अनुसार पिछली ६ फरवरीको जनरल स्मट्सने यह कहा था कि "उन्होंने एशियाइयोंसे कह दिया है कि वे अधिनियमको तबतक रद नहीं करेंगे जबतक कि हरएक एशियाई अपना पंजीयन नहीं करा लेता।" मैं उनके इस कथनको उनके उस वचनका सार्वजनिक पुष्टीकरण मानता हूँ जो उन्होंने मुझे ३० जनवरीको दिया था और जिसे उन्होंने पिछली ३ फरवरीको दुहराया था। यदि उनकी इस घोषणाका कोई दूसरा अर्थ होता हो तो मैं स्वीकार करता हूँ कि वह मेरी समझके बाहर है।

आपने मेरे द्वारा जनरल स्मट्सपर श्री नायडूके बच्चेकी हत्याका दोष लगाये जाने और वेरीनिगिंगमें वहाँके मजिस्ट्रेटने अपराधी भारतीयोंपर किये गये जुरमानोंके बदलेमें उनका माल-असबाब जब्त करनेका जो आदेश दिया है उसके सम्बन्धमें "कानून-समर्थित डाका" शब्दोंका उपयोग किये जानेपर रोष प्रकट किया है।[1] श्रीमती नायडूके पतिको तीसरी बार जेलकी सजा होनेपर, उसके तुरन्त बाद उनके कमरेमें जो घटना घटी वह मैंने अपनी आँखों देखी थी। मैं उसे भूल नहीं सकता। छः दिनके बाद मैंने सुना कि उन्होंने एक मृत बालकको जन्म दिया। श्री नायडूने इसके सिवा और कोई अपराध नहीं किया था कि पहले तो उन्होंने जनरल स्मट्सको दुविधाकी एक अत्यन्त अटपटी परिस्थितिसे बाहर निकलनेमें मदद दी और फिर किसी भी दूसरी चीजकी तुलनामें अपनी अन्तरात्माकी प्रेरणाको प्राथमिकता दी। आपको शायद आश्चर्य होगा, लेकिन मैं यह बात फिर दुहराता हूँ कि बालककी हत्याका दोष जनरल स्मट्सके ही सिरपर रखा जाना चाहिए। अन्तमें, यदि कोई व्यक्ति बलका प्रयोग करके मेरे माल-असबाबका अपहरण करे तो कानून उसके इस कृत्यको डकैती कहेगा। जब मेरा माल-असबाब जब्त करने और इस तरह मुझे मेरी अन्तरात्माका समर्पण करनेको विवश करनेके लिए स्वयं कानूनके ही करणका उपयोग किया जाता है तो इस प्रक्रियाको "कानून-समर्थित डाका" कहनेके लिए मुझे क्षमा किया जाये। और जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया है उनके माल-असबाबका इस तरह जबरदस्ती बेचा जाना भारतीयोंके लिए यही अर्थ रखता है।

[आपका, आदि,
मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-८-१९०८

1. देखिए "भाषण: सार्वजनिक सभामें", पृष्ठ ४३१।

२७०. भेंट: 'ट्रान्सवाल लीडर' को

[जोहानिसबर्ग
अगस्त १२, १९०८]

कल (अगस्त १२, १९०८ को) ट्रान्सवालके अनेक प्रमुख भारतीयोंने[1] चार्ल्स टाउनके लिए प्रस्थान किया। उनका इरादा शिनाख्तका सबूत दिये बगैर ट्रान्सवालकी सीमामें प्रवेश करनेका है। ... उनमें सभी ट्रान्सवालके स्थायी निवासी हैं और एकके अलावा सभीके पास स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र हैं। ये अपने पंजीयन प्रमाणपत्र दिखानेसे इनकार करेंगे, जो एशियाई कानूनके अनुसार उनसे अवश्य माँगे जायेंगे। सरकार द्वारा अपेक्षित ब्यौरे देनेसे इनकार करनेपर ये लोग गिरफ्तार कर लिए जायेंगे। उस दशामें वे एशियाई कानूनकी जरूरतोंको पूरा करनेसे इनकार करनेके अभियोगको स्वीकार करेंगे ताकि वे जेल भेजे जायें। ...

कुछ अन्य भारतीय भी, जो प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेके अधिकारी हैं, परन्तु एशियाई संशोधन अधिनियमके अन्तर्गत नहीं, शायद अगले कुछ दिनोंमें ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेकी कोशिश करेंगे। ...

श्री गांधीने कहा कि इस कानूनसे एशियाई समुदायोंको सन्तोष नहीं होगा, क्योंकि उनका विचार है कि जनरल स्मट्सने समझौतेके समय जो वादे किये थे उनकी शर्तोंको यह भंग करता है, और यह एक ही वर्गके लोगोंके लिए दो प्रकारके विधान प्रस्तुत करता है। यह विधेयक उन एशियाइयोंको संरक्षण प्रदान नहीं करता जो उनके विचारसे देशमें प्रवेशके अधिकारी हैं और स्वेच्छया पंजीयनके लिए नियत की गई तीन महीनेकी अवधि बीत जानेके बाद देशमें आये हैं; और न उन एशियाइयोंको ही संरक्षण प्रदान करता है, जो समझौतेकी तारीखको ट्रान्सवालमें मौजूद थे, परन्तु उन्होंने स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र नहीं लिये। नये विधेयकके अनुसार इन एशियाइयोंका एशियाई कानूनके अन्तर्गत पंजीयन होना है। कुछ मामलोंमें इसका परिणाम एशियाइयोंके लिए अजीब होगा। ऐसे मामले भी हैं जिनमें बेटोंके स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र लिये हैं और पिताओंने, जो तीन महीनेकी अवधिमें उपनिवेशमें नहीं थे, ऐसा नहीं किया है। इसलिए उन्हें पुराने कानूनके अन्तर्गत पंजीयन करानेको कहा जायेगा। एशियाई समाजोंका विचार है कि यह कानून उन एशियाइयोंको जिन्होंने स्वेच्छया पंजीयन करा लिया है, कानूनकी व्यवस्थाओंसे नाममात्रको ही बरी करता है। एशियाइयोंका कहना है कि समझौतेके अनुसार सरकारको दो शर्तें पूरी करनी हैं: एक तो यह कि उन सबपर, जिन्होंने स्वेच्छया पंजीयन करा लिया है, कानून नहीं लागू होना चाहिए। दूसरी यह कि जिन्होंने समझौतेकी व्यवस्थाके अनुसार ट्रान्सवालमें प्रवेश किया हो, उनपर भी स्वेच्छया पंजीयनका तरीका ही लागू होना चाहिए। वे कहते हैं कि इन दोनों ही शर्तोंका ध्यान नहीं रखा गया और फिर युद्ध-पूर्वके एशियाई निवासियोंके लिए, जो अभीतक ट्रान्सवाल वापस नहीं आये हैं, कोई भी व्यवस्था नहीं रखी गई। ऐसे पुराने निवासी यदि पुराना

१. नामोंके लिए देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ४३९।

एशियाई कानून मानना पसन्द करें तो स्वविवेक सम्बन्धी धाराके अन्तर्गत पंजीयन प्रमाणपत्र ले सकते हैं। चूँकि ऐसे एशियाई पुराने कानूनके स्वरूपसे सहमत न होंगे, वे प्रवेशसे वर्जित किये जायेंगे। यही बातें उन शिक्षित भारतीयोंपर भी लागू होती हैं जो प्रवासी प्रतिबन्धक कानूनके अन्तर्गत उपनिवेशमें प्रवेश कर सकते हैं, पर जो एशियाई कानूनकी जरूरतें न पूरी करनेके कारण "अपंजीकृत" माने जायेंगे। "यह एक होशियारीकी चाल है", श्री गांधीका कथन है, "किन्तु सम्मान योग्य कदापि नहीं।" भारतीयोंका विचार है कि नया कानून एक ही वर्गके लोगोंके लिए अलग-अलग कानूनी व्यवस्था करता है, जैसे कि यह उन भारतीयोंकी हरकतोंपर नियन्त्रण रखता है जिन्होंने स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र लिये हैं और पुराना एशियाई कानून बाकी एशियाइयोंकी गतिविधियोंपर।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, १३–८–१९०८

२७१. प्रार्थनापत्र : ट्रान्सवाल विधानसभाको[1]

सेवामें
माननीय अध्यक्ष महोदय और
ट्रान्सवालकी माननीय विधानसभाके सदस्यगण
प्रिटोरिया

जोहानिसबर्ग
अगस्त १३, १९०८[2]

ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षकी हैसियतसे ईसप मियाँ और उसके अवैतनिक मन्त्रीकी हैसियतसे मो० क० गांधीका प्रार्थनापत्र

सविनय निवेदन है कि :

१. ब्रिटिश भारतीय संघ ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंका प्रतिनिधित्व करता है।

२. संघके सदस्य सरकारी 'गजट' में प्रकाशित उस विधेयकको पढ़कर बहुत चिन्तित हुए हैं, जिसका मंशा "उन एशियाइयोंके स्वेच्छया पंजीयनको वैध बनाना है जो १९०७ के एशियाई कानून संशोधन अधिनियमकी धाराओंका पालन नहीं कर सके हैं।"

३. जब ब्रिटिश भारतीयोंने स्वेच्छया पंजीयन कराना स्वीकार किया था, तब १९०७ के एशियाई कानून संशोधन अधिनियमको मान्य करनेका उनका कोई इरादा नहीं था।

४. यद्यपि सम्माननीय सदनके सामने जो विधेयक है, वह देखनेमें ब्रिटिश भारतीयोंको उक्त अधिनियमके पालनपर बाध्य नहीं करता, किन्तु सचमुच उक्त विधेयकके अन्तर्गत वैध किये जानेवाले स्वेच्छया पंजीयन और एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत किये जानेवाले पंजीयनमें कोई भेद नहीं है।

१. यह २२–८–१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में "संसदके नाम प्रार्थनापत्र" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

२. हालांकि प्रार्थनापत्र इस तारीखको लिखा गया था, किन्तु उसे १४ अगस्तके बाद प्रेषित किया गया था। देखिए, अगला शीर्षक, पृष्ठ ४४६।

५. माननीय उपनिवेश-सचिव और ब्रिटिश भारतीय संघके अवैतनिक मन्त्री तथा अन्य सह-हस्ताक्षरकर्ताओंके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसमें समझौतेकी शर्तें ये थीं :

(क) समझौतेके समय उपनिवेशमें रहनेवाले सभी एशियाई निवासी समझौतेकी तिथिसे "यों कहिए कि ३ महीनेके भीतर" स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र ले लें।
(ख) १६ सालसे कम उम्रके बच्चे हर प्रकारके पंजीयनसे बरी रहेंगे।
(ग) पंजीयनकी यह पद्धति उनपर लागू होगी जिन्हें ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेका अधिकार है किन्तु जो समझौतेके समय ट्रान्सवालमें उपस्थित नहीं थे।
(घ) जिन्होंने स्वेच्छया पंजीयन करा लिया, उनपर १९०७ का अधिनियम २ लागू नहीं किया जायेगा।
(ङ) सरकार जो अन्य पद्धति उचित समझेगी, स्वेच्छया पंजीयन उसके मुताबिक वैध बनाया जा सकता है।[1]

६. ब्रिटिश भारतीय संघके अवैतनिक मन्त्रीको माननीय उपनिवेश-सचिवने भेंट करनेके जो अवसर दिये थे, उन अवसरोंपर हुई बातचीतमें अन्य बातोंकी भी पूर्ति हो गई थी।

७. इन अवसरोंपर वैध करनेकी पद्धतिके प्रश्नपर चर्चा हुई थी और माननीय उपनिवेश-सचिवने निश्चित वचन दिया था कि यदि ट्रान्सवालके सारे एशियाई स्वेच्छया पंजीयन करा लें तो उक्त अधिनियम रद कर दिया जायेगा।

८. माननीय उपनिवेश-सचिवने समझौतेके तुरन्त बाद रिचमंडमें दिये गये अपने व्याख्यानोंमें[2] से एकमें उक्त वचनका उल्लेख किया था।

९. प्रार्थीगण सम्माननीय सदनका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करते हैं कि जिन एशियाइयोंको स्वेच्छया पंजीयन करानेका अवसर मिला, उन्होंने पंजीयन करा लिया है और दूसरे भी पंजीयन करानेके लिए सदा तैयार रहे हैं, किन्तु ९ मईके बाद स्वेच्छया पंजीयन स्वीकार नहीं किया गया है।

१०. अतः, इस सम्माननीय सदनके सामने जो विधेयक है, वह निम्नलिखित बातोंमें समझौतेके खिलाफ है :

(क) १९०७ के अधिनियम २ को वह रद नहीं करता।
(ख) यद्यपि वह जाहिरमें एक अलग उपायका अवलम्बन लेकर स्वेच्छया पंजीयनको वैध रूप देता है, किन्तु स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंको वह उक्त अधिनियमके नियन्त्रणसे निश्चित और असंदिग्ध रूपमें बरी नहीं करता।
(ग) वह स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र प्राप्त लोगोंके १६ वर्षसे कम उम्रके बच्चोंको भी पंजीयनसे बरी नहीं करता।
(घ) इसके अनुच्छेद ५ के उप-अनुच्छेद (ग) में उल्लिखित एशियाइयोंके लिए स्वेच्छया पंजीयनकी गुंजाइश इस विधेयकमें नहीं है।

११. इसलिए प्रार्थी संघकी नम्र रायमें यह विधेयक उन शर्तोंको तोड़ता है जिनका पालन सरकार द्वारा किया जाना था।

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ ३९-४१।
२. देखिए परिशिष्ट ८।

१२. प्रार्थी संघ जिस समाजका प्रतिनिधित्व करता है, उस समाजका उन स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्रोंसे लाभ उठानेका कोई इरादा नहीं है, जो सद्भावके साथ लिये गये थे।

१३. प्रार्थी संघ सम्माननीय सदनका ध्यान विनम्रतापूर्वक इस तथ्यकी ओर आकर्षित करता है कि भारतीय समाजके प्रमुख सदस्योंने समझौतेके अपने अंशका पालन बहुत बड़े व्यक्तिगत त्याग करके और जानकी जोखिम[1] उठाकर भी किया है।

१४. प्रार्थी संघकी भावना है कि सम्माननीय सदनके सामने प्रस्तुत विधेयक, समझौतेके संदर्भमें संघ द्वारा उपनिवेशकी सरकारको दी गई निश्चित मूल्यवान सहायताकी उपेक्षा करता है।

१५. इसलिए आपके प्रार्थीगणकी नम्र प्रार्थना है कि सम्माननीय सदन विधेयकको रद कर दे अथवा अन्य कोई उचित और योग्य राहत दे। इस न्याय और कृपाके लिए इत्यादि, इत्यादि।

ईसप इस्माइल मियाँ
अध्यक्ष
मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया विधानसभाके आर्काइव्जसे, तथा उपनिवेश कार्यालयके कागजात २९१/१३२ से भी।

२७२. पत्र : जनरल स्मट्सको[1]

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त १४, १९०८

प्रिय महोदय,

जो आन्दोलन भारतीयोंके लिए कभी समाप्त न होनेवाला संघर्ष बनता दीख पड़ता है, उसके प्रारम्भ होनेके पहले आपसे कुछ निवेदन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। जोहानिसबर्ग जेलमें इस समय करीब साठ भारतीय कठोर कारावासका दण्ड भोग रहे हैं। जबसे संघर्ष नये सिरेसे शुरू हुआ है, तबसे ३० से भी अधिक व्यक्ति कारावासका दण्ड भोगकर छूट चुके हैं। इस समय १३ भारतीय व्यापारी स्टैंडर्टन जेलमें सजा काट रहे हैं।

रविवारको हम पंजीयन प्रमाणपत्रोंको जलानेके लिए एकत्र होंगे।[3] इस पत्रके लिखते समयतक आये हुए प्रमाणपत्रोंकी संख्या लगभग[4] . . . है। वे अब भी आते जा रहे हैं। बहुत सम्भव है कि हमारे पास रविवारतक उनकी संख्या कमसे-कम १५०० तक हो जाये। मैं नहीं जानता कि वे सभी लोग सच्चे हैं, आखिरतक लड़ते रहेंगे और हर तरहकी कठिनाई सहते रहेंगे या नहीं। किन्तु उनका प्रमाणपत्र देना उनकी सच्चाई जाहिर करता है।

१. यहाँ तात्पर्य ईसप मियाँपर आक्रमणसे है। देखिए "मेरा सम्मान", पृष्ठ ९०-९४, "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ २४३ और "ईसप मियाँ", पृष्ठ २४९।

२. यह पत्र कटा-फटा है और कतिपय स्थानोंपर अस्पष्ट है।

३. १६ अगस्त। पहले इन प्रमाणपत्रोंको जलानेकी तारीख रविवार १२ जुलाई निश्चित हुई थी, परन्तु कार्टराइटके सुझावके अनुसार यह स्थगित कर दिया गया था। देखिए "पत्र: ए० कार्टराइटको", पृष्ठ ३४५-४६। अन्तमें ये प्रमाणपत्र १६ अगस्तकी सार्वजनिक सभामें जलाये गये।

४. यहाँ एक शब्द गायब है।

नेटाल भारतीय कांग्रेस, डर्बनके अध्यक्ष,[1] ब्रिटिश भारतीय लीग, केप टाउनके अध्यक्ष,[2] नेटाल भारतीय कांग्रेसके उपाध्यक्ष[3] तथा नेटाल भारतीय कांग्रेसके संयुक्त मंत्री,[4] जिनमें से प्रत्येक भारतके किसी-न-किसी भिन्न सम्प्रदाय या जातिका प्रतिनिधित्व करते हैं, कुछ गिरमिटिया भारतीयोंको तथा कुछ उन भारतीयोंको, जो यह दावा करते हैं कि वे युद्धसे पूर्वके अधिवासी हैं, लेकर आज सीमापर आये हैं और वे या तो गिरफ्तार हो जायेंगे या बिना किसी चुनौतीके प्रवेश पा जायेंगे।

मेरे विचारमें ये तथ्य एशियाई अधिनियमके खिलाफ प्रबल, सच्चा तथा अदम्य विरोध प्रकट करते हैं, और मेरा यह खयाल करना उचित है कि आप उन लोगोंके साथ, जो ट्रान्सवालमें रहनेके अधिकारी हैं, अन्याय नहीं करना चाहते। सरकारके प्रतिनिधिकी हैसियतसे आपके तथा ब्रिटिश भारतीयोंके बीच बहुत थोड़ा मतभेद है। इसलिए मैं आपसे एक बार फिर अपील करता हूँ कि उस प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयकके मसविदेको, जो मुझे दिखाया गया था, वापस लेकर मेरे दिये गये सुझावोंको स्वीकार कर लें और शिक्षित भारतीयोंके प्रश्नको तबतक के लिए खुला छोड़ दें जब तक कि आप स्वयं अधिनियममें ऐसा संशोधन नहीं करते जिससे कि ऐसे शिक्षित भारतीयोंके लिए, जो शिक्षितोंके धन्धे करते हैं या विश्वविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, दरवाजा खुला रहे। मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप उस प्रार्थना-पत्रको,[5] जो कि सदनके नाम लिखा गया है, गौरसे पढ़ें और स्वयं देखें कि क्या प्रकाशित किया गया विधेयक प्रायः समझौतेकी हर बातको नहीं तोड़ता। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि तब आप उन मुलाकातोंका स्मरण करें जो कि स्वेच्छया पंजीयन प्रारम्भ होनेसे पहले हमारे बीच हुई थीं और देखें कि उन अवसरोंपर आपने क्या कहा था। मैं आपसे यह प्रार्थना भी करता हूँ कि आप मेरे इस आश्वासनको स्वीकार कर लें कि मेरी या भारतीय समाजके नेताओंकी इससे अधिक कतई कोई इच्छा नहीं है कि उन लोगोंके साथ, जो इस देशके वास्तविक अधिवासी हैं, न्यायका व्यवहार हो।

यदि आपको मेरे उपर्युक्त सुझाव स्वीकार न हों, तो मैं यह सलाह देनेका साहस करता हूँ कि आप कुछ भारतीय नेताओंसे मिलकर ऐसी स्वीकार्य व्यवस्था निश्चित करें जिससे समझौतेके मर्मका पालन हो जाये और जो इस कष्टदायक स्थितिको समाप्त करे। यदि आप दोनों बातोंमें से एक भी नहीं कर सकते तो, मुझे डर है, रविवारके दिन सार्वजनिक सभामें प्रमाणपत्र जलानेके संकल्पको निश्चित रूपसे पूरा किया जायेगा। यह सलाह देनेकी जिम्मेवारी पूर्ण रूपसे मेरे ऊपर है।

आपका विश्वस्त

जनरल जे० सी० स्मट्स
प्रिटोरिया

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४८५७) से।

१. दाउद मुहम्मद
२. आदम हाजी गुल मुहम्मद
३. पारसी रुस्तमजी
४. एम० सी० ऑंगलिया
५. देखिए पिछला शीर्षक।

२७३. जॉर्ज फेरारके नाम पत्रका सारांश[1]

अगस्त १४, १९०८

एक दूसरे बहुत भीषण संघर्षके प्रारम्भ होनेसे पहले श्री गांधी सर जॉर्ज फेरारको लिखते हैं; क्योंकि विरोधी पक्षके नेताके समक्ष स्थितिकी गम्भीरताको रखना; वैधीकरण विधेयकके प्रति अपनी आपत्तिके मुद्दोंको रखना; और उनपर विचार करनेकी प्रार्थना करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस, ज्युडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स ३७२२/०८

२७४. माल कुर्क किया जाये तो?

वेरीनिगिंगके भारतीयोंको जेलकी सजा नहीं हुई, सिर्फ जुर्माना हुआ है। यदि वे जुर्माना न दें तो मजिस्ट्रेटने ऐसा हुक्म दिया है कि उनका माल बेचकर जुर्माना वसूल किया जा सकता है। परवाना-कानूनमें तो ऐसी धारा नहीं है किन्तु एक अन्य कानूनके द्वारा मजिस्ट्रेटको यह सत्ता प्राप्त है।

जो-कुछ हुआ उसमें खुशीकी बात यह है कि ऐसे हुक्मसे भारतीय चौंके नहीं हैं प्रत्युत समझ गये हैं कि यह ज्यादा अच्छा हुआ है।

इससे ज्ञात होता है कि सच्ची अमीरी गरीबीमें ही है। कारण, गरीब लोग सरकारके खिलाफ जिस हद तक लड़ सकते हैं उस हद तक साहूकार नहीं लड़ सकते; क्योंकि वे डरते हैं। हम वेरीनिगिंगके भारतीयोंको बधाई देते हैं कि उन्होंने जुर्माना देनेसे इनकार कर दिया है और मजिस्ट्रेटसे माल बेचनेको कह दिया है। माल इस तरह बेच दिया जाये, इसमें हम कोई नुकसान नहीं देखते। कुछ लोगोंका माल बेशक बिक जायेगा। लेकिन ऐसा भी तो नहीं कहा जा सकता कि जेल जानेसे पैसेका कोई नुकसान नहीं होता। इसलिए यदि उतना ही नुकसान मालके नुकसानके रूपमें होता है तो इसमें डरनेकी कोई बात नहीं है। सच तो यह है कि जिस तरह सैकड़ोंको जेलमें नहीं रखा जा सकता, उसी तरह सैकड़ोंका माल भी नहीं बेचा जा सकता। सरकारके पास इसके लिए आवश्यक सुविधा नहीं है। सरकार ऐसा करे तो उसकी प्रतिष्ठाको धक्का लगेगा और, सम्भव है, राज्य भी खोना पड़े।

इसके सिवा, फेरीवालोंसे तो सरकार कुछ वसूल नहीं कर सकती। कोई भी भारतीय नीलामके लिए अपना माल बतानेको बाध्य नहीं है। जिसका माल लेना हो सरकार उसे खुद ढूँढ़कर भले ले ले। लेकिन ऐसा करते-करते वह थक जायेगी और फेरीवाले बिना किसी

१. यह ट्रान्सवालकी घटनाओंके एक संक्षिप्त विवरणसे, जिसे रिचने उपनिवेश-कार्यालयके नाम अक्तूबर ६, १९०८ के अपने पत्रके साथ भेजा था, लिया गया है।

परवानेके पूरी आजादीसे घूम-फिर सकेंगे। क्योंकि, सरकारकी हालत "लेने गई पूत और खो आई खसम" जैसी हो जायेगी। माल लेनेकी कोशिशमें वह लोगोंको जेल भेजनेका मौका भी खो देगी और भारतीय ज्यादा दृढ़ हो जायेंगे। इसलिए किसी भी भारतीयको डरनेका कोई कारण नहीं है। फिर, जिस समय सरकार समझौता करेगी उस समय यदि भारतीयोंमें हिम्मत हो तो वे जिसका माल बेचा गया हो उसके नुकसानकी भरपाईकी माँग भी कर सकते हैं।

यह ट्रान्सवालकी लड़ाई भारतीयोंके लिए अतिशय उपयोगी है। नेटालवालोंको इसपर ध्यान देना चाहिए। नेटालके कानूनके अनुसार परवानोंके मामलेमें जेलकी सजाका विधान तो है ही नहीं। माल ही बेचा जा सकता है। अब ट्रान्सवालके उदाहरणसे नेटालके भारतीय समझ सकेंगे कि सरकार द्वारा व्यापारियोंका माल बेचनेकी यह लड़ाई तो ज्यादा आसान है। फेरीवाले सचमुच लड़ें तो वे सरकारको पस्त कर सकते हैं। इसीलिए सच्ची गरीबीमें सच्ची अमीरी है। सच्ची गरीबी किसे कहा जाये, इसपर हम फिर कभी विचार करेंगे। फिलहाल तो भारतीयोंको जो भी दुःख आ पड़े उसे सहन करनेका पाठ याद कर लेना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–८–१९०८

२७५. नया विधेयक

ट्रान्सवालके सरकारी 'गज़ट' के तारीख ११ अगस्तके अंकमें नीचे दिया जा रहा विधेयक प्रकाशित हुआ है:

१९०७ के एशियाई कानूनके अनुसार जिन एशियाइयोंने पंजीयन नहीं कराया पर बादमें स्वेच्छया पंजीयन कराया, उनके उस पंजीयनके वैधीकरणका विधेयक

१. प्रत्येक व्यक्ति

(क) जो १९०७ के एशियाई कानून संशोधन अधिनियम [२] के अनुसार एशियाई माना जा सकता है;

(ख) तथा जिसने फरवरी १० [१९०८] से १० मई तक एशियाई पंजीयकको अथवा विधिपूर्वक नियुक्त किसी दूसरे अधिकारीको ऊपर कहे अनुसार स्वेच्छया पंजीयनके लिए अर्जी दी होगी;

(ग) तथा जिसे इस कानूनके नियमोंके अनुसार पंजीयकने प्रमाणपत्र दे दिया होगा;

वह इस प्रमाणपत्रके बलपर इस उपनिवेशमें प्रवेश करने तथा रहनेका अधिकारी माना जायेगा।

२. अधिनियमकी पहली धारामें वर्णित प्रत्येक एशियाईको, जो इस उपनिवेशमें प्रवेश करे या जहाँ रहता हो, पुलिस या उपनिवेश-सचिव द्वारा मुकर्रर किया गया अधिकारी जब भी माँगे तभी अपना प्रमाणपत्र पेश करना चाहिए तथा उपनिवेश-सचिव द्वारा 'गज़ट' में प्रकाशित नियमोंके अनुसार उसकी पहचानके जो प्रमाण माँगे जायें वे प्रमाण भी उसे पेश करने [चाहिए। जो इस प्रमाणपत्रको] पेश नहीं करेगा उसे १९०७ के कानून (२) —खूनी

नेटालसे सहायता



r. S. J. Randeria Mr. M. C. Anglia Mr. H. I. Joshi
Parsee Rustomjee Mr. Dawad Mahomed Mr. Adam H. G. Mahom
(Capetown.)

e of the leading Indians who have proceeded to Johannesburg to assert their rights

ટ્રાન્સવાલના હિંદીઓની મદદે ચડેલા બહાદુર હિંદી આગેવાનો.

(देखिए पृष्ठ ४४६)

श्री एम० जे० गाँदेरिया श्री एम० सी० आँगलिया श्री एच० आई० जोशी
श्री पारसी रुस्तमजी श्री दाउद मुहम्मद श्री आदम एच० जी० मुहम्मद (केपटाउन)

कुछ प्रमुख भारतीय, जिन्होंने अपने अधिकारोंका दावा करनेके लिए जोहानिसबर्गको कूच किया।

कानून — की धारा ८ के अनुसार दण्ड दिया जायेगा। जो अपनी पहचानके [निर्धारित] प्रमाण पेश नहीं कर सकेगा उसे १० पौंड जुर्मानेकी सजा दी जायेगी और यदि वह जुर्माना नहीं भरेगा तो उसे १४ दिन तककी आसान अथवा सख्त कैदकी सजा दी जायेगी।

३. जिसका प्रमाणपत्र खो गया हो उसे पंजीयकको निर्धारित नियमोंके अनुसार अपनी पहचानके प्रमाण देकर पंजीयनके नये प्रमाणपत्रके लिए अर्जी देनी चाहिए। खोया हुआ प्रमाणपत्र जिसे मिले उसे, यदि वह प्रमाणपत्र उसका न हो तो, उस प्रमाणपत्रको तुरन्त ही एशियाई-पंजीयकको सौंप देना [या भेज देना] चाहिए। यदि नहीं भेजेगा तो उसे ५० पौंड तक जुर्मानेकी सजा दी जायेगी और [जुर्माना न देनेपर] एक माहकी सादी अथवा सख्त कैदकी सजा दी जायेगी।

४. १९०५ के परवाना-कानूनके अनुसार व्यापारिक परवाना उन्हें ही मिल सकेगा जिनके पास १९०७ के एशियाई [कानून] संशोधन अधिनियम[1] या इस कानूनकी पहली धाराके अनुसार प्रमाणपत्र होंगे और जो उपनिवेश-सचिव द्वारा माँगी गई जानकारी दे सकेंगे। १० फरवरी १९०८ से लेकर इस कानूनके अमलमें आनेतक जो परवाने निकाले जायेंगे वे कानून-सम्मत माने जायेंगे।

एशियाई [कानून] संशोधन अधिनियमकी १३ वीं धारा रद की जाती है।

५. इस कानूनके परिशिष्टमें दिये गये प्रपत्रके अनुसार जो झूठा प्रमाणपत्र बनायेगा या बनानेका प्रयत्न करेगा अथवा ऐसे व्यक्तिकी मदद करेगा उसे ५०० पौंड तक की जुर्मानेकी सजा अथवा जुर्माना न दे तो दो वर्ष तक की सादी या सख्त कैदकी सजा अथवा दोनों ही सजाएँ दी जा सकेंगी।

६. इस कानूनका नाम एशियाई स्वेच्छया पंजीयन वैधीकरण अधिनियम होगा[2] और तबतक अमलमें नहीं आयेगा जबतक कि सम्राट् उसे स्वीकार नहीं कर लेते और उनकी यह स्वीकृति 'गज़ट' में प्रकाशित नहीं हो जाती।

इस कानूनके अनुसार पंजीयन प्रमाणपत्रमें निम्नलिखित जानकारी माँगी गई है: नाम, प्रजाति, वर्ण, पत्नीका नाम, निवास-स्थान, दाहिने अँगूठेकी छाप, पंजीयन-अधिकारीके दस्तखत, तारीख और प्रमाणपत्र लेनेवालेका दस्तखत; तथा १६ वर्षसे कम उम्रके लड़के या लड़की या रक्षितके मामलेमें: उसका नाम, उम्र, पता और अभिभावकसे उसका सम्बन्ध।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–८–१९०८

१. अंग्रेजी पाठके अनुसार एशियाई अधिनियम संशोधन कानून।

२. "एशियाई स्वेच्छया पंजीयन वैधीकरण विधेयक", — श्री स्मट्सने इसका प्रत्याहार कर लिया और ट्रांसवाल विधान सभाकी प्रवर समितिकी सिफारिशसे इसके विकल्पके रूपमें २१ अगस्तको 'एशियाई पंजीयन संशोधन विधेयक' प्रस्तुत किया।

२७६. भाषण : सार्वजनिक सभामें[1]

[जोहानिसबर्ग
अगस्त १६, १९०८]

गत रविवार [१६ अगस्त, १९०८] को दोपहरके समय ऐसी घटना देखनेमें आई जैसी, आशा है, इस देशमें घटित होनेकी आवश्यकता कदाचित् कभी न होगी। कोई तीन हजार ब्रिटिश भारतीय एक खास उद्देश्यसे . . . केवल [पंजीयन प्रमाणपत्रोंको] आगकी लपटोंमें झोंकनेका इरादा लेकर इकट्ठे हुए थे। . . . जो स्थान फोर्ड्सबर्ग मस्जिदसे पश्चिमकी ओर बाड़ेके भीतर दिखता है, वह भारतीय समाजके सदस्योंसे भरा हुआ था . . .। इससे आश्चर्यजनक राष्ट्रीय एकता —— ऐसी एकता जिसपर मातृभूमि उचित गर्व कर सकती है —— प्रकट होती थी।

मंचपर कांग्रेसके नेता . . . ट्रान्सवालके अनेक प्रमुख भारतीय . . . चीनी संघके अध्यक्ष श्री लिअंग क्विन और श्री गांधी मौजूद थे। . . . इस विशाल सभाकी अध्यक्षता ईसप इस्माइल मियाँने की। सम्वाददाताओंकी मेजसे आगे ऊपर उठे हुए और प्रतीक्षा करते हुए असंख्य चेहरे थे, जिनपर दृढ़ता और कटुतापूर्ण प्रसन्नता गहरी अंकित थी। सबसे अगली पंक्तिमें एक दर्जन प्रतिनिधि चीनी नेता कठोर मुख-मुद्रा बनाये बैठे थे और उस महत्व-पूर्ण क्षणकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पहले अध्यक्षने गुजरातीमें संक्षिप्त भाषण दिया और तब श्री एन० ए० कामाकी मार्फत सभा करनेके कारणोंपर संयत भाषामें प्रकाश डाला। . . . फिर श्री गांधीने भाषण दिया। उसके बाद स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र एक बड़े कड़ाहमें डाले गये; उन्हें मिट्टीके तेलसे तर किया गया और श्री ईसप मियाँने समाजके नामपर उनमें आग लगा दी।[2] श्री एस० हेलूने जिन्होंने, यह स्मरण होगा, अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन कराया था, अपना गुलामीका पट्टा खुले आम जलाया और लपटोंपर तेल उँडेला।

श्री गांधीका भाषण

आज मैं अपने सरपर एक अत्यन्त गम्भीर जिम्मेवारी ले रहा हूँ। मैं कुछ समयसे अपने देशभाइयोंको जो सलाह देता रहा हूँ उसके लिए मेरे मित्र मुझे भला-बुरा कह रहे हैं। और जो अपनेको मेरा मित्र नहीं मानते वे मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। इसके बावजूद, पूरी तरह विचार

१. यह रिपोर्ट १७–८–१९०८ के **ट्रान्सवाल लीडर**में छपी रिपोर्टसे मिला ली गई है और उसमें जो जानकारी अधिक थी वह इसमें जोड़ दी गई है। इस सभामें पास किये गये प्रस्तावोंके लिए देखिए परिशिष्ट ९।

२. **ट्रान्सवाल लीडर**ने कार्रवाईके इस भागका वर्णन इस प्रकार किया है : "तब एक बड़े तिपाये बर्तनमें पंजीयन प्रमाणपत्र, जो कुल १,३०० के लगभग होंगे, और व्यापारिक परवाने, जिनकी संख्या लगभग ५०० होगी, भर दिये गये। फिर उनपर मिट्टीका तेल उड़ेला गया और उन प्रमाणपत्रों एवं परवानोंमें आग लगा दी गई। उस समय असीम उत्साह प्रकट किया गया। भीड़ने बहुत हर्ष-ध्वनि की; चिल्लाते-चिल्लाते लोगोंके गले बैठ गये। टोप उछाले गये और सीटियाँ बजाई गईं। एक भारतीयने, जो प्रमुख विरोधी बताया जाता था, मंचपर आकर अपना प्रमाणपत्र हाथमें ऊँचा उठाकर स्वयं जलाया। उसके बाद चीनी मंचपर आये और उन्होंने दूसरे लोगोंके प्रमाणपत्रोंके साथ अपने प्रमाणपत्र भी आगके हवाले कर दिये. . .।"

और, कहना चाहिए, प्रार्थना करनेके बाद भी, मैं आपके सम्मुख आज फिर उसी सलाहको दुहराने जा रहा हूँ। और वह सलाह यह है, जैसा कि आप जानते हैं, कि हमारी लड़ाईसे सम्बन्धित घटनाओंका रुख बदल गया है, हमें अपने प्रमाणपत्रोंको जला देना चाहिए। [हर्षध्वनि] मुझसे कहा जाता है कि अपने देशभाइयोंको मैंने जो सलाह दी है उससे, यदि उन्होंने उसपर अमल किया तो, मैं उन्हें अवर्णनीय कष्टोंमें डालनेका साधन बन सकता हूँ। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ। परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि अगर आप प्रमाणपत्रोंको जलानेसे अवर्णनीय कष्टोंमें पड़ जायेंगे तो इन प्रमाणपत्रोंको रखनेसे और एशियाई कानूनको या वैधीकरण विधेयकको, जिसका कल दूसरा वाचन होने जा रहा है, माननेसे मेरे देशवासी अवर्णनीय असम्मान निमन्त्रित करेंगे। इसलिए मेरी वाणीमें जितना भी बल है वह सारा बल लगाकर मैं आपसे कह देना चाहता हूँ कि इस असम्मानको निमन्त्रित करनेके बजाय मेरे देशवासियोंके लिए उनपर जो कष्ट आयें उन्हें सह लेना बहुत अधिक अच्छा होगा। फिर, यहाँ ट्रान्सवालमें मेरे देशभाइयोंने यह शपथ ले ली है कि वे एशियाई कानूनको नहीं मानेंगे। इस शपथके केवल शब्दोंका नहीं, उसकी आत्माका पालन उन्हें करना है। अगर मैं आपको यह बुरी सलाह दूँ या अन्य कोई दे कि आप स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र वैधीकरण विधेयकको स्वीकार कर सकते हैं और यह जानकर खुश हो सकते हैं कि आप एशियाई कानूनसे मुक्त हो गये हैं तो मैं अपने-आपको अपने देशवासियोंके प्रति, ईश्वरके प्रति और अपनी शपथके प्रति द्रोही कहूँगा। मैं आपको ऐसी सलाह कभी नहीं दूँगा, फिर भले ही इन प्रमाणपत्रोंके जलानेपर आपपर कितने ही कष्ट क्यों न आयें। परन्तु एक बात याद रखिए। इन प्रमाणपत्रोंके जला देनेके बाद जबतक इस बारेमें सरकारके साथ न्याययुक्त और सम्मानपूर्ण समझौता नहीं हो जाता तबतक आपको कभी इन प्रमाणपत्रोंसे लाभ नहीं उठाना है। आज जिन प्रमाणपत्रोंको आप जला रहे हैं, कल पाँच शिलिंग शुल्क देकर उनकी दूसरी प्रति आपको दफ्तरसे मिल सकती है। मैं कहता हूँ कि सरकार आपको इनकी नकलें मुफ्त भी दे देगी, क्योंकि अभी वह विधेयक कानून नहीं बना है। परन्तु अगर इस विशाल जन-समुदायमें कोई ऐसा भारतीय हो, जो आज शर्मकी वजहसे, संकोचमें आकर अथवा ऐसे ही किसी अन्य कारणसे अपना प्रमाणपत्र जलाकर कल उसकी नकल लेनेकी इच्छा रखता है तो मैं जोर दे कर कहता हूँ कि वह अभी सामने आ जाये और कह दे कि वह अपना प्रमाणपत्र नहीं जलवाना चाहता। परन्तु अगर आप इस बातपर दृढ़ हैं कि आप सरकारके पास इन प्रमाणपत्रोंकी नकल माँगनेके लिए नहीं जायेंगे तो मैं कहूँगा कि आपने बहुत अच्छा किया है। ब्रिटिश भारतीय संघकी सभामें हमने जब यह निश्चय किया, उससे पहले आप कितने ही भारतीयोंको जेल भेज चुके थे। श्री सोराबजीकी याद कीजिए। धन्य हैं वे कि आपकी लड़ाई लड़नेके लिए चार्ल्सटाउनसे आये। (हर्ष-ध्वनि)। हममें से कितने ही गरीब भाई अपनी कौमकी सेवाके लिए और इस उद्देश्यसे जोहानिसबर्ग फोर्ट[जेल]में गये कि उनके कष्टोंको देखकर सरकार द्रवित हो एवं हम उपनिवेशमें आत्मसम्मान और प्रतिष्ठाके साथ रह सकें। क्या स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्रोंको सम्भाल कर बैठे रहना और अपने अपेक्षाकृत गरीब देशवासियोंको अथवा उनको, जो तीन महीनेकी अवधिके बाद इस देशमें प्रवेश करें, जेलमें जाने देना या उनसे यह आशा करना कि वे एशियाई कानूनके आगे सिर झुका दें, हमें शोभा देता है? मैं जोरके साथ कहता हूँ, "नहीं"। मैं अपनी सजाकी अवधि पूरी होनेसे पहले जेलमें जो कष्ट थे

उनसे छूटनेके खयालसे बाहर नहीं आया — मुझसे पूछिए तो वहाँ मुझे कोई कष्ट नहीं था। परन्तु अगर मुझे ऐसा अपमान सहनेकी नौबत आये अथवा मुझे यह देखना पड़े कि मेरे किसी देशभाईको ठुकराया जा रहा है या उसकी हककी रोटी उससे छीनी जा रही है तो मुझे उससे कहीं अधिक कष्ट होगा। मैं यह सब अपनी आँखोंके सामने देखनेकी अपेक्षा अपना सारा जीवन जेलमें काटना पसन्द करूँगा। और यह मैं खुदाके दरपर, इस इबादतगाहमें खड़ा होकर कहता हूँ और पुनः दुहराता हूँ कि इस तरह जेलसे बाहर आने और अपने देशभाइयोंको अपमानित होते देखनेकी अपेक्षा मैं सारा जीवन जेलमें बिताना पसन्द करूँगा और वहाँ सन्तोष मानूँगा। नहीं, भाइयो, आज आपके सामने जो सेवक खड़ा है वह उस मिट्टीका बना नहीं है। इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपनी शपथको तोड़नेकी अपेक्षा जो भी मुसीबतें सहनी जरूरी हों उन सबको सह लें। चूँकि मैं अपने देशवासियोंसे आशा करता हूँ कि वे विशेषतः अपने प्रभुके प्रति सदा सच्चे रहेंगे, इसीलिए आज मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपने प्रमाणपत्रोंको जला दें। ("हम इन्हें जलानेको तैयार हैं" — की आवाजें)। मुझसे कहा गया है कि इस उपनिवेशमें भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें मैंने अभी हालमें जो-कुछ कहा था उसका गलत अर्थ लगाया गया है। मैंने अपने कथनके बारेमें कुछ लोगोंकी टिप्पणियाँ पढ़ी हैं और मेरा कथन यह है: मैं दावा करता हूँ कि यह देश जिस तरह गोरोंका है उसी तरह ब्रिटिश भारतीयोंका भी है। और मैं स्वीकार करता हूँ कि यह मेरा दावा है। परन्तु मेरे इस दावेका अर्थ क्या है? इससे मेरा आशय यह नहीं है कि हमें इस देशमें एशियाइयोंको बेरोक-टोक आने देनेकी स्वतन्त्रता है। नहीं, मैं भी अपने आपको इस उपनिवेशका निवासी मानता हूँ। इस देशमें मैंने अपने जीवनका काफी लम्बा हिस्सा बिताया है। इसलिए अगर यह देश चाहता है, अर्थात् यदि इस देशका कल्याण इस बातमें है कि इसमें एशियाइयोंका प्रवास बेरोक जारी नहीं रहे तो मैं यह कहनेवाला पहला आदमी होऊँगा कि हाँ, ऐसा ही किया जाये। अगर इस देशके अधिकांश निवासी यह माँग करें कि एशियाइयोंका आव्रजन बन्द कर देना चाहिए — ध्यान दीजिए कि मैं आव्रजन शब्दपर जोर देता हूँ — अगर वे कहें कि एशियाइयोंके आव्रजनपर सुव्यवस्थित नियन्त्रण हो तो मैं कहता हूँ कि मैं इसे भी मंजूर कर लूँगा। परन्तु यह मंजूर कर लेनेके बाद मैं दावा करूँगा कि यह देश जिस प्रकार दूसरे उपनिवेशियोंका है उसी प्रकार मेरा भी है। और इसी अर्थमें मैंने अपने देशभाइयोंकी तरफसे यह दावा पेश किया है और मैं यह भी कहता हूँ कि उपनिवेशियोंको चाहिए कि वे इसे मंजूर कर लें। उपनिवेशियोंको इसमें कोई लाभ नहीं कि वे ऐसे ब्रिटिश भारतीयोंको ट्रान्सवालमें रखें जो मनुष्य नहीं हैं बल्कि जिनसे ऐसा व्यवहार किया जा सकता है मानो वे पशु हों। इसमें न तो उपनिवेशियोंका भला है और न भारतीयोंका ही। अगर उपनिवेशके उपनिवेशी या ब्रिटिश भारतीय यह स्थिति ग्रहण करते हैं तो भारतीयोंके लिए इस उपनिवेशमें अत्यन्त अपमान-जनक स्थितिमें रहनेसे तो यही अच्छा है कि वे उपनिवेशसे खदेड़ दिये जायें और भारत भेज दिये जायें ताकि वे अपने दुखड़ोंकी कथा अपने देशमें ले जायें। जब मैं यह कहता हूँ कि यह देश जिस प्रकार यूरोपीयोंका है उसी प्रकार मेरा भी है तो मेरा मतलब यही होता है। और आखिर इस लड़ाईका अर्थ क्या है जिसे हम लड़ रहे हैं? इसका क्या महत्त्व है? मेरे खयालमें इसका महत्त्व तबसे नहीं शुरू होता जबसे हमने एशियाई कानूनके रद किये

जानेकी माँग रखी और न वह उस कानूनके रद होनेपर समाप्त हो जाता है। मैं खूब जानता हूँ कि सरकार इस कानूनको आज ही रद कर सकती है, और हमारी आँखोंमें धूल झोंक सकती है, और फौरन इससे कहीं अधिक सख्त तथा अधिक अपमानजनक कानूनका मसविदा बनाकर पेश कर सकती है। परन्तु इस लड़ाईसे मैं एक सबक लेना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे देशभाई भी वह सबक सीखें। वह यह है कि यद्यपि हमारा मताधिकार छीन लिया गया है, और यद्यपि ट्रान्सवालके शासनमें हमें कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है तथापि हमारे लिए एक अमर मताधिकार प्राप्त कर लेनेका रास्ता खुला है और वह यह है कि हम अपनी मनुष्यताको समझें और यह समझें कि हम उस सम्पूर्ण विश्वका एक अभिन्न अंग हैं, और यह कि हम सबका कोई एक सिरजनहार है जो सम्पूर्ण मानव जातिका भाग्य-विधाता और शासनकर्ता है। पृथ्वीपर शासन करनेवाले हाड़-माँसके बने राजाओंकी अपेक्षा हमें उसमें अपनी श्रद्धा रखनी चाहिए। अगर मेरे देशभाई इस बातको अच्छी तरहसे समझ लें तो मैं कहता हूँ कि हमारी अवगणना करके जो भी कानून बनना हो बनता रहे। हम उसकी चिन्ता नहीं करेंगे। अगर वह हमारी न्याय और अन्यायकी धारणाके प्रतिकूल होगा, अगर वह हमारी विवेकबुद्धिके खिलाफ होगा, अगर वह हमारे धर्मके विपरीत होगा तो हम निधड़क कह सकते हैं कि ऐसे कानूनके सामने हम अपना सर नहीं झुकायेंगे। हम शारीरिक बलका प्रयोग नहीं करेंगे, किन्तु कानूनमें दिये गये प्रतिबन्धको मानेंगे। कानूनको तोड़नेपर जो सजा मिलेगी, जो दण्ड होगा उसे हम स्वीकार कर लेंगे। मैं इसे विद्रोह नहीं कहूँगा। एक मनुष्यके लिए, मानव-जातिके एक सदस्यके लिए, जो अपने-आपको सचमुच मनुष्य समझता है, इसे मैं एक सम्पूर्ण आदरयुक्त वृत्ति मानता हूँ। और ब्रिटिश भारतीय इस सबकको ठीक तरहसे सीखें, इसीलिए हमारी कौमके सारे मुखियोंने एकत्र होकर यह निश्चय किया कि हम अपने देशभाइयोंके सामने इस तरहकी लड़ाई, लड़ाईका यह तरीका, रखेंगे। इससे उपनिवेशकी सरकारको किसी तरहकी हानि नहीं हो सकती। और न उन लोगोंको इससे किसी प्रकारकी हानि हो सकती है जो लड़ाईमें भाग ले रहे हैं। यह तो केवल उनको सचाईकी कसौटीपर चढ़ाती है। वे अगर सच्चे हैं तो उनकी जीत निश्चित है। किन्तु अगर वे सच्चे नहीं हैं तो जिस लायक वे होंगे वैसा उन्हें फल मिलेगा। मैं एक बात और कह दूँ, फिर मैं आपसे इजाजत माँगूँगा कि आपके सभापति श्री ईसप मियाँ आपके प्रमाणपत्रोंको आग लगायें या नहीं। मैं जो बात कह रहा था वह यह है कि अभीतक मैंने किसीके व्यक्तित्वपर कोई आक्षेप नहीं किया है। हाँ, रामसुन्दरके मुकदमेके समय जरूर मैंने कुछ कटाक्ष किया था। और वह पंजीयन विभागके प्रधानाधिकारी श्री चैमनेपर[1] था। इस मौकेपर मैं उपनिवेशियों, भारतीय समाज और उपनिवेशकी प्रतिष्ठा और इज्जतके हितमें एक बात कह देना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ। वह यह कि जबतक पंजीयन विभागमें श्री चैमनेका राज सर्वोपरि चलता रहेगा तबतक कमसे-कम एशियाइयोंको तो चैन कभी नसीब नहीं हो सकती।[2] मुझे उनसे काफी वास्ता पड़ा है। अतः मैं उन्हें खूब जानता हूँ। इसीलिए मैंने कहा है कि वे अत्यन्त अयोग्य और अपने कामसे अनभिज्ञ हैं यह बात मैंने पहले

१. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ३५९

२. यह आलोचना मुख्य प्रवासी प्रतिबन्धक अधिकारीके पदपर मॉंटफोर्ड चैमनेकी नियुक्तिके विरुद्ध थी। इस पदपर -नकी नियुक्ति उस प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत हुई थी जो जनवरी २७, १९०८ को प्रकाशित हुआ था।

साफ-साफ कह दी है और आज यहाँ उसे फिर दोहरा रहा हूँ। जब मैं उनके कामकी तुलना कैप्टन हैमिल्टन फाउलके[1] कामसे करता हूँ तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि इनके और उनके बीच बड़ा अन्तर है। अगर कैप्टन हैमिल्टन फाउलके हाथोंमें सत्ता होती तो आज जिन मुसीबतोंका सामना हमें करना पड़ता है अथवा सरकारको भी करना पड़ रहा है वे खड़ी ही नहीं होतीं। जैसा कि मैंने कई बार कहा है, श्री चैमने वैसे काफी अच्छे आदमी हैं। उनपर कोई शक करनेकी कहीं गुंजाइश नहीं है। परन्तु एक महकमेके प्रधानके लिए इतना ही काफी नहीं है। उसे अपने कामकी पूरी-पूरी जानकारी होनी चाहिए। जिस कानूनका अमल वह करना चाहता है या जिसका अमल करनेकी जिम्मेवारी उसके सिरपर है उसका भी उसे अच्छा ज्ञान होना जरूरी है। फिर उसे अपना दिमाग ठण्डा रखना चाहिए, और अपने कर्तव्योंका पालन योग्यतापूर्वक करनेकी क्षमता उसके अन्दर होनी चाहिए। श्री चैमनेकी आजमाइश हो चुकी है और वे इसमें अयोग्य पाये गये। जनरल स्मट्सके दिलमें उनके प्रति भले ही कितना ही प्रेम हो, परन्तु उनके महकमेके कामके बारेमें अत्यन्त निकटकी जानकारीके बाद मैं उनपर यह आरोप लगा रहा हूँ। इस मौकेपर अपने आरोपको सिद्ध करनेके लिए मैं कोई उदाहरण नहीं पेश करना चाहता। इतना जरूर कहना चाहता हूँ कि जबतक वे इस महकमेसे हटाये नहीं जायेंगे — मैं नहीं चाहता कि किसीकी रोटी छिन जाये — परन्तु कमसे-कम जबतक इस महकमेसे उनको हटा नहीं दिया जायेगा, किसीको शान्ति नसीब होनेवाली नहीं। इतना ही नहीं, श्री चैमने एक ऐसी बात कर गये, जिसमें उन्होंने अपनेको साधारण मनुष्यतासे भी गिरा दिया। न्यायाधीशके समक्ष उन्होंने एक ऐसे हलफ-नामेपर अपने हस्ताक्षर कर दिये, जिसमें लिखा था कि ३ फरवरीकी मुलाकातके समय वे भी हाजिर थे और यह कि जनरल स्मट्सने कभी यह वचन नहीं दिया कि वे उस कानूनको रद कर देंगे। मैं कहता हूँ कि यह हलफनामा सरासर झूठा है। जनरल स्मट्सने जब यह वचन दिया तब उसे उन्होंने ध्यानपूर्वक सुना। यही नहीं; मेरे सामने उसे फिरसे उन्होंने कह सुनाया। उन्होंने इस वचनका उल्लेख मेरे सामने एक बार नहीं, बारह बार किया और हर बार कहा कि जनरल स्मट्स इस वचनको पूरा करके बतायेंगे और वे कानूनको रद करानेवाले हैं। एक अवसरपर मेरा खयाल है, एक देशभाई भी मेरे साथ थे। और उन्होंने कहा था, "परन्तु याद कीजिए, जनरल स्मट्सने यह भी कहा था कि जबतक उपनिवेशमें एक भी ऐसा एशियाई होगा जिसने स्वेच्छया पंजीयनके लिए दरख्वास्त नहीं दी है तबतक उसके खिलाफ कानूनका अमल जरूर होगा।" आज स्थिति यह है कि जहाँतक मुझे पता है, इस उपनिवेशमें एक भी ऐसा उल्लेखनीय एशियाई नहीं है जिसने स्वेच्छया पंजीयनके लिए अर्जी नहीं दी हो। अब मैं माँग कर रहा हूँ कि यह वचन पूरा किया जाये। और अगर श्री चैमनेने वह हलफिया बयान दिया है, और सचमुच उन्होंने दिया ही है, तो मैंने उनकी जो योग्यताएँ गिनाईं, उनमें एक और बढ़ जाती है। इसलिए मैं फिर कहता हूँ कि जबतक श्री चैमनेको उस महकमेसे नहीं हटाया जाता तबतक उपनिवेशमें किसी प्रकार शान्ति नहीं हो सकती। [तालियाँ।][2]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-८-१९०८

१. परवाना-अधिकारी।

२. बादमें गांधीजीने सभामें गुजरातीमें भाषण दिया। इस भाषणका पाठ उपलब्ध नहीं है।

२७७. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

बुधवार [अगस्त १९, १९०८]

समझौतेके बारेमें बातचीत

इस बार पाठक मुझे संक्षिप्त चिट्ठी लिखनेके लिए माफ करेंगे। लिखना तो बहुत ज्यादा है, किन्तु मेरे पास एक पलका भी समय नहीं है, इसलिए आखिरी खबर पहले दे रहा हूँ।

श्री गांधीको सोमवारकी रातको ११ बजे खबर मिली कि जनरल स्मट्सका बुलावा है। इसलिए वे वहाँ मंगलवारकी सुबह गये। श्री कार्टराइट तथा श्री क्विनको भी बुलाया गया था। तीन घंटोंतक जनरल बोथा, जनरल स्मट्स, सर पर्सी फिट्जपैट्रिक, सर जॉर्ज फेरार, श्री लिंड्से, श्री हॉस्केन तथा श्री चैपलिनके साथ बातचीत हुई। अन्तमें सरकारने नीचे लिखे अनुसार करना स्वीकार किया :—

(१) तुर्की मुसलमानोंपर यह कानून बिलकुल लागू नहीं होगा।

(२) जो ट्रान्सवालमें बोअर लड़ाईके पहले तीन वर्ष रहनेकी बात सिद्ध कर दें उन्हें आनेकी इजाजत दी जायेगी।

(३) १६ वर्षके भीतरके लड़कोंका पंजीयन न कराया जाये।

(४) पंजीयन कराते समय यदि हस्ताक्षर सधे हुए हों, तो हस्ताक्षर, नहीं तो अँगूठेकी छाप दी जायेगी।

(५) मजिस्ट्रेटके सामने [एशियाइयोंके पंजीयकके फैसलेके विरुद्ध] अपील की जा सकती है और उसके बाद सर्वोच्च न्यायालयके सामने।

(६) शराब सम्बन्धी खण्ड[1] निकाल दिया जायेगा।

(७) खूनी कानून औपचारिक रूपसे रहेगा, किन्तु जिन्होंने स्वेच्छया पंजीयन कराया है तथा जो अब बादमें पंजीयन करायेंगे वह उनपर लागू न होगा।

(८) २१ वीं धारामें जो त्रुटि[2] रह गई है उसमें परिवर्तन किया जायेगा।

(९) जिन्होंने खूनी कानूनके मुताबिक पंजीयन कराया है, उन्हें नया पंजीयन करानेकी छूट दी जाये।

इन बातोंपर विचार करनेके लिए मंगलवारकी रातको सभा हुई।[3] बहुत-से व्यक्ति उपस्थित थे। अन्तमें प्रस्ताव हुआ कि गुरुवारको और लोगोंको निमन्त्रित करके फिर सभा की जाये।

१. एशियाई कानून संशोधन अधिनियमका खण्ड १७ (४) देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४८१।

२. संकेत अबूबकर अहमदकी चर्च-स्ट्रीटवाली सम्पतिकी ओर है जिसके न्यासी श्री एच० एस० एल० पोलक थे। एशियाई कानून संशोधन अधिनियमका यह खण्ड प्रत्येक एशियाईको यह अधिकार देता है कि वह, वसीयती अथवा अन्य उत्तराधिकारके द्वारा, अपनी १८८५ के कानून ३ के अमलमें आनेके पूर्व प्राप्त और अपने नाम पंजीकृत अचल सम्पत्तिका स्वामित्व किसी दूसरे एशियाईको दे सकता है। देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४३२ और ४३५।

३. इस सभाका कोई विवरण प्राप्त नहीं है, परन्तु देखिए अगला शीर्षक।

स्टैंडर्टनके बहादुर

वे आज सवेरे जेलसे छूट कर आ गये हैं। उनसे मिलनेके लिए यहाँसे ईसप मियाँ, श्री बावजीर वगैरा आये थे। उनके छूटनेके बाद सभा हुई। उसमें हर कष्ट उठाकर लड़ाईके अन्ततक संघर्ष करनेका प्रस्ताव पास हुआ। इस सभामें बहुत-से पंजीयन प्रमाणपत्र जमा करके जला डालनेके लिए दिये गये हैं। हाइडेलबर्ग, वेरीनिगिंग, क्रूगर्सडॉर्प आदि स्थानोंके नेताओंने भी सभामें भाग लिया।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–८–१९०८

२७८. पत्र : ई० एफ० सी० लेनको[1]

निजी

जोहानिसबर्ग
अगस्त २०, १९०८

प्रिय श्री लेन,

श्री कार्टराइटने मुझसे कहा है कि मैंने आजकी सभाके निर्णयके बारेमें उन्हें जो-कुछ बताया है, सो मैं आपको लिख दूँ और साथ ही तत्सम्बन्धी अपने विचार भी व्यक्त कर दूँ।

१. यह पत्र २९–८–१९०८ के **इंडियन ओपिनियन**में, निम्नलिखित प्रस्तावनाके साथ प्रकाशित किया गया था: "ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिवने एक निजी पत्रका प्रकट उपयोग इस तरह किया कि विधान सभाके सदस्योंके मनमें यह खयाल पैदा हो जाये कि भारतीय समाजने समझौतेके सवालपर अपना अन्तिम निर्णय और चेतावनी भेजी है। इसलिए श्री गांधीने पिछले रविवारको अपने भाषणमें परिस्थितियोंको पूरी तरह समझाया। जनरल स्मट्स द्वारा शिष्टाचारके इस उल्लंघनके कारण हम यहाँ श्री गांधीके जिस पत्रके अनधिकृत अंश प्रकाशित हो ही चुके हैं उसका पूरा पाठ दे रहे हैं।"

कोई १५ वर्ष बाद यर्वदा जेलसे इस घटनापर लिखते हुए गांधीजी गलतीसे, शायद, इस पत्रके बदले १४ अगस्त, १९०८ को जनरल स्मट्सको लिखे (पृष्ठ ४४५-४६) पत्रका जिक्र कर गये, और २३ अगस्तकी सार्वजनिक सभा (पृष्ठ ४६८-७१) के बदले १६ अगस्तकी सभा (पृष्ठ ४५०-५४) के बारेमें बता गये। **'सत्याग्रहनो इतिहास'** के २६ वें और २७ वें अध्यायोंके निम्नलिखित उद्धरणोंकी तुलना (चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये) समकालीन वक्तव्यों या रिपोर्टोंके उद्धरणोंसे करनेपर इस उलझनकी शुरुआतपर कुछ प्रकाश पड़ेगा।

"**'इंडियन ओपिनियन'** की साप्ताहिक डायरीमें [भारतीयोंसे] कहा गया था कि यदि खूनी कानून रद नहीं किया जाता है तो वे प्रमाणपत्र जलानेके लिए तैयार रहें। [देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी" पृष्ठ ३६३ "रविवार (जुलाई १९, १९०८) को एक सार्वजनिक सभा की जायेगी।" "पंजीयन-पत्र नहीं जलाये जायेंगे, अभी समय नहीं आया है। . . .सबसे अच्छा तो यह होगा कि जबतक जनरल स्मट्स अपने विधेयकका मसविदा प्रकाशित नहीं करते तबतक प्रतीक्षा की जाये।" विधेयकका मसविदा ११ अगस्तको प्रकाशित हुआ, देखिए पृष्ठ ४४८-४९]। विधेयक जब विधानमण्डल (लेजिस्लेचर) में पास होनेको था, तब उसके विरुद्ध [१३ अगस्त, १९०८ को] एक अर्जी [देखिए पृष्ठ ४४३-४५] दी गई. . .लेकिन बेकार ही। अन्तमें सत्याग्रहियोंने सरकारको एक अल्टिमेटम (अन्तिम चुनौती) भेजा। इस शब्दका प्रयोग सत्याग्रहियोंने नहीं, बल्कि जनरल स्मट्सने किया था, जिनकी नजरोंमें पत्र एक अल्टिमेटम ही था। . . .[स्वयं गांधीजीने इसे बजाय "एशियाइयोंकी अन्तिम

मैंने आज तीसरी बार सभाके[1] सामने वे शर्तें रखीं, जिनके बारेमें मैंने उन्हें बताया कि सरकार उन्हें देनेपर तैयार है। मैंने उन्हें यह भी बताया कि यदि उच्च शिक्षा-प्राप्त भारतीयों तथा सोराबजीकी बहालीके लिए कोई व्यवस्था इनमें कर दी जाये तो ये ही शर्तें स्वीकार्य समझौतेका रूप ले लेंगी। किन्तु सभा एशियाई अधिनियमको रद करने तथा प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमकी सामान्य धाराके अन्तर्गत उच्च शिक्षा-प्राप्त भारतीयोंको मान्यता देनेसे कम किसी भी बातको सुननेके लिए तैयार नहीं थी। मैं उन्हें अधिकसे-अधिक केवल इसीपर राजी कर सका कि वैधानिक अधिकार मंजूर कर लिया जाये तो शिक्षित भारतीयोंके खिलाफ बरते जानेवाले ऐसे प्रशासनिक भेदभावपर कोई आपत्ति नहीं होगी जिसके कारण केवल अत्यन्त उच्च शिक्षा-प्राप्त भारतीय ही प्रवेश कर सकें। सभामें अत्यधिक उत्साह था। केवल चंद प्रतिनिधियोंको शामिल रखनेके इरादेसे की गई सभा एक सार्वजनिक सभामें परिणत हो गई। इसमें दक्षिण आफ्रिकाके तीन अत्यन्त प्रसिद्ध भारतीय[2] शामिल हुए थे। वे, जैसा कि आपको मालूम है, नेटालसे आये हैं। किन्तु वे युद्धसे पूर्व यहाँके अधिवासी थे और यहाँ उनका बहुत कारोबार फैला हुआ था। प्रिटोरियाके जिन प्रभावशाली भारतीयोंने अधिनियम स्वीकार कर लिया है उनमेंसे भी अधिकांश आये थे; उन्होंने भी सहानुभूति प्रकट की। अत्यधिक कठिनाइयोंके बाद मैं सबको निम्नलिखित बातोंपर एकमत होनेके लिए राजी कर सका हूँ:—

चेतावनी" के "एशियाइयोंका निवेदन" कहा था (पृष्ठ ४६५)। **इंडियन ओपिनियन**ने ट्रान्सवाल विधान-सभामें जनरल स्मट्सके २१ अगस्तके भाषणकी जो रिपोर्ट प्रकाशित की थी, उसमें "अल्टिमेटम" शब्द नहीं आया है। लेकिन उन्होंने एक पत्रका उल्लेख किया, और बताया कि उसीके कारण समझौतेकी उनकी सारी आशापर पानी फिर गया। भाषणके संक्षिप्त पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ९। इस शब्दका प्रयोग **इंडियन ओपिनियन**में, ६ जुलाई, १९०८ को उपनिवेश-सचिवके नाम लिखे ईसप मियाँके पत्र (देखिए पृष्ठ ३३४-३७) के शीर्षकके रूपमें, और बादमें २० अगस्तके इस पत्रका वर्णन करनेके लिए भी किया गया था।] इस पत्रको अन्तिम चुनौती क्यों माना गया, इसका एक कारण यह था कि पत्रमें जवाबके लिए निश्चित अवधि दे दी गई थी। [न तो १४ अगस्तके उस पत्रमें (पृष्ठ ४४५-४६) जिसे गांधीजी "अन्तिम चुनौती" बताते हैं, और न ही २० अगस्तके उस पत्रमें जो **इंडियन ओपिनियन**में "अन्तिम चुनौती क्या है?" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था, जवाबके लिए कोई निश्चित अवधि दी गई है। क्या सत्याग्रहियोंने कोई और पत्र लिखा था, जिसका पता नहीं चला है?]...जिस दिन विधेयक विधान-मण्डल (लेजिस्लेचर) में पास होनेवाला था, अल्टिमेटमका समय उसी दिन समाप्त होनेको था। [विधान-सभामें एशियाई स्वेच्छया पंजीयन वैधीकरण विधेयक (एशियाटिक्स वालंटरी रजिस्ट्रेशन वैलिडेशन बिल) का पहला वाचन १३ अगस्तको होनेवाला था। **इंडियन ओपिनियन**के अनुसार यह विधेयक बादमें स्थगित कर दिया गया, और आखिरकार विधान-परिषदने एक नया विधेयक जिसमें एशियाइयोंको कुछ और भी रियायतें दी गई थीं, २२ अगस्तको पास किया]। निश्चित अवधिकी समाप्तिके कोई दो घंटे बाद प्रमाण-पत्र जलानेका एक आम जलसा करनेके लिए सभा बुलाई गई। [१६ और २३ अगस्त, १९०८ की दोनों आम सभाओंमें पंजीयन प्रमाण-पत्र जलाये गये।] हम लोग सभा-स्थानपर सवेरे ही पहुँच गये थे और हमने तार द्वारा सरकारसे जवाब प्राप्त करनेकी व्यवस्था भी कर ली थी।...सभा जोहानिसबर्गके हमीदिया मस्जिदके प्रांगणमें (अगस्त १६, १९०८ को) ४ बजे की गई।...एक स्वयंसेवक सरकारकी ओरसे एक तार लेकर पहुँचा जिसमें उसने...अपने रवैयेमें कोई परिवर्तन करनेमें असमर्थता जाहिर की थी।"

१. इस सभाकी कोई समाचारपत्रीय रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है। हो सकता है कि जनरल स्मट्सको लिखे गये पत्रकी तरह इस सभाकी कार्यवाही अप्रकाश्य मानी गयी हो।

२. दाउद मुहम्मद, पारसी रुस्तमजी और एम० सी० आँगलिया।

१. श्री सोराबजीको अधिवासके पूर्ण अधिकारोंके साथ बहाल किया जाये।

२. सभी बन्दियोंको रिहा कर दिया जाये।

३. एशियाई अधिनियम रद कर दिया जाये।

४. शिक्षित भारतीयोंके सम्बन्धमें कठिन जाँचके विवेकाधिकारसे संयुक्त एक सामान्य शैक्षणिक परीक्षा हो।

५. नये विधेयकमें आवश्यक परिवर्तन करके सर पर्सीकी[1] टिप्पणियोंके अनुसार शर्तें शामिल की जायें।

६. जलाये हुए प्रमाणपत्र बिना किसी शुल्कके फिरसे दे दिये जायें।

७. एशियाई अधिनियमकी मुख्य-मुख्य धाराओंको उस हदतक नये विधेयकमें फिरसे रख लिया जाये, जिस हदतक वे एशियाई जनसंख्यापर उचित नियन्त्रण लगाने तथा धोखाधड़ीको रोकनेके लिए आवश्यक हों।

८. विधेयकका मसविदा तफसील सम्बन्धी सुझावोंके लिए संघकी समितिको दिखाया जाये।

स्पष्ट है कि सर पर्सीकी टिप्पणियों द्वारा सूचित शर्तोंमें इस निवेदनसे कोई बड़ा रद्दोबदल नहीं होता। संसद तथा देशको यह दिखानेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं दीख पड़ती कि एशियाई अधिनियमको रद करना एक ऐसे शोभनीय कार्यके अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिससे उपनिवेशके एक प्रतिनिधित्वहीन समाजको, उसपर विधानसभाका नियन्त्रण किसी भी प्रकार ढीला किये बिना, समाधान प्राप्त होगा। सोराबजीके मामलेने लोगोंका उत्साह चरम सीमातक पहुँचा दिया। इसके कारण गहरा विक्षोभ उत्पन्न हुआ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वर्तमान परिस्थितियोंमें मैं जितना आगे जानेकी बात सोचता, सभा कुल मिलाकर उससे कहीं आगे बढ़ गई थी। किन्तु यह निश्चित वचन देकर ही, कि जिस कानूनके रद किये जानेका वादा किया जा चुका था, यदि उसे रद नहीं किया गया तो मैं स्वयं सत्याग्रह आन्दोलनमें उनका नेतृत्व करूँगा, मैं सभाको इस बातपर राजी कर सका कि वह समाजको उपर्युक्त शर्तों तक सीमित रखे। मैं अपने देशवासियोंको और मुसीबतमें नहीं डालना चाहता था, इसीलिए मैं अधिनियमके पूर्णतः रद किये जानेकी माँगको इस हद तक छोड़नेके लिए तैयार था कि जिन लोगोंने अधिनियमको स्वीकार किया है उन्हें छोड़कर वह सबके प्रति निष्क्रिय हो जाये। किन्तु मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि वे इसे सुननेके लिए तैयार नहीं हुए। और उन्होंने कहा कि वे बड़ीसे-बड़ी मुसीबतें सहनेको तैयार हैं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि सरकार उपर्युक्त शर्तोंको स्वीकार करनेकी मेहरबानी करके इस विवादको समाप्त कर देगी। यदि सरकार ऐसा करती है तो जहाँतक एशियाई अधिनियमका सम्बन्ध है कमसे-कम मैं और कोई कदम नहीं उठाऊँगा।

एक बात और; एक वक्ता उठ खड़ा हुआ और बोला कि इन शर्तोंमें श्री चैमनेको हटा दिये जानेकी बात भी जोड़ दी जाये, लेकिन उसे शर्तोंमें सम्मिलित नहीं किया गया। तथापि मैं अपना यह मत लिखे बिना नहीं रह सकता कि श्री चैमने अनभिज्ञ और नितान्त अयोग्य हैं। यह मैं सम्पूर्ण उपनिवेशके हितकी दृष्टिसे कहता हूँ। मेरा उनसे कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं है। मेरे प्रति तो वे भी सदैव सौजन्यपूर्ण रहे हैं; किन्तु मैं बहुत कोशिश करके भी उन्हें उस पदके लिए जिसपर वे काम करते हैं, योग्य माननेमें असमर्थ हूँ। मेरी निश्चित धारणा

१. सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिक।

है कि वे घड़ी-भर बाद क्या निर्णय लेंगे सो खुद भी नहीं जानते। और स्वेच्छया पंजीयनके अमलके प्रारम्भिक दौरमें अधिकांश विक्षोभका कारण उनकी ढुलमुल नीति तथा उनके अविवेक-पूर्ण निर्णय ही थे। मैं इसके अनेक उदाहरण दे सकता हूँ। किन्तु मैं इसे आवश्यक नहीं समझता। मेरे विचारमें, अब आवश्यकता इस बातकी है कि इस पदपर कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसमें न्यायिक प्रतिभा तथा प्रचुर सहानुभूति हो। यदि यह सुझाव स्वीकार नहीं किया जाता तो मेरा खयाल है कि किसी भी अधिनियमको अमलमें लानेपर, फिर वह चाहे जितनी अच्छी तरह निर्मित क्यों न किया गया हो, सदैव विक्षोभ उत्पन्न होगा और इसके परिणामस्वरूप कठिनाइयाँ सामने आयेंगी।

मैं इसकी नकलें प्रगतिवादी दलके नेताओंको भेज रहा हूँ।

आपका सच्चा,

श्री अर्नेस्ट एफ० सी० लेन
जनरल स्मट्सके निजी सचिव
उपनिवेश कार्यालय
प्रिटोरिया

इंडियन ओपिनियन, २९-८-१९०८

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८५९) से भी।

२७९. भाषण: घनिष्ठतर ऐक्य समाजमें

[जोहानिसबर्ग
अगस्त २०, १९०८]

घनिष्ठतर ऐक्य समाज (ट्रान्सवाल क्लोज़र यूनियन सोसाइटी) की पहली बैठक कल रात [२० अगस्त, १९०८ को] बी स्ट्रीट-स्थित कांग्रिगेशन चर्च हॉलमें हुई। श्री एडवर्ड नैथनने अध्यक्षता की। विचारणीय विषय था "घनिष्ठतर ऐक्यके प्रसंगमें एशियाई समस्या"। विचार-विमर्शका आधार श्री अल्फ्रेड बार्करके वे निबन्ध थे जो गत सोमवार और मंगलवारको 'ट्रान्सवाल लीडर' में प्रकाशित हुए थे।

जब श्री बार्कर अपना निबन्ध पढ़ चुके, तब श्री गांधीने कहा कि मेरी रायमें दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय और एशियाई, दोनों ही इस प्रश्नपर एकमत हैं कि एशियाई प्रवासियोंका आगमन नियन्त्रित या प्रतिबन्धित होना चाहिए, और वह नियन्त्रित है भी। केप कॉलोनी और नेटालमें इस मतलबका एक कानून है, और ट्रान्सवालमें भी दरवाजे बन्द हैं। रोडेशियामें पहलेसे ही एक प्रवासी-प्रतिबन्धक कानून है, और उसके विधायक अब विधि-पुस्तिकामें एक एशियाई पंजीयन कानून और शामिल करनेके लिए प्रयत्नशील हैं।[1] मेरी व्यक्तिगत रायमें इस कानूनकी उन्हें कोई जरूरत नहीं है। प्रवासी कानून बनाकर उन्होंने अपना उद्देश्य पूरा

१. देखिए "रोडेशियाके भारतीय", पृष्ठ २५७-५८ और ३२८।

कर लिया है। उसके फलस्वरूप समस्याका दायरा तत्वतः काफी छोटा हो गया है, और अब हमें घनिष्टतर एकतापर एशियाइयोंके निवासके प्रभावपर विचार करना है, न कि एशियाई प्रवासियोंके आगमनके प्रभावपर।

प्रवासी कानून

केप और नेटालके प्रवासी कानूनके अधीन उन एशियाइयोंको प्रवेश करनेकी अनुमति है जो शैक्षणिक योग्यताकी उसी कसौटीपर खरे उतर सकें जो देशमें प्रवेश करनेवाले किसी अन्य जातिके लोगोंपर लागू है। उस कानूनका मुख्य उद्देश्य बड़ी संख्यामें एशियाइयोंके प्रवेशको रोकना है। सन् १८९६ में स्वर्गीय श्री एस्कम्बने[1] पहली बार श्री चैम्बरलेनसे[2] एशियाई बहिष्करण विधेयक पास करनेकी अनुमति माँगी थी, और श्री चैम्बरलेनने सभी उपनिवेशोंके मार्ग-निर्देशनके लिए यह नीति निर्धारित की थी कि विभेदका आधार रंग नहीं, बल्कि शिक्षा या ऐसी ही कुछ योग्यता होनी चाहिए। उस नीतिका अबतक अनुसरण किया गया है। प्रधानमन्त्रियोंके सम्मेलनमें श्री चैम्बरलेनने उक्त मत उनके सामने स्वीकृतिके लिए रखा था।[3] शैक्षणिक योग्यताके नियमके अनुसार यदि बहुत थोड़ेसे ही एशियाई नेटालमें प्रवेश कर सके थे तो उसका कारण यह नहीं था कि भारतमें बड़ी संख्यामें शिक्षित भारतीय नहीं थे, बल्कि यह था की एशियाइयोंको अपनी योग्यताओंके उपयोगके लिए भारत, चीन और जापानमें पर्याप्त अवसर सुलभ थे। लेकिन कुछ ऐसे [शिक्षित एशियाई] भी थे जिनका व्यापारियों, फेरीवालों और दूसरे तबकेके एशियाइयोंके पीछे-पीछे आना निस्सन्देह आवश्यक था। यदि उन्हें दक्षिण आफ्रिकामें नहीं आने दिया जाता, और यदि उनके प्रवेशपर भी सख्तीसे रोक लगा दी जाती है, तो ऐसी दशामें समस्याका हल अपेक्षाकृत अधिक कठिन होगा। यदि यह स्वीकार कर लिया जाये कि उन एशियाइयोंको, जो दक्षिण आफ्रिकाके अधिवासी रहे हैं, दक्षिण आफ्रिकामें रहना चाहिए, और उनके साथ न्यायोचित व्यवहार होना चाहिए, तो यह स्वाभाविक ही है कि ऐसे लोगोंको भी आनेकी अनुमति होनी चाहिए, जो उनका नेतृत्व और विभिन्न जातियोंके बीच दुभाषियेका काम कर सकें। उन एशियाइयोंकी आगे क्या स्थिति होगी जिन्हें दक्षिण आफ्रिकामें बसे रहनेकी अनुमति थी? दक्षिण आफ्रिकामें बस जानेवाले लोगोने कुछ शर्तें निर्धारित की थीं जिनके अनुसार इस राष्ट्रको, जो अब मूर्तरूप ग्रहण करने जा रहा है, रहना होगा। ऐसी स्थितिमें क्या किसीके लिए यह सम्भव है कि वह एशियाई अधिवासियोंकी समस्याको अपने मनसे मिटा दे? उनका परिशीलन बहुत ही दिलचस्प और शिक्षाप्रद है; किन्तु यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि दक्षिण आफ्रिकाको अपना घर बना लेनेवाले जितने लोगोंके लेख मैंने पढ़े हैं, उनमें से किसीने इस बातपर विचार नहीं किया कि एशियाइयों अथवा स्वयं वतनी लोगोंकी भावनाएँ क्या हैं। उनकी स्वीकृतिके लिए सुझाये गये निदानोंके सम्बन्धमें वे क्या कहना चाहेंगे? क्या अभिप्राय यह है कि एशियाई या रंगदार जातियाँ अपने प्रति होनेवाले व्यवहारका वही निदान स्वीकार करनेको विवश हैं जिसे ज्यादा शक्तिशाली जाति — यूरोपीय जाति

१. और २. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१७ और ४१८।
३. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३९२

—निश्चित करे? मैं कहनेका साहस करता हूँ कि यदि उन्होंने कभी भी वैसी नीति अपनाई तो वह निश्चित रूपसे विफल होगी। उस प्रकारकी नीति एक, दो या तीन वर्ष-तक चलाना शायद सम्भव हो; किन्तु मेरा निश्चित मत है कि [आगे चलकर] वे देखेंगे कि एशियाई और वतनी जातिके लोग, दोनों ही माँग करेंगे कि उनसे सम्बन्धित प्रश्नोंपर उनकी सलाहसे फैसला हो। ऐसा सोचना भी असम्भव है कि वे जातियाँ कभी यह बर्दाश्त करेंगी कि यूरोपीय जाति उनके साथ जैसा चाहे वैसा व्यवहार करे।

गिरमिटिया मज़दूर

श्री बार्करने [अपने निबन्धमें] सबसे पहले गिरमिटिया मजदूरोंकी समस्यापर चर्चा की थी। उसके सम्बन्धमें श्री गांधीने कहा :

इस प्रश्नपर हम दोनोंमें पूर्ण मतैक्य है। जब भी मुझे अवसर मिला है, मैंने सदैव कहा है कि निस्सन्देह गिरमिटिया मजदूरोंको नेटालमें लानेके परिणाम-स्वरूप ही दक्षिण आफ्रिकामें एशियाई समस्या सम्भव हो सकी। गिरमिटिया मजदूरोंके आनेके बाद ही भारतसे एशियाई प्रवासियोंका यहाँ आना शुरू हुआ। गिरमिटिया मजदूरोंकी भर्ती करके नेटालने जो भयंकर भूल की है उसीका दुष्परिणाम आगेकी पीढ़ियोंको यदि भोगना पड़ा तो भोगेंगी। किन्तु इस समस्याका हल यह नहीं है कि उन्हें जबर्दस्ती उनके देश वापस भेज दिया जाये। ऐसा कहना कि पहले किसी जन-समुदायको किसी उपनिवेश-विशेषमें प्रवेश करने दिया जाये जहाँ वे अपने जीवनके सर्वोत्तम वर्ष व्यतीत करें, और बादमें उन्हें वापस उस स्थानको भेज दिया जाये जो उनके लिए अपेक्षाकृत अपरिचित हो गया है, मेरी रायमें मानवीय भावनाओंको ठेस पहुँचाना है। जिन लोगोंको गिरमिटिया प्रथाके अधीन नेटाल जानेके लिए आमन्त्रित किया गया है वे गरीब वर्गके लोग हैं। वे नेटाल आते समय भारतसे अपने सारे सम्बन्ध तोड़ आते हैं। उन्हें बताया जाता है कि उन्हें सारे सुख और सुविधाएँ मिलेंगी; उनका विश्वास होता है कि वे अपना समय अपेक्षाकृत आसानीसे बिता सकेंगे, और उपनिवेशोंके लिए पाँच वर्षतक गुलामी करनेके बाद स्वतन्त्र रूपसे अपना काम कर सकेंगे। यदि इन लोगोंको बुलाया जाये, या उन्हें भारतमें यह भी बता दिया जाये कि पाँच वर्ष पूरे होनेपर उन्हें वापस भारत लौट जाना होगा, तब भी यह सम्भव है कि वे शर्तोंसे अपरिचित होनेके कारण उन शर्तोंको स्वीकार कर लें। लेकिन मैं ऐसे करारको न्यायसंगत नहीं कहूँगा। यदि वे लोग शर्तोंसे परि-चित हों और तब नेटाल आयें, तब भी मैं यही कहूँगा कि उनसे वापस लौट जानेकी आशा करना, या उन्हें वापस भेजना अमानुषिक होगा।

बागान-मालिकोंके हितार्थ

बेहतर नीति तो यह होगी कि गिरमिटिया प्रथा बिलकुल समाप्त कर दी जाये; और जो अवधि तय हो वह तीन वर्षकी हो। यदि मैं नेटालका निरंकुश शासक होता तो मैं तीन वर्षकी अवधि भी नहीं तय करता, बल्कि उस प्रथाको एकदम समाप्त कर देता। उन शर्तोंके अनुसार नेटालमें आनेवाले भारतीयोंका कोई लाभ इस मजदूरी प्रथासे नहीं हुआ है, और न उप-निवेशोंका ही लाभ हुआ है। इससे चन्द बागान-मालिकोंको तो लाभ पहुँचा है, लेकिन उनका लाभ प्रवासियोंकी कीमतपर हुआ है, और प्रवासियोंमें मैं अपने देशवासियोंको भी शामिल करनेका

साहस करता हूँ। यदि यह उपनिवेश उस नीतिपर अड़ा रहा, तो मैं जनरल स्मट्सकी, या अन्य किसीकी भी, सड़कका बेलन[1] काममें लाने (हँसी) और नेटालको गिरमिटिया प्रथा बन्द करनेपर मजबूर करनेके लिए सराहना करूँगा। यह एक व्यावहारिक राजनीतिका सवाल है, मानवताका सवाल है, और ऐसा सवाल है जिसपर आप न केवल यूरोपीयोंके बीच मतैक्य पायेंगे बल्कि आपको खुद भारतीयोंसे भी हर सम्भव सहायता मिलेगी। उन व्यापारियोंकी समस्या, जो दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए हैं और उद्योगोंमें काम करनेवाले उन भारतीयोंकी समस्या, जो बढ़ते-बढ़ते प्रशिक्षित होनेकी स्थितिमें आ गये हैं, अपेक्षाकृत अधिक सरलतासे हल हो सकती है। एशियाई प्रभावका हौवा तब तिरोहित हो जायेगा।

श्री गांधीने आगे श्री बार्करके इस सुझावका जिक्र किया कि एशियाई व्यापारियोंको बाजारोंके अन्दर ही सीमित किया जाना चाहिए, और कहा कि मेरी रायमें इससे समस्या हल नहीं होगी। यदि एशियाई अपनी व्यापारिक गतिविधियोंके इस प्रकार सीमित किये जानेपर राजी नहीं हुए तो श्री बार्कर क्या निदान सुझायेंगे? मुझे विश्वास है कि दक्षिण आफ्रिकाकी जनताकी इच्छा ब्रिटिश भारतीयोंके साथ ऐसा व्यवहार करनेकी बिलकुल नहीं है, मानो वे मनुष्यसे कम दर्जेके प्राणी हों। उन्हें भारतीयोंपर विश्वास करना चाहिए। जहाँतक मताधिकारका प्रश्न है, जबतक द्वेषकी दीवार नहीं तोड़ी जाती तबतक व्यक्तिगत रूपसे मैं उसे प्राप्त करना नहीं चाहता। मेरी समझमें इस समस्याका हल इस तथ्यमें निहित है कि भारतीयोंको सबसे पहले तो मानव, और सहनागरिक समझा जाये। यूरोपीयोंको यह अपना कर्तव्य मानना चाहिए कि उन लोगोंको ऊपर उठायें, न कि नीचे गिरायें। (करतल-ध्वनि)। दक्षिण आफ्रिकाको श्वेत दक्षिण आफ्रिका मानना उचित नहीं है। एक ईसाई राष्ट्रके हाथों जैसा व्यवहार होना चाहिए, वैसा व्यवहार एशियाइयोंके साथ यदि हो तो उनकी व्यापारिक गतिविधियोंको पृथक् करने या प्रतिबन्धित करनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। [समस्याका] एकमात्र हल वही है, जिसे मैंने सुझाया है।

इसके बाद अन्य वक्ताओंके भाषण हुए।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, २१–८–१९०८

१. यहाँ इशारा **ट्रान्सवाल लीडर**में प्रकाशित उस व्यंग्यचित्रकी ओर है, जिसे इस खण्डमें पृष्ठ ३२ और ७३ के सामने उद्धृत किया गया है।

२८०. भेंट: 'ट्रान्सवाल लीडर' को

[जोहानिसबर्ग
अगस्त २१, १९०८ के पूर्व][1]

शिक्षित भारतीयोंके प्रवेशके प्रश्नपर भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें बहुत भारी गलतफहमी है। हमारा दावा है कि प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम — जैसा कि वह अभी है — शिक्षित भारतीयोंको देशमें आनेसे मना नहीं करता। परन्तु यदि कोई यह कहे कि सैकड़ों भारतीय युवकोंको इस देशमें आने देना चाहिए तो यह भारतीयोंका कहना नहीं है। हम तो केवल इतना ही चाहते हैं कि चमड़ीके रंगको "रुकावटका आधार" नहीं बनाया जाये। और यह भी कि शिक्षितोंके धन्ध करनेवाले ऐसे भारतीयोंको भी इस देशमें आने दिया जाये जिनके आनेसे समाजके सर्वांगीण विकासमें मदद मिलती हो। इससे शायद सारे वर्षमें एकका भी हिसाब न बैठेगा। क्योंकि ऐसे आदमियोंकी यहाँपर बड़ी संख्यामें गुंजाइश ही नहीं है। व्यापारमें तो वे होड़ कर ही नहीं सकते। और अन्ततोगत्वा एशियाई सवाल बहुत-कुछ व्यापारका ही सवाल है। परन्तु इस सिलसिलेमें एक बात भुला दी जाती है। वह यह है कि शिक्षाके प्रश्नको भारतीयोंने नहीं, जनरल स्मट्सने उठाया है। वे चाहते हैं कि कानूनके उनके इस अर्थको भारतीय स्वीकार कर लें। भारतीयोंका अपमान करनेवाला कोई कानून जब वे बनाना चाहते हैं, तब उन्हें इस बातकी परवाह नहीं होती कि भारतीयोंकी सलाह ले लें। परन्तु जब समझौतेके सरकारसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी अंशके पालनका प्रश्न उपस्थित होता है तब वे इस तरहकी कोई बात कहते हैं कि अगर आप शिक्षित भारतीयोंके आगमनको रोकनेके सम्बन्धमें — चाहे उनकी शैक्षणिक योग्यता कुछ भी क्यों न हो — लगाई जानेवाली यह नई बन्दिश स्वीकार कर लें तो मैं समझौतेका बराबर पालन कर दूँगा। वे चाहें तो कानूनको रद करनेके अपने वचनको पूरा कर दें और साथ ही हमारी भावनाओंका निरादर करके भारतीयोंके प्रवेशपर भी नई शैक्षणिक बन्दिशें और शर्तें लगा दें। तब हम उस प्रश्नके स्वतन्त्र गुण-दोषोंको लेकर उस प्रश्नपर भी उनसे लड़ लेंगे। वर्तमान विधेयकके बारेमें भी उन्होंने हमसे कभी सलाह नहीं ली है। मैं मानता हूँ कि इस विधेयकमें सरकारकी तरफसे समझौतेको भंग किया जा रहा है। फिर भी वे उस कानूनको रद करनेवाले विधेयकको मंजूर करनेसे इनकार कर रहे हैं जिसका मसविदा खुद उन्होंने तैयार किया है। और इसका कारण क्या है? यही कि उसके एक वाक्यांशपर हमारी आपत्ति है जिसमें दूसरी बातोंके साथ साथ शिक्षित भारतीयोंके प्रवेशपर रोक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-८-१९०८

१. **लीडर**को यह भेंट, जिसका मूल सूत्र प्राप्त नहीं है और जो **इंडियन ओपिनियन**, २२-८-१९०८ में पुनः प्रकाशित हुआ था, निश्चय ही **"भेंट: ट्रान्सवाल लीडर"** को (२१ अगस्त १९०८) पृष्ठ ४६५-६७ से पहले आना चाहिए, जो **इंडियन ओपिनियन**में २९-८-१९०८ को पुनः प्रकाशित हुआ था।

२८१. भेंट: 'स्टार' को[1]

[जोहानिसबर्ग
अगस्त २१, १९०८]

ट्रान्सवालका एशियाई समाज कर्नल सीली द्वारा प्रस्तुत किया गया स्वेच्छया पंजीयन सम्बन्धी विधेयक स्वीकार नहीं करेगा। अतः अनाक्रामक संघर्ष जारी रहना अनिवार्य है।

इस नीतिका निर्धारण समाजके प्रवक्ता श्री मो० क० गांधीने आज 'स्टार' के प्रतिनिधिसे भेंटके दौरान दिये गये अपने एक वक्तव्यमें किया।

यह नया विधेयक, दो बातोंको छोड़ कर हर तरहसे मेरे देशवासियोंके लिए काफी सन्तोषप्रद माना जाता; किन्तु १९०७ के एशियाई अधिनियमका रद न होना और उच्च-शिक्षा-प्राप्त एशियाइयोंके ट्रान्सवालमें रहनेकी व्यवस्थाका अभाव, ये दो बातें एशियाइयों द्वारा विधेयककी स्वीकृतिकी दृष्टिसे महत्वपूर्ण मसले हैं। भारतीयोंके नुक्तेनजरसे एशियाई अधिनियमकी मंसूखीका सवाल बहुत ही महत्वपूर्ण है। उनका दावा है कि मंसूखीका वादा किया गया था, और सम्मानका यह एक सवाल पूरा किया जाना चाहिए था। व्यावहारिक राजनीतिके एक प्रश्नकी दृष्टिसे, उसका अध्ययन करनेके बाद, मुझे कोई वजह नहीं दिखाई देती कि एशियाई अधिनियमको विधि-पुस्तिकामें एक पूर्णतः अप्रचलित कानूनके रूपमें क्यों रखा जाये। इससे अनेक हास्यास्पद स्थितियाँ उत्पन्न होंगी। यदि अधिनियमको मैंने सही-सही समझा है, तो किसी एशियाईको पुराने अधिनियमके अन्तर्गत या नये विधेयकके अन्तर्गत प्रार्थनापत्र देनेका विकल्प प्राप्त है। यदि वह पुराने अधिनियमका लाभ लेना चाहे — बशर्ते कि यह लाभ हो — और प्रार्थनापत्र देनेसे पहले वह उपनिवेशमें प्रवेश करे तो उसे कोई नहीं रोक सकता किन्तु नये विधेयकके अन्तर्गत वह दक्षिण आफ्रिकाके किसी भी स्थानसे पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र भेज सकता है, किन्तु ट्रान्सवालसे नहीं। यह मुझे हास्यास्पद प्रतीत होता है, और इससे ऐसी जाल-फरेबकी कार्रवाइयोंके लिए रास्ता खुल जायेगा जिन्हें सभी पक्ष रोकना चाहते हैं।

एक मुख्य प्रश्न

उच्च-शिक्षा प्राप्त भारतीयोंके प्रवेशका प्रश्न भी हमारे लिए अत्यन्त महत्वका है, किन्तु जहाँतक मैं देख सकता हूँ, यूरोपीयोंके लिए उसका कोई महत्व नहीं है। भूलना नहीं चाहिए कि युद्धसे पहले ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशमें प्रवेश करनेको बिलकुल स्वतन्त्र थे। युद्धके बाद शिक्षित भारतीयोंका प्रवेश निषिद्ध नहीं था, किन्तु किसी भी यूरोपीयकी भाँति उनपर भी शान्ति-रक्षा अध्यादेश लागू होता था। १९०७ का एशियाई अधिनियम केवल अधिवासी एशियाइयोंपर लागू होता था। जैसा कि जनरल स्मट्सने स्वयं स्वीकार किया, वह [अधिनियम] एशियाई आव्रजन नियन्त्रित नहीं करता था। प्रवासी अधिनियम आज भी उन एशियाइयोंके प्रवेशका निषेध नहीं करता जो शैक्षणिक योग्यताकी कसौटीपर खरे उतरते हैं। अतः साफ है कि यह निषेध एशियाई अधिनियमकी उपस्थितिका परिणाम है, जिसको ब्रिटिश भारतीय स्वीकार नहीं करेंगे।

१. यह भेंट **इंडियन ओपिनियन** (अंग्रेजी) में "नो सरेंडर" शीर्षकसे प्रकाशित हुई थी।

निश्चय ही, यदि हमने स्वयं यह सीमा अपने ऊपर लगाई है कि केवल उच्च-शिक्षा प्राप्त भारतीय प्रवेश करें, तब उस हालतमें यह तो हम होंगे जो कुछ त्याग कर रहे होंगे, न कि विधान-मण्डल, जो हमें एक नई सुविधा प्रदान करेगा। अतः यह कहना असंगत है कि हम एक नई माँग उठा रहे हैं। दूसरा प्रश्न, जिसे एशियाइयोंकी अन्तिम चेतावनी[1] कहा गया है, और जिसे मैं एशियाइयोंका निवेदन कहूँगा, वस्तुतः प्रशासनिक कार्य है, कानूनी मसले नहीं। सरकारको मान जाना चाहिए था। अन्य प्रश्न इतने तुच्छ हैं कि उनकी चर्चा व्यर्थ है। मैं तो यही अनुभव करता हूँ कि इन छोटे-छोटे मसलोंके कारण एक विधेयक, जो अन्यथा प्रशंसनीय है, जहाँतक मैं समझता हूँ, नष्ट हो जायेगा। मेरे देशवासी नये विधेयककी धाराओंके लाभ तबतक नहीं उठायेंगे जबतक उन अन्यायोंका निराकरण नहीं हो जाता जिनका जिक्र मैंने किया है; और इसी कारण दुर्भाग्यवश अनाक्रामक संघर्ष जारी रखना होगा। मुझे सलाह दी गई है कि अनाक्रामक संघर्ष-रूपी संकटका नेतृत्व न करूँ, किन्तु मैं एक ऐसे व्यक्तिके नाते, जो हर चीजके मुकाबले अपने अन्तःकरणको प्राथमिकता देता है या देनेका प्रयत्न करता है, सम्भवतः यह सलाह स्वीकार नहीं कर सकता, परिणाम चाहे जो हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–८–१९०८

२८२. भेंट : 'ट्रान्सवाल लीडर' को

[जोहानिसबर्ग
अगस्त २१, १९०८]

नये विधेयकके विषयमें कल [२१ अगस्त] जब श्री गांधीसे भेंट की गई और उनकी राय पूछी गई तो उन्होंने कहा :

मैं स्वीकार करता हूँ कि यह विधेयक उस विधेयककी तुलनामें बहुत सुधरा हुआ है जिसका उद्देश्य स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंके पंजीयनको कानूनकी स्वीकृति देना था। वह विधेयक तो निःसन्देह समझौतेकी प्रायः सारी शर्तोंका उल्लंघन होता। 'स्टार' पत्रमें इस नये विधेयकका जो सारांश प्रकाशित हुआ है उसे सरसरी निगाहसे देखनेसे मालूम होता है कि उसमें उन मुद्दोंका समावेश हुआ है जिनकी चर्चा प्रगतिवादी नेताओं और हैटफोककी सभाके साथ हुई भेंटमें हुई थी। लेकिन मुझे डर है कि यह नया विधेयक भी एशियाई सम्मेलन द्वारा प्रस्तावित शर्तोंको पूरा नहीं करता। सम्मेलनने दो चीजोंकी माँग की थी — एशियाई संशोधन कानून रद कर दिया जाये और उच्च शिक्षा पाये हुए एशियाइयोंको प्रवेशकी अनुमति दी जाये। बहुत अफसोसकी बात है कि सरकार इन अत्यन्त सीमित रियायतोंको देनेके लिए भी राजी नहीं हो सकी। ये दो मुद्दे ब्रिटिश भारतीयोंके लिए बहुत ज्यादा महत्त्व रखते हैं लेकिन मेरी रायमें उपनिवेशियोंकी दृष्टिसे उनका कोई महत्त्व नहीं है। मैं कानून और उसके परिणाम समझता हूँ। इसलिए मैं खुद तो इस स्थितिको स्वीकार कर सकता

१. देखिए "पत्र : जनरल स्मट्सको", पृष्ठ ४४५-४६; "पत्र : ई० एफ० सी० लेनको", पृष्ठ ४५६-५९ और पृष्ठ ४५६ पर पादटिप्पणी १।

था कि १९०७ के एशियाई कानूनके साथ मौजूदा विधेयक केवल एक निःसत्व कानूनके रूपमें बना रहे; लेकिन मेरे देशवासी इस जटिल भेदको नहीं समझ सकते। उनके लिए कोई भी कानून मृत-कानून नहीं है। बृहस्पतिवारके दिन सम्मेलनमें इस सवालपर वे जिस जोशसे बोले उससे मेरे लिए इस विधेयकके सम्बन्धमें उनकी भावनाकी गहराई स्पष्ट हो गई। इसलिए जब हम इस बातमें अपनी स्वेच्छासे सम्मति प्रगट करते हैं कि एशियाई कानून संशोधन अधिनियमकी वे सारभूत धाराएँ, जहाँतक वे एशियाई आबादीपर नियन्त्रण रखनेके लिए आवश्यक हैं, दुबारा रची जा सकती हैं, तब पूर्ववर्ती कानूनको रद करनेकी माँगको स्वीकार न करनेका मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता। यह सही है कि चूँकि इस अधिनियमपर इतना ज्यादा विवाद हो चुका है इसलिए उपनिवेशी कानूनकी पुस्तकमें उसके कायम रखे जानेकी माँग उतने ही जोरसे कर सकते हैं जितने जोरसे मेरे देशवासी उसके रद किये जानेकी माँग करते हैं। लेकिन यूरोपीय उपनिवेशियोंके प्रतिनिधि इतने समझदार हैं कि वे यह बात आसानीसे देख सकते हैं कि यदि उपनिवेशके प्रयोजन अधिनियमको रद करनेसे उतनी ही अच्छी तरह सिद्ध होते हों तो उसके रद किये जानेपर उन्हें कोई आपत्ति न हो।

उच्च शिक्षा पाये हुए भारतीयोंके अधिकारोंकी मान्यताका सवाल भी उतना ही सरल है। शिक्षित भारतीयोंके भी अनियन्त्रित प्रवेशकी कोई माँग नहीं है। ब्रिटिश भारतीय मानते हैं कि अधिनियमका पालन करानेके सम्बन्धमें उपनिवेश-सचिवको अपने विवेकका उपयोग करनेकी पूरी सत्ता दी जानी चाहिए किन्तु वे कहते हैं, और मेरा खयाल है कि उनका कहना सर्वथा न्यायोचित है, कि उच्च योग्यताओंवाले यूरोपीयों और एशियाइयोंमें कोई भी भेद न किया जाये।

इन छोटे मुद्दोंके कारण एक अन्यथा अच्छे विधेयकको निष्फल कर देना और एशियाइयोंके असन्तोषको कायम रखना बड़े अफसोसकी बात होगी।

दूसरी बातें, सच पूछा जाये तो, मात्र तफसीलकी हैं; वे विधेयकको छूती भी नहीं हैं। मेरी रायमें मेरे देशवासियोंसे यह आशा करना कि वे श्री सोराबजीका, जिन्होंने देशके लिए इतना कष्ट सहा है, बलिदान कर दें, बहुत अन्यायकी बात होगी। लेकिन सरकारने इस बातको, कि श्री सोराबजीने कानूनको भंग करके प्रवेश किया है इसलिए उन्हें सजा होनी ही चाहिए, सिद्धान्तका सवाल बना लिया है। उन्हें एक माहका कारावासका दण्ड दिया गया था और इस तरह उन्होंने सजा भुगत ही ली है। किन्तु — यदि निर्वासनकी विधि पूरी की गई — यदि सोराबजीको देशसे इसलिए निर्वासित कर दिया गया कि उनपर निष्कासनका आदेश जारी था, तब तो यह आदेश मुझपर और दूसरे कई भारतीयोंपर भी जारी था। लेकिन सरकारने हमें न छूना ठीक समझा है।

मैंने एक इस आशयका वक्तव्य देखा है कि हम लोग अपनी माँगोंमें दिन-प्रतिदिन ज्यादा ढीठ होते जा रहे हैं। जो बात सत्यके विपरीत है उसपर जोर देनेका यह एक अच्छा तरीका है। अधिनियमको रद करनेकी माँग उतनी ही पुरानी है जितना कि स्वयं अधिनियम, और यदि मैं स्वयं अपने देशवासियोंके समक्ष इस शर्तपर कि अधिनियम निःसत्व माना जायेगा, नये विधेयककी बात रखनेके लिए तैयार हो गया तो इसे ढिठाई नहीं कहा जा सकता। कारण, मेरे देशवासियों द्वारा ऐसे किसी भी प्रस्तावको अस्वीकृत करनेका आशय यह था कि वे हमेशा अधिनियमको रद करानेके लिए लड़ते रहे हैं। सामान्य शिक्षाकी कसौटी प्रवासी-

प्रतिबन्धक अधिनियमकी उपनिवेश-सचिव द्वारा की गई व्याख्याके कारण जरूरी हो गई है। और वे अच्छी तरह जानते हैं कि एशियाई अधिनियमके रद हो जानेसे प्रवासी प्रतिबन्धक कानूनके अन्तर्गत शिक्षित भारतीयोंका प्रवेश पूरी तरह सम्भव हो जाता है। इसलिए मुझे तो इसमें ढिठाईकी कोई बात नजर नहीं आती। उलटे, मैं तो यह कहनेका साहस करता हूँ कि विधान-मण्डलने पहले तो हमसे सब छीन लिया है और उसके बाद अब कण-कण करके भीखकी तरह "रियायतें" देना चाहती है—और अभी भी हम जिसे मुख्य वस्तु मानते हैं उसे देनेसे इनकार कर रही है—और फिर अपनी पीठ खुद ही ठोककर कहना चाहती है, "वाह री हमारी उदारता!" इसलिए यदि नये विधेयकमें मेरे देशकी बहुत सौम्य माँग सम्मिलित नहीं की जाती तो मुझे डर है—यद्यपि मुझे उसका बहुत खेद है—कि हमें निष्क्रिय प्रतिरोधकी लड़ाई फिर शुरू करनी पड़ेगी। जनरल स्मट्स उसे अराजकता, स्वेच्छाचार और युद्धकी घोषणा कहते हैं।[1] हम तो उसे तपस्या कहते हैं और अपने सिरजनहारके आशीर्वादकी माँग करते हैं क्योंकि हमारा सारा आधार उसीकी कृपापर है। सच तो यह है कि यह ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ जनरल स्मट्स द्वारा की गई युद्ध-घोषणा है।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, २२–८–१९०८

२८३. नेटालकी बहादुरी

अब प्रशंसा किसकी की जाये? एकसे दूसरा बाजी मारे ले जा रहा है। भारतीय भाग्यका सितारा ऐसा चमक उठा प्रतीत होता है। नेटालने कमाल किया है। श्री दाउद मुहम्मद, श्री पारसी रुस्तमजी, श्री एम० सी० आँगलिया—ये जेल जानेके लिए निकलें, उनके साथ भारतीय युवक हो लें और उनको विदाई देनेके लिए सैकड़ों लोग स्टेशनपर एकत्रित हों, यह दृश्य शत्रुका कलेजा दहला देनेवाला है। जो व्यक्ति ऐसा करनेके लिए बैठे, कोई उसका दुश्मन हो ही कैसे सकता है? श्री दाउद मुहम्मद बुजुर्ग माने जाते हैं। उनकी स्त्रीका प्रसवकाल निकट है। ऐसी स्थितिमें श्री दाउद मुहम्मदने उन्हें छोड़ा है, और देशसेवाके लिए कूच कर दिया है। श्री पारसी रुस्तमजी चंद घंटोंमें ही जेल जानेको तैयार हो गये और "जेल चलो" की रणभेरी बजाने लगे। श्री आँगलिया अपना कारोबार छोड़कर जेल जानेके लिए निकल पड़े। इसमें सराहना किसकी की जाये? बहादुरीका सेहरा किसके सिर बाँधा जाये? जहाँ सभी वीर हों, वहाँ प्रशंसा कैसी? भारतीयोंकी ऐसी स्थिति होने लगी है। हम आशा करते हैं कि इसी प्रकार हमेशा चलता रहेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–८–१९०८

१. "यह आन्दोलन एक प्रकारका युद्ध ही है और इसका मतलब सचमुच अराजकता है. . ." ये उद्गार एशियाई पंजीयन संशोधन विधेयकको प्रथम वाचनके लिए सदनमें पेश करते हुए, अगस्त २१ को, जनरल स्मट्सने व्यक्त किये थे।

२८४. भाषण : सार्वजनिक सभामें[1]

[जोहानिसबर्ग
अगस्त २३, १९०८]

दुर्भाग्यसे गत रविवारको, [२३ अगस्त] जैसा कि संघके अध्यक्षने दुःखके साथ कहा, एक बड़ी सार्वजनिक विरोधसभा करनेकी आवश्यकता हुई। मस्जिदके प्रांगणमें गत सप्ताह जो भीड़ इकट्ठी हुई थी, शायद उससे भी ज्यादा लोग मौजूद थे। जनरल स्मट्सने अपना नया विधेयक प्रस्तुत कर दिया है, किन्तु चूँकि उससे एशियाई अधिनियम रद नहीं होता और चूँकि उसमें उच्च शिक्षा-प्राप्त एशियाइयोंके स्वातन्त्र्य और अधिकारोंकी कोई व्यवस्था नहीं है, इसलिए नये कानूनको स्वीकार करना सम्भव नहीं है। इसीलिए रविवारको सभा की गई। जब पठान नेताओंने अपनी पहली भूलें[2] स्वीकार कीं और लड़ाईमें अन्ततक साथ देनेका अपना निश्चय घोषित किया तो सभामें अकस्मात् एक नया रंग आ गया। उपस्थित लोगोंमें से जिन्होंने लोगोंको प्रोत्साहन दिया, उनमें डर्बनके नेता भी थे। वे उस क्षणकी प्रतीक्षा उत्कंठासे कर रहे थे, जब वे अपनी देशभक्तिका जुर्माना देनेके लिए न्यायालयमें बुलाये जायेंगे . . .। यह कहना भी आवश्यक है कि सभा विर्सजित होनेसे पूर्व लगभग ५२५ और प्रमाणपत्र हर्षध्वनियोंके बीच अग्निकी भेंट किये गये। इनको जलानेका काम श्री एस० हेलू और श्री यू० एम० शेलतने किया।

श्री गांधीका भाषण[3]

[ईसप मियाँके बाद श्री गांधीने भाषण दिया। उन्होंने कहा :] मेरा खयाल है कि ट्रान्सवालमें बसे हुए एशियाई समाजसे सम्बन्धित पिछले दिनों जो घटनाएँ घटी हैं उनके विषयमें कुछ बातें आपसे कह देना जरूरी है। वैधीकरण विधेयक सदनोंमें लगभग सर्व-सम्मतिसे मंजूर कर लिया गया। फिर भी मुझे अपने देशभाइयोंको यह सलाह देनेकी जिम्मेवारी लेनी ही पड़ी है कि वे अपने प्रमाणपत्रोंको जलानेका काम जारी रखें और सरकारको दिखा दें कि जबतक ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा की गई माँगोंको पूरी तरह नहीं मान लिया जाता तबतक वे अपने कष्ट-सहनके मार्गपर दृढ़ रहेंगे। सभापतिजीने[4]

१. इसका प्रारम्भिक भाग (जो ऊपर काले टाइपमें दिया गया है) **इंडियन ओपिनियनके**, २९–८–१९०८ के अंकसे लिया गया है, और गांधीजीका भाषण १२–९–१९०८ के अंकसे लिया गया है।

२. यह संकेत अनुमानतः मीर आलम और उसके साथी पठानोंकी ओर है। स्पष्ट है कि पठानोंको गांधीजीने जो सलाह दी थी (देखिए पृष्ठ २४४-४५) उसका उनपर प्रभाव हुआ था। तथापि, गांधीजी कहते हैं कि वह १६ अगस्तवाली सभा थी जिसमें मीर आलमने स्वीकार किया कि गांधीजीको मार कर उसने गलती की थी, और इस स्वीकारोक्तिके साथ ही उसने अपना प्रमाणपत्र जलानेके लिए दे दिया। देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास**, अध्याय २७।

३. यह भाषण २४–८–१९०८ के **ट्रान्सवाल लीडरमें** प्रकाशित गांधीजीके भाषणकी रिपोर्टसे मिला लिया गया है।

४. ईसप मियाँ।

आपको बता दिया है कि हमने कोई नई माँग नहीं पेश की है। हमने कभी अपनी बात नहीं छोड़ी है। बल्कि हमपर जो एकके बाद एक मुसीबतें ढाई जा रही हैं वे हमें मजबूर कर रही हैं कि जिन बातोंको हमने सौजन्यवश पहले दरगुजर कर दिया था, धीरे-धीरे और क्रमशः उनपर पुनः आरूढ़ हो जायें। हमें २०० से अधिक आदमियोंको जेलके कष्ट झेलनेके लिए भेजना पड़ा, तब जाकर जनरल स्मट्सने यह स्वीकार किया कि उनका कानून सदोष और अव्यवहार्य है और उसे विधि-संहितामें से निकालना पड़ेगा। इसी प्रकार लगभग १०० दूसरे आदमियोंको पुनः जेल जाना पड़ा, तब जाकर हमें वह चीज प्राप्त हो सकी जो वैधीकरण विधेयकके रूपमें आ रही है। मुझे यह स्वीकार करनेमें कोई संकोच नहीं है कि यह नया विधेयक पुराने एशियाई कानूनसे कहीं अच्छा है। उसके अन्दर जो चिढ़ पैदा करनेवाली धाराएँ थीं, उनमें से बहुत-सी हटा दी गई हैं। वह जबरदस्त धार्मिक आपत्ति हट गई; हमारी शपथकी रक्षा हो गई। इसके लिए सरकारको बधाई है, प्रगति-वादी दलको बधाई है। अतः अब मैं अपने देशभाइयोंसे कह सकता हूँ कि अगर उन्हें किसी खास सिद्धान्तके लिए नहीं लड़ना है बल्कि उनकी इच्छा संसारको यह दिखानेकी रही है कि वे केवल इसलिए लड़ रहे हैं कि अपने गम्भीर कर्तव्यको निभा सकें और इसलिए नहीं कि इस देशमें अपने दर्जेको कायम रख सकें तो मैं उनको खुली सलाह दे सकता हूँ कि वे इस वैधीकरण कानूनको मान लें। परन्तु अगर उनकी इच्छा यह हो — जैसी कि मुझे सदा आशा रही है — कि हमने यह लड़ाई किसी व्यक्तिगत लाभके लिए नहीं बल्कि एक अथवा अनेक सिद्धान्तोंके लिए छेड़ी है, तो मैं अपने देशभाइयोंसे निःसंकोच कहूँगा कि वे और भी अधिक कष्ट सहन करें। परन्तु वे सब मिलकर चाहें तो ऐसा करें या न करें। अगर अधिकांश एशियाई चाहें कि सरकारने — जैसा कि वह कहती है — "उदारता-पूर्वक" जो दिया है वे उसका लाभ उठा लें तो वे अवश्य ऐसा करनेके लिए स्वतन्त्र हैं। परन्तु जबतक मैं इस देशमें हूँ, मैं सरकारके इन कानूनोंका विरोध उस समय तक करना चाहता हूँ जबतक हमें वह अन्याय-परिशोध नहीं मिल जाता जिसके हम अधिकारी हैं, जबतक जनरल स्मट्सने एशियाई कानूनकी समाप्तिसे सम्बन्धित उस वचनको, जो मैं अब भी कहता हूँ कि उन्होंने दिया था, पूरा नहीं करते और जबतक ऊँची शिक्षा पाये हुए एशियाइयोंके अधिकार मजबूत नींवपर स्थापित नहीं कर दिये जाते। हमारी ये माँगें नई नहीं हैं। उपनिवेशी या सरकार बूँद-बूँद करके हमें थोड़ा-सा देकर उपनिवेशियोंको यह विश्वास कराना चाहती है, मानो वह ऐसी रियायतें दे रही है जिनको देनेकी उसे आवश्यकता नहीं थी। परन्तु मैं इस स्थितिको बिलकुल स्वीकार नहीं करता। मेरा रुख वही है जो सभापतिका है। ये दो माँगें पूरी होंगी तभी वह प्राप्त होगा जो हमारा अधिकार था या जो हमारा अपना होना चाहिए था। एक और बातकी तरफ मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। खुद जनरल स्मट्सने अब हमसे और संसारसे कहा है कि दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंके — जूलू और बन्टू लोगोंके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाता है जैसा यूरोपीयोंके साथ किया जाता है, बशर्ते कि वे भी यूरोपीयोंकी तरह सुशिक्षित हों। परन्तु गरीब भारतीय और गरीब चीनी इस व्यवहारके पात्र नहीं हो सकते ("शर्म-शर्म" की आवाजें!)। अगर दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंके विरुद्ध रंग-भेद नहीं है तो वह ब्रिटिश भारतीय या चीनीके विरुद्ध क्यों होना चाहिए? उनके विरुद्ध यह भेद क्यों लागू किया जाना चाहिए और उन्हें इस रंग-सम्बन्धी निर्योग्यताके अन्तर्गत क्यों

कष्ट पाना चाहिए? ब्रिटिश भारतसे भारतीयोंका प्रवाह पूरी तरह बन्द करना हमने मंजूर कर लिया, इतना बहुत काफी है। परन्तु इस प्रवाहके बन्द करनेका अर्थ यह नहीं है — कभी था भी नहीं — कि शिक्षित भारतीयोंके लिए भी इस देशके दरवाजे बन्द कर दिये जायेंगे, या वे केवल गवर्नरकी इजाजत मिलनेपर ही आ सकते हैं और उसको देना या न देना पूर्णतः उनकी खुशीपर निर्भर है। हम इतने दिनोंसे इसी स्थितिके लिए नहीं लड़ रहे हैं और अगर हम इन्सान कहलाना चाहते हैं, तो इस स्थितिको हम कभी स्वीकार नहीं कर सकते। जब हम यह रवैया अपनाते हैं तो यह कोई चुनौतीका रवैया नहीं होता और दरअसल मुझे यह देखकर अत्यन्त दुःख होता है कि सर पर्सीको इसकी ओर, बहुत सूक्ष्मतासे ही सही, संकेत करना वांछनीय प्रतीत हुआ कि आगे-पीछे इस उपनिवेशमें अन्तर्जातीय संघर्ष हो सकता है। जातीय संघर्ष तो अभी हो रहा है। जातीय संघर्ष होनेका और अर्थ क्या हो सकता है, यह मैं नहीं जानता। परन्तु मैं इतना तो जानता ही हूँ कि अगर उसके अन्तर्गत शारीरिक हिंसा आ जाती है तो मैं यहाँ अपने देशभाइयोंके इस समुदायके सामने खड़ा होकर कहता हूँ कि आप इस तरहके शारीरिक प्रहारोंको भी सह लें। मेरे सामने मेरे ये देशभाई — ये तमिल सज्जन — हैं। उनकी घायल पीठें मैंने देखी हैं। बालूकी बोरियाँ उन्होंने कभी नहीं ढोईं। परन्तु फिर भी जेलके नियमोंके अन्तर्गत उन्होंने यह शारीरिक कष्ट सहा है। जनरल स्मट्सने उन कमजोर लोगोंसे, जिनकी कोई आवाज नहीं, लड़नेमें जेल अधिकारियोंको यह आज्ञा देनेकी कृपा नहीं की कि वे इन कैदियोंसे सख्त मेहनत न लें या उतनी ही सख्त मेहनत लें जिसे वे सह सकें। परन्तु नहीं, हमें कष्टोंका यह प्याला पूरा ही पीना होगा। मैं अपने देशभाइयोंसे कहता हूँ कि अगर उन्हें किसी सिद्धान्तके लिए लड़ना है तो वे इस प्यालेको पी जायें। मैं घोषणा करता हूँ कि हमारी लड़ाई — मेरी लड़ाई — सदा सिद्धान्तकी लड़ाई रही है और वह सिद्धान्तकी ही रहेगी भी। जनरल स्मट्स कहने लगे हैं कि हम साझेदारी चाहते हैं।[1] हम साझेदारी जरूर चाहते हैं। मैं उसका दावा अब भी करता हूँ, परन्तु एक छोटे भाईकी हैसियतसे। उनका ईसाई धर्म उन्हें सिखाता है कि हर मनुष्य भाई है। ब्रिटिश संविधान हमें यह सिखाता है, जब मैं निरा बच्चा ही था तब उसने मुझे सिखाया था, कि प्रत्येक ब्रिटिश प्रजाजन कानूनकी निगाहमें समान माना जायेगा और मैं ट्रान्सवालमें भी कानूनकी निगाहमें उसी समानताकी माँग करता हूँ। जबतक ट्रान्सवालपर ब्रिटिश झंडा फहराता है और जबतक मुझे ट्रान्सवालमें रहने दिया जाता है तबतक मेरा यह आन्दोलन बराबर जारी रहेगा, और तबतक जारी रहेगा जबतक ब्रिटिश भारतीयोंको कानूनकी दृष्टिमें वह समानता प्राप्त नहीं हो जाती। सवाल केवल समयका है, परन्तु वह समानता तो मिलेगी ही। सम्भव है, हमें वह न भी मिले, तब शायद हम इस देशसे बाहर निकाल दिये जायेंगे और मुझे उससे पूरा सन्तोष होगा। अगर ब्रिटिश सरकारका यह रुख है और ट्रान्सवाल सरकारका भी यही रुख है तो मैं उस स्थितिको स्वीकार करनेके लिए बिलकुल तैयार हूँ जो संसदने ग्रहण की है, अर्थात् यह कि गोरे उपनिवेशी — संसद — न्यासीका स्थान ले लें, क्योंकि हम आश्रित हैं और क्योंकि संसदमें हमारा कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। मैं इस स्थितिको मंजूर करता हूँ। परन्तु न्यासीका कर्तव्य इसके सिवा और क्या हो सकता है कि वह अपने आश्रितको उन सब कार्योंके योग्य बना दे जिन्हें वह उसके लिए करता है। क्या सरकार हमको — अपने आश्रितोंको —

१. जनरल स्मट्सके भाषणके लिए देखिए परिशिष्ट १०।

पूर्ण नागरिकताके योग्य बना रही है? क्या वह हमें इसकी कोई आशा भी दिला सकती है? अगर वह दिला सकती है तो इतनी नाराजगी क्यों है और जब जनरल स्मट्स साझेदारीकी बातकी खिल्ली उड़ाते हैं तब सदनमें इस तरह देर तक करतल-ध्वनि क्यों होती है? हाँ, हम जरूर साझेदारी चाहते हैं। ब्रिटिश झंडेके नीचे इस या अन्य किसी देशमें ब्रिटिश भारतीय गुलाम बनकर नहीं रहेंगे। वे इस देशमें और ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत अन्य किसी भी देशमें मनुष्यकी हैसियतसे ही रहनेकी माँग करेंगे। अगर हम यह माँग नहीं करते तो मेरा खयाल है कि हम ब्रिटिश नागरिक कहलानेकी पात्रता ही नहीं रखते। और इस बातको ध्यानमें रखते हुए मैं सर्वशक्तिमान प्रभुसे हार्दिक प्रार्थना करता हूँ कि मेरे देशभाई पूर्णतः ब्रिटिश नागरिकके रूपमें रहें और जबतक हम अपने आपको ब्रिटिश नागरिकोंके अधिकार नहीं दिला लेते, तबतक हमें काम करते जाना है। (करतल-ध्वनि)।[1]

जो पत्र सचमुच एक निजी पत्र था, उसको जनरल स्मट्सने "अन्तिम चुनौती" कहा है। (हँसी।) यह मूर्खतापूर्ण है। ऐसा कोई इरादा नहीं है। सरकार और उपनिवेशी हमारा विश्वास करें, वे यह विश्वास करें कि हम ईमानदारीसे बरतेंगे और भारतीय समाजकी कानूनको रद करने और उच्च-शिक्षा प्राप्त भारतीयोंके दर्जेको कायम रखनेकी बहुत ही उचित माँगोंको वे मान्य करें। वे उन्हें दूषित प्रतिबन्धको स्वीकार करनेके लिए न कहें। मेरा विश्वास है कि सोराबजीको प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत देशमें रहनेका अधिकार है, क्योंकि इस मुद्देको अभीतक चुनौती नहीं दी गई है। जो लोग देशमें रहें और जो पीछे आयें उनसे मनुष्योंका-सा व्यवहार किया जाये, कुत्तोंका-सा नहीं।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २९–८–१९०८
१२–९–१९०८
ट्रान्सवाल लीडर, २४–८–१९०८

२८५. पत्र : उपनिवेश-सचिवको[2]

जोहानिसबर्ग
अगस्त २४, १९०८

उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय,

कल जो सार्वजनिक सभा[3] हुई उसका विवरण और उसमें जो प्रस्ताव पास हुए, उनको इस पत्रके साथ संलग्न कर रहा हूँ। सभामें तीन हजारसे अधिक भारतीय उपस्थित थे। जहाँतक मैं समझ सका हूँ, जो लोग उस सभामें उपस्थित थे उनकी भावना सुनिश्चित है।

१. इसके आगेका अनुच्छेद जो **इंडियन ओपिनियन**में नहीं मिलता, **ट्रान्सवाल लीडर**से लिया गया है।
२. यह "अन्तिम प्रार्थना" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था और अनुमानतः इसे गांधीजीने लिखा था।
३. अगस्त २३, १९०८ की; देखिए पिछला शीर्षक। प्रस्तावोंके लिए देखिए परिशिष्ट ११।

मैं यह निवेदन करनेकी धृष्टता करता हूँ कि सभाकी इस अतीव नम्र प्रार्थनामें कोई नई बात नहीं है। इसके अतिरिक्त सभाकी प्रार्थना तर्कसंगत है और भविष्यमें जिस संघर्षके भयानक होनेकी सम्भावना है, उसके पहले मैं एक बार सभा द्वारा वांछित राहतकी माँग करता हूँ। मैं सरकारको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि भारतीय समाजकी तरफसे सरकारको जान-बूझकर परेशान करने या अपने आपको देशके कानूनसे परे करनेकी कोई इच्छा नहीं है।

इसलिए मेरा संघ नम्रतापूर्वक विश्वास करता है कि अभी भी उपनिवेशकी राजनीतिक बुद्धिमत्ता इस कठिनाईसे बाहर निकलनेका कोई रास्ता निकालेगी और उस संघर्षको समाप्त करेगी जो लगभग दो वर्षोंसे चल रहा है और जिसके कारण मेरे संघ द्वारा समाजको हर प्रकारकी भारी हानि उठानी पड़ी है।

[आपका आज्ञाकारी सेवक
ईसप इस्माइल मियाँ
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–८–१९०८

२८६. पत्र: 'रैंड डेली मेल' को[1]

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त २५, १९०८

सम्पादक
['रैंड डेली मेल']

महोदय,

यह समझमें नहीं आता कि ब्रिटिश भारतीयोंकी प्रत्येक माँगको गलत क्यों समझा जाता है। मेरे देशवासी स्थानीय संसदमें अभी-अभी स्वीकृत विधेयकको[2] एशियाई अधिनियमसे अच्छा मानते हैं, किन्तु वे यह स्वीकार नहीं करते कि उनकी गुलामों जैसी स्थिति दूर हो गई है। शिक्षित भारतीयोंका दर्जा अनिश्चित है, इसी एक तथ्यसे यह जाहिर हो जाता है कि उनके साथ किसी अन्य प्रकारका व्यवहार अभीष्ट नहीं है। क्या साझेदारीके मेरे दावेपर क्रोध प्रकट नहीं किया गया? क्या सदनमें उसका खण्डन करनेपर जनरल स्मट्सका लगातार हर्षध्वनिसे स्वागत नहीं किया गया? और फिर भी जो माँग मैंने प्रस्तुत की थी, उसमें कौन-सी विचित्रता थी? महोदय, आप अच्छी तरह जानते हैं कि भारतके पब्लिक स्कूलोंमें हमें कानूनकी दृष्टिमें साझेदारी और समानताका सिद्धान्त सिखाया जाता है, किन्तु ये ऐसे शब्द हैं कि उपनिवेशमें यदि इन्हें जबानपर भी लायें, तो उसपर अदालतके बाहर हँसी उड़े बिना नहीं रहेगी।

१. यह **इंडियन ओपिनियन**में "श्री गांधी और 'मेल'" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।
२. एशियाई पंजीयन संशोधन विधेयक।

केपके विक्रेता अधिनियमपर श्री सावरके विचार और प्रवासी अधिनियमकी सर्वसाधारण शैक्षणिक कसौटीकी आपने तुलना की है, जिसका असर ब्रिटिश उपनिवेशमें एशियाइयोंकी अमर्यादित बाढ़को रोकनेका काम करेगा। मैं स्मरण दिला दूँ कि श्री सावरका वास्ता विद्वेषी व्यक्तियोंसे बनी एक नाटकीय अपील-अदालतसे पड़ा था। मैं भी उन्हीं माननीय सदस्यसे सहमत हूँ और जो कुछ उन्होंने किया है, यदि अपनेमें से एकको परवाना देनेके सवालपर विचार करनेके लिए सहयोगी व्यापारी ही अपील-अदालत बने हुए हों तो उस परिस्थितिमें मैं भी माननीय सदस्यसे सहमत होऊँगा, इतना ही नहीं, उनसे भी आगे जाऊँगा। वह न केवल दम्भ[1] और कपट[2] है, बल्कि स्पष्ट रूपसे अन्याय है। फिर भी मैं ऐसे प्रवासी अधिनियममें कोई दोष नहीं देखता जो जातीय और रंग-भेदपर आधारित न होकर, शैक्षणिक योग्यतापर आधारित है और किसी वर्गके लोगोंके मनमाने रूपमें आनेका विरोध करता है। मेरे देश-वासियोंकी माँग यदि केवल शब्दोंका ही झगड़ा हो, तो निःसन्देह उपनिवेशकी विधानसभाको एक शाब्दिक झगड़ा मान्य करनेकी उदारता दिखा सकना चाहिए। तथ्य यह है कि वह कोई शाब्दिक झगड़ा नहीं है। उपनिवेश एक नये सिद्धान्तको प्रतिष्ठित करना चाहता है और एक तीव्र रंगभेदकी रेखा खींचना चाहता है। जम्बेजीके दक्षिणमें रहनेवाले समस्त सभ्य लोगोंके लिए स्वर्गीय श्री रोड्सने समानाधिकारका जो सूत्र दिया था, यह उसका उल्लंघन करना चाहता है और यह ब्रिटिश-नीतिमें मौलिक परिवर्तन भी करना चाहता है। यदि लगभग दो वर्षोंतक कष्ट सह लेनेके बाद ब्रिटिश परम्पराओंमें जबर्दस्त परिवर्तनको हम चुपचाप स्वीकार कर लें, तो हम आदमीसे कुछ कम ठहरेंगे। यद्यपि नये विधेयकके अन्तर्गत हमारी परिस्थिति पहलेसे कुछ अधिक सही बनाई जा सकती है, किन्तु फिर भी यदि हम इस नई पथभ्रष्टताका सफलतापूर्वक मुकाबला न कर सकें, तो भी हम उससे मिलनेवाले लाभोंको अस्वीकृत कर देंगे।

कदाचित् आप सोचते हैं कि प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमकी व्याख्याके रूपमें श्री सोराबजीका देशनिकाला अन्तिम शब्द है। ऐसा है या नहीं, सो भविष्य बतायेगा। तबतक मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि श्री सोराबजी निषिद्ध प्रवासीकी तरह प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत दण्डित नहीं किये गये थे, बल्कि एशियाई अधिनियमके अन्तर्गत अपंजीकृत भारतीय होनेके कारण दण्डित किये गये थे। वे उस प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमकी निर्योग्यताके अन्तर्गत आ गये जो एशियाई अधिनियमने उनपर लाद दी थी और जिसे सोराबजी किसी भी हालतमें स्वीकार[3] नहीं कर सकते थे।

[आपका, आदि,
मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

रैंड डेली मेल, २६–८–१९०८

१. और २. इन शब्दोंके अंग्रेजी पर्यायोंका उपयोग श्री सावरने केप विधान-सभामें किया था।

३. देखिए "सोराबजी शापुरजीका मुकदमा —२", पृष्ठ ३५० और "सोराबजी शापुरजीका मुकदमा—३", पृष्ठ ३७०-७१।

२८७. पत्र : छगनलाल गांधीको[1]

जोहानिसबर्ग
अगस्त २५, १९०८

[चि० छगनलाल]

तुम्हारा पत्र मिला। शिक्षित भारतीयोंके सम्बन्धमें वहाँ क्या हो रहा है, इसका मुझपर असर नहीं पड़ता। मुझे आशा है, मैं गुजराती स्तम्भोंमें[2] इसपर विचार करूँगा।

श्री कर्टिसने[3] मुझे लिखा है कि तुम्हें अपना काम ढंगसे और जल्दी निपटाना नहीं आता। उन्होंने मुझे इसका कोई ठोस उदाहरण नहीं दिया है, इसलिए मैं नहीं जानता कि उनके निष्कर्षका आधार क्या है। फिर भी तुम उनसे बात करो। उनकी बात ध्यानसे सुनो और जैसा वे सुझायें, ठीक वैसा ही करो। तुम्हें चाहिए कि तुम उनकी भरसक मदद करो ताकि वे अपने वर्तमान पदको भलीभाँति निभा सकें। वे बहुत व्यवस्था-कुशल हैं, और हो सकता है कि तुम्हें उनसे बहुत-कुछ सीखनेको मिले।

कुछ भारतीयोंने कल हरिलालको देखा था। उन्होंने मुझे बताया कि वह बिलकुल स्वस्थ दिखाई पड़ा और उसके कदम मजबूतीसे पड़ रहे थे। उन्हें देखकर वह अनेक बार मुस्कराया, जिससे मालूम पड़ता है कि उसका उत्साह कम नहीं हुआ है।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४८६४) से।

२८८. भीखाभाई दयालजी मलियाका मुकदमा[4]

[जोहानिसबर्ग
अगस्त २६, १९०८]

गत बुधवारको जोहानिसबर्गकी "बी" अदालतमें श्री एच० एच० जॉर्डनके इजलासमें श्री भीखाभाई डी० मलियाके ऊपर एक मामला दायर हुआ। अभियोग यह था कि सन् १९०७ के संशोधित एशियाई कानून २ के खण्ड ८, उप-खण्ड ३ के मातहत वे पंजीयनका प्रमाणपत्र दिखानेके लिए कहनेपर नहीं दिखा सके। श्री गांधी उनकी तरफसे पैरवी कर रहे थे। अधीक्षक श्री वरनॉनने गिरफ्तारीके बारेमें सबूत पेश करते हुए कहा कि मैंने यह

१. कागज फटा होनेसे इस पत्रके पानेवालेका नाम गायब है। चूँकि पत्रमें फीनिक्सकी बातें हैं, इसलिए अनुमान है कि यह छगनलाल गांधीको लिखा गया होगा।

२. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ४७६।

३. एक जर्मन थियोसॉफिस्ट, जो फीनिक्सकी पाठशालाके व्यवस्थापक थे। वे भारत आये थे और सेवाग्राममें गांधीजीके साथ रहे थे। वहीं १९६० में उनकी मृत्यु हुई।

४. यह *इंडियन ओपिनियन*में "एक बेतुका मुकदमा" शीर्षकसे छपा था।

गिरफ्तारी हिदायतोंके अनुसार की है। मैं जानता हूँ कि आज जोहानिसबर्गमें ऐसे बहुत-से भारतीय हैं, जिनके पास अनुमतिपत्र और पंजीयनपत्रके पुराने प्रमाणपत्र हैं। परन्तु उनके खिलाफ कार्रवाई करनेके बारेमें मुझे हिदायत नहीं मिली। अभियुक्तने अपनी तरफसे सबूत देते हुए कहा कि मैं ट्रान्सवालका पुराना निवासी हूँ और मेरे पास शान्ति-रक्षा अध्यादेशके मातहत जारी किया गया अनुमतिपत्र है; इसी प्रकार सन् १८८५ के कानून ३ के मातहत पंजीयनका प्रमाणपत्र भी है। ये दोनों दस्तावेज अदालतमें पेश किये गये।

अदालतको सम्बोधित करते हुए श्री गांधीने इस कार्यवाहीकी विचित्रताकी तरफ उसका ध्यान दिलाया। उन्होंने कहा कि अभियुक्त एक ऐसे आदमी हैं जिनको एशियाई कानूनके मातहत गिरफ्तार किया गया है और सजा भी दे दी गई है, यद्यपि अभी स्वीकृत हुए नये कानूनके[1] अनुसार उन्हें किसी प्रकार भी नहीं छेड़ा जाना चाहिए था। या तो सरकारको अपने नये कानूनका पालन करना चाहिए या कह देना चाहिए कि वह ऐसा नहीं करेगी। इस समय उपनिवेशके अन्दर पारस्परिक सम्बन्ध जैसी नाजुक हालतमें हैं उनको देखते हुए श्री गांधीने खास तौरपर सलाह दी कि अगले सोमवार तक इस मामलेको पेश नहीं किया जाये। और अभियोक्ता इस बातके लिए तैयार भी थे। परन्तु प्रिटोरियासे हिदायत आई कि वे मामलेको आगे बढ़ायें। इससे स्पष्ट रूपसे ज्ञात होता है कि प्रिटोरियामें शासन चलानेके क्या तरीके हैं।[2]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–८–१९०८

२८९. जोहानिसबर्गकी चिट्ठी

बुधवार [अगस्त २६, १९०८]

नये विधेयकसे क्या मिला?

इस बार भी मुझे अन्तिम बात पहले लेनी पड़ी। नया विधेयक २४ घंटोंमें दोनों सदनोंसे पास होकर निकल आया है। इससे प्रकट होता है कि अभीतक वे हमारी भावनाकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं देते।

उस विधेयकमें एक साथ [हमारे मनकी] बहुत-सी बातें आ जाती हैं। मुझे विस्तारसे स्पष्ट करनेका समय नहीं है। किन्तु उससे तुर्की मुसलमानोंसे सम्बन्धित आपत्ति दूर हो जाती है। स्वेच्छया पंजीयन खूनी कानूनके अन्तर्गत नहीं आता; इसके बाद जो पंजीयन होगा वह भी इसके अन्तर्गत नहीं आता। इससे समाजके आग्रहकी रक्षा हो जाती है। किन्तु उसमें दो बातोंका समावेश नहीं होता। खूनी कानून लगभग रद होकर भी औपचारिक रूपसे बना रहता है। उसका विरोध करना भारतीय समाजका अधिकार है। श्री स्मट्सने वचन

१. एशियाई पंजीयन संशोधन कानून, १९०८।

२. शेष कार्यवाहीकी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है। देखिए अगला शीर्षक।

दिया है; किन्तु उससे भी अधिक महत्त्वकी बात तो यह है कि उसमें शिक्षितोंका बचाव नहीं होता और लगता है कि इस प्रश्नको लेकर बहुत लड़ना पड़ेगा। यह संघर्ष छेड़ना भारतीय समाजका कर्तव्य है।

शिक्षित कौन हैं?

हम देखते हैं कि इस विषयपर बहुत चर्चा की जा रही है। भारतीय समाजकी माँग यह है कि सब शिक्षितोंको कानूनकी नजरमें समानाधिकार मिलना चाहिए। यद्यपि ऐसा है, फिर भी उसका अमल इस तरह होता है कि भारतीयोंकी परीक्षा सख्त और गोरोंकी सरल होती है। नेटाल और केपमें भी ऐसा ही होता है। भारतीयोंकी परीक्षा सख्त होती है। ट्रान्सवालमें उससे भी सख्त परीक्षा होती है। हम यह कह देना चाहते हैं कि इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। इसका नतीजा यह होता है कि बैरिस्टर आदि ही आ सकेंगे। हम इससे अधिक कुछ कर सकते हैं, ऐसा सम्भव नहीं दिखाई पड़ता। कहनेका अर्थ यह है कि शिक्षितोंके लिए द्वार एकदम बन्द नहीं होना चाहिए। यदि कम पढ़े-लिखे लोग धन्धेके सम्बन्धमें आना चाहें तो निश्चित अवधिके लिए अनुमतिपत्र लेकर आनेकी अनुमति देनेवाली धारा तो है ही। इसलिए सच कहा जाये तो उनके बारेमें कोई कठिनाई नहीं उठती।

एक आपत्ति

इस विधेयकमें एक अड़चन दिखाई पड़ती है। जो इसके बाद ट्रान्सवालमें आयेंगे और जिनके पास अनुमतिपत्र न होगा, उन्हें यह सिद्ध करना होगा कि वे युद्धके पहले ३ साल रह चुके हैं। यह धारा उनपर भी लागू होती है जो इस समय ट्रान्सवालमें हैं। मुझे ऐसा लगता है कि इसका कोई रास्ता निकल सकता है। यदि समझौता हुआ, तो जान पड़ता है कि बात बन सकेगी।

नेटाल निवासी

श्री दाउद मुहम्मद, श्री पारसी रुस्तमजी, श्री एम० सी० आँगलिया तथा श्री राँदेरी क्रूगर्सडॉर्प, पॉचेफस्ट्रूम तथा क्लार्क्सडॉर्पसे वापस आ गये हैं। उक्त सज्जनोंका सभी स्थानोंपर स्वागत हुआ और सभी स्थानोंपर लोगोंने उत्साहके साथ अपने पंजीयन प्रमाणपत्र [जलानेके लिए] उनके सुपुर्द किये। पहले श्री ईसप मियाँने इन सभी सज्जनोंका आतिथ्य किया। अब श्री फैन्सी[1] कर रहे हैं। वे श्री कामाके घरमें रहते हैं। भारतीय समाज इन सभी सज्जनोंका आभारी है।

फोक्सरस्ट तथा चार्ल्सटाउनमें श्री ईसप सुलेमान तथा श्री मुल्ला समाजका बोझ उठा रहे हैं। उनके यहाँ बहुत-से भारतीय रहते हैं। तिसपर भी वे हिम्मत नहीं हारते और मदद कर रहे हैं। इन सब बातोंसे प्रकट होता है कि भारतकी स्थिति अच्छी है।

श्री शेलत प्रिटोरियासे प्रमाणपत्र लाये हैं। वहाँ श्री जोशी, श्री मेढ़ तथा श्री कीलावाला [प्रमाणपत्र इकट्ठा करनेके लिए] दौरा कर रहे हैं।

१. हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अवैतनिक मन्त्री।

श्री भीखूभाई[1] मलिया

आज श्री भीखूभाई दयालजी मलियाका मुकदमा चला।[2] उनके पास अनुमतिपत्र था, फिर भी नये कानूनके अन्तर्गत नहीं था, इसलिए उन्हें सात दिनका नोटिस मिला। इस मुकदमेसे जाहिर होता है कि खूनी कानूनके रद होनेकी जरूरत अवश्य है।

अन्य समाचार

श्री इब्राहीम तथा श्री हसन मियाँ, दोनों मांस-विक्रेता परवानोंके बिना व्यापार करनेके अपराधमें मंगलवारको ८ दिनके लिए जेल गये।

श्री अहमद मोतारा, जो सत्याग्रहमें तीन बार जेल जा चुके हैं, आज (बुधवारको) छूट गये हैं। उनकी बहादुरीका सबको अनुकरण करना चाहिए।

पीटर्सबर्गमें श्री तैयब मूसा मेमन जेल गये हैं।

प्रिटोरियामें बहुतसे भारतीय जेल गये हैं। आशा है, उनके नाम बादमें दे सकेंगे। इन सबको धन्यवाद देना चाहिए। तार मिला है कि उनमें से एकको पुलिसने कचहरीमें मारा। इसके बारेमें जाँच हो रही है। यदि मार भी खानी पड़े, तो देशके लिए उसे स्वीकार करना चाहिए।

श्री नादिर शाह कामाने पिछली सभामें भाषण दिया था, इसलिए उनकी नौकरी जानेका भय है। उन्होंने इस बातकी परवाह नहीं की है। वे समाजके लिए लड़नेको तैयार हो गये हैं।

श्री सोराबजी शापुरजी अडाजानिया ट्रान्सवालमें फिर दाखिल होनेकी तैयारी कर रहे हैं। संघ द्वारा रोके जानेपर ही वे अभीतक दाखिल नहीं हुए।

[जेलमें] खूराकके बारेमें असन्तोषजनक उत्तर आया है। उसके सम्बन्धमें और भी उपाय किये जा रहे हैं।

बहुत-से लोग आनेके लिए तत्पर हैं। इसलिए मुझे कहना चाहिए कि जिनके अनुमतिपत्र ठीक हों, फिलहाल तो केवल उन्हें ही आना चाहिए। दूसरे लोगोंको नहीं आना चाहिए। इस काममें उतावली नहीं की जा सकती।

चीनी संघने डर्बनके सज्जनोंको कल शाम (मंगलवार) को आमन्त्रित किया। उनका अपना एक बहुत अच्छा क्लब है। भारतीय समाजके कोई क्लब नहीं है। चीनी केवल हजार होंगे, हम हजारों हैं, फिर भी हमारे पास वैसा कोई क्लब नहीं है। यह शरमानेकी बात है।

विलायतमें [वहाँ अधिकारियों और जनताको हम ट्रान्सवालवासियोंकी तकलीफोंसे वाकिफ रखनेके लिए] श्री रिच बड़ी मेहनत कर रहे हैं। श्री सोराबजीको देश-निकाला दिया गया है, उसके प्रति विरोध जाहिर करनेके लिए लन्दनमें भारतीयोंकी एक बड़ी सभा बुलाई गई है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–८–१९०८

१. पिछले शीर्षकमें "भीखा भाई" और यहाँ "भीखू भाई" है। निश्चय ही ये दोनों एक ही व्यक्ति हैं।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

२९०. पत्र : महान्यायवादीको[1]

[जोहानिसबर्ग
अगस्त २८, १९०८]

माननीय महान्यायवादी
प्रिटोरिया

महोदय,

मेरे संघको सूचना मिली है कि गोपाल छिबा नामक एक भारतीयपर बिना परवानाके व्यापार करनेका जो मुकदमा चलाया गया था, उसकी सुनवाईके समय २५ तारीखको जब उसके विरुद्ध सजा सुनाई गई तब उसके तुरन्त बाद ही ५० नम्बरका सिपाही उसे बलपूर्वक कठघरसे घसीट ले गया। मेरे संघको पता चला है कि इस घटनाको कई ब्रिटिश भारतीयोंने देखा था।

मेरा संघ कृतज्ञ होगा, यदि आप कृपापूर्वक इस मामलेकी जाँच करेंगे और ऐसे कदम उठायेंगे जो ब्रिटिश भारतीय कैदियोंको बल-प्रयोगसे बचानेके लिए आवश्यक हों।

आपका आज्ञाकारी सेवक
ईसप इस्माइल मियाँ
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १२–९–१९०८

२९१. पत्र : जेल-निदेशकको[2]

[जोहानिसबर्ग
अगस्त २८, १९०८]

जेल-निदेशक
प्रिटोरिया

महोदय,

ट्रान्सवालकी जेलोंमें ब्रिटिश भारतीय कैदियोंके लिए निर्धारित खूराककी तालिकाके बारेमें आपका २४ तारीखका पत्र मिला।

मेरा संघ निवेदन करना चाहता है कि खूराक-तालिकामें परिवर्तनकी माँग इसलिए नहीं की गई है कि जो भोजन दिया जा रहा है वह चिकित्सा-शास्त्रके अनुसार अनुचित है, बल्कि इसलिए कि यह ब्रिटिश भारतीय कैदियोंकी आदतोंके अनुरूप नहीं है। इसलिए मेरा संघ यह निवेदन करनेका साहस करता है कि यह चिकित्सककी सम्मतिका नहीं, बल्कि भोजनके बारेमें ब्रिटिश भारतीयोंकी आदतोंका पता लगानेका प्रश्न है।

१. और २. सम्भवतः इनका मसविदा गांधीजी द्वारा तैयार किया गया था।

मेरा संघ स्वीकार करता है कि मकईका दलिया नेटालकी जेलोंमें भारतीय कैदियोंकी भोजन-तालिकाका अंग है। परन्तु इससे निकाले गये इस निष्कर्षसे कि मकईका दलिया भारतीय कैदियोंके लिए अनुकूल है, मेरा संघ सहमत नहीं है। सौभाग्यसे, सारे दक्षिण आफ्रिकामें बहुत कम भारतीय कैद हुए हैं और इसलिए भोजन-तालिकाके प्रश्नपर अबतक भारतीय सार्वजनिक संस्थाओंने ध्यान नहीं दिया है, परन्तु अब ट्रान्सवालमें जो असाधारण स्थिति उत्पन्न हो गई है, उसको देखते हुए यह प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण हो गया है। और यदि अधिकारियोंका इरादा भारतीयोंकी आदतों और भावोंकी सर्वथा उपेक्षा करनेका नहीं है तो मेरा संघ निवेदन करता है कि मेरे द्वारा सुझाये गये तरीकेसे जाँच करना नितान्त आवश्यक है।

मैं आपसे यह भी निवेदन कर देना चाहता हूँ कि आप यह बताना भूल गये हैं कि नेटालकी तालिकामें जहाँ मकईके दलियाको ब्रिटिश भारतीयोंकी खूराकके अंगके रूपमें रखा गया है, वहीं उसमें रोटीकी भी व्यवस्था है। इस प्रकार भारतीयोंको कमसे-कम ४ औंस रोटीका सहारा मिल जाता है। मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि नेटालकी तालिकाके अनुसार जिन कैदियोंको ४२ दिनसे ऊपरकी सजा भोगनी होती है उनकी भोजन-मात्रामें मकईके दलियाके अतिरिक्त गुड़ भी शामिल कर दिया जाता है और दूसरोंके लिए ट्रान्सवालकी तालिकाकी अपेक्षा कहीं अधिक उदारता बरती जाती है। इसलिए मेरा संघ सविनय आशा करता है कि इस मामलेपर पुनः विचार किया जायेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक
ईसप इस्माइल मियाँ
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १२–९–१९०८

२९२. ट्रान्सवाल भारतीय संघर्षपर टिप्पणियाँ

[अगस्त २९, १९०८][1]

'ट्रान्सवाल लीडर'

"गलतियाँ" शीर्षक एक लेखमें 'लीडर' कहता है कि उपनिवेश-सचिव बहुत ज्यादा कामकाज होनेके कारण शायद यह नहीं जानते होंगे कि एशियाइयोंके ऊपर कानूनका अमल किस तरह किया जा रहा है। एक भारतीय दूरके इलाकेमें होनेके कारण अपना स्वेच्छया पंजीयन नहीं करा सका था। वह पिछले बुधवारको गिरफ्तार कर लिया गया। उसने सारी लड़ाईमें किसी प्रकारका कोई भी हिस्सा नहीं लिया था। नये विधेयकमें ऐसे भारतीयोंके रक्षणकी पूरी व्यवस्था की गई है, फिर भी उसे पकड़ लिया गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि खूनी कानून अभी जी रहा है। यह बात आसानीसे समझी जा सकती है कि अपढ़

१. दाउद मोहम्मद तथा नेटालके कुछ अन्य व्यापारी २७ अगस्तको गिरफ्तार किये गये थे। इस गिरफ्तारीपर **ट्रान्सवाल लीडर**में २८ अगस्तको टीका की गयी। आगेके अंशोंको देखनेसे पता चलता है कि संघर्षके ऊपर समाचारपत्रोंकी टिप्पणियोंका गांधीजी द्वारा लिखा गया यह सारांश **ट्रान्सवाल लीडर**की टीका प्रकाशित होनेके लगभग तुरन्त बाद ही तैयार किया गया था।

और नासमझ तथा अन्य लोगोंको यह समझानेमें कि पुराना कानून मृतप्राय: हो गया है और उसे विधिपूर्वक रद करनेकी कोई जरूरत नहीं है, ऐसी घटनाओंसे कितनी मुश्किल पैदा होती है। यह एक बड़ी गम्भीर गलती है। कल कुछ अग्रणी मुसलमानोंको जिस स्थानसे पकड़ा गया है वह जगह [इस्लामिया अंजुमन] उनके लिए धार्मिक महत्व रखती है। सरकार उन्हें पकड़ेगी, इसके बारेमें उनके मनमें कोई चोरी नहीं थी। तुर्किस्तानमें घट रही घटनाओंसे अधिकांश मुसलमानोंमें आजकल काफी उत्तेजना फैली हुई है। अंग्रेजी राज्यमें मुसलमानोंकी खासी बड़ी आबादी है। तिलक और उनके जैसे दूसरे लोग ऐसी घटनाओंका उपयोग करके अपनी जगहके अंग्रेज शासकोंके काममें कठिनाइयाँ पैदा कर सकते हैं और हिन्दू-मुसलमानोंको 'एक्स्ट्रीमिस्ट पार्टी' (गरम दल) में खींच ले सकते हैं।

'प्रिटोरिया न्यूज'

'प्रिटोरिया न्यूज' अपने २५ तारीखके सम्पादकीयमें कहता है कि हमने जिस तरह जनरल स्मट्ससे समझौतेकी शर्तोंका पालन करनेके लिए कहा था उसी तरह अब हम एशियाइयोंसे कहते हैं कि जिन एशियाइयोंने अभीतक पंजीयन नहीं कराया है वे अपना पंजीयन करा लें। सरकारने जो वचन दिया था उसका उसने पूरा-पूरा पालन किया है और अब एशियाइयोंको भी उसका पूरा-पूरा पालन करना चाहिए। आव्रजनके सवालपर बादमें विचार करना अनुचित नहीं कहा जायेगा।

इसी लेखके नीचे "आव्रजन" शीर्षक एक दूसरे लेखमें वह लिखता है कि आव्रजनके सम्बन्धमें एशियाइयोंके साथ बहुत दुर्व्यवहार किया जा रहा है और उसके लिए हम उनके प्रति सहानुभूति प्रगट करते हैं। हमारे मौजूदा कानूनके अनुसार निम्न श्रेणीके रूसी, पोलैंडके निवासी, ग्रीक या दक्षिण-पूर्वी यूरोपकी कोई भी भाषा थोड़ी-सी भी जाननेवाले लोग इस देशमें चाहे जब आ सकते हैं और वे पूरे नागरिक-अधिकार भोगते हैं। इस मामलेमें यीडिश भाषा, यद्यपि वह यूरोपीय भाषा नहीं है, यूरोपकी भाषाओंके साथ गिनी गई है। सच पूछिए तो हमें सब प्रवेशार्थियोंके लिए समान रूपसे लागू हो, ऐसी कठिन परीक्षा रखनी चाहिए। प्रवासी-विभागके अधिकारियोंके हाथमें पर्याप्त सत्ता होना चाहिए और उन्हें ऊँचे विचार और उच्च कोटिकी विवेक-बुद्धि रखनेवाले होना चाहिए। उन्हें काफी अच्छा वेतन मिलना चाहिए जिससे कि वे रिश्वतके लालचमें न पड़ें। और उन्हें सावधानीके साथ इस बातकी पूरी जानकारी करा दी जानी चाहिए कि उपनिवेशमें किन लोगोंको प्रवेश नहीं करने देना है। संक्षेपमें, हम एशियाइयोंके लिए जो दरवाजा बन्द है, उसके न्यायपूर्वक बन्द रखे जानेकी सिफारिश करते हैं। यह देश और ज्यादा एशियाइयोंको बिलकुल नहीं आने दे सकता, इस बातसे हम पूरी तरह सहमत हैं। लेकिन हम तो इससे भी आगे बढ़कर यह कहते हैं कि इस देशमें ऐसे कुछ गोरे दाखिल हो रहे हैं जो सम्भवत: एशियाइयोंसे भी ज्यादा भयंकर सिद्ध होंगे। एशियाइयोंके रहन-सहनका स्तर बहुत नीचा है, इसलिए वे व्यापारमें स्पर्धा करते हैं। किन्तु वे देशमें होनेवाले अपराधोंकी संख्यामें कोई वृद्धि नहीं करते। लेकिन ऊपर उल्लिखित गोरे परदेशी इस देशमें आकर रोटीके लिए जहाँ-तहाँ भटकते हैं। हालमें ऐसे लोगोंकी संख्यामें असाधारण वृद्धि हुई है। उनके आनेसे सोने और हीरोंका तस्कर व्यापार बढ़ा है, शराबकी दूकानोंको उत्तेजन मिला है, दलालों और सूदखोरोंका धन्धा ज्यादा चल निकला है और इसी तरहके दूसरे कई अपराध बढ़े हैं। एशियाइयोंके लिए हमने अपने दरवाजे

भली-भाँति बन्द कर दिये हैं, किन्तु ऊपर वर्णित कूड़ा-करकटको रोकनेके लिए भी हमें अपने दरवाजे तुरन्त ही बन्द करने चाहिए। ऐसा करनेसे यह धारणा दूर करना सम्भव होगा कि हम चमड़ीके रंगके कारण काले या पीले लोगोंको इस देशमें प्रवेश नहीं करने देना चाहते। जो इस देशको सचमुचमें "गोरोंका देश" बनाना चाहते हैं वे स्वीकार करेंगे कि ऊपर वर्णित कूड़ा-करकटकी तुलनामें हमारे वतनी और कानूनका पालन करनेवाले एशियाई ज्यादा पसन्द करने लायक हैं। हमें किसान, जमीनसे कुछ पैदा करनेवाले, परिश्रम करनेवाले, कारखाने चलानेवाले और इस तरह देशकी समृद्धि बढ़ानेवाले आदमी चाहिए। व्यापारी और सट्टेबाज तो इस देशमें काफी हो गये हैं।

श्री गांधीका उत्तर

उपर्युक्त लेखके जवाबमें श्री गांधीने 'प्रिटोरिया न्यूज' के सम्पादकको एक लम्बा पत्र[1] लिखा है। उसमें उन्होंने प्रमाणपूर्वक बताया है कि सरकार अपने वचनका पालन कर चुकी है, ऐसा अभी नहीं कहा जा सकता। यह सही है कि नये विधेयकमें थोड़ी राहत मिली है और खूनी कानून निष्प्रभाव कर दिया गया है; लेकिन मेरे भाई इतनेसे सन्तोष कर लेते, ऐसी परिस्थिति सरकारने नहीं रहने दी। खूनी कानूनके अनुसार मुकदमे अभी चलते ही रहते हैं। यह कानून बिलकुल रद करनेका वचन दिया गया था; उसका पालन होना चाहिए। आव्रजनके प्रश्नकी चर्चा करते हुए श्री गांधीने कहा है कि शिक्षित एशियाइयोंको दूसरोंके जैसे समान हक मिलने चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–९–१९०८

२९३. भाषण: हमीदिया मस्जिदकी सभामें

[जोहानिसबर्ग
अगस्त ३०, १९०८]

श्री गांधीने कल तीसरे पहर फोर्ड्सबर्गकी मस्जिदमें भारतीयोंकी एक सभामें भाषण किया। उस समय उन्होंने नेटालके नेताओंके निर्वासनका विशेष रूपसे उल्लेख किया। श्रोता-मण्डलीने आन्दोलनकी योजनाको हृदयसे स्वीकार किया और इस घोषणाका कि ये निर्वासित नेता सम्भवतः उसी रातको अपनी वापसी यात्रामें सीमा पार करेंगे, बड़े जोशके साथ स्वागत किया गया। श्री गांधीने यह भी घोषित किया कि नेटालके पाँच और भारतीय सबेरे ९ बजे गिरफ्तार होंगे और निर्वासित किये जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सवाल लीडर, ३१–८–१९०८

१. मूल अंग्रेजी पत्र उपलब्ध नहीं है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम

ट्रान्सवालके गत मासकी २७ तारीखके सरकारी गज़टमें १९०७ के प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम १५ सम्बन्धमें प्रकाशित एक सूचनाके द्वारा यह घोषणा की गई है, "कि महामहिम सम्राट्की सरकार उसको अस्वीकृत करना नहीं चाहती।" एक दूसरी सूचनामें घोषणा की गई है कि अधिनियम इसी मासकी पहली तारीखको लागू होगा। इसलिए वह लागू हो चुका है। इस अधिनियमके अन्तर्गत श्री मॉंटफोर्ड चैमने प्रधान प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारी नियुक्त किये गये हैं। हम निम्न खण्डोंको, जो एशियाइयोंपर लागू होते हैं, उद्धृत करते हैं:

अधिनियमसे उद्धरण

१. इसके द्वारा शान्ति-रक्षा अध्यादेश १९०३ रद हो जायेगा और रद किया जाता है। व्यवस्था की जाती है कि उसको रद करनेसे एशियाई कानून संशोधन अधिनियम १९०७ का कोई अधिकार या अधिकार-क्षेत्र, जो उस अधिनियमको कार्यान्वित करनेके उद्देश्यसे दिया गया हो, प्रभावित या कम न होगा, बल्कि उक्त अध्यादेश उस अधिनयमके सब उद्देश्योंकी पूर्तिके निमित्त पूरी शक्ति और प्रभावसे लागू समझा जायेगा।

२. इस अधिनियममें और उसके अन्तर्गत बनाये गये किसी विनियममें, जबतक वह सन्दर्भसे असंगत न हो; "निषिद्ध प्रवासी" से वह व्यक्ति समझा जायेगा और उसके अन्तर्गत वह व्यक्ति आयेगा जो इस अधिनियमके लागू होनेकी तारीखके बाद इस उपनिवेशमें प्रवेशका इच्छुक हो और निम्न वर्गोंमें से किसी भी वर्गका हो:

(१) कोई व्यक्ति, जो इस उपनिवेशमें या बाहर उचित रूपसे सत्ता प्राप्त अधिकारीकी माँगपर अपर्याप्त शिक्षाके कारण [बोलनेपर या अन्यथा] किसी यूरोपीय भाषाके अक्षरोंमें इस उपनिवेशमें प्रवेशकी अनुमतिके लिए प्रार्थनापत्र या ऐसा कागज, जिसे लिखनेके लिए वह अधिकारी कहे, न लिख सकेगा और उसपर हस्ताक्षर न कर सकेगा; व्यवस्था की जाती है कि इस उप-खण्डके प्रयोजनके लिए यीडिश यूरोपीय भाषा स्वीकार की जायेगी;

(४) कोई व्यक्ति, जिसपर इस उपनिवेशमें प्रवेश या प्रवेशका प्रयत्न करनेके दिन उस तारीखको प्रचलित किसी कानूनकी ऐसी धाराएँ लागू होती हों या यदि वह इस उपनिवेशमें प्रवेश करे तो लागू हों, जिनके अन्तर्गत, यदि वह उपनिवेशमें मिले तो उस तारीखको या उसके बाद उसे इस उपनिवेशसे निकाला जा सकता हो या उसको उस कानूनके विरुद्ध अपराधके दण्डस्वरूप या उसकी धाराओंका पालन न करनेपर या अन्यथा उसकी धाराओंके अनुसार उपनिवेशसे चले जानेकी आज्ञा दी जा सकती हो, शर्त यह है कि उस व्यक्तिको वह दण्ड इस उपनिवेशसे बाहर किये गये अपराधपर न दिया गया हो या वह ऐसा अपराध न हो जिसके लिए उसको माफी दी जा चुकी हो;

(८) कोई व्यक्ति, जिसके सम्बन्धमें मन्त्री उचित आधारपर विश्वास करता हो कि वह उपनिवेशमें प्रविष्ट हुआ तो उपनिवेशकी शान्ति, व्यवस्था और उसके सुशासनके लिए खतरनाक होगा; किन्तु इस व्यवस्थामें निम्न व्यक्ति समाविष्ट न होंगे:

(ङ) किसी ऐसे व्यक्तिका, जो "निषिद्ध प्रवासी" नहीं है, स्त्री या उसका अवयस्क बच्चा;

(छ) कोई एशियाई, जो १९०७ के एशियाई कानून संशोधन विधेयकके अन्तर्गत पंजीयन प्रमाणपत्र लेनेका अधिकारी है या जिसने पंजीयन प्रमाणपत्र ले लिया है, और जो "निषिद्ध प्रवासी" की परिभाषाके उपखण्ड (३) (४) (५) (६) (७) या (८) की मर्यादाके भीतर नहीं आता;

४. गवर्नर समय-समयपर किसी भी दक्षिण आफ्रिकी उपनिवेश या प्रदेशसे उन कामों या बातोंको करनेके सम्बन्धमें समझौता कर सकता है जो इस अधिनियमके उद्देश्यों और अभिप्रायोंकी पूर्तिके लिए आवश्यक या उपयुक्त हैं।

५. प्रत्येक निषिद्ध प्रवासी, जो इस उपनिवेशमें प्रवेश करता है या मिलता है, अपराधका दोषी होगा और अपराध सिद्ध होनेपर निम्न दण्डोंका पात्र होगा:

(१) जुर्मानेका, जो एक सौ पौंडसे अधिक न होगा या जुर्माना न देनेपर कैदका, जो छः महीनेसे ज्यादाकी न होगी या उक्त जुर्माने और कैद दोनोंका; और

(२) किसी भी समय मन्त्रीके हस्ताक्षरोंसे युक्त वारंट द्वारा उपनिवेशसे निकाले जानेका और निकाले जानेके समय तक कानूनमें बताये गये अनुसार हिरासतमें रखे जानेका; व्यवस्था की जाती है कि

(क) ऐसा निषिद्ध प्रवासी उस हिरासतसे रिहा किया जा सकता है, बशर्ते कि उसे उपनिवेशमें दो मंजूरशुदा जामिन (सौ-सौ पौंडकी जमानत देनेवाले) मिल जायें और वे यह आश्वासन दें कि वह उपनिवेशसे एक महीनेमें चला जायेगा;

(ख) यदि ऐसे निषिद्ध प्रवासीको कैदकी सजा दी जाये तो उसकी वह कैदकी सजा उसके उपनिवेशसे निकाले जाते ही खत्म हो जायेगी।

६. कोई भी व्यक्ति, जो

(क) इस कानूनके लागू होनेकी तारीखके बाद १९०३ के अनैतिकता अध्यादेशके खण्ड तीन, तेरह या इक्कीसका या उन खण्डोंके किसी संशोधनका उल्लंघन करनेका अपराधी ठहरता है; या

(ख) यदि उपनिवेशमें रहता है तो मन्त्री द्वारा उचित आधारोंपर इस उपनिवेशकी शान्ति व्यवस्था और उसके सुशासनके लिए खतरनाक समझा जाता है; या

(ग) किसी कानूनके अन्तर्गत इस उपनिवेशसे चले जानेकी आज्ञा दिये जानेपर उस आज्ञाकी शर्तोंका पालन करनेमें असमर्थ रहता है;

वह व्यक्ति मन्त्रीके हस्ताक्षरोंसे युक्त वारंटपर गिरफ्तार किया जा सकता है और इस उपनिवेशसे निकाला जा सकता है एवं निकाले जानेके समय तक कानून द्वारा बताये गये अनुसार हिरासतमें रखा जा सकता है; व्यवस्था की जाती है कि ऐसा व्यक्ति, जिसका उल्लेख इसके अनुच्छेद (ख) में किया गया है, इस उपनिवेशसे गवर्नरके अतिरिक्त अन्य किसीके आदेशसे न निकाला जायेगा; यह भी व्यवस्था की जाती है कि ऐसे गिरफ्तार किये गये प्रत्येक व्यक्तिको, यदि गवर्नर उसकी गिरफ्तारीके बाद दस दिनके भीतर उपनिवेशसे निकालनेकी आज्ञा न दे तो, हिरासतसे छोड़ दिया जायेगा।

७. कोई व्यक्ति जो

(१) जानबूझ कर निषिद्ध प्रवासीको इस उपनिवेशमें प्रवेश करनेमें या रहनेमें सहायता देता है या उसे उसके लिए उकसाता है; या

(२) जानबूझ कर खण्ड छः के अन्तर्गत निकाले जानेकी आज्ञा दिये गये व्यक्तिको उपनिवेशमें रहनेमें सहायता देता है या उसे उसके लिए उकसाता है; या

(३) इस उपनिवेशसे बाहरके किसी व्यक्तिके साथ इस अधिनियमकी धाराओंको टालनेकी मंशासे नौकरी देनेवालेके रूपमें करार करता है, या ऐसा काम करता है, जिसका आशय करार करना होता हो, या करार करते समय या ऐसा काम करते समय, जिसका आशय करार करना होता हो अपनी जिम्मेदारी पूरी करनेमें असमर्थ हो, या उसके ऐसा कर सकनेकी उचित आशा न हो; या

(४) "निषिद्ध प्रवासी" की परिभाषासे मुक्त लोगोंके वर्गोंके अनुच्छेद (१) के अन्तर्गत दिये गये किसी प्रमाणपत्रका उपयोग करता हो या उसका उपयोग करनेका प्रयत्न करता हो; बशर्ते कि वह उस प्रमाणपत्रका वैध स्वामी न हो; या

(५) कोई कागज, जिसका हेतु ऐसे प्रमाणपत्रका काम देना है, जाली तैयार करता है या उसको जाली जानते हुए भी प्रयोगमें लाता है,

अपराधका दोषी होगा और अपराध सिद्ध होनेपर जुर्मानेका, जो सौ पौंडसे अधिक न होगा, या जुर्माना न देनेपर कैदका, जो छः महीनेसे ज्यादा न होगी, या इस जुर्माने या कैद दोनोंका पात्र होगा।

८. कोई भी निषिद्ध प्रवासी इस उपनिवेशमें कोई व्यापार या धन्धा करनेका परवाना पाने या पट्टेपर या पट्टेसे मुक्त भूमि सम्बन्धी स्वार्थ या अन्य कोई स्वार्थ प्राप्त करनेका अधिकारी न होगा; और ऐसा कोई भी परवाना (यदि प्राप्त कर लिया गया हो) या कोई करार या अन्य कागज, जिसके द्वारा ऐसा स्वार्थ इस खण्डका उल्लंघन करके प्राप्त किया गया है, ऐसे प्रवासीके इस अधिनियमके खण्ड पाँचके अन्तर्गत दण्डित होनेपर रद हो जायेगा।

९. इस उपनिवेशमें पाया जानेवाला ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, जिसपर उचित रूपसे निषिद्ध प्रवासी होनेका सन्देह है, किसी भी न्यायाधीश, शान्ति-रक्षक न्यायाधीश, पुलिस-अधिकारी, या विभागके अधिकारी द्वारा वारंटके बिना गिरफ्तार किया जा सकता है और यथासम्भव शीघ्र आवासी न्यायाधीशके न्यायालयमें कानूनके अनुसार कार्रवाईके लिए पेश किया जायेगा।

१०. कोई भी निषिद्ध प्रवासी केवल इस कारण इस अधिनियमकी धाराओंसे मुक्त न होगा या उपनिवेशमें न रहने दिया जायेगा कि उसे यह जानकारी नहीं दी गई थी कि वह उपनिवेशमें नहीं आ सकता, या वह भूलसे या यह पता न लगनेसे कि वह निषिद्ध प्रवासी है, आ जाने दिया गया है।

११. किसी भी व्यक्तिको, जिसे इस अधिनियमके अन्तर्गत इस उपनिवेशसे निकालनेकी आज्ञा दी गई हो, और किसी भी अन्य व्यक्तिको, जिसे इस अधिनियमको भंग करके उसे इस उपनिवेशमें प्रवेश करने या रहनेमें सहायता देने या उसके उकसानेसे सम्बन्धित धारा सातके अन्तर्गत दण्डित किया गया हो, वह सब खर्च देना होगा जो निष्कासनीय व्यक्तिको इस उपनिवेश या अन्य स्थानसे निकालनेमें उठाना पड़े; और उस खर्चकी रकम शेरिफके सामने विभागके अधिकारीका प्रमाणपत्र प्रस्तुत करनेपर, जिसमें उस खर्चकी विगत और पूरी-पूरी रकम दी हुई हो, उस खर्चके देनदार व्यक्तिको उपनिवेशमें मौजूद सम्पत्तिकी कुर्की करके उस तरीकेसे वसूल की जायेगी जो सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके अन्तर्गत दिया गया है; कुर्कीसे प्राप्त रुपया शेरिफ द्वारा खजानचीको दे दिया जायगा और वह उक्त खर्च और कुर्कीका खर्च काटनेके बाद बाकी रकम उस व्यक्तिको भेज देगा जिससे वह वसूल की जायेगी या जो उसके द्वारा उसको लेनेके लिए नियुक्त किया जायेगा।

१३. किसी मुकदमेमें यह सिद्ध करनेका भार अभियुक्तपर रहेगा कि वह इस उपनिवेशमें, इस अधिनियमको या विनियमको भंग करके प्रविष्ट नहीं हुआ है, या नहीं रह रहा है।

१४. प्रत्येक आवासी न्यायाधीशको इस अधिनियमके या किसी विनियमके सभी उल्लंघनोंपर अधिकतम दण्ड देनेका अधिकार होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-१-१९०८

परिशिष्ट २

ट्रान्सवालके स्वर्ण-कानूनका मसविदा[1]

असाधारण धाराएँ

गत ३० तारीखको ट्रान्सवाल सरकारके "गज़ट" का एक असाधारण अंक प्रकाशित हुआ था। इसमें "मूल्यवान और साधारण धातुओंके अन्वेषण और खुदाईसे सम्बन्धित कानूनोंके एकीकरण और संशोधन तथा तत्सम्बन्धी प्रासंगिक मामलोंकी व्यवस्था करनेके लिए एक विधेयक" छपा है। विधेयकके इस मसविदेमें १३७ खण्ड हैं और यह "गज़ट" के २३ पृष्ठोंमें छपा है। हम इस विधेयकसे रंगदार लोगोंसे सम्बन्धित अंशोंको लेते हैं। खण्ड ३ में अन्य बातोंके साथ निम्नलिखित परिभाषाएँ दी गई हैं:

"रंगदार व्यक्ति" का अर्थ होगा कोई आफ्रिकी या एशियाई वतनी या रंगदार अमरीकी व्यक्ति, कुली [भारतीय] या चीनी।

"खनि-जिला" का अर्थ होगा उन जिलोंमें से कोई एक जिनमें यह उपनिवेश इस अधिनियमके अनुसार फिलहाल बाँटा गया है और जब भूमिके सिलसिलेमें इसका प्रयोग होगा तब इसका अर्थ वह खनि-जिला होगा जिसमें ऐसी भूमि होगी।

"उद्घोषित क्षेत्र" में समस्त उद्घोषित क्षेत्र और किसी अनुद्घोषित क्षेत्रका उतना भाग जितना इस अधिनियमके अन्तर्गत किसी उद्घोषित क्षेत्रका भाग घोषित किया जाये या उसके आरम्भके समय किसी उद्घोषित क्षेत्रका भाग हो, शामिल माना जायेगा।

"उद्घोषित भूमि" का अर्थ होगा वह भूमि जो इस अधिनियम या १८९८ के कानून सं० १५ के अन्तर्गत या किसी पहलेके कानूनके अन्तर्गत सार्वजनिक खनि उद्घोषित की गई हो, बशर्ते कि वह कानूनन अनुद्घोषित न हो गई हो।

खण्ड २४. जब कोई भूमि, जो वतनी बस्ती हो या वतनी बस्तीका भाग हो, सार्वजनिक खनि उद्घोषित की जायेगी तब निम्नलिखित धाराएँ प्रयुक्त होंगी;

(१) उस बस्तीमें रहनेवाला प्रधान और कबीला उस स्थानपर अपने जानवर चरा सकेगा, परन्तु उसी हदतक जिस हदतक ऐसा अधिकार अन्वेषण और खुदाईमें बाधा न डाले।

(२) पशुओंके बाड़े और ऐसी जमीनें जो उद्घोषणाके इरादेकी सूचनासे पहले दो वर्षतक व्यवहारतः खेती और सिंचाईके काममें आती रही हैं, ऐसे प्रधान और कबीलेके इस्तेमालके लिए तबतक सुरक्षित रखी जायेंगी जबतक वे यह स्वीकृति न दे देंगे कि संरक्षण न किया जाये।

(३) ऐसे प्रधान और कबीलेके घरेलू कामों और उनके पशुओंको पानी देनेके लिए यथेष्ट जल सुरक्षित रखा जायेगा।

(४) यदि ऐसी बस्ती शाही भूमि होगी तो अन्वेषकोंके अधिकारोंकी स्वीकृति या बस्तीके सार्वजनिक खनि उद्घोषित हो जानेके कारण प्रधान और कबीलेको जिस भूमिके उपयोगसे वे वंचित किये गये हैं उसके समान क्षेत्रफलकी दूसरी भूमिका उपयोग प्रदान किया जायेगा।

(५) यदि ऐसी भूमि किसी ऐसे प्रधान या कबीलेकी है तो कोई व्यक्ति, जो उसपर धातु-सम्बन्धी अधिकार प्राप्त करता है, अन्वेषककी हैसियतसे प्राप्त किन्हीं भी अधिकारोंके अतिरिक्त मन्त्रीकी सलाहसे खानके लिए एक जगह चुन सकता है, जिसका आकार वतनी विभागका मन्त्री निश्चित करेगा; परन्तु वह खानकी जगह उस भूमिके, जिसपर ऐसा धातु-सम्बन्धी अधिकार दिया गया है, विस्तारके पाँचवें भागसे अधिक न होगी। ऐसे धातु-सम्बन्धी

१. यह संक्षेप गांधीजीका किया हुआ है; देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ १७०।

अधिकारोंके अधिग्रहणके लिए प्रधान या कबीलाको देय रकमें या अन्य शुल्क (यदि कोई हों) और खानके पट्टों या भूमिपर अन्य अधिकारोंके समय-समयपर प्राप्त होनेवाले धनका आधा वतनी-विभागके मन्त्रीको दिया जायेगा, जो उन रकमोंको प्रधान या कबीलेके लिए न्यासके तौरपर रखेगा और ऐसे कामोंमें व्यय करेगा जिनको वे चाहेंगे; परन्तु इसमें राज्यपालकी स्वीकृति आवश्यक होगी।

खण्ड १०४. "कच्ची मूल्यवान धातु" में वह मूल्यवान धातु, जो चाहे गलाई गई हो परन्तु निर्मित न हुई हो या उससे व्यापारकी कोई वस्तु न बनाई गई हो, शामिल समझी जायेगी और उसमें पारा मिली धातु, चिकनी मिट्टी और बिना साफ की हुई मूल्यवान धातुकी खुरचन शामिल मानी जायेगी।

खण्ड ११३. कोई व्यक्ति, जो किसी रंगदार व्यक्तिसे कोई कच्ची मूल्यवान धातु खरीदेगा, बदलेगा, बन्धकमें रखेगा या दानमें प्राप्त करेगा, वह अपराधका भागी होगा और सजा सुनाये जानेपर जुर्मानेका, जो एक हजार पौंडसे अधिक न होगा, या जुर्मानेके विकल्पके बिना जेलकी सजाका, जो पाँच वर्षसे अधिककी न होगी, या ऐसे जुर्माने और सजा, दोनोंका भागी होगा।

खण्ड ११४. कोई रंगदार व्यक्ति जो कोई कच्ची मूल्यवान धातु बेचेगा, बदलेगा, बन्धक देगा या अन्य प्रकारसे निबटायेगा या जो खरीदेगा, बदलेमें प्राप्त करेगा, बन्धक रखेगा, या कोई कच्ची मूल्यवान धातु अपने पास रखेगा, अपराधका भागी होगा और सजा सुनाई जानेपर जेलकी सजाका, जो पाँच वर्षसे अधिक न होगी, भागी होगा; परन्तु इस खण्डकी कोई बात किसी ऐसे रंगदार व्यक्तिपर लागू न होगी जो किसी ऐसे व्यक्तिके साथ किया हुआ नौकरीका करार पूरा करनेमें कच्ची मूल्यवान धातुकी सार-सम्भाल करता हो, जो खण्ड १०५ के उपखण्ड (१) के अन्तर्गत इस धारासे मुक्त हो।

खण्ड १२२. जब कभी सरकार सार्वजनिक हितमें उचित समझेगी, तब सरकारी 'गज़ट' में विज्ञप्तिके द्वारा किसी भूमिको, जो उद्घोषित भूमिसे मिली हुई, उससे घिरी हुई या उसके पड़ोसमें स्थित हो, उद्घोषित क्षेत्रका भाग घोषित कर देगी।

खण्ड १२७. (१) इस अधिनियमके अन्तर्गत, खण्ड २४में की गई व्यवस्थाको छोड़कर, किसी रंगदार व्यक्ति द्वारा कोई अधिकार अर्जित नहीं किया जा सकता। और १८९८ के कानून १५ या किसी पहलेके कानून या इस अधिनियमके अन्तर्गत अधिकार रखनेवाला कोई व्यक्ति किसी रंगदार व्यक्तिको ऐसे अधिकारका कोई भाग हस्तान्तरित नहीं करेगा या अपने बाद दूसरेको किरायेपर नहीं देगा या हस्तान्तरित किये जाने या आगे किरायेपर दिये जानेकी अनुमति नहीं देगा और न किसी रंगदार व्यक्तिको (अपने वैध नौकरके अतिरिक्त किसी औरको) ऐसे अधिकारके अन्तर्गत प्राप्त भूमिपर बसने या अधिकार करनेकी अनुमति देगा।

(२) कोई व्यक्ति, जो इस खण्डका उल्लंघन करेगा वह अपराधका भागी होगा और दोष सिद्ध होनेपर उसे जुर्मानेका दण्ड दिया जायेगा जो ५० पौंडसे ज्यादा न होगा; और यदि उसने उल्लंघन जारी रखा तो उसे उल्लंघन जारी रखनेके दिनोंके लिए जुर्माना किया जायेगा जो प्रतिदिनके लिए ५ पौंडसे अधिक न होगा।

खण्ड १२८. (१) किसी रंगदार व्यक्तिको बाजारों, बस्तियों, खानके अहातों और ऐसे अन्य स्थानोंके अतिरिक्त, जिनके लिए खनि-आयुक्त अनुमति दे, वर्ग 'क' में शामिल जिलोंके उद्घोषित क्षेत्रोंमें बसनेकी अनुमति नहीं दी जायेगी।

(२) किसी रंगदार व्यक्तिको, जो इस खण्डका उल्लंघन करेगा, दोष सिद्ध होनेपर जेलकी सजा दी जायेगी, जो एक महीनेसे अधिककी नहीं होगी; और ऐसा दोष सिद्ध होनेपर खान-आयुक्त ऐसे रंगदार व्यक्तिके रहने या उसके इस्तेमालके लिए बनाये गये किसी मकानको हटवा सकता है।

(३) इस खण्डकी कोई बात किन्हीं ऐसे रंगदार व्यक्तियोंपर लागू न होगी जो किसी श्वेत व्यक्तिके नौकर होंगे बशर्ते कि वे उन अहातोंमें रहते हों, जहाँ वे काम करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-४-१९०८

परिशिष्ट ३

सत्याग्रहकी आचार-नीति

पुरस्कृत निबन्ध

श्री एम० एस० मॉरिस

१

उन्नीस शताब्दियोंके पूर्व आध्यात्मिक गतिविधियोंके एक तत्कालीन प्रमुख केन्द्रमें संसारके एक अत्यन्त महान् पुरुषने प्रस्थापित सत्ताके विरुद्ध सत्याग्रह करते हुए अपने प्राणोंका उत्सर्ग किया था। सत्याग्रहका आधार निःसन्देह न्यायसंगत था; क्योंकि जहाँ आदमीके बनाये हुए कानूनों और अन्तःकरणके उच्चतर नियमोंमें संघर्ष न हो, वहाँ आज भी वह मानवीय नियमोंके निष्ठापूर्ण पालनके स्मरणीय और सजीव उदाहरणकी भाँति मान्य है। सत्याग्रहका सम्बन्ध इस आशासे था कि किसी मानवोत्तर अथवा दैवी शक्तिमें ज्वलन्त श्रद्धा न रखी जाये और अमुक जातिपर अपनी आध्यात्मिक सत्ताका दावा वर्तमान ऐहिक सत्ताके पक्षमें छोड़ दिया जाये। "हमने देखा है कि यह व्यक्ति राष्ट्रको गुमराह करता है और अपने आपको ख्रीस्त — और राजा — कहकर सीज़रको राजस्व देनेसे रोकता है।" ईसाने पाइलेटके[1] प्रश्नका उत्तर देनेके पहले उससे पूछा कि क्या यह प्रश्न उसने अपने मनसे किया है; और फिर कहा कि "मेरा राज्य इस दुनियाका नहीं है: यदि मेरा राज्य इस दुनियाका होता तो मेरे सेवक लड़ाई लड़ते।" उनका क्रूसपर चढ़ा दिया जाना बराबर इतिहासकी एक अनोखी घटना मानी जाती रही है। कानूनकी अवज्ञा किसे कहते हैं, वह इस बातका शानदार उदाहरण है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जिस सत्ताने उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया उसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध थी। इसमें दो मत नहीं थे कि दण्ड अवैध था। वह निर्मम, अनुचित और हद दरजे तक कठोर था और ईसा इस दण्डके पात्र बिलकुल नहीं थे। किन्तु जिसने उस प्रचलित कानून और उसे कार्यान्वित करनेवाले शासन-तन्त्रके अधीन रहनेमें अपनी अन्तरात्माका अपमान देखा उसने भीतरकी पुकारके अनुसार उस कानून और शासन-तन्त्रका अनाक्रामक प्रतिरोध करना अपना अधिकार समझा। उनका शरीर-बल द्वारा प्रतिरोध करनेका कदापि इरादा नहीं था। कानूनके विरोधमें उनके सेवकों और अनुयायियोंके संगठित होकर उठ खड़े होनेका अर्थ होता उनके अपने विश्वासका सीधा खण्डन। संगठित शारीरिक शक्तिके द्वारा अपने दावेकी स्थापना करना उनके अपने नैतिक चरित्र और उच्च ध्येयकी अवमानना होती। उन्हें अपने सर्वव्यापी नैतिक प्रभावके कारण ऐसा प्रबल समर्थन प्राप्त था कि यदि उसका वे उपयोग करते तो वह अपनी सहज शक्तिके कारण ही दुर्निवार और अपराजेय सिद्ध होती। इसीलिए उन्होंने उन आज्ञाओंके उल्लंघन करनेके अपराधमें दिये गये भयंकर दण्डको शिरोधार्य करके उस कानूनका विरोध करना ठीक समझा जो उनकी समझमें अनुचित था।

मसीही इतिहासके उसी दौरमें ईसाकी मृत्युके थोड़े ही महीनोंके भीतर, एक सन्त पुरुष अपने विरोधियोंके हाथों शहीद हुए। उनपर 'मूसा और ईश्वरकी निन्दा' करनेकी तोहमत लगाई गई; किन्तु वह व्यक्ति सत्याग्रही सिद्ध हुआ। उसके विरोधियोंने खुली हिंसाका रास्ता अपनाया। वे उसे नगरके बाहरतक घसीटते हुए ले गये और फिर वहाँ उसे पत्थर मार-मारकर मार डाला गया। स्टीफेनको रास्तेसे हटा देनेके बाद यरूशलममें ईसाइयोंपर खुले आम अत्याचार किया जाने लगा। स्त्री और पुरुष पकड़-पकड़ कर जेलोंमें ठूँसे जाने लगे। इस तरह सत्याग्रहको दैवी समर्थन प्राप्त हुआ और लोगोंने अत्याचार, अन्याय और दमनके विरुद्ध एकमात्र कारगर शस्त्रके रूपमें उसे ग्रहण किया। जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्रमें आत्म-चेतनाका दण्ड शहादत था उसी प्रकार सामाजिक क्षेत्रमें भी। जिन लोगोंके मनों और अन्तरात्माओंमें दमनकारी कानूनों और पुरुषत्वके श्रेष्ठ गुणोंको पीस कर मानवताका पतन करने-

१. पांटियस पाइलेट, जिसने ईसाको सूलीपर चढ़ानेकी सजा सुनाई थी।

वाले कानूनोंके प्रति विद्रोह जागता है वे अनाक्रामक प्रतिरोधका सहारा लेते हैं क्योंकि यह आहत आत्माको राहत देनेवाला सबसे प्रभावकारी मरहम है।

२

"जिस समाजका आधार इस जमानेमें भी असमानता और अन्याय है, जहाँ गरीबोंके दुःखकी नींवपर श्रीमानोंके स्वर्ग रचे जाते हैं, जहाँ सुख तो मिला ही नहीं, प्रतिष्ठा भी तिरोहित हो गई है, समझमें नहीं आता वह किस प्रकारका समाज है।"

हमें खेदके साथ विक्टर ह्यूगोके इस कथनसे सहमत होना पड़ता है। टॉल्स्टॉय तथा ह्यूगो निस्सन्देह ऐसे महान चिन्तक हैं जिन्होंने इस युगमें मानव समाजकी गम्भीरतम समस्याओंपर मनन किया है। अमेरिकाके एक बहुत बड़े नीतिज्ञ और 'ड्यूटी ऑफ सिविल डिसऑबीडिएन्स' के लेखक थोरोने अपने उन सिद्धान्तोंके लिए अपने प्राणोंकी बलि दे दी, जो उन्होंने राज्यके प्रति उच्चतम कर्तव्य-भावनाकी प्रेरणा और अन्तरात्माके निर्देशपर अपनाये थे। मनुष्यकी मान्यताएँ चाहे सही हों चाहे गलत, किन्तु मनुष्यकृत नियमोंका निर्वाह करनेकी सदा हमारी एक सीमा होती है। किसी भी आधुनिक जापानीमें अप्रतिम व्यक्तिगत साहस और नैतिक सदाचारकी पराकाष्ठा होती है; आज इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। उसके ये गुण विगत कुछ वर्षोंमें हमारे सामने विभिन्न रूपोंमें आये हैं। जापानका 'बुशिदो'[१] हमें भले ही अन्ध-विश्वास लगे, किन्तु उसके सच्चे अर्थ और गूढ़ भावको हमारे युगके गम्भीर चिन्तकोंने भी समझा और सराहा है। वे जानते हैं कि 'बुशिदो' मानवताके मर्मको छूता है। जापानी आचार-शास्त्रके वास्तविक नैतिक पक्षको भलीभाँति समझनेके बाद जब हम स्वतः यह अनुभव कर लें कि विकासके नियमानुसार पहलेके जापानीसे आजका सुसंस्कृत जापानी कितना भिन्न प्राणी है, तब हमारे लिए यह समझना सरल होगा कि कठिन परीक्षाके क्षणोंमें, जब देशप्रेम और परिवारकी भावना बलवती होती है, वह अपनी अन्तरात्माके निर्देशोंका निष्क्रिय प्रतिरोध क्यों करता है; क्यों वह अपनी प्राण-रक्षा करनेसे इनकार करता है, और क्यों केवल इसलिए अपने भौतिक विनाशके लिए नैतिक निषेधोंका माया-जाल बुनता रहता है कि उसे राष्ट्रके उद्धारक और पुनर्जीवन देनेवालेका अमरपद प्राप्त हो।

राजनीतिक शास्त्र और नैतिक क्रियाके रूपमें अनाक्रामक प्रतिरोधका औचित्य असंदिग्ध है। जो मान्य सत्ता किसी अच्छे या बुरे कानूनको बलपूर्वक लागू करनेकी चेष्टा करती है उसके विरुद्ध शारीरिक बलका प्रयोग नैतिक दृष्टिसे गलत होगा। किन्तु जब आप कानूनका प्रतिरोध सक्रिय ढंगसे नहीं, निष्क्रिय ढंगसे करते हैं तब आपका अभिप्राय केवल यह जाहिर करना होता है कि वह कानून कुछ लोगोंकी दृष्टिमें अच्छा और न्यायसंगत होकर भी कुछ लोगोंके लिए खराब हो सकता है। जबतक मनुष्यकी स्थापित की हुई संस्थाएँ हैं तबतक सबल अंतःकरण और तर्कसंगत विचार रखनेवाले अपूर्ण मानव विषम भेदभावयुक्त राज्यादेशोंके विरुद्ध रोष प्रकट करनेका यह तरीका अपनाते रहेंगे।

शासनतन्त्रके किसी भी रूपमें सत्ता चन्द व्यक्तियोंको इसलिए सौंपी जाती है कि वे ईमानदारीसे निर्णय लें तथा बिना किसी भेदभावके न्यायपूर्वक शासन करें। कुछ लोगोंको सत्ता और कानून बनानेका अधिकार देनेका यह मतलब कदापि नहीं होता कि वे बिलकुल दोषरहित हैं और उनसे गलती हो ही नहीं सकती। अक्सर ही ऐसा होता है कि समाजके श्रेष्ठ व्यक्ति, जिनमें दूसरोंसे अधिक मानवता, न्याय, व्यावहारिकता और विचार-शीलता है, अपने सहनागरिकोंके शासक या कानून-निर्माता नहीं होते, बल्कि कमतर लोगोंसे शासित होते रहते हैं। प्रायः देखा गया है कि शासनकी बागडोर अविचारी, अत्याचारी और अन्यायी व्यक्तियोंके हाथोंमें होती है। यदि प्रमाणकी जरूरत समझी जाये तो वे लगभग सभी देशों और सभी युगोंमें आसानीसे मिल सकते हैं। संसारके किसी अग्रणी देशकी एक ताजा मिसालके तौरपर मैं इंग्लैंडमें ऊँची शिक्षा-प्राप्त लोगों द्वारा किये गये उस अनाक्रामक प्रतिरोधको सामने रखूँगा जो पिछले शिक्षा अधिनियमके विरोधमें किया गया था। इंग्लैंडकी शासन-प्रणाली ऐसी शासन प्रणाली है जो पिछली अनेक शताब्दियोंसे उत्तरोत्तर निर्मल होती

१. सैनिक आचार-संहिता।

गई है। सभी स्वीकार करेंगे कि वहाँकी शासन पद्धति प्रजातन्त्रके लगभग चरम उत्कर्षपर पहुँच चुकी है; और वहाँ न्यायपूर्वक समताके आधारपर, प्रतिभा और बुद्धिके बलपर, सत्ता प्राप्त की जाती है। इस शासन-प्रणालीमें नैतिक न्याय और औचित्य स्पष्ट दिखाई देते हैं। और फिर भी हम देखते हैं कि वहाँ एक ऐसा कानून लागू किया गया जो समाजके लिए हितकारी जान पड़ता था किन्तु जब उसपर अमल किया गया तो वह समाजके एक बड़े और प्रबुद्ध वर्गके लिए अहितकर सिद्ध हुआ और उसे उक्त वर्गने मान्य नहीं किया। यह वर्ग वैसे आज्ञाकारी वर्ग रहा है। और बहुतसे कानून हैं जिन्हें वह खुशीके साथ पूरी निष्ठासे स्वीकार करता है। किन्तु कुछ ऐसी बातोंके कारण, जिन्होंने हर युगमें मानवताको विचलित किया है, उस वर्गको लगा कि उसकी आत्मा इस नये कानूनके विरुद्ध विद्रोह करती है। इस नये कानूनने उस वर्गके लोगोंके मनमें जबर्दस्त संघर्ष पैदा कर दिया: उसमें और उनके औचित्य-बोधमें लड़ाई छिड़ गई। अतः इस वर्गने इस कानूनको पालनेसे बिलकुल इनकार कर दिया और परिणामस्वरूप मिलनेवाले दण्ड स्वीकार किये।

कहा जाता है कि कानून जनताके हितोंके बचाव और संरक्षणके लिए बनाये जाते हैं, सताने और अत्याचार करनेके लिए नहीं। उनकी रचनाके पीछे सबके हितकी दृष्टिसे विवेक, आवश्यकता, और औचित्यकी भावना होनी चाहिए! उनसे किसीको हानि नहीं पहुँचनी चाहिए। निर्दयतापूर्वक तर्कबुद्धि और विवेककी परिधि लाँघना सर्वथा अनुचित है। कानूनका प्रयोग सावधानीके साथ न्यायोचित ढंगसे किया जाना चाहिए। "जो सीज़रका है सो सीज़रको अर्पित कर दो" के सिद्धान्तका यह अर्थ नहीं है कि कानूनके कहनेपर सब लोग शरीर और मनसे अपने आपको कानूनके आगे समर्पित कर दें। मैं उच्च विचार रखनेवाले और कानूनका पालन करनेवाले एक ऐसे समझदार व्यक्तिको जानता हूँ जिसने तीन बार कानूनको अस्वीकार कर दिया और अपने बच्चोंको टीका नहीं लगवाया और कानूनकी अवज्ञाके दण्ड-स्वरूप जुर्माना देना स्वीकार किया। नैतिक दृष्टिसे उसका अपने अन्तःकरणकी आज्ञाके अनुसार कानूनका उल्लंघन करना सही था। अपने अन्तःकरणकी शान्तिके लिए उसने अनाक्रामक प्रतिरोध किया। थोरोके शब्दोंमें "यह व्यक्ति पहले मनुष्य और फिर किसीकी प्रजा था। मनुष्यकृत कानूनका आँख बन्द करके पालन करनेसे पहले उसने अपने अन्तःकरणके कानूनका निर्देश माना। कानूनके प्रति अपने मनमें आदरकी भावना उत्पन्न करना उतना वांछनीय नहीं है जितना अधिकारके प्रति। मुझे केवल एक ही उत्तरदायित्व ग्रहण करनेका अधिकार है, और वह यह कि मैं किसी भी समय जो उचित समझूँ, वही करूँ।"

३

वास्तवमें अनाक्रामक प्रतिरोध (सत्याग्रह) ईमानदार आदमीके लिए अन्तिम मार्ग है। वह साधारणतया पशुबलके दबावसे उस मार्गपर चलनेको विवश होता है; और इसलिए नैतिक आधारपर उसका कार्य अनुचित नहीं ठहराया जा सकता। यदि किसी राज्यमें किसी अल्पसंख्यक वर्गके लिए सत्याग्रह एक आवश्यकता बन जाता है तब बहुसंख्यक वर्ग दीर्घकाल तक मजबूत नहीं बना रह सकता। उस अल्पसंख्यक वर्गके विरुद्ध अपनी शक्ति या अधिकारका प्रयोग करनेके मामलेमें, जहाँतक उसके कार्योंकी बात है, उसका कमजोर और अयोग्य बन जाना अवश्यम्भावी है। और उन पराधीनोंके लिए तो, जो कानूनी या कानूनी तरीकेसे बनी सरकारकी कोई कानूनी इकाइयाँ भी नहीं है, किसी खास मामलेमें, सत्याग्रह करनेका और भी अधिक न्याय है, क्योंकि ऐसी सरकार उन इकाइयोंपर, जिनकी उसकी रचनामें कोई आवाज़ नहीं होती, न्यायतः बोझे या प्रतिबन्ध नहीं लाद सकती। किसी समुदायके एक खास वर्गपर कठिनाइयोंका इस प्रकार लादा जाना अत्याचार होगा और वह उस समुदायकी राजनीतिक बनावटके लिए अन्तमें जरूर ही खतरा पैदा कर देगा। उस हालतमें तो सरकारके अस्तित्वकी उपयोगिता ही शंकास्पद बन जायेगी।

सत्याग्रहकी आचार-नीतिपर थोरोने जो लिखा है उसमें इतना जोर है कि सविनय अवज्ञाके विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले कुछ प्रासंगिक वाक्य मैं यहाँ देता हूँ।

> "न्यायविहीन कानून विद्यमान हैं: क्या हमें उनका पालन करके सन्तोष करना चाहिए; अथवा उनमें संशोधन करनेका प्रयत्न करना चाहिए और तबतक उनका पालन करना चाहिए जबतक सफलता न मिल जाये? अथवा क्या हमें उनका तुरन्त उल्लंघन करना चाहिए? सामान्यतया जो मनुष्य ऐसी सरकारके अधीन होते

हैं जैसी कि यह (अमरीकी संयुक्त राज्य) हैं, वे सोचते हैं कि उन्हें तबतक प्रतीक्षा करनी चाहिए जबतक वे बहुसंख्यकोंको उन्हें बदलनेके लिए राजी न कर लें। वे सोचते हैं कि यदि वे विरोध करेंगे तो इलाज मर्जसे भी बदतर होगा। परन्तु इसमें स्वयं सरकारका दोष है कि इलाज मर्जसे भी बदतर हो। वही उसे बदतर बनाती है। सुधारोंके बारेमें पहलेसे कल्पना करने और उनकी व्यवस्था करनेकी अधिक क्षमता उसमें क्यों नहीं है? अपने बुद्धिमान अल्पसंख्यकोंके प्रति वह स्नेह क्यों नहीं रखती? चोट लगनेसे पहले ही वह क्यों चीखती और प्रतिरोध करती है। अपने नागरिकोंको वह प्रोत्साहन क्यों नहीं देती कि वे सावधान रहकर उसके दोष बताते रहें? और वह उनसे जैसी अपेक्षा करती है उससे ज्यादा अच्छा काम क्यों नहीं करती?

"सिद्धान्तसे उद्‌भूत कार्य, औचित्यके बोध और उसके कार्यान्वयसे वस्तुओं और सम्बन्धोंमें अन्तर आ जाता है। वह तत्वतः क्रान्तिकारी होता है और पूर्णतया किसी ऐसी चीजसे मेल नहीं खाता, जो थी। वह न केवल राज्यों और गिरजोंको विभाजित करता है, बल्कि परिवारोंको भी विभाजित कर देता है। हाँ, वह व्यक्तिको भी, उसमें जो दैवी तत्व है उससे पैशाचिक तत्वको अलग करके, विभाजित कर देता है।"

अधिकार और शक्तिके हाथोंमें पुंजीभूत ज्ञानके असम्बद्ध पहलूकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है — "आखिरकार, जब शक्ति एक बार जनताके हाथमें आ जाती है तब बहुमतको और एक लम्बे अर्से तक क्यों शासन करने दिया जाता है? इसका व्यावहारिक कारण यह नहीं है कि वे अधिकांशतः सही रास्तेपर हो सकते हैं, या कि यह बहुमतको सर्वाधिक उचित जान पड़ता है, बल्कि यह है कि वे शारीरिक बलमें सबसे प्रबल होते हैं परन्तु कोई सरकार, जिसमें बहुमतका शासन होता है, सभी मामलोंमें न्यायपर, जहाँतक आदमी उसे समझ सकते हैं, आधारित नहीं हो सकती।"

फिर: "मेरा खयाल है, यदि उनकी तरफ ईश्वर है तो यह काफी है। उन्हें किसी दूसरेकी प्रतीक्षाकी आवश्यकता नहीं है। और फिर, कोई आदमी जो अपने पड़ोसीकी अपेक्षा अधिक सही है, एकके बहुमतमें है ही।... किसी ऐसी सरकारके अधीन, जो किसीको अन्यायपूर्वक जेलमें डालती है न्यायनिष्ठ मनुष्यके लिए सही स्थान जेलखाना ही है।"

आधुनिक परिस्थितियोंने राज्य-शासनके सम्पूर्ण ढाँचेको बदल दिया है। परन्तु दलीय सरकारके अधीन मत-व्यवस्था प्रायः मानवोंके एक अनुदार समूहको पद और शक्ति प्रदान कर देती है। इस प्रकारकी परिस्थितियोंका मुकाबला करनेके लिए थोरो समस्त ईमानदार मनुष्योंको यों प्रोत्साहित करते हैं:

"अपना सम्पूर्ण मत डालिए केवल कागजकी एक पर्ची नहीं, बल्कि अपना सम्पूर्ण प्रभाव डालिए। अल्पमत तबतक शक्ति-हीन रहता है जबतक वह बहुमतका समर्थन करता है; तब वह अल्पमत भी नहीं रहता। परन्तु जब यह अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे मुकाबला करता है तब बेरोक हो जाता है।"

४

ईसाके आगमनसे चार शताब्दी पहले यूनानके सुकरात अपने युगके सबसे बुद्धिमान नीतिवादी माने जाते थे। उनकी अविचल सच्चाईने उनके बहुत-से शत्रु बना दिये थे। राज्यने, अथवा उससे भी अधिक उन लोगोंने, जो राज्यमें शक्तिके स्थानपर थे, उनपर एथेन्सके युवकोंको भ्रष्ट करने और राष्ट्रीय देवताओंके तिरस्कार करनेका इल्जाम लगाया। उनपर नियमित रूपसे मुकदमा चलाया गया। उनका मुख्य अपराध यह था कि वे देववाणी या आन्तरिक उपदेशपर, जिसे उस समयके लोग उतना स्पष्ट रूपसे नहीं समझते थे जितना कि वे समझते थे, ध्यान देते थे। वे घोषणा करते थे कि उनका अन्तर्देव उनके बुरे आचरणके लिए उनकी भर्त्सना करता है। और प्रत्येक अच्छे शब्द और कार्यके लिए उनकी सराहना करता है। वे अपने समयसे आगे थे। और उनकी मौलिकता, सत्य और बुद्धिमानीके लिए उन्हें मृत्युका दण्ड दिया गया। जब उनके शिष्योंमें से एकने पुकार कर कहा, "ऐसे निर्दोष मनुष्यको दण्डित करना कैसा लज्जाजनक है; तब सुकरातने पूछा — यदि मैं दोषी होता तो क्या मेरे मित्र इसे कम लज्जाजनक समझते?" एक ऐसे मनुष्यका, जिसने पार्थिव संसारके बारेमें सब विचार छोड़कर निर्भयताके साथ यह शिक्षा दी कि "मनुष्य जातिका समुचित अध्ययन मनुष्य ही है", उपहास

किया गया, निन्दा की गई और तब उसे कानूनका सर्वोच्च दण्ड भोगनेकी सजा सुनाई गई। उन दिनों अन्तरात्माके कानूनकी कोई गिनती नहीं थी जैसा कि आज भी, जहाँतक मानवीय कानूनों और प्रशासकीय विधानोंका सम्बन्ध है, सभ्य सरकारके हमारे वर्तमान स्वरूपोंके अंतर्गत उसकी कोई गिनती नहीं की जाती। डेल्फीके भविष्य-वक्ताने सुकरातको सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमान मनुष्य घोषित किया था। इसपर उन्होंने यह लाक्षणिक घोषणा की कि, "जहाँ दूसरे लोग समझते हैं कि वे कुछ जानते हैं, वहाँ मैं सत्य ज्ञानके केवल इस तत्वतक पहुँच पाया हूँ कि मैं जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता।"

सत्याग्रह निश्चय ही पशुबलके सामने विरोधपूर्वक झुकना है। "बुराईका प्रतिरोध मत करो"— यह नाज़रथके ईसाका कथन है और सुकरात विषपानके द्वारा उसका प्रतिरोध करनेसे बचे जिसे वे स्वयं अपने मानसमें बुराई समझते थे। प्लेटो, एक दूसरे प्रकाशमान यूनानी विद्वानके तत्वज्ञानसे इसका कितना मेल है, यह उस दुःखी मानवके निम्नलिखित भविष्यसूचक-चित्रसे प्रकट हो जायेगा, जिसकी पाश्चात्य संसारने इस प्रकार परिभाषा की है:

> "एक आदमी है — पूर्णरूपसे पुण्यात्मा, सदाचारी और न्यायपरायण। ऐसा नहीं जो अपने साथियोंके समक्ष इस प्रकारका दिखाई देनेका इच्छुक हो, बल्कि ऐसा जो वास्तवमें और ईमानदारीके साथ इस प्रकारका है। हम उसके अच्छे नामसे उसे रहित कर देते हैं . . . उसकी आध्यात्मिक साधुताके अतिरिक्त और हर चीज़से हम उसे वंचित कर देते हैं। उसने कोई गलती नहीं की परन्तु हम कल्पना कर लेंगे कि वह अपराधी गिना जाये और उसके गुणोंकी अग्नि-परीक्षा ली जाये। . . . न तो अपकीर्ति और न कुरीति, न तो गरीबी और न संकट, न तो द्वेषपूर्ण अत्याचार और न निर्दय उत्पीड़नका कष्ट उसे अपने कर्तव्य-मार्गसे विचलित कर सकता है। मृत्यु उसके मुखपर घूरती है परन्तु वह अडिग रहता है; उसे पापीके रूपमें अंकित किया जाता है, परन्तु तब भी वह संत है। . . . इस चित्रको पूरा करनेके लिए हम कल्पना करेंगे कि यह दैवी पुरुष डंडोंसे मारा जाये, कोड़ोंसे प्रताड़ित किया जाये, उत्पीड़ित किया जाये, जंजीरोंसे जकड़ा जाये, सूलीपर चढ़ाया जाये, पापियोंमें गिना जाये, और तब भी वह निरपराध रहता है।"

ईसाके आगमनसे तीन शताब्दी पूर्व प्लेटोने इस प्रकार लिखा था। एक आधुनिक सत्याग्रहीकी उनकी आगेकी परिभाषा दैवी-भावनासे उद्भूत है:

> "एक बुरा आदमी प्रत्येक सांसारिक सुविधाके होते हुए भी दुःखी है; एक अच्छा आदमी सब तरफसे प्रताड़ित है तब भी खिन्न नहीं; उद्विग्न होता है पर निराश नहीं; प्रताड़ित है पर त्यक्त नहीं, पद-दलित है परन्तु विनष्ट नहीं।"

हमारे समयके अधिकांश जन काउंट टॉलस्टॉयको उलटी बात कहनेवाला मानते हैं। परन्तु सर्वस्वीकृत यह है कि वे यदि पूर्ण द्रष्टा नहीं तो एक महान् विचारक अवश्य हैं। उन्होंने निश्चय ही मानवताकी गहराइयोंकी थाह ली है। उन्होंने बहुतेरी मानवीय मूर्खताओं और दुर्बलताओंको बे-नकाब कर दिया है। युद्ध और फाँसीकी सजाको वे अत्यन्त भयंकर मानते हैं। वे उग्र विचारोंके हो सकते हैं, तथापि वे यथार्थवादी–बुद्धिवादी हैं। अनाक्रामक प्रतिरोध उनके लिए लगभग अन्ध-विश्वासकी बात है।

> "हम कष्ट सहन कर सकते हैं परन्तु हम कानून नहीं तोड़ सकते। मनुष्य धैर्यके साथ बुराईको सहन करनेकी अपेक्षा हिंसाके द्वारा उसे रोकनेमें अधिक हानि उठाते हैं और एक-दूसरेको कहीं अधिक चोट पहुँचाते हैं। फिर क्या आपने कभी विचार किया है कि केवल कष्ट, प्रताड़न, दुःख और मृत्युका कष्ट भोगकर ही आप मनुष्योंको अपने मतमें ला सकते हैं। क्या आप समझते हैं कि ईसाइयतने संसारमें अपना मार्ग उपदेशके द्वारा बनाया है? छिः! ऐसी कोई बात नहीं है। उपदेशसे कभी किसीका मत-परिवर्तन नहीं हुआ। मनुष्योंका मत जिससे परिवर्तित होता है वह उपदेश नहीं बल्कि आत्म-बलिदान है। जब लोग दूसरे लोगोंको, जो स्वयं उनकी ही भाँति निर्बल, भावुक, आराम-पसन्द हों, प्रसन्नतापूर्वक अपने मालकी लूट सहन करते, दण्ड भोगनेमें आनन्द मनाते और अपने विश्वासके लिए सहर्ष मृत्युका आलिंगन करते देखते हैं तभी उन्हें विश्वास होता

है कि इसमें कुछ बात अवश्य है। कोई मनुष्य किसी बातकी सचाईमें तबतक विश्वास नहीं करता जबतक वह यह नहीं देख लेता कि उसके बारेमें कोई मरनेके लिए तैयार है। जेल, दाँव, फाँसी ये महान तर्क हैं जो मनुष्योंमें विश्वास पैदा करते हैं। और यदि आप इन दण्डोंके सामने सिर झुकानेसे इनकार करते हैं तो आपके सामने लोगोंको अपने मतमें लानेका जो एक-मात्र अवसर है, उसे नष्ट कर देते हैं।"

काउंट टॉलस्टॉयने स्पष्ट रूपसे कहा कि समस्त दण्ड अपने प्रकृत रूपमें उत्पीड़न ही हैं।

"यदि आप कहते हैं कि कोई आदमी अपने पड़ोसियोंके लिए एक परेशानी और झंझट है तो याद रखिए कि सर्वश्रेष्ठ मनुष्य ऐसे ही समझे गये हैं। क्या आप समझते हैं कि ईसा अपने भाई द्वारा एक बड़ी झंझट और परेशानी नहीं समझे गये थे? जबतक उन्होंने हलचल नहीं शुरू की, गृहस्थी शान्तिपूर्वक चलती रही थी।"

टॉलस्टॉय और थोरो सविनय अवज्ञाके मामलेमें सहमत प्रतीत होते हैं। व्यक्तिगत आत्मापर सदसद्-विवेकके दावेके बारेमें उनकी बात हमारी समझके परे मालूम होती है। फिर भी उसमें से किसी एकके बारेमें भी मानवीय पूर्णताका दावा करना मेरे लिए दूरकी बात है। वे केवल बुद्धिके क्षेत्रमें बढ़े हुए विचारोंके मनुष्य हैं। उनकी बौद्धिक महत्ता उनके विचारोंके कारण हमारी श्रद्धाकी दावेदार है। ईसाइयतके विषयमें टॉलस्टॉयके विचार निराले हैं। उनमें बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हें हम उनकी ही रचनाओंसे बेमेल समझकर छोड़ सकते हैं। तो भी हमें स्वीकार करना चाहिए कि उनकी कही हुई अधिकांश बातोंमें बुद्धिमानी है। ईसाइयत उनके लिए विस्तृत मानव-धर्म है। ईसा सर्वोच्च बुद्धिवादी हैं। वे प्रत्येक वस्तुको अन्तरिक प्रकाश — "प्रकाश जो आपमें है" — अर्थात् विवेकके प्रकाशके नीचे रखते हैं। यही निष्कर्ष है जिसपर समस्त दार्शनिक और नीतिज्ञ स्थापित सत्ताके विरुद्ध अपने अनाक्रामक प्रतिरोध — आत्मसमर्पणसे विवेकके द्वन्द्वको आधारित करते हैं।

मेरा खयाल है कि मैंने यह स्पष्ट कर दिया है कि उन लोगोंके लिए, जो पशुबलके अधीन हैं, सत्याग्रह मृत्यु-पर्यन्तका एक सम्मानपूर्ण अस्त्र है। इसके प्रयोगके पीछे यदि दैवी नहीं तो उच्च भावना अवश्य है। इसका शास्त्र सरकारों और मानव-समुदायोंके लिये स्पष्ट और अचूक है। मैंने इस बारेमें सुकरात और प्लेटो, ईसा और आधुनिक नैतिकताका उल्लेख किया है। पुरातनकालमें और पीछे जानेपर हम कन्फ्यूशियसको अपने नीति-शास्त्रमें सक्रिय अवज्ञा और निष्क्रिय प्रतिरोधके बीच सरल और घरेलू शब्दोंमें दैवी रेखा खींचते पाते हैं:

"पहले मनुष्योंके साथ मेरा तरीका यह था कि मैं उनके शब्दोंको सुनता था और उनके आचरणके लिए उन्हें श्रेय देता था। अब मेरा तरीका यह है कि उनके शब्दोंको सुनता हूँ और उनके आचरणकी ओर देखता हूँ. . .यह साहसका अभाव है कि हम समझ तो लें कि ठीक क्या है और उसको करें नहीं।"

मैं मैकालेके शब्दोंमें, जो इतने धाराप्रवाह और अर्थगर्भित हैं, इसे समाप्त करता हूँ:

"प्रभुत्व हमसे छिन जा सकता है। अदृष्ट घटनाएँ हमारी अति गहन नीतिकी योजनाओंको अव्यवस्थित कर सकती हैं। विजय हमारे अस्त्र-शस्त्रोंसे नहीं भी मिल सकती है। परन्तु ऐसी विजयें भी होती हैं जिनमें कोई हार होती ही नहीं। एक ऐसा साम्राज्य भी होता है जो विनाशके समस्त प्राकृतिक कारणोंसे विमुक्त होता है। वे विजयें बर्बरताके ऊपर विवेककी शान्तिमय विजयें हैं। वह साम्राज्य हमारी कलाओं और हमारी नैतिकताओं, हमारे साहित्य और हमारे नियमोंका अनश्वर साम्राज्य है!. . .परन्तु ऐसा न हो कि हम उसके चरित और उसके हितोंको न पहचानकर सत्यके संग्रामको भ्रान्तिके अस्त्रोंसे लड़ें और उस धर्मको उत्पीड़नके द्वारा स्थापित करनेकी चेष्टा करें जिसने मानव-जातिको पहले-पहल विश्वव्यापी उदारताका महान पाठ पढ़ाया था।"

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-४-१९०८

परिशिष्ट ४

नेटाल प्रवासी-विभागका विवरण

नेटालके प्रवासी-विभागका १९०७ का वार्षिक विवरण उसके प्रमुख श्री हैरी स्मिथ द्वारा प्रकाशित किया गया है। नीचे उससे कुछ दिलचस्प तथ्य दिये जाते हैं।

इस विभागका १९०७ का वार्षिक राजस्व १९०६ के राजस्वसे १७८ पौंड ४ शिलिंग ८ पेंस ज्यादा था। [उसी समयमें] जहाजपर चढ़नेका पारक-शुल्क ५८ पौंड अधिक हो गया था। जबकि अन्य विभागोंकी अर्थ-व्यवस्था सरकारको करनी पड़ती है, प्रवासी विभाग स्वावलम्बी है।

इस समालोच्य वर्षमें २७,५२२ मुसाफिर आये, उनमें १५,९५८ ब्रिटिश, २,२६२ चीनी और ८,१७१ भारतीय थे। गिरमिटिया भारतीयोंकी संख्या ६,४८९ थी। उनमें ३,९४२ पुरुष, १,६४१ स्त्रियाँ और ९०६ बच्चे थे। इनमेंसे ५,२०६ [दावोंकी तस्दीकके लिए] रोके गये। इनमें ३२३ अरब, २५६ चीनी, २,४५९ भारतीय, ३१७ सिंहली और १,४०७ जंजीबारके लोग थे। बाकीमें दूसरे सब फुटकर समुदाय थे। जबकि १९०६ में ९ प्रमाणपत्र उन लोगोंको दिये गये थे जो शैक्षणिक परीक्षामें उत्तीर्ण हुए थे। १९०७ में ऐसे ५९ प्रमाणपत्र दिये गये थे।

१९०६ में कुल ११,४२५ अधिवास-प्रमाणपत्र दिये गये थे; १०७ में १२,४८३ जारी किये गये। ७९ जब्त कर लिये गये थे, क्योंकि वे जिनके नाम जारी किये गये थे उनसे भिन्न लोगोंके पास निकले थे। [अपने दावोंकी तस्दीकके लिए] जो रोके गये थे उनमें चार — एक गोरा और तीन एशियाई — भाग निकले। गोरा बादमें पकड़ा गया और वापस भेजा गया। जो लोग परवानोंके होते हुए भी रोके गये थे उनमें १२ बच निकले। कुल मिलाकर १६ व्यक्ति, जिनमें कुछ बदनाम और जरायमपेशा गोरे या बदनाम औरतें थीं, निर्वासित किये गये। जब अधिवासका प्रमाणपत्र चाहनेवाले प्रार्थियोंकी जाँच की गई तब उनमें ९० प्रतिशत विवाहित पाये गये। ५० प्रतिशतने अपनी पत्नियोंको [नेटालमें] १० से १५ और २० वर्षोंसे देखा नहीं था। १९०३ में जो एशियाई नेटालमें आये उनमें ५१ स्त्रियाँ और २०९ बच्चे थे; १९०४ में ४२ स्त्रियाँ और १३४ बच्चे थे; १९०५ में ४८ स्त्रियाँ और १९५ बच्चे थे; १९०६ में ६९ स्त्रियाँ और २३७ बच्चे थे और १९०७ में ७१ स्त्रियाँ और १३९ बच्चे थे।

[गुजरातीके अंग्रेजी अनुवादसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-२-१९०८

परिशिष्ट ५

सार्वजनिक सभामें स्वीकृत प्रस्ताव

[जोहानिसबर्ग
जून २४, १९०८]

सार्वजनिक सभामें निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए थे :

प्रस्ताव १

एशियाई कानून संशोधन अधिनियमको रद करनेके लिए सरकारने यह शर्त लगाई है कि ट्रान्सवालमें युद्धके पहलेके अधिवासी कतिपय एशियाई अपने अधिकार छोड़ दें और एशियाई समाज उच्च शैक्षणिक योग्यता-प्राप्त एशियाइयोंका अपमान किया जाना मंजूर कर ले। इससे सूचित होता है कि ट्रान्सवाल-निवासी एशियाइयोंके समुदायोंके साथ सरकारने पिछली जनवरीमें जो समझौता किया था उसकी मूल भावनासे वह हटना चाहती है। ट्रान्सवालके अधिवासी ब्रिटिश भारतीयोंकी यह सार्वजनिक सभा सरकारके इस रवैयेपर खेद प्रकट करती है।

यह प्रस्ताव मौलवी अहमद मुख्तार द्वारा पेश किया गया था।

प्रस्ताव २

सरकारने समझौतेके अपने हिस्सेका पालन न करनेका निर्णय किया है, इस कारण और इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि ट्रान्सवालके एशियाइयोंने लगभग निरपवाद रूपसे स्वेच्छया पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र दिये हैं, यह सार्वजनिक सभा इस तरह दिये गये सारे प्रार्थनापत्रोंको वापस लेनेका निश्चय करती है और ११ सितम्बर, १९०६ के दिन की गई इस गम्भीर घोषणाको दुहराती है कि हम एशियाई कानून संशोधन अधिनियमकी अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे और इस अस्वीकारके फलस्वरूप, जो भी दण्ड भोगना पड़े, उसे वफ़ादार नागरिकों और अन्तःकरणकी आवाजपर चलनेवाले व्यक्तियोंकी तरह भोगेंगे।

यह प्रस्ताव इमाम अब्दुल कादिर बावज़ीर द्वारा पेश किया गया था।

प्रस्ताव ३

यह सार्वजनिक सभा दक्षिण आफ्रिका, इंग्लैंड या भारतके उन सब लोगोंको, जिन्होंने समुचित स्वाधीनताकी प्राप्ति और आत्म-सम्मानकी रक्षाके लिए ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय समाजके संघर्षके समयमें इस समाजकी सहायता की है और सहानुभूति दिखाई है, सादर धन्यवाद देती है और आशा करती है कि वे अपनी सहायता और सहानुभूति तबतक प्रदान करते रहेंगे जबतक न्यायकी पूरी स्थापना नहीं हो जाती।

प्रस्ताव ४

यह सार्वजनिक सभा ब्रिटिश भारतीय समाजके अध्यक्षको अधिकार देती है और आदेश करती है कि वे पूर्ववर्ती प्रस्तावोंकी नकलें उपनिवेश-मन्त्री और भारत-मन्त्रीके पास भिजवानेके लिए माननीय उपनिवेश-सचिव और ट्रान्सवालके गवर्नर महोदयको भेज दें।

यह प्रस्ताव श्री मूलजी जी० पटेल द्वारा पेश किया गया था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७-६-१९०८

परिशिष्ट ६

चैमनेका हलफनामा

[प्रिटोरिया
जून २५, १९०८]

मैं प्रिटोरियाका मॉंटफोर्ड चैमने, एशियाइयोंका पंजीयक शपथ लेकर कहता हूँ :

(१) मैंने उक्त प्रार्थीका[1] प्रार्थनापत्र, जो कि एशियाइयोंके पंजीयककी हैसियतसे मुझे भेजा गया था, और उसके साथ नत्थी किये गये हलफनामे पढ़ लिए हैं।

(२) मैं सादर निवेदन करता हूँ कि प्रार्थीके हलफनामेके[2] ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० और १४ अनुच्छेदोंमें तथा ईसप इस्माइल मियाँ और मोहनदास करमचन्द गांधीके हलफनामोंमें[3] वर्णित आरोप इस मामलेके विषयसे असम्बद्ध हैं। तथापि जो भी आरोप लगाये गये हैं उनके विषयमें उपनिवेश मन्त्रीके नाम श्री गांधी और दूसरे लोगोंके द्वारा भेजा गया तारीख २९ जनवरी, १९०८ का पत्र[4] और उपनिवेश मन्त्रीका ३० जनवरी, १९०८ का उत्तर[5] सारी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं।

(३) प्रार्थनापत्रके अनुच्छेद ७ के सम्बन्धमें मेरा यह कहना है कि मैं ३० जनवरी, १९०८ के पूर्वोक्त पत्रके साथ सहमत था और इसलिए मैंने प्रार्थीसे पंजीयनके लिए एक लिखित प्रार्थनापत्र ले लिया।

(४) अनुच्छेद ११ के सम्बन्धमें : प्रार्थीके द्वारा दी गई अर्जी सरकारी फार्मपर थी और वह मेरे कार्यालयके रिकार्डमें फाइल हो गई है और मैं उसे न तो अपनेसे अलग कर सकता हूँ, न वापस कर सकता हूँ।

उस प्रार्थनापत्रके साथ दिये गये दूसरे प्रलेखों — शान्ति-रक्षा आध्यादेशके अनुसार प्रदत्त प्रार्थीके अनुमति-पत्र और १८८५के कानून संख्या ३ के अनुसार प्रदत्त उसके पंजीयन प्रमाणपत्रके विषयमें उत्तर यह है कि ज्यों ही शिनाख्तसे सम्बन्धित कार्रवाई पूरी हो जायेगी त्यों ही उन्हें प्रार्थीको लौटा देनेमें हमें न तो कोई आपत्ति है और न कभी रही है।

प्रार्थियोंकी संख्या बहुत ज्यादा है और उनके प्रार्थनापत्रोंको अलग-अलग वर्गोंमें बाँटकर निपटानेकी आवश्यकता है। इसलिए वेरीनिगिंगके प्रार्थनापत्र, जिनमें प्रार्थीका प्रार्थनापत्र सम्मिलित है, अभी हाल ही में हाथमें लिये गये हैं।

(५) अनुच्छेद १५ के सम्बन्धमें : प्रार्थीका पंजीयन प्रमाणपत्र, जब उसने इस सम्बन्धमें प्रार्थनापत्र दिया उसके पहले ही हस्ताक्षरित हो गया था और सामान्य क्रममें वह (उसके प्रार्थनापत्रके साथ आये हुए सारे प्रलेखोंके साथ) उसे आजसे सात दिनके अन्दर किसी जिम्मेदार अधिकारीके द्वारा, जिसे इन कागजोंको सही व्यक्तिको देनेका आदेश होगा, सौंप दिया जायेगा।

१. ई० आई० अस्वात।

२. श्री अस्वातके हलफनामेका सम्पूर्ण पाठ उपलब्ध नहीं है। ट्रान्सवालके सर्वोच्च न्यायालयको दिये गये उनके प्रार्थनापत्रके लिए देखिए पृष्ठ ३०३-०४।

३. देखिए पृष्ठ ३०५-०७।

४. देखिए "पत्रः उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ ३९-४१।

५. देखिए "जोहानिसबर्गकी चिट्ठी", पृष्ठ ६४।

(६) उपनिवेश-मन्त्रीने अपने ३० जनवरी १९०८ के पत्रमें इस विषयको संसदकी अगली बैठकमें संसदके समक्ष पेश करनेका जो वचन दिया है उसे पूरा किया जा रहा है ।

एम० चैमने

२५ जून, १९०८ को प्रिटोरियामें शपथपूर्वक मेरे सामने पेश किया गया ।

जे० एच० एल० फिंडले
शान्ति-रक्षक न्यायाधीश

चैमनेका अनुपूरक हलफनामा

[प्रिटोरिया]
जून, २६, १९०८

मैं प्रिटोरियाका मॉंटफोर्ड चैमने, एशियाइयोंका पंजीयक शपथ लेकर कहता हूँ:

१. उपर्युक्त विषयके सम्बन्धमें इस माहकी २४ तारीखको मुझे जो प्रार्थनापत्र पहुँचाया गया है, उसमें वे सारे संलग्न कागज नहीं थे जिनका उसमें उल्लेख हुआ है; ये संलग्न कागज सरकारी न्यायवादीको कल सवेरे ही दिये गये हैं ।

२. श्री गांधीने अपने हलफनामेके अनुच्छेद १० में ३ फरवरी, १९०८की जिस भेंटका उल्लेख किया है उसमें मैं आरम्भसे अन्ततक उपस्थित था और मैंने जो बातें हुई, सब सुनी थीं । उस भेंटमें १९०७ के अधिनियम संख्या २ को रद करनेका कोई वचन नहीं दिया गया था ।

३. विभागीय सूचनाओंके अनुसार मार्च, १९०८ में, पंजीयनके लिए प्रार्थीके प्रार्थनापत्रके परिणामस्वरूप, उसकी वेरीनिगिंग-स्थित पेढ़ीको व्यापार करनेका परवाना दिया गया था ।

एम० चैमने

प्रिटोरियामें, २६ जून, १९०८ के दिन शपथपूर्वक मेरे सामने पेश किया गया ।

जे० एच० एल० फिंडले
शान्ति-रक्षक न्यायाधीश

स्मट्सका हलफनामा

[प्रिटोरिया]
जून २६, १९०८

मैं, प्रिटोरिया-निवासी जॉन क्रिश्चियन स्मट्स, उपनिवेश-सचिव शपथ लेकर कहता हूँ:

१. मैंने १९०८ की ३० जनवरीको या ३ फरवरीको श्री मो० क० गांधीको ऐसा कोई वचन नहीं दिया कि १९०७ का अधिनियम संख्या २ रद कर दिया जायेगा ।

२. ३० जनवरी, १९०८ के उस पत्रमें, जिसकी नकल इस प्रश्नसे सम्बन्धित प्रार्थनापत्रके साथ नत्थी की गई है, वे सब बातें दी गई हैं जिनके साथ मैंने अपनी सहमति प्रकट की थी ।

३. जैसा कि उस पत्रमें कहा गया है यह विषय संसदमें पेश किया जा रहा है ।

जे० सी० स्मट्स

प्रिटोरियामें, २६ जून, १९०८ के दिन शपथपूर्वक मेरे सामने पेश किया गया ।

जे० एच० एल० फिंडले
शान्ति-रक्षक न्यायाधीश

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ११-७-१९०८

परिशिष्ट ७

'ट्रान्सवाल लीडर' के नाम रेवरेण्ड जे० जे० डोकका पत्र

[४ जुलाई, १९०८]

[सम्पादक
'ट्रान्सवाल लीडर'
महोदय,]

हम सबको इस बातका हार्दिक दुःख है कि एशियाइयोंसे सम्बन्धित परिस्थिति एक बार फिर विषम हो गई है। अभी जब पाँच महीने पहले सत्याग्रह समाप्त हुआ था तब हमने सच्चे मनसे आशा की थी कि इस झगड़ेकी पुनरावृत्ति फिरसे इस रूपमें कभी नहीं होगी। इसके कारण व्यापार अस्त-व्यस्त हो गया था और जेलें ऐसे व्यक्तियोंसे भर गई थीं जो जनरल स्मट्सके शब्दोंमें "गुनहगार नहीं" थे। सरकार परेशानीमें पड़ गई और हम सब भी अत्यन्त त्रस्त हो गये। इसकी पुनरावृत्ति सचमुच एक विपत्ति बन जायेगी। हमें अबतक आशा है कि कदाचित् यह विपत्ति टल जायेगी। हम सबको अपनी "समूची शक्ति और सचाईके साथ" इस लक्ष्यको पानेका प्रयास करना चाहिए। किन्तु फिलहाल जान पड़ता है कि स्थिति बहुत विषम हो जायेगी। और जानकार लोगोंका कहना है कि सत्याग्रह फिर अवश्यम्भावी हो गया है।

मैं यह पत्र क्यों लिख रहा हूँ — इसकी सफाईमें मुझे यही कहना है कि इस प्रश्नसे सम्बन्धित एशियाई दृष्टि-कोणका मुझे कुछ ज्ञान है; और इस संकटापन्न स्थितिमें उस दृष्टिकोणको सामने रखना शायद कुछ उपयोगी हो।

उपनिवेश-सचिव आखिरकार उस आपत्तिजनक एशियाई कानून संशोधन अधिनियमको रद करनेपर राजी हो गये हैं। मेरी समझमें न्यायपूर्ण और आशाप्रद निबटारेके लिए यह अनिवार्य है। समझौतेकी बातचीतके दौरान परिस्थितिवश मुझे एक महत्त्वपूर्ण दायित्व मिल गया था; और अपनी व्यक्तिगत जानकारीके आधारपर मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि एशियाइयोंको इस बातमें कोई शक नहीं था कि अधिनियमका रद किया जाना समझौतेका अत्यावश्यक अंग है।

उपनिवेश-सचिवके रिचमण्डमें दिये गये भाषणसे इस विश्वासको पनपनेमें सहायता मिली है। ६ फरवरीके समाचारपत्रोंमें प्रकाशित समाचारके अनुसार "उन्होंने उन लोगों (एशियाइयों) से यह कहा कि जबतक देशमें एक भी एशियाई ऐसा रहेगा, जिसने पंजीयन न कराया हो, तबतक कानून रद नहीं किया जायेगा।" उन्होंने दोहराया कि "तबतक कानूनको रद नहीं किया जायेगा जबतक देशमें मौजूद प्रत्येक भारतीय अपना पंजीयन नहीं करा लेता।" इस प्रकार कानून रद होनेकी सम्भावना दिखाकर सभी एशियाइयोंको अपना पंजीयन करानेके लिए प्रेरित किया गया था। यह सब कहनेका प्रयोजन इतना ही है कि जिस बातसे इस समय इतनी दृढ़ताके साथ इनकार किया जा रहा है एशियाइयोंके पास उसपर विश्वास करनेका यथेष्ट आधार मौजूद था। उपनिवेश-सचिव अब अधिनियमको रद करनेके लिए सहमत तो हो गये हैं; दुर्भाग्य केवल इतना है कि उन्होंने यह रियायत देनेके लिए कुछ ऐसी शर्तें लगा दी हैं जिनको एशियाई स्वीकार नहीं कर सकते। इस विषयके सम्बन्धमें ये शर्तें पहली बार सामने आई हैं। लगता है, प्रचार कुछ इस तरहका किया जा रहा है कि एशियाइयोंने ही नई-नई माँगें पेश की हैं। इसमें सचाई नहीं है। सच तो यह है कि जनरल स्मट्स जिन शर्तोंपर जोर दे रहे हैं वे बिल्कुल नई हैं। समझौतेके दौरान उनमें से किसीकी बात तक नहीं उठी थी।

संक्षेपमें, वे इस प्रकार हैं:

(१) कि शिक्षित व्यक्तियोंको निवासके लिए यहाँ प्रवेशकी अनुमति देनेके मामलेमें 'प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम' को एशियाइयोंपर लागू नहीं माना जायेगा। जनरल स्मट्सने सदा इस अधिनियमकी यही व्याख्या

की है। उन्होंने बार-बार कहा है: "यह कानून भारतसे आनेवालोंके लिए अन्तिम रूपसे सभी द्वार बिलकुल बन्द कर देता है।" एशियाई नेताओंने उनकी व्याख्याको कभी स्वीकार नहीं किया, पर उन्होंने सदा यही कहा है कि वे इसी अत्यन्त कठोर अधिनियमको उसकी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई व्याख्याके साथ स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं। और उनका दृष्टिकोण बदला नहीं है। लेकिन लगता है कि अब जनरल स्मट्सको ही अपनी व्याख्याके सही होनेपर पूरा भरोसा नहीं रह गया है और इसीलिए वह चाहते हैं कि एशियाई नेता इस प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियममें उनकी व्याख्याके अनुसार संशोधन स्वीकार कर लें। इसे स्वीकार करनेका अर्थ यह होगा कि वे उपनिवेशमें अपने सर्वाधिक सुसंस्कृत बन्धुओंका प्रवेश वर्जित करानेपर सहमत हो जायेंगे, भले ही उनके ये बन्धु अधिनियम द्वारा लागू की जानेवाली कठिनसे-कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण भी हो जायें। इसपर एशियाइयोंका यह उत्तर है: "आप हमसे इस नये संशोधनको स्वीकार करनेकी आशा नहीं कर सकते। हमने अधिनियमका वह अर्थ नहीं समझा है, जिसे आप पेश कर रहे हैं। लेकिन हमारी समझ गलत भी हो सकती है। इसलिए हम सर्वोच्च न्यायालयका हर निर्णय स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं, फिर चाहे हमें उससे हानि हो अथवा लाभ। हमें कृपया इस मामलेका निर्णय स्वयं करनेपर विवश मत कीजिए।" परन्तु जनरल स्मट्स इसका जो उत्तर देते हैं, उसका अर्थ यह निकलता है कि "आप मेरी व्याख्या स्वीकार करें; अन्यथा कानून रद नहीं किया जायेगा।"

इस सारे मामलेमें उल्लेखनीय बात यह हुई कि अभी कुछ सप्ताह पूर्व स्वयं उपनिवेश-सचिवने श्री गांधीके यह कहनेपर कि अमुक शिक्षित भारतीय अन्य शर्तोंके साथ प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमकी शर्तें भी पूरी करता है, उसे पूर्ण पंजीयनकी अनुमति दी थी।

(२) जिन मुद्दोंकी बात की जा रही है उनमें दूसरे और तीसरे मुद्दे भी बिलकुल नये हैं। इनमें नेताओंसे उन सारे एशियाइयोंको, जिनके पास १८८५के कानून ३ के अंतर्गत डच कालके पंजीयन हैं और जिनके लिए वे ३ पौंडसे २५ पौंड तक का शुल्क अदा कर चुके हैं, निषिद्ध प्रवासी माननेको कहा गया है; भले ही ये एशियाई देशमें हों या देशके बाहर। सभी एशियाई जो युद्धके पहले ट्रान्सवालमें रहते थे और जो अपना पूर्व-निवास किसी भी अदालतमें सिद्ध कर सकते हैं; किन्तु जो लोग समझौते द्वारा दी गई तीन महीनोंकी अवधिमें उपनिवेशमें लौटकर नहीं आये और जिनके पास "शान्ति-सुरक्षा अनुमतिपत्र" नहीं हैं, निषिद्ध प्रवासी माने जायें। समझौतेका यह स्पष्ट उल्लंघन है। इसका यह अर्थ हुआ कि जिन एशियाइयोंने दीर्घ निवास और डच कानूनके अनुसार महँगे पंजीयनके द्वारा यहाँ रहनेका अपना अधिकार दृढ़ किया, उनके अधिकारोंको अमान्य कर दिया जायेगा और वे उपनिवेशके बाहर निकाल दिये जायेंगे; और जो एशियाई अपने घरोंसे इतने दूर थे कि तीन महीनोंकी निर्धारित अवधिमें उनका लौटना सम्भव नहीं था, अथवा जिन्हें उस बीच कोई समझौता हुआ है इसकी खबर ही नहीं हुई, उन्हें 'शान्ति-सुरक्षा अनुमतिपत्रों' के न होनेके आधारपर उपनिवेशमें प्रवेश नहीं करने दिया जायेगा। कदाचित् इन व्यवस्थाओंका प्रभाव ६०० व्यक्तियोंपर पड़ेगा।

(३) किन्तु अन्तिम नई माँग सबसे बुरी है; क्योंकि उसका सम्बन्ध सिद्धान्तसे है। जनरल स्मट्सका आग्रह है कि वे सभी एशियाई जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र दिये हैं किन्तु जिन्हें श्री चैमनेने अमान्य कर दिया है या जिन्हें वे भविष्यमें अमान्य करेंगे, निषिद्ध प्रवासी माने जायें और उन्हें श्री चैमनेके निर्णयके विरुद्ध अपीलका कोई अधिकार न रहे। यह सरासर अन्याय है। निषिद्ध किये जानेवाले एशियाईको यह अधिकार भी नहीं दिया गया कि वह अपने मामलेको बाकायदा अदालतमें ले जा सके! सम्भव है उसे अपनी प्रार्थना ठुकराये जानेका कारण भी मालूम न हो पाये! श्री चैमने भी गलतियोंसे परे नहीं हैं; उनसे भी हमारी ही तरह भयानक भूलें हो सकती हैं। किन्तु यदि पंजीयन अधिकारी सन्तुष्ट न हो, तो बेचारे एशियाईको घरबार छोड़कर जाना पड़ेगा; यहाँतक कि उसे अपीलका हक भी नहीं होगा। यह सामान्य मनुष्यता भी नहीं है। और तब कोई आश्चर्य नहीं कि एशियाई इतनी बड़ी कीमतपर कानून रद करनेके वचनकी पूर्ति नहीं चाहते।

यहाँ कौनसा सिद्धान्त खतरेमें पड़ रहा है, उसे भलीभाँति समझ लेना अच्छा होगा। इन "शर्तों" में निरंकुशताकी भावना प्रबल है। एशियाई केवल सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्याख्या और संरक्षण चाहते हैं। उन्हें

'प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम' के प्रति आक्रोश नहीं है। वे केवल इतना ही चाहते हैं कि उसकी व्याख्या किसी अफसरपर न छोड़ी जाये — फिर वह अफसर कितना ही बड़ा क्यों न हो; वे चाहते हैं कि कोई मान्यता प्राप्त न्यायालय ही इसकी व्याख्या करे; उन्हें उसका निर्णय स्वीकार होगा। उन्हें एशियाइयोंके श्री चैमने द्वारा निषिद्ध करार दिये जाने और देशसे बाहर कर दिये जानेपर भी आक्रोश नहीं है; लेकिन उनकी यह माँग अवश्य है कि किसी अफसरको अन्तिम निर्णयका अधिकार न दिया जाये। वे ऐसे मामलोंमें संविहित रूपसे बनाये गये न्यायाधिकरणके सन्तुलित निर्णयको प्राप्त करनेके लिए अपीलका अधिकार चाहते हैं। समझौतेमें जिन शर्तोंकी कोई चर्चातक नहीं उठी, हमारा विरोध उन नई माँगों और उनमें निहित निरंकुशताकी प्रबल भावनासे है। निश्चय ही ये बातें मजदूरोंके लिए तो सर्वाधिक महत्त्वकी हैं किन्तु हमारी सरकारके लिए इनका इतना महत्त्व कहाँ! प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अंतर्गत कठोर परीक्षाके कारण एशियाइयोंका बड़ी संख्यामें प्रवेश सम्भव नहीं है। और न्यायपूर्ण आचरणसे प्रतिष्ठापर कोई आँच नहीं आती। एशियाइयोंकी समझमें इन नई शर्तोंको स्वीकार करनेसे उन्हें इतनी अधिक हानि होगी कि वे समझौतेकी पहलेकी स्थितिपर वापस जानेको तैयार हैं; अर्थात् कुछ ही दिनोंमें फिर सत्याग्रह छिड़ जायेगा। क्या अब भी इस विपत्तिको रोकनेकी दृष्टिसे समझौता करनेका कोई प्रयास नहीं किया जा सकता? हम महसूस करते हैं कि इस बार जो भी समझौता हो वास्तविक हो। मेरा खयाल है कि पैबन्द लगानेसे कोई सन्तुष्ट नहीं होगा; और हम यह भी समझ रखें कि यदि न्याय और सद्भावकी भावनाका सभीके लिए समानरूपसे पालन न हुआ, तो अन्तिम समझौते जैसी कोई बात नहीं बनेगी।

[आपका, आदि,
जे० जे० डोक]

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ११-७-१९०८

परिशिष्ट ८

रिचमंडमें दिया गया जनरल स्मट्सका भाषण

[फरवरी ५, १९०८]

स्मट्स द्वारा फरवरी, १९०८ के पहले सप्ताहमें किसी समय, रिचमंडमें दिये गये भाषणका संक्षेप यह है:

". . .सन् १९०६ में जब सरकारने [प्रवासियोंके बढ़ते आनेवाले प्रवाहको] रोकना ठीक माना. . . संविधान परिषद्में एक विधेयक पेश किया गया और वह पास हो गया। उसका उद्देश्य ऐसे हरएक एशियाईको, जिसे यहाँ रहनेका कानूनी हक हो, इस प्रकार पंजीयन करना था कि उसमें भूलकी कोई गुंजाइश बाकी न रहे. . . [और] जो भारतीय यहाँ युद्धके पहले रह रहे थे उन्हें सुनिश्चित हैसियत प्रदान करना था। . . . बड़ी सरकारने उक्त कानूनको अपनी सम्मति देनेसे इनकार कर दिया।

ट्रान्सवालकी पहली संसदकी बैठक पिछले मार्चमें हुई और उसने [इसी किस्मके एक दूसरे विधेयकको] सर्वानुमतिसे अपनी मंजूरी दी और उसे. . .सम्मति मिल गई। . . .

उक्त कानूनमें कहा गया था कि सरकार एक अवधि घोषित कर दे जिसके अन्दर एशियाई [स्वेच्छया] अपना पंजीयन करा लें. . .देशमें रहनेवाले १०,००० भारतीयोंमेंसे केवल ५०० ने पंजीयन कराया। . . .

तीन उपाय थे. . .उन्हें सीमाके पार निर्वासित कर दिया जाये; . . .सबको जेल भेज दिया जाये; . . .या [सारा सवाल] संसदमें पुनः पेश किया जाये। . . .निर्वासित करना आसान नहीं था। [नेटाल, ऑरेंज रिवर कालोनी और रोडेशियाने "कुलियों" को प्रवेश देनेसे इनकार कर दिया था, इसलिए]

यह सवाल अकेले ट्रान्सवालका नहीं था; अन्तर्राष्ट्रीय सवाल था। . . . . दूसरा उपाय यह था कि इन भारतीयोंको जेलमें ठूँस दिया जाये। मैंने हरएक नेताको और सैकड़ों दूसरे लोगोंको जेल भेजा लेकिन इसका कोई असर नहीं हुआ। लोगोंको जेल भेजनेकी नीति धमकीकी तरह एक अच्छी नीति थी, लेकिन. . . मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी सरकार १०,००० लोगोंको गरदनियाँ देकर जेलमें डाल कर देखे. . . ।

[इतने लोगोंको जेलमें डालना] ऐसा उपाय है जो न केवल स्थूल रूपमें बल्कि नैतिक दृष्टिसे भी अशक्य है . . . क्योंकि उससे ट्रान्सवालकी गोरी प्रजाके सम्मान और उसकी प्रतिष्ठाको धक्का लगेगा। . . . १८८५ का कानून [भी] निःसत्व हो गया था और परिणाम यह था कि १८८५ से १८९९ तक एशियाइयोंने न तो परवानोंका शुल्क दिया और न कानूनोंकी परवाह की . . . । मैं तो येनकेन उक्त कानूनका उद्देश्य सिद्ध करना चाहता था। [इसलिए] मैंने सुलहका प्रस्ताव रखा। मैंने उनसे कहा कि कानून तो निरर्थक हो गया लेकिन वे स्वेच्छया पंजीयन करा लें, सरकार उसे स्वीकार कर लेगी और संसदके समक्ष रख देगी। . . . भारतीय नेताओंने. . . यह सलाह स्वीकार कर ली. . . . स्वेच्छया पंजीयन ही एकमात्र सम्भव उपाय था। इसलिए मैंने कहा कि "ठीक है", क्योंकि उसमें सरकारके लिए लज्जाकी कोई बात नहीं थी. . . मैंने शुरूसे ही यह स्थिति अपनाई थी कि ट्रान्सवालकी भारतीय प्रजाके लिए १० अँगुलियोंकी छापके सिवा पहचानका कोई भी दूसरा जरिया नाकाफी है। . . . भारतीय कहते थे कि इस चीजको वे लोग कभी स्वीकार नहीं करेंगे। . . . अब उन्होंने उसे मान लिया है, . . . उनमें ज्यादा अक्ल आ गई है और वे समझ गये हैं कि उसमें कोई दोष नहीं है और उससे उनकी प्रतिष्ठाको बट्टा नहीं लगता। . . . भारतीयोंका दूसरा आग्रह यह था कि उक्त कानून अपमानजनक और लज्जाकर है और जबतक वह रद नहीं किया जाता वे कदापि पंजीयन न करायेंगे। मैंने उनसे कहा कि जबतक देशमें ऐसा एक भी एशियाई है जिसने पंजीयन नहीं कराया है तबतक कानून रद नहीं किया जायेगा। और समझदार आदमियोंकी तरह [अब] भारतीय समाजके नेताओंने कानून रद करनेकी माँग छोड़ दी है। रिपब्लिकन सरकार जो काम कभी नहीं कर सकी थी वही दोनों पक्षोंके द्वारा किंचित् आदान-प्रदानकी नीतिका पालन करनेपर अब सिद्ध हो गया, और मेरा खयाल है कि जो समझौता हुआ है उससे दोनों पक्षोंके सम्मानकी रक्षा हुई है। हमने दो कानून बनाये हैं. . . एक उन सब भारतीयोंका पंजीयन करनेके लिए जो यहाँ कानूनके अनुसार रहनेके अधिकारी थे; दूसरा बाकी सबके लिए इस देशका दरवाजा अन्तिम रूपसे बन्द कर देनेके लिए।

अब भविष्यमें ऐसा कोई भी एशियाई इस देशमें नहीं आ सकता जो युद्धके पहले ट्रान्सवालका निवासी न रह चुका हो। ब्रिटिश सरकारने इसे अपनी सम्मति दे दी है। . . . यह ब्रिटिश साम्राज्यमें किसी भी समय बनाये गये कानूनोंमें सबसे सख्त एशियाई कानून है। . . . हम जानते हैं कि हम एक ऐसे साम्राज्यके अंग हैं जिसमें काले लोगोंकी बहुसंख्या है और यह एक ऐसा तथ्य है जिसे हमें कभी नहीं भूलना चाहिए। . . .

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-२-१९०८

परिशिष्ट ९

आम सभामें पास हुए प्रस्ताव

[जोहानिसबर्ग
अगस्त १६, १९०८]

प्रस्ताव १

ब्रिटिश भारतीयोंकी यह आम सभा एशियाई स्वेच्छया पंजीयन वैधीकरण विधेयकका, जो कि इस समय ट्रान्सवालकी संसदके समक्ष उपस्थित है, विरोध करती है और ब्रिटिश भारतीय संघकी ओरसे सम्मान्य विधान सभाको दिये गये प्रार्थनापत्रके साथ अपनी सहमति प्रकट करती है।

प्रस्तावक: श्री दाउद मुहम्मद, (अध्यक्ष, नेटाल भारतीय कांग्रेस)।

समर्थक : श्री आदम एच० गुल मुहम्मद; (अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय लीग, केपटाउन)।

अनुमोदक : श्री पारसी रुस्तमजी, (उपाध्यक्ष, नेटाल भारतीय कांग्रेस)। और श्री एम० वी० चेट्टियार, सभापति, तमिल हितकारी समिति (तमिल बेनिफिट सोसायटी)।

प्रस्ताव २

ब्रिटिश भारतीयोंकी यह आम सभा ब्रिटिश भारतीय समाजके इस संकल्पकी सच्चे मनसे, गम्भीरतापूर्वक और प्रार्थनापूर्वक पुनः पुष्टि करती है कि एशियाई अधिनियमके सामने, जिसे भारतीय समाज धर्म और अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध मानता है, सिर न झुकाया जाये।

प्रस्तावक: श्री इमाम अब्दुल कादिर बावजीर, (अध्यक्ष, हमीदिया इस्लामिया अंजुमन)।

समर्थक : श्री टी० नायडू और मौल्वी अहमद मुख्त्यार, तथा

अनुमोदक : सर्वश्री इब्राहीम अस्वात, दिलदार खाँ, ई० एम० काछलिया, आर० के० पडियाची (प्रिटोरिया), वी० चेट्टी, पी० के० नायडू, एम० पी० फैन्सी

प्रस्ताव ३

ब्रिटिश भारतीयोंकी इस आम सभाका मत है कि पूर्वोक्त एशियाई स्वेच्छया पंजीयन वैधीकरण विधेयक उस समझौतेका भंग है, जो सरकारने एशियाई जन-समुदायोंके साथ किया था। यह सभा आशा करती है कि उपनिवेशी उन शर्तोंके भद्रोचित पालनकी माँग करेंगे जिन्हें कि उपनिवेशकी सरकारकी ओरसे और उपनिवेशियोंके नामपर जनरल स्मट्सने स्वीकार किया था।

प्रस्तावक: श्री अब्दुल रहमान — पॉचेफस्ट्रूम

समर्थक : श्री ई० एम० पटेल — वेरीनिगिंग

अनुमोदक : सर्वश्री आर० एस० चोकालिंगम् पिल्ले, हरिशंकर जोशी (डर्बन), श्री छोटाभाई, (क्रूगर्सडॉर्प) और श्री अहमद सुलेमान खोटा (हाइडेलबर्ग)

प्रस्ताव ४

ब्रिटिश भारतयोंकी यह आम सभा अध्यक्षको अधिकार देती है कि वे इन प्रस्तावोंकी नकलें जहाँ-जहाँ भेजना चाहिए वहाँ-वहाँ भेज दें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-८-१९०८

परिशिष्ट १०

विधानसभामें जनरल स्मट्सका भाषण[1]

[प्रिटोरिया
अगस्त २१, १९०८]

"...माननीय सदस्योंको याद होगा, १९०६ की शाही उपनिवेशीय सरकारके अधीन एक कानून पास किया गया था। किन्तु उसे महामहिम सम्राट्की स्वीकृति प्राप्त नहीं हो सकी थी। फिर ट्रान्सवालकी विधानसभाने मार्च १९०७ में बिना किसी परिवर्तनके वही कानून...पास कर दिया। वह कानून गत वर्ष अमलमें आया। ...उस कानूनके अन्तर्गत इस देशके एशियाइयोंके पंजीयनके लिए...विभिन्न तारीखें घोषित की गईं, लेकिन...एशियाइयोंने एक सत्याग्रह आन्दोलन संघटित किया, और उस कानूनके अन्तर्गत पंजीयन... असफल सिद्ध हुआ...गत वर्ष ३० जून तक, जोकि पंजीयनकी अन्तिम तिथि थी, अधिकसे-अधिक ६०० लोगोंने पंजीयन कराया था।...यह बहुत ही अटपटी, और कुछ अर्थोंमें अत्यन्त खतरनाक स्थिति थी। किसी सरकारके लिए सत्याग्रह आन्दोलनसे ज्यादा अटपटी स्थिति और कोई नहीं है। यह एक ऐसा आन्दोलन है जो वास्तवमें युद्धकी कार्रवाईके समान है, और जहाँतक सरकारका सम्बन्ध है, वस्तुतः यह अराजकता जैसा है। बहुत प्राचीनकालमें मनुष्य इसका मुकाबला केवल युद्धकी घोषणा करके करता। मैंने कानूनको कार्यान्वित करनेका भरसक प्रयत्न किया...और इसके फलस्वरूप इस वर्षके प्रारम्भमें बहुत-से एशियाई कारावासमें कष्ट सहन करते रहे।...अन्तमें मैं एशियाई समाजके कुछ नेताओंसे मिला और मैंने उनसे इस प्रश्नपर बातचीत की। परिणामतः इस सदनकी बैठक होनेतक अस्थायी व्यवस्था कर दी गई...कि जो एशियाई इस देशके वैध अधिवासी हैं उन सबका स्वेच्छया पंजीयन हो और इस मामलेको सम्पुष्टिके लिए इस सदनमें पेश किया जाये। ...अबतक इस देशके लगभग प्रत्येक एशियाईने...पंजीयनके लिए प्रार्थनापत्र दे दिया है...प्रार्थनापत्रोंकी संख्या ९,१५८ है।...इनमेंसे...७,७७३ को वैध अधिवासी मान लिया गया है और उन्हें पंजीयन-प्रमाणपत्र दे दिये गये हैं। १,२१४ प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिये गये हैं।...थोड़े-से प्रार्थनापत्रोंपर, जिनकी संख्या १७१ है, अभी निर्णय नहीं हुआ है। अँगुलियोंके निशान देनेमें कोई महत्त्वपूर्ण आपत्ति नहीं उठाई गई। (हर्ष-ध्वनि)...७,०१० ने अँगुलियोंके और १,९६० ने दोनों अँगूठोंके निशान दिये। ...केवल ७० ने अँगुलियोंके निशान देनेसे इनकार किया। इस प्रकार माननीय सदस्य देखेंगे कि मुख्य कठिनाई अँगुलियोंके निशान देनेके सम्बन्धमें थी...यह विचार सही नहीं था।...मुख्य आपत्ति स्वयं कानूनके सम्बन्धमें थी।...प्रमुख भारतीयोंने मुझपर दोषारोपण किया है...कि समझौतेकी शर्तोंका पालन नहीं किया, गया...कि यह वचन दिया गया था कि अधिनियमको रद कर दिया जायेगा और उस वचनको मैंने निभाया नहीं।...समझौतेका अक्षरशः पालन किया गया है। एशियाई नेताओंने जोहानिसबर्ग जेलसे भेजे २८ तारीखके एक पत्रमें बतौर प्रार्थनाके निम्नलिखित प्रस्ताव किया है। वे कहते हैं: "अँगुलियोंके निशानकी माँगके विरुद्ध हमारा विरोध कभी इतना अधिक नहीं रहा।..." फिर अँगुलियोंके निशानोंके सम्बन्धमें ढील देनेका कुछ उल्लेख किया गया है। यह प्रस्ताव मैंने स्वीकार कर लिया था, और इससे दो प्रश्न उठ खड़े हुए हैं: पहला यह कि क्या अधिनियमको रद करनेका वादा किया गया था? मैं नहीं समझता कोई न्यायालय मेरे वादेकी ऐसी व्याख्या कर सकता है। परिणाम यह हुआ कि स्वेच्छया पंजीयन करानेवाला एशियाई एक अन्य अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन करा सकता था, अधिनियम २ के अन्तर्गत नहीं। एशियाई इस मामलेको न्यायालयमें ले गये, और सर विलियम सॉलोमनने यह मत व्यक्त किया कि समझौतेकी सही व्याख्या एशियाइयों द्वारा की गई व्याख्यासे

१. उपनिवेश-सचिव द्वितीय वाचनके लिए एशियाई पंजीयन संशोधन विधेयक पेश कर रहे थे।

बिलकुल भिन्न है। अस्तु, महोदय, तब यह कहा गया कि यद्यपि इस पत्र-व्यवहारमें अधिनियम रद करनेके बारेमें कोई समझौता नहीं है, तथापि मैंने श्री गांधीसे हुई मुलाकातोंमें उसे रद करनेका वादा किया था। ऐसी बात नहीं है। हो सकता है, यह धारणा गलतफहमीके कारण बनी हो। . . . दूसरी कठिनाई इस उपबन्धके कारण उठी कि स्वेच्छया पंजीयन उन एशियाइयोंपर भी लागू हो जो. . . उपनिवेशसे बाहर हैं, किन्तु जिन्हें वापस आनेका अधिकार हो। . . . मेरा उत्तर. . . था कि समझौता संसदकी बैठक होने तक की निश्चित अवधि— तीन मासके लिए हुआ था। मैं यह वचन नहीं दे सका कि किसी भावी तारीखको इस देशमें आनेवाले एशियाइयोंको अपनी इच्छानुसार पंजीयन करानेकी छूट हो। दो मुद्दोंपर और भी कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुई। एक मुद्दा था समझौतेकी अवधि समाप्त होनेके बाद उन लोगोंके प्रवेशका, और दूसरा था एशियाई नेताओंका यह तर्क कि गत वर्ष बनाये गये प्रवासी अधिनियमके अन्तर्गत शिक्षित एशियाई देशमें प्रवेशके अधिकारी थे . . . वह उपबन्ध रखा जाये जिससे उन एशियाइयोंको जो प्रवासी अधिनियमके अन्तर्गत हल्कीसी शैक्षणिक परीक्षा पास कर सकें, देशमें प्रवेशकी . . . अनुमति दी जाये। यह कानूनकी ऐसी व्याख्या और ऐसी नीति है जिसे मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता था। (हर्ष-ध्वनि)। . . . बड़ी संख्यामें ऐसे लोग, जो दूसरी तरह अवांछनीय हैं, इस देशमें प्रवेशके लिए मुक्त हो जायेंगे, और इसे मैं कभी नहीं होने दूँगा। इसके बाद सत्याग्रह आन्दोलन एक बार फिर प्रारम्भ हो गया। सभाएँ की गई, उत्तेजनात्मक भाषण दिये गये, प्रमाणपत्र जलाये गये। . . . मेरे विचारमें यह, वास्तवमें, अनावश्यक था। मैं चाहता था कि एशियाइयोंके साथ जो व्यवस्था की गई है उसपर सर्वथा दृढ़ रहूँ, और इसके अनुसार . . . इन स्वेच्छया पंजीयनोंको वैध करार देनेके लिए. . . एक विधेयक प्रकाशित किया गया। . . . सार्वजनिक भावना पहलेसे ही उग्र थी और मैंने. . . इस सदनके माननीय सदस्योंसे सलाह ली कि इन कठिनाइयोंको सुलझानेका कौन-सा सर्वोत्तम मार्ग है। . . . यह सुझाव दिया गया कि हमें एशियाइयोंके कुछ प्रमुख सदस्योंसे मिलना चाहिए और उनके साथ कठिनाइयोंके बारेमें बातचीत करनी चाहिए। हम उनसे मिले. . . और मेरे विचारमें इस विधेयकसे प्रत्येक आपत्ति और प्रत्येक कठिनाई काफी हदतक समुचित रूपसे दूर हो जाती है। केवल एक कठिनाई जो दूर नहीं होती वह है शिक्षित एशियाइयोंके सम्बन्धमें। उन्होंने कठिनाई इस प्रकार प्रस्तुत की थी कि अधिनियम २, १९०७ के अन्तर्गत . . . तुर्की साम्राज्यकी मुस्लिम प्रजाको इस देशमें वर्जित किया गया है। इस बातपर जोर दिया गया कि इससे मुस्लिम धर्मपर लांछन व धब्बा लगाया गया है। इस आपत्तिको . . . हमने दूर कर दिया है। दूसरा मुद्दा उन एशियाइयोंसे सम्बद्ध था जो युद्धसे पहले ट्रान्सवालके अधिवासी थे, किन्तु जो गत वर्षके कानूनकी शर्तोंके अन्दर नहीं आते। उस कानूनमें भारतीयोंके लिए दो कसौटियोंका उल्लेख है . . . यह अपेक्षित था कि या तो उनके पास शान्ति-रक्षा अनुमतिपत्र हों या वे ३१ मई १९०२ को इस देशमें रहे हों। . . . माननीय सदस्य देखेंगे कि विधेयकमें यह उपबन्ध रखा गया है कि यदि एशियाई युद्धसे तीन वर्ष पहले इस देशके अधिवासी रहे हों और वे इसे प्रमाणित कर सकते हों तो उनके लिए उचित होगा कि वे एक वर्षके अन्दर . . . पंजीयन प्रमाणपत्रोंके लिए अर्जी दें . . . तीसरी कठिनाई बच्चोंसे सम्बद्ध थी . . . यह आवश्यक था कि न केवल वयस्क पुरुष बल्कि ८ तथा १६ वर्षके बीचके बच्चे भी अपना पंजीयन करायें. . . तीसरी नई चीज जो इस विधेयकमें शामिल की गई है वह यह कि सोलह वर्षसे कम आयुके बच्चोंको पंजीयन प्रमाणपत्र लेनेकी आवश्यकता नहीं होगी, किन्तु उन्हें उनके माता-पिताओंके प्रमाणपत्रोंमें दर्ज कर लिया जायेगा। एक और मुद्दा एशियाई पंजीयकके [दावे] नामंजूर कर देनेपर मजिस्ट्रेटके पास. . . अपील करनेके सम्बन्धमें था। एशियाई नेताओंका कहना था कि विभिन्न आवासी मजिस्ट्रेटोंके न्यायालयोंमें विभिन्न कार्य-प्रणालियाँ प्रचलित हैं। इसे विधेयकमें एक और परिवर्तन करके दूर कर दिया गया है। . . . सरकार अपीलके मामलोंको सुननेके लिए एक विशेष मजिस्ट्रेटको नियत करेगी। . . . एक अन्य मुद्दा यह उठाया गया . . . कि जब एशियाई परवानोंके लिए अर्जी देते हैं . . . वे शिनाख्तके साधनके रूपमें अपने अँगूठोंका निशान देते हैं। किन्तु यह बताया गया है कि कुछ एशियाई जाने-माने हैं, भली-भाँति शिक्षित हैं और अपने हस्ताक्षर कर सकते हैं। . . . इसलिए कड़ा नियम बनाना अनावश्यक है। यदि हस्ताक्षर शिनाख्तका पर्याप्त साधन है तो हम हस्ताक्षरोंको स्वीकार कर लें। यदि यह पर्याप्त नहीं है तो हम दूसरे उपायोंसे इस आवश्यकताकी पूर्ति करें।

. . . माननीय सदस्य देखेंगे . . . वह सिफारिश इस विधेयकमें शामिल करली गई है . . . मद्य-सम्बन्धी धारा . . . जो एशियाइयोंको मद्य-अधिनियमसे छूट दिलाती थी [उनके कहनेपर] विधेयकसे हटाली गई है। किसी जायदादको एक भारतीयके उत्तराधिकारियोंके नामपर कर देनेके लिए उपबन्ध रखा गया है . . . जबर्दस्त आग्रह किया गया है . . . कि हमें शिक्षित एशियाइयोंके लिए द्वार खोल देने चाहिए। . . . मुझे ऐसा महसूस नहीं हुआ है कि . . . कोई परिवर्तन होना चाहिए। . . . आखिर इन बातोंके लिए हमपर जोर दिया गया है और इस विधेयकमें हमने उनकी काफी हदतक पूर्ति कर दी है। इसलिए किसी-न-किसी समझौतेपर पहुँचने या देशमें जो तूफान छाया था उसके उपशमनके लिए पूरा आधार मौजूद था। किन्तु मेरे सचिवको आज एशियाई समितिके नेताओंका एक पत्र मिला है जिससे मालूम पड़ता है कि वह आशा, जो पूरी तरह तर्कसंगत थी, हो सकता है, निराशामें बदल जाये। अन्य उपबन्ध हैं: सभी बन्दी मुक्त किये जायें, एशियाई अधिनियम रद किया जाये . . . साथ ही जलाये गये प्रमाणपत्र भी निःशुल्क दिये जायें (हँसी)। . . . श्री गांधीने उन भारतीयोंका उल्लेख किया जो इस देशकी गोरी आबादीके साथ साझीदार हैं . . . यह ऐसा दावा है जिसे यह गोरी आबादी कभी भी स्वीकार नहीं करेगी। (लगातार हर्ष-ध्वनि)।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–८–१९०८

परिशिष्ट ११

आम सभामें स्वीकृत प्रस्ताव

[अगस्त २३, १९०८]

प्रस्ताव १

नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष श्री दाउद मुहम्मदने प्रस्ताव किया कि:

ब्रिटिश भारतीयोंकी यह आम सभा सादर प्रार्थना करती है कि सरकार कृपापूर्वक सम्राट्की कारुण्य-शक्तिका प्रयोग करे और श्री सोराबजी शापुरजीको, जिन्हें प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत बिना रोक-टोक सीमा पार करने दी गई थी और जिनपर एशियाई कानून संशोधन अधिनियमके अधीन कार्रवाई की गई थी, वापस लौटनेकी अनुमति दे। इस सभाको विश्वास है कि सरकार और ब्रिटिश भारतीयोंके बीच एक अर्सेसे जो विवाद चला आ रहा है वह सद्भावनापूर्वक तय किया जायेगा और सरकार कृपापूर्वक भारतीयोंको साम्राज्यके एक अंगकी हैसियतमें मान्यता देगी तथा इस समाजको शान्ति और आराम प्रदान करेगी जिसकी हकदार, इस सभाकी विनम्र सम्मतिमें, वह है।

श्री पारसी रुस्तमजीने इसका समर्थन किया और प्रस्ताव पास हो गया।

प्रस्ताव २

श्री जी० डब्ल्यू० गॉडफ्रेने प्रस्ताव किया कि:

ब्रिटिश भारतीयोंकी यह आम सभा नम्रतापूर्वक प्रार्थना करती है कि बड़ी सरकार एशियाई स्वेच्छया पंजीयन वैधीकरण विधेयकको तबतक अपनी अनुमति न दे जबतक उच्च शिक्षा प्राप्त भारतीयोंको [अपेक्षित] हैसियत नहीं प्राप्त होती और १९०७का एशियाई कानून संशोधन अधिनियम मंसूख नहीं हो जाता।

श्री एन० ए० कामाने समर्थन किया और प्रस्ताव पास हो गया।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–८–१९०८

परिशिष्ट १२

लॉर्ड सभामें ट्रान्सवालके भारतीयोंकी स्थितिपर लॉर्ड ऐम्टहिल और लॉर्ड कर्जनके भाषण

लॉर्ड सभामें ४ फरवरी, १९०८ को हुई बहसमें दिये गये लॉर्ड ऐम्टहिलके भाषणकी 'टाइम्स' पत्रमें प्रकाशित रिपोर्टके अंश नीचे दिये जाते हैं:

लॉर्ड ऐम्टहिलने कहा कि मैंने ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंके साथ होनेवाले व्यवहारके प्रति ध्यान खींचने और तत्सम्बन्धी कागज-पत्र प्राप्त करनेके लिए नोटिस दिया था; और मेरा खयाल है कि बदली हुई परिस्थितियोंके बावजूद यह वांछनीय है कि [दोनों पक्षोंमें] जो समझौता हुआ है उसपर संसदमें कुछ चर्चा अवश्य होनी चाहिए। मुझे निश्चय है कि यह सदन ट्रान्सवाल सरकारके साहस और नीतिज्ञतासे पूर्ण कार्यपर उसे बधाई देना चाहेगा। मेरा खयाल है कि सदन ट्रान्सवालके भारतीयोंको भी बधाई देना चाहेगा, क्योंकि अपने ध्येयकी सिद्धिके प्रयत्नमें उन्होंने जो साहस, एकता और दृढ़ता प्रदर्शित की वह उनकी उस विनम्रता और संयमसे कम सराहनीय नहीं है जो उनकी माँगोंमें प्रदर्शित हुई। इस विषयकी जानकारी रखनेवाला कोई भी व्यक्ति इस बातमें सन्देह नहीं कर सकता कि इन विनियमोंके खिलाफ भारतीयोंकी आपत्तियाँ वाजिब थीं . . . लेकिन मैं सम्राट्की सरकारपर यह दोष लगाता हूँ कि उसने परिस्थितिको इस चिन्ताजनक हद तक बिगड़ने दिया। . . . अभीतक तो मन्त्रियोंने जो एक सफाई दी है वह यह है कि किसी स्वशासित उपनिवेशके कार्योंमें हस्तक्षेप करना सम्भव नहीं है। मैं 'हस्तक्षेप' शब्दके इस दुरुपयोगका विरोध करता हूँ, क्योंकि यदि हस्तक्षेप शब्दका मतलब मातृ-देश (ब्रिटेन) द्वारा साम्राज्यके समस्त नागरिकोंके हकोंकी रक्षाका आग्रह हो तो किसी स्वशासित उपनिवेशके कार्योंमें हमारा हस्तक्षेप उतना ही न्यायोचित है जितना कि ऐसे मामलोंमें हमारा विदेशी राष्ट्रोंके कार्योंमें हस्तक्षेप करना और— यह दूसरी चीज तो हमने अकसर की है। . . . तो फिर भारतीयोंकी गुलामीकी अवगणना क्यों की गई। मैंने 'गुलामी' शब्दका उपयोग जान-बूझकर किया है क्योंकि सरकारके सदस्यों और उसके समर्थकोंने अँगुलियोंकी छापके द्वारा [व्यक्तिकी] शिनाख्त, स्थावर सम्पति रखनेकी अक्षमता, और अमुक निश्चित बाड़ोंके अन्दर ही रहनेकी बाध्यता [आदि] को गुलामीके चिह्न माना है। . . . उपनिवेशियोंको अपने मामलोंका प्रबन्ध [अपनी इच्छाके अनुसार] करनेका अधिकार है, इस बातसे कोई इनकार नहीं करता; किन्तु उन्हें यह याद रखना चाहिए कि वे एक बड़े साम्राज्यके हिस्सेदार हैं और उन्हें अपने हितोंका सम्पादन इस तरह नहीं करना चाहिए जिससे दूसरे हिस्सेदारोंको हानि पहुँचे। . . .

हमें इस बातका आग्रह करनेका अधिकार था कि साम्राज्यके दृष्टिबिन्दुको ध्यानमें रखा जाये और साम्राज्यीय दृष्टिबिन्दुका तकाजा है कि साम्राज्यकी सुरक्षा और प्रतिष्ठाके लिए ब्रिटिश नागरिकोंके साथ, उनका रंग कुछ भी हो, ब्रिटिश नागरिकों-जैसा व्यवहार ही किया जाये। ब्रिटिश नागरिकोंका उत्पीड़न या असम्मान नहीं होना चाहिए। . . . यदि उपनिवेशकी सरकारें प्रमादवश भारतके साथ हमारा झगड़ा करा दें तो वे हमारी उतनी ही या उससे भी ज्यादा हानि करा डालेंगी जितनी कि वे विदेशी राष्ट्रोंके साथ हमारा झगड़ा करा कर करेंगी। . . . इसलिए ब्रिटिश राजनयिकोंका यह कर्तव्य था कि वे प्रश्नके इन पहलुओंको उपनिवेशोंके ध्यानमें लाते। यह काम पिछली गर्मीमें हुए साम्राज्यीय सम्मेलनमें, जब कि यहाँ सब उपनिवेशोंके प्रधानमन्त्री मौजूद थे, क्यों नहीं किया गया? अँगुलियोंकी छाप लेनेका सवाल लें तो सम्राट्की सरकारने इस बातपर भारत सरकारकी राय क्यों नहीं ली और क्यों नहीं पूछा कि वहाँ इस सम्बन्धमें कौन-सी पद्धति प्रचलित है? वैसा करनेके बजाय उसने ट्रान्सवाल सरकारको ही यह मौका दिया कि वह उसे (साम्राज्यीय सरकारको) बताये कि उसके (ट्रान्सवाल सरकारके) अनुसार वहाँ कौन-सी पद्धति चलती है और ट्रान्सवाल सरकारने साम्राज्यीय सरकारको गलत जानकारी

दी।. . .भारतमें सिर्फ अँगूठे और तर्जनीकी छाप ली जाती है; दसों अँगुलियोंकी छाप लेनेकी पद्धति तो भारतमें सिर्फ जरायमपेशा जातियोंके लिए ही काममें लाई जाती है । . . .सम्राट्की सरकारका रवैया प्रारम्भमें कमजोर विरोधका रहा और बादमें उपनिवेशोंने जो भी किया उसे अनिच्छापूर्वक स्वीकार कर लेनेका ।

लॉर्ड कर्जनके भाषणके अंश

यह सवाल भारतमें हमारे सामने, नेटाल और ट्रान्सवाल दोनोंके सम्बन्धमें, जिस रूपमें आया उसके दो पहलू थे । नेटाल सरकारने. . .एक शिष्टमण्डल भेजा था — हमसे यह अनुरोध करनेके लिए कि हम [गिरमिटिया भारतीय] मजदूरोंके स्वदेश लौटाये जानेपर राजी हो जायें ।. . .हम इसके लिए तैयार थे. . .बशर्ते कि हम नेटालके गैर-गिरमिटिया भारतीयोंको वहाँ जो कष्ट और कठिनाइयाँ भोगनी पड़ रही थीं उन्हें कुछ कम करा सकें ।. . .नेटाल सरकारने हमारे प्रस्ताव स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया ।. . .आप महानुभाव, [ट्रान्सवालके] भारतीय निवासियोंपर उनके अधिकारोंका अपहरण करनेवाले जो क्रूर प्रतिबन्ध लादे गये हैं उन्हें जानते ही हैं । युद्धके कारणोंमें एक कारण यह भी था. . .। ज्यों ही युद्ध समाप्त हुआ [साम्राज्य-सरकारके सम्बन्धित] मन्त्रीको इस विषयपर अपना आवेदन लिख भेजना हमने अपना कर्त्तव्य माना ।. . .कुछ ही समयके बाद लॉर्ड मिलनर हमारे पास, पहले १०,००० और बादमें २०,००० [कुलियों]का प्रबन्ध करनेकी प्रार्थना लेकर पहुँचे । इन [कुलियों]की आवश्यकता नये अधिकृत भू-भागोंमें रेल-मार्गके निर्माण-कार्यका आरम्भ करनेके लिए थी ।. . .हमने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली. . .और इस परिस्थितिका उपयोग, एक बार पुनः ट्रान्सवालके गैर-गिरमिटिया भारतीय निवासियोंके लिए ज्यादा अच्छी शर्तें प्राप्त करनेकी कोशिशमें किया। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि हम विफल हुए ।

. . .[समझौता] दोनों पक्षोंके लिए सम्मानजनक प्रतीत होता है ।. . .नीली पुस्तिकाको[1] पढ़कर मनमें विरक्ति पैदा होती है ।. . .[ट्रान्सवालकी सरकारने] अपने भारतीय-विरोधी कानून पास करानेमें लगभग अभद्र जल्दबाजी प्रदर्शित की । दूसरे, जनरल बोथा शिनाख्तकी, अँगुलियोंकी छापसे ज्यादा अच्छी, कोई रीति खोज निकालनेके वचनका पालन नहीं कर सके (सुनिए-सुनिएकी आवाजें)।. . .ट्रान्सवालमें चलाई गई अँगुलियोंकी छाप लेनेकी प्रथा और उसकी रीति निश्चय ही असम्मानजनक थी ।. . .फिर, सरकारने एक गलती और की; उसने प्रतिष्ठित और उत्तम शिक्षा-प्राप्त भारतीयों और निचले दर्जेके भारतीयोंमें, जिनकी स्पर्धाका सचमुच डर था, भेद नहीं किया । यह एक ऐसा आरोप है जिसे हम ट्रान्सवालके शासकोंपर न्यायतः लगा सकते हैं ।. . . खैर; अब हम इस सवालके एक समाधानपर आ पहुँचे हैं; लेकिन जरा इस बातको सोचिए कि इस प्रश्नके अन्तिम निपटारेमें इस अस्थायी समाधानपर सम्राट्की सरकार कदापि जोर नहीं देना चाहेगी । मुझे निश्चय है कि आप महानुभाव यह महसूस करते हैं कि . . . राजनीति-विशारदोंके किसी मण्डलको अनुमानतः ज्यादासे-ज्यादा महत्त्वपूर्ण और सुदूरगामी परिणाम रखनेवाले जिन प्रश्नोंका मुकाबला करना पड़ सकता है, यह प्रश्न उन्हीं प्रश्नोंकी कोटिका है।

मैं आप महानुभावोंको यह बतलाऊँ कि इस विषयपर भारतीय दृष्टिकोण क्या है ।. . .भारतीय कुली देखता है कि हमारी सरकार उसे अपने देशके बाहर एक उपनिवेशमें जा बसनेके लिए आमन्त्रित करती है, इतना ही नहीं, प्रोत्साहन भी देती है। "वह उस उपनिवेशको अपने परिश्रमसे समृद्ध बनाता है और फिर वहाँका समाज उसे दुश्मनीकी निगाहसे देखना शुरू कर देता है और उससे हड़के कुत्तेके जैसा व्यवहार करने लगता है। उसे उसकी बुराइयोंके लिए नहीं अच्छाइयोंके लिए दण्डित किया जाता है।" . . .और तब भारतीयको याद आता है कि. . .वह ब्रिटिश साम्राज्यके लिए लड़ा है. . .और अधिकांशतः उसीके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप नेटाल बचाया जा सका था ।. . .अब वह ब्रिटिश साम्राज्यकी नागरिकताके पूरे हकोंकी माँग करता है । मुझे ऐसा नहीं लगता कि हम उसे इसके लिए दोष दे सकते हैं।. . .आखिर यही तो वह आधार है जिसपर कि आप विदेशी शासनके प्रति एशियाइयोंकी वफादारीकी, और यह विदेशी शासन वहाँ स्थायी रूपसे कायम रहे और विकसित होता रहे, इस बातमें उनकी सहमतिकी आशा कर सकते हैं ।. . .

१. सरकारी रिपोर्ट (ब्ल्यू बुक) ।

. . .औपनिवेशिक दृष्टि-बिन्दु बिलकुल भिन्न प्रकारका है । . . .मैं महसूस करता हूँ कि . . .एक तरहसे वह अकाट्य है । . . .अगर [उपनिवेशी] स्वार्थी है तो ऐसा वह आत्म-रक्षणके लिए है । . . .वह ऐसी किसी व्यवस्थाको माननेसे इनकार करता है जिससे उसका जीवन-स्तर सदाके लिए नीचा गिर जाये, और फिर वह देखता है कि उसके सामने काली प्रजासे निपटनेकी भारी समस्याके सिवा गेहुएँ रंगवाले भारतीय प्रवासियोंकी समस्यासे निपटनेका संकट भी उपस्थित होता है । ऐसा लगता है इस एक ही साम्राज्यके अन्दर दो विपरीत शक्तियाँ एक दूसरेके विरुद्ध काम कर रही हैं ।

इन परिस्थितियोंमें सरकारका कर्तव्य क्या है ? . . . यह इन परस्पर विरोधी तत्वों और सिद्धान्तोंके बीच सामंजस्य स्थापित करने और इस तरह काम करनेकी कोशिश कर सकती है कि उनके बीच किसी प्रकार संघर्ष न हो । . . . सर्वप्रथम उसे यह प्रयत्न करना चाहिए . . . कि बाहर जानेवाले प्रवासीको सदैव उसकी मजदूरी की . . .और यदि उसकी वापसी अपेक्षित हो, तो अवसर आनेपर उसके लौटनेकी . . ., उचित शर्तें प्राप्त हों । यह देखना सरकारका कर्तव्य है कि उसकी अपनी प्रजाके लिए लाभजनक शर्तें तय हों. . . और एक बार करार हो जानेपर यह देखना भी उसीका कर्तव्य है कि बादमें इन शर्तोंमें जल्दबाजीमें या आवेश [और अविवेक]के कारण कोई ऐसा परिवर्तन न किया जाये जो प्रवासीके लिए हानिकर है । . . . इसके अलावा, सरकारको यह भी देखना चाहिए कि एशियाइयोंपर थोपे गये प्रतिबन्ध कमसे-कम कष्टदायी हों। फिर सरकारको यह भी देखना चाहिए कि किसी भी जगह ऐसी दुखदायी स्थिति न उत्पन्न होने पाये जिसमें चारित्र्यवान, प्रतिष्ठित और शिक्षित भारतीय भद्रपुरुषोंके साथ साधारण कुलियों-जैसा व्यवहार किया जाये . . .और उन्हें अपनेसे बहुत हीन कोटि और पेशेके लोगोंके साथ रहनेपर विवश किया जाये। (हर्ष ध्वनि) . . . एक दूसरा सुझाव भी दिया गया है — वह यह कि सरकारको कोई अन्य ऐसा प्रदेश ढूढ़नेकी कोशिश करनी चाहिए जहाँ हमारे भारतीय सह-नागरिक जाकर बस सकें और जहाँ वे उन निर्योग्यताओं और प्रतिबन्धोंसे मुक्त हों जिनका मैंने पहले जिक्र किया है । . . . जहाँतक मेरा सवाल है, यह ऐसा सुझाव है, जिसे मैं उतना अच्छा नहीं समझता जितना कि इस सुझावका प्रतिपादन करनेवाले कुछ अधिकारी समझते हैं । तथापि मुझे आशा है कि हालकी वे घटनाएँ जिनका परिणाम हमारी भारतीय सह-प्रजाकी विजयमें हुआ है, उपनिवेशकी सरकार और साम्राज्य सरकार — इन दोनोंके लिए एक सबक है । उपनिवेशकी सरकारके लिए सबक यह है कि वह इन प्रवासियोंके अधिकारोंकी उपेक्षा करके नहीं चल सकती. . ., और सम्राट्की सरकारके लिए यह सबक है कि ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भी उपनिवेशमें रहनेवाले भारतके लाखों गेहुएँ रंगके लोगोंके प्रति उसकी जिम्मेदारी उतनी ही बड़ी है जितनी कि उसकी अपनी जातिके गोरोंके प्रति है। (तालियाँ) ।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–३–१९०८

परिशिष्ट १३

दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश भारतीय समिति

सदस्योंकी संशोधित सूची

अध्यक्ष

लॉर्ड ऐम्टहिल, जी० सी० एस० आई, जी० सी० आई० ई०, आदि

समितिके सदस्य

श्री अमीर अली, सी० आई० ई०; सर एस० सी० बेली, के० सी० एस० आई; टी० बे० बॅनेट, सी० आई० ई०; सर मंचरजी भावनगरी, के० सी० आई० ई०; सर जॉर्ज बर्डवुड, के० सी० आई० ई०, सी० एस० आई०; सर चार्ल्स ब्रूस, जी० सी० एम० सी०; सर विलियम बुल, एम० पी०; मेज० ज० सर ओवन टी० बर्न, जी० सी० आई० ई०; ई० पी० एस० कॉन्सल, एलएल० डी०; श्री हैरॉल्ड कॉक्स, एम० पी०; मेज० सर डब्ल्यु एम० ईवान्स गॉर्डन; सर फ्रेड्रिक फ्रायर, के० सी० एस० आई०; सर एफ० एस० लेली, के० सी० आई० ई०, आदि; सर रोपर लेथब्रिज, के० सी० आई० ई०; श्री आयन मॅल्कॉम, जे० पी०; सर विलियम मार्कबी, के० सी० एम० आई०; श्री दादाभाई नौरोजी; श्री जे० एच० पोलक, जे० पी०; श्री एल० डब्ल्यु० रिच; श्री जे० एम० रॉबर्टसन, एम० पी०; डॉ० व्ही एच० रदरफोर्ड, एम० पी०; सर ऐडवर्ड सॅसून, बॅरोनेट, एम० पी०; सर चॅस० श्वान, बॅरोनेट, एम० पी०; श्री ए० एच० स्कॉट; एम० पी०; श्री टी० थॉर्नटन, डी० सी० एल०, सी० आई० ई०; सर विलियम वेडरबर्न, बॅरोनेट; सर रेमंड वेस्ट, के० सी० एस० आई०; प० पू० साउदैम्प्टनके बिशप; प० पू० जे० सी० सी० वेलडन, मैनचेस्टरके डीन।

कार्यकारिणी समिति

सभापति : सर मंचरजी भावनगरी, के० सी० आई० ई०

सदस्य : सर्वश्री अमीर अली, सी० आई० ई०; हैरॉल्ड कॉक्स, एम० पी०; जे० एच० पोलक, जे० पी०; जे० एम० रॉबर्टसन, एम० पी०; ए० एच० स्कॉट, एम० पी०; सर विलियम बुल, एम० पी०; एल० डब्ल्यु० रिच

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-८-१९०८

सामग्रीके साधन-सूत्र

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स : उपनिवेश-कार्यालय, लन्दनके पुस्तकालयमें सुरक्षित कागजात। देखिए, खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

इंडिया (१८९०–१९२१) : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लन्दन-स्थित ब्रिटिश समिति द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक पत्र। देखिए, खण्ड २, पृष्ठ ४१०।

इंडिया ऑफिस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स : भूतपूर्व इंडिया ऑफिसके पुस्तकालयमें सुरक्षित भारतीय मामलोंसे सम्बन्धित वे कागजात और प्रलेख जिनका सम्बन्ध भारत-मन्त्रीसे था।

इंडियन ओपिनियन (१९०३–६१): साप्ताहिक-पत्र जिसका प्रकाशन डर्बनमें आरम्भ किया गया; किन्तु जो बादमें फीनिक्स ले जाया गया। इसमें अंग्रेजी और गुजराती, दो विभाग होते थे। प्रारम्भमें हिन्दी और तमिल विभाग भी थे।

जीवननुं परोढ : गुजराती पुस्तक, लेखक प्रभुदास गांधी, प्रकाशक नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद; हिन्दी संस्करण, **जीवन-प्रभात**, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९५४।

महात्मा गांधीना पत्रो : सम्पादक, डी० एम० पटेल; सेवक कार्यालय, अहमदाबाद; १९२१।

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ : प्रिटोरियामें दक्षिण आफ्रिकी सरकारके कागजातका संग्रहालय। यहाँ प्रधानमन्त्री और ट्रान्सवाल-गवर्नरके कागज-पत्रोंके साथ-साथ अन्य कागजात भी संग्रहीत हैं।

रैंड डेली मेल : जोहानिसबर्गका दैनिक।

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद : गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल और १९३३ तकके भारतीय कालके कागज-पत्रोंका संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

स्टार : जोहानिसबर्गका सांध्य दैनिक।

ट्रान्सवाल लीडर : जोहानिसबर्गका दैनिक।

संडे टाइम्स : जोहानिसबर्गसे प्रति रविवारको सुबह प्रकाशित होनेवाला साप्ताहिक-पत्र।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(जनवरी-अगस्त, १९०८)

जनवरी १ : ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम[1] (१९०७ की क्र० सं० १५) लागू हुआ। ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम और ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम[2] (१९०७ का कानून २) के विरोधमें फोर्डसबर्गकी सूरती मस्जिदमें सार्वजनिक सभा।

जनवरी ३ : नवाब खाँ और समुन्दरखाँपर ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत मुकदमा चलाया जा रहा था; गांधीजी उनकी पैरवी करनेके लिए जोहानिसबर्ग न्यायालयके समक्ष उपस्थित हुए।

जनवरी ४ : ब्रिटिश भारतीय संघने राजस्व आदाता (रिसीवर ऑफ रेवेन्यूज)को सूचित किया कि यदि उन भारतीयोंको अनुमतिपत्र नहीं दिया जाता, जिन्होंने ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन नहीं कराया है, तो वे बिना अनुमतिपत्रोंके व्यापार करेंगे।

गांधीजीने 'स्टार' को एक पत्र लिखकर सूचित किया कि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम भारतीयोंपर लगाये गये एक ऐसे आरोपपर आधारित है, जिसे साबित नहीं किया गया।

मेविलमें स्मट्सने भाषण देते हुए कहा कि भारतीयोंको उनके नेताओंने गुमराह किया है; और यह भी घोषणा की कि देशकी कोई भी संसद ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमको रद नहीं कर सकती।

जनवरी ४ के बाद : गांधीजीने मेविलके भाषणके बारेमें जनरल स्मट्ससे मुलाकातकी कोशिश की; किन्तु जनरल स्मट्सने मिलनेसे इनकार कर दिया।

जनवरी ६ : 'स्टार' और 'ट्रान्सवाल लीडर' से एक मुलाकातमें गांधीजीने भारतीयोंके ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम विरोधी रुखका संक्षेपमें वर्णन किया।

जनवरी ८ : रायटरको बताया कि यदि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम मुल्तवी कर दिया जाये, तो सभी भारतीय एक महीनेके भीतर पंजीयन करा लेंगे।

जनवरी १० के पहले : 'इंडियन ओपिनियन' में लिखकर भारतीयोंके जेल और देश-निकाला सहनेके दृढ़ इरादेको दोहराया।

"पैसिव रेज़िस्टेंस" के लिए गुजरातीमें 'सत्याग्रह' शब्द तय किया।

जनवरी १० : ट्रान्सवालके भारतीयोंको दृढ़ रहनेके लिए अन्तिम सन्देश दिया।

'स्टार'को आश्वासन दिया कि यदि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमको अनिवार्य न रखा जाये, तो भारतीय अपनी इच्छासे पंजीयन करा लेंगे।

अपने मुकदमेके पहले एक सभामें व्याख्यान दिया।

१. ट्रान्सवाल इमिग्रैंट्स रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट।

२. ट्रान्सवाल एशियाटिक रजिस्ट्रेशन ऐक्ट।

मुकदमा हुआ और २ महीनेकी सजा मिली।

'रैंड डेली मेल' को अन्तिम भेंट देते हुए घोषित किया कि उन्होंने यह संघर्ष अत्यन्त विनम्र भावसे भगवत्-भक्तिपूर्वक शुरू किया है।

जनवरी २१ : श्री कार्टराइट जेलमें गांधीजीसे मिले, और दोनोंमें यह बात तय हुई कि यदि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम रद किया जाये तो बदलेमें भारतीय स्वेच्छया पंजीयन करा लेंगे। गांधीजीने एशियाई कैदियोंको दी जानेवाली खूराकके सम्बन्धमें जेल-निदेशकको एक प्रार्थनापत्र भेजा।

जनवरी २७ : भारतके अहमदनगर और अन्य शहरोंमें सभाएँ हुईं, जिनमें ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके विरुद्ध रोष प्रकट करते हुए साम्राज्य सरकारका ध्यान आकर्षित किया गया।

जनवरी २८ : ट्रान्सवाल एशियाई कानूनपर 'नीली पुस्तक'[1] लन्दनमें प्रकाशित हुई।

लन्दनके न्यू रिफॉर्म क्लबकी एक सभामें सर विलियम वेडरबर्नने कहा कि साम्राज्य सरकार ट्रान्सवालकी प्रतिरक्षापर ३० लाख पौंड प्रतिवर्ष खर्च करती है, इसलिए उसे अधिकार है कि वह उपनिवेशमें रहनेवाले भारतीयोंके साथ साम्राज्यकी परम्पराओंके अनुसार व्यवहार किये जानेकी माँग करे।

सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरीने चेतावनी दी कि यह "साम्राज्य-सरकारके लिए खतरा है", और मुहम्मद अली जिन्नाने[2] कहा कि ट्रान्सवालके भारतीयोंके साथ जो अपमानजनक व्यवहार किया जा रहा है, उसके विरोधमें सारे भारतीय एक हैं।

कार्टराइटने २१ तारीखकी बातचीतको आगे बढ़ाते हुए समझौतेसे सम्बन्धित एक पत्र जेलमें ले जाकर गांधीजीको दिया। यह मसविदा स्वयं उन्होंने या जनरल स्मट्सने तैयार किया था। गांधीजीने उसमें कुछ सुधार किये और साढ़े बारह बजे रातको क्विन और नायडूके साथ उसपर हस्ताक्षर किये।

अढ़ाई बजे दिनको कार्टराइट समझौतेसे सम्बन्धित वह पत्र लेकर जनरल स्मट्ससे मिलने प्रिटोरियाके लिए रवाना हो गये।

पाँच बजे शाम कार्टराइटने फोनसे खबर दी कि जनरल स्मट्सने पत्रकी शर्तोंको स्वीकार कर लिया है।

जनवरी २९ : भारतके बम्बई शहरमें महाविभव[3] आगाखाँकी अध्यक्षतामें ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके विरोधमें सभा हुई और उसमें साम्राज्य सरकारसे हस्तक्षेप करनेकी अपील की गई। यदि वह हस्तक्षेप न करे तो, कहा गया कि भारतको दक्षिण आफ्रिकियोंके साथ जवाबी कार्रवाईकी नीतिका अवलम्बन करनेकी छूट दी जाये।

जनवरी ३० : कार्यकारी सहायक उपनिवेश सचिवने समझौतेके पत्रकी स्वीकृति एक पत्र लिखकर भेजी।

१. ब्ल्यू बुक या सरकारी रिपोर्ट।

२. मुहम्मद अली जिन्ना अंजुमन-इ-इस्लाम बम्बईकी ओरसे इंग्लैंड जाकर ट्रान्सवालके भारतीयोंकी स्थिति स्पष्ट करने और उपनिवेशोंमें एशियाइयोंकी समस्या सुलझानेकी दिशामें जनमत तैयार करनेके लिए नियुक्त किये गये थे। **इंडियन ओपिनियन,** ११-८-१९०८।

३. हिज हाइनेस।

गांधीजी प्रिटोरिया ले जाये गये। जनरल स्मट्ससे भेंट हुई। स्वेच्छया पंजीयन[1] और उसके वैधीकरणके[2] बारेमें समझौता हो गया।

चैमनेसे सूचना मिली कि एशियाइयों द्वारा कराये गये स्वेच्छया पंजीयनको ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत वैध करनेका प्रस्ताव है।

गांधीजीने स्मट्ससे दूसरी मुलाकातकी कोशिश की, किन्तु सफल नहीं हुए।

'रैंड डेली मेल' और 'ट्रान्सवाल लीडर' को भेंट देते हुए समझौतेको स्पष्ट किया। जेलमें अपने प्रति किये गये व्यवहारके विषयमें भी कुछ कहा।

अर्द्धरात्रिको एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया। सभा हमीदिया मस्जिदके अहातेमें हुई जिसमें लगभग एक हजार श्रोता उपस्थित थे।

जेलसे बाकायदा मुक्त किये गये।

ब्रिटिश भारतीय संघकी बैठकमें समझौतेको समझाते हुए व्याख्यान दिया।

रायटरको भेंट देते हुए कहा कि अधिवासका अधिकार-प्राप्त भारतीयोंको भावी दक्षिण आफ्रिकी राष्ट्रका अंग माना जाना चाहिए; श्री स्मट्ससे इस बातपर सहमत हुए कि नेटालमें गिरमिटिया प्रथा बन्द कर दी जानी चाहिए।

जनवरी ३१: सारे सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये गये। अखबारोंके प्रतिनिधियोंसे एक भेंटमें श्री स्मट्सने कहा कि समझौतेके वैध होने तक एशियाई बिना परवानोंके व्यापार कर सकते हैं; कहा कि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमको रद करनेकी मांग असंगत है, और भारतीय बराबर आग्रहशील नहीं रहे हैं कि उसे रद किया ही जाये।

फरवरी १: श्री स्मट्सको लिखा कि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत स्वेच्छया पंजीयनको वैध बनानेका विचार ठीक नहीं है; और यह सुझाया कि इसे ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत वैध बना देना चाहिए।

समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंको मुलाकात देते हुए इस आरोपका खण्डन किया कि ब्रिटिश भारतीय चोरी-छिपे प्रवेश कर रहे हैं। यह आरोप ही ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमका आधार था।

फरवरी २: जोहानिसबर्गमें ब्रिटिश भारतीय संघकी सभामें घोषणा की कि यदि अँगुलियोंकी छाप देनेवाले व्यक्तियोंपर हमला होना ही है, तो मैं सबसे पहले अँगुलियोंकी छाप दूँगा।

फरवरी ३: जनरल स्मट्ससे मिले। श्री चैमनेकी उपस्थितिमें स्मट्सने अपने इस वचनको दोहराया कि यदि ट्रान्सवालके एशियाई स्वेच्छासे पंजीयन करा लेंगे, तो ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम रद कर दिया जायेगा।

भारतमें वाइसरायकी कौंसिलमें श्री गोखलेने कहा कि ट्रान्सवालके भारतीयोंके साथ अन्यायपूर्ण और अपमानजनक व्यवहार हो रहा है; और पूछा कि क्या भारत सरकार उसके विरुद्ध जनतामें व्याप्त रोषकी गम्भीरतासे अवगत है। सरकारकी ओरसे इसका जवाब देते हुए श्री फिंडलेने कहा कि हमें ट्रान्सवालकी अपनी प्रजाके साथ सहानुभूति है; हमें आशा है कि समझौतेकी जो बातचीत चल रही है उसके फलस्वरूप उनकी उचित शिकायतें दूर हो जायेंगी।

१. वालंटरी रजिस्ट्रेशन।

२. वैलिडेशन।

फरवरी ४ : लॉर्ड ऐम्टहिलने लॉर्ड सभामें ध्यानाकर्षण प्रस्ताव[1] रखा। लॉर्ड कर्जन भी बोले।[2]

फरवरी ५ : लन्दनके 'टाइम्स' ने उपनिवेश कार्यालयको दोष दिया कि उसने ट्रान्सवालकी सरकारपर साम्राज्यके हितोंकी रक्षाके लिए जोर नहीं डाला और "सूझ-बूझकी कमी" दिखाई। यदि वैसा किया जाता, तो समझौता पहले भी हो सकता था।

पत्रने प्रजातियोंसे[3] सम्बन्धित प्रश्नोंके बारेमें स्वशासित उपनिवेशोंसे अपील की कि वे एक सर्वसम्मत "साम्राज्यीय रुख"[4] अपनायें।

फरवरी ५–६ (?) : स्मट्सने सार्वजनिक भाषणोंमें और समाचारपत्रोंको भेंट देते हुए वचन दिया कि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके उल्लंघन तथा अनुमतिपत्रोंके बिना व्यापारके कारण गिरफ्तारियाँ नहीं की जायेंगी। इस बीचमें कानून भी रद नहीं होगा। फिर भी स्वेच्छासे कराये गये पंजीयनोंको वैध बनानेके लिए संसदके आगामी सत्रमें कानून बना दिया जायेगा। उन्होंने यह भी घोषित किया कि समझौतेका उद्देश्य उपनिवेशमें एशियाई आबादीको कम करना है।

फरवरी ८ : 'इंडियन ओपिनियन' में स्वेच्छया पंजीयनकी[5] पद्धतिको स्पष्ट करते हुए गांधीजीने शिक्षित भारतीयोंको सलाह दी कि वे स्वेच्छासे पंजीयन करानेके लिए दिये गये अपने प्रार्थनापत्रोंपर बजाय अँगुलियोंकी छाप देनेके हस्ताक्षर करनेके विकल्पको न अपनायें।

फरवरी १० : स्वेच्छया पंजीयन प्रारम्भ हुआ।

मीर आलमखाँ और अन्य व्यक्तियोंने गांधीजीपर हमला किया; श्री डोकके घरमें आहत अवस्थामें पड़े हुए उन्होंने अपील की कि हमलावरोंको क्षमा कर दिया जाये। एशियाइयोंसे अपील की कि वे स्वेच्छया अंगुलियोंके निशान दें।

फरवरी ११ : ऑक्सफोर्डमें डॉक्टर जी० यू० पोपकी मृत्यु।

फरवरी १५ : 'इंडियन ओपिनियन' में "समझौतेके बारेमें प्रश्नोत्तरी" शीर्षक गांधीजीका लेख प्रकाशित हुआ।[6]

फरवरी २२ : गांधीजीने 'इंडियन ओपिनियन' के फरवरी २२ और २९ के अंकोंमें उन परिस्थितियोंको समझाते हुए जिनमें समझौता किया गया था, भारतीय समाजके कर्तव्योंको स्पष्ट किया; ट्रान्सवालके हिन्दू और मुसलमानोंकी एकतापर जोर दिया।

स्मट्सको पत्र लिखा और उसके साथ ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके संशोधनके लिए विधेयकका मसविदा भेजा। यह सुझाया कि शान्ति-रक्षा अध्यादेश और ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम रद कर दिये जायें।

१. कॉल-अटेंशन मोशन।

२. देखिए परिशिष्ट १२।

३. रेसेज।

४. ऐन ऐग्रीड इम्पीरियल ऐटिट्यूड।

५. वालंटरी रजिस्ट्रेशन।

६. अपनी पुस्तक **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास**में गांधीजीने लिखा है कि यह संवाद उन्होंने फीनिक्समें लिखा था — अर्थात् मार्च ६ के बाद।

फरवरी २९ : जोहानिसबर्गमें स्वेच्छया पंजीयनके लिए दिये गये प्रार्थनापत्रोंकी संख्या ३,४०० तक पहुँच गई।

मार्च ५ : गांधीजी पठानों और अन्य लोगोंमें समझौतेके बारेमें फैले हुए भ्रमको दूर करनेके लिए डरबन गये।

नेटाल भारतीय कांग्रेसके तत्त्वावधानमें डर्बनमें सार्वजनिक सभा हुई। वहाँ उन्होंने भाषण दिया।[1] पठानोंने फिरसे उनपर हमला करनेकी कोशिश की।

मार्च ६ : डर्बनमें पठानोंसे मिले। पठानोंने यही कहा कि गांधीजीने कौमको धोखा दिया है। गांधीजीने मेल-मिलापके इस प्रयत्नको असफल बताया।

स्वास्थ्य लाभके बाद 'अपने कुटुम्ब' से मिलनेके लिए कुछ 'आनन्दी व्यक्तियों' के साथ फीनिक्सके लिए रवाना हुए।

मार्च १० : लन्दनमें सर लेपेल ग्रिफिनकी मृत्यु।

मार्च १४ : ब्रिटिश भारतीय संघने उन गोरोंको भोज और उपहार दिये जिन्होंने सत्याग्रह-संघर्षमें मदद पहुँचाई थी। कहा जाता है कि दक्षिण आफ्रिकामें इस प्रकारका यह पहला ही आयोजन था।

मार्च १७ : कलकत्तामें लॉर्ड मिंटोने घोषणा की कि उत्तर प्रदेशमें फसलोंके खराब होनेसे कोई पाँच करोड़ आदमियोंपर संकट आ गया है। उत्तर प्रदेशमें अकालकी स्थिति सितम्बर १९०७ में ही उत्पन्न हो गई थी।

मार्च १८ : जोहानिसबर्गमें स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंकी संख्या ५,०९० तक पहुँच गई।

मार्च २१ : 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संचालक और सम्पादक टी० जे० बेनेटने लॉर्ड ऐम्टहिल-को लिखा कि बम्बईकी वह सार्वजनिक सभा, जो आगाखाँकी अध्यक्षतामें हुई थी, प्रातिनिधिक थी। उसमें यूरोपीय व्यापारियों और सरकारी अफसरोंको मिलाकर सभी जातियोंके लोगोंने क्षोभ व्यक्त किया था।

मार्च २४ : कैनडामें सरकारने 'एस० एस० मॉन्टईगल' से पहुँचनेवाले १४६ भारतीयोंको देश-निकालेका आदेश दिया था; वहाँके सर्वोच्च न्यायालयने उसे रद कर दिया और वे भारतीय छोड़ दिये गये।

मार्च २६ : क्लार्क्सडॉर्पमें बोलते हुए लॉर्ड सेल्बोर्नने कहा कि "पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम है" और चूँकि "गोरोंकी सभ्यता खर्चीली है", इसलिए वे भारतीय व्यापारियोंसे स्पर्धा नहीं कर सकते। उन्होंने सुझाव दिया कि साम्राज्यके जो प्रदेश अभीतक आबाद नहीं हुए हैं वे एशियाइयोंके बसनेके लिए सुरक्षित कर दिये जायें। "ब्रिटिश और बोअर लोग अंग्रेजी साम्राज्यमें बराबरीके साझेदार हैं।"

मार्च ३० के पहले : उपनिवेश-सचिव, डॉ० सी० ओ'ग्रेडी गबिन्सने घोषित किया कि नेटाल सरकारका इरादा गिरमिटिया मजदूरोंका आगमन, और १० वर्षके बाद 'अरब' व्यापा-रियोंको परवाना देना, बन्द करनेके लिए कानून बनानेका है।

१. अप्राप्य है।

मार्च ३० : असाधारण सरकारी 'गजट' में ट्रान्सवाल स्वर्ण-कानून[1] प्रकाशित हुआ।

अप्रैल ६ : एच० एस० एल० पोलकने ट्रान्सवाल सर्वोच्च न्यायालयमें वकालतकी सनद ली।

अप्रैल १० : ट्रान्सवाल नगरपालिका संघने इस आशयका प्रस्ताव पास किया कि वतनी और रंगदार व्यक्तियोंको नगरपालिकाके चुनावमें मताधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। उन्हें जमीन रखनेका अधिकार भी नहीं होना चाहिए और पृथक् बस्तियोंमें रहने और 'बाजारों' में व्यापार करनेपर बाध्य किया जाना चाहिए।

अप्रैल १२ के पहले : हैटफोक कांग्रेसकी बैठक हुई। उसमें कहा गया कि सभी एशियाइयोंको 'बाजारों' में भेज दिया जाना चाहिए। जनरल स्मट्सने आशा प्रकट की कि नगर-पालिका (एकीकरण) विधेयक[2] 'गोरोंके बीच रंगदार लोगोंके रहनेसे' उत्पन्न समस्या हल कर सकेगा।

अप्रैल १९ : नेटाल कृषि संघ (नेटाल एग्रिकल्चरल यूनियन) ने भारतीयोंका आगमन रोक देनेके प्रस्तावका विरोध किया। घोषित किया कि नेटालके उद्योगोंके लिए भारतीय मजदूर अनिवार्य हैं।

अप्रैल २१ : भारतीय तार-सेवामें हड़ताल।

अप्रैल २२ : सर हेनरी कैम्पबेल बैनरमैनकी मृत्यु।

अप्रैल २४ के पहले : लॉर्ड ऐम्टहिलने कहा कि उपनिवेशोंमें पूर्वी देशोंके लोगोंके प्रवास सम्बन्धी प्रश्नपर एक अखिल साम्राज्यीय सम्मेलनमें विचार-विमर्श होना चाहिए।

अप्रैल २५ के पहले : ब्रिटिश भारतीय संघने स्मट्सको पत्र लिखकर ट्रान्सवाल स्वर्ण-कानूनमें संशोधनके मसविदेके प्रति विरोध प्रकट किया।

अप्रैल २६ के पहले : प्रगतिवादी दलके सम्मेलनमें सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिकने कहा कि उनका विश्वास "दमनशील कानून" और "रंगभेदकी नीति" में नहीं है। उन्होंने गोरोंसे कहा कि वे वतनियोंसे ज्यादा काम करके अपनी योग्यता सिद्ध करें।

अप्रैल २७ के पहले : गांधीजी फीनिक्स (?) से जोहानिसबर्ग लौटे।

अप्रैल ३० : भारतके मुजफ्फरपुर नगरमें बम फेंकनेकी घटना हुई।
बिना परवाना व्यापार करने वाले सत्याग्रहियोंके लिए परवाना लेनेकी अन्तिम तिथि। ये परवाने स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंको दिसम्बर ३१ तक, और जिन लोगोंने स्वेच्छया पंजीयन नहीं कराया उन्हें जून ३० तक जारी किये गये।

मई २ : तारसे प्राप्त सूचनाके अनुसार २० हजार अफगानोंकी एक फौज भारतीय सीमामें प्रविष्ट हुई। "गैर-सरकारी" स्तरपर युद्ध आरम्भ।

मई ३ : 'नवशक्ति' के कार्यालयमें "बमका कारखाना" मिला। अरविंद घोष, जो पहले 'युगान्तर' में काम करते थे, अन्य ५० व्यक्तियोंके साथ गिरफ्तार किये गये।

मई ८ के पहले : नेटाल-विधेयक सरकारी 'गज़ट' में प्रकाशित हुआ।

१. गोल्ड लॉ।

२. ट्रान्सवाल म्यूनिसिपल (कन्सॉलिडेशन) बिल।

मई ९ के पहले: राष्ट्रीय सम्मेलन (नेशनल कन्वेंशन) के आयोजनसे पूर्व एक अन्तर-उपनिवेशीय सम्मेलन, अन्तर-प्रान्तीय रेलवे और चुंगीसे सम्बन्धित बातोंकी चर्चा करनेके लिए प्रिटोरियामें हुआ, किन्तु उसमें केवल जनरल स्मट्स द्वारा पेश और सब उपनिवेशोंको मिलाकर दक्षिण आफ्रिका-संघके तत्काल निर्माणकी पद्धति निर्धारित करनेवाले ६ प्रस्ताव पास किये गये। बैठकें एक सप्ताहसे कम चलीं।

मई ९: एशियाइयों द्वारा स्वेच्छासे पंजीयन करानेकी अन्तिम तिथि; ८,७०० प्रार्थनापत्र प्राप्त और ६,००० स्वीकृत।

मई १२: चैमनेने तार देकर सूचित किया कि उपनिवेशमें मई ९ के बाद आनेवाले सभी एशियाइयोंको ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत पंजीयन कराना चाहिए। गांधीजीने स्मट्सको लिखा कि समझौतेमें ऐसी कोई शर्त नहीं थी; इस भ्रमका निराकरण किया जाये।

मई १३: ट्रान्सवाल नगरपालिका (एकीकरण) विधेयक सरकारी गज़टमें प्रकाशित हुआ। विधेयकके द्वारा नगरपालिकाओंको व्यापारियोंसे स्वयं सुलझ सकनेका अधिकार दिया जानेवाला था। उसके द्वारा अनुमतिपत्रोंसे सम्बन्धित प्रशासकीय निर्णयोंके विरुद्ध फेरीवालोंका न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार भी ले लिया जानेवाला था।

मई १४: गांधीजीने कार्टराइटको लिखा कि सम्भव है मध्यस्थताके लिए उनकी सेवाएँ आवश्यक हों।

लेनको लिखा कि समझौतेमें दी गई तीन महीनेकी अवधिका यह मंशा कभी नहीं था कि वह उपनिवेशमें वापस आनेवाले या वापस आनेका अधिकार रखनेवाले एशियाइयोंपर लागू की जाये। जनरल स्मट्ससे आग्रह किया कि नवागन्तुकोंको स्वेच्छया पंजीयन कराने दिया जाये और अधिनियम रद कर दिया जाये।

मई १५ के पहले: श्रम उपमन्त्री मेकैंजी किंगने, जो साम्राज्यीय सरकारसे भारतीय प्रवासियोंके विषयमें बातचीत करके २६ अप्रैलको कैनडा लौट आये थे, कैनडाकी संसदमें कहा कि इस प्रश्नको हल करनेके लिए "भारत अथवा कैनेडामें किसी प्रकारके कानून बनानेकी आवश्यकता" नहीं है।

मई १५: लेनने गांधीजीको लिखा कि उपनिवेश-सचिव पूर्व-निर्णयोंसे नहीं टल सकते।

मई १६ के पहले: गांधीजी कार्टराइटसे मिले, स्मट्ससे भेंट करनेका निर्णय हुआ।

'नेटाल मर्क्युरी', 'टाइम्स ऑफ नेटाल', 'स्टार' और 'लीडर' ने नेटाल विधेयकोंकी निन्दा की।

मई १६: 'स्टार' को भेंट देते हुए गांधीजीने गिरमिटिया प्रवासपर प्रतिबन्ध लगानेके उद्देश्यसे निर्मित नेटाल विधेयकका स्वागत किया। अन्य दो विधेयकोंको बुरा बताया।

जब जनरल स्मट्सने समझौतेमें दिये गये तीन महीनेकी अवधिके बाद प्रवेश करनेवाले अधिवासके अधिकारी एशियाइयोंको स्वेच्छया पंजीयन करानेकी सुविधा देनेसे इनकार किया तब गांधीजीने अपने साप्ताहिक संवाद-पत्रमें जनरल स्मट्सपर दगा देनेका आरोप

लगाया; तथापि आशा व्यक्त की कि वे ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमको रद कर देंगे।[1]

मई १७ : ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री ईसप मियाँपर एक पठान द्वारा हमला।

मई १८ : जोहानिसबर्ग वाई० एम० सी० ए० में भाषण करते हुए गांधीजीने दावा किया कि रंगदार कौमें साम्राज्यका एक अभिन्न अंग हैं। उन्होंने अंग्रेजोंके इस उद्देश्यमें आस्था प्रकट की कि वे अपने अधीन कौमोंको अपने बराबर दर्जा देना चाहते हैं।

मई २० : 'इंडियन ओपिनियन' में पठान-कौमसे अपील की कि वे इक्के-दुक्के पठानों द्वारा की जानेवाली हिंसात्मक कार्रवाइयोंसे अपनी असहमति प्रकट करें।

अपने संवाद-पत्रमें ईसप मियाँपर किये गये हमलेके विषयमें लिखते हुए उन्होंने कहा कि यदि किसीमें सत्याग्रह करनेका साहस न हो तो वह आत्मरक्षाके लिए शस्त्रोंका सहारा ले सकता है।

लॉर्डसभामें लॉर्ड ऐम्टहिलने नेटाल विधेयकोंके सम्बन्धमें साम्राज्यीय सरकारकी निष्क्रियताकी शिकायत की। उन्होंने कहा कि इन विधेयकोंसे ट्रान्सवालको नेटालका अनुसरण करनेकी दिशामें बढ़ावा मिला है और वह क्रूगर-कालसे भी अधिक अत्याचारी नीति लागू करनेकी कोशिश कर रहा है।

मई २१ : गांधीजीने स्मट्सको ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम रद करनेकी सार्वजनिक घोषणा करनेके लिए लिखा।

मई २२ : उत्तरमें लेनने लिखा कि जनरल स्मट्स यह प्रार्थना माननेमें असमर्थ हैं।

'ट्रान्सवाल लीडर' ने समाचार दिया कि सरकार स्वेच्छया पंजीयनको वैध बनानेके लिए विधेयक पेश कर रही है और इसके अन्तर्गत पंजीयन करानेवाले लोगोंपर ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम लागू नहीं होगा।

एशियाई पंजीयकने ब्रिटिश भारतीय संघको लिखा कि यदि एशियाई उपनिवेशमें नाबालिगोंको लायेंगे तो ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत उन्हें सजा मिलेगी।

मई २३ : ब्रि० भा० सं० के अध्यक्षने उत्तर देते हुए कहा कि भारतीयोंने समझौतेके अन्तर्गत स्वेच्छया पंजीयन कराया है इसलिए वे ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमको एक मृतपत्र मानते हैं और उसे लागू करना समझौतेका उल्लंघन होगा।

कार्टराइटने गांधीजीको ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन वैधीकरण विधेयकका मसविदा दिखाया।

मई २६ : ब्रिटिश भारतीय संघने उपनिवेश-सचिवको सूचित किया कि उन्होंने समझौतेमें दिये गये आश्वासनको पूरा नहीं किया है; इसलिए ब्रिटिश भारतीय स्वेच्छया पंजीयनके लिए दिये गये अपने प्रार्थनापत्र वापस लेनेका निर्णय करते हैं।

गांधीजी, बावजीर, नायडू और लिअंग क्विनने चैमनेको लिखकर अपने प्रार्थनापत्र वापस माँगे।

१. देखिए **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास,** अध्याय २५।

मई २७ : ब्रिटिश भारतीय संघकी समितिकी बैठकमें परिस्थिति समझाई और समितिने फिर सत्याग्रह शुरू करनेकी बात स्वीकार की।

मई २९ : प्रार्थनापत्रोंके फार्म वापस करनेके लिए चैमनेको तार दिया।

मई ३० के पहले : ब्रिटिश भारतीय संघकी विभिन्न नगर-समितियोंको गश्ती-पत्र भेजा। उसके द्वारा स्वेच्छया पंजीयनके प्रार्थनापत्र वापस लेनेको कहते हुए फिर सत्याग्रह शुरू करनेकी सूचना दी। गांधीजीने फिरसे सत्याग्रहियोंकी निःशुल्क पैरवी करनेकी बात दोहराई।

मई ३० : 'इंडियन ओपिनियन' में एक पत्र लिखकर घोषणा की कि सत्याग्रह फिरसे शुरू किया जायेगा।

गांधीजीके २९ तारीखके तारका चैमनेने तारसे जवाब दिया। उन्होंने कहा कि गांधीजीने ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके संशोधनार्थ विधेयकका जो मसविदा भेजा था वह कहीं खो गया है; उसकी एक प्रति भेजनेका अनुरोध भी किया; दूसरी प्रति भेज दी गई।

गांधीजीने जनरल स्मट्ससे फरवरी १ और २२ के बीच किये गये पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करनेकी अनुमति माँगते हुए लेनको पत्र लिखा।

जून १ के पहले : दक्षिण रोडेशियामें एशियाइयोंके आव्रजनपर नियन्त्रण लगानेवाले अध्यादेशका मसविदा 'गज़ट' में प्रकाशित हुआ।

जून १ : गांधीजीको फोनपर सूचना दी गई कि जनरल स्मट्सने भारतीय प्रश्नपर विचार करनेके लिए मन्त्रिमण्डलकी बैठक बुलाई है; वे अपना जवाब जून २ को भेजेंगे।

जून २ के पहले : गांधीजी विचेस्टर हाउसमें श्री चैमनेसे मिले।

जून २ : ट्रान्सवालके गोरोंमें भारतीय प्रश्नसे सहानुभूति रखनेवाले प्रमुख गोरे इकट्ठे हुए और उन्होंने फिर उनकी माँगका समर्थन किया।

साम्राज्यीय-संसदमें यह प्रश्न किया गया कि क्या समझौतेके भंग और सत्याग्रहके पुनः प्रारम्भ होनेकी सम्भावनाको देखते हुए सम्राट्की सरकार हस्तक्षेपका विचार नहीं कर रही है।

जून ४ : वैधीकरण विधेयकके एक नये मसविदेपर विचार करनेके लिए गांधीजी जनरल स्मट्ससे ६ जूनको मिलनेके लिए निमन्त्रित किये गये।

लेनने एक अन्य पत्रके द्वारा जनरल स्मट्ससे हुए पत्र-व्यवहारके प्रकाशनकी अनुमति देनेसे इनकार किया।

जून ६ : गांधीजी जनरल स्मट्ससे मिले। जो लोग पंजीयन करा चुके थे उनके स्वेच्छया कराये गये पंजीयनको वैध बनानेके तरीके, भविष्यमें आनेवाले एशियाई प्रवासियोंके स्वेच्छया पंजीयन करानेके अधिकार और गांधीजी द्वारा प्रस्तुत ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक संशोधन अधिनियमके मसविदेपर विशेष रूपसे विचार हुआ। स्मट्सने स्वीकार किया कि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम बिलकुल खराब है और उसकी कोई उपयोगिता नहीं है। प्रस्तावित कानूनके अन्तर्गत किस वर्गके एशियाइयोंका अधिवास-अधिकार मान्य किया जाये, इस प्रश्नपर मतभेद पैदा हो गया। गांधीजीने

ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमको रद करानेका आश्वासन माँगा। कहा कि यदि वह रद नहीं किया गया तो प्रार्थनापत्रोंको वापस करानेके लिए सर्वोच्च-न्यायालयमें अर्जी दी जायेगी। कार्टराइटको लिखा कि वे प्रगतिवादियोंको ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके रद किये जानेमें बाधक न बननेके लिए समझायें।

जून १२: जनरल स्मट्सको तार किया कि एक बड़े वकीलकी सलाहपर उन्होंने सर्वोच्च-न्यायालयके समक्ष प्रार्थनापत्रोंकी वापसीके लिए मुकदमे दायर करना तय किया है। जनरल स्मट्सने अगले दिन मिलनेके लिए निमन्त्रित किया।

जून १३ के पहले: 'इंडियन ओपिनियन' में रोडेशिया विधेयकके विरोधमें लिखा। उसमें भारतीयोंके अनिवार्य पंजीयनकी बात थी।

जून १३: जनरल स्मट्ससे मिले। जनरल स्मट्सने एक हफ्तेमें निर्णय करनेका वचन दिया। ब्रिटिश भारतीय संघकी समितिकी बैठकमें सर्वोच्च न्यायालयके समक्ष जानेकी बात एक हफ्तेके लिए मुल्तवी की गई।

उसी दिन एक पत्रमें बातचीतका उल्लेख करके गांधीजीने दलीलें देते हुए कहा कि ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमको निम्नलिखित लोगोंके अधिकारोंकी रक्षा करनी चाहिए: (१) युद्धसे पहलेके शरणार्थी, (२) तीन पौंडी पंजीयन प्रमाणपत्र[1] और शान्ति-रक्षा अध्यादेशके[2] अन्तर्गत अनुमतिपत्र-प्राप्त व्यक्ति; और कहा कि इस समझौतेके कारण आगे आनेवाले शिक्षित प्रवासियोंके हक न मारे जायें।

जून १६: जोहानिसबर्गके पत्रोंमें भ्रामक समाचार प्रकाशित हुआ कि साम्राज्य सरकारके हस्तक्षेपसे ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम रद किया जानेवाला है।

जून १९: गांधीजीको तार द्वारा दूसरे दिन श्री स्मट्ससे मुलाकातका निमन्त्रण।

जून २०: गांधीजी स्मट्ससे मिले। उन्होंने फिर २२ जूनको मिलनेके लिए कहा और कहा कि उस समय "जो दो-एक मामूली मुद्दे बच गये हैं उनपर विचार" किया जायेगा।

जून २२: 'ट्रान्सवाल लीडर' में सम्पादकीय; उसमें कहा गया कि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम रद हो जायेगा।

जनरल स्मट्सने मुलाकातके समय गांधीजीको ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक संशोधन अधिनियमका मसविदा दिखाया — इसे भूत और भविष्यमें स्वेच्छया पंजीयन करानेवाले सभी व्यक्तियोंके लिए "उत्तम विधेयक" कहा गया। किन्तु इसमें प्रवासियोंके वे तीन वर्ग[3] सम्मिलित नहीं थे और उन्हें निषिद्ध प्रवासी माना गया था। शिक्षित भारतीयोंके प्रश्नको सर्वोच्च न्यायालयके सामने ले जानेका गांधीजीका प्रस्ताव स्मट्सने अमान्य कर दिया। स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंके दावोंकी एशियाई पंजीयक द्वारा अस्वीकृतिकी अदालती जाँच करानेके अधिकारको भी स्मट्सने नहीं माना। गांधीजीने

१. पाउंड थ्री रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट्स।
२. पीस प्रिजर्वेशन ऑर्डिनेन्स।
३. देखिए इसी क्रममें जून १३।

जब इन शर्तोंको स्वीकार नहीं किया तब जनरल स्मट्सने ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमको बनाये रखने और स्वेच्छया कराये गये पंजीयनको वैध बनानेका अपना निर्णय घोषित किया।

समाचारपत्रोंको दी गई मुलाकातों तथा पत्रोंमें गांधीजीने घोषणा की कि यह समझौतेका उल्लंघन है और वे सर्वोच्च न्यायालयके सामने स्वेच्छया पंजीयन सम्बन्धी प्रार्थना-पत्रोंको वापस करानेके लिए जायेंगे।

ब्रिटिश भारतीय संघकी समितिने सर्वोच्च न्यायालयमें परीक्षात्मक मुकदमा दायर करनेका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

एक वक्तव्यमें समझौता वार्ता भंग होनेके कारणोंपर प्रकाश डालते हुए श्री स्मट्सने कहा कि जनवरी २८ के समझौता-पत्रमें ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम रद करनेका कोई उल्लेख नहीं था। उन्होंने इस शर्तपर इस अधिनियमको रद करना स्वीकार किया कि भारतीय संशोधन विधेयकमें तीन वर्गके प्रवासियोंको शामिल करनेका आग्रह छोड़ दें। चूँकि गांधीजी इसके लिए राजी नहीं हुए, अतः स्वेच्छया पंजीयनको एक पृथक कानूनके जरिये वैध करनेका निश्चय व्यक्त किया।

जून २३ के पहले: अस्वातने चैमनेको स्वेच्छया पंजीयन करानेके हेतु दिये गये अपने प्रार्थना-पत्रको वापस करनेके लिए लिखा।

जून २३: प्रार्थनापत्र वापस करनेसे सम्बन्धित उनकी याचिका सर्वोच्च न्यायालयमें दायर की गई। गांधीजी और ईसप मियाँने हलफनामा दाखिल किया कि स्मट्सने अधिनियम रद करनेका वचन दिया था।

जून २४: जोहानिसबर्गमें सार्वजनिक सभा। समितिका प्रार्थनापत्रोंको वापस लेने और ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमको न माननेका सितम्बर ११, १९०६ को किया गया निश्चय[1] दोहराया गया।

सोराबजी शापुरजी शिक्षित भारतीयोंके अधिकारको जाँचनेके विचारसे ट्रान्सवालमें प्रविष्ट हुए।

भारतमें 'केसरी' में लिखे गये गये लेखोंको राजद्रोहात्मक बताकर लोकमान्य तिलक गिरफ्तार किये गये।

जून २५: चैमनेने जवाबी हलफनामा दाखिल किया।[2]

जून २६: स्मट्सने हलफनामा दाखिल किया कि उन्होंने अधिनियम रद करनेका वचन दिया ही नहीं था।

चैमनेने भी इसी आशयका एक दूसरा हलफनामा पेश किया।

जून २९: गांधीजी और अस्वातने भी जवाबी हलफनामा पेश करते हुए दुबारा कहा कि स्मट्सने वचन दिया था और उसे पहले घोषित भी किया था।

१. देखिए परिशिष्ट ५।
२. देखिए परिशिष्ट ६।

जुलाई २ के पहले : साप्ताहिक 'संवाद-पत्र' में गांधीजीने घोषित किया कि अब सत्याग्रह अपने ही स्वार्थका संघर्ष नहीं रहा; बल्कि दूसरों — तीन प्रकारके 'निषिद्ध प्रवासियों' — के हितोंका संघर्ष बन गया है।

'स्वेच्छया पंजीयन' के लिए दिये गये प्रार्थनापत्र वापस न किये जायें तो पंजीयन प्रमाणपत्रोंको जला दिया जाये — यह बात सत्याग्रह जारी रखनेके तरीकेके रूपमें गांधीजीने पहली बार कही।

जुलाई २ : सर्वोच्च न्यायालयने अस्वातकी याचिका (पिटिशन) रद की।

गांधीजीने ट्रान्सवालके अखबारोंको लिखा और स्मट्सके साथका सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशनार्थ भेजा।

जुलाई ४ : पादरी डोकने 'ट्रान्सवाल लीडर' को पत्र लिखा कि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके खिलाफ भारतीयोंका आन्दोलन करना सर्वथा उचित है।

जुलाई ५ के पहले : गोरे मध्यस्थ स्मट्सका बताया जानेवाला एक प्रस्ताव लेकर आये। उसमें कहा गया था कि ३ पौंडी पंजीयन प्रमाणपत्रवाले व्यक्तियोंको प्रवेशाधिकारकी रियायत दे दी जायेगी और चैमने द्वारा जिन "स्वेच्छया पंजीयन" करानेवालोंके दावे अस्वीकृत किये जायेंगे उन्हें अदालतमें अपीलका अधिकार भी दे दिया जायेगा। बदलेमें भारतीयोंको शिक्षित-भारतीयोंकी बात छोड़नी होगी। भारतीयोंने यह प्रस्ताव अमान्य कर दिया।

जुलाई ५ : हमीदिया मस्जिदमें सार्वजनिक सभा। उसमें सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयसे उत्पन्न परिस्थितिपर विचार किया गया और आगामी रविवारको पंजीयन प्रमाणपत्र जलानेकी बात तय हुई।

जुलाई ६ : ब्रि० भा० सं०[1] के अध्यक्षने उपनिवेश-सचिवको तीनों प्रकारके निषिद्ध प्रवासियोंके कानूनी हकोंपर जोर देते हुए लिखा और स्पष्ट किया कि (१) संघ जिनका प्रतिनिधित्व नहीं करता, उनके अधिकार बेचनेका उसे हक नहीं है और (२) भारतीय ऐसी कोई बात स्वीकार नहीं कर सकते जिससे भविष्यमें शिक्षित भारतीयोंका सहयोग पा सकनेकी कोई सूरत ही न बचे। उन्होंने समाजका यह निर्णय भी सूचित किया कि १२ जुलाईको प्रमाणपत्र जलाये जायेंगे।

जुलाई ७ : एशियाई पंजीयकने[2] नगरपालिकाओंको हिदायत दी कि परवानोंके लिए प्रार्थनापत्र देनेवाले भारतीय व्यापारियोंसे ट्रा० ए० पं० अ०[3] के अन्तर्गत अँगुलियोंकी छाप देनेको कहा जाये। गांधीजीने इसका यह अर्थ माना कि सरकार स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंपर भी ट्रा० ए० पं० अ० लागू करना चाहती है।

जुलाई ८ : गांधीजीने अदालतमें सोराबजी शापुरजीकी पैरवी की।

१. ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन)।

२. रजिस्ट्रार ऑफ़ एशियाटिक्स।

३. ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम।

जुलाई ९ : ब्रि० भा० सं० के अध्यक्षने उपनिवेश-सचिवके पास दो बातें लिख भेजीं — (१) कहा कि व्यापारी परवानोंके लिए अर्जी देनेवाले भारतीयोंसे अँगुलियोंकी छाप माँगना समझौतेको तोड़ना है; (२) ट्रा० प्र० पं० अ०[1] के अन्तर्गत शैक्षणिक कसौटीको मनमाना कड़ा किया जा सकता है। पत्रोत्तर आने तक भारतीय जुलाई १२ को प्रमाणपत्र जलानेके लिए होनेवाली आम सभा स्थगित कर रहे हैं।

जुलाई १० : जोहानिसबर्गके न्यायालय द्वारा सोराबजी शापुरजीको एक हफ्तेके भीतर उपनिवेश छोड़नेका हुक्म।

जुलाई ११ : गांधीजीने कार्टराइटसे स्मट्सके प्रस्तावका[2] स्पष्टीकरण चाहा।

जुलाई १४ : कार्टराइटने फोनपर स्मट्सके प्रस्तावकी पुष्टि की।

गांधीजीने कार्टराइटको पत्र लिखा और कहा कि तीन पौंडी डच पंजीयन प्रमाणपत्रोंवाले भारतीयोंकी अनुमानित संख्या १,००० होगी।

शिक्षित भारतीयोंके प्रश्नको सर्वोच्च न्यायालयके सामने रखनेपर फिर रजामन्दी जाहिर की और कहा कि इसका आधार रंगभेद न होकर कड़ी शैक्षणिक कसौटी रहे। उन्होंने सत्याग्रह जारी रखनेका अपना दृढ़ निश्चय व्यक्त किया। स्मट्सने आरोप लगाया था कि गांधीजीने "स्वेच्छया पंजीयन" लेनेवाले हर मुसलमानसे दो गिन्नी वसूल की हैं। गांधीजीने इस आरोपका खण्डन किया।

जुलाई १५ : 'स्टार' में समाचार छपा कि एशियाई प्रश्नके हल होनेकी सम्भावना है।

जुलाई १६ : ब्रि० भा० सं० के अध्यक्षने 'स्टार' में लिखकर प्रमुख भारतीयों द्वारा "विरोध और तपस्या" के रूपमें बिना परवानोंके फेरी लगानेके निर्णयकी घोषणा की।

बिना परवानोंके फेरी लगाना शुरू।

सार्वजनिक सभामें पंजीयन प्रमाणपत्रोंकी होली।

रायल कलोनियल इंस्टिटयूट लन्दनमें लॉर्ड मिलनरका "घनिष्टतर ऐक्य" पर भाषण। इसमें उन्होंने उपनिवेशोंमें रंग-विरोधी पूर्वग्रह और गलतफहमीको कम करनेके लिए साम्राज्यमें अधिकाधिक पारस्परिक अवलम्बनका सुझाव रखा।

जुलाई २० : इब्राहीम इस्माइल और सुलेमान बगसपर बिना परवानोंके फेरी लगानेके अपराधमें मुकदमा चला और उन्हें जेलकी सजा दी गई।

गांधीजीने अदालतमें सोराबजी शापुरजीकी पैरवी की। सोराबजी शापुरजीको ट्रान्सवालके प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत सजा न देकर शान्ति सुरक्षा अध्यादेशके अन्तर्गत १ महीनेकी सख्त सजा दी गई।

अदालतमें प्रवेशकी इच्छा करनेवाले भारतीयोंपर पुलिसने हमला किया।

अदालतके अहातेके बाहर सार्वजनिक सभामें बोलते हुए गांधीजीने व्यापारियोंसे कहा कि वे शिक्षित भारतीयोंकी हकतलफ़ीके प्रस्तावके विरोधमें बिना परवाना व्यापार करके जेल जानेके लिए आगे आयें।

१. ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम।

२. देखिए इसीमें, 'जुलाई ५ के पहले'।

उन्होंने भारतीय व्यापारियोंसे यह भी कहा कि ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत परवानोंके लिए दिये जानेवाले अपने प्रार्थनापत्रोंपर वे अँगूठोंकी छाप न दें। पोलक और अन्य सज्जनोंने पुलिसकी ज्यादतीके बारेमें शिकायत की और हलफिया बयान दिये।

गांधीजीने 'इंडियन ओपिनियन' में लिखा कि फिलहाल पंजीयन प्रमाणपत्रोंकी होली मुल्तवी रखी जाये। किन्तु उन्हें इकट्ठा करना जारी रखा जा सकता है।

जुलाई २१ : बिना परवाना फेरी लगानेके अपराधमें हमीदिया इस्लामिया अंजुमनके अध्यक्ष श्री बावजीरकी गिरफ्तारी।

जुलाई २२ : गांधीजीने अदालतमें बावजीर और अन्य व्यक्तियोंकी पैरवी की।

सर्वोच्च न्यायालयमें रतनजी लल्लूकी अपील खारिज। फैसलेमें न्यायाधीश सॉलोमनने स्पष्ट किया कि ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत एशियाइयोंको शैक्षणिक कसौटीके बाद ट्रान्सवालमें आने दिया जा सकता है।

एक रिपोर्टके अनुसार ८०० में से ४०० फेरीवालोंने ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत परवाने ले लिये।

साम्राज्यीय सरकारने घोषणा की कि लॉर्ड सेल्बोर्नको आदेश दे दिया गया है कि रोडेशियन एशियाई कानून जबतक उपनिवेश-मन्त्रीके विचाराधीन है तबतक उसे स्वीकृति न दी जाये।

भारतमें लोकमान्य तिलकको ६ वर्षके कठोर कारावास और १,००० रु० जुर्मानेकी सजा दी गई।

जुलाई २३ : बावजीरके प्रति आदर प्रकट करनेके लिए सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय व्यापारियोंने एक दिन हड़ताल रखी।

ट्रान्सवालके सत्याग्रहियोंको दी गई सजाके विरोधमें केप टाउन और डर्बनमें सभाएँ और प्रस्ताव। तुर्कीमें सुलतान अब्दुल्ला हमीदने फिर संसदीय शासन पद्धतिकी पुनर्स्थापना करना स्वीकार किया।

जुलाई २६ : गांधीजीने बावजीर और अन्य सत्याग्रहियोंके जेलसे छूटनेपर उनके स्वागतार्थ जोहानिसबर्गकी हमीदिया मस्जिदमें आयोजित एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया। ब्रिटिश भारतीय संघको और भी लोगोंने स्वेच्छया पंजीयन प्रमाणपत्र तथा फेरी-परवाने जला देनेके लिए सौंपे।

जुलाई २७ : बिना परवाना फेरी लगानेके अपराधमें हरिलाल गांधीकी गिरफ्तारी। हॉस्केनने गांधीजीको एशियाई स्वेच्छया पंजीयन विधेयक[1]—'प्रवंचक-विधेयक'—दिखाया। इसमें स्वेच्छया पंजीयन करानेवालोंको ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम स्वीकार कर लेनेवालोंके समकक्ष रखा गया था, किन्तु प्रवासियोंके "तीन वर्गों" के लिए उसमें व्यवस्था नहीं की गई थी।

१. एशियाटिक वालंटरी रजिस्ट्रेशन बिल।

जुलाई २८ : गांधीजीने अदालतमें हरिलाल और अन्य व्यक्तियोंकी पैरवी की।

कामन्स सभामें हैरॉल्ड कॉक्सने पूछा कि सम्राट्की सरकारकी रायमें सोराबजी शापुरजीके मुकदमेमें वांछनीयताकी कसौटी क्या है — प्रजाति अथवा शिक्षा?

जुलाई ३१ : साम्राज्यीय संसदमें कर्नल सीलीने उपनिवेशमें भारतीयोंकी स्थिति सम्बन्धी एक प्रश्नके उत्तरमें कहा कि स्वशासित उपनिवेश चाहे जिन्हें आनेसे रोक सकते हैं; किन्तु जिन्हें प्रवेश मिल गया है उन्हें उनके पूरे हक दिये जाने चाहिए। शिष्टमण्डलने, जिसके सदस्य सर चार्ल्स ब्रूस, सर मंचरजी, हैरॉल्ड कॉक्स, जी० के० गोखले, और श्री रिच थे, दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे उपनिवेश-मन्त्री लॉर्ड क्रूके सामने उनकी माँगें रखीं।

अगस्त १ के पहले : गांधीजीने बहुत सोच-विचारके बाद 'इंडियन ओपिनियन' में लिखा कि भारतमें ब्रिटिश शासनके बारेमें लोकमान्य तिलकका मत न माना जाये। "ब्रिटिश शासनको उखाड़ फेंकनेके लिए हिंसाका प्रयोग "हानिप्रद ही नहीं, निरर्थक भी" होगा। चीनी संघने भारतीयोंकी सत्याग्रह पद्धति अपनाना निश्चित किया। अध्यक्ष क्विन और अन्य चीनियोंने जोहानिसबर्गमें फेरी लगाना शुरू किया।

अगस्त ८ के पहले : 'इंडियन ओपिनियन' में पत्र लिखकर समझाया कि देशके लिए जेल जाना हरिलालकी शिक्षाका अंग है।

लॉर्ड सेल्बोर्नने वेरीनिगिंगमें भाषण देते हुए कहा कि साम्राज्यीय सरकार ट्रान्सवालमें केवल युद्धके पहलेके ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंकी रक्षा करनेके लिए बाध्य है।

अगस्त १० के पहले : 'प्रिटोरिया न्यूज' के सम्पादक स्टेंटने विटबैंकमें प्रगतिवादियोंकी एक सभामें ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमको 'अन्यायपूर्ण कानून' बताया और कहा कि सरकार उसे लागू नहीं कर सकती। यह भी कहा कि विवादमें गांधीजीके आगे स्मट्स फिर मुँहकी खायेंगे।

अगस्त १० : गांधीजीने अदालतमें हरिलाल गांधीकी पैरवी की।

मुकदमेके बाद सभामें कहा कि सत्याग्रही-व्यापारियोंको जेल भेजनेके बजाय उनका माल नीलाम करना "संगठित और कानूनी डाका है।" और कहा कि "चीनी आदमीकी आत्महत्या और श्री नायडूके बच्चेकी मृत्यु" के लिए स्मट्स उत्तरदायी हैं।

गांधीजीको खबर मिली कि प्रगतिवादी दल ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके रद किये जानेका विरोध करेगा।

अगस्त ११ : 'ट्रान्सवाल लीडर' ने अपने सम्पादकीयमें कहा कि "एशियाइयोंको सताना एक गहरे राजनीतिक कुचक्रका अंग है।" "हमने राजनीतिज्ञताका परिचय पानेकी सच्चे दिलसे कोशिश की; परन्तु अब हम थक चले हैं।"

अगस्त १२ : गांधीजीने 'ट्रान्सवाल लीडर' को मुलाकात दी और कहा कि स्वेच्छया पंजीयनको वैध करनेवाला प्रस्तावित विधेयक समझौतेकी शर्तोंका उल्लंघन करता है। वह न तो ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमको रद करता है और न स्वेच्छया पंजीयन

करानेवालोंको उस अधिनियमके प्रभावसे मुक्त करता है। इसके अलावा, विधेयकके अनुसार नाबालिगों और नये प्रवासियोंका ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमके अधीन पंजीयन कराना अनिवार्य रखता है।

श्री रिचके अनुसार 'डेली टेलिग्राफ' के संवाददाताने लिखा था कि इसमें कोई सन्देह नहीं था कि सरकार पंजीयन अधिनियम रद करनेका इरादा रखती थी . . . । वस्तुतः, एशियाइयोंके पंजीयकने उसे (संवाददाताको) अधिनियमकी कुछ महत्वपूर्ण धाराएँ पढ़कर सुनाईं जिन्हें श्री स्मट्सने स्वीकार किया था।

अगस्त १२–१३ (?) : दाउद मोहम्मद, पारसी रुस्तमजी, आँगलिया, राँदेरिया और डर्बनके अन्य नेतागण ट्रान्सवालमें अपने अधिवासके अधिकारको आजमानेके विचारसे रेल द्वारा जोहानिसबर्ग रवाना हुए।

अगस्त १३ : ट्रान्सवाल विधानसभाको याचिका दी गई और यह बात दोहराई गई कि विधेयक समझौतेका उल्लंघन करता है।

अगस्त १४ : गांधीजीने पत्र लिखकर स्मट्ससे फिर अपील की कि समझौतेका पालन किया जाये, ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियममें मेरा सुझाया हुआ संशोधन स्वीकार किया जाये अथवा समझौता करनेके उद्देश्यसे भारतीय नेताओंसे मिला जाये। यह भी लिखा कि यदि यह न हुआ तो आगामी इतवारको प्रमाणपत्रोंकी होली जलाई जायेगी।

विरोधी दलके नेता जॉर्ज फेरारको पत्र लिखकर विस्तारपूर्वक वैधीकरण विधेयक (वैलिडेशन बिल)के बारेमें अपनी आपत्तियाँ समझाईं।

अगस्त १६ : जोहानिसबर्गकी सार्वजनिक सभामें भाषण। सभाने ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियमका विरोध करनेका निश्चय किया। प्रमाणपत्रोंकी होली जलाई गई।

अगस्त १८ : स्मट्सके निमन्त्रणपर स्मट्स, बोथा और प्रगतिवादी दलके सदस्योंकी बैठकमें भाग लेनेके लिए प्रिटोरिया गये।

सरकारने वैधीकरण विधेयकमें फेरफार करने और ट्रा० ए० पं० अ० को नाबालिग बच्चों और स्वेच्छासे पंजीयन करानेवालोंपर लागू न करनेकी रजामंदी दिखाई।

अगस्त १९ : गांधीजी जेलमें सोराबजी शापुरजीसे मिले।

अगस्त २० : सरकार द्वारा प्रस्तुत वैधीकरण विधेयकके संशोधित रूपपर विचार करनेके लिए सभा। गांधीजीने लेनको पत्र लिखा कि संशोधित मसविदेमें सभाकी माँगें सम्मिलित की जायें : (१) ट्रान्सवाल एशियाई पंजीयन अधिनियम रद किया जाये, (२) शिक्षित भारतीयोंको कड़ी शैक्षणिक कसौटीके बाद उपनिवेशमें आनेकी अनुमति दी जाये, (३) राजनीतिक कैदी छोड़े जायें और सोराबजी शापुरजीको बहाल किया जाये। यह "अन्तिम चेतावनी" का पत्र माना गया।

अगस्त २१ : ट्रान्सवाल विधानसभामें एशियाई स्वेच्छया पंजीयन वैधीकरण विधेयक प्रवर समिति (सिलेक्ट कमिटी) की सिफारिशके बाद वापस ले लिया गया। एशियाई पंजीयन

संशोधन विधेयक[1] नामसे एक नये विधेयकका वाचन हुआ, "जिसमें हमारा चाहा हुआ (लगभग) सब-कुछ शामिल था।"

उक्त विधेयकका विधान-परिषदमें दूसरा वाचन तथा विधानसभामें तीसरा वाचन हुआ।

गांधीजीने नये विधेयकके बारेमें 'ट्रान्सवाल लीडर' और 'स्टार' को मुलाकात देते हुए कहा कि वह एशियाइयोंकी माँगें पूरी नहीं करता और सत्याग्रह फिर शुरू किया जायेगा।

अगस्त २२ : एशियाई स्वेच्छया पंजीयन संशोधन विधेयकका विधान परिषदमें तीसरा वाचन।

अगस्त २३ : जोहानिसबर्गमें आम सभा; और प्रमाणपत्र जलाये गये।

गांधीजीपर हमला करनेवाले मीर आलम और अन्य पठानोंने अपनी भूल स्वीकार की और "अन्ततक संघर्ष करनेकी" प्रतिज्ञा की। गांधीजीने सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिकके इस कथनकी निन्दा की कि उपनिवेशकी विभिन्न कौमोंमें संघर्षकी सम्भावना है।

अगस्त २४ : ब्रि० भा० सं० के अध्यक्षने उपनिवेश-सचिवको लिखा कि भारतीय "भयंकर संघर्षको प्रारम्भ" करनेके पहले फिर सरकारसे प्रार्थना करते हैं कि उन्हें माँगी हुई राहत दी जाये।

अगस्त २७ : दाउद मोहम्मद और नेटालके अन्य नेताओंकी जोहानिसबर्ग अंजुमन इस्लाम हॉलमें गिरफ्तारी।

अगस्त २८ : नेटालके भारतीय नेताओंका प्रिटोरियासे निष्कासन। गांधीजी और अन्य सज्जनोंने उन्हें स्टेशनपर विदाई दी।

अगस्त ३० : हमीदिया मस्जिदमें भारतीयोंकी सभामें भाषण।

१. एशियाटिक रजिस्ट्रेशन अमेंडमेंट बिल।

पारिभाषिक शब्दावली

अँगुलियोंके निशान, अँगुलियोंकी छाप – फिंगर प्रिन्ट्स
अग्रगामी दल – फॉरवर्ड पार्टी
अटल कानून – इर्रिवोकेबल लॉ
अदालती जाँच – ज्युडिशियल इन्क्वायरी
अधिकार-क्षेत्र – ज्यूरिस्डिक्शन
अधिनियम – ऐक्ट
अधिवास-अधिकार – डोमिसिलियरी राइट
अधिवासी प्रमाणपत्र – सर्टिफिकेट ऑफ डोमिसाइल
अध्यादेश – ऑर्डिनेन्स
अनाक्रामक प्रतिरोधी, सत्याग्रही – पैसिव रेजिस्टर
अनिवार्य पंजीयन – कम्पलसरी रजिस्ट्रेशन
अनुमतिपत्र – परमिट
अनुयाचना – कैनवेसिंग
अनैतिकता अध्यादेश – इम्मॉरेलिटी ऑर्डिनेन्स
अन्तिम चेतावनी – अल्टिमेटम
अपील अदालत – कोर्ट ऑफ अपील
अस्थायी अनुमतिपत्र – टेम्परेरी परमिट
आव्रजन, प्रवास – इमिग्रेशन
आव्रजन विभाग, प्रवास विभाग – इमिग्रेशन डिपार्टमेंट
इकरारनामा – ऐग्रीमेंट
उच्च न्यायालय – हाई कोर्ट
उपखण्ड – सब-सेक्शन
उपधारा – सब-क्लॉज़
उपनिवेश-कार्यालय – कलोनियल ऑफिस
उपनिवेश-सचिव – कलोनियल सेक्रेटरी
एशियाई कानून संशोधन अध्यादेश – एशियाटिक लॉ अमेंडमेंट ऑर्डिनेन्स
एशियाई दफ्तर, एशियाई कार्यालय – एशियाटिक ऑफिस
एशियाई नीली पुस्तिका – एशियाटिक ब्ल्यू बुक
एशियाई पंजीयन अध्यादेश – एशियाटिक रजिस्ट्रेशन ऑर्डिनेंस
एशियाई कानून संशोधन अधिनियम – एशियाटिक लॉ अमेंडमेंट ऐक्ट
एशियाई-विरोधी आन्दोलनकारी – ऐन्टी-एशियाटिक एजीटेटर्स
खण्ड – सेक्शन
खान-मण्डल – चेम्बर ऑफ माइन्स
खूनी कानून – ऑब्नॉक्शस लॉ
गरम दल – एक्स्ट्रीमिस्ट पार्टी
गिरमिटिया मजदूर – इंडेंचर्ड लेबरर
घनिष्ठतर ऐक्य समाज – क्लोज़र यूनियन सोसाइटी
चिकित्सा-अधिकारी – मेडिकल ऑफिसर
चीनी संघ – चाइनीज़ एसोसिएशन
जेल-निदेशक – डायरेक्टर ऑफ प्रिज़न्स
ट्रान्सवाल नगरपालिका अध्यादेश – ट्रान्सवाल म्यूनिसिपल ऑर्डिनेन्स
ट्रान्सवाल नगरपालिका एकीकरण विधेयक – ट्रान्सवाल म्यूनिसिपल कॉन्सॉलिडेशन बिल
तमिल सहायक समिति, तमिल कल्याण सभा – तमिल बेनिफिट सोसाइटी
देश-निकाला, निर्वासन – डिपोर्टेशन
धारा – क्लॉज़
नगरपालिका – म्यूनिसिपैलिटी
निषिद्ध प्रवासी – प्रॉहिबिटेड इमिग्रेंट
नेटाल खेत-मालिक संघ – नेटाल एग्रीकल्चरल यूनियन
नेटाल नगरपालिका अधिनियम – नेटाल म्यूनिसिपल ऐक्ट
नेटाल मताधिकार कानून – नेटाल फ्रैंचाइज लॉ
नौरोहण पास, जहाजका प्रवेश-पत्र – एम्बार्केशन पास
न्याय-समिति – ज्यूडिशियल कमिटी
न्यासी, संरक्षक – ट्रस्टी
पंजीयन – रजिस्ट्रेशन
पंजीयन कार्यालय – रजिस्ट्रेशन ऑफिस
पंजीयन प्रमाणपत्र – रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट
परमिट अधिनियम, अनुमतिपत्र अधिनियम – परमिट ऐक्ट
परवाना निकाय – लाइसेंसिंग बोर्ड

परवाना विधेयक – लाइसेंसिंग बिल
परवाना शुल्क – लाइसेन्स फी
परिशिष्ट – अपेंडिक्स
परीक्षात्मक मुकदमा – टेस्ट केस
पारिभाषिक शब्दावली, – ग्लॉसरी ऑफ़ टेक्निकल टर्म्स
पास कानून, प्रवेश-पत्र कानून – पास लॉ
प्रगतिवादी दल – प्रोग्रेसिव पार्टी
प्रतिक्रियावादी, प्रतिगामी – रिऐक्शनरी
प्रपत्र – फॉर्म
प्रवासी अधिनियम – इमिग्रेशन ऐक्ट
प्रवासी प्रतिबन्धक अधिकारी – इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन ऑफिसर
प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम – इमिग्रेशन रिस्टिक्शन ऐक्ट
फेरीवाले – हॉकर्स
ब्रिटिश भारतीय संघ – ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन
भेद-मूलक कानून – डिफरेंशियल लेजिस्लेशन
मंजूरशुदा जामिन – एप्रूव्ड श्योरिटीज़
मत व्यवस्था, मत प्रणाली – वोटिंग सिस्टम
मताधिकार – फ्रेंचाइज़
मताधिकार कानून – फ्रेंचाइज़ लॉ
मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलवे – सेंट्रल साउथ आफ्रिकन रेलवे
महान्यायवादी – अटर्नी जनरल
मानपत्र, अभिनन्दनपत्र – ऐड्रेस
मुख्तियारनामा – पावर ऑफ अटर्नी
मुख्य प्रवासी-अधिकारी – चीफ इमिग्रेशन ऑफिसर
मुलाकाती पास – विज़िटिंग पास
रंगदार – कलर्ड
रक्षात्मक कानून – प्रोटेक्टिव लेजिस्लेशन
राज प्रतिनिधि, राजनयिक प्रतिनिधि – कॉन्सल
राजस्व-आदाता, माल अमीन – रिसीवर ऑफ रेवेन्यूज़
राजस्व परवाना अध्यादेश – रेवेन्यू लाइसेन्स ऑर्डिनेंस
वतनी – नेटिव
वर्ग-विधान, वर्गीय कानून – क्लास लेजिस्लेशन
वाणिज्य दूत – कॉन्सल
विक्रेता अधिनियम – डीलर्स ऐक्ट
विदेश कार्यालय – फॉरेन ऑफिस
विधान मण्डल – लेजिस्लेचर
विधान संहिता, – स्टैच्यूट बुक
विधेयक – बिल
विनियम – रेगुलेशन
वैधीकरण विधेयक – वैलिडेशन बिल
व्यक्ति-कर, मुण्डकर – पोल टैक्स
व्यापारिक परवाने – ट्रेड लाइसेंसेज़
शाही परिषद – प्रिवी कौंसिल
शान्ति-रक्षा अध्यादेश – पीस प्रिज़र्वेशन ऑर्डिनेंस
संघ संसद – यूनियन पार्लियामेंट
संरक्षक-विभाग – प्रोटेक्टर्स डिपार्टमेंट
संलग्नपत्र, सहपत्र – एनक्लोज़र
संशोधन – अमेंडमेंट
सत्याग्रह, अनाक्रामक प्रतिरोध – पैसिव रेज़िस्टेंस
सरकारी वकील – पब्लिक प्रॉसिक्यूटर
सर्वोच्च न्यायालय – सुप्रीम कोर्ट
सांकेतिका – इंडेक्स
सूतक – क्वारंटीन
स्थानिक निकाय – लोकल बोर्ड
स्वास्थ्य-अधिकारी – हेल्थ ऑफिसर
स्वेच्छया पंजीयन – वॉलंटरी रजिस्ट्रेशन
हमीदिया इस्लामिया अंजुमन – हमीदिया इस्लामिक सोसाइटी
हलफिया बयान, हलफ़नामा – एफिडेविट

शीर्षक-सांकेतिका

८–३४

सांकेतिका

आ

इ

ई

उ

ए

झ

ट

ड

ल

व

श

स

ह